अनुक्रम

1. यात्रा कुंडलिनी की 2
2. बुंद समानी समुंद में 17
3. ध्यान है महामृत्यु 39
4. ध्यान पंथ ऐसो कठिन 55
5. कुंडलिनी, शक्तिपात व प्रभु प्रसाद 71
6. गहरे पानी पैठ 79
7. कुंडलिनी जागरण व शक्तिपात 97
8. यात्राः दृश्य से अदृश्य की ओर 125
9. श्वास की कीमिया 144
10. आंतरिक रूपांतरण के तथ्य 158
11. मुक्ति सोपान की सीढ़ियां 183
12. सतत साधनाः न कहीं रुकना, न कहीं बंधना 207
13. सात शरीरों से गुजरती कुंडलिनी 228
14. सात शरीर और सात चक्र 253
15. धर्म के असीम रहस्य सागर में 281
16. ओम् साध्य है, साधन नहीं 309
17. मनस से महाशून्य तक 328
18. तंत्र के गुह्य आयामों में 352
19. अज्ञात, अपरिचित गहराइयों में 375

पहला प्रवचन

यात्रा कुंडलिनी की

मेरे प्रिय आत्मन्,

मुझे पता नहीं कि आप किस लिए यहां आए हैं। शायद आपको भी ठीक से पता न हो, क्योंकि हम सारे लोग जिंदगी में इस भांति ही जीते हैं कि हमें यह भी पता नहीं होता कि क्यों जी रहे हैं, यह भी पता नहीं होता कि कहां जा रहे हैं, और यह भी पता नहीं होता कि क्यों जा रहे हैं।

मूर्च्छा और जागरण

जिंदगी ही जब बिना पूछे बीत जाती हो तो आश्चर्य नहीं होगा कि आपमें से बहुत लोग बिना पूछे यहां आ गए हों कि क्यों जा रहे हैं। शायद कुछ लोग जानकर आए हों, संभावना बहुत कम है। हम सब ऐसी मूर्च्छा में चलते हैं, ऐसी मूर्च्छा में सुनते हैं, ऐसी मूर्च्छा में देखते हैं कि न तो हमें वह दिखाई पड़ता जो है, न वह सुनाई पड़ता जो कहा जाता है, और न उसका स्पर्श अनुभव हो पाता जो सब ओर से बाहर और भीतर हमें घेरे हुए है।

मूर्च्छा में ही यहां भी आ गए होंगे। ज्ञात भी नहीं है; हमारे कदमों का भी हमें कुछ पता नहीं है; हमारी श्वासों का भी हमें कुछ पता नहीं है। लेकिन मैं क्यों आया हूं, यह मुझे जरूर पता है; वह मैं आपसे कहना चाहूंगा।

बहुत जन्मों से खोज चलती है आदमी की। न मालूम कितने जन्मों की खोज के बाद उसकी झलक मिलती है--जिसे हम आनंद कहें, शांति कहें, सत्य कहें, परमात्मा कहें, मोक्ष कहें, निर्वाण कहें--जो भी शब्द ठीक मालूम पड़े, कहें। ऐसे कोई भी शब्द उसे कहने में ठीक नहीं हैं, समर्थ नहीं हैं। जन्मों-जन्मों के बाद उसका मिलना होता है।

और जो लोग भी उसे खोजते हैं, वे सोचते हैं, पाकर विश्राम मिल जाएगा। लेकिन जिन्हें भी वह मिलता है, मिलकर पता चलता है कि एक नये श्रम की शुरुआत है, विश्राम नहीं। कल तक पाने के लिए दौड़ थी और फिर बांटने के लिए दौड़ शुरू हो जाती है। अन्यथा बुद्ध हमारे द्वार पर आकर खड़े न हों, और न महावीर हमारी सांकल को खटखटाएं, और न जीसस हमें पुकारें। उसे पा लेने के बाद एक नया श्रम।

सच यह है कि जीवन में जो भी महत्वपूर्ण है, उसे पाने में जितना आनंद है, उससे अनंत गुना आनंद उसे बांटने में है। जो उसे पा लेता है, फिर वह उसे बांटने को वैसे ही व्याकुल हो जाता है, जैसे कोई फूल खिलता है और सुगंध लुटती है, कोई बादल आता है और बरसता है, या सागर की कोई लहर आती है और तटों से टकराती है। ठीक ऐसे ही, जब कुछ मिलता है तो बंटने के लिए, बिखरने के लिए, फैलने के लिए प्राण आतुर हो जाते हैं।

मेरा मुझे पता है कि मैं यहां क्यों आया हूं। और अगर मेरा और आपका कहीं मिलन हो जाए, और जिस लिए मैं आया हूं अगर उस लिए ही आपका भी आना हुआ हो, तो हमारी यह मौजूदगी सार्थक हो सकती है। अन्यथा अक्सर ऐसा होता है, हम पास से गुजरते हैं, लेकिन मिल नहीं पाते। अब मैं जिस लिए आया हूं, अगर उसी लिए आप नहीं आए हैं, तो हम पास होंगे, निकट रहेंगे, लेकिन मिल नहीं पाएंगे।

सत्य को देखने की आंख

कुछ जो मुझे दिखाई पड़ता है, चाहता हूं, आपको भी दिखाई पड़े। और मजा यह है कि वह इतने निकट है कि आश्चर्य ही होता है कि वह आपको दिखाई क्यों नहीं पड़ता! और कई बार तो संदेह होता है कि जैसे जानकर ही आप आंख बंद किए बैठे हैं; देखना ही नहीं चाहते हैं; अन्यथा इतने जो निकट है वह आपके देखने से कैसे चूक जाता! जीसस ने बहुत बार कहा है कि लोगों के पास आंखें हैं, लेकिन वे देखते नहीं; कान हैं, लेकिन वे सुनते नहीं। बहरे ही बहरे नहीं हैं और अंधे ही अंधे नहीं हैं। जिनके पास आंख और कान हैं वे भी अंधे और बहरे हैं। इतने निकट है, दिखाई नहीं पड़ता! इतने पास है, सुनाई नहीं पड़ता! चारों तरफ घेरे हुए है, स्पर्श नहीं होता! क्या बात है? कहीं कुछ कोई छोटा सा अटकाव होगा, बड़ा अटकाव नहीं है।

ऐसा ही है, जैसे आंख में एक तिनका पड़ जाए और पहाड़ दिखाई न पड़े फिर, आंख बंद हो जाए। तर्क तो यही कहेगा कि पहाड़ को जिसने ढांक लिया, वह तिनका बहुत बड़ा होगा। तर्क तो ठीक ही कहता है। गणित तो यही कहेगा, इतने बड़े पहाड़ को जिसने ढांक लिया, वह तिनका पहाड़ से बड़ा होना चाहिए। लेकिन तिनका बहुत छोटा है; आंख बड़ी छोटी है। तिनका आंख को ढंक लेता है, पहाड़ ढंक जाता है।

हमारी भीतर की आंख पर भी कोई बहुत बड़े पहाड़ नहीं हैं, छोटे तिनके हैं। उनसे जीवन के सारे सत्य छिपे रह जाते हैं। और वह आंख... निश्चित ही, जिन आंखों से हम देखते हैं उस आंख की मैं बात नहीं कर रहा हूं। इससे बड़ी भ्रांति पैदा होती है। यह ठीक से ख्याल में आ जाना चाहिए कि इस जगत में हमारे लिए वही सत्य सार्थक होता है, जिसे पकड़ने की, जिसे ग्रहण करने की, जिसे स्वीकार कर लेने की, भोग लेने की रिसेप्टिविटी, ग्राहकता हममें पैदा हो जाती है।

सागर का इतना जोर का गर्जन है, लेकिन मेरे पास कान नहीं हैं तो सागर अनंत-अनंत काल तक भी चिल्लाता रहे, पुकारता रहे, मुझे कुछ सुनाई नहीं पड़ेगा। जरा से मेरे कान न हों कि सागर का इतना बड़ा गर्जन व्यर्थ हो गया; आंखें न हों, सूर्य द्वार पर खड़ा रहे, बेकार हो गया; हाथ न हों और मैं किसी को स्पर्श करना चाहूं, तो कैसे करूं?

परमात्मा की इतनी बात है, आनंद की इतनी चर्चा है, इतने शास्त्र हैं, इतने लोग प्रार्थनाएं कर रहे, मंदिरों में भजन-कीर्तन कर रहे, लेकिन लगता नहीं कि परमात्मा को हम स्पर्श कर पाते हैं; लगता नहीं कि वह हमें दिखाई पड़ता है; लगता नहीं कि हम उसे सुनते हैं; लगता नहीं कि हमारे प्राणों के पास उसकी कोई धड़कन हमें सुनाई पड़ती है। ऐसा लगता है, सब बातचीत है, सब बातचीत है। ईश्वर की हम बात किए चले जाते हैं। और शायद इतनी बात हम इसीलिए करते हैं कि शायद हम सोचते हैंः बातचीत करके अनुभव को झुठला देंगे; बातचीत करके ही पा लेंगे। अब बहरे जन्मों-जन्मों तक बातें करें स्वरों की, संगीत की, और अंधे बातें करें प्रकाश की, तो जन्मों तक करें बातें तो भी कुछ होगा नहीं। हां, एक भ्रांति हो सकती है कि अंधे प्रकाश की बात करते-करते यह भूल जाएं कि हम अंधे हैं; क्योंकि प्रकाश की बहुत बात करने से उन्हें लगने लगे कि हम प्रकाश को जानते हैं।

जमीन पर बने हुए परमात्मा के मंदिर और मस्जिद इस तरह का ही धोखा देने में सफल हो पाए हैं। उनके आसपास उनके भीतर बैठे हुए लोगों को भ्रम के अतिरिक्त कुछ और पैदा नहीं होता। ज्यादा से ज्यादा हम परमात्मा को मान पाते हैं, जान नहीं पाते। और मान लेना बातचीत से ज्यादा नहीं है; कनविनसिंग बातचीत है तो मान लेते हैं; कोई जोर से तर्क करता है और सिद्ध करता है तो मान लेते हैं; हार जाते हैं, नहीं सिद्ध कर पाते हैं कि नहीं है, तो मान लेते हैं। लेकिन मान लेना जान लेना नहीं है। अंधे को हम कितना ही मना दें कि प्रकाश है, तो भी प्रकाश को जानना नहीं होता है।

मैं तो यहां इसी ख्याल से आया हूं कि जानना हो सकता है। निश्चित ही हमारे भीतर कुछ और भी केंद्र है जो निष्क्रिय पड़ा है--जिसे कभी कोई कृष्ण जान लेता है और नाचता है; और कभी कोई जीसस जान लेता है और सूली पर लटक कर भी कह पाता है लोगों से कि माफ कर देना इन्हें, क्योंकि इन्हें पता नहीं कि ये क्या कर रहे हैं। निश्चित ही कोई महावीर पहचान लेता है, और किसी बुद्ध के भीतर वह फूल खिल जाता है। कोई केंद्र है हमारे भीतर--कोई आंख, कोई कान--जो बंद पड़ा है। मैं तो इसीलिए आया हूं कि वह जो बंद पड़ा हुआ केंद्र है, कैसे सक्रिय हो जाए।

यह बल्ब लटका हुआ है। तो उससे रोशनी निकल रही है। तार काट दें हम, तो बल्ब कुछ भी नहीं बदला, लेकिन रोशनी बंद हो जाएगी। विद्युत की धारा न मिले, बल्ब तक न आए, तो बल्ब अंधेरा हो जाएगा और जहां प्रकाश गिर रहा है वहां सिर्फ अंधेरा गिरेगा। बल्ब वही है, लेकिन निष्क्रिय हो गया; वह जो धारा शक्ति की दौड़ती थी, अब नहीं दौड़ती है। और शक्ति की धारा न दौड़ती हो तो बल्ब क्या करे?

दिव्य-दृष्टि के जागरण का केंद्र

हमारे भीतर भी कोई केंद्र है जिससे वह जाना जाता है, जिसे हम परमात्मा कहें। लेकिन उस तक हमारी जीवन-धारा नहीं दौड़ती तो वह केंद्र निष्क्रिय पड़ रह जाता है। आंखें हों ठीक बिल्कुल, और आंखों तक जीवन की धारा न दौड़े, तो आंखें बेकार हो जाएं।

एक लड़की को मेरे पास लाए थे कुछ मित्र। उस युवती का किसी से प्रेम था और घर के लोगों को पता चला और प्रेम के बीच दीवाल उन्होंने खड़ी की। अब तक हम इतनी अच्छी दुनिया नहीं बना पाए जहां प्रेम के लिए दीवालें न बनानी पड़ें। उन्होंने दीवाल खड़ी कर दी, उस युवती को और उस युवक को मिलने का द्वार बंद कर दिया। बड़े घर की युवती थी, बीच से छत से दीवाल उठा दी, आर-पार देखना न हो सके। जिस दिन वह दीवाल उठी, उसी दिन वह लड़की अचानक अंधी हो गई। उसे डाक्टरों के पास ले गए। उन्होंने कहा, आंख तो बिल्कुल ठीक है, लेकिन लड़की को दिखाई कुछ भी नहीं पड़ता है! पहले तो शक हुआ, मां-बाप ने डांटा-डपटा, मारने-पीटने की धमकी दी। लेकिन डांटने-डपटने से अंधेपन तो ठीक नहीं होते। डाक्टरों को दिखाया। डाक्टरों ने कहा, आंख बिल्कुल ठीक है। लेकिन फिर भी डाक्टरों ने कहा कि लड़की झूठ नहीं बोलती है, उसे दिखाई नहीं पड़ रहा है। साइकोलाजिकल ब्लाइंडनेस, उन्होंने कहा कि मानसिक अंधापन आ गया। तो उन्होंने कहा, हम कुछ न कर सकेंगे। लड़की की जीवन-धारा आंख तक जानी बंद हो गई है; वह जो ऊर्जा आंख तक जाती है, वह बंद हो गई है, वह धारा अवरुद्ध हो गई है। आंख ठीक है, लेकिन जीवन-धारा आंख तक नहीं पहुंचती है।

उस लड़की को मेरे पास लाए, मैंने सारी बात समझी। मैंने उस लड़की को पूछा कि क्या हुआ? तेरे मन में क्या हुआ है? उसने कहा कि मेरे मन में यह हुआ है कि जिसे देखने के लिए मेरे पास आंखें हैं, अगर उसे न देख सकूं तो आंखों की क्या जरूरत है? बेहतर है कि अंधी हो जाऊं। कल रात भर मेरे मन में एक ही ख्याल चलता रहा। रात मैंने सपना भी देखा कि मैं अंधी हो गई हूं। और यह जानकर मेरा मन प्रसन्न हुआ कि अंधी हो गई हूं। क्योंकि जिसे देखने के लिए आंख आनंदित होती, अब उसे देख नहीं सकूंगी तो आंख की क्या जरूरत है, अंधा ही हो जाना अच्छा है।

उसका मन अंधा होने के लिए राजी हो गया, जीवन-धारा आंख तक जानी बंद हो गई है। आंख ठीक है, आंख देख सकती है, लेकिन जिस शक्ति से देख सकती थी वह आंख तक नहीं आती है।

हमारे व्यक्तित्व में छिपा हुआ कोई केंद्र है जहां से परमात्मा पहचाना, जाना जाता है; जहां से सत्य की झलक मिलती है; जहां से जीवन की मूल ऊर्जा से हम संबंधित होते हैं; जहां से पहली बार संगीत उठता है वह जो किसी वाद्य से नहीं उठ सकता; जहां से पहली बार वे सुगंधें उपलब्ध होती हैं जो अनिर्वचनीय हैं; और जहां से उस सबका द्वार खुलता है जिसे हम मुक्ति कहें; जहां कोई बंधन नहीं, जहां परम स्वतंत्रता है; जहां कोई सीमा नहीं और असीम का विस्तार है; जहां कोई दुख नहीं और जहां आनंद, और आनंद, और आनंद, और आनंद के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। लेकिन उस केंद्र तक हमारी जीवन-धारा नहीं जाती, एनर्जी नहीं जाती, ऊर्जा नहीं जाती, कहीं नीचे ही अटककर रह जाती है।

इस बात को थोड़ा ठीक से समझ लें। क्योंकि तीन दिन जिसे मैं ध्यान कह रहा हूं, इस ऊर्जा को, इस शक्ति को उस केंद्र तक पहुंचाने का ही प्रयास करना है, जहां वह फूल खिल जाए, वह दीया जल जाए, वह आंख मिल जाए--वह तीसरी आंख, वह सुपर सेंस, वह अतींद्रिय इंद्रिय खुल जाए--जहां से कुछ लोगों ने देखा है, और जहां से सारे लोग देखने के अधिकारी हैं।

लेकिन बीज होने से ही जरूरी नहीं कि कोई वृक्ष हो जाए। हर बीज अधिकारी है वृक्ष होने का, लेकिन सभी बीज वृक्ष नहीं हो पाते। क्योंकि बीज की संभावना तो है, पोटेंशियलिटी तो है कि वृक्ष हो जाए, लेकिन खाद भी जुटानी पड़ती है, जमीन में बीज को दबना भी पड़ता, मरना भी पड़ता, टूटना पड़ता, बिखरना पड़ता। जो बीज टूटने, बिखरने को, मिटने को राजी हो जाता है वह वृक्ष हो जाता है। और अगर वृक्ष के पास हम बीज को रखकर देखें तो पहचानना बहुत मुश्किल होगा कि यह बीज इतना बड़ा वृक्ष बन सकता है! असंभव! असंभव मालूम पड़ेगा। इतना सा बीज इतना बड़ा वृक्ष कैसे बनेगा!

ऐसा ही लगा है सदा। जब कृष्ण के पास हम खड़े हुए हैं, तो ऐसा ही लगा है कि हम कहां बन सकेंगे! तो हमने कहाः तुम भगवान हो; हम साधारणजन, हम कहां बन सकेंगे! तुम अवतार हो; हम साधारणजन, हम तो जमीन पर ही रेंगते रहेंगे; हमारी यह सामर्थ्य नहीं। जब कोई बुद्ध और कोई महावीर हमारे पास से गुजरा है, तो हमने उसके चरणों में नमस्कार कर लिए हैं--और कहा कि तीर्थंकर हो, अवतार हो, ईश्वर के पुत्र हो, हम साधारणजन!

अगर बीज कह सकता, तो वृक्ष के पास वह भी कहता कि भगवान हो, तीर्थंकर हो, अवतार हो; हम साधारण बीज, हम कहां ऐसे हो सकेंगे! बीज को कैसे भरोसा आएगा कि इतना बड़ा वृक्ष उसमें छिपा हो सकता है? लेकिन यह बड़ा वृक्ष कभी बीज था, और जो आज बीज है वह कभी बड़ा वृक्ष हो सकता है।

अनंत संभावनाओं का जागरण

हम सबके भीतर अनंत संभावना छिपी है। लेकिन उन अनंत संभावनाओं का बोध जब तक हमें भीतर से न होने लगे, तब तक कोई शास्त्र प्रमाण नहीं बनेगा। और कोई भी चिल्लाकर कहे कि पा लिया, तो भी प्रमाण नहीं बनेगा। क्योंकि जिसे हम नहीं जान लेते हैं, उस पर हम कभी विश्वास नहीं कर पाते हैं। और ठीक भी है, क्योंकि जिसे हम नहीं जानते उस पर विश्वास करना प्रवंचना है, डिसेप्शन है। अच्छा है कि हम कहें कि हमें पता नहीं कि ईश्वर है। लेकिन किन्हीं को पता हुआ है, और किन्हीं को केवल पता ही नहीं हुआ है, बल्कि उनकी सारी जिंदगी बदल गई, उनके चारों तरफ हमने फूल खिलते देखे हैं अलौकिक। लेकिन उनकी पूजा करने से वह हमारे भीतर नहीं हो जाएगा।

सारा धर्म पूजा पर रुक गया है। फूल की पूजा करने से नये बीज कैसे फूल बन जाएंगे? और नदी कितनी ही सागर की पूजा करे तो सागर न हो जाएगी। और अंडा पक्षियों की कितनी ही पूजा करे तो भी आकाश में पंख नहीं फैला सकता। अंडे को टूटना पड़ेगा। और पहली बार जब कोई पक्षी अंडे के बाहर टूटकर निकलता है तो उसे भरोसा नहीं आता; उड़ते हुए पक्षियों को देखकर वह विश्वास भी नहीं कर सकता कि यह मैं भी कर सकूंगा। वृक्षों के किनारों पर बैठकर वह हिम्मत जुटाता है। उसकी मां उड़ती है, उसका बाप उड़ता है, वे उसे धक्के भी देते हैं, फिर भी उसके हाथ-पैर कंपते हैं। वह जो कभी नहीं उड़ा, कैसे विश्वास करे कि ये पंख उड़ेंगे? आकाश में खुल जाएंगे, अनंत की, दूर की यात्रा पर निकल जाएगा।

मैं जानता हूं कि इन तीन दिनों में आप भी वृक्ष के किनारे पर बैठेंगे, मैं कितना ही चिल्लाऊंगा कि छलांग लगाएं, कूद जाएं, उड़ जाएं--विश्वास नहीं पड़ेगा, भरोसा नहीं होगा। जो पंख उड़े नहीं, वे कैसे मानें कि उड़ना हो सकता है? लेकिन कोई उपाय भी तो नहीं है, एक बार तो बिना जाने छलांग लेनी ही पड़ती है।

कोई पानी में तैरना सीखने जाता है। अगर वह कहे कि जब तक मैं तैरना न सीख लूं तब तक उतरूंगा नहीं, तो गलत नहीं कहता है, ठीक कहता है, उचित कहता है, एकदम कानूनी बात कहता है। क्योंकि जब तक तैरना न सीखूं तो पानी में कैसे उतरूं! लेकिन सिखानेवाला कहेगा कि जब तक उतरोगे नहीं, सीख नहीं पाओगे। और तब तट पर खड़े होकर विवाद अंतहीन चल सकता है। हल क्या है? सिखानेवाला कहेगा, उतरो! कूदो! क्योंकि बिना उतरे सीख न पाओगे।

असल में, सीखना उतर जाने से ही शुरू होता है। सब लोग तैरना जानते हैं, सीखना नहीं पड़ता है तैरना। अगर आप तैरना सीखे हैं तो आपको पता होगा, तैरना सीखना नहीं पड़ता। सारे लोग तैरना जानते हैं, ढंग से नहीं जानते हैं--गिर जाते हैं पानी में तो ढंग आ जाता है; हाथ-पैर बेढंगे फेंकते हैं, फिर ढंग से फेंकने लगते हैं। हाथ-पैर फेंकना सभी को मालूम है। एक बार पानी में उतरे तो ढंग से फेंकना आ जाता है। इसलिए जो जानते हैं, वे कहेंगे कि तैरना सीखना नहीं है, रिमेंबरिंग है--एक याद है; पुनर्स्मरण है।

इसलिए परमात्मा की जो अनुभूति है, जाननेवाले कहते हैं, वह स्मरण है। वह कोई ऐसी अनुभूति नहीं है जिसे हम आज सीख लेंगे। जिस दिन हम जानेंगे, हम कहेंगे, अरे! यही था तैरना! ये हाथ-पैर तो हम कभी भी फेंक सकते थे। लेकिन इन हाथ-पैर के फेंकने का इस नदी से, इस सागर से कभी मिलन नहीं हुआ। हिम्मत नहीं जुटाई, किनारे पर खड़े रहे। उतरना पड़े, कूदना पड़े। लेकिन कूदते ही काम शुरू हो जाता है।

वह जिस केंद्र की मैं बात कर रहा हूं वह हमारे मस्तिष्क में छिपा हुआ पड़ा है। अगर आप जाकर मस्तिष्कविदों से पूछें, तो वे कहेंगे, मस्तिष्क का बहुत थोड़ा सा हिस्सा काम कर रहा है; बड़ा हिस्सा निष्क्रिय है, इनएक्टिव है। उस बड़े हिस्से में क्या-क्या छिपा है, कहना कठिन है। बड़े से बड़ी प्रतिभा और जीनियस का भी बहुत थोड़ा सा मस्तिष्क काम करता है। इसी मस्तिष्क में वह केंद्र है जिसे हम सुपर-सेंस, अतींद्रिय-इंद्रिय कहें, जिसे हम छठवीं इंद्रिय कहें, या जिसे हम तीसरी आंख, थर्ड आई कहें। वह केंद्र छिपा है जो खुल जाए तो हम जीवन को बहुत नये अर्थों में देखेंगे--पदार्थ विलीन हो जाएगा और परमात्मा प्रकट होगा; आकार खो जाएगा और निराकार प्रकट होगा; रूप मिट जाएगा और अरूप आ जाएगा; मृत्यु नहीं हो जाएगी और अमृत के द्वार खुल जाएंगे। लेकिन वह देखने का केंद्र हमारा निष्क्रिय है। वह केंद्र कैसे सक्रिय हो?

मैंने कहा, जैसे बल्ब तक अगर विद्युत की धारा न पहुंचे, तो बल्ब निष्क्रिय पड़ा रहेगा; धारा पहुंचाएं और बल्ब जाग उठेगा। बल्ब सदा प्रतीक्षा कर रहा है कि कब धारा आए। लेकिन अकेली धारा भी प्रकट न हो

सकेगी। बहती रहे, लेकिन प्रकट न हो सकेगी; प्रकट होने के लिए बल्ब चाहिए। और प्रकट होने के लिए धारा भी चाहिए।

हमारे भीतर जीवन-धारा है, लेकिन वह प्रकट नहीं हो पाती; क्योंकि जब तक वह वहां न पहुंच जाए, उस केंद्र पर जहां से प्रकट होने की संभावना है, तब तक अप्रकट रह जाती है।

हम जीवित हैं नाम मात्र को। सांस लेने का नाम जीवन है? भोजन पचा लेने का नाम जीवन है? रात सो जाने का नाम, सुबह जग जाने का नाम जीवन है? बच्चे से जवान, जवान से बूढ़े हो जाने का नाम जीवन है? जन्मने और मर जाने का नाम जीवन है? और अपने पीछे बच्चे छोड़ जाने का नाम जीवन है?

नहीं, यह तो यंत्र भी कर सकता है। और आज नहीं कल कर लेगा; बच्चे टेस्ट-ट्यूब में पैदा हो जाएंगे। और बचपन, जवानी और बुढ़ापा बड़ी मैकेनिकल, बड़ी यांत्रिक क्रियाएं हैं। जब कोई भी यंत्र थकता है, तो जवानी भी आती है यंत्र की, बुढ़ापा भी आता है। सभी यंत्र बचपन में होते हैं, जवान होते हैं, बूढ़े होते हैं। घड़ी भी खरीदते हैं तो गारंटी होती है कि दस साल चलेगी। वह जवान भी होगी घड़ी, बूढ़ी भी होगी, मरेगी भी। सभी यंत्र जन्मते हैं, जीते हैं, मरते हैं। जिसे हम जीवन कहते हैं, वह यांत्रिकता, मैकेनिकल होने से कुछ और ज्यादा नहीं है। जीवन कुछ और है।

उपलब्धि अनिर्वचनीय है

अगर इस बल्ब को पता न चले विद्युत की धारा का तो बल्ब जैसा है उसी को जीवन समझ लेगा। हवा के धक्के उसे धक्के देंगे तो बल्ब कहेगा मैं जीवित हूं, क्योंकि धक्के मुझे लगते हैं। बल्ब उसी को जीवन समझ लेगा। और जिस दिन विद्युत की धारा पहली दफा बल्ब में आती होगी, और अगर बल्ब कह सके तो क्या कहेगा? कहेगा, अनिर्वचनीय है! नहीं कह सकता क्या हो गया! अब तक अंधेरे से भरा था, अब अचानक--अचानक सब प्रकाश हो गया है। और किरणें बही जाती हैं, सब तरफ फैली चली जाती हैं।

बीज क्या कहेगा जिस दिन वृक्ष हो जाएगा? कहेगा, पता नहीं यह क्या हुआ? कहने जैसा नहीं है! मैं तो छोटा सा बीज था, यह क्या हो गया? यह मुझसे हुआ है, यह भी कहना कठिन है।

इसलिए जिनको भी परमात्मा मिलता है, वे यह नहीं कह पाते कि हमने पा लिया है। वे तो यही कहते हैं कि हम... हम सोचते हैं कि जो हम थे, उससे, जो हमें मिल गया है कोई भी संबंध नहीं दिखाई पड़ता। कहां हम अंधकार थे, कहां प्रकाश हो गया है! कहां हम कांटे थे, कहां फूल हो गए हैं! कहां हम मृत्यु थे ठोस, कहां हम तरल जीवन हो गए हैं! नहीं-नहीं, हमें नहीं मिल गया है। वे कहेंगे, हमें नहीं मिल गया है। जो जानेंगे, वे कहेंगे, नहीं, उसकी कृपा से हो गया है--उसकी ग्रेस से, उसके प्रसाद से--प्रयास से नहीं।

लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि प्रयास नहीं है। जब उपलब्ध होता है तो ऐसा ही लगता है, उसके प्रसाद से मिला है, ग्रेस से। लेकिन उसके प्रसाद तक पहुंचने के लिए बड़े प्रयास की यात्रा है। और वह प्रयास क्या है? वह एक छोटा सा प्रयास है एक अर्थों में, बड़ा भी है दूसरे अर्थों में। इस अर्थों में छोटा है कि वे केंद्र बहुत दूर नहीं हैं। जहां शक्ति की ऊर्जा, जहां ऊर्जा संगृहीत है, वह स्थान, रिजर्वायर, और वह जगह जहां से जीवन को देखने की आंख खुलेगी, उनमें फासला बहुत नहीं है। मुश्किल से दो फीट का फासला है, तीन फीट का फासला है, इससे ज्यादा फासला नहीं है। क्योंकि हम आदमी ही पांच-छह फीट के हैं, हमारी पूरी जीवन-व्यवस्था पांच-छह फीट की है। उस पांच-छह फीट में सारा इंतजाम है।

जीवन-ऊर्जा का कुंड

जिस जगह जीवन की ऊर्जा इकट्ठी है, वह जननेंद्रिय के पास कुंड की भांति है। इसलिए उस ऊर्जा का नाम कुंडलिनी पड़ गया, जैसे कोई पानी का छोटा सा कुंड। और इसलिए भी उस ऊर्जा का नाम कुंडलिनी पड़ गया कि जैसे कोई सांप कुंडल मारकर सो गया हो। सोए हुए सांप को कभी देखा हो, कुंडल पर कुंडल मारकर फन को रखकर सोया हुआ है। लेकिन सोए हुए सांप को जरा छेड़ दो, फन ऊपर उठ जाता है, कुंडल टूट जाते हैं। इसलिए भी उसे कुंडलिनी नाम मिल गया कि हमारे ठीक सेक्स सेंटर के पास हमारे जीवन की ऊर्जा का कुंड है--बीज, सीड है, जहां से सब फैलता है।

यह उपयुक्त होगा ख्याल में ले लेना कि यौन से, काम से, सेक्स से जो थोड़ा सा सुख मिलता है, वह सुख भी यौन का सुख नहीं है, वह सुख भी यौन के साथ वह जो कुंड है हमारी जीवन-ऊर्जा का, उसमें आए हुए कंपन का सुख है। थोड़ा सा वहां सोया सांप हिल जाता है। और उसी सुख को हम सारे जीवन का सुख मान लेते हैं। जब वह पूरा सांप जागता है और उसका फन पूरे व्यक्तित्व को पार करके मस्तिष्क तक पहुंच जाता है, तब जो हमें मिलता है, उसका हमें कुछ भी पता नहीं।

हम जीवन की पहली ही सीढ़ी पर जीते हैं। बड़ी सीढ़ी है जो परमात्मा तक जाती है। वह जो हमारे भीतर तीन फीट या दो फीट का फासला है, वह फासला एक अर्थ में बहुत बड़ा है; वह प्रकृति से परमात्मा तक का फासला है; वह पदार्थ से आत्मा तक का फासला है; वह निद्रा से जागरण तक का फासला है; वह मृत्यु से अमृत तक का फासला है। वह बड़ा फासला भी है। ऐसे छोटा फासला भी है। हमारे भीतर हम यात्रा कर सकते हैं।

ऊर्जा जागरण से आत्मक्रांति

यह जो ऊर्जा हमारे भीतर सोई पड़ी है, अगर इसे जगाना हो, तो सांप को छेड़ने से कम खतरनाक काम नहीं है। बल्कि सांप को छेड़ना बहुत खतरनाक नहीं है। इसलिए खतरनाक नहीं है कि एक तो सौ में से सत्तानबे सांपों में कोई जहर नहीं होता। तो सौ में से सत्तानबे सांप तो आप मजे से छेड़ सकते हैं, उनमें कुछ होता ही नहीं। और अगर कभी उनके काटने से कोई मरता है तो सांप के काटने से नहीं मरता, सांप ने काटा है, इस ख्याल से मरता है; क्योंकि उनमें तो जहर होता नहीं। सत्तानबे प्रतिशत सांप तो किसी को मारते नहीं। हालांकि बहुत लोग मरते हैं, उनके काटने से भी मरते हैं; वे सिर्फ ख्याल से मरते हैं कि सांप ने काटा, अब मरना ही पड़ेगा। और जब ख्याल पकड़ लेता है तो घटना घट जाती है।

फिर जिन सांपों में जहर है उनको छेड़ना भी बहुत खतरनाक नहीं है, क्योंकि ज्यादा से ज्यादा वे आपके शरीर को छीन सकते हैं। लेकिन जिस कुंडलिनी शक्ति की मैं बात कर रहा हूं, उसको छेड़ना बहुत खतरनाक है; उससे ज्यादा खतरनाक कोई बात ही नहीं है; उससे बड़ा कोई डेंजर ही नहीं है। खतरा क्या है? वह भी एक तरह की मृत्यु है। जब आपके भीतर की ऊर्जा जगती है तो आप तो मर जाएंगे जो आप जगने के पहले थे और आपके भीतर एक बिल्कुल नये व्यक्ति का जन्म होगा जो आप कभी भी नहीं थे। यही भय लोगों को धार्मिक बनने से रोकता है। वही भय--जो बीज अगर डर जाए तो बीज रह जाए। अब बीज के लिए सबसे बड़ा खतरा है जमीन में गिरना, खाद पाना, पानी पाना। सबसे बड़ा खतरा है, क्योंकि बीज मरेगा। अंडे के लिए सबसे बड़ा खतरा यही है कि पक्षी बड़ा हो भीतर और उड़े, तोड़ दे अंडे को। अंडा तो मरेगा।

हम भी किसी के जन्म की पूर्व अवस्था हैं। हम भी एक अंडे की तरह हैं, जिससे किसी का जन्म हो सकता है। लेकिन हमने अंडे को ही सब कुछ मान रखा है। अब हम अंडे को सम्हाले बैठे हैं।

यह शक्ति उठेगी तो आप तो जाएंगे, आप के बचने का कोई उपाय नहीं। और अगर आप डरे, तो जैसा कबीर ने कहा है, कबीर के बड़े... दो पंक्तियों में उन्होंने बड़ी बढ़िया बात कही है। कबीर ने कहा हैः

जिन खोजा तिन पाइयां, गहरे पानी पैठ।

मैं बौरी खोजन गई, रही किनारे बैठ।।

कोई पास बैठा था, उसने कबीर से कहा, आप किनारे क्यों बैठे रहे? कबीर कहते हैं, मैं पागल खोजने गया, किनारे ही बैठ गया। किसी ने पूछा, आप बैठ क्यों गए किनारे? तो कबीर ने कहाः

जिन खोजा तिन पाइयां, गहरे पानी पैठ।

मैं बौरी डूबन डरी, रही किनारे बैठ।।

मैं डर गई डूबने से, इसलिए किनारे बैठ गई। और जिन्होंने खोजा उन्होंने तो गहरे जाकर खोजा।

डूबने की तैयारी चाहिए, मिटने की तैयारी चाहिए। एक शब्द में कहें--शब्द बहुत अच्छा नहीं--मरने की तैयारी चाहिए। और जो डर जाएगा डूबने से वह बच तो जाएगा, लेकिन अंडा ही बचेगा, पक्षी नहीं, जो आकाश में उड़ सके। जो डूबने से डरेगा वह बच तो जाएगा, लेकिन बीज ही बचेगा, वृक्ष नहीं, जिसके नीचे हजारों लोग छाया में विश्राम कर सकें। और बीज की तरह बचना कोई बचना है? बीज की तरह बचने से ज्यादा मरना और क्या होगा!

इसलिए बहुत खतरा है। खतरा यह है कि हमारा जो व्यक्तित्व कल तक था वह अब नहीं होगा; अगर ऊर्जा जगेगी तो हम पूरे बदल जाएंगे--नये केंद्र जाग्रत होंगे, नया व्यक्तित्व उठेगा, नया अनुभव होगा, नया सब हो जाएगा। नये होने की तैयारी हो तो पुराने को जरा छोड़ने की हिम्मत करना। और पुराना हमें इतने जोर से पकड़े हुए है, चारों तरफ से कसे हुए है, जंजीरों की तरह बांधे हुए है कि वह ऊर्जा नहीं उठ पाती।

परमात्मा की यात्रा पर जाना निश्चित ही असुरक्षा की यात्रा है, इनसिक्योरिटी की। लेकिन जीवन के, सौंदर्य के सभी फूल असुरक्षा में ही खिलते हैं।

बाजी पूरी लगानी होगी

तो इस यात्रा के लिए दो-चार खास बातें आपसे कह दूं, और दो-चार गैर-खास बातें भी।

पहली बात तो यह कि कल सुबह जब हम यहां मिलेंगे, और कल इस ऊर्जा को जगाने की दिशा में चलेंगे, तो मैं आपसे आशा रखूं कि आप अपने भीतर कुछ भी नहीं छोड़ रखेंगे जो आपने दांव पर न लगा दिया हो। यह कोई छोटा जुआ नहीं है। यहां जो लगाएगा पूरा, वही पा सकेगा। इंच भर भी बचाया तो चूक सकते हैं। क्योंकि ऐसा नहीं हो सकता कि बीज कहे कि थोड़ा सा मैं बच जाऊं और बाकी वृक्ष हो जाए। ऐसा नहीं हो सकता। बीज मरेगा तो पूरा मरेगा और बचेगा तो पूरा बचेगा। पार्शियल डेथ जैसी कोई चीज नहीं होती, आंशिक मृत्यु नहीं होती। तो आपने अगर अपने को थोड़ा भी बचाया तो व्यर्थ मेहनत हो जाएगी। पूरा ही छोड़ देना। कई बार, थोड़े से बचाव से सब खो जाता है।

मैंने सुना है कि कोलरेडो में जब सबसे पहली दफा सोने की खदानें मिलीं, तो सारा अमेरिका दौड़ पड़ा कोलरेडो की तरफ। खबरें आईं कि जरा सा खेत खरीद लो और सोना मिल जाए। लोगों ने जमीनें खरीद डालीं। एक करोड़पति ने अपनी सारी संपत्ति लगाकर एक पूरी पहाड़ी ही खरीद ली। बड़े यंत्र लगाए। छोटे-छोटे लोग

छोटे-छोटे खेतों में सोना खोद रहे थे, तो पहाड़ी खरीदी थी, बड़े यंत्र लाया था, बड़ी खुदाई की, बड़ी खुदाई की। लेकिन सोने का कोई पता न चला। फिर घबड़ाहट फैलनी शुरू हो गई। सारा दांव पर लगा दिया था। फिर वह बहुत घबड़ा गया। फिर उसने घर के लोगों से कहा कि यह तो हम मर गए, सारी संपत्ति दांव पर लगा दी है और सोने की कोई खबर नहीं है! फिर उसने इश्तहार निकाला कि मैं पूरी पहाड़ी बेचना चाहता हूं मय यंत्रों के, खुदाई का सारा सामान साथ है।

घर के लोगों ने कहा, कौन खरीदेगा? सबमें खबर हो गई है कि वह पहाड़ बिल्कुल खाली है, और उसमें लाखों रुपए खराब हो गए हैं; अब कौन पागल होगा?

लेकिन उस आदमी ने कहा कि कोई न कोई हो भी सकता है।

एक खरीददार मिल गया। बेचनेवाले को बेचते वक्त भी मन में हुआ कि उससे कह दें कि पागलपन मत करो; क्योंकि मैं मर गया हूं। लेकिन हिम्मत भी न जुटा पाया कहने की, क्योंकि अगर वह चूक जाए, न खरीदे, तो फिर क्या होगा? बेच दिया। बेचने के बाद कहा कि आप भी अजीब पागल मालूम होते हैं; हम बरबाद होकर बेच रहे हैं! पर उस आदमी ने कहा, जिंदगी का कोई भरोसा नहीं; जहां तक तुमने खोदा है वहां तक सोना न हो, लेकिन आगे हो सकता है। और जहां तुमने नहीं खोदा है, वहां नहीं होगा, यह तो तुम भी नहीं कह सकते। उसने कहा, यह तो मैं भी नहीं कह सकता।

और आश्चर्य--कभी-कभी ऐसे आश्चर्य घटते हैं--पहले दिन ही, सिर्फ एक फीट की गहराई पर सोने की खदान शुरू हो गई। वह आदमी जिसने पहले खरीदी थी पहाड़ी, छाती पीटकर पहले भी रोता रहा और फिर बाद में तो और भी ज्यादा छाती पीटकर रोया, क्योंकि पूरे पहाड़ पर सोना ही सोना था। वह उस आदमी से मिलने भी गया। और उसने कहा, देखो भाग्य! उस आदमी ने कहा, भाग्य नहीं, तुमने दांव पूरा न लगाया, तुम पूरा खोदने के पहले ही लौट गए। एक फीट और खोद लेते!

हमारी जिंदगी में ऐसा रोज होता है। न मालूम कितने लोग हैं जिन्हें मैं जानता हूं कि जो खोदते हैं परमात्मा को, लेकिन पूरा नहीं खोदते, अधूरा खोदते हैं; ऊपर-ऊपर खोदते हैं और लौटे जाते हैं। कई बार तो इंच भर पहले से लौट जाते हैं, बस इंच भर का फासला रह जाता है और वे वापस लौटने लगते हैं। और कई बार तो मुझे साफ दिखाई पड़ता है कि यह आदमी वापस लौट चला, यह तो अब करीब पहुंचा था, अभी बात घट जाती; यह तो वापस लौट पड़ा!

तो अपने भीतर एक बात ख्याल में ले लें कि आप कुछ भी बचा न रखें, अपना पूरा लगा दें। और परमात्मा को खरीदने चले हों तो हमारे पास लगाने को ज्यादा है भी क्या! उसमें भी कंजूसी कर जाते हैं। कंजूसी नहीं चलेगी। कम से कम परमात्मा के दरवाजे पर कंजूसों के लिए कोई जगह नहीं। वहां पूरा ही लगाना पड़ेगा।

नहीं, ऐसा नहीं है कि बहुत कुछ है हमारे पास लगाने को। यह सवाल नहीं है कि क्या है, सवाल यह है कि पूरा लगाया या नहीं! क्योंकि पूरा लगाते ही हम उस बिंदु पर पहुंच जाते हैं जहां ऊर्जा का निवास है, और जहां से ऊर्जा उठनी शुरू होती है। असल में, क्यों पूरे का जोर है? जब हम अपनी पूरी ताकत लगा देते हैं, तभी उस ताकत को उठने की जरूरत पड़ती है, जो रिजर्वायर है; तब तक उसकी जरूरत नहीं पड़ती। जब तक हमारे पास ताकत बची रहती है तब तक उससे ही काम चलता है। तो जो रिजर्व फोर्सेज हैं हमारे भीतर, उनकी जरूरत तो तब पड़ती है जब हमारे पास कोई ताकत नहीं होती। तब उनकी जरूरत पड़ती है। तो जब हम पूरी

ताकत लगा देते हैं तब वह केंद्र सक्रिय होता है। अब वहां से शक्ति लेने की जरूरत आ जाती है। अन्यथा नहीं पड़ती जरूरत।

अब मैं आपसे दौड़ने को कहूं, आप दौड़ें। कहूं पूरी ताकत से दौड़ें, आप पूरी ताकत से दौड़ें। आप समझते हैं कि पूरी ताकत से दौड़ रहे हैं, लेकिन आप पूरी ताकत से नहीं दौड़ रहे। कल आपको किसी से प्रतियोगिता करनी है, काम्पिटीशन में दौड़ रहे हैं, तब आप पाते हैं कि आपकी दौड़ बढ़ गई है। क्या हुआ? यह शक्ति कहां से आई? कल तो आप कहते थे, मैं पूरी ताकत से दौड़ रहा हूं। आज प्रतिस्पर्धा में आप ज्यादा दौड़ रहे हैं--पूरी ताकत लगा रहे हैं। लेकिन यह भी पूरी ताकत नहीं है। कल एक आदमी आपके पीछे बंदूक लेकर लग गया है। अब आप जितनी ताकत से दौड़ रहे हैं यह ताकत से आप कभी भी नहीं दौड़े थे। आपको भी पता नहीं था कि इतना मैं दौड़ सकता हूं। यह ताकत कहां से आ गई है? यह भी ताकत आपके भीतर सोई पड़ी थी।

लेकिन इतने से भी काम नहीं होगा। जब कोई आदमी बंदूक लेकर आपके पीछे पड़ता है तब भी आप जितना दौड़ते हैं, वह भी पूरा दौड़ना नहीं है। ध्यान में तो उसने भी ज्यादा दांव पर लगा देना पड़ेगा। जहां तक, जहां तक आपको हो, पूरा लगा देना है। और जिस क्षण आप उस बिंदु पर पहुंचेंगे जहां आपकी पूरी ताकत लग गई, उसी क्षण आप पाएंगे कि कोई दूसरी ताकत से आपका संबंध हो गया; कोई ताकत आपके भीतर से जगनी शुरू हो गई।

निश्चित ही उसके जागने का पूरा अनुभव होगा। जैसे कभी बिजली छुई हो तो अनुभव हुआ होगा, वैसा ही अनुभव होगा कि जैसे भीतर से, नीचे से, यौन-केंद्र से कोई शक्ति ऊपर की तरफ दौड़नी शुरू हो गई। गरम उबलती हुई आग, लेकिन शीतल भी। जैसे कांटे चुभने लगे चारों तरफ, लेकिन फूल जैसी कोमल भी। और कोई चीज ऊपर जाने लगी। और जब कोई चीज ऊपर जाती है तो बहुत कुछ होगा। उस सब में किसी भी बिंदु पर आपको रोकना नहीं है, अपने को पूरा छोड़ देना है, जो भी हो। जैसे कोई आदमी नदी में बहता है, ऐसा अपने को छोड़ दें।

नये जन्म के लिए साहस और धैर्य

तो दूसरी बात--पहला, अपने को पूरा दांव पर लगा देना है--दूसरी बात, जब दांव पर लग कर आपके भीतर कुछ होना शुरू हो जाए, तो आपको पूरी तरह अपने को छोड़ देना है--जस्ट फ्लोटिंग; अब जहां ले जाए यह धारा, हम जाने को राजी हैं। एक सीमा तक हमें पुकारना पड़ता है; और जब शक्ति जागती है तो फिर हमें अपने को छोड़ देना पड़ता है। बड़े हाथों ने हमें सम्हाल लिया, अब हमें चिंता की जरूरत नहीं है, अब हमें बह जाना पड़ेगा।

और तीसरी बातः यह जो शक्ति का उठना होगा भीतर, इसके साथ बहुत कुछ घटनाएं घट जाएंगी तो घबड़ाइएगा नहीं; क्योंकि नये अनुभव घबड़ानेवाले होते हैं। बच्चा जब मां के पेट से जन्मता है तो बहुत घबड़ा जाता है। मनोवैज्ञानिक तो कहते हैं कि वह ट्रामैटिक एक्सपीरिएंस है, उससे फिर कभी मुक्त ही नहीं हो पाता। नये की घबड़ाहट बच्चे में मां के पेट से जन्म के साथ ही शुरू हो जाती है। क्योंकि मां के पेट में वह बिल्कुल सुरक्षित दुनिया में था नौ महीने तक--न कोई चिंता, न कोई फिक्र, न श्वास लेनी, न खाना खाना, न रोना, न गाना, न दुनिया, न कुछ--एकदम विश्राम में था। मां के पेट के बाहर निकल कर एकदम नई दुनिया आती है। तो पहला धक्का जीवन का और घबड़ाहट वहीं से पकड़ जाती है।

इसलिए सारे लोग नई चीज से डरे रहते हैं; पुराने को पकड़ने का मन रहता है, नये से डरे रहते हैं। वह हमारे बचपन का पहला अनुभव है कि नये ने बड़ी मुश्किल में डाल दिया; वह अच्छा था मां का पेट। इसलिए हमने बहुत से इंतजाम ऐसे किए हैं जो असल में मां के पेट जैसे ही हैं--हमारी गद्दियां, हमारे सोफे, हमारी कारें, हमारे कमरे, वे हमने सब मां के गर्भ की शक्ल में ढाले हैं। उतने ही आरामदायक बनाने की कोशिश करते हैं, लेकिन वह बन नहीं पाता।

मां के पेट से जो पहला अनुभव होता है वह नये की घबड़ाहट का। उससे भी बड़ा नया अनुभव है यह, क्योंकि मां के पेट से सिर्फ शरीर के लिए नया अनुभव होता है, यहां तो आत्मा के तल पर नया अनुभव होगा। इसलिए वह बिल्कुल ही नया जन्म है। इसलिए उस तरह के लोगों को हम ब्राह्मण कहते थे। ब्राह्मण उसे कहते थे जिसका दूसरा जन्म हो गया--ट्वाइस बॉर्न। इसलिए उसे द्विज कहते थे--दुबारा जिसका जन्म हो गया।

तो जब वह शक्ति पूरी तरह उठेगी तो एक दूसरा ही जन्म होगा। उस जन्म में आप दोनों हैं--मां भी हैं और बेटे भी हैं; आप अकेले ही दोनों हैं। इसलिए प्रसव की पीड़ा भी होगी और नये की, असुरक्षित की अनुभूति भी होगी। इसलिए बहुत घबड़ानेवाला, डरानेवाला अनुभव हो सकता है। मां को जैसे प्रसव की पीड़ा होती है, उतनी पीड़ा भी आपको होगी, क्योंकि यहां मां और बेटे दोनों ही आप हैं। यहां कोई दूसरी मां नहीं है, और यहां कोई दूसरा बेटा नहीं है; आपका ही जन्म हो रहा है और आपसे ही हो रहा है। इसलिए प्रसव की बहुत तीव्र वेदना भी हो सकती है।

अब मुझे कितने ही लोगों ने आकर कहा कि कोई दहाड़ मारकर रोता है, चिल्लाता है, आप रोकते क्यों नहीं?

रोएगा, चिल्लाएगा। उसे रोने दें, चिल्लाने दें। उसके भीतर जो हो रहा है, वह वही जानता है। अब एक मां रो रही हो और उसको बच्चा पैदा हो रहा हो, और जिस स्त्री को कभी बच्चा पैदा न हुआ हो, वह जाकर उसको कहे, क्यों फिजूल परेशान होती हो? क्यों रोती हो? क्यों चिल्लाती हो? बच्चा हो रहा है तो होने दो, रोने की क्या जरूरत है?

ठीक है, जिसको बच्चा नहीं हुआ वह कह सकती है, बिल्कुल कह सकती है। पुरुषों को कभी पता नहीं चल सकता न कि कैसे, जन्म में क्या तकलीफ स्त्री को झेलनी पड़ती होगी! सोच भी नहीं सकते, कोई उपाय भी नहीं है कि कैसे उसको पकड़ें, कैसे उसको सोचें कि क्या होता होगा।

साधना के अनुभवों की गोपनीयता

लेकिन ध्यान में तो स्त्री और पुरुष सब बराबर हैं--सब मां बन जाते हैं एक अर्थ में; क्योंकि नया उनके भीतर जन्म होगा। तो पीड़ा को भी रोकने की जरूरत नहीं है, रोने को रोकने की जरूरत नहीं है; कोई गिर पड़े और लोटने लगे और चिल्लाने लगे, तो रोकने की जरूरत नहीं है। जो जिसको हो रहा हो उसे पूरा होने देना है; बह जाना है, उसे रोकना नहीं है।

और भीतर बहुत तरह के अनुभव हो सकते हैं--किसी को लग सकता है कि जमीन से ऊपर उठ गए हैं, किसी को लग सकता है कि बहुत बड़े हो गए हैं, किसी को लग सकता है कि बहुत छोटे हो गए हैं। नये अनुभव बहुत तरह के हो सकते हैं, मैं उन सबके नाम नहीं गिनाऊंगा। पर बहुत कुछ हो सकता है। कुछ भी नया हो--और हर एक को अलग हो सकता है--तो उसमें कोई चिंता नहीं लेगा, भयभीत नहीं होगा। और अगर किसी को कहना भी हो तो मुझे आकर दोपहर में कह देगा। आपस में उसकी बात मत करिएगा। न करने का कारण है।

कारण यही है कि जो आपको हो रहा है, जरूरी नहीं है कि दूसरे को भी हो। और जब दूसरे को नहीं हो रहा होगा तो या तो वह हंसेगा, वह कहेगा--क्या पागलपन की बात है! मुझे तो ऐसा नहीं हो रहा है। और हर आदमी के लिए खुद ही आदमी मापदंड होता है। ठीक यानी वह, और गलत यानी दूसरा। तो वह या तो आप पर हंसेगा। नहीं हंसेगा तो बहुत अविश्वासपूर्ण ढंग से कहेगा कि भई हमें तो नहीं हो रहा है।

यह अनुभूति इतनी निजी और वैयक्तिक है कि इसे दूसरे से बात न करें तो अच्छा है। पति भी पत्नी से न कहे, क्योंकि इस मामले में कोई निकट नहीं है। और इस मामले में कोई एक-दूसरे को इतनी आसानी से नहीं समझ सकता। इस संबंध में समझ बहुत मुश्किल है। इसलिए कोई भी आपको पागल कह देगा। लोग जीसस को भी पागल कहेंगे और महावीर को भी पागल कहेंगे। जिस दिन महावीर नग्न खड़े हो गए होंगे रास्तों पर, लोगों ने पागल कहा होगा। अब महावीर जानते हैं कि नग्न होने का उनके लिए क्या मतलब है। वे पागल हो जाएंगे। तो आप किसी और से न कहें तो अच्छा।

फिर जैसे ही आप किसी से कुछ कहते हैं तो इतनी समझदारी तो नहीं है कि दूसरा चुप रह जाए, कुछ न कुछ तो कहेगा ही। और वह जो कुछ भी कहेगा, वह आपकी अनुभूति में बाधक हो सकता है। उसके सजेशंस काम कर सकते हैं। वह आपको कुछ भी कह दे तो नई अनुभूति में बड़ी बाधा पड़ जाती है।

इसलिए मैं यह चौथी बात कहना चाहता हूं कि जो भी आपको हो, उसकी आपस में बात कतई नहीं करनी है। इसीलिए मैं यहां हूं कि आप मुझसे सीधे आकर बात कर लेंगे।

ध्यान में प्रवेश के पूर्व

सुबह जब हम ध्यान के लिए यहां आएंगे, तो कुछ भी लिक्विड, कुछ भी तरल लेकर आना है, ठोस कोई चीज भोजन में सुबह न ले लें। कोई नाश्ता न करें, चाय-दूध कुछ भी तरल ले लें। जो बिना चाय-दूध के आ सकते हों, और अच्छा। क्योंकि उतनी ही सरलता से, शीघ्रता से काम हो सकेगा।

साढ़े सात बजे आने का मतलब है कि पांच मिनट पहले यहां आ जाएं। तो साढ़े सात से साढ़े आठ तक तो आपकी कुछ भी बात होगी करने की तो कर लेंगे। इसलिए मैंने यह बात करने का रखा है, क्योंकि प्रवचन बहुत इम्पर्सनल है, अवैयक्तिक है। उसमें किसी से नहीं बोलना पड़ता, हवाओं से बोलना पड़ता है। तो आप पास बैठेंगे मेरे, सुबह; दूर नहीं बैठेंगे, पास ही बैठेंगे। और कुछ भी, आज जो मैंने कहा है, उस संबंध में, कुछ और पूछना हो तो पूछ लेंगे। वह घंटे भर सुबह हम बात करेंगे। फिर साढ़े आठ से साढ़े नौ ध्यान पर बैठेंगे।

तो सुबह एक तो कोई ठोस चीज लेकर न आएं। दूसरा, भूखे आ सकें बिल्कुल तो और अच्छा। लेकिन जबरदस्ती भूखे भी न आएं। किसी को न आना अच्छा लगता हो तो कुछ लेकर आए। लेकिन चाय या दूध, ऐसा कुछ लेकर आए।

वस्त्र ढीले से ढीले पहनकर आएं। स्नान करके तो आना ही है। बिना स्नान किए कोई न आए। स्नान तो करके आएं ही। और वस्त्र ढीले से ढीले पहनकर आएं, जितने ढीले वस्त्र हों, शरीर पर कहीं बंधे न हों। तो जो भी बांधनेवाले वस्त्र हों, कम पहनें। जितना ढीला वस्त्र पहन सकें उतना अच्छा। कमर पर तो कम से कम बांधने का दबाव हो। वह आप ध्यान रखकर आएं। और जब यहां बैठें तो ढीला करके बैठें।

शरीर के भीतर हमारे वस्त्रों ने भी बहुत उपद्रव किया हुआ है, बहुत तरह की बाधाएं उन्होंने खड़ी की हुई हैं। और अगर कोई ऊर्जा उठनी शुरू हो तो अनेक तलों पर रुकावट पड़नी शुरू हो जाती है।

मौन का महत्व

यहां आने के आधा घंटे पहले से ही चुप हो जाएं। कुछ मित्र जो तीनों दिन मौन रख सकें, बहुत अच्छा है; वे बिल्कुल ही चुप हो जाएं। और कोई भी चुप होता हो, मौन रखता हो, तो दूसरे लोग उसे बाधा न दें, सहयोगी बनें। जितने लोग मौन रहें, उतना अच्छा। कोई तीन दिन पूरा मौन रखे, सबसे बेहतर। उससे बेहतर कुछ भी नहीं होगा। अगर इतना न कर सकते हों तो कम से कम बोलें--इतना कम, जितना जरूरी हो--टेलीग्रैफिक। जैसे तारघर में टेलीग्राम करने जाते हैं तो देख लेते हैं कि अब दस अक्षर से ज्यादा नहीं। अब तो आठ से भी ज्यादा नहीं। तो एक दो अक्षर और काट देते हैं, आठ पर बिठा देते हैं। तो टेलीग्रैफिक! ख्याल रखें कि एक-एक शब्द की कीमत चुकानी पड़ रही है। इसलिए एक-एक शब्द बहुत महंगा है; सच में महंगा है। इसलिए कम से कम शब्द का उपयोग करें; जो बिल्कुल मौन न रह सकें वे कम से कम शब्द का उपयोग करें।

और इंद्रियों का भी कम से कम उपयोग करें। जैसे आंख का कम उपयोग करें, नीचे देखें। सागर को देखें, आकाश को देखें, लोगों को कम देखें। क्योंकि हमारे मन में सारे संबंध, एसोसिएशंस लोगों के चेहरों से होते हैं--वृक्षों, बादलों, समुद्रों से नहीं। वहां देखें, वहां से कोई विचार नहीं उठता। लोगों के चेहरे तत्काल विचार उठाना शुरू कर देते हैं। नीचे देखें, चार फीट पर नजर रखें--चलते, घूमते, फिरते। आधी आंख खुली रहे, नाक का अगला हिस्सा दिखाई पड़े, इतना देखें। और दूसरों को भी सहयोग दें कि लोग कम देखें, कम सुनें। रेडियो, ट्रांजिस्टर सब बंद करके रख दें; उनका कोई उपयोग न करें। अखबार बिल्कुल कैंपस में मत आने दें।

जितना ज्यादा से ज्यादा इंद्रियों को विश्राम दें, उतना शुभ है; उतनी शक्ति इकट्ठी होगी; और उतनी शक्ति ध्यान में लगाई जा सकेगी। अन्यथा हम एग्झास्ट हो जाते हैं। हम करीब-करीब एग्झास्ट हुए लोग हैं; जो चुक गए हैं बिल्कुल, चली हुई कारतूस जैसे हो गए हैं। कुछ बचता नहीं, चौबीस घंटे में सब खर्च कर डालते हैं। रात भर में सोकर थोड़ा-बहुत बचता है, तो सुबह उठकर ही अखबार पढ़ना, रेडियो, और शुरू हो गया उसे खर्च करना। कंजरवेशन ऑफ एनर्जी का हमें कोई ख्याल ही नहीं है कि कितनी शक्ति बचाई जा सकती है। और ध्यान में बड़ी शक्ति लगानी पड़ेगी। अगर आप बचाएंगे नहीं तो आप थक जाएंगे।

शक्ति का संचय ध्यान में सहयोगी

कुछ लोग मुझे कहते हैं कि घंटे भर ध्यान करने के बाद हम थक जाते हैं। उसके थकने का कारण ध्यान नहीं है, उसके थकने का कारण यह है कि आप एग्झास्ट प्वाइंट पर जीते हैं, सब खर्च किए रहते हैं। हमें ख्याल में नहीं है कि जब आप आंख उठाकर भी देखते हैं, तब भी शक्ति खर्च होती है; जब आप कान उठाकर सुनते हैं, तब भी शक्ति खर्च होती है; जब आप भीतर विचार करते हैं, तब भी शक्ति खर्च होती है; जब बोलते हैं, तब भी शक्ति खर्च होती है। हम जो भी कर रहे हैं उसमें शक्ति खर्च हो रही है। रात में इसीलिए थोड़ी सी बच जाती है कि बाकी काम बंद हो गए, इसलिए थोड़ी बच जाती है। सपने वगैरह में जितना खर्च करते हैं वह दूसरी बात, वैसे थोड़ी-बहुत बच जाती है। इसीलिए सुबह ताजा लगता है।

तो शक्ति को तीन दिन बचाएं, ताकि पूरी शक्ति लगाई जा सके। दोपहर के--ये सारी सूचनाएं इसलिए दे दे रहा हूं ताकि फिर तीन दिन मुझे आपको कोई सूचना न देनी पड़े--दोपहर जो घंटे भर का मौन है, उसमें कोई बात नहीं होगी। बातचीत से आपसे बात करता हूं, उस घंटे भर मौन से ही बात करूंगा--तीन से चार। तो तीन बजे सारे लोग यहां उपस्थित हो जाएं। तीन के बाद कोई न आए। क्योंकि उसका आना फिर नुकसान पहुंचाता है। यहां मैं बैठा रहूंगा। तीन से चार आप क्या करेंगे?

दो काम तीन से चार आप ख्याल में रख लें। एक तो सारे लोग ऐसी जगह बैठें जहां से मैं दिखाई पड़ता रहूं। देखना नहीं है मुझे, लेकिन दिखाई पड़ता रहूं ऐसी जगह बैठ जाएं। फिर आंख बंद कर लेनी है। खोलना चाहें, खोल रख सकते हैं; बंद करना चाहें, बंद रख सकते हैं। बंद रखें, अच्छा।

मौन संवाद का रहस्य

और एक घंटे चुपचाप किसी अनजान प्रतीक्षा में बैठना है--वेटिंग फॉर दि अननोन। कुछ पता नहीं कि कोई आनेवाला है, लेकिन कोई आनेवाला है; कुछ पता नहीं कि कुछ सुनाई पड़ेगा, लेकिन कुछ सुनाई पड़ेगा; कुछ पता नहीं कि कोई दिखाई पड़ेगा, लेकिन कोई दिखाई पड़ेगा। ऐसा चुपचाप जस्ट अवेटिंग! कोई अनजान, अपरिचित अतिथि को, जिससे कभी मिले नहीं, देखा नहीं, सुना नहीं, उसकी प्रतीक्षा में घंटे भर बैठे रहें। लेटना हो, लेट जाएं; बैठना हो, बैठे रहें। उस एक घंटे में सिर्फ रिसेप्टिविटी हो जाएं, आप एक ग्रहण करनेवाले, पैसिव व्यक्ति हैं, जो कुछ होगा, आ जाए! बस लेकिन अलर्ट होकर प्रतीक्षा करते रहें। उस घंटे भर में जो मौन से मुझे आपसे कहना है वह मैं कहने की कोशिश करूं। शब्दों से समझ में न आ सके तो शायद निःशब्द में समझ आ जाए।

रात्रि को फिर घंटे भर कुछ पूछना होगा वह बात हो जाएगी। फिर घंटे भर रात्रि हम ध्यान करेंगे। ऐसा तीन दिन में नौ बैठक। और कल सुबह से ही आपको पूरी ताकत लगा देनी है, ताकि नौवीं बैठक तक सच में पूरी ताकत लग जाए।

बाकी समय में आप क्या करेंगे?

मौन रहना है, बात नहीं करनी, तो बड़ा उपद्रव तो कट जाता है। समुद्र का तट है, उसके पास जाकर लेट जाएं, लहरों को सुनें। और रात भी अच्छा होगा कि जो लोग भी सो सकें, चुपचाप अपने बिस्तर को लेकर समुद्र-तट चले जाएं; वहां सो जाएं। सागर के पास सोएं; रेत में सो जाएं; वृक्षों में सो जाएं। अकेले रहें, मित्र और मंडलियां न बनाएं। नहीं तो यहां भी मंडलियां बन जाएंगी, दो-चार लोग इकट्ठे घूमने लगेंगे, दो-चार मित्र बन जाएंगे। अलग रहें, अकेले रहें; आप अकेले हैं तीन दिन यहां; क्योंकि परमात्मा से मिलना हो तो कोई साथ नहीं जा सकता, बिल्कुल अकेले ही, लोनली। आपको अकेले ही जाना पड़े। तो अकेले रहें--ज्यादा से ज्यादा अकेले।

स्वीकार से शांति

और ध्यान रखें, अंतिम सूचनाः किसी तरह की शिकायत न करें। तीन दिन शिकायत छोड़ दें। खाना ठीक न मिले, न मिले; रात मच्छर काट जाएं, काट जाएं। तीन दिन जो भी हो, उसकी टोटल एक्सेप्टबिलिटी। मच्छरों को तो थोड़ा-बहुत फायदा होगा, आपको बहुत हो सकता है। भोजन थोड़ा अच्छा नहीं मिलेगा तो थोड़ा-बहुत नुकसान शरीर को होगा, लेकिन आपको उसकी शिकायत से बहुत नुकसान हो सकता है। उसके कारण हैं। क्योंकि शिकायत करनेवाला मन शांत नहीं हो पाता। शिकायतें बहुत छोटी होती हैं, जो हम गवां देते हैं वह बहुत ज्यादा होता है। शिकायत ही मत करें; तीन दिन के लिए मन में साफ कर लें कि कोई शिकायत नहीं--जो है, वह है; जैसा है, वैसा है। उसे बिल्कुल स्वीकार कर लें।

ये तीन दिन अदभुत हो जाएंगे। अगर तीन दिन शिकायत के बाहर रहे आप और सब स्वीकार कर लिया जैसा है, और उसमें ही आनंदित हुए, तो आप तीन दिन के बाद कभी शिकायत न कर सकेंगे। क्योंकि आपको पता चलेगा कि बिना शिकायत के कैसी शांति, कैसा आनंद!

तीन दिन सब छोड़ दें! और फिर जो भी पूछना हो, वह आप कल सुबह से पूछेंगे। ध्यान रखेंगे पूछते समय कि सबके काम की बात हो, ऐसी कोई बात पूछेंगे। और जो भी हृदय में हो, मन में हो और जरूरी लगे, वह पूछ ले सकते हैं।

खाली झोली पसार

मैं किसलिए आया हूं, वह मैंने आपसे कहा। मुझे पता नहीं, आप किसलिए आए हैं। लेकिन कल सुबह मैं इसी आशा से आपको मिलूंगा कि जिस लिए मैं आया हूं, उस लिए आप भी आए हैं। वैसे हमारी आदतें बिगड़ गई हैं, अगर बुद्ध भी हमारे द्वार पर खड़े हों तो हमारा मन होता है कि आगे जाओ! हम सोचते हैं, सभी मांगने आते हैं। इसलिए हम भूल जाते हैं, जब कोई देने आता है तो हम उससे भी कहते हैं, आगे जाओ! और तब बड़ी भूल हो जाती है, बड़ी भूल हो जाती है। ऐसी भूल नहीं होगी, ऐसी आशा करता हूं।

तीन दिन में यहां की पूरी हवा को ऐसा करें कि कुछ हो सके। हो सकता है। और प्रत्येक व्यक्ति पर निर्भर है यहां की हवा, यहां के वातावरण को बनाना। तीन दिन में यह पूरा का पूरा सरू-वन चार्ज्ड हो सकता है--बहुत अनजानी शक्तियों से, अनजानी ऊर्जाओं से। ये सारे वृक्ष, ये सारे रेत के कण, ये हवाएं, यह सागर--यह सब का सब एक नई प्राण-ऊर्जा से भर सकता है; हम सब उसे पैदा करने में सहयोगी हो सकते हैं। कोई उसमें बाधा न बने, यह ध्यान रखे। कोई दर्शक न रहे यहां। कोई दर्शक की तरह बैठा न रहे। और किसी तरह का संकोच, भय, कोई क्या कहेगा, कोई क्या सोचेगा, सब छोड़ दें! तो ही उस तक पहुंचना हो सकता है।

कबीर की तरह आपको न कहना पड़े। आप कह सकें कि नहीं, हम डरे नहीं और कूद गए।

मेरी बातें इतनी शांति और प्रेम से सुनीं, उससे अनुगृहीत हूं। और आप सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं, मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

हमारी रात की बैठक पूरी हुई।

दूसरा प्रवचन

बुंद समानी समुंद में

मेरे प्रिय आत्मन्!

ऊर्जा का विस्तार है जगत और ऊर्जा का सघन हो जाना ही जीवन है। जो हमें पदार्थ की भांति दिखाई पड़ता है, जो पत्थर की भांति भी दिखाई पड़ता है, वह भी ऊर्जा, शक्ति है। जो हमें जीवन की भांति दिखाई पड़ता है, जो विचार की भांति अनुभव होता है, जो चेतना की भांति प्रतीत होता है, वह भी उसी ऊर्जा, उसी शक्ति का रूपांतरण है। सारा जगत--चाहे सागर की लहरें, और चाहे सरू के वृक्ष, और चाहे रेत के कण, और चाहे आकाश के तारे, और चाहे हमारे भीतर जो है वह, वह सब एक ही शक्ति का अनंत-अनंत रूपों में प्रगटन है।

ऊर्जामय विराट जीवन

हम कहां शुरू होते हैं और कहां समाप्त होते हैं, कहना मुश्किल है।

हमारा शरीर भी कहां समाप्त होता है, यह भी कहना मुश्किल है। जिस शरीर को हम अपनी सीमा मान लेते हैं, वह भी हमारे शरीर की सीमा नहीं है। दस करोड़ मील दूर सूरज है, अगर ठंडा हो जाए, तो हम यहां अभी ठंडे हो जाएंगे। इसका मतलब यह हुआ कि हमारे होने में सूरज पूरे समय मौजूद है, और हमारे शरीर का हिस्सा है; सूरज ठंडा हुआ कि हम ठंडे हुए; सूरज की गर्मी हमारे शरीर की गर्मी है।

चारों तरफ फैली हुई हवाओं का सागर है, वहां से प्राण हमें उपलब्ध होता है। वह न उपलब्ध हो, हम अभी मृत हो जाएं। तो जो श्वास हम ले रहे हैं, वह श्वास हमें भीतर से भी जोड़े है, हमें बाहर से भी जोड़े है।

कहां हमारे शरीर का अंत है?

यदि पूरी खोज करें तो पूरा जगत ही हमारा शरीर है। अनंत, असीम हमारा शरीर है। और ठीक से खोज करें तो सब जगह हमारे जीवन का केंद्र है, और सब जगह विस्तार है। लेकिन इसकी प्रतीति और इसके अनुभव के लिए हमें स्वयं भी अत्यंत जीवंत ऊर्जा, लिविंग एनर्जी बन जाना जरूरी है।

बुंद समानी समुंद में

जिसे मैं ध्यान कह रहा हूं, वह हमारे भीतर ठहर गई, अवरुद्ध हो गई धाराओं को सब भांति मुक्त कर देने का नाम है। जब आप ध्यान में प्रविष्ट होंगे, तो आपके भीतर जो ऊर्जा छिपी है, जो एनर्जी छिपी है, वह इतने जोर से जागे कि बाहर की ऊर्जा से उसका संबंध स्थापित हो जाए। और जैसे ही बाहर की शक्तियों से उसका संबंध स्थापित होता है, वैसे ही हम एक छोटे से पत्ते रह जाते हैं अनंत हवाओं में कंपते हुए; हमारा अपना होना खो जाता है; हम विराट के साथ एक हो जाते हैं।

उस विराट के साथ एक होने पर क्या जाना जाता है, अब तक मनुष्य ने कहने की बहुत कोशिश की है, लेकिन नहीं कहा जा सका। कबीर कहते हैं, मैं खोजने गया था। खोजा बहुत, खोजते-खोजते मैं खुद ही खो गया। और मिला वह जरूर, लेकिन तब मिला जब मैं खो गया। और इसलिए अब कौन बताए कि क्या मिला? कैसे बताए?

पहली बार जब कबीर को अनुभूति हुई तो उन्होंने जो कहा था, फिर पीछे उसे बदल दिया। पहली बार जब उन्हें अनुभव हुआ तो उन्होंने कहा, ऐसा लगा कि जैसे बूंद सागर में गिर गई है। उनके वचन हैंः

हेरत-हेरत हे सखी, रह्या कबीर हिराई।
बुंद समानी समुंद में, सो कत हेरी जाई।।

खोजते-खोजते कबीर खो गया, बूंद सागर में गिर गई, अब उसे कैसे वापस लौटाएं?

समुंद समाना बुंद में

लेकिन फिर बाद में उन्होंने बदल दिया। और बदलाहट बड़ी मूल्यवान है। बाद में उन्होंने कहा कि नहीं-नहीं, कुछ गलती हो गई; बूंद समुद्र में नहीं गिरी, समुद्र ही बूंद में गिर गया। और बूंद समुद्र में गिरी हो तो वापस भी लौटा ले कोई, लेकिन अगर समुद्र ही बूंद में गिरा हो तब तो बड़ी कठिनाई है। और बूंद अगर समुद्र में गिरे तो बूंद कुछ बता भी सके, लेकिन अगर बूंद में ही समुद्र गिरे तब तो बहुत कठिनाई है। तो बाद में उन्होंने कहाः

हेरत-हेरत हे सखी, रह्या कबीर हिराई।
समुंद समाना बुंद में, सो कत हेरी जाई।।

भूल हो गई थी पहली दफा कि कहा कि बूंद गिर गई सागर में।

ऊर्जा के सागर से मिलन

और जब हम ऊर्जा के स्पंदन मात्र रह जाते हैं, तब ऐसा नहीं होता कि हम सागर में गिरते हैं; जब हम कंपते हुए जीवंत स्पंदन मात्र रह जाते हैं, तो अनंत ऊर्जा का सागर हममें गिर पड़ता है। निश्चित ही, फिर कहना मुश्किल है कि क्या होता है। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि जो होता है वह हमें पता नहीं चलता। ध्यान रहे, कहने और पता चलने में सदा सामंजस्य नहीं है। जो हम जान पाते हैं, वह कह नहीं पाते। जानने की क्षमता असीम है और शब्दों की क्षमता बहुत सीमित है। बड़े अनुभव दूर, छोटे अनुभव भी हम नहीं कह पाते। अगर मेरे सिर में दर्द है, तो वह भी मैं नहीं कह पाता। और अगर मेरे हृदय में प्रेम की पीड़ा है, तो वह भी नहीं कह पाता हूं। पर ये तो बड़े छोटे अनुभव हैं। और जब परमात्मा हम पर गिर पड़ता है, तब जो होता है उसे तो कहना बिल्कुल ही कठिन है। लेकिन जान हम जरूर पाते हैं।

पर उस जानने के लिए हमें सब भांति शक्ति का एक स्पंदन मात्र रह जाना जरूरी है। जैसे एक आंधी, एक तूफान, ऐसा शक्ति का एक उबलता हुआ झरना भर हम हो जाएं। हम इतने जोर से स्पंदित हों--हमारा रोआं-रोआं, हृदय की धड़कन-धड़कन, श्वास-श्वास उसकी प्यास, उसकी प्रार्थना, उसकी प्रतीक्षा से इस भांति भर जाए कि हम प्यास ही रह जाएं, प्रतीक्षा ही रह जाएं; हमारा होना ही मिट जाए। उस क्षण में ही उससे मिलन है। और वह मिलन कहीं बाहर घटित नहीं होता। जैसा मैंने रात कहा, वह मिलन हमारे भीतर ही घटित होता है। हमारे भीतर ही सोए हुए केंद्र हैं। हमारे सोए केंद्र से ही शक्ति उठेगी और ऊपर फैल जाएगी।

एक बीज पड़ा है। फिर एक फूल खिलता है। फूल और बीज को जोड़ने के लिए वृक्ष को तना बनाना पड़ता है, शाखाएं फैलानी पड़ती हैं। फूल छिपा था बीज में ही, कहीं बाहर से नहीं आता। लेकिन प्रकट होने के लिए बीज और फूल तक के बीच में जोड़नेवाला एक तना चाहिए। वह तना भी बीज से निकलेगा, वह फूल भी बीज से निकलेगा।

हमारे भीतर भी बीज-ऊर्जा, सीड-फोर्स पड़ी हुई है। उठेगी। तने की जरूरत है। वह तना भी हमारे भीतर उपलब्ध है। जिसे हम रीढ़ की तरह जानते हैं बाहर से, ठीक उसके निकट ही वह यात्रा-पथ है जहां से बीज-ऊर्जा उठेगी और फूल तक पहुंच जाएगी। वह फूल बहुत नामों से पुकारा गया है। हजार पंखुड़ियों वाले कमल की तरह जिन्हें उसका अनुभव हुआ है, उन्होंने कहा है, हजार पंखुड़ियों वाले कमल की तरह। जैसे हजार पंखुड़ियों वाला कमल खिल जाए, ऐसा हमारे मस्तिष्क में कुछ खिलता है, कुछ फ्लावर होता है। लेकिन उसके खिलने के लिए नीचे से शक्ति का ऊपर तक पहुंच जाना जरूरी है।

शक्ति जागरण का साहसपूर्वक स्वीकार

और जब यह शक्ति ऊपर की तरफ उठना शुरू होगी, तो जैसे भूकंप आ जाएगा, जैसे अर्थक्वेक हो गया हो, ऐसा पूरा व्यक्तित्व कंप उठेगा। उस कंपन को रोकना नहीं है, उस कंपन में सहयोगी होना है, कोआपरेट करना है। साधारणतः हम रोकना चाहेंगे। अब मुझे कई लोग आकर कहते हैं कि डर लगता है कि पता नहीं क्या हो जाए!

अगर डरेंगे तो गति न हो पाएगी। भय से ज्यादा अधार्मिक और कोई वृत्ति नहीं है। भय से बड़ा और कोई पाप नहीं है। फियर जो है, शायद वह सबसे गहरा है। नीचे रखने में हमें, सबसे बड़ा पत्थर वही है। और भय बड़े अजीब हैं, और बड़े क्षुद्र हैं। कोई मुझे आकर कहता है कि ऐसा लगता है पास-पड़ोस के बैठे लोग क्या कहेंगे कि यह मुझे क्या हो रहा है!

पास-पड़ोस के लोगों का भय हमें परमात्मा से रोक ले सकता है। शिष्ट और सभ्य मनुष्य ने पूरी तरह हंसना बंद कर दिया, पूरी तरह रोना बंद कर दिया; ऐसी कोई वृत्ति, ऐसा कोई भाव नहीं जिसमें वह पूरा डूबे। वह हर चीज के बाहर खड़ा रह जाता है। त्रिशंकु की तरह लटका रह जाता है। हंसते हैं तो हम डरे हुए, रोते हैं तो हम डरे हुए। पुरुषों ने तो जैसे रोना छोड़ ही दिया। उनको ख्याल ही नहीं है कि रोना भी कुछ आयाम है, वह भी कोई दिशा है।

हमारे ख्याल में नहीं है कि जो नहीं रो सकता, उस व्यक्तित्व में कुछ बुनियादी कमी हो गई; उस व्यक्तित्व का कोई एक हिस्सा सदा के लिए कुंठित हो गया; और वह हिस्सा सदा पत्थर के बोझ की तरह उसके ऊपर अटका रहेगा।

जिन्हें ऊर्जा के जगत में प्रवेश करना है, उस सुप्रीम एनर्जी की यात्रा करनी है, उन्हें सब भय छोड़ देने पड़ेंगे। और सरल होकर, अगर शरीर कंपता हो, कंपित होता हो, गिरता हो, नाचने लगता हो...

आंतरिक रूपांतरण की ध्यान-प्रक्रियाः योगविद्या का स्रोत

यह जानकर आपको आश्चर्य होगा, लेकिन जान लेना जरूरी है कि जितने भी योगासन हैं, वे सब ध्यान की स्थितियों में आकस्मिक रूप से ही उपलब्ध हुए हैं। उन्हें किसी ने बैठकर, सोचकर निर्मित नहीं किया। उन्हें किसी ने बैठकर तैयार नहीं किया है। वह तो ध्यान की स्थिति में शरीर ने वैसी स्थितियां ले ली हैं और तब पता चला कि ये स्थितियां हैं। और तब धीरे-धीरे एसोसिएशन भी पता चला कि जब मन एक दशा में जाता है तो शरीर इस दशा में चला जाता है। तब फिर यह ख्याल में आ गया कि अगर शरीर को इस दशा में ले जाया जाए तो मन उस दशा में चला जाएगा।

जैसे हमें पता है कि अगर भीतर रोना भर जाए तो आंख से आंसू आ जाते हैं। अगर आंख से आंसू आ जाएं तो भीतर रोना भर जाएगा। ये एक ही चीज के दो छोर हो गए। जैसे हमें क्रोध आता है तो किसी के सिर के ऊपर हमारा हाथ उसे मारने को उठ जाता है। जैसे हमें क्रोध आता है तो मुट्ठियां बंध जाती हैं; जैसे हमें क्रोध आता है तो दांत भिंच जाते हैं; जैसे हमें क्रोध आता है तो आंखें लाल हो जाती हैं। और जब प्रेम आता है तब तो मुट्ठियां नहीं भिंचतीं, तब तो दांत नहीं भिंचते, तब तो आंखें लाल नहीं हो जातीं। जब प्रेम आता है तो कुछ और होता है--अगर मुट्ठियां भिंची भी हों तो खुल जाती हैं, अगर दांत भिंचे भी हों तो खुल जाते हैं, अगर आंख लाल भी हो तो शांत हो जाती है। प्रेम की अपनी व्यवस्था है। ऐसे ही ध्यान की प्रत्येक स्थिति में भी शरीर की अपनी व्यवस्था है।

इसको ऐसा समझें कि अगर शरीर की उस व्यवस्था में आपने बाधा डाली तो भीतर चित्त की व्यवस्था में बाधा पड़ जाएगी। जैसे अगर कोई आपसे कहे कि क्रोध करिए, लेकिन आंखें लाल न हों; क्रोध करिए, लेकिन मुट्ठी न भिंचे; क्रोध करिए, लेकिन दांत न भिंचें। तो आप क्रोध न कर पाएंगे; क्योंकि शरीर का यह जो आनुषांगिक हिस्सा है, इसके बिना आप कैसे क्रोध कर पाएंगे? अगर कोई कहे कि सिर्फ क्रोध करिए, और शरीर पर कोई परिणाम न हो, तो आप क्रोध न कर पाएंगे। अगर कोई कहे कि सिर्फ प्रेम करिए, लेकिन आपकी आंखों से अमृत न बरसे, और आपके हाथों में प्रेम की लहरें न दौड़ें, और आपका हृदय न धड़कने लगे, और आपकी श्वास और तरह से न चलने लगे--आप सिर्फ प्रेम करिए, शरीर पर कुछ प्रकट मत होने दीजिए; तो आप कहेंगे, बहुत मुश्किल है, यह नहीं हो सकता।

योगासनों का जन्म

तो जब ध्यान की स्थितियों में शरीर विशेष-विशेष रूप से मुड़ने लगे, घूमने लगे, तब अगर आप उसे रोकते हों, तो भीतर की स्थिति को भी आप पंगु कर देंगे। वह स्थिति फिर आगे नहीं बढ़ेगी।

जितने योगासन हैं वे सब ध्यान की स्थितियों में ही उपलब्ध हुए; मुद्राओं का बहुत विस्तार हुआ। अनेक प्रकार की... आपने बुद्ध की मूर्तियां देखी होंगी बहुत मुद्राओं में। वे मुद्राएं भी मन की किन्हीं विशेष अवस्थाओं में पैदा हुईं। फिर तो मुद्राओं का एक शास्त्र बन गया। फिर तो बाहर से देखकर कहा जा सकता है, अगर आप झूठ न कर रहे हों और ध्यान में सीधे बह जाएं, तो आपकी जो मुद्रा बनेगी उसे देखकर भी बाहर से कहा जा सकता है कि भीतर आपके क्या हो रहा है।

उसको भी रोक नहीं लेना है।

नृत्य का जन्म ध्यान में

मेरी अपनी समझ में तो नृत्य भी पहली बार ध्यान में ही जन्मा है। मेरी समझ में तो जीवन में जो भी महत्वपूर्ण है उसके कहीं मूल स्रोत ध्यान से संबंधित हैं। मीरा कहीं नाचना सीखने नहीं गई। और लोग सोचते होंगे कि मीरा ने नाच-नाचकर भगवान को पा लिया, तो गलत सोचते हैं। मीरा ने भगवान को पा लिया इसलिए नाच उठी। बात बिल्कुल दूसरी है। नाच-नाचकर कोई भगवान को नहीं पाता। लेकिन कोई भगवान को पा ले तो नाच सकता है। और जब समुद्र गिरे बूंद में, और बूंद नाचने न लगे तो क्या करे? और जब किसी भिखारी के द्वार पर अनंत खजाना टूट पड़े, और भिखारी न नाचे तो क्या करे?

ध्यान से दमित व्यक्तित्व का विसर्जन

लेकिन सभ्यता ने मनुष्य को ऐसा जकड़ा है कि वह नाच भी नहीं सकता। मेरी समझ में, दुनिया को अगर वापस धार्मिक बनाना हो तो हमें जीवन की सहजता को वापस लौटाना पड़े।

तो यह हो सकता है कि जब ध्यान की ऊर्जा जगे आपके भीतर तो सारे प्राण नाचने लगें, उस वक्त आप शरीर को मत रोक लेना। अन्यथा बात वहीं ठहर जाएगी, रुक जाएगी; और कुछ होनेवाला था, वह नहीं हो पाएगा। लेकिन हम बड़े डरे हुए लोग हैं। हम कहेंगे कि अगर मैं नाचने लगूं, मेरी पत्नी पास बैठी है, मेरा बेटा पास बैठा है, वे क्या सोचेंगे, कि पिता जी और नाचते हैं! अगर मैं नाचने लगूं तो पति पास बैठे हैं, वे क्या सोचेंगे, कि मेरी पत्नी पागल तो नहीं हो गई!

अगर ये भय रहे तो उस भीतर की यात्रा पर गति नहीं हो पाएगी।

और शरीर की मुद्राओं, आसनों के साथ-साथ और बहुत कुछ भी प्रकट होता है।

एक बड़े विचारक हैं। न मालूम कितने संन्यासी, साधुओं, आश्रमों, न मालूम कहां-कहां गए। इधर कोई छह महीने पहले मेरे पास आए। तो उन्होंने कहा, सब समझ में आता है, लेकिन मुझे कुछ होता नहीं।

फिर, मैंने उनसे कहा, आप होने न देते होंगे।

वे कुछ विचार में पड़ गए। उन्होंने कहा, यह मेरे ख्याल में नहीं आया। शायद आप ठीक कहते हैं। लेकिन, एक बार आपके ध्यान में आया था, वहां मैंने किसी को रोते देखा, तो मैं तो बहुत सम्हलकर बैठ गया कि कहीं भूल-चूक से ऐसा मुझे न हो जाए, अन्यथा लोग क्या कहेंगे!

लोगों से प्रयोजन क्या है? ये लोग कौन हैं जो सबके पीछे पड़े हुए हैं? और लोग, जब मरेंगे तो बचाने न आएंगे; और लोग, जब आप दुख में होंगे तो दुख छीनने न आएंगे; और लोग, जब आप भटकेंगे अंधेरे में तो दीया न जलाएंगे। लेकिन जब आपका दीया जलने को हो, तब अचानक लोग आपको रोक लेंगे। ये लोग कौन हैं? कौन आपको रोकने आता है? आप ही अपने भय को लोग बना लेते हैं; आप ही अपने भय को फैला लेते हैं चारों तरफ।

वे मुझसे कहने लगे, हो सकता है; मैं तो डर गया जब मैंने किसी को रोते देखा और मैं सम्हलकर बैठ गया कि कहीं कुछ ऐसा मुझसे न हो जाए। मैंने उनसे कहा, आप एक महीने एकांत में चले जाएं; और जो होता हो होने दें। उन्होंने कहा, क्या मतलब? मैंने कहा कि अगर गालियां बकने का मन होता हो तो बकें; चिल्लाने का मन होता हो तो चिल्लाएं; रोने का होता हो, रोएं; नाचने का होता हो, नाचें; दौड़ने का होता हो, दौड़ें; पागल होने का मन होता हो तो महीने भर के लिए पागल हो जाएं।

उन्होंने कहा, मैं न जा सकूंगा। मैंने कहा, क्यों? उन्होंने कहा कि आप जैसा कहते हैं, मुझे कई बार डर लगता है कि अगर मैं अपने को बिल्कुल छोड़ दूं जैसा सहज आप कहते हैं, तो ठीक है कि मुझमें पागलपन प्रकट हो जाएगा।

तो मैंने उनसे कहा, आप दबाए रहेंगे, इससे कुछ फर्क तो नहीं पड़ता। प्रकट होगा तो निकल जाएगा, दबा रहेगा तो सदा आपके साथ रह जाएगा।

हम सबने बहुत कुछ सप्रेस किया है, दबाया है। न हम रोए हैं, न हम हंसे हैं, न हम नाचे हैं, न हम खेले हैं, न हम दौड़े हैं। हमने सब दबा लिया है; हमने अपने भीतर सब तरफ से द्वार बंद कर लिए हैं। और हर द्वार पर हम पहरेदार होकर बैठ गए हैं।

अब अगर हमें परमात्मा से मिलने जाना हो तो ये दरवाजे खोलने पड़ेंगे। तो डर लगेगा, क्योंकि जो-जो हमने रोका है वह प्रकट हो सकता है। अगर आपने रोना रोका है तो रोना बहेगा; हंसना रोका है, हंसना बहेगा।

उस सबको बह जाने दें, उस सबको निकल जाने दें।

यहां तो हम आए ही इसलिए इस एकांत में हैं कि यहां लोगों का भय न हो। और सरू के वृक्ष, बिल्कुल ही उनका संकोच न करें, वे आपसे कुछ भी न कहेंगे, बल्कि वे बड़े प्रसन्न होंगे। और सागर की लहरें भी आपसे कुछ न कहेंगी। वे किसी से भयभीत नहीं हैं। जब उन्हें शोर करना होता है, वे शोर करती हैं; जब उन्हें सो जाना होता है, वे सो जाती हैं। और आपके नीचे पड़े हुए रेत के कण भी कुछ न कहेंगे। यहां कोई कुछ न कहेगा।

ऊर्जा के साथ सहयोग करो

आप अपने को पूरी तरह छोड़ दें और जो आपके भीतर होता है उसे होने दें--नाचना हो नाचें, चिल्लाना हो चिल्लाएं, दौड़ना हो दौड़ें, गिरना हो गिरें--छोड़ दें सब भांति। और जब आप सब भांति छोड़ेंगे तब आप अचानक पाएंगे कि आपके भीतर वर्तुल बनाती हुई कोई ऊर्जा उठने लगी; कोई शक्ति आपके भीतर जगने लगी; सब तरफ द्वार टूटने लगे। उस वक्त भय मत करना। उस वक्त समग्र रूप से उस आंदोलन में, उस मूवमेंट में, जो आपके भीतर पैदा होगा, वह जो शक्ति आपके भीतर वर्तुल बनाकर घूमने लगेगी, उसके साथ एक हो जाना, अपने को उसमें छोड़ देना। तो घटना घट सकती है।

घटना घटना बहुत आसान है। लेकिन हम अपने को छोड़ने को तैयार नहीं होते। और कैसी छोटी चीजें हमें रोकती हैं, जिस दिन आप कहीं पहुंचेंगे उस दिन पीछे लौटकर बहुत हंसेंगे कि कैसी चीजों ने मुझे रोका था! रोकनेवाली बड़ी चीजें होतीं तो ठीक था, रोकनेवाली बहुत छोटी चीजें हैं।

कुछ पूछना हो, कुछ बात करनी हो, तो थोड़ी देर हम बात कर लें, और फिर ध्यान के लिए बैठें। कुछ भी पूछना हो तो पूछें।

जीना ही जीवन का उद्देश्य है

प्रश्नः ओशो, आपने कल बताया था कि जीवन में उद्देश्य होना चाहिए। प्रकृति में सब कुछ निष्प्रयोजन है, निरुद्देश्य है। तो फिर हम ही क्यों उद्देश्य या प्रयोजन लेकर चलें?

निश्चित ही! वे मित्र पूछते हैं कि प्रकृति में सभी निरुद्देश्य है, तो हम ही क्यों उद्देश्य लेकर चलें?

अगर सब उद्देश्य छोड़ सको तो इससे बड़ा कोई उद्देश्य नहीं हो सकता। अगर प्रकृति जैसे हो सको तो सब हो गया। लेकिन आदमी अप्राकृतिक हो गया है, इसलिए वापस लौटने के लिए, उसे प्रकृति तक जाने के लिए भी उद्देश्य बनाना पड़ता है। यह दुर्भाग्य है। वही तो मैं कह रहा हूं कि सब छोड़ दो। लेकिन अभी तो हमने इतना पकड़ लिया है कि छोड़ना भी हमें एक उद्देश्य ही होगा। वह भी हमें छोड़ना पड़ेगा। हमने इतने जोर से पकड़ा है कि हमें छोड़ने में भी मेहनत करनी पड़ेगी। हालांकि छोड़ने में कोई मेहनत की जरूरत नहीं है। छोड़ने में क्या मेहनत करनी होगी!

यह ठीक है कि कहीं कोई उद्देश्य नहीं है। क्यों नहीं है लेकिन? नहीं होने का कारण यह नहीं है कि निरुद्देश्य है प्रकृति; नहीं होने का कारण यह है कि जो है, उसके बाहर कोई उद्देश्य नहीं है।

एक फूल खिला। वह किसी के लिए नहीं खिला है; और किसी बाजार में बिकने के लिए भी नहीं खिला है; राह से कोई गुजरे और उसकी सुगंध ले, इसलिए भी नहीं खिला है; कोई गोल्ड मेडल उसे मिले, कोई महावीर

चक्र मिले, कोई पद्मश्री मिले, इसलिए भी नहीं खिला है। फूल बस खिला है, क्योंकि खिलना आनंद है; खिलना ही खिलने का उद्देश्य है। इसलिए ऐसा भी कह सकते हैं कि फूल निरुद्देश्य खिला है। और जब कोई निरुद्देश्य खिलेगा तभी पूरा खिल सकता है, क्योंकि जहां उद्देश्य है भीतर वहां थोड़ा अटकाव हो जाएगा। अगर फूल इसलिए खिला है कि कोई निकले, उसके लिए खिला है, तो अगर वह आदमी अभी रास्ते से नहीं निकल रहा तो फूल अभी बंद रहेगा; जब वह आदमी आएगा तब खिलेगा। लेकिन जो फूल बहुत देर बंद रहेगा, हो सकता है उस आदमी के पास आ जाने पर भी खिल न पाए, क्योंकि न खिलने की आदत मजबूत हो जाएगी। नहीं, फूल इसीलिए पूरा खिल पाता है कि कोई उद्देश्य नहीं है।

ठीक ऐसा ही आदमी भी होना चाहिए। लेकिन आदमी के साथ कठिनाई यह है कि वह सहज नहीं रहा है, वह असहज हो गया है। उसे सहज तक वापस लौटना है। और यह लौटना फिर एक उद्देश्य ही होगा।

तो मैं जब उद्देश्य की बात करता हूं तो वह उसी अर्थों में जैसे पैर में कांटा लग गया हो, और दूसरे कांटे से उसे निकालना पड़े। अब कोई आकर कहे कि मुझे कांटा लगा ही नहीं है तो मैं क्यों कांटे को निकालूं? उससे मैं कहूंगा, निकालने का सवाल ही नहीं है, तुम पूछने ही क्यों आए हो? कांटा नहीं लगा है, तब बात ही नहीं है। लेकिन कांटा लगा है, तो फिर दूसरे कांटे से निकालना पड़ेगा।

वह मित्र यह भी कह सकता है कि एक कांटा तो वैसे ही मुझे परेशान कर रहा है, अब आप दूसरा कांटा और पैर में डालने को कहते हो!

पहला कांटा परेशान कर रहा है, लेकिन एक कांटे को दूसरे कांटे से ही निकालना पड़ेगा। हां, एक बात ध्यान रखनी जरूरी है कि दूसरे कांटे को घाव में वापस मत रख लेना--कि इस कांटे ने बड़ी कृपा की, एक कांटे को निकाला; तो अब इस कांटे को हम अपने पैर में रख लें। तब नुकसान हो जाएगा। जब कांटा निकल जाए तो दोनों कांटे फेंक देना।

जब हमारा जो हमने अप्राकृतिक जीवन बना लिया है, जब वह सहज हो जाए, तो अप्राकृतिक को भी फेंक देना और सहज को भी फेंक देना; क्योंकि जब सहज पूरा होना हो, तो सहज होने का ख्याल भी बाधा देता है। फिर तो जो होगा, होगा।

नहीं, मैं नहीं कहता हूं कि उद्देश्य चाहिए। इसलिए कहना पड़ता है उद्देश्य कि आपने उद्देश्य पकड़ रखे हैं, कांटे लगा रखे हैं, अब उन कांटों को कांटों से ही निकालना पड़ेगा।

जड़ और चेतन

प्रश्नः मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार, ये पृथक-पृथक वस्तुएं हैं, एन्टाइटीज हैं, या एक चीज है? और आत्मा इनसे भिन्न है या इनके समूह को ही आत्मा कहा जाता है? और इनमें से जड़ कौन सी चीज है और चेतन कौन सी चीज है? और उनका विशिष्ट स्थान कौन सा है शरीर में?

मित्र पूछते हैं कि मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार, ये अलग-अलग हैं, अलग-अलग एन्टाइटीज हैं, अलग-अलग वस्तुएं हैं या एक ही हैं? और वे यह भी पूछते हैं कि ये आत्मा से अलग हैं या आत्मा के साथ ही एक हैं? और वे यह भी पूछते हैं कि ये जड़ हैं या चेतन हैं, या क्या जड़ है और क्या चेतन है? और उनका विशिष्ट स्थान कौन सा है शरीर में?

पहली बात तो यह, इस जगत में जड़ और चेतन जैसी दो वस्तुएं नहीं हैं। जिसे हम जड़ कहते हैं, वह सोया हुआ चेतन है; और जिसे हम चेतन कहते हैं, वह जागा हुआ जड़ है। असल में जड़ और चेतन जैसे दो पृथक अस्तित्व नहीं हैं, अस्तित्व तो एक का ही है। उस एक का नाम ही परमात्मा है, ब्रह्म है--कोई और नाम दें--और वह एक ही, जब सोया हुआ है तब जड़ मालूम होता है, और जब जागा हुआ है तब चेतन मालूम होता है।

इसलिए जड़ और चेतन के ऐसे दो भेद करके न चलें; कामचलाऊ शब्द हैं, लेकिन ऐसी कोई दो चीजें नहीं हैं। विज्ञान भी इस नतीजे पर पहुंच गया है कि जड़ जैसी कोई चीज नहीं है, मैटर जैसी कोई चीज नहीं है।

पदार्थ और परमात्मा

यह बड़े मजे की बात है कि आज से पचास-साठ साल पहले नीत्शे ने यह घोषणा की कि ईश्वर मर गया है। और पचास साल बाद विज्ञान को यह घोषणा करनी पड़ी कि ईश्वर मरा हो या न मरा हो, लेकिन मैटर जरूर मर गया है, पदार्थ अब नहीं है। क्योंकि जैसे-जैसे पदार्थ के भीतर विज्ञान उतरा तो पाया कि पदार्थ के गहरे उतरो, गहरे उतरो--पदार्थ खो जाता है और सिर्फ एनर्जी, ऊर्जा रह जाती है।

अणु के विस्फोट पर जो बचता है--परमाणु, वह सिर्फ ऊर्जा-कण है। परमाणु के विस्फोट पर जो इलेक्ट्रांस, पाजिट्रांस और न्यूट्रांस बचते हैं, वे केवल विद्युत-कण हैं। उन्हें कण कहना भी ठीक नहीं, क्योंकि कण से पदार्थ का बोध होता है। इसलिए अंग्रेजी में एक नया शब्द ही खोजना पड़ा है--क्वांटा। क्वांटा का मतलब ही कुछ और होता है। क्वांटा का मतलब होता है जो दोनों है--कण भी और लहर भी--एक साथ। समझना ही मुश्किल पड़ जाता है कि कोई चीज कण और लहर एक साथ कैसे होगी? वह दोनों एक साथ है। ये दोनों उसके बिहेवियर हैं। वह कभी कण की तरह दिखाई पड़ती है और कभी लहर की तरह। अब लहर यानी ऊर्जा और कण यानी पदार्थ। और वह दोनों एक ही है।

विज्ञान गहरे गया तो उसने पाया कि सिर्फ ऊर्जा है, एनर्जी है। और अध्यात्म गहरे गया तो उसने पाया कि सिर्फ आत्मा है। और आत्मा एनर्जी है, आत्मा ऊर्जा है। इसलिए बहुत शीघ्र, बहुत जल्दी वह सिंथीसिस, वह समन्वय उपलब्ध हो जाएगा जहां विज्ञान और धर्म के बीच फासला तोड़ देना पड़ेगा। जब पदार्थ और परमात्मा के बीच का फासला झूठा सिद्ध हुआ, तो कितने दिन लगेंगे कि विज्ञान और धर्म के बीच के फासले को हम बचा सकें? अगर जड़ और चेतन दो नहीं हैं, तो धर्म और विज्ञान भी दो नहीं रह सकते। वे उसी भेद पर दो थे।

अस्तित्व अद्वैत है

मेरी दृष्टि में, दो का अस्तित्व नहीं है, एक ही है। तब फिर यह सवाल नहीं उठता कि कौन जड़ है, कौन चेतन है। अगर आपको जड़ की भाषा पसंद है तो आप कहिए, सब जड़ है; अगर आपको चेतन की भाषा पसंद है तो कहिए, सब चेतन है। लेकिन मुझे चेतन की भाषा पसंद है। और क्यों पसंद है? क्योंकि भाषा सदा ऊपर की चुननी चाहिए, जिसमें संभावना ज्यादा हो; नीचे की नहीं चुननी चाहिए, उसमें संभावना कम हो जाती है।

जैसे कि हम यह कह सकते हैं कि वृक्ष हैं ही नहीं, बस बीज हैं। गलत नहीं है यह बात, क्योंकि वृक्ष सिर्फ बीज का ही रूपांतरण है। हम कह सकते हैंः बीज ही हैं, वृक्ष नहीं हैं। लेकिन खतरा है इसमें। इसमें खतरा यह है कि कुछ बीज कहें, जब बीज ही हैं तो हम वृक्ष क्यों बनें? वे बीज ही रह जाएं। नहीं, ज्यादा अच्छा होगा कि हम कहेंः वृक्ष ही हैं, बीज नहीं हैं। तब बीज को वृक्ष बनने की संभावना खुल जाती है।

चेतन की भाषा मुझे पसंद है, वह इसलिए कि जो अभी सोया हुआ है वह जाग सके, वह संभावना का द्वार खोलती है। पदार्थवादी और अध्यात्मवादी में एक समानता है कि वे एक को ही स्वीकार करते हैं। असमानता एक है कि पदार्थवादी बहुत प्राथमिक चीज को मान लेता है, और इसलिए अंतिम से रुक सकता है। अध्यात्मवादी अंतिम को स्वीकार करता है, इसलिए पहला तो उसमें आ ही जाता है, वह कहीं जाता नहीं। मुझे अध्यात्म की भाषा प्रीतिकर है, और इसलिए कहता हूं कि सब चेतन है--सोया हुआ चेतन जड़ है; जागा हुआ चेतन चेतन है। समस्त चेतना है।

मन के विविध रूपः बुद्धि, चित्त, अहंकार

दूसरी बात उन्होंने पूछी है कि मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार--ये क्या अलग-अलग हैं?

ये अलग-अलग नहीं हैं, ये मन के ही बहुत चेहरे हैं। जैसे कोई हमसे पूछे कि बाप अलग है, बेटा अलग है, पति अलग है? तो हम कहें कि नहीं, वह आदमी तो एक ही है। लेकिन किसी के सामने वह बाप है, और किसी के सामने वह बेटा है, और किसी के सामने वह पति है; और किसी के सामने मित्र है और किसी के सामने शत्रु है; और किसी के सामने सुंदर है और किसी के सामने असुंदर है; और किसी के सामने मालिक है और किसी के सामने नौकर है। वह आदमी एक है। और अगर हम उस घर में न गए हों, और हमें कभी कोई आकर खबर दे कि आज मालिक मिल गया था, और कभी कोई आकर खबर दे कि आज नौकर मिल गया था, और कभी कोई आकर कहे कि आज पिता से मुलाकात हुई थी, और कभी कोई आकर कहे कि आज पति घर में बैठा हुआ था, तो हम शायद सोचें कि बहुत लोग इस घर में रहते हैं--कोई मालिक, कोई पिता, कोई पति।

हमारा मन बहुत तरह से व्यवहार करता है। हमारा मन जब अकड़ जाता है और कहता हैः मैं ही सब कुछ हूं और कोई कुछ नहीं, तब वह अहंकार की तरह प्रतीत होता है। वह मन का एक ढंग है; वह मन के व्यवहार का एक रूप है। तब वह अहंकार, जब वह कहता है--मैं ही सब कुछ! जब मन घोषणा करता है कि मेरे सामने और कोई कुछ भी नहीं, तब मन अहंकार है। और जब मन विचार करता है, सोचता है, तब वह बुद्धि है। और जब मन न सोचता, न विचार करता, सिर्फ तरंगों में बहा चला जाता है, अन-डायरेक्टेड... । जब मन डायरेक्शन लेकर सोचता है--एक वैज्ञानिक बैठा है प्रयोगशाला में और सोच रहा है कि अणु का विस्फोट कैसे हो--डायरेक्टेड थिंकिंग, तब मन बुद्धि है। और जब मन निरुद्देश्य, निर्लक्ष्य, सिर्फ बहा जाता है--कभी सपना देखता है, कभी धन देखता है, कभी राष्ट्रपति हो जाता है--तब वह चित्त है; तब वह सिर्फ तरंगें मात्र है। और तरंगें असंगत, असंबद्ध, तब वह चित्त है। और जब वह सुनिश्चित एक मार्ग पर बहता है, तब वह बुद्धि है।

ये मन के ढंग हैं बहुत, लेकिन मन ही है।

मन और आत्माः चेतना के दो रूप

और वे पूछते हैं कि ये मन, बुद्धि, अहंकार, चित्त और आत्मा अलग हैं या एक हैं?

सागर में तूफान आ जाए, तो तूफान और सागर एक होते हैं या अलग? विक्षुब्ध जब हो जाता है सागर तो हम कहते हैं, तूफान है। आत्मा जब विक्षुब्ध हो जाती है तो हम कहते हैं, मन है; और मन जब शांत हो जाता है तो हम कहते हैं, आत्मा है।

मन जो है वह आत्मा की विक्षुब्ध अवस्था है; और आत्मा जो है वह मन की शांत अवस्था है। ऐसा समझेंः चेतना जब हमारे भीतर विक्षुब्ध है, विक्षिप्त है, तूफान से घिरी है, तब हम इसे मन कहते हैं। इसलिए

जब तक आपको मन का पता चलता है तब तक आत्मा का पता न चलेगा। और इसलिए ध्यान में मन खो जाता है। खो जाता है इसका मतलब? इसका मतलब, वे जो लहरें उठ रही थीं आत्मा पर, सो जाती हैं, वापस शांति हो जाती है। तब आपको पता चलता है कि मैं आत्मा हूं। जब तक विक्षुब्ध हैं तब तक पता चलता है कि मन है। विक्षुब्ध मन बहुत रूपों में प्रकट होता है--कभी अहंकार की तरह, कभी बुद्धि की तरह, कभी चित्त की तरह--वे विक्षुब्ध मन के अनेक चेहरे हैं।

आत्मा और मन अलग नहीं, आत्मा और शरीर भी अलग नहीं; क्योंकि तत्व तो एक है, और उस एक के सारे के सारे रूपांतरण हैं। और उस एक को जान लें तो फिर कोई झगड़ा नहीं है--शरीर से भी नहीं, मन से भी नहीं। उस एक को एक बार पहचान लें तो फिर वही है--फिर रावण में भी वही है, फिर राम में भी वही है। फिर ऐसा नहीं है कि राम को नमस्कार कर आएंगे और रावण को जला आएंगे; ऐसा नहीं। फिर नमस्कार दोनों को ही कर आएंगे, या दोनों को ही जला आएंगे; क्योंकि दोनों में वही है।

एक है तत्व, अनंत हैं अभिव्यक्तियां; एक है सत्य, अनेक हैं रूप; एक है अस्तित्व, बहुत हैं उसके चेहरे, मुद्राएं।

सत्य विचारणा नहीं, अनुभूति है

लेकिन, इसे फिलासफी की तरह समझेंगे तो नहीं समझ में आ सकेगा; इसे अनुभव की तरह समझेंगे तो समझ में आ सकता है। तो यह तो मैंने समझाने के ख्याल से कहा, लेकिन जब आप ही उतरेंगे उस एक में तभी आप जानेंगे कि अरे! जिसे जाना था शरीर की तरह, वह भी तू ही है! और जिसे जाना था मन की तरह, वह भी तू ही है! और जिसे जाना था आत्मा की तरह, वह भी तू ही है! जब जानते हैं तब सिर्फ एक ही रह जाता है। इतना ज्यादा एक रह जाता है कि जाननेवाला, और जो जानता है, और जो जाना जाता है, इनमें भी कोई फासला नहीं रह जाता। वहां जाननेवाला और जाना जानेवाला, दोनों एक ही रह जाते हैं।

उपनिषद का एक ऋषि पूछता हैः कौन है वहां जानता? कौन है वहां जो जाना जाता? किसने वहां देखा? कौन है जो वहां देखा गया? कौन था जिसने अनुभव किया? कौन था जिसका अनुभव हुआ? नहीं, वहां इतना भी दो नहीं रह जाता। वहां अनुभव करनेवाला भी नहीं बचता है। सब फासले गिर जाते हैं।

लेकिन विचार तो फासले बनाए बिना नहीं चल सकता। विचार तो फासले बनाएगा; वह कहेगा--यह शरीर है, यह मन है, यह आत्मा है, यह परमात्मा है। विचार फासले बनाएगा। क्यों? क्योंकि विचार समग्र को एक साथ नहीं ले सकता, विचार बहुत छोटी खिड़की है; उससे हम टुकड़े-टुकड़े को ही देख पाते हैं। जैसे एक बड़ा मकान हो और उसमें एक छोटा छेद हो। और उस छोटे छेद से मैं देखूं। तो कभी कुर्सी दिखाई पड़े, कभी टेबल दिखाई पड़े, कभी मालिक दिखाई पड़े, कभी फोटो दिखाई पड़े, कभी घड़ी दिखाई पड़े। छोटे छेद से सब टुकड़े-टुकड़े दिखाई पड़ें, पूरा कमरा कभी दिखाई न पड़े; क्योंकि वह छेद बहुत छोटा है। और फिर दीवाल गिराकर मैं भीतर पहुंच जाऊं, तो पूरा कमरा एक साथ दिखाई पड़े।

विचार बहुत छोटा छेद है जिससे हम सत्य को खोजते हैं। उसमें सत्य खंड-खंड होकर दिखाई पड़ता है। लेकिन जब विचार को छोड़कर हम निर्विचार में पहुंचते हैं, ध्यान में, तब समग्र, दि टोटल दिखाई पड़ता है। और जिस दिन वह पूरा दिखाई पड़ता है, उस दिन बड़ी हैरानी होती है कि अरे! एक ही था, अनंत होकर दिखाई पड़ता था! पर वह अनुभव से ही।

हां, कहिए!

प्रश्नः थोड़ा पर्सनल सवाल है।

कहिए-कहिए!

प्रश्नः आपको ध्यान में प्रवेश करने में कितने साल लगे?

ध्यान समयातीत है

ये मित्र पूछते हैं कि मुझे ध्यान में प्रवेश करने में कितने साल लगे?

ध्यान में प्रवेश तो एक क्षण में हो जाता है। हां, दरवाजे के बाहर कितने ही जन्म घूम सकते हैं। दरवाजे में प्रवेश तो एक ही क्षण में हो जाता है। क्षण भी ठीक नहीं, क्योंकि क्षण भी काफी बड़ा है, क्षण के भी हजारवें हिस्से में हो जाता है। वह भी ठीक नहीं है, क्योंकि क्षण का हजारवां हिस्सा भी टाइम का ही हिस्सा है। असल में, ध्यान तो प्रवेश होता है टाइमलेसनेस में, समय रहता ही नहीं और प्रवेश हो जाता है।

इसलिए अगर कोई कहे कि ध्यान में प्रवेश में मुझे घंटा भर लगा, तो वह गलत कहता है; कहे कि साल भर लगा, तो वह गलत कहता है; क्योंकि जब ध्यान में प्रवेश होता है तो वहां समय नहीं होता। समय होता ही नहीं। हां, ध्यान का जो मंदिर है, उसके बाहर आप जन्मों तक चक्कर काटते रहें। लेकिन वह प्रवेश नहीं है।

तो चक्कर तो मैंने भी बहुत जन्म काटे, लेकिन वह प्रवेश नहीं है। लेकिन जब प्रवेश हुआ, तो वह प्रवेश बिना समय के ही हो गया, बिना किसी समय के हो गया। इसलिए यह सवाल बड़ा कठिन पूछ लिया आपने। अगर उस सब का हिसाब हम रखें जो मंदिर के बाहर घूमने में वक्त बिताया, तो वह अंतहीन हिसाब है; वह अनंत जन्मों का हिसाब है। उसको भी बताना मुश्किल है, क्योंकि बहुत लंबा है। उसकी भी कोई गणना नहीं की जा सकती। और अगर प्रवेश को ही ध्यान में रखें सिर्फ, तो उसे समय की भाषा में नहीं कहा जा सकता, क्योंकि वह दो क्षणों के बीच में घट जाती है घटना। एक क्षण गया, दूसरा अभी आया नहीं, और बीच में वह घटना घट जाती है। आपकी घड़ी में एक बजा, और फिर एक बजकर एक मिनट बजा, और बीच में जो गैप छूट गया, उस गैप में होती है वह घटना। वह सदा गैप में, इंटरवल में, दो मोमेंट के बीच में जो खाली जगह है, वहां होती है। और इसलिए उसको नहीं बताया जा सकता कि कितना समय लगा।

समय बिल्कुल नहीं लगता, समय लग ही नहीं सकता, क्योंकि समय के द्वारा इटरनल में प्रवेश नहीं हो सकता। जो समय से बाहर है, उसमें समय के द्वारा जाना नहीं हो सकता।

तो आपकी बात मैं समझ गया हूं। मंदिर के बाहर जितना घूमना हो, घूम सकते हैं। वह चक्कर लगाना है। जैसे एक आदमी चक्कर लगा रहा है। एक हमने गोल घेरा खींच दिया है, एक सर्किल बना दिया है, और सर्किल के बीच में एक सेंटर है, और एक आदमी सर्किल पर चक्कर लगा रहा है। वह लगाता रहे, सर्किल पर अनंत जन्मों तक चक्कर लगाता रहे, तो भी सेंटर पर पहुंचने वाला नहीं है। वह सोचे कि और जोर से दौड़ूं, तो जोर से दौड़े; वह सोचे कि हवाई जहाज ले आऊं, तो हवाई जहाज ले आए; उसे जो भी करना हो वह करे, जितनी ताकत लगानी हो लगाए, अगर वह सर्किल पर ही दौड़ता है तो दौड़ता रहे, दौड़ता रहे, दौड़ता रहे, वह सेंटर पर नहीं पहुंच सकता। और सर्किल पर वह कहीं भी हो, सेंटर से दूरी बराबर होगी।

इसलिए वह कितना दौड़ा, बेमानी है; कहीं भी खड़ा हो जाए, उसकी सेंटर से दूरी उतनी ही है जितनी दौड़ने के पहले थी। वह अनंत जन्म दौड़ता रहे। और अगर सेंटर पर पहुंचना है तो सर्किल पर दौड़ना छोड़ना पड़े उसे; सर्किल ही छोड़ना पड़े; सर्किल को छोड़कर छलांग लगानी पड़े।

अगर फिर वह आदमी सेंटर पर पहुंच जाए, तो आप उससे पूछें कि सर्किल पर कितनी यात्रा करके तुम सेंटर पर पहुंचे? तो वह आदमी क्या कहे? वह आदमी कहे कि सर्किल पर तो बहुत यात्रा की, लेकिन उससे पहुंचे नहीं; वह तो सर्किल पर बहुत चले, लेकिन उससे पहुंचे ही नहीं। तो आप उससे पूछें, कितने मील चलकर पहुंचे? वह कहे कि नहीं, कितने ही मील चले, उससे पहुंचे नहीं; चले तो बहुत, लेकिन उससे पहुंचना न हुआ। और जब पहुंचे तब सर्किल से छलांग लगाकर पहुंचे। और वहां मील का सवाल नहीं है। ठीक ऐसी बात है। समय में नहीं घटना घटती है। और समय तो, हमने समय बहुत गंवाया है। समय तो हम सबने बहुत गंवाया है। जिस दिन आपको भी घटेगी उस दिन आप भी न बता सकेंगे कि कितनी देर में यह हुआ। नहीं, देरी का सवाल ही नहीं।

जीसस से किसी ने पूछा है कि तुम्हारे उस स्वर्ग में कितनी देर हम रुक सकेंगे? तो जीसस ने कहा, तुम बड़ा कठिन सवाल पूछते हो। देयर शैल बी टाइम नो लांगर। तुम पूछते हो, तुम्हारे उस स्वर्ग में कितनी देर हम रुक सकेंगे? बड़ी मुश्किल का सवाल पूछते हो, क्योंकि वहां तो समय न होगा। इसलिए देरी का हिसाब कैसे लगेगा?

समय मन की प्रतीति है

यह समझने जैसा है कि समय जो है वह हमारे दुख से जुड़ा है। आनंद में समय नहीं होता। आप जितने दुख में हैं, समय उतना बड़ा होता है। रात घर में कोई खाट पर पड़ा है मरने के लिए, तो रात बहुत लंबी हो जाती है। घड़ी में तो उतनी ही होगी, कैलेंडर में उतनी ही होगी, लेकिन वह जो खाट के पास बैठा है, जिसका प्रियजन मर रहा है, उसके लिए रात इतनी लंबी, इतनी लंबी हो जाती है कि लगता है कि चुकेगी कि नहीं चुकेगी? यह रात खत्म होगी कि नहीं होगी? सूरज उगेगा कि नहीं उगेगा? यह रात कितनी लंबी होती चली जाती है! और घड़ी उतना ही कहती है। और तब देखनेवाले को लगेगा कि घड़ी आज धीरे चलती है या रुक गई है! कैलेंडर की पंखुड़ी उखड़ने के करीब आ गई है, सुबह होने लगी है, लेकिन ऐसा लगता है कि लंबा, लंबा... ।

बर्ट्रेंड रसेल ने कहीं लिखा है कि मैंने अपनी जिंदगी में जितने पाप किए, अगर सख्त से सख्त न्यायाधीश के सामने भी मुझे मौजूद कर दिया जाए, तो मैंने जो पाप किए वे, और जो मैं करना चाहता था और नहीं कर पाया, वे भी अगर जोड़ लिए जाएं, तो भी मुझे चार-पांच साल से ज्यादा की सजा नहीं हो सकती। लेकिन जीसस कहते हैं कि नरक में अनंत काल तक सजा भोगनी पड़ेगी। तो यह न्याययुक्त नहीं है। क्योंकि, मैंने जो पाप किए, जो नहीं किए वे भी जोड़ लें, क्योंकि मैंने सोचे, तो भी सख्त से सख्त अदालत मुझे चार-पांच साल की सजा दे सकती है, और यह जीसस की अदालत कहती है कि अनंत काल तक, इटरनिटी तक नरक में सड़ना पड़ेगा। यह जरा ज्यादती मालूम पड़ती है।

रसेल तो मर गए, अन्यथा उनसे कहना चाहता था कि आप समझे नहीं, जीसस का मतलब ख्याल में नहीं आया आपके। जीसस यह कह रहे हैं कि नरक में अगर एक क्षण भी रहना पड़ा तो वह इटरनिटी मालूम पड़ेगा; दुख इतना ज्यादा है वहां कि उसका अंत ही नहीं मालूम पड़ेगा कि वह कभी समाप्त होगा, कभी समाप्त होगा।

दुख समय को लंबाता है, सुख समय को छोटा करता है। इसलिए तो हम कहते हैंः सुख क्षणिक है। जरूरी नहीं है कि सुख क्षणिक है, सुख की प्रतीति क्षणिक होती है--कि वह आया और गया; क्योंकि टाइम छोटा हो जाता है। सुख क्षणिक है, ऐसा नहीं है, कि मोमेंटरी है। सुख की भी लंबाइयां हैं। लेकिन सुख सदा क्षणिक मालूम पड़ता है, क्योंकि सुख में समय छोटा हो जाता है। प्रियजन मिला नहीं कि विदाई का वक्त आ गया; आए नहीं कि गए; इधर फूल खिला नहीं कि कुम्हलाया। वह सुख की प्रतीति क्षणिक है, क्योंकि सुख में समय छोटा हो जाता है। घड़ी फिर भी वैसे ही चलती है, कैलेंडर वही खबर देता है, लेकिन इधर हमारे मन में सुख समय को छोटा कर देता है।

आनंद में समय मिट ही जाता है, छोटा-मोटा नहीं होता। आनंद में समय होता ही नहीं। जब आप आनंद में होंगे तब आपके पास समय नहीं होगा। असल में, समय और दुख एक ही चीज के दो नाम हैं। टाइम जो है वह दुख का ही नाम है; समय जो है वह दुख का ही नाम है। मानसिक अर्थों में समय ही दुख है। और इसीलिए हम कहते हैं--आनंद समयातीत, कालातीत, बियांड टाइम, समय के बाहर है। तो जो समय के बाहर है, उसे समय के द्वारा नहीं पाया जा सकता।

मुक्ति अकाल है

चक्कर तो मैंने भी लगाए हैं--उतने ही, जितने आपने। और मजा यह है कि इतना लंबा है हमारा चक्कर कि उसमें किसने कम लगाए, ज्यादा लगाए, बहुत मुश्किल है। महावीर पच्चीस सौ साल पहले पा गए उसे, बुद्ध पा गए, जीसस दो हजार साल पहले पा गए, शंकर हजार साल पहले उसे पा गए। लेकिन अगर कोई कहे कि शंकर ने हमसे हजार साल कम चक्कर लगाए, तो गलत कह रहा है, क्योंकि चक्कर इतने अनंत हैं... जैसे कि उदाहरण के लिए कि आप बंबई थे, बंबई से आप नारगोल आए, तो सौ मील की आपने यात्रा की। लेकिन जो तारा अंतहीन दूरी पर हमसे है, उस तारे के ख्याल से आपने कोई यात्रा ही नहीं की, आप वहीं के वहीं हैं। कोई फर्क नहीं पड़ता कि आप बंबई से सौ मील इधर आ गए। उस तारे को ख्याल में रखें तो आपने कोई यात्रा ही नहीं की। उस तारे से आपकी दूरी अब भी वही है, जो आपकी बंबई में थी। तो आप पृथ्वी पर कहीं भी चले जाएं, उस तारे से आपकी दूरी वही है; क्योंकि वह तारा इतनी दूरी पर है कि आपके ये फासले कोई अंतर नहीं लाते।

हमारे जन्मों की यात्रा इतनी लंबी है कि कौन पच्चीस सौ साल पहले, कौन पांच सौ साल पहले, कोई पांच दिन पहले, कोई पांच घंटे पहले, कोई फर्क नहीं पड़ता। जिस दिन हम उस केंद्र पर पहुंचते हैं, हम देखते हैं, अरे! अभी बुद्ध आ ही रहे हैं, अभी महावीर घुस ही रहे हैं, अभी जीसस का प्रवेश ही हुआ है, और हम भी पहुंच गए! मगर वह जरा समझना कठिन है, क्योंकि हम जिस दुनिया में जीते हैं, वहां समय बहुत महत्वपूर्ण है। वहां समय बहुत महत्वपूर्ण है। और इसलिए स्वभावतः हमारे मन में सवाल उठता हैः कितनी देर?

बाहर चक्कर लगाना बंद करें

लेकिन मत उठाएं इस सवाल को; देरी की बात ही मत करें; चक्कर लगाना बंद करें; चक्कर में देरी लग जाएगी; मंदिर के बाहर मत घूमें, भीतर चले जाएं। लेकिन डर लगता है मंदिर के भीतर जाने में--पता नहीं, क्या हो! मंदिर के बाहर सब परिचित है--मित्र हैं, प्रियजन हैं, पत्नी है, बेटा है, घर है, द्वार है, दुकान है--मंदिर के बाहर सब अपना है। और मंदिर में एक शर्त है कि वहां अकेले ही भीतर प्रवेश होता है; वहां दो आदमी दरवाजे से एकदम जा नहीं सकते। तो इस सब--मकान को, पत्नी को, बच्चे को, धन को, तिजोड़ी को, यश को,

पद-प्रतिष्ठा को--इस सबको लेकर घुस नहीं सकते भीतर, यह सब बाहर छोड़ना पड़ता है। इसलिए हम कहते हैं कि ठीक है, अभी थोड़ा बाहर और चक्कर लगा लें। फिर हम बाहर चक्कर लगाते रहें, हम उस क्षण की प्रतीक्षा में हैं कि जब दरवाजा जरा ज्यादा खुला हो, तब हम सब के सब एकदम से भीतर हो जाएंगे।

वह दरवाजा ज्यादा कभी नहीं खुलता, वहां से एक ही प्रवेश करता है। आप भी अपने पद को लेकर भी प्रविष्ट नहीं हो सकते, क्योंकि दो हो जाएंगे--आप और आपका पद। अपने नाम को लेकर भी प्रवेश नहीं कर सकते, क्योंकि दो हो जाएंगे--आप और आपका नाम। वहां कुछ भी लेकर... वहां तो बिल्कुल टोटली नैकेड, एकदम नग्न और अकेले वहां प्रवेश करना पड़ता है। इसलिए हम बाहर घूमते रहते हैं; हम मंदिर के बाहर ही डेरा डाल देते हैं। हम कहते हैं कि भगवान के पास ही तो हैं, कोई ज्यादा दूर तो नहीं। लेकिन मंदिर के बाहर आप गज भर की दूरी पर हैं, कि हजार गज की दूरी पर हैं, कि हजार मील की दूरी पर हैं, कोई फर्क नहीं पड़ता; मंदिर के बाहर हैं तो बस बाहर हैं। और भीतर जाना हो, तो एक क्षण के हजारवें हिस्से में मैं कह रहा हूं, ठीक नहीं है वह कहना, बिना क्षण के भी भीतर प्रवेश हो सकता है।

ज्ञान की उपलब्धि निर्विचार में

प्रश्नः ज्ञान क्या निर्विचार अवस्था में ही रहता है? विचार की अवस्था में ज्ञान रहता है कि नहीं रहता है?

इसको अंतिम प्रश्न मान लें, फिर कोई और प्रश्न हों तो रात कर लेंगे। आप पूछते हैं कि जो ज्ञान है वह निर्विचार अवस्था में ही रहता है और विचार में नहीं रहता क्या?

ज्ञान की उपलब्धि निर्विचार में होती है। और उपलब्धि हो जाए तो वह हर अवस्था में रहता है। फिर तो विचार की अवस्था में भी रहता है। फिर तो उसे खोने का कोई उपाय नहीं है। लेकिन उपलब्धि निर्विचार में होती है। अभिव्यक्ति विचार से भी हो सकती है, लेकिन उपलब्धि निर्विचार में होती है। उसे पाना हो तो निर्विचार होना पड़े। क्यों निर्विचार होना पड़े? क्योंकि विचार की तरंगें मन को दर्पण नहीं बनने देतीं।

जैसे समझें, एक चित्र उतारना हो कैमरे से। तो उतारने में तो एक विशेष अवस्था का ध्यान रखना पड़े कि कैमरे में प्रकाश न चला जाए, कैमरा न हिल जाए। लेकिन एक दफा चित्र उतर गया, तो फिर खूब हिलाइए, और खूब प्रकाश में रखिए। उससे कोई फिर फर्क नहीं पड़ता। लेकिन उतारने के क्षण में तो कैमरा हिल जाए तो सब खराब हो जाए। एक दफा उतर जाए तो बात खतम हो गई। फिर खूब हिलाइए और नाचिए लेकर, तो कोई फर्क नहीं पड़ता।

ज्ञान की उपलब्धि चित्त की उस अवस्था में होती है जब कुछ भी नहीं हिलता, सब शांत और मौन है। तब तो ज्ञान का चित्र पकड़ता है। लेकिन पकड़ जाए एक दफे, तो फिर खूब नाचिए, खूब हिलिए, कुछ भी करिए, फिर कोई फर्क नहीं पड़ता। ज्ञान की उपलब्धि निर्विचार में है। और विचार फिर कोई बाधा नहीं डालता। लेकिन अगर सोचते हों कि विचार से उपलब्धि कर लेंगे, तो कभी न होगी, विचार बहुत बाधा डालेगा। उपलब्धि में बहुत बाधा डालेगा, उपलब्धि के बाद विचार बिल्कुल नपुंसक है। फिर उसकी कोई ताकत नहीं है। फिर वह कुछ भी नहीं कर सकता।

यह बहुत मजे की बात है कि शांति की जरूरत प्राथमिक है, ज्ञान को पाने में। ज्ञान पा लेने के बाद किसी चीज की कोई जरूरत नहीं है। लेकिन वे बाद की बातें हैं। और बाद की बातें पहले कभी नहीं करनी चाहिए, नहीं तो नुकसान होता है।

नुकसान यह होता है कि हम सोचने लगते हैं कि जब बाद में कोई फर्क नहीं पड़ेगा तो अभी भी क्या हर्ज है!

तब नुकसान हो जाएगा। फिर हम कैमरा हिला देंगे, सब गड़बड़ हो जाएगा। चित्र तो हिला हुआ कैमरा भी उतारता है, लेकिन वह सत्य चित्र नहीं होता; वह ट्रू नहीं होता। वह भी उतारता है; विचार में भी ज्ञान का ही पता चलता है, लेकिन वह ठीक नहीं होता, क्योंकि हिलता रहता है मन पूरे समय, कंपता रहता है। इसलिए कुछ का कुछ बन जाता है।

जैसे चांद निकला हो और सागर में लहरें हों, तो चांद का प्रतिबिंब तो बनेगा ही, लेकिन सागर में हजार चांद के टुकड़े टूटकर फैल जाएंगे। और अगर किसी ने आकाश का चांद न देखा हो तो सागर में देखकर पता न लगा पाएगा कि चांद कैसा है। हजार टुकड़े होकर चांद लहरों पर फैल जाएगा; चांदी बिखर जाएगी उसकी, लेकिन चांद का बिंब नहीं पकड़ में आएगा। एक दफा बिंब पकड़ में आ जाए कि चांद कैसा है, फिर तो सागर में बिखरी हुई लहरों में भी हम पहचान लेते हैं कि तुम ही हो। लेकिन एक बार हम उसे देख तो लें। एक बार उसकी शक्ल हमारे ख्याल में आ जाए, फिर तो सभी शक्लों में वह मिल जाता है। लेकिन एक दफा पहचान ही न हो पाए, तो वह कहीं भी हमें नहीं मिलता है। मिलता है रोज, लेकिन हम रिकग्नाइज नहीं कर पाते, हम पहचान नहीं पाते कि यही है।

एक छोटी सी घटना से मैं कहूं, फिर हम ध्यान के लिए बैठें।

साईं बाबा के पास एक हिंदू संन्यासी बहुत दिन तक था। हिंदू संन्यासी, और साईं तो रहते थे मस्जिद में। साईं बाबा का कुछ पक्का नहीं कि वे हिंदू थे कि मुसलमान। ऐसे आदमियों का कभी कुछ पक्का नहीं। लोग पूछते तो वे हंसते थे। अब हंसने से तो कुछ पता चलता नहीं! एक ही बात पता चलती है कि पूछनेवाला नासमझ है। हिंदू संन्यासी था, लेकिन वह तो मस्जिद में कैसे रुके साईं के पास! तो वह गांव के बाहर एक मंदिर में रुकता था। लगाव उसका था, प्रेम उसका था, रोज खाना बनाकर लाता था। साईं को खाना देता, फिर जाकर खाना खाता। साईं बाबा ने उससे कहा कि तू इतनी दूर क्यों आता है? हम तो कई बार वहीं से निकलते हैं, तब तू वहीं खिला दिया कर! उसने कहा, आप वहां से निकलते हैं? कभी देखा नहीं! तो साईं ने कहा कि जरा गौर से देखना; हम कई बार तेरे मंदिर के पास से निकलते हैं, वहीं खिला देना। कल हम आ जाएंगे, तू मत आना।

कल उस हिंदू संन्यासी ने बनाकर खाना रखा, अब देखता है, देखता है, देखता है। वे आते नहीं, आते नहीं, आते नहीं! वह घबड़ा गया, दो बज गए, तो उसने कहा कि बड़ी मुश्किल हो गई, वे भी भूखे होंगे और मैं भी भूखा बैठा हूं। फिर वह थाली लेकर भागा। साईं के पास पहुंचा, साईं से उसने कहा कि हम राह देखते रहे, आज आप आए नहीं। उन्होंने कहा कि आज भी आया था, रोज आता हूं, लेकिन तूने तो दुत्कार दिया। उसने कहा, कहां दुत्कारा? सिर्फ एक कुत्ता आया था। तो साईं ने कहा कि वही मैं था। तब तो वह हिंदू संन्यासी बहुत रोया, बहुत दुखी हुआ। उसने कहा कि आप आए और मैं पहचान न पाया! कल जरूर पहचान जाऊंगा।

अगर कुत्ते की ही शक्ल में कल भी आते तो पहचान जाता। कल भी वे आए, लेकिन एक कोढ़ी था रास्ते पर मिला। उस संन्यासी ने कहा कि जरा दूर से! दूर से! मैं भोजन लिए हुए हूं साईं का, जरा दूर से निकलो! वह कोढ़ी हंसा भी। फिर दो बज गए, फिर भागा हुआ मस्जिद आया, उसने कहा कि आप आज आए नहीं, आज मैंने

बहुत रास्ता देखा। तो साईं ने कहा कि मैं तो फिर भी आया था। लेकिन तेरे चित्त में इतनी तरंगें हैं कि रोज मैं वही तो दिखाई नहीं पड़ सकता! तू ही कंप जाता है। आज वह एक कोढ़ी आया था, तो तूने कहा, दूर हट। तो मैंने कहा, हद हो गई! मैं आता हूं तो तू भगा देता है और यहां आकर कहता है कि आप आए नहीं। तो वह संन्यासी रोने लगा, उसने कहा कि मैं आपको पहचान ही नहीं पाया। तो साईं ने उससे कहा था कि तू अभी मुझे ही नहीं पहचान पाया, इसलिए दूसरी शक्लों में मुझे कैसे पहचान पाएगा?

एक बार हम सत्य की झलक पा लें, तो फिर असत्य है ही नहीं। एक बार हम परमात्मा को झांक लें, तो परमात्मा के अतिरिक्त फिर कुछ है ही नहीं। लेकिन वह झांकना तब हो पाए जब हमारे भीतर सब शांत और मौन हो। फिर इसके बाद तो कोई सवाल नहीं, फिर तो विचार भी उसके हैं, वृत्तियां भी उसकी हैं, वासनाएं भी उसकी हैं--फिर तो सब उसका है। लेकिन प्राथमिक चरण में उसे झांकने और पहचानने के लिए सब का रुक जाना जरूरी है।

प्रयोगः कुंडलिनी जागरण और ध्यान का

अब हम ध्यान के लिए बैठें।

फासले पर चले जाएं, दूर बैठ जाएं, ताकि लेटना पड़े तो लेट भी सकें। और कोई बात नहीं करेगा। चुपचाप हट जाएं। जिसे जहां हटना हो, हट जाएं। ... बातचीत नहीं। बातचीत बिल्कुल नहीं करेंगे। ... कोई किसी को छूता हुआ न बैठे, दूर हट जाएं। और इधर तो इतनी जगह है, इसलिए कंजूसी न करें जगह की। नाहक बीच में कोई आपके ऊपर गिर जाए, कुछ हो, तो सब खराब होगा। हट जाएं दूर-दूर... शीघ्रता से बैठ जाएं या लेट जाएं, जिसे जैसा करना हो वैसा कर ले। आंख बंद कर लें और जैसा मैं कहूं वैसा करें।

पहला चरणः तीव्र व गहरी श्वास की चोट

आंख बंद कर लें, गहरी श्वास लेना शुरू करें। जितनी गहरी ले सकें लें और जितनी गहरी छोड़ सकें छोड़ें। सारी शक्ति श्वास के लेने और छोड़ने में लगा देनी है। गहरी श्वास लें और गहरी श्वास छोड़ें। सिर्फ श्वास ही रह जाए। सारी शक्ति लगा देनी है। जितनी गहरी श्वास लेंगे-छोड़ेंगे, उतनी ही भीतर ऊर्जा के जगने की संभावना बढ़ेगी। गहरी श्वास लें और गहरी श्वास छोड़ें... गहरी श्वास लें और गहरी श्वास छोड़ें। गहरी श्वास लें और गहरी श्वास छोड़ें। दस मिनट पूरी शक्ति से गहरी श्वास लें और गहरी श्वास छोड़ें।

बस आप श्वास लेनेवाले एक यंत्र ही रह जाएं, इससे ज्यादा कुछ भी नहीं। सिर्फ श्वास ले रहे हैं, छोड़ रहे हैं, दस मिनट तक। फिर मैं दूसरा सूत्र कहूंगा, पहले दस मिनट पूरा श्रम श्वास के साथ करें।

गहरी श्वास लें और गहरी श्वास छोड़ें... पूरी शक्ति लगाएं। सिर्फ श्वास लेने के एक यंत्र मात्र रह जाएं--एक धौंकनी, जो श्वास ले रही, छोड़ रही। ... एक-एक रोआं कंपने लगे... पूरी गहरी श्वास लें, गहरी श्वास छोड़ें... गहरी श्वास लें, गहरी श्वास छोड़ें... गहरी श्वास लें, गहरी श्वास छोड़ें। बस श्वास लेने का एक यंत्र मात्र रह जाएं... सारी शक्ति, सारा ध्यान श्वास लेने में ही लगा दें... गहरी श्वास लें, गहरी श्वास छोड़ें। और भीतर देखते रहें... श्वास भीतर गई, श्वास बाहर गई... श्वास भीतर गई, श्वास बाहर गई। साक्षी रह जाएं, देखते रहें--श्वास भीतर जा रही, श्वास बाहर जा रही... सारा ध्यान श्वास पर रखें और सारी शक्ति लगा दें।

अब मैं दस मिनट के लिए चुप हो जाता हूं। आप गहरी श्वास लें, गहरी श्वास छोड़ें और भीतर ध्यानपूर्वक देखते रहें--श्वास आई, श्वास गई। दूसरे की जरा भी फिकर न करें, अपनी फिकर करें... पूरी शक्ति लगा दें और

दूसरे पर कोई ध्यान न दें, दूसरे से कोई संबंध नहीं है। गहरी श्वास लें, गहरी श्वास छोड़ें... और भीतर देखते रहें--श्वास भीतर गई, श्वास बाहर गई। श्वास स्पष्ट दिखाई पड़ने लगेगी--यह श्वास भीतर गई, यह श्वास बाहर गई... पूरी शक्ति लगाएं, ताकि जिसे मैं शक्ति का कुंड कह रहा हूं, वहां से ऊर्जा उठनी शुरू हो जाए... यह पूरा वातावरण श्वास लेता हुआ मालूम पड़ने लगे... गहरी श्वास लें, गहरी श्वास छोड़ें... और गहरी, और गहरी, और गहरी। सारा व्यक्तित्व कंप जाए, तूफान की तरह गहरी श्वास लें, छोड़ें। गहरी श्वास लें और गहरी छोड़ें। गहरी श्वास लें और छोड़ें। गहरी श्वास... गहरी श्वास...

(साधकों को अनेक प्रकार की शारीरिक प्रक्रियाएं होने लगीं और उनके मुंह से अनेक तरह की आवाजें भी निकलने लगीं... कुछ लोग ऊंऽऽऽ ऊंऽऽऽ ऊंऽऽऽ करने लगे।)

गहरी श्वास लें, गहरी श्वास छोड़ें। और भीतर देखते रहें--श्वास आई, श्वास गई... श्वास आई, श्वास गई... पूरी शक्ति लगाएं... पूरी शक्ति लगाएं... यह एक ही बात पर सारी शक्ति लगा दें, गहरी श्वास लें, गहरी श्वास छोड़ें। और भीतर देखते रहें--श्वास आई, श्वास गई... श्वास आ रही, श्वास जा रही। अपने को जरा भी न बचाएं, पूरी शक्ति लगाएं...

श्वास के गहरे कंपन भीतर किसी शक्ति को जगाने में शुरुआत करेंगे। गहरी श्वास लें, गहरी श्वास छोड़ें... भीतर कोई सोई हुई ज्योति गहरी श्वास से जगेगी... गहरी श्वास लें, गहरी श्वास छोड़ें... गहरी श्वास लें, गहरी श्वास छोड़ें... एक यंत्र मात्र... श्वास भीतर जा रही है, श्वास बाहर जा रही है... पूरी शक्ति लगा दें... पूरी शक्ति लगा दें... पूरी शक्ति लगा दें... दूसरे सूत्र पर जाने के पहले पूरी शक्ति लगाएं... गहरी से गहरी श्वास लें और छोड़ें... सारा शरीर कंप जाए, सारी जड़ें कंप जाएं, सारा व्यक्तित्व कंप जाए... एक आंधी की तरह हालत पैदा कर दें... श्वास ही रह जाए। पूरी शक्ति लगा दें... दूसरे सूत्र पर प्रवेश के पहले पूरी शक्ति लगाएं... आपकी चरम स्थिति में ही दूसरे सूत्र पर प्रवेश होगा।

(चारों ओर साधकों को अनेक तरह की यौगिक प्रक्रियाएं हो रही हैं... तीव्रता के साथ उन्हें बहुत से योगासन, प्राणायाम, अनेक तरह की मुद्राएं और बंध आप ही आप हो रहे हैं... कई लोगों के मुंह से विचित्र तरह की आवाजें निकल रही हैं... आवाजें ऊंऽऽऽ ऊंऽऽऽऽऽऽ... आदि। ओशो का प्रोत्साहित करना जारी रहता है...)

गहरी ताकत लगाएं... गहरी श्वास, गहरी श्वास, गहरी श्वास... अपने को बचाएं मत, पूरा लगा दें... जरा भी न बचाएं। भीतर सोई हुई शक्ति को जगाना है... पूरी शक्ति लगा दें... गहरी श्वास लें, गहरी श्वास छोड़ें... गहरी श्वास लें, गहरी श्वास छोड़ें...

छोड़ दें... पूरी ताकत लगाएं, अपने को रोकें नहीं। भीतर सोई हुई विद्युत के जागने के लिए जरूरी है गहरी श्वास लें, गहरी श्वास छोड़ें... शरीर का रोआं-रोआं जीवंत हो जाए... शरीर का रोआं-रोआं कंपने लगे... पूरी ताकत लगाएं--गहरी श्वास... गहरी श्वास... गहरी श्वास... गहरी श्वास... गहरी श्वास... सारी ताकत लगा दें... पूरी ताकत लगाएं। दो मिनट पूरी ताकत लगाएं तो हम दूसरे सूत्र में प्रवेश करें...

यह पूरा वातावरण चार्ज्ड हो जाए... गहरी श्वास लें और छोड़ें। यह सारा वातावरण विद्युत की लहरों से भर जाएगा... गहरी श्वास लें और छोड़ें... गहरी श्वास लें और छोड़ें... गहरी लें, गहरी छोड़ें... पूरी शक्ति लगाएं... गहरी श्वास... और गहरी श्वास... और गहरी श्वास... और गहरी श्वास... और गहरी श्वास... और

गहरी श्वास... और गहरी श्वास... और गहरी... और गहरी... और गहरी... और गहरी... और गहरी... और गहरी... और गहरी... और गहरी... और गहरी... और गहरी... और गहरी... और गहरी... और गहरी...

(अनेक तरह की आवाजें आ रही हैं, लोग रो और चीख रहे हैं...)

गहरी से गहरी श्वास लें... गहरी से गहरी श्वास लें... गहरी श्वास... गहरी श्वास... गहरी श्वास... गहरी श्वास... अब दूसरा सूत्र जोड़ना है। एक मिनट गहरी श्वास लें--पूरी गहरी श्वास... पूरी गहरी श्वास... पूरी गहरी श्वास... और गहरी... और गहरी... और गहरी... किसी दूसरे पर ध्यान न दें, अपने भीतर सारी ताकत लगाएं--और गहरी... और गहरी... और गहरी... और गहरी... और दूसरा सूत्र जोड़ दें।

दूसरा चरणः तीव्र श्वास के साथ शारीरिक क्रियाएं

दूसरा सूत्र है, शरीर को पूरी तरह छोड़ देना है--गहरी श्वास लें और शरीर को छोड़ दें... रोना आए, आने दें... आंसू निकलें, बहने दें... हाथ-पैर कंपने लगें, कंपने दें... शरीर डोलने लगे, घूमने लगे, घूमने दें... शरीर खड़ा हो जाए, नाचने लगे, नाचने दें। पूरी गहरी श्वास लें और शरीर को छोड़ दें... शरीर को जो होता हो, होने दें--गहरी श्वास... गहरी श्वास... गहरी श्वास... अब दस मिनट तक गहरी श्वास जारी रहेगी और शरीर को बिल्कुल ढीला छोड़ दें--जो मुद्राएं बनती हों, बनें; जो आसन बनते हों, बनें--शरीर लोटता हो लोटे, नाचता हो नाचे... शरीर को छोड़ दें, सिर्फ द्रष्टा रह जाएं... शरीर को जरा भी रोकें नहीं--गहरी श्वास... गहरी श्वास... गहरी श्वास... और शरीर को बिल्कुल छोड़ दें... जो भी होता हो, होने दें--शरीर को जरा भी रोकें नहीं।

अब दस मिनट तक गहरी श्वास जारी रहेगी और शरीर को बिल्कुल ढीला छोड़ दें--शरीर को जो होता है, होने दें... कोई संकोच न लें... गहरी श्वास... गहरी श्वास... गहरी श्वास... आंसू आएं, आने दें... रोना निकले, निकले... जो भी होता हो, होने दें।

(चारों ओर साधकों का नाचना, कूदना, चिल्लाना और अनेक तरह की आवाजें निकालना। एक व्यक्ति के मुंह से लंबे सायरन की सी आवाज निकलने लगी... ओशो का सुझाव देना जारी रहा...)

शरीर को बिल्कुल छोड़ दें। शरीर अपने आप डोलने लगेगा, चक्कर खाने लगेगा। शक्ति भीतर उठेगी तो शरीर कंपेगा, कंपित होगा, डोलेगा। भीतर से शक्ति उठेगी तो शरीर आंदोलित होगा, उसे छोड़ दें... शरीर को बिल्कुल छोड़ दें... गहरी श्वास जारी रखें और शरीर को छोड़ दें। शरीर को जो होता हो, होने दें... उसे जरा भी नहीं रोकें... गहरी श्वास... और गहरी श्वास... और गहरी श्वास... और गहरी श्वास...

(लोगों का चीखना, चिल्लाना, मुंह से अनेक तरह की आवाजें निकालना तथा शरीर में विविध गतियों का होना...)

गहरी श्वास... गहरी श्वास... गहरी श्वास... और शरीर को छोड़ दें। ध्यान रहे, शरीर पर कहीं कोई रुकावट न रहे। जो शरीर को होना है, होने दें। उससे शक्ति के ऊपर पहुंचने में मार्ग बनेगा। छोड़ दें... शरीर को ढीला छोड़ दें, गहरी श्वास जारी रखें, उसे ढीला न करें... श्वास गहरी चले, शरीर को शिथिल छोड़ दें... शरीर को जो होता है, होने दें... बैठता हो बैठे, गिरता हो गिरे, खड़ा होता हो, हो जाए--जो होता है, होने दें... गहरी श्वास जारी रखें...

(अनेक आवाजों के साथ लोगों का तेजी से उछलना, कूदना...)

गहरी... और गहरी... और गहरी... और गहरी... और गहरी... और गहरी... और गहरी... और गहरी... और गहरी...

(कुछ लोगों का तीव्र आवाज में हुंकारना... अनेक शारीरिक प्रतिक्रियाएं चलती रहीं...)

कुछ बचाएं न, सब दांव पर लगा दें... पूरी शक्ति दांव पर लगा दें। देखें, बचा रहे हैं। बहुत कुछ बचा लेते हैं। पूरा दांव पर लगा दें। गहरी श्वास, गहरी श्वास... शरीर को छोड़ें--जो होता है, होने दें... छोड़ें... हंसना आ जाए, आ जाने दें... रोना आए, आने दें... आवाज निकले, निकल जाने दें... उसकी कोई चिंता न लें, जरा न रोकें--बस आप गहरी श्वास लें और छोड़ दें...

(लोगों का चीखना, चिल्लाना, नाचना, कूदना, हुंकार और चीत्कार करना...)

छोड़ें... शक्ति उठ रही है... छोड़ें शरीर को... गहरी श्वास लें... गहरी श्वास लें... गहरी श्वास लें और शरीर को छोड़ दें। शरीर में कुछ जागेगा तो शरीर कंपित होगा, घूमेगा, नाच सकता है, रो सकता है, चिल्ला सकता है--छोड़ दें... शरीर को छोड़ दें... शरीर को बिल्कुल छोड़ दें... जरा संकोच न लें... शरीर को बिल्कुल छोड़ दें...

(अनेक साधकों के मुंह से पशुओं की आवाजें निकलना... रोना, चिल्लाना, नाचना... मुंह से कुत्ते की आवाज... सिंह की गर्जना... हाथ-पैर पीटना... छटपटाना...)

गहरी श्वास... और गहरी... अपनी शक्ति श्वास पर लगाएं और छोड़ दें--शरीर को जो होता है, होने दें... जरा भी संकोच नहीं... जरा भी न रोकें... दूसरे की फिकर न करें... शरीर को छोड़ें। शक्ति जगेगी तो बहुत कुछ होगा--रोना आ सकता है, शरीर कंपेगा, अंग हिलेंगे, मुद्राएं बनेंगी, शरीर खड़ा हो सकता है... छोड़ दें--जो होता है, होने दें... आप अकेले हैं और कोई नहीं... छोड़ें... गहरी श्वास... गहरी श्वास... गहरी श्वास... एक दो मिनट पूरी मेहनत करें... तीसरे सूत्र पर जाने के पहले पूरी मेहनत लें--गहरी श्वास लें... गहरी श्वास लें... गहरी श्वास लें... गहरी श्वास लें... गहरी श्वास लें... गहरी श्वास लें... गहरी श्वास लें... और शरीर को छोड़ दें--जो होता है, होने दें... शरीर को छोड़ दें... जो होता है, होने दें... जरा भी नहीं रोकेंगे। देखें कुछ मित्र रोक लेते हैं, रोकें मत, छोड़ें... पूरी शक्ति लगाएं और छोड़ें... छोड़ें... रोना है, पूरे मन से रोएं, रोकें नहीं। आवाज निकलती है, दबाएं नहीं... निकल जाने दें। शरीर खड़ा होता है, सम्हालें न, हो जाने दें। नाचता है, नाचने दें। शरीर को पूरी तरह छोड़ दें, तभी सोई हुई शक्ति अपना मार्ग बना सकती है। छोड़ें... गहरी श्वास लें... गहरी श्वास... गहरी श्वास... गहरी श्वास... गहरी श्वास... गहरी श्वास... और गहरी... और गहरी... और गहरी... और गहरी... और गहरी...

(कुछ लोगों का तीव्र हुंकार करना... अनेक लोगों का रोना... चीखना... नाचना... आदि...)

पूरी शक्ति लगाएं... पूरी शक्ति लगाएं... पूरी शक्ति लगाएं... श्वास गहरी... और गहरी... और गहरी... कंप जाने दें पूरे व्यक्तित्व को, हिल जाने दें... जो होता है, होने दें... छोड़ दें। गहरी शक्ति लगाएं, गहरी शक्ति लगाएं... और गहरी श्वास लें... और गहरी श्वास लें। पूरे शरीर में विद्युत दौड़ने लगेगी... पूरे शरीर में विद्युत दौड़ने लगेगी... छोड़ें... आखिरी एक मिनट, जोर से ताकत लगाएं, तीसरे सूत्र में जाने के लिए--गहरी श्वास...

गहरी श्वास... गहरी श्वास... गहरी श्वास... और गहरी... और गहरी... और गहरी... पूरी ताकत लगाएं, तीसरे चरण में गति हो सके... और गहरी श्वास लें... पूरी शक्ति लगा दें... और गहरी श्वास लें... और गहरी श्वास लें, और गहरा... और गहरा... और गहरा...

तीसरा चरणः पूछें--मैं कौन हूं?

और अब तीसरा सूत्र जोड़ दें! श्वास गहरी जारी रहेगी, शरीर की गति जारी रहेगी... और तीसरा सूत्र--भीतर पूरी शक्ति से पूछने लगें... मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? ... भीतर पूछें... श्वास-श्वास में एक ही प्रश्न भर जाए--मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? ... श्वास तेजी से जारी रहे और भीतर पूछें--मैं कौन हूं? शरीर की कंपन और गति जारी रहे और भीतर पूछें--मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? ... दो "मैं कौन हूं?" के बीच में जगह न रहे। पूरी शक्ति लगाएं... मैं कौन हूं? ... मैं कौन हूं? ... एक दस मिनट सारी शक्ति लगा दें--मैं कौन हूं? ... मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? पूरी ताकत लगाएं। प्राण भीतर एक ही गूंज से भर जाएं--मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? ताकत से पूछें। भीतर सारे प्राणों में एक गूंज उठने लगे--मैं कौन हूं? गहरी श्वास जारी रहे, शरीर को जो होना है होने दें। और पूछें, मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? एक दस मिनट पूरी शक्ति लगा लें, फिर दस मिनट के बाद हम विश्राम करेंगे। लगाएं पूरी शक्ति... मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं?

(अनेक आवाजों के साथ साधकों की तीव्र प्रतिक्रियाएं...)

पूरी शक्ति लगाएं। जरा भी रोकें नहीं। जोर से भीतर पूछें--मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? एक आंधी उठा दें भीतर... मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं... श्वास गहरी रहे, सवाल गहरा रहे--मैं कौन हूं? शरीर को जो होना है, होने दें... मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? यह पूरा वातावरण पूछने लगे, ये रेत के कण-कण पूछने लगें, यह आकाश, ये वृक्ष, ये सब पूछने लगें--मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? ... पूरा वातावरण मैं कौन हूं से भर जाए... मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? ...

(चारों ओर से रोने की आवाजें... तीव्र शारीरिक हलचल... अनेक तरह की आवाजें...)

पूरी शक्ति लगाएं, फिर विश्राम करना है... और जितनी शक्ति लगाएंगे, उतने ही विश्राम में प्रवेश होगा। जितनी ऊंचाई पर आंधी उठेगी, उतनी ही गहरे ध्यान में गति होगी। चौथा सूत्र ध्यान का होगा। आप पूरी शक्ति लगाएं, क्लाइमेक्स पर, जितना आप कर सकते हों, लगा दें--कहने को न बचे कि मेरे पास कोई ताकत शेष रह गई थी... मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? गहरी श्वास... गहरी श्वास... भीतर पूछें--मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? पूरी ताकत से पूछें, बाहर भी निकल जाए फिकर न करें। पूछें भीतर--मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? पूरी ताकत लगाएं... पूरी ताकत लगाएं... पूरी ताकत लगाएं... शरीर को जो होता है, होने दें... शरीर गिरे, गिर जाए... रोना निकले, निकले... पूरी ताकत लगाएं--मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? ...

(रोने-चिल्लाने की अनेक आवाजें...)

पूरी लगाएं... जरा भी रोकें नहीं... मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? पूरी लगाएं, पूरी ताकत लगाएं--मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? रोकें नहीं... रोकें नहीं... मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? पूरी शक्ति लगा दें...

(कुछ लोगों का रुक-रुककर हुंकार करना... अनेक आवाजें... रोना, चीखना, चिल्लाना, पशुओं की आवाजें मुंह से निकालना...)

मैं कौन हूं? पूरी शक्ति लगाएं। पांच मिनट ही बचे हैं, पूरी शक्ति लगा दें... मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? शरीर का रोआं-रोआं पूछने लगे--मैं कौन हूं? हृदय की धड़कन-धड़कन पूछने लगे--मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? पूरे क्लाइमेक्स पर, चरम पर अपने को पहुंचा दें... आखिरी सीमा पर पहुंचा दें... बिल्कुल पागल हो जाएं... मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? बिल्कुल पागल हो जाएं पूछने में... सारी शक्ति लगा दें... पूरी शक्ति लगाएं... आखिरी, पूरी शक्ति लगाएं... फिर तो विश्राम करना है... पूरी शक्ति लगाएं--मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? ... थका डालें अपने को... मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? आंधी उठा दें... अब दो मिनट ही बचे हैं... पूरी शक्ति लगाएं... मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? शरीर को जो होता है, होने दें... शक्ति पूरी लगा दें। दो मिनट तूफान उठा दें--मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? एक ही मिनट बचा है, पूरी शक्ति लगाएं, फिर विश्राम करना है... मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? शरीर को जो होता है, होने दें। गहरी श्वास... गहरी श्वास... गहरी श्वास... गहरी श्वास... गहरी श्वास... गहरी श्वास... गहरी श्वास... गहरी श्वास...

(अनेक लोगों का तीव्र चीत्कार करना... उछलना, कूदना आदि...)

मैं कौन हूं? ... मैं कौन हूं? ... शरीर कंपता है, शरीर नाचता है--छोड़ दें... मैं कौन हूं? ... मैं कौन हूं? ...

(साधकों पर चल रही प्रतिक्रियाएं बड़ी तेजी पर हैं...)

चौथे सूत्र पर जाने के लिए पूरी शक्ति लगा दें... मैं कौन हूं? ... मैं कौन हूं? ... लगाएं पूरी शक्ति... लगाएं पूरी शक्ति... जब तक आप पूरी न लगाएंगे चौथे सूत्र पर नहीं चलेंगे... मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? पूरा डूब जाएं... मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? पूरी शक्ति लगा दें... मैं कौन हूं? फिर हम चौथे पर चलें... मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? ...

(अनेक लोगों का हुंकार, चीत्कार आदि करना...)

पूरी शक्ति लगाएं... छोड़ें मत... जरा भी न बचाएं, पूरी शक्ति लगाएं... गहरी श्वास... गहरी श्वास... गहरी श्वास... गहरी श्वास... गहरी श्वास... मैं कौन हूं... मैं कौन हूं... मैं कौन हूं... मैं कौन हूं... मैं कौन हूं... मैं कौन हूं...

चौथा चरणः पूर्ण विश्राम--शांत, शून्य, जाग्रत, मौन, प्रतीक्षारत

और अब सब छोड़ दें... चौथे सूत्र पर चले जाएं--विश्राम में। न पूछें, न गहरी श्वास लें--सब छोड़ दें। दस मिनट के लिए सिर्फ पड़े रह जाएं--जैसे मर गए; जैसे हैं ही नहीं; सब छोड़ दें। दस मिनट सिर्फ छोड़कर पड़े रह जाएं, उसकी प्रतीक्षा में। छोड़ दें--न पूछें, न श्वास गहरी लें, बस पड़े रह जाएं। सागर का गर्जन सुनाई पड़े, सुनते रहें; हवाएं वृक्षों में आवाज करें, सुनते रहें; कोई पक्षी शोर करे, सुनते रहें--दस मिनट मर गए... हैं ही नहीं... दस मिनट मर गए... हैं ही नहीं।

(समुद्र का गर्जन है... पक्षियों की आवाजें... हवा की सरसराहट... कहीं-कहीं किसी का कभी-कभी सुबकना... हिचकी लेना... कराहना... शेष सब शांत है... साधकों का क्रमशः शांत तथा निःशब्द होते चले जाना... किसी का बीच में दो-चार तीव्र श्वास-प्रश्वास लेना और शांत हो जाना... किसी साधक का शरीर की स्थिति में कुछ परिवर्तन करना... फिर गहरी शांति तथा स्थिरता में चले जाना...)

धीरे-धीरे अब आंख खोल लें। आंख न खुलती हो तो दोनों आंखों पर हाथ रख लें। जो लोग गिर गए हैं, उनसे उठते न बने तो धीरे-धीरे गहरी श्वास लें और फिर उठें। जल्दी कोई न उठे। झटके से न उठे। बहुत आहिस्ता से उठ आएं। फिर भी किसी से उठते न बने तो थोड़ी देर लेटा रहे। धीरे-धीरे उठकर बैठ जाएं। आंख खोल लें। जिससे उठते न बने वह थोड़ी गहरी श्वास ले, फिर आहिस्ता से उठे।

दो एक छोटी सी सूचनाएं हैं। दोपहर तीन से चार मौन में बैठेंगे। मैं यहां बैठूंगा। तीन के पांच मिनट पहले ही आप सब आ जाएं। मैं ठीक तीन बजे आ जाऊंगा। बिल्कुल भी बात यहां न करें। एक शब्द भी प्रयोग न करें। चुपचाप आकर बैठ जाएं। एक घंटे मैं चुपचाप यहां बैठूंगा। उस बीच किसी के भी मन में लगे कि मेरे पास आना है, तो वह दो मिनट के लिए आकर चुपचाप बैठ जाए और फिर अपनी जगह चला जाए। दो मिनट के बाद न रुके, ताकि दूसरे लोगों को आना हो तो वे आ सकें। एक घंटे चुपचाप बैठकर प्रतीक्षा करें।

इस बीच अगर आप कहीं भी घूमने जाते हैं--सागर के तट पर या कहीं भी एकांत में--तो कहीं भी अकेले में बैठकर ध्यान में ही रहें। ये तीन दिन सतत ध्यान में ही बिताने की कोशिश करें।

हमारी सुबह की बैठक पूरी हुई।

तीसरा प्रवचन

ध्यान है महामृत्यु

एक मित्र पूछ रहे हैं कि कुंडलिनी जागरण में खतरा है तो कौन सा खतरा है? और यदि खतरा है तो फिर उसे जाग्रत ही क्यों किया जाए?

खतरा तो बहुत है। असल में, जिसे हमने जीवन समझ रखा है, उस पूरे जीवन को ही खोने का खतरा है। जैसे हम हैं, वैसे ही हम कुंडलिनी जाग्रत होने पर न रह जाएंगे; सब कुछ बदलेगा--सब कुछ--हमारे संबंध, हमारी वृत्तियां, हमारा संसार; हमने कल तक जो जाना था वह सब बदलेगा। उस सबके बदलने का ही खतरा है।

लेकिन अगर कोयले को हीरा बनना हो, तो कोयले को कोयला होना तो मिटना ही पड़ता है। खतरा बहुत है। कोयले के लिए खतरा है। अगर हीरा बनेगा तो कोयला मिटेगा तो ही हीरा बनेगा। शायद यह आपको ख्याल में न हो कि हीरे और कोयले में जातिगत कोई फर्क नहीं है; कोयला और हीरा एक ही तत्व हैं। कोयला ही लंबे अरसे में हीरा बन जाता है। हीरे और कोयले में केमिकली कोई बहुत बुनियादी फर्क नहीं है। लेकिन कोयला अगर हीरा बनना चाहे तो कोयला न रह सकेगा। कोयले को बहुत खतरा है। और ऐसे ही मनुष्य को भी खतरा है--परमात्मा होने के रास्ते पर कोई जाए, तो मनुष्य तो मिटेगा।

नदी सागर की तरफ दौड़ती है। सागर से मिलने में बड़ा खतरा है। नदी मिटेगी; नदी बचेगी नहीं। और खतरे का मतलब क्या होता है? खतरे का मतलब होता है, मिटना।

तो जिनकी मिटने की तैयारी है, वे ही केवल परमात्मा की तरफ यात्रा कर सकते हैं। मौत इस बुरी तरह नहीं मिटाती जिस बुरी तरह ध्यान मिटा देता है। क्योंकि मौत तो सिर्फ एक शरीर से छुड़ाती है और दूसरे शरीर से जुड़ा देती है। आप नहीं बदलते मौत में। आप वही के वही होते हैं जो थे, सिर्फ वस्त्र बदल जाते हैं। इसलिए मौत बहुत बड़ा खतरा नहीं है। और हम सारे लोग तो मौत को बड़ा खतरा समझते हैं। तो ध्यान तो मृत्यु से भी ज्यादा बड़ा खतरा है; क्योंकि मृत्यु केवल वस्त्र छीनती है, ध्यान आपको ही छीन लेगा। ध्यान महामृत्यु है।

पुराने दिनों में जो जानते थे, वे कहते ही यही थेः ध्यान मृत्यु है; टोटल डेथ। कपड़े ही नहीं बदलते, सब बदल जाता है। लेकिन जिसे सागर होना हो जिस सरिता को, उसे खतरा उठाना पड़ता है। खोती कुछ भी नहीं है, सरिता जब सागर में गिरती है तो खोती कुछ भी नहीं है, सागर हो जाती है। और कोयला जब हीरा बनता है तो खोता कुछ भी नहीं है, हीरा हो जाता है। लेकिन कोयला जब तक कोयला है तब तक तो उसे डर है कि कहीं खो न जाऊं; और नदी जब तक नदी है तब तक भयभीत है कि कहीं खो न जाऊं। उसे क्या पता कि सागर से मिलकर खोएगी नहीं, सागर हो जाएगी। वही खतरा आदमी को भी है।

और वे मित्र पूछते हैं कि फिर खतरा हो तो खतरा उठाया ही क्यों जाए?

यह भी थोड़ा समझ लेना जरूरी है। जितना खतरा उठाते हैं हम, उतने ही जीवित हैं; और जितना खतरे से भयभीत होते हैं, उतने ही मरे हुए हैं। असल में, मरे हुए को कोई खतरा नहीं होता। एक तो बड़ा खतरा यह नहीं होता कि मरा हुआ मर नहीं सकता है अब। जीवित जो है वह मर सकता है। और जितना ज्यादा जीवित है, उतनी ही तीव्रता से मर सकता है।

एक पत्थर पड़ा है और पास में एक फूल खिला है। पत्थर कह सकता है फूल से कि तू नासमझ है! क्यों खतरा उठाता है फूल बनने का? क्योंकि सांझ न हो पाएगी और मुरझा जाएगा। फूल होने में बड़ा खतरा है, पत्थर होने में खतरा नहीं है। पत्थर सुबह भी पड़ा था, सांझ जब फूल गिर जाएगा तब भी वहीं होगा। पत्थर को ज्यादा खतरा नहीं है, क्योंकि पत्थर को ज्यादा जीवन नहीं है। जितना जीवन, उतना खतरा है।

इसलिए जो व्यक्ति जितना जीवंत होगा, जितना लिविंग होगा, उतना खतरे में है।

ध्यान सबसे बड़ा खतरा है, क्योंकि ध्यान सबसे गहरे जीवन की उपलब्धि में ले जाने का द्वार है।

नहीं, वे मित्र पूछते हैं कि खतरा है तो जाएं ही क्यों? मैं कहता हूं, खतरा है इसलिए ही जाएं। खतरा न होता तो जाने की बहुत जरूरत न थी। जहां खतरा न हो वहां जाना ही मत, क्योंकि वहां सिवाय मौत के और कुछ भी नहीं है। जहां खतरा हो वहां जरूर जाना, क्योंकि वहां जीवन की संभावना है।

लेकिन हम सब सुरक्षा के प्रेमी हैं, सिक्योरिटी के प्रेमी हैं।

इनसिक्योरिटी, असुरक्षा है, खतरा है, तो भागते हैं भयभीत होकर, डरते हैं, छिप जाते हैं। ऐसे-ऐसे हम जीवन खो देते हैं। जीवन को बचाने में बहुत लोग जीवन खो देते हैं। जीवन को तो वे ही जी पाते हैं जो जीवन को बचाते नहीं, बल्कि उछालते हुए चलते हैं। खतरा तो है। इसीलिए जाना, क्योंकि खतरा है। और बड़े से बड़ा खतरा है। और गौरीशंकर की चोटी पर चढ़ने में इतना खतरा नहीं है। और न चांद पर जाने में इतना खतरा है। अभी यात्री भटक गए थे, तो बड़ा खतरा है। लेकिन खतरा वस्त्रों को ही था। शरीर ही बदल सकते थे। लेकिन ध्यान में खतरा बड़ा है, चांद पर जाने से बड़ा है।

पर खतरे से हम डरते क्यों हैं? यह कभी सोचा कि खतरे से हम इतने डरते क्यों हैं? सब तरह के खतरे से डरने के पीछे अज्ञान है। डर लगता है कि कहीं मिट न जाएं। डर लगता है कहीं खो न जाएं। डर लगता है कहीं समाप्त न हो जाएं। तो बचाओ, सुरक्षा करो, दीवाल उठाओ, किला बनाओ, छिप जाओ। अपने को बचा लो सब खतरों से।

मैंने सुनी है एक घटना। मैंने सुना है कि एक सम्राट ने एक महल बना लिया। और उसमें सिर्फ एक ही द्वार रखा था कि कहीं कोई खतरा न हो। कोई खिड़की-दरवाजे से आ न जाए दुश्मन। एक ही दरवाजा रखा था, सब द्वार-दरवाजे बंद कर दिए थे। मकान तो क्या था, कब्र बन गई थी। एक थोड़ी सी कमी थी कि एक दरवाजा था। उससे भीतर जाकर उससे बाहर निकल सकता था। उस दरवाजे पर भी उसने हजार सैनिक रख छोड़े थे।

पड़ोस का सम्राट उसे देखने आया, उसके महल को। सुना उसने कि सुरक्षा का कोई इंतजाम कर लिया है मित्र ने, और ऐसी सुरक्षा का इंतजाम किया है जैसा पहले कभी किसी ने भी नहीं किया होगा। तो वह सम्राट देखने आया। देखकर प्रसन्न हुआ। उसने कहा कि दुश्मन आ नहीं सकता, खतरा कोई हो नहीं सकता। ऐसा भवन मैं भी बना लूंगा।

फिर वे बाहर निकले। भवन के मालिक ने बड़ी खुशी विदा दी। और जब मित्र सम्राट अपने रथ पर बैठता था तो उसने फिर दुबारा-दुबारा कहाः बहुत सुंदर बनाया है, बहुत सुरक्षित बनाया है; मैं भी ऐसा ही बना लूंगा; बहुत-बहुत धन्यवाद। लेकिन सड़क के किनारे बैठा एक भिखारी जोर से हंसने लगा। तो उस भवनपति ने पूछा कि पागल, तू क्यों हंस रहा है?

तो उस भिखारी ने कहा कि मुझे आपके भवन में एक भूल दिखाई पड़ रही है। मैं यहां बैठा रहता हूं, यह भवन बन रहा था तब से। तब से मैं सोचता हूं कि कभी मौका मिल जाए आपसे कहने का तो बता दूंः एक भूल है। तो सम्राट ने कहा, कौन सी भूल? उसने कहा, यह जो एक दरवाजा है, यह खतरा है। इससे और कोई भला न

जा सके, किसी दिन मौत भीतर चली जाएगी। तुम ऐसा करो कि भीतर हो जाओ और यह दरवाजा भी बंद करवा लो, ईंटें जुड़वा दो। तुम बिल्कुल सुरक्षित हो जाओगे। फिर मौत भी भीतर न आ सकेगी।

उस सम्राट ने कहा, पागल, आने की जरूरत ही न रहेगी। क्योंकि अगर यह दरवाजा बंद हुआ तो मैं मर ही गया; वह तो कब्र बन जाएगी। उस भिखारी ने कहा, कब्र तो बन ही गई है, सिर्फ एक दरवाजे की कमी रह गई है। तो तुम भी मानते हो, उस भिखारी ने कहा कि एक दरवाजा बंद हो जाएगा तो यह मकान कब्र हो जाएगा? उस सम्राट ने कहा, मानता हूं। तो उसने कहा कि जितने दरवाजे बंद हो गए, उतनी ही कब्र हो गई है; एक ही दरवाजा और रह गया है।

उस भिखारी ने कहा, कभी हम भी मकान में छिपकर रहते थे। फिर हमने देखा कि छिपकर रहना यानी मरना। और जैसा तुम कहते हो कि अगर एक दरवाजा और बंद करेंगे तो कब्र हो जाएगी, तो मैंने अपनी सब दीवालें भी गिरवा दीं, अब मैं खुले आकाश के नीचे रह रहा हूं। अब--जैसा तुम कहते हो, सब बंद होने से मौत हो जाएगी--सब खुले होने से जीवन हो गया है। मैं तुमसे कहता हूं कि सब खुले होने से जीवन हो गया है। खतरा बहुत है, लेकिन सब जीवन हो गया है।

खतरा है, इसीलिए निमंत्रण है; इसीलिए जाएं। और खतरा कोयले को है, हीरे को नहीं; खतरा नदी को है, सागर को नहीं; खतरा आपको है, आपके भीतर जो परमात्मा है उसको नहीं। अब सोच लेंः अपने को बचाना है तो परमात्मा खोना पड़ता है; और परमात्मा को पाना है तो अपने को खोना पड़ता है।

जीसस से किसी ने एक रात जाकर पूछा था कि मैं क्या करूं कि उस ईश्वर को पा सकूं जिसकी तुम बात करते हो? तो जीसस ने कहा, तुम कुछ और मत करो, सिर्फ अपने को खो दो, अपने को बचाओ मत। उसने कहा, कैसी बातें कर रहे हैं आप! खोने से मुझे क्या मिलेगा? तो जीसस ने कहा, जो खोता है, वह अपने को पा लेता है; और जो अपने को बचाता है, वह सदा के लिए खो देता है।

कोई और सवाल हों तो हम बात कर लें।

संकल्प की कमी से विकास अवरुद्ध

पूछा जा रहा है कि कुंडलिनी जाग्रत हो तो कभी-कभी किन्हीं केंद्रों पर अवरोध हो जाता है, रुक जाती है। तो उसके रुक जाने का कारण क्या है? और गति देने का उपाय क्या है?

कारण कुछ और नहीं सिर्फ एक है कि हम पूरी शक्ति से नहीं पुकारते और पूरी शक्ति से नहीं जगाते। हम सदा ही अधूरे हैं और आंशिक हैं। हम कुछ भी करते हैं तो आधा-आधा, हाफ हार्टेडली करते हैं। हम कुछ भी पूरा नहीं कर पाते। बस इसके अतिरिक्त और कोई बाधा नहीं है। अगर हम पूरा कर पाएं तो कोई बाधा नहीं है।

लेकिन हमारी पूरे जीवन में सब कुछ आधा करने की आदत है। हम प्रेम भी करते हैं तो आधा करते हैं। और जिसे प्रेम करते हैं उसे घृणा भी करते हैं। बहुत अजीब सा मालूम पड़ता है कि जिसे हम प्रेम करते हैं, उसे घृणा भी करते हैं। और जिसे हम प्रेम करते हैं और जिसके लिए जीते हैं, उसे हम कभी मार डालना भी चाहते हैं। ऐसा प्रेमी खोजना कठिन है जिसने अपनी प्रेयसी के मरने का विचार न किया हो। ऐसा हमारा मन है, आधा-आधा। और विपरीत आधा चल रहा है। जैसे हमारे शरीर में बायां और दायां पैर है, वे दोनों एक ही तरफ चलते हैं, लेकिन हमारे मन के बाएं-दाएं पैर उलटे चलते हैं। वही हमारा तनाव है। हमारे जीवन की अशांति क्या है? कि हम हर जगह आधे हैं।

अब एक युवक मेरे पास आया, और उसने मुझे कहा कि मुझे बीस साल से आत्महत्या करने का विचार चल रहा है। तो मैंने कहा, पागल, कर क्यों नहीं लेते हो? बीस साल बहुत लंबा वक्त है। बीस साल से आत्महत्या का विचार कर रहे हो तो कब करोगे? मर जाओगे पहले ही, फिर करोगे? वह बहुत चौंका। उसने कहा, आप क्या कहते हैं? मैं तो आया था कि आप मुझे समझाएंगे कि आत्महत्या मत करो। मैंने कहा, मुझे समझाने की जरूरत है? बीस साल से तुम कर ही नहीं रहे हो! और उसने कहा कि जिसके पास भी मैं गया वही मुझे समझाता है कि ऐसा कभी मत करना। मैंने कहा, उन समझानेवालों की वजह से ही न तो तुम जी पा रहे हो और न तुम मर पा रहे हो; आधे-आधे हो गए हो। या तो मरो या जीओ। जीना हो तो फिर आत्महत्या का ख्याल छोड़ो, और जी लो। और मरना हो तो मर जाओ, जीने का ख्याल छोड़ दो।

वह दो-तीन दिन मेरे पास था। रोज मैं उससे यही कहता रहा कि अब तू जीवन का ख्याल मत कर, बीस साल से सोचा है मरने का तो मर ही जा। तीसरे दिन उसने मुझसे कहा, आप कैसी बातें कर रहे हैं? मैं जीना चाहता हूं। तो मैंने कहा, मैं कब कहता हूं कि तुम मरो। तुम ही पूछते थे कि मैं बीस साल से मरना चाहता हूं।

अब यह थोड़ा सोचने जैसा मामला हैः कोई आदमी बीस साल तक मरने का सोचे, तो यह आदमी मरा तो है ही नहीं, जी भी नहीं पाया है। क्योंकि जो मरने का सोच रहा है, वह जीएगा कैसे? हम आधे-आधे हैं। और हमारे पूरे जीवन में आधे-आधे होने की आदत है। न हम मित्र बनते किसी के, न हम शत्रु बनते; हम कुछ भी पूरे नहीं हो पाते।

और आश्चर्य है कि अगर हम पूरे भी शत्रु हों तो आधे मित्र होने से ज्यादा आनंददायी है।

असल में, पूरा होना कुछ भी आनंददायी है। क्योंकि जब भी व्यक्तित्व पूरा का पूरा उतरता है, तो व्यक्तित्व में सोई हुई सारी शक्तियां साथ हो जाती हैं। और जब व्यक्तित्व आपस में बंट जाता है, स्प्लिट हो जाता है, दो टुकड़े हो जाता है, तब हम आपस में भीतर ही लड़ते रहते हैं। अब जैसे कुंडलिनी जाग्रत न हो, बीच में अटक जाए, तो उसका केवल एक मतलब है कि आपके भीतर जगाने का भी ख्याल है, और जग जाए, इसका डर भी।

आप चले भी जा रहे हैं मंदिर की तरफ, और मंदिर में प्रवेश की हिम्मत भी नहीं है। दोनों काम कर रहे हैं। आप ध्यान की तैयारी भी कर रहे हैं और ध्यान में उतरने का, ध्यान में छलांग लगाने का साहस भी नहीं जुटा पाते हैं। तैरने का मन है, नदी के किनारे पहुंच गए हैं, और तट पर खड़े होकर सोच रहे हैं। तैरना भी चाहते हैं, पानी में भी नहीं उतरना चाहते! इरादा कुछ ऐसा है कि कहीं कमरे में गद्दा-तकिया लगाकर, उस पर लेटकर हाथ-पैर फड़फड़ाकर तैरने का मजा मिल जाए तो ले लें।

नहीं, पर गद्दे-तकिए पर तैरने का मजा नहीं मिल सकता। तैरने का मजा तो खतरे के साथ जुड़ा है।

आधापन अगर है तो कुंडलिनी में बहुत बाधा पड़ेगी। इसलिए अनेक मित्रों को अनुभव होगा कि कहीं चीज जाकर रुक जाती है। रुक जाती है तो एक ही बात ध्यान में रखना, और कोई बहाने मत खोजना। बहुत तरह के बहाने हम खोजते हैं--कि पिछले जन्म का कर्म बाधा पड़ रहा होगा, भाग्य बाधा पड़ रहा होगा, अभी समय नहीं आया होगा। ये हम सब बातें सोचते हैं, ये सब बातें कोई भी सच नहीं हैं। सच सिर्फ एक बात है कि आप पूरी तरह जगाने में नहीं लगे हैं। अगर कहीं भी कोई अवरोध आता हो, तो समझना कि छलांग पूरी नहीं ले रहे हैं। और ताकत से कूदना, अपने को पूरा लगा देना, अपने को समग्रीभूत छोड़ देना। तो किसी केंद्र पर, किसी चक्र पर कुंडलिनी रुकेगी नहीं। वह तो एक क्षण में भी पार कर सकती है पूरी यात्रा, और वर्षों भी लग सकते हैं। हमारे अधूरेपन की बात है। अगर हमारा मन पूरा हो तो अभी एक क्षण में भी सब हो सकता है।

कहीं भी रुके तो समझना कि हम पूरे नहीं हैं, तो पूरा साथ देना, और शक्ति लगा देना। और शक्ति की अनंत-अनंत सामर्थ्य हमारे भीतर है। हमने कभी किसी काम में कोई बड़ी शक्ति नहीं लगाई है। हम सब ऊपर-ऊपर जीते हैं। हमने अपनी जड़ों को कभी पुकारा ही नहीं। इसीलिए बाधा पड़ सकती है। और ध्यान रहे, और कोई बाधा नहीं है।

कोई और सवाल हो तो पूछें।

प्रभु की प्यास का अभाव

एक मित्र पूछते हैं कि जन्म के साथ ही भूख होती है, नींद होती है, प्यास होती है, लेकिन प्रभु की प्यास तो नहीं होती!

इस बात को थोड़ा समझ लेना उपयोगी है। प्यास तो प्रभु की भी जन्म के साथ ही होती है, लेकिन पहचानने में बड़ा समय लग जाता है। जैसे उदाहरण के लिएः बच्चे सभी सेक्स के साथ पैदा होते हैं, लेकिन पहचानने में चौदह साल लग जाते हैं। काम की, सेक्स की भूख तो जन्म के साथ ही होती है, लेकिन चौदह-पंद्रह साल लग जाते हैं उसकी पहचान आने में। और पहचान आने में चौदह-पंद्रह साल क्यों लग जाते हैं? प्यास तो भीतर होती है, लेकिन शरीर तैयार नहीं होता। चौदह साल में शरीर तैयार होता है, तब प्यास जग पाती है। अन्यथा सोई पड़ी रहती है।

परमात्मा की प्यास भी जन्म के साथ ही होती है, लेकिन शरीर तैयार नहीं हो पाता। और जब भी शरीर तैयार हो जाता है तब तत्काल जग जाती है। तो कुंडलिनी शरीर की तैयारी है।

लेकिन आप कहेंगे कि यह अपने आप क्यों नहीं होता?

कभी-कभी अपने आप होता है। लेकिन--इसे समझ लें--मनुष्य के विकास में कुछ चीजें पहले व्यक्तियों को होती हैं, फिर समूह को होती हैं। जैसे उदाहरण के लिए, ऐसा प्रतीत होता है कि पूरे वेद को पढ़ जाएं, ऋग्वेद को पूरा देख जाएं, तो ऐसा नहीं लगता कि ऋग्वेद में सुगंध का कोई बोध है। ऋग्वेद के समय के जितने शास्त्र हैं सारी दुनिया में, उनमें कहीं भी सुगंध का कोई भाव नहीं है। फूलों की बात है, लेकिन सुगंध की बात नहीं है। तो जो जानते हैं, वे कहते हैं कि ऋग्वेद के समय तक आदमी की सुगंध की जो प्यास है वह जाग नहीं पाई थी। फिर कुछ लोगों को जागी।

अभी भी सुगंध मनुष्यों में बहुत कम लोगों को ही अर्थ रखती है, बहुत कम लोगों को। अभी सारे लोगों में सुगंध की इंद्रिय पूरी तरह जाग नहीं पाई है। और जितनी विकसित कौमें हैं, उतनी ज्यादा जाग गई है; जितनी अविकसित कौमें हैं, उतनी कम जागी है। कुछ तो कबीले अभी भी दुनिया में ऐसे हैं जिनके पास सुगंध के लिए कोई शब्द नहीं है। पहले कुछ लोगों को सुगंध का भाव जागा, फिर वह धीरे-धीरे गति की और वह कलेक्टिव माइंड, सामूहिक मन का हिस्सा बना।

और भी बहुत सी चीजें धीरे-धीरे जागी हैं, जो कभी नहीं थीं, एक दिन था कि नहीं थीं। रंग का बोध भी बहुत हैरान करनेवाला है। अरस्तू ने अपनी किताबों में तीन रंगों की बात की है। अरस्तू के जमाने तक यूनान में लोगों को तीन रंगों का ही बोध होता था। बाकी रंगों का कोई बोध नहीं होता था। फिर धीरे-धीरे बाकी रंग दिखाई पड़ने शुरू हुए। और अभी भी जितने रंग हमें दिखाई पड़ते हैं, उतने ही रंग हैं, ऐसा मत समझ लेना। रंग और भी हैं, लेकिन अभी बोध नहीं जगा। इसलिए कभी एल एस डी, या मेस्कलीन, या भांग, या गांजा के प्रभाव

में बहुत से और रंग दिखाई पड़ने शुरू हो जाते हैं, जो हमने कभी भी नहीं देखे हैं। और रंग हैं अनंत। उन रंगों का बोध भी धीरे-धीरे जाग रहा है।

अभी भी बहुत लोग हैं जो कलर ब्लाइंड हैं। यहां अगर हजार मित्र आए हों, तो कम से कम पचास आदमी ऐसे निकल आएंगे जो किसी रंग के प्रति अंधे हैं। उनको खुद पता नहीं होगा। उनको ख्याल भी नहीं होगा। कुछ लोगों को हरे और पीले रंग में कोई फर्क नहीं दिखाई पड़ता। साधारण लोगों को नहीं, कभी-कभी बड़े असाधारण लोगों को, बर्नार्ड शॉ को खुद कोई फर्क पता नहीं चलता था हरे और पीले रंग में। और साठ साल की उम्र तक पता नहीं चला कि उसको पता नहीं चलता है। वह तो पता चला साठवीं वर्षगांठ पर किसी ने एक सूट भेंट किया। वह हरे रंग का था। सिर्फ टाई देना भूल गया था, जिसने भेंट किया था। तो बर्नार्ड शॉ बाजार टाई खरीदने गया। वह पीले रंग की टाई खरीदने लगा। तो उस दुकानदार ने कहा कि अच्छा न मालूम पड़ेगा इस हरे रंग में यह पीला। उसने कहा कि क्या कह रहे हैं? बिल्कुल दोनों एक से हैं। उस दुकानदार ने कहा, एक से! आप मजाक तो नहीं कर रहे? क्योंकि बर्नार्ड शॉ आमतौर से मजाक करता था। सर, आप मजाक तो नहीं कर रहे? इन दोनों को एक रंग कह रहे हैं आप! यह पीला है, यह हरा है। उसने कहा, दोनों हरे हैं। पीला यानी? तब बर्नार्ड शॉ ने आंख की जांच करवाई तो पता चला पीला रंग उसे दिखाई नहीं पड़ता; पीले रंग के प्रति वह अंधा है।

एक जमाना था कि पीला रंग किसी को दिखाई नहीं पड़ता था। पीला रंग मनुष्य की चेतना में नया रंग है। तो बहुत से रंग नये आए हैं मनुष्य की चेतना में। संगीत सभी को अर्थपूर्ण नहीं है, कुछ को अर्थपूर्ण है। उसकी बारीकियों में कुछ लोगों को बड़ी गहराइयां हैं। कुछ के लिए सिर्फ सिर पीटना है। अभी उनके लिए स्वर का बोध गहरा नहीं हुआ है। अभी मनुष्य-जाति के लिए संगीत सामूहिक अनुभव नहीं बना। और परमात्मा तो बहुत ही दूर, आखिरी, अतींद्रिय अनुभव है। इसलिए बहुत थोड़े से लोग जाग पाते हैं। लेकिन सबके भीतर जागने की क्षमता जन्म के साथ है।

लेकिन जब भी हमारे बीच कोई एक आदमी जाग जाता है, तो उसके जागने के कारण भी हममें बहुतों की प्यास जो सोई हो वह जागना शुरू हो जाती है। जब कभी कोई एक कृष्ण हमारे बीच उठ आता है, तो उसे देखकर भी, उसकी मौजूदगी में भी, हमारे भीतर जो सोया है वह जागना शुरू हो जाता है।

धर्म विरोधी मूर्च्छित समाज

हम सबके भीतर है जन्म के साथ ही वह प्यास भी, वह भूख भी, लेकिन वह जाग नहीं पाती। बहुत कारण हैं। सबसे बड़ा कारण तो यही है... सबसे बड़ा कारण तो यही है कि जो बड़ी भीड़ है हमारे चारों तरफ, उस भीड़ में वह प्यास कहीं भी नहीं है। और अगर किसी व्यक्ति में उठती भी है तो वह उसे दबा लेता है, क्योंकि वह उसे पागलपन मालूम होती है। चारों तरफ जहां सारे लोग धन की प्यास से भरे हों, यश की प्यास से भरे हों, वहां धर्म की प्यास पागलपन मालूम पड़ती है। और चारों तरफ के लोग संदिग्ध हो जाते हैं कि कुछ दिमाग तो नहीं खराब हो रहा है! आदमी अपने को दबा देता है। उठ नहीं पाती, जग नहीं पाती, सब तरफ से दमन हो जाता है। और जो हमने दुनिया बनाई है, उस दुनिया में हमने परमात्मा को जगह नहीं छोड़ी, क्योंकि जैसा मैंने कहा बड़ा खतरनाक है परमात्मा को जगह छोड़ना, हमने वह जगह नहीं छोड़ी है।

पत्नी डरती है कि कहीं पति के जीवन में परमात्मा न आ जाए। क्योंकि परमात्मा के आने से पत्नी तिरोहित भी हो सकती है। पति डरता है, कहीं पत्नी के जीवन में परमात्मा न आ जाए। क्योंकि अगर परमात्मा आ गया तो पति परमात्मा का क्या होगा? यह सब्स्टीट्यूट परमात्मा कहां जाएगा? इसकी जगह कहां होगी?

हमने जो दुनिया बनाई है, उसमें परमात्मा को जगह नहीं रखी है। और परमात्मा वहां डिस्टरबिंग साबित होगा। वह अगर वहां आता है तो वहां गड़बड़ होगी। गड़बड़ सुनिश्चित है। वहां कुछ न कुछ अस्तव्यस्त होगा। वहां नींद टूटेगी, कहीं कुछ होगा, कहीं कुछ चीजें बदलनी पड़ेंगी। हम ठीक वही तो नहीं रह जाएंगे जो हम थे। तो इसलिए हमने उसे घर के बाहर छोड़ा है। लेकिन कहीं वह जग ही न जाए उसकी प्यास, इसलिए हमने झूठे परमात्मा अपने घरों में बना लिए--कि अगर किसी को जगे भी, तो यह रहे भगवान। एक पत्थर की मूर्ति खड़ी है, उसकी पूजा करो। ताकि असली भगवान की तरफ प्यास न चली जाए। तो सब्स्टीट्यूट गॉड्स हमने पैदा किए हुए हैं। यह आदमी की सबसे बड़ी कनिंगनेस, सबसे बड़ी चालाकी, सबसे बड़ा शड्यंत्र है। परमात्मा के खिलाफ जो बड़े से बड़ा शड्यंत्र है, वह आदमी के बनाए हुए परमात्मा हैं।

इनकी वजह से जो प्यास उसकी खोज में जाती, वह उसकी खोज में न जाकर मंदिरों और मस्जिदों के आसपास भटकने लगती है, जहां कुछ भी नहीं है। और जब वहां कुछ भी नहीं मिलता तो आदमी को लगता है कि इससे तो अपना वह घर ही बेहतर; इस मंदिर और मस्जिद में क्या रखा हुआ है! तो मंदिर-मस्जिद हो आता है, घर लौट आता है। उसे पता नहीं कि मंदिर-मस्जिद बहुत धोखे की ईजाद हैं।

मैंने तो सुना है कि एक दिन शैतान ने लौटकर अपनी पत्नी को कहा कि अब मैं बिल्कुल बेकार हो गया हूं, अब मुझे कोई काम ही न रहा। उसकी पत्नी बहुत हैरान हुई, जैसे कि पत्नियां हैरान होती हैं अगर कोई बेकार हो जाए। उसकी पत्नी ने कहा, आप और बेकार! लेकिन आप कैसे बेकार हो गए? आपका काम तो शाश्वत है! लोगों को बिगाड़ने का काम तो सदा चलेगा; यह बंद तो होनेवाला नहीं। यह कैसे बंद हो गया? आप कैसे बेकार हो गए? उस शैतान ने कहा, मैं बेकार बड़ी मुश्किल से हो गया, बड़े अजीब ढंग से हो गया। अब मेरा जो काम था वह मंदिर और मस्जिद, पंडित और पुजारी कर देते हैं; मेरी कोई जरूरत नहीं है। आखिर भगवान से ही लोगों को भटकाता था। अब भगवान की तरफ कोई जाता ही नहीं! बीच में मंदिर खड़े हैं, वहीं भटक जाता है। हम तक कोई आता ही नहीं मौका कि हम भगवान से भटकाएं।

परमात्मा की प्यास तो है। और बचपन से ही हम परमात्मा के संबंध में कुछ सिखाना शुरू कर देते हैं, उससे नुकसान होता है; जानने के पहले यह भ्रम पैदा होता है कि जान लिया। हर आदमी परमात्मा को जानता है! प्यास पैदा ही नहीं हो पाती और हम पानी पिला देते हैं। उससे ऊब पैदा हो जाती है और घबड़ाहट पैदा हो जाती है। परमात्मा अरुचिकर हो जाता है हमारी शिक्षाओं के कारण; कोई रुचि नहीं रह जाती। और इतना ठूंस देते हैं, दिमाग को ऐसा स्टफ कर देते हैं--गीता, कुरान, बाइबिल से; महात्माओं से, साधुओं-संतों से, वाणियों से इस बुरी तरह सिर भर देते हैं कि मन यह होता है कि कब इससे छुटकारा हो। तो परमात्मा तक जाने का सवाल नहीं उठता।

हमने जो व्यवस्था की है वह ईश्वर-विरोधी है, इसलिए प्यास बड़ी मुश्किल हो गई। और अगर कभी उठती है तो आदमी फौरन पागल मालूम होने लगता है। तत्काल पता चलता है कि यह आदमी पागल हो गया है, क्योंकि वह हम सबसे भिन्न हो जाता है। वह और ढंग से जीने लगता है; वह और ढंग से श्वास लेने लगता है; सब उसका तौर-तरीका बदल जाता है। वह हमारे बीच का आदमी नहीं रह जाता, वह स्ट्रेंजर हो जाता है, वह अजनबी हो जाता है।

हमने जो दुनिया बनाई है, वह ईश्वर-विरोधी है। बड़ा पक्का शड्यंत्र है। और अभी तक हम सफल ही रहे हैं। अभी तक हम सफल ही हुए चले जा रहे हैं। हम ईश्वर को बिल्कुल बाहर कर दिए हैं। उसकी ही दुनिया से हमने उसे बिल्कुल बाहर किया हुआ है। और हमने एक जाल बनाया है जिसके भीतर उसके घुसने के लिए हमने कोई दरवाजा नहीं छोड़ा है। तो प्यास कैसे जगे? लेकिन, प्यास भला न जगे, प्यास का भला पता न चले, लेकिन तड़पन भीतर और गहरी घूमती रहती है जिंदगी भर। यश मिल जाता है, फिर भी लगता है कुछ खाली रह गया; धन मिल जाता है और लगता है कि कुछ अनमिला रह गया; प्रेम मिल जाता है और लगता है कि कुछ छूट गया जो नहीं मिला, नहीं पाया जा सका।

वह क्या है जो हर बार छूट गया मालूम पड़ता है?

एक दिशाहीन प्यास

वह हमारे भीतर की एक प्यास है, जिसको हमने पूरा होने से, बढ़ने से, जगने से सब तरह से रोका है। वह प्यास जगह-जगह खड़ी हो जाती है, हमारे हर रास्ते पर प्रश्नचिह्न बन जाती है। और वह कहती हैः इतना धन पा लिया, लेकिन कुछ मिला नहीं; इतना यश पा लिया, लेकिन कुछ मिला नहीं; सब पा लिया, लेकिन खाली हो तुम। वह प्यास जगह-जगह से हमें कोंचती है, कुरेदती है, जगह-जगह से छेदती है। लेकिन हम उसको झुठलाकर फिर अपने काम में और जोर से लग जाते हैं, ताकि यह आवाज सुनाई न पड़े। इसलिए धन कमानेवाला और जोर से कमाने लगता है, और जोर से कमाने लगता है। यश की दौड़वाला और तेजी से दौड़ने लगता है। वह अपने कान बंद कर लेता है कि सुनाई न पड़े कि कुछ भी नहीं मिला।

हमारा सारा का सारा इंतजाम प्यास को जगने से रोकता है। अन्यथा... एक दिन जरूर पृथ्वी पर ऐसा होगा कि जैसे बच्चे भूख और प्यास लेकर, और सेक्स और यौन लेकर पैदा होते हैं, ऐसे ही वे डिवाइन थर्स्ट, परमात्मा की प्यास लेकर भी पैदा होते हुए मालूम पड़ेंगे। वह दुनिया कभी बन सकती है; बनाने जैसी है। कौन बनाए उसे?

बहुत प्यासे लोग जो परमात्मा को खोजते हैं, उस दुनिया को बना सकते हैं। लेकिन जैसा अब तक है, उस सारे शड्यंत्र को तोड़ देने की जरूरत है, तब ऐसा हो सकता है।

प्यास तो है। लेकिन आदमी कृत्रिम उपाय कर ले सकता है। अब चीन में हजारों साल तक स्त्रियों के पैर में लोहे का जूता पहनाया जाता था, कि पैर छोटा रहे। छोटा पैर सौंदर्य का चिह्न था। जितना छोटा पैर हो, उतने बड़े घर की लड़की थी। तो स्त्रियां चल ही नहीं सकती थीं, पैर इतने छोटे रह जाते थे। शरीर तो बड़े हो जाते, पैर छोटे रह जाते। वे चल ही न पातीं। जो स्त्री बिल्कुल न चल पाती, वह उतने शाही खानदान की स्त्री! क्योंकि गरीब की स्त्री तो अफोर्ड नहीं कर सकती थी, उसको तो पैर बड़े ही रखना पड़ता था; उसको तो चलना पड़ता था, काम करना पड़ता था। सिर्फ शाही स्त्रियां चलने से बच सकती थीं। तो कंधों पर हाथ का सहारा लेकर चलती थीं। अपंग हो जाती थीं, लेकिन समझा जाता था कि सौंदर्य है। अपंग होना था वह।

आज चीन की कोई लड़की तैयार न होगी; कहेगीः पागल थे वे लोग। लेकिन हजारों साल तक यह चला। जब कोई चीज चलती है तो पता नहीं चलता। जब हजारों लोग, इकट्ठी भीड़ करती है तो पता नहीं चलता। जब सारी भीड़ पैरों में जूते पहना रही हो लोहे के, तो सारी लड़कियां पहनती थीं। जो नहीं पहनती, उसको लोग कहते कि तू पागल है। उसे अच्छा, सुंदर पति न मिलता, संपन्न परिवार न मिलता, वह दीन और दरिद्र समझी

जाती। और जहां भी उसका पैर दिख जाता वहीं गंवार समझी जाती--अशिक्षित, असंस्कृत। क्योंकि तेरा पैर इतना बड़ा! पैर सिर्फ बड़े गंवार के ही चीन में होते थे, सुसंस्कृत का पैर तो छोटा होता था।

तो हजारों साल तक इस ख्याल ने वहां की स्त्रियों को पंगु बनाए रखा। ख्याल भी नहीं आया कि हम यह क्या पागलपन कर रहे हैं! लेकिन वह चला। जब टूटा तब पता चला कि यह तो पागलपन था।

ऐसे ही सारी मनुष्यता का मस्तिष्क पंगु बनाया गया है, ईश्वर की दृष्टि से। ईश्वर की तरफ जाने की जो प्यास है, उसे सब तरफ से काट दिया जाता है; उसको पनपने के मौके नहीं दिए जाते। और अगर कभी उठती भी हो, तो झूठे सब्स्टीट्यूट खड़े कर दिए जाते हैं और बता दिया जाता है--परमात्मा चाहिए? चले जाओ मंदिर में! परमात्मा चाहिए? पढ़ लो गीता, पढ़ो कुरान, पढ़ो वेद--मिल जाएगा।

वहां कुछ भी नहीं मिलता, शब्द मिलते हैं। मंदिर में पत्थर मिलते हैं। तब आदमी सोचता है कि कुछ भी नहीं है, तो शायद अपनी प्यास ही झूठी रही होगी। और फिर प्यास ऐसी चीज है कि आई और गई। जब तक आप मंदिर गए तब तक प्यास चली गई। जब तक आपने गीता पढ़ी तब तक प्यास चली गई। फिर धीरे-धीरे प्यास कुंठित हो जाती है। और जब किसी प्यास को तृप्त होने का मौका न मिले तो वह मर जाती है। वह धीरे-धीरे मर जाती है।

अगर आप तीन दिन भूखे रहें, तो बहुत जोर से भूख लगेगी पहले दिन; दूसरे दिन और जोर से लगेगी; तीसरे दिन और जोर से लगेगी; चौथे दिन कम हो जाएगी, पांचवें दिन और कम हो जाएगी, छठवें दिन और कम हो जाएगी; पंद्रह दिन के बाद भूख लगनी बंद हो जाएगी। महीने भर भूखे रह जाएं, फिर पता ही नहीं चलेगा कि भूख क्या है। कमजोर होते चले जाएंगे, क्षीण होते चले जाएंगे, रोज वजन कम होता चला जाएगा, अपना मांस पचा जाएंगे, लेकिन भूख लगनी बंद हो जाएगी; क्योंकि अगर महीने भर तक भूख को मौका न दिया बढ़ने का, तो मर जाएगी।

मैंने सुना है, काफ्का ने एक छोटी सी कहानी लिखी है। उसने एक कहानी लिखी है कि एक बड़ा सर्कस है, और उस बड़े सर्कस में बहुत तरह के लोग हैं, और बहुत तरह के खेल तमाशे हैं। उस सर्कसवाले ने एक फास्ट करनेवाले को, उपवास करनेवाले को भी इकट्ठा कर लिया है। वह उपवास करने का प्रदर्शन करता है। उसका भी एक झोपड़ा है। सर्कस में और बहुत चीजों को लोग देखने आते हैं--जंगली जानवरों को देखते हैं, अजीब-अजीब जानवर हैं। इस अजीब आदमी को भी देखते हैं। यह महीनों बिना खाने के रह जाता है। वह तीन-तीन महीने तक बिना खाने के रहकर उसने दिखलाया है। निश्चित ही, उसको भी लोग देखने आते हैं। लेकिन कितनी बार देखने आएं? एक गांव में सर्कस छह-सात महीने रुका। महीने-पंद्रह दिन लोग उसको देखने आए। फिर ठीक है, अब भूखा रहता है तो रहता है। कब तक लोग देखने आएंगे?

सर्कस है, साधु-संन्यासी हैं, इसलिए इनको गांव बदलते रहना चाहिए। एक ही गांव में ज्यादा दिन रहे तो बहुत मुश्किल हो। वे कितने दिन तक लोग आएंगे? इसलिए दो-तीन दिन में गांव बदल लेने से ठीक रहता है। दूसरे गांव में फिर लोग आ जाते हैं। दूसरे गांव में फिर लोग आ जाते हैं।

उस गांव में सर्कस ज्यादा दिन रुक गया। लोग उसको देखने आना बंद कर दिए। उसकी झोपड़ी की फिकर ही भूल गए। वह इतना कमजोर हो गया था कि मैनेजर को जाकर खबर भी नहीं कर पाया; उठ भी नहीं सकता था; पड़ा रहा, पड़ा रहा, पड़ा रहा--बड़ा सर्कस था, लोग भूल ही गए। चार महीने, पांच महीने हो गए, तब अचानक एक दिन पता चला कि भई, उस आदमी का क्या हुआ जो उपवास किया करता था?

तो मैनेजर भागा कि वह आदमी मर न गया हो। उसका तो पता ही नहीं है! जाकर देखा तो वह जिस घास की गठरी में पड़ा रहता था वहां घास ही घास था, आदमी तो था नहीं। आवाज दी! उसकी तो आवाज नहीं निकलती थी। घास को अलग किया तो वह बिल्कुल हड्डी-हड्डी रह गया था। आंखें उसकी जरूर थीं।

मैनेजर ने पूछा कि भई, हम भूल ही गए, क्षमा करो! लेकिन तुम कैसे पागल हो, अगर लोग नहीं आते थे, तो तुम्हें खाना लेना शुरू कर देना चाहिए था! उसने कहा कि लेकिन अब खाना लेने की आदत ही छूट गई है; भूख ही नहीं लगती। अब मैं कोई खेल नहीं कर रहा हूं, अब तो खेल करने में फंस गया हूं। कोई खेल नहीं कर रहा, लेकिन अब भूख ही नहीं है। अब मैं जानता ही नहीं कि भूख क्या है। भूख कैसी चीज है वह मेरे भीतर होती ही नहीं।

क्या हो गया इस आदमी को? लंबी भूख व्यवस्था से की जाए तो भूख मर जाती है। परमात्मा की भूख को हम जगने नहीं देते। क्योंकि परमात्मा से ज्यादा डिस्टरबिंग फैक्टर कुछ और नहीं हो सकता है। इसलिए हमने इंतजाम किया हुआ है। हम बड़ी व्यवस्था से, प्लान से रोके हुए हैं सब तरफ से कि वह कहीं से भीतर न आ जाए। अन्यथा हर आदमी प्यास लेकर पैदा होता है। और अगर उसे जगाने की सुविधा दी जाए, तो धन की प्यास, यश की प्यास तिरोहित हो जाएं, वही प्यास रह जाए।

आत्मिक प्यास से क्रांति

और भी एक कारण है कि या तो परमात्मा की प्यास रहे और या फिर दूसरी प्यासें रहें, सब साथ नहीं रह सकतीं। इसलिए इन प्यासों को--धन की, यश की, काम की--इन प्यासों को बचाने के लिए परमात्मा की प्यास को रोकना पड़ा है। अगर उसकी प्यास जगेगी, तो वह सभी को तिरोहित कर लेगी, अपने में समाहित कर लेगी। वह अकेली ही रह जाएगी।

परमात्मा बहुत ईर्ष्यालु है। वह जब आता है तो बस अकेला ही रह जाता है; फिर वह किसी को टिकने नहीं देता वहां। जब वह आपको अपना मंदिर बनाएगा तो वहां छोटे-मोटे देवी-देवता और न टिकेंगे, कि कई रखे हुए हैंः हनुमान जी भी वहीं विराजमान हैं, और देवी-देवता भी विराजमान हैं, ऐसा परमात्मा न टिकने देगा। जब वह आएगा तो सब देवी-देवताओं को बाहर कर देगा। वह अकेला ही विराजमान हो जाता है। बहुत ईर्ष्यालु है।

कर्ता होने का भ्रम

प्रश्नः व्यक्ति जो कार्य करता है, वह परमात्मा ही द्वारा नहीं होता है क्या?

यह सवाल ठीक पूछा है कि व्यक्ति जो कार्य करता है, वह परमात्मा ही द्वारा नहीं होता है क्या?

जब तक करता है, तब तक नहीं होता। जब तक व्यक्ति को लगता है--मैं कर रहा हूं, तब तक नहीं होता। जिस दिन व्यक्ति को लगता है--मैं हूं ही नहीं, हो रहा है--उस दिन परमात्मा का हो जाता है। जब तक डूइंग का ख्याल है कि कर रहा हूं, तब तक नहीं। जिस दिन हैपनिंग हो जाती है--कि हो रहा है। हवाओं से पूछें कि बह रही हो? हवाएं कहेंगी, नहीं, बहाई जा रही हैं। वृक्षों से पूछो, बड़े हो रहे हो? वे कहेंगे, नहीं, बड़े किए जा रहे हैं। सागर की लहरों से पूछो, तुम्हीं तट से टकरा रही हो? वे कहेंगी, नहीं, बस टकराना हो रहा है। तब तो

परमात्मा का हो गया। आदमी कहता है, मैं कर रहा हूं! बस वहीं से द्वार अलग हो जाता है; वहीं से आदमी का अहंकार घेर लेता है; वहीं से आदमी अपने को अलग मानकर खड़ा हो जाता है।

जिस दिन आदमी को भी पता चलता है कि जैसे हवाएं बह रही हैं, और जैसे सागर की लहरें चल रही हैं, और वृक्ष बड़े हो रहे हैं, और फूल खिल रहे हैं, और आकाश में तारे चल रहे हैं, ऐसा ही मैं चलाया जा रहा हूं; कोई है जो मेरे भीतर चलता है, और कोई है जो मेरे भीतर बोलता है; मैं अलग से कुछ भी नहीं हूं; बस उस दिन परमात्मा ही है।

कर्ता होने का हमारा भ्रम है। वही भ्रम हमें दुख देता है; वही भ्रम दीवाल बन जाता है। जिस दिन हम कर्ता नहीं हैं, उस दिन कोई भ्रम शेष नहीं रह जाता; उस दिन वही रह जाता है।

अभी भी वही है। ऐसा नहीं है कि आप कर्ता हैं तो आप कर्ता हो गए हैं। ऐसा मैं नहीं कह रहा हूं। जब आप समझ रहे हैं कि मैं कर्ता हूं, तो सिर्फ आपको भ्रम है। अभी भी वही है। लेकिन आपको उसका कोई पता नहीं है। हालत बिल्कुल ऐसी है जैसे आप रात सो जाएं आज नारगोल में और रात सपना देखें कि कलकत्ता पहुंच गए हैं। कलकत्ता पहुंच नहीं गए हैं, कितना ही सपना देखें, हैं नारगोल में ही, लेकिन सपने में कलकत्ता पहुंच गए हैं। और अब आप कलकत्ते में पूछ रहे हैं कि मुझे नारगोल वापस जाना है, अब मैं कौन सी ट्रेन पकडूं? अब मैं हवाई जहाज से जाऊं, कि रेलगाड़ी से जाऊं, कि पैदल चला जाऊं? मैं कैसे पहुंच पाऊंगा? रास्ता कहां है? मार्ग कहां है? कौन मुझे पहुंचाएगा? गाइड कौन है? नक्शे देख रहे हैं, पता लगा रहे हैं। और तभी आपकी नींद टूट गई है। और नींद टूटकर आपको पता लगता है कि मैं कहीं गया नहीं, मैं वहीं था। फिर आप नक्शे वगैरह नहीं खोजते। फिर आप गाइड नहीं खोजते। फिर अगर कोई आपसे कहे भी कि क्या इरादा है, कलकत्ते से वापस न लौटिएगा? तो आप हंसते हैं, आप कहते हैं, कभी गया ही नहीं; कलकत्ता कभी गया नहीं, सिर्फ जाने का ख्याल हुआ था।

आदमी जब अपने को कर्ता समझ रहा है तब भी कर्ता है नहीं, तब भी ख्याल ही है, सपना ही है कि मैं कर रहा हूं। सब हो रहा है। यह सपना ही टूट जाए, तो जिसे ज्ञान कहें, जिसे जागरण कहें, वह घटित हो जाए। और जब हम ऐसा कहते हैं कि वह मुझसे करवा रहा है, तब भी भ्रम जारी है, क्योंकि तब भी मैं फासला मान रहा हूं--मैं मान रहा हूं कि मैं भी हूं, वह भी है; वह करवानेवाला है, मैं करनेवाला हूं। नहीं, जब आपको सच में ही आप जागेंगे, तो आप ऐसा नहीं कहेंगे कि हां, मैं अभी-अभी कलकत्ते से लौट आया हूं। ऐसा नहीं कहेंगे; आप कहेंगे, मैं गया ही नहीं था। जिस दिन आप इस नींद से जागेंगे जो कर्ता होने की है, अहंता की, ईगो की नींद है, उस दिन आप ऐसा नहीं कहेंगे कि वह करवा रहा है और मैं करनेवाला हूं। उस दिन आप कहेंगेः वही है, मैं हूं कहां! मैं कभी था ही नहीं; एक स्वप्न देखा था जो टूट गया है।

और स्वप्न हम जीवन-जीवन तक देख सकते हैं; अनंत जन्मों तक देख सकते हैं। स्वप्न के देखने का कोई अंत नहीं है। कितने ही स्वप्न देख सकते हैं। और स्वप्नों का बड़े से बड़ा मजा तो यह है कि जब आप स्वप्न देखते हैं तब वह बिल्कुल सत्य मालूम होता है। आपने बहुत बार सपने देखे हैं। रोज रात देखते हैं। और रोज सुबह जानते हैं कि सपना था, झूठा था। फिर आज रात देखेंगे जब, तब ख्याल न आएगा कि सपना है, झूठा है। तब फिर जंचेगा कि बिल्कुल ठीक है। फिर सुबह कल जागकर कहेंगे कि झूठा था। कितनी कमजोर है स्मृति! सुबह उठकर कहते हैं, सब सपने झूठे थे! रात फिर सपने देखते हैं। और सपने में वे फिर सच हो जाते हैं। वह सारा बोध जो सुबह हुआ था, फिर खो गया। निश्चित ही वह कोई गहरा बोध न था, ऊपर-ऊपर हुआ था। गहरे में फिर वही भ्रांति चल रही है।

ऐसे ऊपर-ऊपर हमें बोध हो जाते हैं। कोई किताब पढ़ लेता है, और उसमें पढ़ लेता है कि सब परमात्मा करवा रहा है। तो एक क्षण को ऊपर से एक बोध हो जाता है कि मैं करनेवाला नहीं हूं, परमात्मा करवा रहा है। लेकिन अभी भी वह कहता है--मैं करनेवाला नहीं, परमात्मा करवा रहा है। लेकिन वह मैं अभी जारी है। वह अभी कह रहा है कि मैं करनेवाला नहीं। वह एक क्षण में खो जाएगा। एक जोर से धक्का दे दें उसे, और वह क्रोध से भर जाएगा और कहेगा कि जानते नहीं मैं कौन हूं? वह भूल जाएगा कि अभी वह कह रहा था कि मैं करनेवाला नहीं; मैं नहीं हूं; मैं कोई नहीं हूं, परमात्मा ही है। एक जोर से धक्का दे दें, सब भूल जाएगा; एक क्षण में सब खो जाएगा। वह कहेगा, मुझे धक्का दिया, जानते नहीं मैं कौन हूं? वह परमात्मा वगैरह एकदम विदा हो जाएगा! मैं वापस लौट आएगा।

मैंने सुना है, एक संन्यासी हिमालय रहा तीस वर्षों तक। शांति में था, एकांत में था। भूल गया, अहंकार न रहा। अहंकार के लिए दूसरे का होना जरूरी है। क्योंकि वह दि अदर अगर न हो तो अहंकार खड़ा कहां करो? तो दूसरे का होना जरूरी है। दूसरे की आंख में जब अकड़ से झांको, तब वह खड़ा होता है। अब दूसरा ही न हो तो किस की अकड़ से झांकोगे? कहां कहो कि मैं हूं! क्योंकि तू चाहिए। मैं को खड़ा करने के लिए एक और झूठ चाहिए, वह तू है। उसके बिना वह खड़ा नहीं होता। झूठ के लिए एक सिस्टम चाहिए पड़ती है बहुत से झूठों की, तब एक झूठ खड़ा होता है। सत्य अकेला खड़ा हो जाता है, झूठ कभी अकेला खड़ा नहीं होता। झूठ के लिए और झूठों की बल्लियां लगानी पड़ती हैं। मैं का झूठ खड़ा करना हो तो तू, वह, वे, इन सबके झूठ खड़े करने पड़ते हैं, तब मैं बीच में खड़ा हो पाता है।

वह आदमी अकेला था जंगल में, पहाड़ पर था, कोई तू न था, कोई वह न था, कोई वे न थे, कोई हम न था, भूल गया मैं। तीस साल लंबा वक्त था, शांत हो गया। नीचे से लोग आने लगे। फिर लोगों ने प्रार्थना की कि एक मेला भर रहा है, पहाड़ ऊंचा है, बहुत लोग यहां तक न आ सकेंगे, और प्रार्थना हम करते हैं कि आप नीचे चलकर दर्शन दे दें।

सोचा कि अब तो मेरा मैं रहा नहीं, अब चलने में हर्ज क्या है!

ऐसा बहुत बार मन धोखा देता है। अब तो मेरा मैं न रहा, अब चलने में हर्ज क्या है! आ गया। नीचे बहुत भीड़ थी, लाखों लोगों का मेला था। अपरिचित लोग थे, उसे कोई जानता न था। तीस साल पहले वह आदमी गया था। उसको लोग भूल भी चुके थे। जब वह भीड़ में चला, किसी का जूता उसके पैर पर पड़ गया। जूता पैर पर पड़ा, उसने उसकी गरदन पकड़ ली और कहा कि जानता नहीं मैं कौन हूं? वे तीस साल एकदम खो गए, जैसे एक सपना विदा हो गया। वे तीस साल--वह पहाड़, वह शांति, वह शून्यता, वह मैं का न होना, वह परमात्मा होना--सब विदा हो गया। एक सेकेंड में, वह था ही नहीं कभी, ऐसा विदा हो गया। गरदन पर हाथ कस गए और कहा कि जानता नहीं मैं कौन हूं?

तब अचानक उसे ख्याल आया कि यह मैं क्या कह रहा हूं! मैं तो भूल गया था कि मैं हूं। यह वापस कैसे लौट आया? तब उसने लोगों से क्षमा मांगी, और उसने कहा कि अब मुझे जाने दो। लोगों ने कहा, कहां जा रहे हैं? उसने कहा, अब पहाड़ न जाऊंगा, अब मैदान की तरफ जा रहा हूं। उन्होंने कहा, लेकिन यह क्या हो गया? उसने कहा कि जो तीस साल पहाड़ के एकांत में मुझे पता न चला, वह एक आदमी के संपर्क में पता चल गया। अब मैं मैदान की तरफ जा रहा हूं; वहीं रहूंगा; वहीं पहचानूंगा कि मैं है या नहीं है। सपना हो गया तीस साल; समझता था सब खो गया; सब वहीं के वहीं है, कहीं कुछ खोया नहीं है।

तो भ्रांतियां पैदा हो जाती हैं। लेकिन भ्रांतियों से काम नहीं चल सकता है।

अब हम ध्यान के लिए बैठें, क्योंकि कल से तो फर्क हो जाएगा। कल से सुबह सिर्फ ध्यान करेंगे और रात सिर्फ चर्चा करेंगे। लेकिन आज तो आज के हिसाब से। थोड़े-थोड़े फासले पर हो जाएं, लेकिन बहुत फासले पर न जाएं; क्योंकि मैंने सुबह अनुभव किया कि जो लोग बहुत दूर चले गए, वह जो यहां एक साइकिक एटमॉसफिअर होता है, उसके फायदे से वंचित रह गए। इसलिए बहुत दूर न जाएं। फासले पर हो जाएं, लेकिन बहुत दूर न जाएं, बीच में बहुत जगह न छोड़ें। अन्यथा यहां जो एक वातावरण निर्मित होता है, आप उसके बाहर पड़ जाते हैं और उसका फायदा नहीं उठा पाते। तो बहुत दूर से पास आ जाएं। बस फासला इतना कर लें। जिनको लेटना हो वे अपनी जगह बना लें, लेट जाएं; जिनको बैठना हो वे बैठें; लेकिन बहुत दूर भी न जाएं। और बातचीत बिल्कुल न करें।

बातचीत जरा भी न करें। बिना बातचीत के जो काम हो सके, उसमें बातचीत क्यों करें!

क्या बात है?

पत्थर मारा गया है।

पत्थर था वह? चलो कोई बात नहीं, सम्हालकर रखो, किसी ने प्रेम से फेंका होगा।

हां, जो लोग इधर पीछे कुछ लोग बात कर रहे हैं, वे बात न करें, या तो बैठते हों तो चुपचाप बैठ जाएं या फिर चले जाएं। कोई भी दर्शक की हैसियत से न बैठे। और दर्शक की हैसियत से ही बैठे तो कम से कम चुप बैठे। किसी को किसी के द्वारा बाधा न हो। और कोई मित्र, मालूम होता है, पत्थर फेंकते हैं। दो-तीन पत्थर फेंके हैं। तो पत्थर फेंकने हों तो मेरी तरफ फेंकने चाहिए, बाकी किसी की तरफ नहीं फेंकने चाहिए।

ठीक है, बैठ जाएं। जो जहां है वहीं बैठ जाए। आंख बंद कर लें।

पहला चरणः

एक घंटे पूरी ताकत लगानी है। आंख बंद कर लें, आंख बंद कर लें। गहरी श्वास लेना शुरू करें। देखें, सागर इतने जोर से, इतने जोर से श्वास लेता है, सरूवन इतने जोर से श्वास लेता है। जोर से श्वास लें। पूरी श्वास भीतर ले जाएं, पूरी श्वास बाहर निकालें। एक ही काम रह जाए दस मिनट तक--श्वास ले रहे, छोड़ रहे; श्वास ले रहे, छोड़ रहे। और भीतर साक्षी बन जाएं, भीतर देखते रहें--श्वास भीतर आई, बाहर गई। दस मिनट श्वास लेने की प्रक्रिया में गहरे उतरें। शुरू करें! गहरी श्वास लें, गहरी श्वास छोड़ें... गहरी श्वास लें, गहरी श्वास छोड़ें... गहरी श्वास लें, गहरी श्वास छोड़ें... गहरी श्वास लें, गहरी श्वास छोड़ें। पूरी शक्ति लगाएं।

यह रात हमें मिली, यह मौका हमें मिला--फिर मिले, न मिले। पूरी शक्ति लगाएं। कुछ हो सकता है तो पूरी शक्ति से होगा। एक इंच भी बचाएंगे, नहीं होगा। ... पूरी गहरी श्वास लें... बस एक यंत्र रह जाए शरीर, श्वास ले रहा है। यंत्र की भांति श्वास ले रहा है। एक यंत्र मात्र रह गए हैं। और देखें, संकोच न करें और दूसरे की फिकर न करें, अपनी फिकर करें... गहरी श्वास लें... एक यंत्र मात्र रह जाएं। शरीर एक यंत्र है।

एक दस मिनट तक गहरी से गहरी श्वास लें और गहरी श्वास छोड़ें, बस श्वास लेनेवाले ही रह जाएं... श्वास ले रहे हैं, छोड़ रहे हैं... ले रहे हैं, छोड़ रहे हैं। और देखते रहें भीतर--साक्षी मात्र। देख रहे हैं--श्वास भीतर आई, श्वास बाहर गई... श्वास भीतर आई, श्वास बाहर गई। लगाएं... शक्ति लगाएं।

दस मिनट मैं चुप होता हूं, आप पूरी शक्ति लगाएं। ऐसा नहीं कि मैं कहूं तब आप एक-दो श्वास गहरी लें और फिर धीमी लेने लगें। दस मिनट पूरी ताकत लगाएं... श्वास में पूरी शक्ति लगा दें--गहरी श्वास लें, गहरी श्वास छोड़ें। सारा शरीर कंप जाए, रोआं-रोआं कंप जाए। सारे शरीर में विद्युत जग जाएगी, भीतर कोई शक्ति

उठने लगेगी, रोएं-रोएं में फैलने लगेगी... छोड़ें, पूरी ताकत लगाएं--गहरी श्वास ले रहे, छोड़ रहे... गहरी श्वास ले रहे, छोड़ रहे... गहरी श्वास ले रहे, छोड़ रहे... गहरी श्वास ले रहे, छोड़ रहे... गहरी श्वास ले रहे, छोड़ रहे... गहरी श्वास ले रहे, छोड़ रहे... गहरी से गहरी लें... गहरी श्वास ले रहे, गहरी श्वास छोड़ रहे... गहरी श्वास ले रहे, गहरी श्वास छोड़ रहे... पूरा एक यंत्र रह जाए शरीर, सिर्फ श्वास लेने का एक यंत्र रह जाए... सागर के गर्जन में एक हो जाएं, हवाओं की लहरों में एक हो जाएं... सिर्फ श्वास ले रहे हैं... और कुछ भी नहीं करना है--गहरी श्वास ले रहे, छोड़ रहे... गहरी श्वास ले रहे, छोड़ रहे... गहरी श्वास ले रहे, छोड़ रहे... गहरी श्वास ले रहे, छोड़ रहे... और भीतर साक्षी बने रहें...

शक्ति पूरी लगाएं। स्मरणपूर्वक गहरी श्वास लें, गहरी श्वास छोड़ें... गहरी श्वास लें, गहरी श्वास छोड़ें... गहरी श्वास लें, गहरी श्वास छोड़ें... स्मरणपूर्वक गहरी श्वास लें, गहरी श्वास छोड़ें... भीतर जागकर देखते रहें--श्वास भीतर आई, श्वास बाहर गई... श्वास भीतर आई, श्वास बाहर गई... अपने को जरा भी बचाएं न... अपने को बचाएं न, पूरा लगा दें--गहरी श्वास, और गहरी, और गहरी, और गहरी। श्वास लेने और छोड़ने के अतिरिक्त और कुछ भी न बचे... श्वास लेने-छोड़ने के अतिरिक्त और कुछ भी न बचे... गहरी श्वास, और गहरी... और गहरी... और गहरी... और गहरी... और गहरी...

देखें, कहने को न बचे कि हमने कम किया, मुझसे कहने को न रहे कि हम पूरा नहीं किए। कहीं बात रुके न, पूरी शक्ति लगाएं। दूसरे सूत्र पर जाने के पहले अपने को थका डालें... पूरी ताकत लगाएं... गहरी श्वास, गहरी श्वास... गहरी श्वास... गहरी श्वास... गहरी श्वास... गहरी श्वास... श्वास ही रह गई है, बस श्वास ही हो गए हम, श्वास ही हैं सिर्फ... गहरी श्वास... गहरी श्वास... गहरी श्वास... गहरी श्वास... गहरी श्वास... गहरी श्वास... गहरी श्वास... गहरी श्वास... गहरी श्वास... गहरी श्वास... गहरी श्वास... और भीतर देखते रहें--श्वास आई, श्वास गई--साक्षी बने रहें। श्वास आती दिखाई पड़ेगी, श्वास जाती दिखाई पड़ेगी। भीतर देखते रहें, देखते रहें... तीव्र... और तीव्र... और तीव्र...

(लोगों का नाचना, कंपना, आवाजें निकालना...)

दूसरे सूत्र पर जाने के लिए और तीव्र! जब आप पूरी तीव्रता में होंगे, तब ही मैं दूसरे सूत्र पर ले जाऊंगा... पूरी शक्ति लगाएं... पूरी शक्ति लगाएं... पूरी शक्ति लगाएं... सब तरह से अपनी सारी शक्ति लगा दें... गहरी श्वास... गहरी श्वास... गहरी श्वास... गहरी श्वास... बस श्वास ही रह गई, श्वास ही है, और कुछ भी नहीं--सारी शक्ति लगा दें... और गहरा... और गहरा... और गहरा... और गहरा... और गहरा...

(रोने, चिल्लाने की आवाजें...)

और गहरा लगा सकते हैं, रोकें मत। और गहरा... और गहरा... और गहरा... और गहरा लगा सकते हैं... और गहरा... कंपने दें शरीर--ड़ोलता है, डोलने दें... घूमता है, घूमने दें... गहरी श्वास लें... गहरी से गहरी श्वास लें... गहरी श्वास... गहरी श्वास... गहरी श्वास। दूसरे सूत्र में प्रवेश करना है... गहरी श्वास... एक आखिरी मिनट, गहरी श्वास...

(अनेक तरह की आवाजें...)

गहरी श्वास... गहरी श्वास... आखिरी मिनट, पूरी शक्ति लगाएं... गहरी श्वास, गहरी श्वास... पूरे क्लाइमेक्स पर ही बदलाहट ठीक होती है... पूरी शक्ति लगाएं एक मिनट... गहरी श्वास... गहरी श्वास... गहरी श्वास... गहरी श्वास... गहरी श्वास... गहरी श्वास... और गहरी... और गहरी... और गहरी... और गहरी... और गहरी... और गहरी... श्वास ही रह जाए, श्वास ही रह जाए। सारी शक्ति श्वास में डोलने लगे... श्वास ही रह गई... श्वास ही रह गई...

दूसरा चरणः

अब दूसरे सूत्र में प्रवेश करना है। श्वास गहरी रखें और शरीर को जो करना हो--छोड़ दें, करने दें। शरीर मुद्राएं बनाए, आसन बनाए, शरीर कंपने लगे, घूमने लगे, रोने लगे--छोड़ दें शरीर को। शरीर को पूरी तरह छोड़ देना है--श्वास गहरी रहेगी और शरीर को छोड़ देना है... शरीर गिरे, गिर जाए... उठे, उठ जाए... नाचने लगे, चिंता न करें--शरीर को छोड़ दें। शरीर को पूरी तरह छोड़ दें... श्वास गहरी रहेगी और शरीर को पूरी तरह छोड़ दें... शरीर को जो करना हो, करने दें... जरा भी रोकेंगे नहीं, सहयोग करें। शरीर जो करना चाहता है, कोआपरेट करें, उसके साथ सहयोगी हो जाएं--शरीर घूमता है, घूमे--डोलता है, डोले... गिरता है, गिर जाए... रोता है, रोए... हंसता है, हंसे--छोड़ दें--जो भी होता है, होने दें... श्वास गहरी रहे और शरीर को छोड़ दें। श्वास गहरी रहे और शरीर को छोड़ दें।

(लोगों का रोना, चीखना, चिल्लाना, नाचना और शरीर की अनेक तीव्र क्रियाएं करना जारी रहा...)

एक दस मिनट के लिए शरीर को पूरी तरह छोड़ दें। गहरी श्वास... गहरी श्वास... और शरीर को छोड़ दें--रोता हो रोए, चिल्लाता हो चिल्लाए... आप कोई नियंत्रण न करें और शरीर को सहयोग करें--शरीर जो भी कर रहा है, करने दें... जो भी हो रहा है, होने दें--मुद्राएं बनेंगी, शरीर चक्कर लेगा... भीतर शक्ति जगेगी तो शरीर में बहुत कुछ होगा--आवाज निकल सकती है, रोना निकल सकता है... कोई चिंता न करें... छोड़ें... शरीर को छोड़ दें...

आज पूरा थका डालना है। सोने के पहले पूरा श्रम ले लेना है। शरीर को छोड़ें, सहयोग करें... गहरी श्वास... गहरी श्वास... गहरी श्वास... गहरी श्वास... गहरी श्वास... गहरी श्वास... गहरी श्वास... गहरी श्वास... गहरी श्वास... गहरी श्वास... गहरी श्वास... गहरी श्वास... गहरी श्वास... गहरी श्वास...

इसके बाद टेप रेकॉर्डर पर धक्का लगने से वह बंद हो गया, लेकिन ओशो का सुझाव देना और ध्यान-प्रयोग जारी रहा। दूसरे दस मिनट साधक गहरी श्वास लेते रहे... तथा शरीर में हो रही प्रतिक्रियाओं को सहयोग देकर उसकी तीव्रता बढ़ाते रहे।

फिर तीसरे चरण में दस मिनट तक तेज श्वास जारी रही, शरीर नाचता-चिल्लाता-गाता रहा, इसके साथ ही साधकों को तीव्रता से मन में "मैं कौन हूं?", "मैं कौन हूं?" लगातार पूछते रहने का सुझाव दिया गया। साधकों को सहज ही हो रही अनेक यौगिक क्रियाओं में तीव्रता आती चली गई। उसका चरम बिंदु आ गया।

चौथे दस मिनट में सब छोड़कर केवल विश्राम करने को कहा गया। न गहरी श्वास, न "मैं कौन हूं?" पूछना। बस विश्राम, शांति, मौन, शून्यता--जैसे मर गए, हैं ही नहीं। सैकड़ों साधकों का गहरे ध्यान में प्रवेश हो

गया, पूरा सरूवन ध्यान की तरंगों से भर गया। सारे साधक जैसे विराट प्रकृति से एक हो गए हों, ऐसा लगने लगा।

चालीस मिनट पूरे होते ही ध्यान की बैठक विसर्जित कर दी गई, फिर भी अनेक साधक बहुत देर तक अपने अंदर ही डूबे हुए पड़े रहे--किसी अज्ञात अंतर्जगत में उनकी गति होती रही। धीरे-धीरे लोग अपने निवास स्थान की ओर लौट पड़े--कई साधक आधे घंटे, एक घंटे, दो घंटे तक ध्यान में ही पड़े रहे... बाद में उठकर धीरे-धीरे प्रस्थान किया।

चौथा प्रवचन

ध्यान पंथ ऐसो कठिन

मेरे प्रिय आत्मन्!

एक मित्र ने पूछा है कि क्या ध्यान प्रभु की कृपा से उपलब्ध होता है?

इस बात को थोड़ा समझना उपयोगी है। इस बात से बहुत भूल भी हुई है। न मालूम कितने लोग यह सोचकर बैठ गए हैं कि प्रभु की कृपा से उपलब्ध होगा तो हमें कुछ भी नहीं करना है। यदि प्रभु-कृपा का ऐसा अर्थ लेते हैं कि आपको कुछ भी नहीं करना है, तो आप बड़ी भ्रांति में हैं। दूसरी और भी इसमें भ्रांति है कि प्रभु की कृपा सबके ऊपर समान नहीं है।

लेकिन प्रभु-कृपा किसी पर कम और ज्यादा नहीं हो सकती। प्रभु के चहेते, चू.जन कोई भी नहीं हैं। और अगर प्रभु के भी चहेते हों तो फिर इस जगत में न्याय का कोई उपाय न रह जाएगा।

प्रभु की कृपा का तो यह अर्थ हुआ कि किसी पर कृपा करता है और किसी पर अकृपा भी रखता है। ऐसा अर्थ लिया हो तो वैसा अर्थ गलत है। लेकिन किसी और अर्थ में सही है। प्रभु की कृपा से उपलब्ध होता है, यह उनका कथन नहीं है जिन्हें अभी नहीं मिला, यह उनका कथन है जिन्हें मिल गया है। और उनका कथन इसलिए है कि जब वह मिलता है, तो अपने किए गए प्रयास बिल्कुल ही इररेलेवेंट, असंगत मालूम पड़ते हैं। जब वह मिलता है, तो जो हमने किया था वह इतना क्षुद्र और जो मिलता है वह इतना विराट कि हम कैसे कहें कि जो हमने किया था उसके कारण यह मिला है?

जब मिलता है तब ऐसा लगता हैः हमसे कैसे मिलेगा? हमने किया ही क्या था? हमने दिया ही क्या था? हमने सौदे में दांव क्या लगाया था? हमारे पास था भी क्या जो हम करते? था भी क्या जो हम देते? जब उसकी अनंत-अनंत आनंद की वर्षा होती है तो उस वर्षा के क्षण में ऐसा ही लगता है कि तेरी कृपा से ही, तेरे प्रसाद से ही, तेरी ग्रेस से ही उपलब्ध हुआ। हमारी क्या सामर्थ्य, हमारा क्या वश!

लेकिन यह बात उनकी है जिनको मिला। यह बात अगर उन्होंने पकड़ ली जिनको नहीं मिला, तो वे सदा के लिए भटक जाएंगे। प्रयास करना ही होगा। निश्चित ही, प्रयास करने पर मिलने की जो घटना घटती है वह ऐसी है, जैसे किसी का द्वार बंद है, सूरज निकला है, और घर में अंधेरा है। वे द्वार खोलकर प्रतीक्षा करें, सूरज भीतर आ जाएगा। सूरज को गठरियों में बांधकर भीतर नहीं लाया जा सकता, वह अपनी ही कृपा से भीतर आता है।

यह मजे की बात है, सूरज को हम भीतर नहीं ला सकते अपने प्रयास से, लेकिन अपने प्रयास से भीतर आने से रोक जरूर सकते हैं। द्वार बंद करके, आंख बंद करके बैठ सकते हैं। तो सूरज की महिमा भी हमारी बंद आंखों को पार न कर पाएगी। सूरज की किरणों को हम द्वार के बाहर रोक सकते हैं। रोक सकने में समर्थ हैं, ला सकने में समर्थ नहीं। द्वार खुल जाए, सूरज भीतर आ जाता है। सूरज जब भीतर आ जाए तो हम यह नहीं कह सकते कि हम लाए; हम इतना ही कह सकते हैं, उसकी कृपा, वह आया। और हम इतना ही कह सकते हैं कि हमारी अपने पर कृपा कि हमने द्वार बंद न किए।

आदमी सिर्फ एक ओपनिंग बन सकता है उसके आगमन के लिए। हमारे प्रयास सिर्फ द्वार खोलते हैं, आना तो उसकी कृपा से ही होता है। लेकिन उसकी कृपा हर द्वार पर प्रकट होती है। लेकिन कुछ द्वार बंद हैं, वह क्या करे? बहुत द्वारों पर ईश्वर खटखटाता है और लौट जाता है; वे द्वार बंद हैं। मजबूती से हमने बंद किए हैं। और जब वह खटखटाता है, तब हम न मालूम कितनी व्याख्याएं करके अपने को समझा लेते हैं।

एक छोटी सी कहानी मुझे प्रीतिकर है, वह मैं कहूं।

एक बड़ा मंदिर, उस बड़े मंदिर में सौ पुजारी, बड़े पुजारी ने एक रात स्वप्न देखा है कि प्रभु ने खबर की है स्वप्न में कि कल मैं आ रहा हूं। विश्वास तो न हुआ पुजारी को, क्योंकि पुजारियों से ज्यादा अविश्वासी आदमी खोजना सदा ही कठिन है। विश्वास इसलिए भी न हुआ कि जो दुकान करते हैं धर्म की, उन्हें धर्म पर कभी विश्वास नहीं होता। धर्म से वे शोषण करते हैं, धर्म उनकी श्रद्धा नहीं है। और जिसने श्रद्धा को शोषण बनाया, उससे ज्यादा अश्रद्धालु कोई भी नहीं होता।

पुजारी को भरोसा तो न आया कि भगवान आएगा, कभी नहीं आया। वर्षों से पुजारी है, वर्षों से पूजा की है, भगवान कभी नहीं आया। भगवान को भोग भी लगाया है, वह भी अपने को ही लग गया है। भगवान के लिए प्रार्थनाएं भी की हैं, वे भी खाली आकाश में--जानते हुए कि कोई नहीं सुनता--की हैं। सपना मालूम होता है। समझाया अपने मन को कि सपने कहीं सच होते हैं! लेकिन फिर डरा भी, भयभीत भी हुआ कि कहीं सच ही न हो जाए। कभी-कभी सपने भी सच हो जाते हैं; कभी-कभी जिसे हम सच कहते हैं, वह भी सपना हो जाता है; कभी-कभी जिसे हम सपना कहते हैं, वह सच हो जाता है।

तो अपने निकट के पुजारियों को उसने कहा कि सुनो, बड़ी मजाक मालूम पड़ती है, लेकिन बता दूं। रात सपना देखा कि भगवान कहते हैं कि कल आता हूं। दूसरे पुजारी भी हंसे; उन्होंने कहा, पागल हो गए! सपने की बात किसी और से मत कहना, नहीं तो लोग पागल समझेंगे। पर उस बड़े पुजारी ने कहा कि कहीं अगर वह आ ही गया! तो कम से कम हम तैयारी तो कर लें! नहीं आया तो कोई हर्ज नहीं, आया तो हम तैयार तो मिलेंगे।

तो मंदिर धोया गया, पोंछा गया, साफ किया गया; फूल लगाए गए, दीये जलाए गए; सुगंध छिड़की गई, धूप-दीप सब; भोग बना, भोजन बने। दिन भर में पुजारी थक गए; कई बार देखा सड़क की तरफ, तो कोई आता हुआ दिखाई न पड़ा। और हर बार जब देखा तब लौटकर कहा, सपना सपना है, कौन आता है! नाहक हम पागल बने। अच्छा हुआ, गांव में खबर न की, अन्यथा लोग हंसते।

सांझ हो गई। फिर उन्होंने कहा, अब भोग हम अपने को लगा लें। जैसे सदा भगवान के लिए लगा भोग हमको मिला, यह भी हम ही को लेना पड़ेगा। कभी कोई आता है! सपने के चक्कर में पड़े हम, पागल बने हम--जानते हुए पागल बने। दूसरे पागल बनते हैं न जानते हुए, हम... हम जो जानते हैं भलीभांतिः कभी कोई भगवान नहीं आता। भगवान है कहां? बस यह मंदिर की मूर्ति है, ये हम पुजारी हैं, यह हमारी पूजा है, यह व्यवसाय है। फिर सांझ उन्होंने भोग लगा लिया, दिन भर के थके हुए वे जल्दी ही सो गए।

आधी रात गए कोई रथ मंदिर के द्वार पर रुका। रथ के पहियों की आवाज सुनाई पड़ी। किसी पुजारी को नींद में लगा कि मालूम होता है उसका रथ आ गया। उसने जोर से कहा, सुनते हो, जागो! मालूम होता है जिसकी हमने दिन भर प्रतीक्षा की, वह आ गया! रथ के पहियों की जोर-जोर की आवाज सुनाई पड़ती है!

दूसरे पुजारियों ने कहा, पागल, अब चुप भी रहो; दिन भर पागल बनाया, अब रात ठीक से सो लेने दो। यह पहियों की आवाज नहीं, बादलों की गड़गड़ाहट है। और वे सो गए, उन्होंने व्याख्या कर ली।

फिर कोई मंदिर की सीढ़ियों पर चढ़ा, रथ द्वार पर रुका, फिर किसी ने द्वार खटखटाया, फिर किसी पुजारी की नींद खुली, फिर उसने कहा कि मालूम होता है वह आ गया मेहमान जिसकी हमने प्रतीक्षा की! कोई द्वार खटखटाता है!

लेकिन दूसरों ने कहा कि कैसे पागल हो, रात भर सोने दोगे या नहीं? हवा के थप.ेडे हैं, कोई द्वार नहीं थपथपाता है। उन्होंने फिर व्याख्या कर ली, फिर वे सो गए।

फिर सुबह वे उठे, फिर वे द्वार पर गए। किसी के पद-चिह्न थे, कोई सीढ़ियां चढ़ा था, और ऐसे पद-चिह्न थे जो बिल्कुल अज्ञात थे। और किसी ने द्वार जरूर खटखटाया था। और राह तक कोई रथ भी आया था। रथ के चाकों के चिह्न थे। वे छाती पीटकर रोने लगे। वे द्वार पर गिरने लगे। गांव की भीड़ इकट्ठी हो गई। वह उनसे पूछने लगी, क्या हो गया है तुम्हें? वे पुजारी कहने लगे, मत पूछो। हमने व्याख्या कर ली और हम मर गए। उसने द्वार खटखटाया, हमने समझा हवा के थपेड़े हैं। उसका रथ आया, हमने समझी बादलों की गड़गड़ाहट है। और सच यह है कि हम कुछ भी न समझे थे, हम केवल सोना चाहते थे, और इसलिए हम व्याख्या कर लेते थे।

तो वह तो सभी के द्वार खटखटाता है। उसकी कृपा तो सब द्वारों पर आती है। लेकिन हमारे द्वार हैं बंद। और कभी हमारे द्वार पर दस्तक भी दे तो हम कोई व्याख्या कर लेते हैं।

पुराने दिनों के लोग कहते थे, अतिथि देवता है। थोड़ा गलत कहते थे। देवता अतिथि है। देवता रोज ही अतिथि की तरह खड़ा है। लेकिन द्वार तो खुला हो! उसकी कृपा सब पर है।

इसलिए ऐसा मत पूछें कि उसकी कृपा से मिलता है। लेकिन उसकी कृपा से ही मिलता है, हमारे प्रयास सिर्फ द्वार खोल पाते हैं, सिर्फ मार्ग की बाधाएं अलग कर पाते हैं; जब वह आता है, अपने से आता है।

प्रथम तीन चरणों में ध्यान की तैयारी

एक दूसरे मित्र ने पूछा है, उन्होंने पूछा हैः ध्यान की चार सीढ़ियों की बात की है; उन चारों का पूरा-पूरा अर्थ बताएं।

पहली बात तो यह समझ लें कि तीन सिर्फ सीढ़ियां हैं, ध्यान नहीं; ध्यान तो चौथा ही है। द्वार तो चौथा ही है, तीन तो सिर्फ सीढ़ियां हैं। सीढ़ियां द्वार नहीं हैं, सीढ़ियां द्वार तक पहुंचाती हैं। चौथा ही द्वार है--विश्राम, विराम, शून्य, समर्पण, मर जाना, मिट जाना, द्वार तो वही है। और तीन जो सीढ़ियां हैं वे उस द्वार तक पहुंचाती हैं। वे तीन सीढ़ियों का मौलिक आधार एक है कि यदि विश्राम में जाना हो तो पूरे तनाव में जाने के बाद बहुत आसान हो जाता है।

जैसे कोई आदमी दिन भर श्रम करता है तो रात सो पाता है। जितना श्रम, उतनी गहरी नींद। अब कोई पूछ सकता है कि श्रम करने से नींद तो उलटी चीज है। तो जिसने दिन भर श्रम किया है उसे तो नींद आनी ही नहीं चाहिए, क्योंकि श्रम और विश्राम उलटी चीजें हैं। विश्राम तो उसे आना चाहिए जो दिन भर बिस्तर पर पड़ा रहा और विश्राम करता रहा!

लेकिन दिन भर जो बिस्तर पर पड़ा रहा, वह रात सो ही न सकेगा। इसलिए दुनिया में जितनी सुविधा बढ़ती है, जितना कम्फर्ट बढ़ता है, उतनी नींद विदा होती जाती है। दुनिया में जितना आराम बढ़ेगा, उतनी

नींद मुश्किल हो जाएगी। और मजा यह है कि आराम हम इसीलिए बढ़ा रहे हैं कि चैन से सो सकें। न, आराम बढ़ा कि नींद गई। क्योंकि नींद के लिए श्रम जरूरी है। जितना श्रम, उतनी गहरी नींद।

चरम तनाव से चरम विश्राम

ठीक ऐसे ही, जितना तनाव, अगर चरम हो सके, क्लाइमेक्स हो सके, उतना गहरा विश्राम!

तो वे जो तीन सीढ़ियां हैं, बिल्कुल उलटी हैं। ऊपर से तो दिखाई पड़ेगा कि इन तीन में तो हम बहुत श्रम में पड़ रहे हैं--शक्ति लगा रहे, बहुत तनाव पैदा कर रहे, अपने को थका रहे, तूफान में डाल रहे, विक्षिप्त हुए जा रहे--और फिर इनसे कैसे विश्राम आएगा?

इनसे ही आएगा। जितने ऊंचे पहाड़ से गिरेंगे, उतनी गहरी खाई में चले जाएंगे। ध्यान रहे, सब पहाड़ों के पास गहरी खाइयां होती हैं। असल में, पहाड़ बनता ही नहीं बिना गहरी खाई को बनाए। जब पहाड़ उठता है तो नीचे गहरी खाई बन जाती है। जब आप तनाव में जाते हैं तो उसी के किनारे विश्राम की शक्ति इकट्ठी होने लगती है। जितने ऊंचे उठते हैं आप तनाव में... इसलिए मैं कहता हूं कि पूरी ताकत लगा दें, कुछ बचे न, पूरे चुक जाएं, सब भांति सब लगा दें, सब हार जाएं, तो जब गिरेंगे उस ऊंचाई से तो गहरी अतल खाई में डूब जाएंगे। वह विराम और विश्राम होगा। उसी विश्राम के क्षण में ध्यान फलित होता है। मूल आधार तो आपको पूरे तनाव में ले जाना और फिर तनाव को एकदम से छोड़ देना है।

मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं कि अगर हम यह तनाव का कार्य न करें, तो सीधा विश्राम नहीं हो सकता?

नहीं होगा। नहीं होगा; और अगर होगा तो बहुत शैलो, बहुत उथला होगा। गहरे कूदना हो पानी में, तो ऊंचे चढ़ जाना चाहिए। जितने ऊंचे तट से कूदेंगे, उतने पानी में गहरे चले जाएंगे।

ये वृक्ष हैं सरू के, चालीस फीट ऊंचे होंगे। इतनी ही इनकी जड़ें नीचे चली गईं। जितना ऊपर जाना हो वृक्ष को उतनी जड़ें नीचे चली जाती हैं। जितनी जड़ें नीचे जाती हैं, उतना ही वृक्ष ऊपर चला जाता है। अब यह सरू का वृक्ष पूछ सकता है कि छह ही इंच जड़ें भेजें तो कोई हर्जा तो नहीं है? हर्जा कुछ भी नहीं है, छह ही इंच ऊंचे भी जाएंगे। मजे से भेजें, छह इंच भी क्यों भेजते हैं, भेजें ही मत, तो बिल्कुल ही ऊंचे नहीं जाएंगे।

नीत्शे ने कहीं लिखा है और बहुत अंतर्दृष्टि का वाक्य लिखा हैः कि जिन्हें स्वर्ग की ऊंचाई छूनी हो, उन्हें नरक की गहराई भी छूनी पड़ती है।

बहुत अंतर्दृष्टि की बात हैः जिन्हें स्वर्ग की ऊंचाई छूनी हो, उन्हें नरक की गहराई भी छूनी पड़ती है। इसलिए साधारण आदमी कभी भी धर्म की ऊंचाई नहीं छू पाता, पापी अक्सर छू लेते हैं। क्योंकि जो पाप की गहराई में उतरता है, वह पुण्य की ऊंचाई में भी चला जाता है।

यह जो विधि है, एक्सट्रीम्स, अतियों से परिवर्तन की है। सब परिवर्तन अति पर होते हैं। एक अति, और तब परिवर्तन होता है। घड़ी का पेंडुलम देखा आपने? वह जाता है, जाता है--बाएं, बाएं, बाएं! और फिर गिरता है और दाएं जाने लगता है। आपने कभी ख्याल न किया होगा, जब घड़ी का पेंडुलम बाईं तरफ जाता है, तब वह दाईं तरफ जाने की शक्ति अर्जित कर रहा है। जा रहा है बाईं तरफ और ताकत इकट्ठी कर रहा है दाईं तरफ जाने की। जितना बाईं तरफ जाएगा ऊंचा, उतना ही दाईं तरफ डोल सकेगा। तो आपके चित्त के पेंडुलम को जितने तनाव में ले जाया जा सके, फिर जब विराम का क्षण आएगा, उतने ही गहरे विराम में उतर जाएगा। अगर आप तनाव में न ले गए तो विराम में भी नहीं जाएगा।

और लोग बहुत अजीब-अजीब बातें पूछते हैं। ऐसा लगता है कि वे वृक्ष नहीं लगाना चाहते, सिर्फ फूल तोड़ना चाहते हैं। ऐसा लगता है, फसल नहीं बोना चाहते, सिर्फ फल काटना चाहते हैं।

अब एक मित्र आए, वे बोले कि अगर शरीर न हिलाएं, न कंपन हो शरीर में, तो कोई कठिनाई तो नहीं है?

कठिनाई कुछ भी नहीं है। कठिनाई तो कुछ भी न करें तो कोई कठिनाई नहीं है। लेकिन शरीर के कंपन से इतने भयभीत हो रहे हैं, तो जब भीतर के कंपन उठेंगे तो क्या होगा? शरीर के कंपने को रोकना चाहते हैं, तो जब भीतर शक्ति की ऊर्जा कंपेगी तब क्या होगा?

नहीं, वे चाहते हैं कि भीतर कुछ हो जाए, और बाहर सभ्य, सुसंस्कृत, शिष्ट, जैसी शक्ल उन्होंने बनाई है, जो मूर्ति खड़ी कर ली है अपनी, वे वैसे ही मोम के बने खड़े रहें और भीतर कुछ हो जाए। वह नहीं होगा। वह जब भीतर ऊर्जा उठेगी तो यह सब मोम का पुतला बह जाएगा बिल्कुल। यह हटेगा, इसको जगह देनी पड़ेगी।

तनाव अति पर पहुंच जाए, इसकी चेष्टा करें, ताकि फिर विश्रांति अति पर हो सके। विश्रांति फिर अपने आप हो जाएगी। तनाव आप कर लें, विश्रांति प्रभु की कृपा से हो जाएगी। तनाव आप उठा लें, फिर तो लहर गिरेगी और शांति छा जाएगी। तूफान के बाद जैसी शांति होती है वैसी कभी नहीं होती। तूफान उठना जरूरी है। और तूफान के बाद जो शांति होती है वह जिंदा होती है, क्योंकि वह तूफान से पैदा होती है। तो एक जिंदा शांति के लिए जरूरी है, जो मैं कह रहा हूं उसमें कोई चरण छोड़ा नहीं जा सकता। इसलिए मुझसे कोई आकर बार-बार न पूछे कि यह हम छोड़ दें, यह हम छोड़ दें; शरीर को न हिलाएं, सिर्फ श्वास लें; श्वास न चलाएं, सिर्फ "मैं कौन हूं?" यह पूछें। नहीं, वे तीनों चरण बहुत व्यवस्थित रूप से, वैज्ञानिक ढंग से तनाव की एक अति से दूसरी अति पर ले जाने के लिए हैं।

और इसीलिए मैं कहता हूं, एक चरण जब पूरी अति पर पहुंचे तब दूसरे में बदला जा सकता है। जैसे कार के गेयर आप बदलते हैं। अगर पहले गेयर में गाड़ी आपने चलाई है तो गति में लानी पड़ती है। जब पहले गेयर पर गाड़ी पूरी गति में आती है, तब आप उसे दूसरे गेयर में डालते हैं। दूसरे गेयर पर वह मंदी गति में हो तो आप तीसरे गेयर में नहीं डाल सकते हैं गाड़ी को। सब परिवर्तन तीव्रता में होते हैं। चित्त का परिवर्तन भी तीव्रता में होता है।

तीव्र श्वास की चोट का रहस्य

और तीनों का क्या अर्थ है, वह भी समझ लेना चाहिए। पहला चरण, जो कि पूरे समय जारी रहेगा, श्वास को गहरी और तीव्रता से लेने का है। गहरी भी लेना है, डीप भी, और तीव्रता से भी, फास्ट भी। जितनी गहरी जा सके उतनी गहरी लेनी है और जितनी तेजी से यह लेने और छोड़ने का काम हो सके, यह करना है। क्यों? श्वास से क्या होगा?

श्वास मनुष्य के जीवन में सर्वाधिक रहस्यपूर्ण तत्व है। श्वास के ही माध्यम से, सेतु से आत्मा और शरीर जुड़े हैं। इसलिए जब तक श्वास चलती है, हम कहते हैं, आदमी जीवित है। श्वास गई और आदमी गया।

अभी मैं एक घर में गया जहां नौ महीने से एक स्त्री बेहोश पड़ी है। वह कोमा में आ गई है। और चिकित्सक कहते हैं कि अब वह कभी होश में नहीं आएगी। लेकिन कम से कम तीन साल जिंदा रह सकती है अभी और। अब उसको बेहोशी में ही दवा और इंजेक्शन और ग्लूकोज दे-देकर किसी तरह से जिंदा रखे हुए हैं। वह बेहोश पड़ी है। नौ महीने से उसे कभी होश नहीं आया। मैं उनके घर गया, उस स्त्री की मां को मैंने पूछा कि

अब यह तो करीब-करीब मर गई। उन्होंने कहा कि नहीं, जब तक श्वास तब तक आस। उस बूढ़ी औरत ने कहा, जब तक श्वास है तब तक आशा है। अब चिकित्सक कहते हैं, लेकिन कौन जाने! चिकित्सक किसी को कहते हैं कि नहीं मरेगा और वह मर जाता है। कौन जाने, एक दफा होश आ जाए, अभी श्वास तो है। श्वास तो है, अभी सेतु गिरा नहीं, अभी ब्रिज है। अभी वापसी लौटना हो सकता है।

शरीर और श्वास से तादात्म्य विच्छेद

श्वास हमारी आत्मा और शरीर के बीच जोड़नेवाला सेतु है। श्वास को जब आप बहुत तीव्रता में लेते हैं और बहुत गहराई में लेते हैं, तो शरीर ही नहीं कंपता, भीतर के आत्म-तंतु भी कंप जाते हैं। जैसे एक बोतल रखी है। और उसमें बहुत दिनों से कोई चीज भरी रखी है, कभी किसी ने हिलाई नहीं। तो ऐसा पता नहीं चलता कि बोतल और भीतर भरी चीजें दो हैं। बहुत दिनों से रखी है, मालूम होता है एक ही है। बोतल हिला दें जोर से! बोतल हिलती है, भीतर की चीज हिलती है; बोतल और भीतर की चीज के पृथक होने का स्पष्टीकरण होता है।

तो जब श्वास को आप समग्र गति से लेते हैं, तो एक झंझावात पैदा होता है, जो शरीर को भी कंपा जाता है और भीतर आत्मा के तंतुओं को भी कंपा जाता है। उस कंपन के क्षण में ही अहसास होता है दोनों के पृथक होने का।

अब आप मुझसे आकर कहते हैं कि न लें गहरी श्वास तो कोई हर्ज तो नहीं?

हर्ज कुछ भी नहीं। हर्ज इतना ही है कि आप कभी न जान पाएंगे कि शरीर से पृथक हैं। इसीलिए उसमें एक सूत्र और जोड़ा हुआ है कि गहरी श्वास लें और भीतर देखते रहें कि श्वास आई और श्वास गई। जब आप श्वास को देखेंगे कि श्वास आई और श्वास गई, तो न केवल शरीर अलग है, यह पता चलेगा, बल्कि यह भी पता चलेगा कि श्वास भी अलग है; मैं देखनेवाला हूं, अलग हूं। शरीर की पृथकता का पता तो गहरी श्वास के लेने से भी चल जाएगा, लेकिन श्वास से भी भिन्न हूं मैं, इसका पता श्वास के प्रति साक्षी होने से चलेगा। इसलिए पहले चरण में ये दो बातें हैं। ये दोनों अंतिम चरण तक जारी रहेंगी, तीसरे चरण तक।

दूसरे चरण में मनोग्रंथियों का विसर्जन

दूसरे चरण में शरीर को छोड़ देने के लिए मैं कहता हूं। श्वास गहरी ही रहेगी। शरीर को इसलिए छोड़ देने को कहता हूं कि उसके तो बहुत से इंप्लीकेशंस हैं, दो-तीन की बात आपसे करूंगा।

पहली तो बात यह है कि शरीर में हजारों तनाव इकट्ठे आपने कर रखे हैं, जिनका आपको पता ही नहीं है। सभ्यता ने हमें इतना असहज किया है कि जब आपको किसी पर क्रोध आता है तब भी आप मुस्कुराते रहते हैं। शरीर को कुछ पता नहीं है; शरीर तो कहता है कि गर्दन दबा दो इसकी, मुट्ठियां बंधती हैं। लेकिन आप मुस्कुराते रहते हैं, मुट्ठी नहीं बांधते। तो शरीर के जो स्नायु मुट्ठी बांधने के लिए तैयार हो गए थे, वे बड़ी मुश्किल में पड़ जाते हैं। उन्हें पता ही नहीं चलता कि क्या हो रहा है। एक बहुत ही बेचैन स्थिति शरीर में पैदा हो जाती है। मुट्ठी बंधनी चाहिए थी। अभी जो लोग क्रोध के संबंध को बहुत गहराई से समझते हैं, वे कहेंगे, मैं आपसे कहूंगा, अगर आपको क्रोध आए, तो बजाय इसके कि आप झूठे मुस्कुराते रहें, टेबल के नीचे जोर से पांच मिनट मुट्ठियां बांधें और छोड़ें। और तब आपको जो हंसी आएगी, वह बहुत और तरह की होगी।

शरीर को कुछ भी पता नहीं कि आदमी सभ्य हो गया है। शरीर का सारा काम तो बिल्कुल यंत्रवत है। लेकिन आदमी ने सब पर रोक लगा दी है। उस रोक के कारण शरीर में हजारों तनाव इकट्ठे हो गए हैं। और जब

बहुत तनाव इकट्ठे हो जाते हैं, तो कांप्लेक्स पैदा होते हैं, ग्रंथियां पैदा होती हैं। तो जब मैं आपसे कहता हूं, शरीर को पूरी तरह छोड़ दें, तो आपकी हजारों ग्रंथियां जो आपने बचपन से इकट्ठी की हैं, वे सब बिखरनी शुरू होती हैं, पिघलनी शुरू होती हैं। उनका पिघल जाना जरूरी है। अन्यथा आप कभी भी बॉडीलेसनेस, देहातीत न हो पाएंगे। देह जब फूल की तरह हलकी हो जाएगी, सब ग्रंथियों से मुक्त... ।

महावीर का एक नाम शायद आपने सुना हो। महावीर का एक नाम है, निर्ग्रंथ। नाम बड़ा अदभुत है। उसका मतलब है, कांप्लेक्स-लेस। निर्ग्रंथ का मतलब है, जिसकी सारी ग्रंथियां और गांठें खो गईं, जिसमें अब कोई गांठ नहीं भीतर; जो बिल्कुल सरल हो गया, निर्दोष हो गया।

तो यह शरीर की जो ग्रंथियों का जाल है हमारे भीतर, वह मुक्त होना चाहे तो आप छोड़ते नहीं। आपकी सभ्यता, शिष्टता, संस्कार, संकोच, किसी का स्त्री होना, किसी का बड़े पद पर होना, किसी का कुछ, किसी का कुछ होना, वह इस बुरी तरह से पकड़े हुए है कि वह छोड़ता नहीं।

अब आज एक महिला ने मुझे आकर कहा कि उसे यही डर लगा रहता है कि कोई का हाथ उसको न लग जाए! तो वह बेचारी दूर जाकर बैठी होगी आज। मगर कोई दो-चार करवट लेकर उसके पास पहुंच गया। तो उसका फिर गड़बड़ हो गया। वह मुझे पूछने आई थी कि क्या मैं और बहुत दूर जाकर बैठूं?

मैंने कहा, भेजनेवाला वहां भी भेज दे सकता है किसी को। वह अच्छा ही है कि कोई आता ही है। वहां भी आ जाएगा कोई। तुम जहां बैठती हो, वहीं बैठो। किसी का हाथ लग जाएगा तो क्या हो जाएगा?

स्त्रियों की हालत तो ऐसी है कि अगर परमात्मा भी मिले तो वे ऐसी साड़ी बचाकर निकल जाएंगी। वह भी कहीं छू न जाए। उनका सारा का सारा बॉडी, स्त्रियों का तो पूरा शरीर ग्रंथि-ग्रस्त है। बचपन से उसका सारा प्रशिक्षण ऐसा है कि शरीर उनका एक रोग है। शरीर स्त्रियां ढो रही हैं, शरीर में जी नहीं रहीं। वह एक खोल है जिसको पूरे वक्त सुरक्षित करके और ढोए चली जा रही हैं। और कुछ भी बचाने जैसा नहीं है उसमें। तो यह छोटा-छोटा आग्रह हमारा बहुत कुछ रोक...

अब कोई बहुत पढ़े-लिखे हैं तो अब उनको ऐसा लगता है... कोई आज मुझसे एक सज्जन कह रहे थे कि यह इमोशनल लोगों को हो जाता होगा, भावुक लोगों को। इंटेलेक्चुअल को कैसे होगा?

अब कोई दो-चार क्लास पढ़ गया तो वह इंटेलेक्चुअल हो गया! उसकी मां मरेगी तो रोएगा कि नहीं वह? उसका किसी से प्रेम होगा कि नहीं होगा? वह इंटेलेक्चुअल हो गया! वह चार क्लास पढ़ गया, उसने युनिवर्सिटी से सर्टिफिकेट ले लिया है। तो अब वह प्रेम करेगा तो वह सोचकर करेगा कि चुंबन लेना कि नहीं, कितने कीटाणु ट्रांसफर हो जाते हैं! वह किताब पढ़ेगा, वह जाकर हिसाब-किताब लगाएगा कि इमोशनल होना कि नहीं होना।

इंटेलेक्ट भी बीमारी की तरह हो गई है। इंटेलेक्ट कुछ हमारा सौरभ नहीं बन पाई है। बुद्धि हमारी कोई गरिमा नहीं बनी है, रोग बन गई है। कोई सोचता है कि हम इंटेलेक्चुअल हैं, हम बुद्धिवादी हैं; यह हमको नहीं हो सकता। यह तो उनको हो रहा है जो जरा भावुक हैं।

भाव की पहुंच बुद्धि से गहरी

लेकिन भावुक होना कुछ बुरा है? जीवन में जो भी श्रेष्ठ है वह भाव से आता है। बुद्धि से किसी श्रेष्ठता का कोई जन्म न कभी हुआ और न कभी हो सकता है। हां, गणित का हिसाब लगता है, खाते-बही जोड़े जाते हैं, यह

सब होता है। लेकिन जो भी श्रेष्ठ है, और आश्चर्य की बात यह है कि विज्ञान, जिसको हम समझते हैं सबसे बड़ी बौद्धिक प्रक्रिया है, उसमें भी जो श्रेष्ठतम आविष्कार हैं, वे भी भाव से होते हैं, वे भी बुद्धि से नहीं होते।

अगर आइंस्टीन से कोई जाकर पूछे कि कैसे तुमने रिलेटिविटी खोजी? वह कहेगा, मुझे पता नहीं; आ गई। यह बड़ी धार्मिक भाषा है कि आ गई। इट हैपेंड।

अगर क्यूरी से कोई पूछे कि कैसे तुमने यह रेडियम खोज निकाला? तो वह कहेगी, मुझे कुछ पता नहीं, ऐसा हुआ है; हो गया है; मेरे वश की बात नहीं है। अगर बड़े वैज्ञानिक से जाकर पूछें तो वह भी कहेगा, हमारे वश के बाहर हुआ है कुछ; हमारी खोज से नहीं हुआ, हमसे कहीं ऊपर से कुछ हुआ है; हम सिर्फ माध्यम थे, इंस्ट्रूमेंट थे। बड़ी धर्म की भाषा है।

भाव बहुत गहरे में है, बुद्धि बहुत ऊपर है। बुद्धि बहुत कामचलाऊ है। बुद्धि वैसे ही है, जैसे कि गवर्नर की गाड़ी निकलती है और आगे एक पायलट निकलता है। उस पायलट को गवर्नर मत समझ लेना। बुद्धि पायलट से ज्यादा नहीं है। वह रास्ता साफ करती है, लोगों को हटाती है, हिसाब रखती है कि रास्ते पर कोई टक्कर न हो जाए। लेकिन मालिक बहुत पीछे है, वह इमोशन है। जीवन में जो भी सुंदर है, श्रेष्ठ है, वह भाव से जन्मता और पैदा होता है।

लेकिन कुछ लोग पायलट को नमस्कार कर रहे हैं। वे कहते हैं, हम इंटेलेक्चुअल हैं, हम बुद्धिवादी हैं; हम पायलट को ही गवर्नर मानते हैं। मानते रहें, पायलट भी खड़ा होकर हंस रहा है।

बुद्धिवादियों की आत्मवंचना

कुछ लोगों को ख्याल है कि कमजोर लोगों को हो जाता है। हम शक्तिशाली हैं, हमको बहुत मुश्किल है।

उनको पता नहीं, उन्हें कुछ भी पता नहीं। शक्तिशालियों को होता है, कमजोर खड़े रह जाते हैं। क्योंकि एक घंटे तक संकल्पपूर्वक किसी भी स्थिति में होना, बहुत स्ट्रांग विल्ड के लिए संभव है, कमजोरों के लिए नहीं। कमजोर तो दो मिनट गहरी श्वास लेते हैं, फिर बैठ जाते हैं। अब वे दूसरे जो उनको हो रहा है, वे कहते हैं, कमजोरों को हो रहा है। वे घंटे भर गहरी श्वास भी नहीं ले सकते, वे दस मिनट "मैं कौन हूं?" यह भी नहीं पूछ सकते। इस ख्याल में आप मत पड़ना।

लेकिन ये हमारे रेशनलाइजेशंस हैं। ये हमारी बौद्धिक तरकीबें हैं, जिनसे हम अपने को बचाते हैं। हम कहते हैं, जो कमजोर हैं, उनको हो रहा है। हम बहुत ताकतवर हैं; हमको कैसे होगा?

बड़े आश्चर्य की बात है। इस दुनिया में सब चीजें ताकतवरों से होती हैं, कमजोरों से कुछ भी नहीं होता। और ध्यान? ध्यान तो अंतिम ताकत मांगता है। वे कहेंगे यह कि कमजोर को हो रहा है; और उनको इसलिए नहीं हो रहा है कि यह बगलवाला आदमी जोर से रो रहा है, इसलिए उनको नहीं हो पा रहा। और जिसको हो रहा है, वह रोने का उसे पता नहीं; कौन देख रहा है, उसे पता नहीं; कौन सोच रहा है, क्या सोच रहा है, पता नहीं। वह अपनी धुन में पूरा लगा है। उतनी धुन का सातत्य बड़ी शक्ति है। कमजोरों को नहीं होता।

इसलिए अपने अहंकार को व्यर्थ बचाने की कोशिश में मत लगना कि हम ताकतवर हैं, स्ट्रांग विल्ड हैं, हम इंटेलेक्चुअल हैं, हमको नहीं होगा। नहीं होगा, इतना ही जानें। नहीं होने के लिए यह और शक्कर क्यों चढ़ा रहे हैं ऊपर से? इससे न होना भी मीठा लगने लगेगा। और फिर होना हमेशा के लिए असंभव हो जाएगा। इतना ही जानें कि मुझे नहीं हो रहा। नहीं हो रहा, तो कहीं कोई कमजोरी है। उस कमजोरी को पहचानें, समझें और हल करें। उसको बहादुरी न समझें कि हमको नहीं हो रहा तो हम ताकतवर हैं।

अब एक मित्र आए, उन्होंने कहा कि यह तो हिस्टेरिक है। किसी को हिस्टीरिया जैसा हो जाता है।

उन्हें पता नहीं कि जीवन में, जीवन के भीतर क्या-क्या छिपा है! हिस्टेरिक कहकर वे अपने को बचा लेंगे। अब वे समझ लिए कि यह तो ये कुछ विक्षिप्त लोग हैं, जिनको होगा। हम, हम तो विक्षिप्त नहीं हैं। हमको नहीं होगा। तो फिर बुद्ध भी विक्षिप्त थे, और महावीर भी, और जीसस, और सुकरात, और रूमी, और मंसूर--सब विक्षिप्त थे। तो इन विक्षिप्तों की जात में शामिल होना, आप स्वस्थों की जात में शामिल होने से बेहतर है। इन पागलों की जमात में ही शामिल हो जाइए। क्योंकि इन पागलों को जो मिला वह बुद्धिमानों को नहीं मिला।

जब शक्ति बहुत तीव्रता से भीतर उठेगी, तो सारे व्यक्तित्व में तूफान आ जाएगा। वह विक्षिप्तता नहीं है, क्योंकि विक्षिप्तता हो, तो फिर शांत नहीं हो सकती। और जब तीनों चरण के बाद एक क्षण में हम शांत हो जाते हैं, तो हिस्टेरिक नहीं है। क्योंकि हिस्टीरियावाले से कहो कि शांत हो जाओ, अब विश्राम करो, वह उसके वश के बाहर है। जो भी हो रहा है, वह हमारे वश के भीतर हो रहा है; हम कोआपरेट कर रहे हैं, सहयोग कर रहे हैं, इसलिए हो रहा है। इसलिए जिस क्षण अपने सहयोग को अलग कर लेते हैं, वह विदा हो जाता है।

सभ्य लोगों की आंतरिक विक्षिप्तता

विक्षिप्तता और स्वास्थ्य का एक ही लक्षण हैः जिसकी मालकियत हाथ में हो उसको स्वास्थ्य समझना, और जिसकी मालकियत हाथ में न हो उसको विक्षिप्तता समझना। अब यह बड़े मजे का क्राइटेरियन है। अब जो हो रहा है जिनको, जब मैं कहता हूं शांत हो जाएं, वे तत्काल शांत हो गए हैं। और वे जो स्वस्थ बैठे हैं, उनसे मैं कहूं कि अपने विचारों को शांत कर दो, वे कहते हैं, होता ही नहीं; हम कितना ही करें, वे नहीं होते। विक्षिप्त हैं आप, पागल हैं आप। जिस पर आपका वश नहीं है, वह पागलपन है; जिस पर आपका वश है, वह स्वास्थ्य है। जिस दिन आपके विचार ऑन-ऑफ कर सकेंगे आप--कि कह दें मन को कि बस, तो मन वहीं ठहर जाए--तब आप समझना कि स्वस्थ हुए। और आप कह रहे हैं बस, और मन कहता है, कहते रहो; हम जा रहे हैं जहां जाना है; जो कर रहे हैं, कर रहे हैं। सिर पटक रहे हैं, लेकिन वह मन जो करना है, कर रहा है। आप भगवान का भजन कर रहे हैं और मन सिनेमागृह में बैठा है तो वह कहता है--बैठेंगे, यही देखेंगे, करो भजन कितना ही!

लेकिन आदमी बहुत चालाक है और वह अपनी कमजोरियों को भी अच्छे शब्दों में छिपा लेता है और दूसरे की श्रेष्ठताओं को भी बहुत बुरे शब्द देकर निश्चिंत हो जाता है। इससे बचना। सच तो यह है कि दूसरे के संबंध में सोचना ही मत। किस को क्या हो रहा है, कहना बहुत मुश्किल है। जीवन इतना रहस्यपूर्ण है कि दूसरे के संबंध में सोचना ही मत। अपने ही संबंध में सोच लेना, वही काफी है--कि मैं तो पागल नहीं हूं, इतना सोच लेना। मैं कमजोर हूं, ताकतवर हूं, क्या हूं, अपने बाबत सोचना। लेकिन हम सब सदा दूसरों के बाबत सोच रहे हैं कि किस को क्या हो रहा है? गलत है वह बात।

शरीर को पूरी तरह छोड़ देने में, एक तो मैंने कहा, ग्रंथि-रेचन, वे जो रुके हुए अवरोध हैं, वे सब बह जाते हैं। दूसरा, जब शरीर अपनी गति से चलता है--आप नहीं चलाते, अपनी गति से चलता है--तब शरीर की पृथकता बहुत स्पष्ट होती है। क्योंकि आप देख रहे हैं, और शरीर घूम रहा है; आप देख रहे हैं, और शरीर खड़ा हो गया है; आप देख रहे हैं, और हाथ कंप रहा है, आप देख रहे हैं कि मैं नहीं कंपा रहा हूं और हाथ कंप रहा है; तब आपको पहली दफा पता चलता है कि मेरा होना और शरीर का होना कुछ अलग मामला है। तब आपको यह भी पता चल जाएगा कि जवान भी मैं नहीं हुआ, शरीर हुआ है; बूढ़ा भी शरीर होगा, मैं नहीं होऊंगा। और अगर यह गहरा आपको पता चला तो पता चलेगाः मरेगा भी शरीर, मैं नहीं मरूंगा। इसलिए शरीर की

पृथकता बहुत गहरे में दिखाई पड़ेगी जब शरीर यंत्रवत घूमने लगेगा। उसे पूरी तरह छोड़ देना, तभी पता चलेगा।

"मैं कौन हूं?" का तीर

और तीसरा सवाल जो हम पूछते हैं, "मैं कौन हूं?" क्योंकि यह पता चल जाए कि शरीर नहीं हूं, यह भी पता चल जाए कि श्वास नहीं हूं, तब भी यह पता नहीं चलता कि मैं कौन हूं। यह निगेटिव हुआ--शरीर नहीं हूं, श्वास नहीं हूं। यह तो निगेटिव हुआ। लेकिन पाजिटिव? यह अभी पता नहीं चलता कि मैं कौन हूं। इसलिए तीसरा कदम है, जिसमें हम पूछते हैं कि मैं कौन हूं। किस से पूछते हैं? किसी से पूछने को नहीं है। खुद से ही पूछ रहे हैं। अपने को ही पूरी तरह से सवाल से भर रहे हैं कि मैं कौन हूं। जिस दिन यह सवाल पूरी तरह आपके भीतर भर जाएगा, उस दिन आप पाएंगे--उत्तर आ गया, आपके ही भीतर से। क्योंकि यह नहीं हो सकता कि गहरे तल पर आपको पता न हो कि आप कौन हैं। जब हैं, तो यह भी पता होगा कि कौन हैं। लेकिन वहां तक सवाल को ले जाना जरूरी है।

जैसे कि जमीन में पानी है। ऊपर हम खड़े हैं प्यासे, और जमीन में पानी है, लेकिन बीच में तीस फीट की खुदाई करनी जरूरी है। वह तीस फीट खुद जाए तो पानी निकल आए। हमें प्रश्न है कि मैं कौन हूं? जवाब भी कहीं तीस फीट गहरे हममें है, लेकिन बीच में बहुत सी पर्तें हैं जो कट जाएं तो उत्तर मिल जाए। तो वह जो "मैं कौन हूं?" वह कुदाली का काम करता है। "मैं कौन हूं?" उसे जितनी गति से पूछते हैं, खुदाई होती है।

लेकिन पूछ नहीं पाते। कई दफे बड़ी अदभुत घटना... एक मित्र को सुबह एक अदभुत घटना दो दिन से घटती है। वह बहुत समझने जैसी है। वे बड़ी ताकत से पूछते हैं, वे पूरा श्रम लगाते हैं। उनके श्रम में कोई कमी नहीं है। उनके संकल्प में कोई कमी नहीं है, लेकिन मन की कितनी पर्तें हैं! ऊपर से पूछते जाते हैं, "मैं कौन हूं?" इतने जोर से पूछते हैं कि उनका ऊपर भी निकलने लगता है कि "मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं?" और इसमें बीच-बीच में एक-एक दफा यह भी आवाज आती है--इससे क्या होगा, इससे क्या होगा। "मैं कौन हूं?" यह भी पूछते चले जाते हैं, और बीच में कभी-कभी यह भी मुंह से निकलता है, "इससे क्या होगा।" यह कौन कह रहा है? "मैं कौन हूं?" पूछ रहे हैं; "इससे क्या होगा", यह कौन कह रहा है? यह मन की दूसरी पर्त कह रही है। वह कह रही हैः कुछ भी न होगा। क्यों पूछ रहे हो? चुप हो जाओ। मन की एक पर्त पूछ रही है, मैं कौन हूं? दूसरी पर्त कह रही है, कुछ भी न होगा, चुप हो जाओ, क्या पूछ रहे हो!

अगर मन में खंड-खंड रह गए तो फिर भीतर न घुस पाएंगे। इसलिए मैं कहता हूं--पूरी ताकत लगाकर पूछना है। ताकि पूरा मन धीरे-धीरे इनवाल्वड हो जाए, और पूरा मन ही पूछने लगे कि मैं कौन हूं? जिस क्षण प्रश्न ही रह जाएगा--सिर्फ प्रश्न, तीर की तरह भीतर उतरता--उस दिन उत्तर आने में देर न लगेगी। उत्तर आ जाएगा। उत्तर भीतर है।

तीन चरण आप करेंगे, चौथा होगा

ज्ञान भीतर है। हमने कभी पूछा नहीं, हमने कभी जगाया नहीं; वह जगने को तैयार है। इसलिए ये तीन चरण। लेकिन ये तीन दरवाजे के बाहर की बातें हैं; दरवाजे तक छोड़ देती हैं। दरवाजे के भीतर तो प्रवेश चौथे चरण में होगा। लेकिन जो तीन सीढ़ियां नहीं चढ़ा वह दरवाजे में प्रवेश भी नहीं कर सकेगा।

इसलिए ध्यान रखें, कल तो अंतिम दिन है हमारा, कल पूरी ताकत लगानी जरूरी है। इन तीन चरणों में पूरी ताकत लगाएं, तो चौथा चरण घटित हो जाएगा। वह चौथा आप करेंगे नहीं, वह होगा; तीन आप करेंगे, चौथा होगा।

प्रश्नः चौथा चरण हो जाने के बाद पहले तीन चरण छूट जाएंगे?

फिर कोई सवाल नहीं है। चौथा हो जाए, फिर कोई सवाल नहीं है। फिर जैसा जरूरी लगेगा वह दिखाई पड़ेगा। करने जैसा लगेगा तो जारी रहेगा, नहीं करने जैसा लगेगा तो छूट जाएगा। लेकिन वह भी पहले से नहीं कहा जा सकता। और इसलिए नहीं कहा जा सकता है कि पहले से यह सवाल जब हम पूछते हैं कि जब चौथा हो जाएगा तो वे तीन छूट जाएंगे न? तो अभी भी हमारा मन उन तीन को नहीं करना चाह रहा, इसलिए पूछता है। उन तीन से छूटने की बड़ी इच्छा है!

तो मैं नहीं कहूंगा कि छूट जाएंगे। क्योंकि अगर मैं यह कह दूं कि छूट जाएंगे, तो अभी ही नहीं पकड़ पाएंगे उनको आप। छूट जाएंगे, लेकिन वह चौथे के बाद की बात है, पहले बात नहीं उठानी चाहिए।

हमारा मन बहुत तरह से डिसीव करता है, वंचना करता है। जब पूछ रही हो तो तुम्हें ख्याल नहीं है कि तुम क्यों पूछ रही हो। बिल्कुल इसलिए पूछ रही हो कि ये तीन से किस तरह छुटकारा हो। इन तीन से छुटकारा अगर होगा तो चौथा पैदा ही नहीं होनेवाला! और इन तीन का भय क्यों है? इनका भय है। और वही भय मिटाने के लिए तो वे तीन हैं।

दमित वृत्तियों के रेचन का साहस

इनका भय है कि शरीर कुछ भी कर सकता है। शरीर कुछ भी कर सकता है। तो कहीं ऐसा कुछ न कर दे। पर क्या करेगा शरीर? नाच सकती हो, रो सकती हो, चिल्ला सकती हो, गिरोगी।

असल कठिनाई यह है कि पहले चरण पर श्वास जारी करो। दूसरे चरण पर श्वास जारी रखो और शरीर को ढीला छोड़ दो। श्वास से और शरीर के ढीले छोड़ने में कोई बाधा नहीं है, किसी तरह की बाधा नहीं है। श्वास गहरी रहेगी, शरीर... तुम्हें करना थोड़े ही है कि तुम नाचो। अगर तुम नाचो तो फिर श्वास में बाधा पड़ेगी। लेकिन अगर नाचना हो जाए तो श्वास में कोई बाधा नहीं पड़ेगी। तुम्हें नहीं नाचना है। नाचना हो जाए तो हो जाए। वह जो होता हो, हो जाए।

हमारी कठिनाई यह है कि या तो हम रोकेंगे या हम करेंगे, होने हम न देंगे। दो में से हम कुछ भी करने को राजी हैंः या तो हम नाचने को रोक लेंगे या फिर हम नाच सकते हैं। लेकिन हम होने न देंगे। इसका भी डर है, बहुत डर है। आदमी की पूरी सभ्यता सप्रेसिव है। हमने बहुत चीजें दबाई हुई हैं और हमें डर है कि वे सब निकल न आएं। हम बहुत भयभीत हैं। हम ज्वालामुखी पर बैठे हैं। बहुत डर है हमें। नाचने का ही सवाल नहीं है। डर बहुत गहरे हैं।

हमने खुद को इतना दबाया है कि हमें बहुत पता है कि क्या-क्या निकल सकता है उसमें। बेटे ने बाप की हत्या करनी चाही है। डरा हुआ है कि कहीं यह ख्याल न निकल आए। पति ने पत्नी की गर्दन दबा देनी चाही है। हालांकि गर्दन जब दबाना चाह रहा था, तब भी वह कहता रहा कि तेरे बिना मैं एक क्षण नहीं जी सकता। और

उसकी गर्दन भी दबा देनी चाही थी। वह उसने दबाया हुआ है भीतर; उसे डर लगता है कि किसी क्षण में यह निकल न आए।

गुरजिएफ एक फकीर था, और इस जमाने में कुछ कीमती लोगों में से एक था। उसके पास आप जाते, तो पहला काम वह यह करता कि पंद्रह दिन तो आपको शराब पिलाता, रात-रात आपको शराब पिलाता। और जब तक पंद्रह दिन आपको वह शराब पिला-पिलाकर आपकी स्टडी न कर लेता, तब तक वह आपको साधना में न ले जाता। क्योंकि पंद्रह दिन वह शराब पिला-पिला कर आपके सब दमित रोगों को निकलवा लेता, और पहचान लेता कि आदमी कैसे हो, क्या-क्या दबाया है, तब वह इसके बाद साधना में लगाता। और अगर कोई कहता कि नहीं, यह पंद्रह दिन हम शराब पीने को राजी नहीं, तो वह कहताः दरवाजा खुला है, एकदम बाहर हो जाओ।

शायद ही दुनिया में किसी फकीर ने शराब पिलाई हो। लेकिन वह समझदार था; उसकी समझ कीमती थी; और वह ठीक कर रहा था। क्योंकि हमने बहुत दबाया है; हमारे दमन का कोई हिसाब नहीं है; कोई अंत नहीं है हमारे दमन का।

उस दमन की वजह से हम डरते हैं कि कहीं कुछ प्रकट न हो जाए, कहीं मुंह से कोई बात न निकल जाए; कहीं ऐसा न हो जाए कि जो बात नहीं कहनी थी, नहीं बतानी थी, वह आ जाए।

अब किसी ने चोरी की है, तो वह पूछने से डरेगा कि मैं कौन हूं। क्योंकि मन कहेगा कि तुम चोर हो। यह जोर से निकल सकता है कि चोर हो, बेईमान हो, काला-बाजारी हो। यह कहीं न निकल जाए। तो वह तो कहेगा कि पूछना कि नहीं? जरा धीरे-धीरे पूछो कि मैं कौन हूं! क्योंकि पता तो है कि मैं कौन हूं! मैं चोर हूं। तो वह दबा रहा है उसे। तो वह डर रहा है, वह धीरे-धीरे पूछ रहा है कि यह बगलवाले को कहीं सुनाई न पड़ जाए! कहीं यह मुंह से निकल जाए कि मैंने चोरी की है! यह निकल सकता है, इसमें कोई कठिनाई नहीं है बहुत।

तो हमारे कारण हैं, हमारे पूछने के कारण हैं कि हम क्यों पूछते हैं कि ये जल्दी छूट जाएं, न करने पड़ें। लेकिन नहीं, छूटने से नहीं। करने ही पड़ेंगे। छूट सकते हैं, करने से छूटेंगे। और भीतर से जो आता है उसे आने दें। वहां बहुत गंदगी छिपी है, वह बाहर आएगी। हमने एक चेहरा ऊपर बनाया है, वह हमारा असली चेहरा नहीं है। तो हम डरते हैं।

नकली चेहरों का प्रकटीकरण

अब एक आदमी अपना चेहरा लीप-पोत कर किसी तरह बनाकर बैठा हुआ है। अब वह डरता है कि अगर छोड़ा तो चेहरा कुरूप हो जाता है। तो वह डरता है कि यह कुरूप चेहरा कोई देख न ले। क्योंकि वह तो कितना आईने में तैयार होकर आया है घर से। अब वह डरता है कि कहीं मैंने चेहरा बिल्कुल छोड़ दिया तो चेहरा कुरूप भी हो सकता है। और जब छोडूंगा तो पाउडर और लिपिस्टिक उस पर काम नहीं पड़ेंगे, वे एकदम गड़बड़ हो जाएंगे। असली चेहरा निकल सकता है। तो वह डरेगा, वह कहेगा कि नहीं, और सब छोड़ा जा सकता है, लेकिन चेहरे को नहीं छोड़ा जा सकता। उसको किसी तरह बनाकर... और हमारे सब चेहरे मेकअप के चेहरे हैं, असली चेहरे नहीं हैं। और ऐसा मत सोचना कि जो पाउडर नहीं लगाते, उनके मेकअप के नहीं हैं। मेकअप बहुत गहरा है, बिना पाउडर के भी चलता है।

तो असली चेहरा निकल आएगा। अब असली चेहरा निकल आए तो घबड़ाहट हो सकती है, कोई देख न ले। इसलिए हमारे डर हैं। लेकिन ये डर खतरनाक हैं। इन डरों को लेकर भीतर नहीं जाया जा सकता है। ये डर छोड़ने पड़ेंगे।

शक्तिपात और अहंशून्य माध्यम

एक अंतिम सवालः एक मित्र पूछते हैं कि शक्तिपात है? क्या कोई शक्तिपात कर सकता है?

कोई कर नहीं सकता, लेकिन किसी से हो सकता है। कोई कर नहीं सकता। और अगर कोई कहता हो कि मैं शक्तिपात करता हूं, तो फिर सब धोखे की बातें हैं। कोई कर नहीं सकता, लेकिन किसी क्षण में किसी से हो सकता है। अगर कोई बहुत शून्य व्यक्ति है, सब भांति समर्पित, सब भांति शून्य, तो उसके सान्निध्य में शक्तिपात हो सकता है। वह कंडक्टर का काम कर सकता है--जानकर नहीं। परमात्मा की विराट शक्ति उसके माध्यम से किसी दूसरे में प्रवेश कर सकती है।

लेकिन कोई जानकर कंडक्टर नहीं बन सकता, क्योंकि कंडक्टर बनने की पहली शर्त यह है कि आपको पता न हो; ईगो न हो। नहीं तो नॉन-कंडक्टर हो जाते हैं फौरन। जहां ईगो है बीच में, वहां आदमी नॉन-कंडक्टर हो गया, फिर वहां से शक्ति प्रवाहित नहीं होती। तो अगर ऐसे व्यक्ति के पास जो समग्र भांति भीतर से शून्य है, और जो कुछ नहीं करना चाहता आपके लिए--कुछ करता ही नहीं वह--उसके वैक्यूम से, उसके शून्य से, उसके द्वार से, उसके मार्ग से परमात्मा की शक्ति आप तक पहुंच सकती है; और गति बहुत तीव्र हो सकती है। कल दोपहर के मौन में इसको ख्याल में लें।

तो कल के लिए दो सूचनाएं भी मैं इसके साथ दे दूं।

शक्तिपात का अर्थ है कि परमात्मा की शक्ति आप पर उतर गई। शक्ति दो तरह से संभव है--या तो आपसे शक्ति उठे और परमात्मा तक मिल जाए, या परमात्मा से शक्ति आए और आप तक मिल जाए। बात एक ही है; दो तरफ से देखने के ढंग हैं। वह वैसे ही, जैसे कोई गिलास में आधा गिलास पानी भरा रखा हो, और कोई कहे कि आधा गिलास खाली, और कोई कहे आधा गिलास भरा। और अगर पंडित हों तो विवाद करें, और तय न हो पाए कभी भी कि क्या मामला है! क्योंकि दोनों ही बातें सही हैं।

ऊपर से भी शक्ति उतरती है और नीचे से भी शक्ति जाती है। और जब उनका मिलन होता है, जहां आपके भीतर सोई हुई ऊर्जा विराट की ऊर्जा से मिलती है, तब एक्सप्लोजन, विस्फोट हो जाता है। उस विस्फोट के लिए कोई भविष्यवाणी नहीं की जा सकती। उस विस्फोट से क्या होगा, यह भी नहीं कहा जा सकता। उस विस्फोट के बाद क्या होगा, यह भी नहीं कहा जा सकता। वैसे उस विस्फोट के बाद, दुनिया में जिन लोगों को भी वह विस्फोट हुआ है, वे जिंदगी भर यही चिल्लाते रहे कि आओ और तुम भी उस विस्फोट से गुजर जाओ। कुछ हुआ है जो अनिर्वचनीय है।

शक्तिपात का अर्थ है, ऊपर से शक्ति आ जाए। आ सकती है। रोज आती है। और किसी ऐसे व्यक्ति के माध्यम को ले सकती है वह शक्ति जो सब भांति शून्य हो। तो वह कंडक्टर हो जाता है, और कुछ भी नहीं। लेकिन अगर अहंकार थोड़ा भी है, इतना भी कि मैं कर दूंगा शक्तिपात, तो नॉन-कंडक्टर हो गया वह आदमी, उससे शक्ति नहीं प्रवाहित होगी।

खड़े होकर प्रयोग करने से गति तीव्रतम

सुबह के लिए और सांझ के लिए दो सूचनाएं ख्याल में ले लें। कल आखिरी दिन है, और बहुत कुछ संभव हो सकता है। और बहुत संभावनाओं से भरकर ही कल सुबह प्रयोग करना है।

एक तो, जिन लोगों को कुछ भी हो रहा है, कल सुबह वे खड़े होकर प्रयोग करेंगे। जिनको कुछ भी हो रहा है, जिनको थोड़ा भी शरीर में कहीं भी कुछ हो रहा है, कल वे सुबह खड़े होकर प्रयोग करेंगे, क्योंकि खड़े होकर तीव्रतम गति संभव होती है। यह आपको पता न होगा कि महावीर ने सारा ध्यान खड़े होकर किया। खड़ी हालत में तीव्रतम प्रवाह होता है। मैं आपको इसलिए अब तक खड़े होने के लिए नहीं कहा कि आप बैठे की ही हिम्मत नहीं जुटा पाते तो खड़े की हिम्मत कैसे जुटा पाएंगे। खड़े होने पर बहुत जोर से शक्ति का आघात होता है। तो वह जो मैं कह रहा हूं कि नाच उठ सकते हैं, बिल्कुल पागल होकर नाच सकते हैं, वह खड़े होने में संभव हो जाता है।

तो कल चूंकि आखिरी दिन है, और कुछ दस-पच्चीस मित्रों को तो बहुत गहराई हुई है, तो वे तो कल खड़े हो जाएं। मैं नाम नहीं लूंगा, अपने आप आप खड़े हो जाएं। और शुरू से ही खड़े होकर करना है। कुछ लोग, जिनको बीच में लगेगा, वे भी खड़े हो जाएंगे। और खड़े होकर जो भी होता हो, होने देना है।

और दोपहर के लिए, कल दोपहर के मौन में जब हम बैठेंगे, तो मेरे पास थोड़ी ज्यादा जगह छोड़ना। और मेरे पास जो लोग भी आएंगे, जब मैं उनके सिर पर हाथ रखूं, तब उनको जो भी हो, तब उन्हें उसमें भी होने देना है। अगर उनके मुंह से चीख निकल जाए, हाथ-पैर हिलने लगें, वे गिर पड़ें, खड़े हो जाएं; उन्हें जो भी हो वह होने देना है। जो हम सुबह ध्यान में कर रहे हैं, वह दोपहर के मौन में, जो मुझसे मिलने आएंगे, मेरे हाथ रखने पर उनको जो कुछ भी हो, उन्हें हो जाने देना है। इसलिए मेरे पास थोड़ी कल दोपहर ज्यादा जगह छोड़कर बैठेंगे।

और सुबह, जिनको भी हिम्मत हो उनको खड़े होकर ही सुबह का प्रयोग करना है। मेरे आने के पहले ही आप चुपचाप खड़े रहें। कोई सहारा लेकर खड़ा नहीं होगा, कि आप कोई वृक्ष से टिककर खड़े हो जाएं, कोई सहारा लेकर खड़ा नहीं होगा, सीधे आप खड़े रहेंगे।

शक्तिपात की बात आपने पूछी है। खड़ी हालत में बहुत लोगों को शक्तिपात की स्थिति हो सकती है। और वातावरण बना है, उसका पूरा उपयोग किया जा सकता है। तो कल, चूंकि आखिरी दिन होगा शिविर का, कल पूरी शक्ति लगा देनी है।

इस प्रयोग का शारीरिक व मानसिक परिणाम

प्रश्नः जो तीन चरण अभी आपने कहे, उनका बॉडी के ऊपर, हार्ट के ऊपर, नर्वस सिस्टम और ब्रेन के ऊपर, फिजिकल और मेंटल क्या असर होता है?

बहुत से असर पड़ते हैं।

प्रश्नः हार्टफेल तो नहीं हो जाएगा?

हार्टफेल हो जाए तो मजा ही आ जाए, फिर क्या है! वही तो फेल नहीं होता, उसे हो जाने दें। हो जाने दें, हार्ट फेल हो जाए, फिर तो मजा ही है, फिर क्या है। उसको बचाए फिरिएगा, फिर होगा तो फेल। मत बचाइए, हो जाने दीजिए। और इतना तो आनंद रहेगा कि भगवान के रास्ते पर हुआ। उतना काफी है।

वे मित्र पूछते हैं कि क्या-क्या परिणाम होंगे?

बहुत, परिणाम तो बहुत होंगे। ध्यान के, जिस प्रयोग को मैं कह रहा हूं ध्यान, उससे शरीर पर बहुत फिजियोलाजिकल परिणाम होंगे। शरीर की बहुत सी बीमारियां विदा हो सकती हैं, शरीर की उम्र बढ़ सकती है, केमिकल बहुत परिवर्तन होंगे। शरीर में बहुत सी ग्रंथियां हैं जो करीब-करीब मृतप्राय पड़ी रहती हैं, वे सब सक्रिय हो सकती हैं।

जैसे हमें ख्याल नहीं है, अभी मनोवैज्ञानिक कहते हैं, फिजियोलाजिस्ट भी कहते हैं, कि क्रोध में शरीर में विशेष तरह के विष छूट जाते हैं। लेकिन अभी तक मनोवैज्ञानिक और फिजियोलाजिस्ट यह नहीं बता पाते कि प्रेम में क्या होता है। क्रोध में तो विशेष प्रकार के केमिकल शरीर में छूट जाते हैं, विष छूट जाते हैं। सारा शरीर विषाक्त हो जाता है। प्रेम में भी अमृत छूटता है। लेकिन चूंकि मुश्किल से कभी छूटता है, इसलिए फिजियोलाजिस्ट की लेबोरेटरी में अभी वह आदमी नहीं पहुंचा, इसलिए उसे पता नहीं चल पाता।

अगर ध्यान का पूरा परिणाम हो, तो शरीर में जैसे क्रोध में विष छूटता है, ऐसे प्रेम के अमृत रस छूटने शुरू हो जाते हैं। केमिकल परिणाम और भी गहरे होते हैं। जैसे कि जो लोग भी ध्यान में थोड़े गहरे उतरते हैं उन्हें अदभुत रंग दिखाई पड़ते हैं, अदभुत सुगंधें मालूम पड़ने लगती हैं, अदभुत ध्वनियां सुनाई पड़ने लगती हैं, प्रकाश की धाराएं बहने लगती हैं, नाद सुनाई पड़ने लगते हैं। ये सबके सब केमिकल परिणाम हैं। ऐसे रंग जो आपने कभी नहीं देखे, दिखाई पड़ने लगते हैं। शरीर की पूरी केमिस्ट्री बदलती है। शरीर और ढंग से देखना, सोचना, पहचानना शुरू कर देता है। शरीर के भीतर बहनेवाली विद्युत-धारा की सारी धाराएं बदल जाती हैं। उन विद्युत-धाराओं के सारे सर्किट बदल जाते हैं।

बहुत कुछ होता है शरीर के भीतर। मानसिक तल पर भी बहुत कुछ होता है। लेकिन वह विस्तार की बात है। वे जो मित्र पूछते हैं, उनसे कभी अलग से बात कर लूंगा। बहुत कुछ संभावनाएं हैं।

गहरी श्वास का रासायनिक प्रभाव

प्रश्नः डीप ब्रीदिंग का ब्रेन के ऊपर और नर्वस सिस्टम के ऊपर क्या असर पड़ता है?

जैसे ही शरीर में डीप ब्रीदिंग शुरू करेंगे तो कार्बन डाइआक्साइड और आक्सीजन की मात्राओं का जो अनुपात है, वह बदल जाएगा। जो मात्रा हमारे भीतर कार्बन डाइआक्साइड की है और आक्सीजन की है, उसका अनुपात बदलेगा सबसे पहले। और जैसे ही कार्बन डाइआक्साइड का अनुपात बदलता है वैसे ही सारे मस्तिष्क और सारे शरीर और खून और स्नायुओं में, सब में परिवर्तन शुरू हो जाएगा। क्योंकि हमारे व्यक्तित्व का सारा आधार आक्सीजन और कार्बन डाइआक्साइड के विशेष अनुपात हैं। उनके अनुपात में परिवर्तन सारा परिवर्तन ले आएगा।

तो इसीलिए मैंने कहा कि वह अलग से आप आ जाएं, वह तो टेक्निकल बात है, उस सबको उसमें कोई रस नहीं भी हो सकता, तो आपसे बात कर लूंगा।

ध्यान का प्रयोग और आत्म-सम्मोहन

और एक मित्र ने इधर पूछा है कि यह जो ध्यान की बात है, यह कहीं आटो-हिप्नोसिस, आत्म-सम्मोहन तो नहीं?

आत्म-सम्मोहन से बहुत दूर तक मेल है, आखिरी बिंदु पर रास्ता अलग हो जाता है। हिप्नोसिस से बहुत दूर तक संबंध है। सारे तीनों चरण हिप्नोसिस के हैं, सिर्फ साक्षी-भाव हिप्नोसिस का नहीं है। वह जो पीछे पूरे समय विटनेसिंग चाहिए--कि मैं जान रहा हूं, देख रहा हूं कि श्वास आई और गई; मैं जान रहा हूं, देख रहा हूं कि शरीर कंपित हो रहा है, घूम रहा है। मैं जान रहा हूं, देख रहा हूं--यह जो भाव है, वह सम्मोहन का नहीं है। वही फर्क है। और वह बहुत बुनियादी फर्क है। बाकी तो सारा सम्मोहन की प्रक्रिया है।

सम्मोहन की प्रक्रिया बड़ी कीमती है, अगर वह साक्षी-भाव से जुड़ जाए तो ध्यान बन जाती है; और अगर साक्षी-भाव से अलग हो जाए तो मूर्च्छा बन जाती है। अगर सिर्फ हिप्नोसिस का उपयोग करें तो बेहोश हो जाएंगे; अगर साक्षी-भाव का भी साथ में उपयोग करें, तो जाग्रत हो जाएंगे। फर्क दोनों में बहुत है, लेकिन रास्ता बहुत दूर तक एक सा है, आखिरी बिंदु पर अलग हो जाता है।

और कुछ प्रश्न रह गए, वह कल रात हम बात कर लेंगे।

पांचवां प्रवचन

कुंडलिनी, शक्तिपात व प्रभु प्रसाद

मेरे प्रिय आत्मन्!

बहुत आशा और संकल्प से भरकर आज का प्रयोग करें। जानें कि होगा ही। जैसे सूर्य निकला है, ऐसे ही भीतर भी प्रकाश फैलेगा। जैसे सुबह फूल खिले हैं, ऐसे ही आनंद के फूल भीतर भी खिलेंगे। पूरी आशा से जो चलता है वह पहुंच जाता है, और जो पूरी प्यास से पुकारता है उसे मिल जाता है।

जो मित्र खड़े हो सकते हों, वे खड़े होकर ही प्रयोग को करेंगे। जो मित्र खड़े हैं, उनके आसपास जो लोग बैठे हैं, वे थोड़ा हट जाएंगे... कोई गिरे तो किसी के ऊपर न गिर जाए। खड़े होने पर बहुत जोर से क्रिया होगी--शरीर पूरा नाचने लगेगा आनंदमग्न होकर। इसलिए पास कोई बैठा हो, वह हट जाए। जो मित्र खड़े हैं, उनके आसपास थोड़ी जगह छोड़ दें--शीघ्रता से। और पूरा साहस करना है, जरा भी अपने भीतर कोई कमी नहीं छोड़ देनी है।

पहला चरण

आंख बंद कर लें... गहरी श्वास लेना शुरू करें--गहरी श्वास लें और गहरी श्वास छोड़ें... और भीतर देखते रहें--श्वास आई, श्वास गई। गहरी श्वास लें, गहरी श्वास छोड़ें।

(प्रयोग शुरू करते ही चारों तरफ अनेक स्त्री और पुरुष साधक रोने, चिल्लाने और चीखने लगे। बहुत लोगों का शरीर कंपने लगा और अनेक तरह की क्रियाएं होने लगीं।)

... गहरी श्वास लें, गहरी श्वास छोड़ें...

(बहुत से साधक अनेक तरह से नाचने, कूदने, उछलने, रोने, चीखने और चिल्लाने लगे, साथ ही अनेक मुंह से अनेक प्रकार की आवाजें निकलने लगीं। ओशो का सुझाव देना चलता रहा...)

गहरी श्वास लें, गहरी श्वास छोड़ें... गहरी श्वास लें, गहरी श्वास छोड़ें... शक्ति पूरी लगाएं। दस मिनट के लिए गहरी श्वास लें और गहरी श्वास छोड़ें। ... गहरी श्वास लें, गहरी श्वास छोड़ें... गहरी श्वास लें, गहरी श्वास छोड़ें। पूरी शक्ति लगाएं... गहरी श्वास लें, गहरी श्वास छोड़ें--और भीतर देखते रहें...

(चीत्कार... चीख... इत्यादि)

गहरी श्वास लें, गहरी श्वास छोड़ें... गहरी श्वास लें, गहरी श्वास छोड़ें... और भीतर देखते रहें--श्वास आ रही, श्वास जा रही। ... शक्ति पूरी लगा दें... और गहरी... और गहरी... और गहरी... श्वास में पूरी शक्ति लगा दें। एक दस मिनट पूरी शक्ति लगा दें। ... गहरी श्वास... गहरी श्वास... गहरी श्वास...

(लोगों का चीखना, चिल्लाना, हंसना...)

गहरी श्वास... गहरी श्वास... गहरी श्वास... गहरी श्वास... गहरी श्वास... गहरी श्वास... भीतर देखते रहें--श्वास आई, श्वास गई... शक्ति पूरी लगा दें। कुछ भी बचाएं नहीं, शक्ति पूरी लगा दें। गहरी श्वास... गहरी श्वास... गहरी श्वास... गहरी श्वास... गहरी श्वास। शरीर एक ऊर्जा का पुंज मात्र रह जाएगा। श्वास ही श्वास रह जाएगी। शरीर एक विद्युत बन जाएगा। गहरी श्वास...

(रोना, चीखना इत्यादि...)

गहरी श्वास... गहरी श्वास... गहरी श्वास... गहरी श्वास... गहरी श्वास... कोई पीछे न रहे, पूरी शक्ति लगा दें। गहरी श्वास... गहरी श्वास... गहरी श्वास...

(साधकों का हंसना, बड़बड़ाना, हुंकार करना, चीखना, नाचना, कूदना...)

गहरी श्वास... गहरी श्वास... गहरी श्वास... पांच मिनट बचे हैं, पूरी शक्ति लगाएं... फिर हम दूसरे सूत्र में प्रवेश करेंगे... गहरी श्वास... गहरी श्वास... गहरी श्वास... गहरी श्वास... गहरी श्वास... गहरी श्वास...

(बीच-बीच में अनेक साधकों का चीखना, उछलना और मुंह से अनेक तरह की आवाजें निकालना...)

शरीर सिर्फ एक यंत्र रह जाए, श्वास लेने का यंत्र मात्र रह जाए... सिर्फ श्वास ही रह जाएं... गहरी श्वास... गहरी श्वास... गहरी श्वास... गहरी श्वास... पूरी शक्ति लगा दें... गहरी श्वास... पूरी शक्ति लगा दें... गहरी श्वास... गहरी श्वास... सिर्फ श्वास ही रह गई है, सिर्फ श्वास ही रह गई है... कमजोरी न करें, रुकें न, ताकत पूरी लगा दें... कुछ बचाएं न, ताकत पूरी लगा दें... शक्ति पूरी लगा दें... शक्ति पूरी लगा दें... शक्ति पूरी लगा दें...

(साधकों का तीव्र आवाजें निकालना और हांफना... चिल्लाना, उछलना, कूदना...)

शक्ति पूरी लगा दें... पीछे न रुकें... पीछे न रुकें... यह पूरा वातावरण चार्ज्ड हो जाएगा। शक्ति पूरी लगा दें... घटना घटेगी ही। शक्ति पूरी लगा दें... गहरी श्वास... और गहरी श्वास... और गहरी श्वास... और गहरी श्वास... और गहरी श्वास... और गहरी श्वास... शक्ति पूरी लगाएं... देखें, रुकें न। मैं आपके पास ही आकर कह रहा हूं--शक्ति पूरी लगा दें। पीछे कहने को न हो कि नहीं हुआ...

पूरी शक्ति लगाएं... पूरी शक्ति लगाएं... पूरी शक्ति लगाएं... पूरी शक्ति लगाएं... गहरी श्वास... और गहरी... और गहरी... जितनी गहरी श्वास होगी, सोई हुई शक्ति के जगने में सहायता मिलेगी... कुंडलिनी ऊपर की ओर उठने लगेगी। गहरी श्वास लें... गहरी श्वास लें... गहरी श्वास लें... गहरी श्वास लें...

(कुछ लोगों का जोर से रोना, चीखना...)

कुंडलिनी ऊपर की ओर उठनी शुरू होगी... गहरी श्वास लें... शक्ति ऊपर उठने लगेगी... गहरी श्वास लें... गहरी श्वास लें...

(एक साधक का तीव्रतम आवाज में चीत्कार करना--क्काऽऽऽऽऽ... क्काऽऽऽऽऽ... चारों ओर साधक अनेक प्रकार की प्रक्रियाओं में संलग्न हैं। किसी को योगासन हो रहे हैं, किसी को अनेक प्रकार के प्राणायाम हो रहे हैं,

किसी को अनेक मुद्राएं हो रही हैं, कई हंस रहे हैं, कई रो रहे हैं। चारों ओर एक अजीब सा दृश्य उपस्थित हो गया है। ओशो कुछ देर चुप रहकर फिर साधकों को प्रोत्साहन देने लगते हैं...)

दो मिनट बचे हैं, पूरी ताकत लगाएं... गहरी श्वास... गहरी श्वास... कुंडलिनी उठने लगेगी... गहरी श्वास लें... गहरी श्वास लें... गहरी श्वास लें... गहरी श्वास लें... गहरी श्वास लें... जितनी गहरी ले सकें लें। दो मिनट बचे हैं, पूरी ताकत लगाएं। फिर हम दूसरे सूत्र में प्रवेश करेंगे... गहरी श्वास... गहरी श्वास... भीतर कुछ उठ रहा है, उसे उठने दें... गहरी श्वास... गहरी श्वास... गहरी श्वास... गहरी श्वास... गहरी श्वास... गहरी श्वास...

(कुछ साधकों का चीखना, अनेक तरह की आवाजें निकालना और नाचना...)

एक मिनट बचा है, पूरी शक्ति लगाएं, फिर हम दूसरे सूत्र में जाएंगे... गहरी श्वास... ताकत पूरी लगा दें... ताकत पूरी लगा दें... ताकत पूरी लगा दें... भीतर शक्ति उठ रही है, छोड़ें नहीं अपने को... ताकत पूरी लगा दें... गहरी... और गहरी... और गहरी... और गहरी... कूद पड़ें, पूरी ताकत लगा दें... सारी शक्ति लगा दें... गहरी... गहरी... गहरी श्वास... गहरी श्वास... गहरी श्वास... गहरी श्वास... श्वास की चोट होने दें भीतर, सोई हुई शक्ति उठेगी... गहरी श्वास... गहरी श्वास... गहरी श्वास... गहरी श्वास... गहरी श्वास... अब दूसरे सूत्र में जाना है... गहरी श्वास... और गहरी--आपसे ही कह रहा हूं... ताकत पूरी लगा दें... और गहरी... और गहरी... और गहरी... और गहरी...

दूसरा चरण

दूसरे सूत्र में प्रवेश कर जाएं। श्वास गहरी रहेगी। शरीर को छोड़ दें। शरीर को जो भी होता है, होने दें। शरीर रोए, रोने दें... हंसे, हंसने दें... चिल्लाए, चिल्लाने दें... शरीर नाचने लगे, नाचने दें--शरीर को जो होता है, होने दें। शरीर को छोड़ दें अब... शरीर को जो होता है, होने दें...

(अनेक तरह की आवाजें निकलना और शरीर की प्रक्रियाओं में, विविध गतियों में तीव्रता का आना।)

शरीर को छोड़ दें बिल्कुल--जो होता है, होने दें। शरीर के अंगों में जो होता है, होने दें... शरीर को छोड़ दें... दस मिनट के लिए शरीर को होने दें जो होता है।

(शरीर की गतियां और चीखना-चिल्लाना चलता रहा... और ओशो सुझाव देते रहे...)

शरीर को छोड़ दें, पूरी तरह छोड़ दें... शरीर नाचेगा, कूदेगा, छोड़ दें... भीतर शक्ति... भीतर शक्ति उठेगी... शरीर नाचेगा, कूदेगा... छोड़ दें--शरीर को बिल्कुल छोड़ दें... जो होता है, होने दें...

(कुछ लोग अट्टहास कर रहे हैं, कुछ ताली बजा रहे हैं, कई रो रहे हैं, कई हंस व नाच रहे हैं... एक महिला तीव्र आवाज से चीत्कार करने लगती है... अनेक लोगों के मुंह से विचित्र आवाजें निकल रही हैं... एक व्यक्ति का तीव्रता से चिल्लाना... आऽऽऽऽ... आऽऽऽऽऽऽऽ...)

शरीर को छोड़ दें... श्वास गहरी रहे... शरीर को छोड़ दें... भीतर शक्ति जागेगी... शरीर नाचने लगेगा, कूदने लगेगा, कंपने लगेगा--जो भी होता है, होने दें। शरीर लोटने लगे, चीखने लगे, हंसने लगे--छोड़ दें... शरीर को पूरी तरह छोड़ दें... ताकि अलग दिखाई पड़ने लगे--मैं अलग हूं, शरीर अलग है। शरीर को छोड़ें... शरीर

को छोड़ें... शरीर को बिल्कुल छोड़ दें। छोड़ें... शरीर को छोड़ दें। शरीर एक विद्युत का यंत्र भर रह गया है। शरीर नाच रहा है, शरीर कूद रहा है, शरीर कंप रहा है... शरीर को छोड़ दें। शरीर रो रहा है, शरीर हंस रहा है--शरीर को छोड़ दें। आप शरीर से अलग हैं, शरीर को छोड़ दें, शरीर को जो होता है, होने दें...

(आवाजें... चीखें... रुदन... हिचकियां...)

छोड़ें... छोड़ें... शरीर को बिल्कुल छोड़ दें। रोकें नहीं... कुछ मित्र रोक रहे हैं, रोकें नहीं... छोड़ दें। जरा भी न रोकें; जो होता है, होने दें... शरीर को बिल्कुल थका डालना है, सहयोग करें। शरीर को छोड़ दें, सहयोग करें; जो होता है, होने दें...

(अनेक तरह की आवाजें... चीखना, चिल्लाना, फूट-फूटकर रोना। रेचन की प्रक्रिया अति तीव्र हो गई। रोना, हंसना, आवाजें करना, चीखना, चिल्लाना खूब जोरों से होने लगा; ओशो का सुझाव देना जारी रहा...)

शरीर को थका डालना है, छोड़ दें... बिल्कुल छोड़ दें--जो होता है, होने दें। छोड़ें... छोड़ें... रोकें नहीं। देखें, कोई रोके नहीं, छोड़ दें, बिल्कुल छोड़ दें। शरीर को जो होता है, होने दें... होने दें... होने दें... छोड़ दें...

(चारों तरफ अनेक तरह की धीमी और तीव्र आवाजों का संयोग एक शोरगुल सा पैदा कर रहा है...)

छोड़ दें... पांच मिनट बचे हैं, शरीर को पूरी तरह छोड़ दें--सहयोग करें... शरीर को जो हो रहा है, कोआपरेट करें... शरीर जो कर रहा है, उसे करने दें--रोना है रोए, हंसना है हंसे। रोकें नहीं। शरीर नाचने लगेगा, नाचने दें। शरीर उछलने लगे, उछलने दें...

(अनेक तीव्र आवाजें, कराहना, चीखना, चिल्लाना, रोना, हंसना, भागना-दौड़ना...)

छोड़ें... पूरी तरह छोड़ें... सहयोग करें... भीतर शक्ति उठ रही है, उसे छोड़ दें... पांच मिनट बचे हैं, पूरी तरह छोड़ें। शरीर को पूरी तरह छोड़ें...

(कई चीखें, चीत्कार और शरीर की तीव्र प्रतिक्रियाएं... अचानक माइक काम करना बंद कर देता है। व्यवस्था करनेवाले व्यक्ति सब ध्यान में हैं। लाउडस्पीकर का आपरेटर भी ध्यान कर रहा है। कुछ देर बाद उसे किसी के द्वारा झकझोर कर सामान्य अवस्था में लाया गया, शांत किया गया, तब उसने माइक की खराबी खोजनी शुरू की... ओशो बिना माइक के ही बोलते रहे...)

छोड़ें... पूरी तरह छोड़ें... छोड़ें... पूरी तरह से छोड़ें... शरीर को जो हो रहा है होने दें। पूरी शक्ति से छोड़ें... छोड़ें... दो मिनट बचे हैं, पूरी तरह छोड़ दें... दो मिनट बचे हैं, शरीर को पूरी तरह छोड़ दें। शरीर अलग है, आप अलग हैं। शरीर को जो होना है, होने दें... आप अलग हैं... दो मिनट के लिए पूरी तरह छोड़ें; फिर हम दूसरे सूत्र में चलेंगे... छोड़ें... छोड़ें... बिल्कुल छोड़ दें... शरीर को थका डालें... छोड़ें... छोड़ें... छोड़ें... गहरी श्वास लें... शरीर को छोड़ दें... शरीर नाचता है, नाचने दें। बिल्कुल छोड़ दें... आप अलग हैं... तीसरे सूत्र में चलने के पहले पूरी शक्ति लगा दें... शरीर को छोड़ें... छोड़ें... एक मिनट बचा है, पूरी तरह छोड़ें... पूरी तरह छोड़ें... पूरी तरह छोड़ें...

(एक साधक का तीव्रता से चिल्लाना... आऽऽऽऽऽऽ...)

जो होता है, होने दें... एक मिनट बचा है, पूरी तरह छोड़ें... पूरी तरह छोड़ दें... जो होता है, होने दें... एक मिनट के लिए सब छोड़ दें...

(लंबी रेंकने की सी आवाज... रुदन... अट्टहास... हंसी...)

छोड़ें, बिल्कुल छोड़ दें। शरीर को बिल्कुल नाचने दें, छोड़ दें... चिल्लाने दें... रोने दें... हंसने दें--छोड़ दें... शरीर जो कर रहा है, करने दें... साफ दिखाई पड़ेगा--आप अलग हैं, शरीर अलग है। पूरी तरह छोड़ें... फिर तीसरे सूत्र में प्रवेश करेंगे... छोड़ें... छोड़ें... छोड़ें... सहयोग करें... शरीर को छोड़ दें...

तीसरा चरण

और अब तीसरे सूत्र में प्रवेश कर जाएं! भीतर पूछें--मैं कौन हूं? ... मैं कौन हूं? ... मैं कौन हूं? ... मैं कौन हूं? ... मैं कौन हूं? ... दस मिनट तक शरीर नाचता रहे, श्वास गहरी रहे और भीतर पूछें--मैं कौन हूं? ... मैं कौन हूं? ... मैं कौन हूं? ...

(लोगों का अनेक क्रियाओं को करते हुए रोना... चिल्लाना... कराहना... हिचकियां लेना... हांफना... एक साधक का जोर से लगातार चिल्लाना--कौन हूं? ... कौन हूं? ... ओशो सुझाव देते रहे...)

मैं कौन हूं? ... मैं कौन हूं? ... मैं कौन हूं? ... मैं कौन हूं? ... पूरी ताकत लगा दें... मैं कौन हूं? ... मैं कौन हूं? ...

(अनेक तरह की आवाजें लोगों के मुंह से निकलना... हिचकियों के साथ रोना... चिल्लाना... नाचना... एक व्यक्ति का असाधारण तीव्रता से चिल्लाना--क्काऽऽऽऽऽ... क्काऽऽऽऽऽऽऽ... क्काऽऽऽऽऽऽऽऽ...)

मैं कौन हूं? ... मैं कौन हूं? ... मैं कौन हूं? ... मैं कौन हूं? ... मैं कौन हूं? ... मैं कौन हूं? ... मैं कौन हूं? ... मैं कौन हूं? ... मैं कौन हूं? ... मैं कौन हूं? ... मैं कौन हूं? ... मैं कौन हूं? ... मैं कौन हूं? ... मैं कौन हूं? ...

(आवाजें... चिंघाड़ना... अट्टहास करना... एक साधक का कराहपूर्वक चिल्लाना--आऽऽऽऽऽ आऽऽऽऽऽ आऽऽऽऽऽ... ओशो सुझाव देते रहे...)

मैं कौन हूं? ... मैं कौन हूं? ... मैं कौन हूं? ... मैं कौन हूं? ... मैं कौन हूं? ... मैं कौन हूं? ... मैं कौन हूं? पूरी तरह... पूरी ताकत से पूछें--मैं कौन हूं... मैं कौन हूं? ... मैं कौन हूं? ... मैं कौन हूं? ... मैं कौन हूं? ...

(रोना, चीखना, तड़फना, नाचना आदि... मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? की अनेक आवाजें...)

मैं कौन हूं? ... मैं कौन हूं? ... मैं कौन हूं? ... मैं कौन हूं? ... मैं कौन हूं? ... मैं कौन हूं? ... मैं कौन हूं? ... शक्ति पूरी लगा दें... शक्ति पूरी लगा दें... मैं कौन हूं? ... मैं कौन हूं? ... मैं कौन हूं? ... मैं कौन हूं? ... शक्ति पूरी लगाएं... मैं कौन हूं?

(अनेक लोगों की चीत्कार... चिंघाड़... पछाड़ खाकर रोना... गिरना... रेत पर लोटना... उछलना... कूदना...)

मैं कौन हूं? ... मैं कौन हूं? ... मैं कौन हूं? ... मैं कौन हूं? ... मैं कौन हूं? ... मैं कौन हूं? ...

(एक व्यक्ति की कराह के साथ आवाज--आऽऽऽऽऽऽ... आऽऽऽऽऽऽ...)

मैं कौन हूं? ... मैं कौन हूं? ... मैं कौन हूं? पांच मिनट बचे हैं, पूरी शक्ति लगाएं, फिर हम विश्राम करेंगे... शरीर को छोड़ दें... मैं कौन हूं? ... मैं कौन हूं? ... मैं कौन हूं? ... मैं कौन हूं? ... पूरी शक्ति लगाएं... पूरी शक्ति लगाएं...

(एक लंबी चीत्कार... और अनेकों का रोना, चीखना, चिल्लाना...)

मैं कौन हूं? ... मैं कौन हूं? ... पूरी शक्ति लगाएं... पूरी शक्ति लगाएं... मैं कौन हूं? ... मैं कौन हूं? ... मैं कौन हूं? ... तीन मिनट बचे हैं, फिर हम विश्राम करेंगे... अपने को थका डालें... भीतर शक्ति उठ रही है...

(रोना, चीखना, उछलना, कूदना, भागना-दौड़ना...)

मैं कौन हूं? ... मैं कौन हूं? ... मैं कौन हूं? ... मैं कौन हूं? ... शक्ति पूरी लगाएं... मैं कौन हूं? ... दो मिनट बचे हैं, शक्ति पूरी लगाएं... मैं कौन हूं? ... मैं कौन हूं? ... मैं कौन हूं? ...

(शरीर की क्रियाएं... शोरगुल... आवाजें... एक तीव्र आवाज--क्काऽऽऽऽऽ... क्काऽऽऽऽऽऽ...)

मैं कौन हूं? ... मैं कौन हूं? ... मैं कौन हूं? ... मैं कौन हूं? ... आखिरी दो मिनट बचे हैं, शक्ति पूरी लगाएं... फिर हम विश्राम करेंगे... मैं कौन हूं? ... मैं कौन हूं? ... शक्ति भीतर जाग रही है, शरीर को नाच जाने दें... मैं कौन हूं? ... मैं कौन हूं? ... मैं कौन हूं? ... मैं कौन हूं? ... शक्ति भीतर पूरी जग जाने दें... मैं कौन हूं? ... मैं कौन हूं? ... मैं कौन हूं? ... मैं कौन हूं? ... मैं कौन हूं? ... बिल्कुल पागल हो जाएं... मैं कौन हूं? ... मैं कौन हूं? ...

(एक व्यक्ति का जोर से चिल्लाना--बाऽऽऽऽ... बाऽऽऽऽऽ... बाऽऽऽऽऽ...)

मैं कौन हूं? ... मैं कौन हूं? ... मैं कौन हूं? ... थका डालें अपने को, फिर विश्राम करना है... मैं कौन हूं? ... मैं कौन हूं? ... मैं कौन हूं? ... एक मिनट और--मैं कौन हूं? ... शरीर नाचता है, नाच जाने दें... मैं कौन हूं? ... मैं कौन हूं? ...

(साधकों की तीव्रतम गतियां... तीव्र चीत्कार, रुदन...)

मैं कौन हूं? ... मैं कौन हूं? ... मैं कौन हूं? ... मैं कौन हूं? ... फिर विश्राम में जाना है, पूरी ताकत लगा दें... आखिरी क्षण में पूरी ताकत लगा दें... मैं कौन हूं? ... मैं कौन हूं? ... मैं कौन हूं? ... मैं कौन हूं? ... अवसर न खोएं, पूरी ताकत लगा दें... मैं कौन हूं? ... मैं कौन हूं? ... मैं कौन हूं? ... मैं कौन हूं? ... मैं कौन हूं? ... मैं कौन हूं? ... मैं कौन हूं? ... मैं कौन हूं? ... मैं कौन हूं? ... मैं कौन हूं? ... आखिरी ताकत, फिर विश्राम में जाना है... मैं कौन हूं? ... मैं कौन हूं? ... मैं कौन हूं? ... मैं कौन हूं? ... मैं कौन हूं? ... मैं कौन हूं? ... मैं कौन हूं? ... मैं कौन हूं? ...

चौथा चरण

बस... सब छोड़ दें... सब छोड़ दें... पूछना छोड़ दें... श्वास लेना छोड़ दें--जो जहां पड़ा है, पड़ा रह जाए... जो जहां खड़ा है, खड़ा रह जाए। गिरना हो गिर जाएं... लेटना हो लेट जाएं... बैठना हो बैठे रह जाएं... सब शांत, सब शून्य हो जाने दें। न कुछ पूछें, न कुछ करें, बस पड़े रह जाएं, जैसे मर गए, जैसे हैं ही नहीं। तूफान चला गया, भीतर शांति छूट जाएगी... सब मिट गया... सब शांत हो गया। तूफान गया... पड़े रह जाएं, दस मिनट बिल्कुल पड़े रह जाएं।

इस शांति में, इस शून्य में ही उसका आगमन होता है, जिसकी खोज है... पड़े रह जाएं... सब छोड़ दें... सब छोड़ दें... न श्वास जोर से लेनी है, न प्रश्न पूछना है, न कुछ करना है। शरीर को भी छोड़ दें। खड़े हैं, खड़े रह जाएं; गिर गए हैं, गिरे रह जाएं; पड़े हैं, पड़े रह जाएं। दस मिनट के लिए मर जाएं--हैं ही नहीं... तूफान गया... सब शांत हो गया... सब मौन हो गया...

(चारों ओर सब साधक शांत और स्थिर हो गए हैं। बीच-बीच में कोई कराह उठता है, कोई हिचकियां लेने लगता है, कोई सुबकने लगता है और फिर शांत व चुप हो जाता है।)

इस शून्य में ही कुछ घटित होगा--कोई फूल खिलेंगे... कोई प्रकाश फैल जाएगा... कोई शांति की धारा फूट पड़ेगी... कोई आनंद का संगीत सुनाई पड़ेगा। इस शून्य में ही प्रभु निकट आता है। प्रतीक्षा करें, प्रतीक्षा करें, प्रतीक्षा करें... पड़े रह जाएं, खड़े रह जाएं। प्रतीक्षा करें, प्रतीक्षा करें। बस प्रतीक्षा करें। सब थक गया... सब शून्य हो गया...

(कराह की कुछ आवाजें।)

प्रतीक्षा करें... प्रतीक्षा करें... अब मैं चुप हो जाता हूं। दस मिनट चुपचाप...

(पक्षियों की सुरीली आवाजें... किसी का हिलना-डुलना, किसी का सुबकना, श्वास लेना। एक साधक का जोर से चिल्लाना--प्रभुऽऽऽऽऽ मने माफ कर... प्रत्येक गुनाह बदल मने शिक्षा कर... हे प्रभु... किसी-किसी का हूंऽऽऽऽऽ, हूंऽऽऽऽऽ, हूंऽऽऽऽऽ करना। कराहने की आवाजें। एक व्यक्ति का जोर से चीखना--पाऽऽऽऽ पी... कुछ देर बाद दूर कोने से एक साधक के मुंह से आवाज निकलती है--"कौन कहता है पापी हूं?"... पुनः किसी का कराहना--ऊं... ऊं... ऊं... करना। कौवों का कांव-कांव करना... सरूवन में हवा की सरसराहट... सागर का गर्जन... सब तरफ सन्नाटा, जैसे सरूवन बिल्कुल निर्जन हो। एक महिला का रोना, हिचकियां लेना...)

जैसे मर ही गए। जैसे मिट ही गए। एक शून्य मात्र रह गए। सब मिट गया। सब शांत हो गया। सब मौन हो गया। इस मौन में ही उसका आगमन है... इस शून्य में ही उसका द्वार है। प्रतीक्षा करें... प्रतीक्षा करें...

(एक महिला का सुबक-सुबककर रोना... एक व्यक्ति का हूं... हूं... हूं... की आवाज करना। दूर कोने से एक साधक का तीव्रता से श्वास लेना-छोड़ना करना। कुछ लोगों का कराहना... फुसफुसाना... एक व्यक्ति का पुनः चीख उठना-- पाऽऽऽऽऽ पीऽऽऽऽऽ... किसी का बड़बड़ाना... माइक अब सुधर पाया... माइक पर ओशो बोलते हैं...)

जैसे मर ही गए। जैसे मिट ही गए। तूफान गया, शांति छूट गई। प्रतीक्षा करें... प्रतीक्षा करें... इसी क्षण में कुछ घटित होता है। मौन प्रतीक्षा करें, मौन प्रतीक्षा करें। शून्य हो गया... सब शून्य हो गया... प्रतीक्षा करें...

प्रतीक्षा करें... प्रतीक्षा करें... । जैसे मर ही गए, लेकिन भीतर कोई जागा हुआ है। सब शून्य हो गया, लेकिन भीतर कोई ज्योति जागी हुई है--जो जानती है, देखती है, पहचानती है। आप तो मिट गए, लेकिन कोई और जागा हुआ है। भीतर सब प्रकाशित है। भीतर आनंद की धारा बहने लगी है। परमात्मा बहुत निकट है। प्रतीक्षा करें... प्रतीक्षा करें... प्रतीक्षा करें...

(एक व्यक्ति का फुसफुसाना--पापीचारा, पापीचारा, पापीचारा... एक साधक का सोए-सोए ही कह उठना--यह साधना चालू रखें, यह साधना चालू रखें... कहीं से दोनों हथेलियों को तेजी से पीटने की आवाज--पट, पट, पट... एक साधक की तीव्र चीत्कार--बचाऽऽऽऽऽ ओऽऽऽऽऽऽ...)

जैसे मर गए। जैसे मिट गए। जैसे मर ही गए। जैसे मिट गए। जैसे बूंद सागर में गिरकर खो जाती है, ऐसे खो गए... प्रतीक्षा करें... इस खो जाने में ही उसका मिल जाना है। प्रतीक्षा करें... प्रतीक्षा करें... भीतर शांत-मौन प्रकाश फैल गया है। गहरा आनंद झलकना शुरू होगा। गहरा आनंद उठना शुरू होगा। भीतर आनंद की धारा बहने लगेगी। प्रतीक्षा करें... प्रतीक्षा करें... प्रतीक्षा करें...

(प्रभु, प्रभु, हे प्रभु की आवाज...)

भीतर आनंद बहने लगेगा। भीतर उसका प्रकाश उतरने लगेगा... प्रतीक्षा, प्रतीक्षा, प्रतीक्षा... जैसे मर ही गए, जैसे मिट ही गए, सब शून्य हो गया... इसी शून्य में उसका दर्शन है। इसी शून्य में उसकी झलक है। इसी शून्य में उसकी उपलब्धि है। प्रतीक्षा करें, प्रतीक्षा करें, प्रतीक्षा करें... देखें, भीतर कोई प्रवेश कर रहा है... देखें, भीतर कोई जाग गया है... देखें, भीतर कोई आनंद प्रकट हो गया है। आनंद, जो कभी नहीं जाना। आनंद, जो अपरिचित है। आनंद, जो अज्ञात है। प्राण के पोर-पोर में कुछ भर गया है। प्रतीक्षा करें, प्रतीक्षा करें...

(पक्षियों की आवाजें... सरू वृक्षों की सरसराहट... सब शांत है...)

आनंद ही आनंद शेष रह जाता है। प्रकाश ही प्रकाश शेष रह जाता है। शांति ही शांति शेष रह जाती है। प्रतीक्षा करें, प्रतीक्षा करें। इन्हीं मौन क्षणों में आगमन है उसका। इन्हीं मौन क्षणों में मिलन है उससे। प्रतीक्षा करें, प्रतीक्षा करें, प्रतीक्षा करें...

(एक साधक का तीव्र श्वास-प्रश्वास लेना... एक व्यक्ति का कराहना...)

जिसकी खोज है, वह बहुत पास है। जिसकी तलाश है, इस समय बहुत निकट है। जिसकी खोज है, वह बहुत पास है। जिसकी तलाश है, वह बहुत निकट है। प्रतीक्षा करें, प्रतीक्षा करें...

अब धीरे-धीरे आनंद के इस जगत से वापस लौट आएं। धीरे-धीरे प्रकाश के इस जगत से वापस लौट आएं। धीरे-धीरे भीतर के इस जगत से वापस लौट आएं। बहुत आहिस्ता-आहिस्ता आंख खोलें। आंख न खुलती हो तो दोनों हाथ आंख पर रख लें, फिर धीरे-धीरे खोलें। और जल्दी कोई भी नहीं करे। जो गिर गए हैं, उठ न सकें, वे धीरे-धीरे दो-चार गहरी श्वास लें, फिर आहिस्ता-आहिस्ता उठें। बिना बोले, बिना आवाज किए चुपचाप उठ आएं। जो खड़े हैं, वे चुपचाप बैठ जाएं। धीरे-धीरे आंख खोल लें, वापस लौट आएं।

(एक महिला का हिचकी ले-लेकर रोना...)

हमारी सुबह की बैठक पूरी हुई।

छठवां प्रवचन

गहरे पानी पैठ

मेरे प्रिय आत्मन्,

तीन दिनों में बहुत से प्रश्न इकट्ठे हो गए हैं और इसलिए आज बहुत संक्षिप्त में जितने ज्यादा प्रश्नों पर बात हो सके, मैं करना चाहूंगा।

कितनी प्यास?

एक मित्र ने पूछा है कि विवेकानंद ने रामकृष्ण से पूछा कि क्या आपने ईश्वर देखा है, तो रामकृष्ण ने कहा, हां, जैसा मैं तुम्हें देख रहा हूं, ऐसा ही मैंने परमात्मा को भी देखा है। तो वे मित्र पूछते हैं कि जैसा विवेकानंद ने रामकृष्ण से पूछा, क्या हम भी वैसा आपसे पूछ सकते हैं?

पहली तो बात यह, विवेकानंद ने रामकृष्ण से पूछते समय यह नहीं पूछा कि हम आपसे पूछ सकते हैं या नहीं पूछ सकते हैं। विवेकानंद ने पूछ ही लिया। और आप पूछ नहीं रहे हैं; पूछ सकते हैं या नहीं पूछ सकते हैं, यह पूछ रहे हैं। विवेकानंद चाहिए वैसा प्रश्न पूछनेवाला। और वैसा उत्तर रामकृष्ण किसी दूसरे को न देते। यह ध्यान रहे, रामकृष्ण ने जो उत्तर दिया है वह विवेकानंद को दिया है; वह किसी दूसरे को न दिया जाता।

अध्यात्म के जगत में सब उत्तर नितांत वैयक्तिक हैं, पर्सनल हैं। उसमें देनेवाला तो महत्वपूर्ण है ही, उससे कम महत्वपूर्ण नहीं है जिसको कि दिया गया है; उसमें समझनेवाला उतना ही महत्वपूर्ण है। न मालूम कितने लोग मुझसे आकर पूछते हैं कि विवेकानंद को रामकृष्ण के छूने से अनुभूति हो गई, तो आप हमें छू दें, और हमें अनुभूति हो जाए! वे यह नहीं पूछते कि विवेकानंद के सिवाय रामकृष्ण ने हजारों लोगों को छुआ है, उनको अनुभूति नहीं हुई। उस छूने में जो अनुभूति हुई है उसमें रामकृष्ण पचास प्रतिशत महत्वपूर्ण हैं, पचास प्रतिशत विवेकानंद हैं। वह अनुभूति आधी-आधी है। और ऐसा भी जरूरी नहीं है कि विवेकानंद को भी किसी दूसरे दिन छुआ होता तो बात हो जाती। एक खास क्षण में वह घटना घटी।

आप चौबीस घंटे भी वही आदमी नहीं होते हैं; चौबीस घंटे में आप न मालूम कितने आदमी होते हैं। किसी खास क्षण में...

अब विवेकानंद पूछ रहे हैं, "ईश्वर को देखा है?" ये शब्द बड़े सरल हैं। हमें भी लगता है कि हमारी समझ में आ रहे हैं कि विवेकानंद क्या पूछ रहे हैं।

नहीं समझ में आ रहे हैं। ईश्वर को देखा है? ये शब्द इतने सरल नहीं हैं। ऐसे तो पहली कक्षा भी जो नहीं पढ़ा, वह भी समझ लेगा। सरल शब्द हैंः "ईश्वर को देखा है?" बहुत कठिन हैं शब्द! और विवेकानंद के प्रश्न का उत्तर नहीं दे रहे हैं रामकृष्ण, विवेकानंद की प्यास का उत्तर दे रहे हैं। उत्तर प्रश्नों के नहीं होते, प्यास के होते हैं। इस प्रश्न के पीछे वह जो आदमी खड़ा है प्रश्न बनकर, उसका उत्तर दिया जा रहा है।

बुद्ध एक गांव में गए हैं। और एक आदमी ने पूछा, ईश्वर है? बुद्ध ने कहा, नहीं। और दोपहर दूसरे आदमी ने पूछा कि मैं समझता हूं ईश्वर नहीं है; आपका क्या ख्याल है? बुद्ध ने कहा, है। और सांझ एक तीसरे आदमी ने पूछा कि मुझे कुछ पता नहीं, ईश्वर है या नहीं? बुद्ध ने कहा कि चुप ही रहो तो अच्छा है--न हां, न ना।

जो साथ में था भिक्षु वह बहुत घबड़ा गया, उसने तीनों उत्तर सुन लिए। रात उसने बुद्ध से कहा, मैं पागल हो जाऊंगा! सुबह आपने कहा, हां; दोपहर आपने कहा, नहीं; सांझ आपने कहा, न हां, न नहीं; मैं क्या समझूं? बुद्ध ने कहा, तुझे तो मैंने एक भी उत्तर नहीं दिया, जिनको दिए थे उनसे बात है; तुझसे कोई संबंध नहीं। तूने सुना क्यों? तूने जब पूछा ही नहीं था, तो तुझे उत्तर कैसे दिया जा सकता है? जिस दिन तू पूछेगा उस दिन तुझे उत्तर मिल जाएगा। पर उस आदमी ने कहा, मैंने सुन तो लिया!

बुद्ध ने कहा, वे उत्तर दूसरों को दिए गए थे, और दूसरों की जरूरतों के अनुसार दिए गए थे। सुबह जिस आदमी ने कहा था कि ईश्वर है? वह आस्तिक था और चाहता था कि मैं भी उसकी हां में हां भर दूं। उसे कुछ पता नहीं ईश्वर के होने का, लेकिन सिर्फ अपने अहंकार को तृप्त करने आया था कि बुद्ध भी वही मानते हैं जो मैं मानता हूं। वह बुद्ध से भी अपनी स्वीकृति लेने, कनफर्मेशन लेने आया था। तो मैंने उससे कहा, नहीं। मैंने उसकी जड़ों को हिला दिया। और उसे कुछ पता नहीं था, अन्यथा मुझसे पूछने क्यों आता? जिसे पता हो गया है वह कनफर्मेशन नहीं खोजता। सारी दुनिया भी इनकार करे तो वह कहता है, इनकार करो, वह है; इनकार का कोई सवाल नहीं है। अभी वह पूछ रहा है, अभी वह पता लगा रहा है कि है? तो मुझे कहना पड़ा कि नहीं है। उसकी खोज रुक गई थी, वह मुझे शुरू कर देनी पड़ी। दोपहर जो आदमी आया था, वह नास्तिक था। वह मानता था कि नहीं है, उसे मुझे कहना पड़ा कि है। उसकी भी खोज रुक गई थी; वह भी मुझसे स्वीकृति लेने आया था अपनी नास्तिकता में। सांझ जो आदमी आया था, वह न आस्तिक था, न नास्तिक; उसे किसी भी बंधन में डालना ठीक न था; क्योंकि हां भी बांध लेता है, नहीं भी बांध लेता है। तो उससे कहा कि तू चुप रह जाना--न हां, न ना; तो पहुंच जाएगा। और तेरा तो सवाल ही नहीं है, उस भिक्षु से कहा, क्योंकि तूने अभी पूछा नहीं है।

धर्म बड़ी निजी बात है--जैसे प्रेम। और प्रेम में अगर कोई अपनी प्रेयसी को कुछ कहता है तो वह बाजार में चिल्लाने की बात नहीं है, वह नितांत वैयक्तिक है; और बाजार में कहते ही अर्थ उसका बेकार हो जाएगा। ठीक, धर्म के संबंध में कहे गए सत्य भी इतने ही पर्सनल, एक व्यक्ति के द्वारा दूसरे व्यक्ति से कहे गए हैं, हवा में फेंके गए नहीं हैं।

इसलिए विवेकानंद बन जाएं तो जरूर पूछने आ जाना। लेकिन विवेकानंद पूछने नहीं आते कि पूछें या न पूछें।

मैं अभी एक गांव में गया, एक युवक आया और उसने कहा कि मैं आपसे पूछने आया हूं, मैं संन्यास ले लूं? तो मैंने उससे कहा, जब तक तुझे पूछने जैसा लगे तब तक मत लेना, नहीं तो पछताएगा। और मुझे क्यों झंझट में डालता है? तुझे लेना हो ले, न लेना हो न ले। जिस दिन तुझे ऐसा लगे कि अब सारी दुनिया रोकेगी तो भी तू नहीं रुक सकता, उस दिन ले लेना; उसी दिन संन्यास आनंद बन सकता है, उसके पहले नहीं।

तो उसने कहा, और आप?

मैंने कहा, मैं किसी से कभी पूछने नहीं गया। अपनी इस जिंदगी में तो किसी से पूछने नहीं गया। क्योंकि पूछना ही है तो अपने ही भीतर पूछ लेंगे, किसी से पूछने क्यों जाएंगे? और कोई कुछ भी कहे, उस पर भरोसा कैसे आएगा? दूसरे पर कभी भरोसा नहीं आ सकता। लाख उपाय करें, दूसरे पर भरोसा नहीं आ सकता।

अगर मैं कह भी दूं कि हां, ईश्वर है, क्या फर्क पड़ेगा? जैसा आपने किताब में पढ़ लिया कि रामकृष्ण ने कहा कि हां, है! और जैसा मैं तुझे देखता हूं, उससे भी ज्यादा साफ उसे देखता हूं। क्या फर्क पड़ गया आपको? एक किताब और लिख लेना आप कि आपने पूछा था और मैंने कहा, हां है! और जैसा मैं आपको देखता हूं, उससे भी ज्यादा साफ उसे देखता हूं। क्या फर्क पड़ेगा? एक किताब, दो किताब, हजार किताब में लिखा हो कि है,

बेकार है; जब तक कि भीतर से न उठे कि है, तब तक कोई उत्तर दूसरे का काम नहीं दे सकता। ईश्वर के संबंध में उधारी न चलेगी। और सब संबंध में उधारी चल सकती है, ईश्वर के संबंध में उधारी नहीं चल सकती।

इसलिए मुझसे क्यों पूछते हैं? और मेरे हां और न का क्या मूल्य? अपने से ही पूछें। और अगर कोई उत्तर न आए तो समझ लें कि यही भाग्य है कि कोई उत्तर नहीं; फिर चुप होकर प्रतीक्षा करें, उसके साथ ही जीएं; अनुत्तर के साथ जीएं। किसी दिन आ जाएगा; किसी दिन उतर आएगा। और अगर पूछना ही आ जाए--ठीक पूछना आ जाए, राइट क्वेश्चनिंग आ जाए--तो सब उत्तर हमारे भीतर हैं; और ठीक पूछना न आए, तो हम सारे जगत में पूछते फिरें, कोई उत्तर काम का नहीं है।

और जब विवेकानंद जैसा आदमी रामकृष्ण से पूछता है, तो रामकृष्ण जो उत्तर देते हैं, वह रामकृष्ण का उत्तर थोड़े ही विवेकानंद के काम पड़ता है। विवेकानंद इतनी प्यास से पूछते हैं कि जब वह रामकृष्ण का उत्तर आता है तो वह रामकृष्ण का नहीं मालूम पड़ता, वह अपने ही भीतर से आया हुआ मालूम पड़ता है। इसीलिए काम पड़ता है, नहीं तो काम नहीं पड़ सकता। जब हम बहुत गहरे में किसी से पूछते हैं, इतने गहरे में कि हमारा पूरा प्राण लग जाए दांव पर, तो जो उत्तर आता है, फिर वह हमारा अपना ही हो जाता है, वह दूसरे का नहीं होता; दूसरा फिर सिर्फ एक दर्पण हो जाता है। अगर रामकृष्ण ने यह कहा कि हां है, तो यह उत्तर रामकृष्ण का नहीं है। यह आथेंटिक बन गया, विवेकानंद को प्रामाणिक लगा, क्योंकि रामकृष्ण एक दर्पण से ज्यादा न मालूम पड़े; अपनी ही प्रतिध्वनि, बहुत गहरे अपने ही प्राणों का स्वर वहां सुनाई पड़ा।

विवेकानंद ने रामकृष्ण से पूछने के पहले एक आदमी से और पूछा था। रवींद्रनाथ के दादा थे देवेंद्रनाथ। वे महर्षि देवेंद्रनाथ कहे जाते थे। वे बजरे पर रहते थे रात। बजरे पर एकांत में साधना करते थे। आधी रात अमावस की, विवेकानंद पानी में कूदकर, गंगा पार करके बजरे पर चढ़ गए। बजरा कंप गया। अंदर गए, धक्का देकर दरवाजा खोल दिया। अटका था दरवाजा। भीतर घुस गए। अंधेरा है। देवेंद्रनाथ आंख बंद किए कुछ मनन में बैठे हैं। जाकर झकझोर दिया उनका कालर पकड़कर कोट का। आंखें खुलीं तो वे घबड़ा गए कि इतनी रात, पानी से तरबतर, कौन नदी में तैरकर आ गया है! सारा बजरा कंप गया है। जैसे ही उन्होंने आंख खोलीं, विवेकानंद ने कहा, मैं पूछने आया हूं--ईश्वर है? देवेंद्रनाथ ने कहा, जरा बैठो भी। झिझके। ऐसी आधी रात, अंधेरे में गंगा पार करके, कोई ऐसा छाती पर छुरा लगाकर पूछे, ईश्वर है? तो उन्होंने कहा, जरा रुको भी, बैठो भी, कौन हो भाई? क्या बात है? कैसे आए? बस विवेकानंद ने कालर छोड़ दिया, वापस नदी में कूद पड़े। उन्होंने चिल्लाया कि युवक, रुको! विवेकानंद ने कहा, झिझक ने सब कुछ कह दिया, अब मैं जाता हूं।

झिझक ने सब कुछ कह दिया! इतने झिझक गए कि असली सवाल ही छोड़ दिया! कहते, है या नहीं।

फिर देवेंद्रनाथ बाद में कहे कि मैं सच में ही घबड़ा गया था, क्योंकि मुझसे कभी ऐसा आउट ऑफ दि वे, आउटलैंडिश, ऐसा कोई अचानक गर्दन पकड़कर कभी पूछा नहीं था। सभा में, मीटिंग में, मंदिर में, मस्जिद में देवेंद्रनाथ से लोग पूछते थे, ईश्वर है? तो वे समझाते थे उपनिषद, गीता, वेद। ऐसा किसी ने पूछा ही न था। तो जरूर घबड़ा गए। उन्होंने कहा, मैं जरूर घबड़ा गया था और मुझे कुछ भी नहीं सूझा था। और वह युवक कूदकर चला गया था और मुझे भी मेरी झिझक से पहली दफा पता चला--अभी मुझे भी मालूम नहीं है।

पूछें जरूर। जिस दिन पूछने की तैयारी हो उस दिन जरूर पूछें। पर पूछने की तैयारी लेकर आ जाएं। क्योंकि फिर उत्तर पर बात खतम न हो गई। रामकृष्ण का उत्तर, फिर वह विवेकानंद नहीं था जो पूछने आया था, वह था नरेंद्रनाथ; रामकृष्ण के उत्तर के बाद हो गया विवेकानंद। पूछें जरूर, लेकिन फिर जिंदगी पूरी बदलने की तैयारी चाहिए। उत्तर तो मिल सकता है। फिर वह नरेंद्रनाथ नरेंद्रनाथ की तरह घर वापस नहीं

लौटा। क्योंकि वह जो रामकृष्ण ने कहा--है, और तुझसे ज्यादा मुझे दिखाई पड़ता है कि वह है! एक दफा मैं कह सकता हूं कि तू झूठ, लेकिन उसे नहीं कह सकता झूठ! तो फिर विवेकानंद ऐसा नहीं कि ठीक महाराज, उत्तर बहुत अच्छा लगा, परीक्षा में दे देंगे जाकर। फिर वापस नहीं लौट गया था। फिर विवेकानंद के लिए उत्तर ले डूबा। फिर वह लड़का वापस लौटा ही नहीं।

उत्तर तो मिल सकता है; मुझे कोई कठिनाई नहीं है उत्तर देने में; आप दिक्कत में पड़ जाएंगे। तो जिस दिन पूछने का मन हो, आ जाना। और आउटलैंडिश ही ठीक रहेगा, किसी अंधेरी रात में आकर मेरी गर्दन पकड़कर पूछ लेना। लेकिन ध्यान रखना, गर्दन मेरी पकड़ेंगे, पकड़ा जाएगी आपकी, फिर भाग न सकेंगे।

स्कॉलरली बातें नहीं हैं ये; ये कोई शास्त्रीय और पांडित्य की बातें नहीं हैं कि पूछ लिया, समझ लिया, चले गए, कुछ भी न हुआ। सारी जिंदगी को दांव पर लगाने की बात है।

परमात्मा एक छलांग है

एक दूसरे मित्र पूछते हैं कि बीज बोते हैं तो अंकुर आने में समय लगता है। और आप तो कहते हैं कि इसी क्षण हो सकती है सब बात। और आदमी को परमात्मा का बीज कहते हैं।

जरूर कहता हूं। बीज बोते हैं, समय लगता है। समय बीज के टूटने में लगता है, अंकुर के निकलने में नहीं। अंकुर तो एक क्षण में ही निकल आता है, विस्फोट होता है अंकुर का तो। लेकिन बीज के टूटने में वक्त लग जाता है। आपके टूटने में वक्त लग सकता है, वह मैं नहीं कहता। लेकिन परमात्मा के आने में वक्त नहीं लगता, वह एक क्षण में ही आ जाता है।

जैसे हम पानी को गरम करते हैं। तो गरम करने में वक्त लग सकता है। सौ डिग्री तक गरम होगा तो वक्त लगेगा। लेकिन भाप बनने में वक्त नहीं लगता--छलांग! पानी सौ डिग्री गरम हुआ--दि जंप--कूद गया, भाप हो गया। ऐसा नहीं है कि भाप बनने में वक्त लगे--कि पानी थोड़ा अभी भाप बना आधा, अभी आधा भाप नहीं बना; अभी बूंद थोड़ी सी भाप बन गई एक कोने से, दूसरे कोने से भाप नहीं बनी--ऐसा नहीं, भाप तो बनेगी तो छलांग में। हां, लेकिन भाप तक पहुंचने में वक्त लगता है। लेकिन जब तक भाप नहीं बनी तब तक वह पानी ही है--चाहे सौ डिग्री गरम हो, चाहे निन्यानबे डिग्री गरम हो, चाहे अट्ठानबे डिग्री गरम हो।

परमात्मा एक विस्फोट है, एक छलांग है। उसके पहले आप आदमी ही हैं, चाहे अट्ठानबे डिग्री पर गरम हों, चाहे निन्यानबे डिग्री पर गरम हों। सौ डिग्री पर गरम होंगे कि भाप बन जाएंगे--परमात्मा शुरू होगा, आप मिट जाएंगे।

तो मैं कहता हूं, वह इसी क्षण भी हो सकता है। इसी क्षण होने का मतलब? इसी क्षण होने का मतलब यह है कि अगर हम उत्तप्त होने को तैयार हों... और क्या काफी समय नहीं बीत गया उत्तप्त होने के लिए? कढ़ाई कब से चढ़ी है चूल्हे पर, कितने जन्मों से! कितने जन्मों से गरम हो रहे हैं, और सौ डिग्री तक नहीं पहुंच पाए अभी तक! जनम-जनम जनम-जनम गरम होते रहे हैं, और सौ डिग्री पर नहीं पहुंच पाए अब तक! और कितना समय चाहिए? इतना समय कम है?

नहीं, समय तो बहुत लग गया है, गरम होने की कला ही हमें नहीं आती। तो हम अगर निन्यानबे पर भी पहुंच जाएं तो जल्दी से वापस हो जाते हैं, कूलडाउन हो जाते हैं; फिर ठंडे होकर वापस लौट आते हैं; सौ डिग्री से बहुत डरते हैं। अब इधर मैं देखता था, ध्यान में कितने लोग निन्यानबे डिग्री से वापस लौट जाते हैं! और

कैसी-कैसी व्यर्थ की बातें उनको वापस लौटा लेती हैं कि ऐसी हैरानी होती है कि वे जरूर वापस लौटना ही चाहते होंगे। अन्यथा यह कारण कोई वापस लौटने का था?

एक आदमी को बंबई जाना हो, वह ट्रेन पर बैठे, और रास्ते में दो लोग जोर से बात करते मिल जाएं, और वह घर वापस लौट आए कि दो आदमियों ने हमें डिस्टर्ब कर दिया, वे रास्ते में जोर से बातें कर रहे थे, तो हम बंबई नहीं जा पाए। तो आप कहेंगे, बंबई जाना ही न होगा, अन्यथा रास्ते पर तो डिस्टरबेंस है ही। कौन लौटता है? जिसको बंबई जाना है वह चला जाता है। बल्कि रास्ते पर डिस्टरबेंस है तो जरा तेजी से चला जाता है कि बीच में व्यर्थ की बातें न सुननी पड़ें।

लेकिन ध्यान से बड़े-बड़े आसान कारणों से आदमी वापस लौटता है। वह लौट आता है कि हमें किसी का धक्का लग गया, किसी का हाथ लग गया, कोई पड़ोस में गिर पड़ा, कोई रोने लगा, तो हम वापस लौट आए। नहीं, ऐसा लगता है कि वापस लौटना चाहते थे, सिर्फ प्रतीक्षा कर रहे थे कि कोई कारण मिल जाए और हम कूलडाउन हो जाएं। बस बहाना भर मिल जाए कि फलां आदमी जोर से चिल्लाने लगा इसलिए हमको वापस लौटना पड़ा।

आपको फलां आदमी के जोर से चिल्लाने से आपका संबंध? आपको प्रयोजन? और आप क्या खो रहे हैं इस बहाने, आपको पता ही नहीं है; आप क्या कह रहे हैं, आपको पता ही नहीं है।

अब अभी एक मित्र मिले रास्ते में, उन्होंने कहा कि जरा लोगों को समझा दें, थोड़ा उनको ठंडा कर दें, कूलडाउन करें; क्योंकि दो लोग नग्न खड़े हो गए हैं, उससे बड़ी एक्सप्लोसिव स्थिति बन गई है। उन्होंने बड़े प्रेम से कहा कि जरा लोगों को समझा दें; कुछ लोग बड़े बेचैन हो गए हैं कि दो लोग नग्न हो गए।

ध्यान में वस्त्रों का गिर जाना

सब लोग कपड़ों के भीतर नग्न हैं और कोई बेचैन नहीं होता! कपड़ों के भीतर सभी लोग नग्न हैं, कोई बेचैन नहीं है। दो आदमियों ने कपड़े छोड़ दिए, सब बेचैन हो गए! बड़ा मजा है, आपके कपड़े भी किसी ने छुड़ाए होते तो बेचैन होते तो भी समझ में आता। अपने ही कपड़े कोई छोड़ रहा है और बेचैन आप हो रहे हैं! अगर कोई आपके कपड़े छीनता, तो बेचैनी कुछ समझ में भी आ सकती थी। हालांकि वह भी बेमानी थी। जीसस ने कहा है कि कोई तुम्हारा कोट छीने तो अपनी कमीज भी उसको दे देना, कहीं बेचारा संकोचवश कम न छीन रहा हो। कोई आपका कोट छीनता तो समझ में भी आता। कोई अपना ही कोट उतारकर रख रहा है, आप बेचैन हो गए हैं। ऐसा लगता है कि आप प्रतीक्षा ही कर रहे थे कि कोई कोट उतारे और हम कूलडाउन हो जाएं, और हम कहें, हमारा सारा ध्यान खराब कर दिया।

अब बड़े आश्चर्य की बात है कि कोई आदमी नग्न हो गया है, इससे आपके ध्यान के खराब होने का क्या संबंध है? और आप किसी के नग्न होने को बैठकर देख रहे थे? तो आप ध्यान कर रहे थे या क्या कर रहे थे? आपको तो पता ही नहीं होना चाहिए था कि कौन ने कपड़े छोड़ दिए, कौन ने क्या किया। आप अपने में होने चाहिए थे। कौन क्या कर रहा है... आप कोई धोबी हैं, कोई टेलर हैं, कौन हैं? आप कपड़ों के लिए चिंतित क्यों हैं? आपकी परेशानी बेवजूद है, अर्थहीन है।

और जिसने कपड़े छोड़े हैं... थोड़ा सोचते नहीं हैं, आपसे कोई कहे कि आप कपड़े छोड़ दें, तब आपको पता चलेगा कि जिसने कपड़े छोड़े हैं उसके भीतर कोई बड़ा कारण ही उपस्थित हो गया होगा इसलिए उसने कपड़े छोड़े हैं। आपसे कोई कहे कि लाख रुपया देते हैं। आप कहेंगे, छोड़ते हैं लाख रुपया, लेकिन कपड़े न

छोड़ेंगे। उस बेचारे को किसी ने कुछ भी नहीं दिया है और उसने कपड़े छोड़े! आप क्यों परेशान हैं? उसके भीतर कोई कारण उपस्थित हो गया होगा।

लेकिन जिंदगी को समझने की, सहानुभूति से देखने की हमारी आदत ही नहीं है।

जब महावीर पहली दफे नग्न हुए तो पत्थर पड़े। अब पूजा हो रही है! और जितने लोग पूजा कर रहे हैं वे सब कपड़े बेच रहे हैं। महावीर के माननेवाले सब कपड़े बेचनेवाले हैं। यह बड़ा आश्चर्यजनक है! और इस आदमी को इन्हीं लोगों ने पत्थर मारे होंगे। और उसी के बदले में कपड़ा बेच रहे हैं कि कोई नंगा न हो जाए, कपड़े बेचते चले जा रहे हैं। महावीर नग्न हुए तो लोगों ने गांव-गांव से निकाला। एक गांव में न टिकने दिया। जिस गांव में ठहर जाते, लोग उनको गांव के बाहर करते कि यह आदमी नग्न हो गया। अब पूजा चल रही है, लेकिन महावीर को तो हमने टिकने नहीं दिया गांव में, धर्मशाला में न रुकने दिया, गांव के बाहर मरघट में न ठहरने दिया। कहीं गांव के आसपास न आ जाएं तो लोग जंगली कुत्ते उनके पीछे लगा देते जो उनको दूर गांव के बाहर निकाल आएं। क्या तकलीफ हो गई थी महावीर से लोगों को? एक तकलीफ हो गई थी कि उस आदमी ने कपड़े छोड़ दिए थे। लेकिन बड़े आश्चर्य की बात है! किसी के कपड़े छोड़ देने से... क्या, कारण क्या है?

डर कुछ दूसरे हैं, डर कुछ बहुत भयंकर हैं। हम इतने नंगे हैं भीतर कि नग्न आदमी को देखकर हम घबड़ा जाते हैं कि बड़ी मुश्किल हो गई; हमें अपने नंगेपन का ख्याल आ जाता है। और कोई कारण नहीं है।

और ध्यान रहे, नग्नता और बात है, नंगापन बिल्कुल दूसरी बात है। महावीर को देखकर कोई कह नहीं सकता कि वे नंगे खड़े हैं, और हमको कपड़ों में भी देखकर कोई कहेगा कि कितने ही कपड़े पहनें, हैं तो नंगे ही; फर्क नहीं पड़ता है।

गौर से देखा है? जो लोग नग्न खड़े हो गए उनको गौर से देखा है? हिम्मत ही न पड़ी होगी उस तरफ देखने की। हालांकि बीच-बीच में आंख बचाकर देखते रहे होंगे, नहीं तो बेचैन कैसे होते? एक्सप्लोसिव स्थिति कैसे पैदा होती?

अब उन मित्र ने लिखा है कि स्त्रियां बहुत परेशान हो गईं।

स्त्रियों को मतलब? स्त्रियां इसलिए आई हैं कि कोई नग्न हो तो उसको देखती रहें? उनको अपना ध्यान करना था।

नहीं लेकिन, देखते रहे होंगे आंख बचाकर। फिर सब छोड़कर, वह आत्म-ध्यान वगैरह छोड़कर, अपने को देखना वगैरह छोड़कर वही देखते रहे होंगे। तो एक्सप्लोसिव हो ही जाएगा। आपसे कौन कह रहा था कि आप देखें? आप आंख बंद किए हुए थे, कोई नग्न खड़ा था वह खड़ा रहता। वह आपको बिल्कुल नहीं देख रहा था। वह नग्न आदमी आकर मुझसे कहता कि स्त्रियों की वजह से मेरे लिए बड़ी एक्सप्लोसिव स्थिति हो गई, तो कुछ समझ में आता। और स्त्रियों की एक्सप्लोसिव स्थिति हो गई उस आदमी की वजह से!

उसको जरा गौर से देखते तो मन प्रसन्न होता। उसको नग्न खड़ा देखते तो लगता कि कितना सादा, सीधा, निर्दोष। हलका होता मन--फर्क होता, लाभ होता। लेकिन लाभ को तो हम खोने की जिद्द किए बैठे हैं। हम तो हानि को पकड़ने के लिए बड़े आतुर हैं। और हमने ऐसी विक्षिप्त धारणाएं बना रखी हैं जिनका कोई हिसाब नहीं।

नग्नताः एक निर्दोष चित्त-दशा

एक स्थिति आती है ध्यान की--कुछ लोगों को अनिवार्य रूप से आती है--कि वस्त्र छोड़ देने की हालत हो जाती है। वे मुझसे पूछकर नग्न हुए हैं। इसलिए उन पर एक्सप्लोसिव मत होना, होना हो तो मुझ पर होना। जो लोग भी यहां नग्न हुए हैं वे मुझसे आज्ञा लेकर नग्न हुए हैं। मैंने उनसे कह दिया कि ठीक है। वे मुझसे पूछ गए हैं आकर कि हमारी हालत ऐसी है कि हमें ऐसा लगता है एक क्षण में कि अगर हमने वस्त्र न छोड़े तो कोई चीज अटक जाएगी। तो मैंने उनको कहा है कि छोड़ दें।

यह उनकी बात है, आप क्यों परेशान हो रहे हैं? इसलिए उनसे किसी ने भी कुछ कहा हो तो बहुत गलत किया है। आपको हक नहीं है वह, किसी को कुछ कहने का। थोड़ा समझना चाहिए कि एक निर्दोष चित्त... एक घड़ी है जब कई चीजें बाधाएं बन सकती हैं। कपड़े आदमी का गहरा से गहरा इनहिबिशन है। कपड़ा जो है वह आदमी का सबसे गहरा टैबू है, वह सबसे गहरी रूढ़ि है जो आदमी को पकड़े हुए है। और एक क्षण आता है कि कपड़े करीब-करीब प्रतीक हो जाते हैं हमारी सारी सभ्यता के। और एक क्षण आता है मन का कभी... किसी को आता है, सबको जरूरी नहीं... ।

बुद्ध कपड़े पहने हुए जीए, जीसस कपड़े पहने हुए जीए, महावीर ने कपड़े छोड़े। एक औरत ने भी हिम्मत की। महावीर के वक्त में औरतें हिम्मत न कर सकीं। महावीर की शिष्याएं कम न थीं, ज्यादा थीं शिष्यों से। दस हजार शिष्य थे और चालीस हजार शिष्याएं थीं। लेकिन शिष्याएं हिम्मत न जुटा सकीं कपड़े छोड़ने की। तो महावीर को तो इसी वजह से यह कहना पड़ा कि इन स्त्रियों को दुबारा जन्म लेना पड़ेगा। जब तक ये एक बार पुरुष न हों तब तक इनकी कोई मुक्ति नहीं। क्योंकि जो कपड़ा छोड़ने से डरती हैं, वे शरीर छोड़ने से कैसे न डरेंगी। तो महावीर को इसलिए एक नियम बनाना पड़ा कि स्त्री-योनि से मुक्ति नहीं हो सकती, उसे एक दफे पुरुष-योनि में आना पड़ेगा। और कोई कारण न था।

लेकिन हिम्मतवर औरतें हुईं। अगर कश्मीर की लल्ला महावीर को मिल जाती, तो उनको यह सिद्धांत न बनाना पड़ता। महावीर की तरह एक औरत हुई कश्मीर में--लल्ला। और अगर कश्मीरी से जाकर पूछेंगे तो वह कहेगाः हम दो ही शब्द जानते हैं--अल्ला और लल्ला। दो ही शब्द जानते हैं। एक औरत हुई जो नग्न रही। और सारे कश्मीर ने उसको आदर दिया। क्योंकि उसकी नग्नता में उन्हें पहली दफा दिखाई पड़ा--और तरह का सौंदर्य, और तरह की निर्दोषता, और तरह का आनंद, एक बच्चे जैसा भाव। अगर लल्ला महावीर को मिल जाती, तो महावीर के ऊपर एक कलंक लग गया, वह बच जाता। महावीर के ऊपर एक कलंक है, और वह कलंक यह है कि स्त्री-योनि से मुक्ति न हो सकेगी। और उसका कारण महावीर नहीं हैं, उसका कारण जो स्त्रियां उनके आसपास इकट्ठी हुई होंगी वे हैं। क्योंकि उन्होंने कहा, यह तो असंभव है। तो फिर महावीर ने कहा, वस्त्र न छोड़ सकोगी तो शरीर कैसे छूटेगा? इतनी ऊपरी पकड़ है, तो भीतर की पकड़ कैसे जाएगी?

शिविर साधकों के लिए है, दर्शकों के लिए नहीं

नहीं मैं कहता हूं कि आप नग्न हो जाएं, लेकिन कोई होता हो तो उसे रोकने की तो कोई बात नहीं है। और एक साधना-शिविर में भी हम इतनी स्वतंत्रता न दे पाएं कि कोई अगर इतना मुक्त होना चाहे तो हो सके, तो फिर यह स्वतंत्रता कहां मिल पाएगी? साधना-शिविर साधकों के लिए है, दर्शकों के लिए नहीं। वहां जब तक कोई दूसरे को कोई छेड़खानी नहीं कर रहा है तब तक उसकी परम स्वतंत्रता है। दूसरे पर जब कोई ट्रेसपास करता है तब बाधा शुरू होती है। अगर कोई नंगा होकर आपको धक्का देने लगे, तो बात ठीक है; कोई अगर

आपको आकर चोट पहुंचाने लगे, तो बात ठीक है कि रोका जाए। लेकिन जब तक एक आदमी अपने साथ कुछ कर रहा है, आप कुछ भी नहीं हैं बीच में, आपको कोई कारण नहीं है।

अब अजीब बातें हमें बाधा बनती हैं। कोई नग्न हो गया है इसलिए कई लोगों का ध्यान खराब हो गया। ऐसा सस्ता ध्यान बच भी जाता तो किसी काम का नहीं है। उसका मूल्य कितना है? इतना ही था कि कोई आदमी नग्न नहीं हुआ, इसलिए आपको ध्यान हो गया। कैसे हो जाएगा?

नहीं, ये छोटी बातें, अत्यंत ओछी बातें छोड़नी पड़ेंगी। साधना बड़ी हिम्मत की बात है; वहां पर्त-पर्त अपने को उखाड़ना पड़ता है। साधना बहुत गहरे में आंतरिक नग्नता है। जरूरी नहीं है कि कपड़े कोई छोड़े, लेकिन किसी मोमेंट में किसी की स्थिति यह हो सकती है कि वह कपड़ा छोड़े। और इस बात को ध्यान रखें सदा कि जब किसी को होती है तो आप बाहर से सोच नहीं सकते, न आपको कोई हक है कि आप सोचें कि ठीक हुआ कि गलत हुआ, कि क्यों छोड़ा कि नहीं छोड़ा। आप कौन हैं? आप कहां आते हैं? और आपको कैसे पता चलेगा? नहीं तो महावीर को जिन्होंने गांव के बाहर निकाला वे कोई गलत लोग रहे होंगे? आप ही जैसे शिष्ट, समझदार, गांव के सब सज्जनों ने उनको बाहर किया कि यह आदमी नग्न खड़ा है, हम न टिकने देंगे इसे। लेकिन हम बार-बार वही भूलें दोहराते हैं।

तो मेरे मित्र अभी रास्ते में मिले, उन्होंने बड़े प्रेम से कहा, समझपूर्वक कहा, उन्होंने कहा कि आप ठीक से समझा दें, नहीं तो बंबई में ध्यान में आनेवाली संख्या कम हो जाएगी।

बिल्कुल कम हो जाए, एक आदमी न आए। लेकिन गलत आदमियों की कोई जरूरत नहीं। एक आदमी न आए, इससे क्या प्रयोजन है?

उन्होंने कहा कि महिलाएं बिल्कुल अब शिविर में न आएंगी।

बिल्कुल न आएं। किसने कहा कि वे आएं? उनको लगा तो आएं। आएं तो मेरी शर्त पर आना होगा। उनकी शर्त पर शिविर नहीं हो सकता। और जिस दिन मैं आपकी शर्त पर शिविर करूं, उस दिन आप आना ही मत; उस दिन मैं आदमी दो कौड़ी का हूं, उस दिन फिर मुझसे कोई मतलब नहीं।

मेरी शर्त पर ही होगा। मैं आपके लिए नहीं आता हूं। और आपके हिसाब से नहीं आऊंगा। और आपके हिसाब से नहीं चलूंगा। इसीलिए तो मुर्दा गुरु बहुत प्रीतिकर होते हैं, क्योंकि वह आपके हिसाब से उनको आप चला लेते हैं। जिंदा को तो बहुत मुश्किल हो जाता है। इसलिए महावीर मर जाएं तो पूजे जा सकते हैं, जिंदा को पत्थर मारने पड़ते हैं। बिल्कुल स्वाभाविक है। इसलिए दुनिया भर में मुर्दों को पूजा जाता है। जिंदा से बड़ी तकलीफ है, क्योंकि जिंदे को आप बांध नहीं सकते। और कोई दूसरे कारण मेरे लिए मूल्य के नहीं हैं। कौन आता है, कौन नहीं आता है--यह बिल्कुल बेमूल्य है। जो आता है अगर वह आता है तो समझपूर्वक आए कि किसलिए आ रहा है और क्या करने आ रहा है।

सहज योग कठिनतम

एक मित्र पूछ रहे हैं कि सहज योग के विषय में कुछ खुला करके समझाइए।

सहज योग सबसे कठिन योग है; क्योंकि सहज होने से ज्यादा कठिन और कोई बात नहीं। सहज का मतलब क्या होता है? सहज का मतलब होता हैः जो हो रहा है उसे होने दें, आप बाधा न बनें। अब एक आदमी

नग्न हो गया, वह उसके लिए सहज हो सकता है, लेकिन बड़ा कठिन हो गया। सहज का अर्थ होता हैः हवा-पानी की तरह हो जाएं, बीच में बुद्धि से बाधा न डालें; जो हो रहा है उसे होने दें।

बुद्धि बाधा डालती है, असहज होना शुरू हो जाता है। जैसे ही हम तय करते हैं, क्या होना चाहिए और क्या नहीं होना चाहिए, बस हम असहज होना शुरू हो जाते हैं। जब हम उसी के लिए राजी हैं जो होता है, उसके लिए राजी हैं, तभी हम सहज हो पाते हैं।

तो इसलिए पहली बात समझ लें कि सहज योग सबसे ज्यादा कठिन है। ऐसा मत सोचना कि सहज योग बहुत सरल है। ऐसी भ्रांति है कि सहज योग बड़ी सरल साधना है। तो कबीर का लोग वचन दोहराते रहते हैंः साधो, सहज समाधि भली। भली तो है, पर बड़ी कठिन है। क्योंकि सहज होने से ज्यादा कठिन आदमी के लिए कोई दूसरी बात ही नहीं है। क्योंकि आदमी इतना असहज हो चुका है, इतना दूर जा चुका है सहज होने से कि उसे असहज होना ही आसान, सहज होना मुश्किल हो गया है। पर फिर कुछ बातें समझ लेनी चाहिए, क्योंकि जो मैं कह रहा हूं वह सहज योग ही है।

जीवन में सिद्धांत थोपना जीवन को विकृत करना है। लेकिन हम सारे लोग सिद्धांत थोपते हैं। कोई हिंसक है और अहिंसक होने की कोशिश कर रहा है; कोई क्रोधी है, शांत होने की कोशिश कर रहा है; कोई दुष्ट है, वह दयालु होने की कोशिश कर रहा है; कोई चोर है, वह दानी होने की कोशिश कर रहा है। यह हमारे सारे जीवन की व्यवस्था हैः जो हम हैं, उस पर हम कुछ थोपने की कोशिश में लगे हैं। हम सफल हों तो भी असफल, हम असफल हों तो भी असफल। क्योंकि चोर लाख उपाय करे तो दानी नहीं हो सकता। हां, दान कर सकता है। दानी नहीं हो सकता। दान करने से भ्रम पैदा हो सकता है कि चोर दानी हो गया। लेकिन चोर का चित्त दान में भी चोरी की तरकीबें निकाल लेगा।

मैंने सुना है कि एकनाथ यात्रा पर जा रहे थे। तो गांव में एक चोर था, उसने एकनाथ से कहा कि मैं भी चलूं तीर्थयात्रा पर आपके साथ? बहुत पाप हो गए, गंगा-स्नान मैं भी कर आऊं। एकनाथ ने कहा, चलने में तो कोई हर्ज नहीं, बाकी भी सब तरह-तरह के चोर जा रहे हैं, तू भी चल सकता है। लेकिन एक बात हैः बाकी जो चोर मेरे साथ जा रहे हैं, वे कहते हैं कि उस चोर को मत ले चलना, नहीं तो हमारी सब चीजें रास्ते में गड़बड़ करेगा। तो तू एक पक्की शर्त बांध ले कि रास्ते में तीर्थयात्रियों के साथ चोरी नहीं करना। उसने कहा, कसम खाता हूं! जाने से लेकर आने तक चोरी नहीं करूंगा।

फिर तीर्थयात्रा शुरू हुई, वह चोर भी साथ हो गया। बाकी भी चोर थे, भिन्न-भिन्न तरह के चोर हैं। कोई एक तरह के चोर हैं? कई तरह के चोर हैं। कोई चोर मजिस्ट्रेट बनकर बैठा है, कोई चोर कुछ और बनकर बैठा है। सब तरह के चोर गए, वह चोर भी साथ गया। लेकिन चोरी की आदत! दिन भर तो गुजार दे, रात बड़ी मुश्किल में पड़ जाए; सब यात्री तो सो जाएं, उसकी बड़ी बेचैनी हो जाए, उसके धंधे का वक्त आ जाए। एक दिन, दो दिन... उसने कहा, मर जाएंगे, न मालूम तीन-चार महीने की यात्रा है, ऐसे कैसे चलेगा? और सबसे बड़ा खतरा यह है कि किसी तरह यात्रा भी गुजार दी और कहीं चोरी करना भूल गए तो और मुसीबत, लौटकर क्या करेंगे? कोई तीर्थ जिंदगी भर होता है?

तीसरी रात गड़बड़ शुरू हो गई। पर गड़बड़ व्यवस्थित हुई, धार्मिक ढंग की हुई। चोरी तो उसने की, लेकिन तरकीब से की। एक बिस्तर में से सामान निकाला और दूसरे में डाल दिया, अपने पास न रखा। सुबह यात्री बड़े परेशान होने लगेः किसी का सामान किसी की संदूक में मिले, और किसी का सामान किसी के बिस्तर

में। सौ-पचास यात्री थे, बड़ी खोजबीन में मुश्किल हो गई। सबने कहा, यह मामला क्या है? यह हो क्या रहा है? चीजें जाती तो नहीं हैं, लेकिन इधर-उधर चली जाती हैं।

फिर एकनाथ को शक हुआ कि वही चोर होना चाहिए जो तीर्थयात्री बन गया है। तो वे रात जगते रहे। देखा कोई दो बजे रात वह चोर उठा और उसने एक की चीज दूसरे के पास करनी शुरू कर दी। एकनाथ ने उसे पकड़ा और कहा, यह क्या कर रहा है? उसने कहा कि मैंने कसम खा ली है कि चोरी न करूंगा। चोरी मैं बिल्कुल नहीं कर रहा। लेकिन कम से कम चीजें इधर-उधर तो करने दें! मैं कोई चीज रखता नहीं, अपने लिए छूता नहीं, बस इधर से उधर कर देता हूं। यह तो मैंने आपसे कहा भी नहीं था कि ऐसा मैं नहीं करूंगा।

एकनाथ बाद में कहते थे, चोर अगर बदलने की भी कोशिश करे तो भी फर्क नहीं पड़ता।

जो हैं, उसी को जीएं

हमारे सारे जीवन में जो हमारी असहजता है, वह इसमें है कि जो हम हैं, उससे हम भिन्न होने की पूरे समय कोशिश में लगे हैं। नहीं, सहज योग कहेगाः जो हैं, उससे भिन्न होने की कोशिश मत करें; जो हैं, उसी को जानें और उसी को जीएं। अगर चोर हैं तो जानें कि मैं चोर हूं, और अगर चोर हैं तो पूरी तरह से चोर होकर जीएं।

बड़ी कठिन बात है। क्योंकि चोर को भी इससे तृप्ति मिलती है कि मैं चोरी छोड़ने की कोशिश कर रहा हूं। छूटती नहीं, लेकिन एक राहत रहती है कि मैं चोर हूं आज भला, लेकिन कल न रह जाऊंगा। तो चोर के अहंकार को भी एक तृप्ति है कि कोई बात नहीं आज चोरी करनी पड़ी, लेकिन जल्द ही वह वक्त आएगा जब हम भी दानी हो जानेवाले हैं, कोई चोर न रहेंगे। तो कल की आशा में चोर आज सुविधा से चोरी कर पाता है।

सहज योग कहता हैः अगर तुम चोर हो तो तुम जानो कि तुम चोर हो--जानते हुए चोरी करो, लेकिन इस आशा में नहीं कि कल अचोर हो जाओगे।

और जो हम हैं, अगर हम उसको ठीक से जान लें और उसी के साथ जीने को राजी हो जाएं, तो क्रांति आज ही घटित हो सकती है। चोर अगर यह जान ले कि मैं चोर हूं, तो ज्यादा दिन चोर नहीं रह सकता। यह तरकीब है उसकी चोर बने रहने के लिए कि वह कहता है, भला चोर हूं, मुश्किल है आज इसलिए चोरी कर रहा हूं, कल सुविधा हो जाएगी फिर चोरी नहीं करूंगा। असल में मैं चोर नहीं हूं, परिस्थितियों ने मुझे चोर बना दिया है। इसलिए वह चोरी करने में उसको सुविधा बन जाती है, वह अचोर बना रहता है। वह कहता हैः मैं हिंसक नहीं हूं, परिस्थितियों ने मुझे हिंसक बना दिया है; मैं क्रोधी नहीं हूं, वह तो दूसरे आदमी ने मुझे गाली दी इसलिए क्रोध आ गया। और फिर क्रोधी जाकर क्षमा मांग आता है; वह कहता है, माफ कर देना भाई! न मालूम कैसे मेरे मुंह से वह गाली निकल गई, मैं तो क्रोधी आदमी नहीं हूं। उसने अहंकार को वापस रख लिया अपनी जगह। सब पश्चात्ताप अहंकार को पुनर्स्थापित करने का उपाय है। उसने रख लिया, क्षमा मांग ली।

नहीं, सहज योग यह कहता है कि तुम जो हो, जानना कि वही हो, और इंच भर यहां-वहां हटने की कोशिश मत करना, बचने की कोशिश मत करना। तो उस पीड़ा से, उस दंश से, उस दुख से, उस पाप से, उस आग से, उस नरक से--जो तुम हो--अगर उसका पूरा तुम्हें बोध हो जाए, तो तुम छलांग लगाकर तत्काल बाहर हो जाओगे, बाहर होना नहीं पड़ेगा।

अगर कोई चोर है और पूरी तरह चोर होने को जान ले, और अपने मन में कहीं भी गुंजाइश न रखे कि कभी मैं चोर नहीं रहूंगा; मैं चोर हूं तो मैं चोर ही रहूंगा, और अगर आज चोर हूं तो कल और बड़ा चोर हो

जाऊंगा, क्योंकि चौबीस घंटे का अभ्यास और बढ़ जाएगा। अगर कोई अपनी इस चोरी के भाव को पूरी तरह पकड़ ले और ग्रहण कर ले, और समझे कि ठीक है, यही मेरा होना है, तो आप समझते हैं कि आप चोर रह सकेंगे? यह इतने जोर से छाती में तलवार की तरह चुभ जाएगी कि मैं चोर हूं, कि इसमें जीना असंभव हो जाएगा एक क्षण भी। क्रांति अभी हो जाएगी, यहीं हो जाएगी।

सिद्धांतों के शॉक-एब्जार्बर

नहीं, लेकिन हम होशियार हैं, हमने तरकीबें बना ली हैं--चोर हम हैं, और अचोर होने के सपने देखते रहते हैं। वे सपने हमें चोर बनाए रखने में सहयोगी होते हैं, बफर का काम करते हैं। जैसे ट्रेन है, रेलगाड़ी के डब्बों के बीच में बफर लगे हैं। धक्के लगते हैं, बफर पी जाते हैं धक्के। डब्बे के भीतर के यात्री को पता नहीं चलता। कार में स्प्रिंग लगे हुए हैं, शॉक-एब्जार्बर्स लगे हुए हैं। कार चलती है, रास्ते पर गड्ढे हैं, शॉक-एब्जार्बर पी जाता है। भीतर के सज्जन को पता नहीं चलता कि धक्का लगा। ऐसे हमने सिद्धांतों के बफर और शॉक-एब्जार्बर लगाए हुए हैं।

चोर हूं मैं, और सिद्धांत है मेरा अचौर्य; हिंसक हूं मैं, अहिंसा परम धर्म की तख्ती लगाए हुए हूं--यह बफर है; यह मुझे हिंसक रहने में सहयोगी बनेगा। क्योंकि जब भी मुझे ख्याल आएगा कि मैं हिंसक हूं, मैं कहूंगा कि क्या हिंसक! अहिंसा परम धर्म! मैं अहिंसा को धर्म मानता हूं। आज नहीं सध रहा, कमजोर हूं, कल सध जाएगा; इस जनम में नहीं सधता, अगले जनम में सध जाएगा; लेकिन सिद्धांत मेरा अहिंसा है। तो मैं झंडा लेकर अहिंसा का सिद्धांत सारी दुनिया में गाड़ता फिरूंगा, और भीतर हिंसक रहूंगा। वह झंडा सहयोगी हो जाएगा। जहां अहिंसा परम धर्म लिखा हुआ दिखाई पड़े, समझ लेना आसपास हिंसक निवास करते होंगे। और कोई कारण नहीं है। आसपास हिंसक बैठे होंगे, जिन्होंने वह तख्ती लगाई हैः अहिंसा परम धर्म! वह हिंसक की तरकीब है। और आदमी ने इतनी तरकीबें ईजाद की हैं कि तरकीबें-तरकीबें ही रह गई हैं, आदमी खो गया है।

सहज होने का मतलब हैः जो है, दैट व्हिच इ.ज इ.ज; जो है, वह है। अब उस होने के बाहर कोई उपाय नहीं है। उस होने में रहना है। उसमें ही रहूंगा। लेकिन वह होना इतना दुखद है कि उसमें रहा नहीं जा सकता। नरक में आपको डाल दिया जाए तो आप हैरान होंगे कि नरक में रहने में आपके सपने ही सहयोगी बनेंगे। तो आप आंख बंद करके सपना देखते रहेंगे। उपवास किया है किसी दिन आपने? तो आप आंख बंद करके भोजन के सपने देखते रहेंगे। उपवास के दिन भी भोजन का सपना ही सहयोगी बनता है उपवास पार करने में; भोजन का सपना चलता रहता है भीतर। अगर भोजन का सपना बंद कर दें तो उपवास उसी वक्त टूट जाए। लेकिन कल कर लेंगे सुबह।

एक प्रोफेसर मेरे साथ थे यूनिवर्सिटी में। बहुत दिन साथ रहने पर मैंने... पहले तो मुझे पता नहीं चला, कभी-कभी अचानक एकदम वे मिठाइयों और इन सब की बात करने लगते। मैंने कहा कि बात क्या है? कभी-कभी करते हैं! फिर मैंने पकड़ा तो अंदाज लगाया तो पता चला कि हर शनिवार को करते हैं। तो मैंने उनसे पूछा एक दिन--शनिवार था और वे आए--और मैंने कहा कि अब तो आप जरूर मिठाई की बात करेंगे। उन्होंने कहा, क्यों, आप क्यों यह बात कहते हैं? तो मैंने कहा कि मैं इधर दो महीने से रिकार्ड रख रहा हूं आपका, शनिवार को जरूर मिठाई की बात करते हैं। आप शनिवार को उपवास तो नहीं करते? उन्होंने कहा, आपको किसने कहा? मैंने कहा, कोई कहने का सवाल ही नहीं है, मैंने हिसाब लगाया है। उन्होंने कहा, करता हूं। आपने कैसे

पकड़ा? मैंने कहा, पकड़ा क्या, मैं देखता हूं कि कोई भी स्वस्थ आदमी जो ठीक से खाता-पीता हो, मिठाई की क्यों बात करे? पर आप ठीक खाते-पीते आदमी हैं।

शनिवार को जरूर वे बात करते, कोई न कोई बहाना फौरन वे कोई बहाने से भी निकाल लेते और वे मिठाई की बात शुरू करते। उन्होंने कहा कि मैं शनिवार--आपने अच्छा पकड़ा--लेकिन शनिवार को मैं दिन भर सोचता रहता हूं कि कल यह खाऊं, वह खाऊं; यह करूं, वह करूं। उसी के सहारे तो गुजार पाता हूं; शनिवार मैं उपवास करता हूं। तो मैंने उनसे कहा कि एक दिन ऐसा करो कि ये सपने मत देखो, उपवास करो। उन्होंने कहा, फिर उपवास टूट जाएगा; इसी के सहारे मैं दिन भर खींच पाता हूं। कल की आशा आज को गुजार देती है। कल की आशा आज को बिता देती है।

हिंसक अपनी हिंसा गुजार रहा है, अहिंसा की आशा में; क्रोधी अपने क्रोध को गुजार रहा है, दया की आशा में; चोर अपनी चोरी को गुजार रहा है, दान की आशा में; पापी अपने पाप को गुजार रहा है, पुण्यात्मा होने की आशा में। ये आशाएं बड़ी अधार्मिक हैं। नहीं, तोड़ दें इनको। जो हैं, हैं--उसे जान लें और उसके साथ जीएं। वह जो फैक्ट है, उसके साथ जीएं। वह कठिन है, कठोर है, बहुत दुखद है, बहुत मन को पीड़ा देगा कि मैं ऐसा आदमी हूं!

अब एक आदमी है सेक्सुअलिटी से भरा है, ब्रह्मचर्य की किताब पढ़कर गुजार रहा है! काम से भरा है, किताब ब्रह्मचर्य की पढ़ता है, तो वह सोचता है कि हम बड़े ब्रह्मचर्य के साधक हैं। काम से भरा है। अब वह किताब ब्रह्मचर्य की बड़ा सहारा बन रही है उसको कामुक रहने में; वह कह रहा है, आज कोई हर्ज नहीं, आज तो गुजर जाए, आज और भोग लो, कल से तो पक्का ही कर लेना।

मैं एक घर में मेहमान था। एक बूढ़े ने मुझसे कहा कि एक संन्यासी ने मुझे तीन दफे ब्रह्मचर्य का व्रत दिलवाया!

तीन दफा? मैंने कहा। ब्रह्मचर्य का व्रत एक दफा काफी है। दूसरी दफे कैसे लिया? क्योंकि ब्रह्मचर्य का व्रत तीन दफे कैसे लेना पड़ेगा? तो उन्होंने कहा, मैं तो कई लोगों से कह चुका, लेकिन किसी ने मुझे पकड़ा नहीं। वे कहते हैं, अच्छा, आपने तीन दफे व्रत लिया! और कोई कहता नहीं। आप... । मैंने कहा कि ब्रह्मचर्य का व्रत तो एक ही दफे हो सकता है; दुबारा कैसे लिया? उन्होंने कहा, वह टूट गया। फिर तिबारा लिया। तो फिर मैंने कहा, चौथी बार नहीं लिया? तो उन्होंने कहा कि नहीं, फिर मेरी हिम्मत ही टूट गई लेने की। लेकिन तीन दफे लेते-लेते वे साठ साल के हो गए। गुजार दी कामुकता--ब्रह्मचर्य का व्रत ले-लेकर गुजार दी कामुकता।

हम बड़े अदभुत हैं। यह हमारा असहज योग है जो चल रहा है। असहज योग! रहेंगे कामुक, पढ़ेंगे ब्रह्मचर्य की किताब। वह ब्रह्मचर्य की किताब हमारी सेक्सुअलिटी के लिए बड़ा बफर का काम कर रही है। उसे पढ़े जाएंगे, तो मन में समझाए जाएंगे कि कौन कहता है मैं कामुक हूं! किताब ब्रह्मचर्य की पढ़ता हूं। अभी जरा कमजोर हूं, पिछले जन्मों के कर्म बाधा दे रहे हैं; अभी समय नहीं आया है, इसलिए थोड़ा चल रहा है, लेकिन बाकी हूं मैं ब्रह्मचारी। ब्रह्मचारी की ही धारणा मेरी है। इधर सेक्स चलेगा, इधर ब्रह्मचर्य--दोनों साथ। ब्रह्मचर्य बफर बन जाएगा, शॉक-एब्जार्बर बन जाएगा। सेक्स की गद्दी लगी रहेगी भीतर, वहां कोई धक्के न पहुंचेंगे, यात्रा ठीक से हो जाएगी। यह असहज स्थिति है।

सहज स्थिति का मतलब है कि बफर हटा दो; सड़क पर गड्ढे हैं तो जानो; गाड़ी बिना बफर की, बिना शॉक-एब्जार्बर की चलाओ। पहले ही गड्ढे पर प्राण निकल जाएंगे, कमर टूट जाएगी, गाड़ी के बाहर निकल आओगे कि नमस्कार, इस गाड़ी में अब नहीं चलते। गाड़ी के स्प्रिंग निकालकर चलेंगे रास्ते पर, पहले ही गड्ढे में

प्राण निकल जाएंगे, हड्डी टूट जाएंगी; गाड़ी के बाहर हो जाएंगे, कहेंगे, नमस्कार! अब इस गाड़ी में हम कदम न रखेंगे। लेकिन वे नीचे लगे शॉक-एब्जार्बर गड्ढों को पी जाते हैं।

सहज योग का मतलब हैः जो है, वह है। असहज होने की चेष्टा न करें; जो है उसे जानें, स्वीकार करें, पहचानें और उसके साथ रहने को राजी हो जाएं। और फिर क्रांति सुनिश्चित है। जो है, उसके साथ जो भी रहेगा, बदलेगा। क्योंकि साठ साल फिर उपाय नहीं है कामुकता में गुजारने का। कितने दफे व्रत लेंगे? व्रत लेंगे तो उपाय हो जाएगा।

अगर मैंने आप पर क्रोध किया और क्षमा मांगने न जाऊं, और जाकर कल कह आऊं कि मैं आदमी गलत हूं, और अब मुझसे दोस्ती रखनी हो तो ध्यान रखना, मैं फिर-फिर क्रोध करूंगा; क्षमा मैं क्या मांगूं! मैं आदमी ऐसा हूं कि मैं क्रोध करता हूं। सब दोस्त टूट जाएंगे। सब संबंध छिन्न-भिन्न हो जाएंगे। अकेले क्रोध को लेकर जीना पड़ेगा फिर। फिर क्रोध ही मित्र रह जाएगा। क्रोध करनेवाला भी कोई, क्रोध सहनेवाला भी कोई, क्रोध उठानेवाला भी कोई पास न होगा। तब उस क्रोध के साथ जीना पड़ेगा। जी सकेंगे उस क्रोध के साथ? छलांग लगाकर बाहर हो जाएंगे। कहेंगे, यह क्या पागलपन है?

नहीं, लेकिन तरकीब हमने निकाल ली है। सुबह पत्नी पर नाराज हो रहा है पति, घंटे भर बाद मना-समझा रहा है, साड़ी खरीदकर ले आ रहा है। वह पत्नी समझ रही है कि बड़े प्रेम से भर गया है। वह बेचारा अपने क्रोध का पश्चात्ताप करके फिर पुनर्स्थापित, पुराने स्थान पर पहुंच रहा है--पुरानी सीमा पर जहां से झगड़ा शुरू हुआ था, उस लाइन पर फिर पहुंच रहा है। साड़ी-वाड़ी आ जाएगी, पत्नी वापस लौट आएगी, पुरानी रेखा फिर खड़ी हो जाएगी। सांझ फिर वही होना है। उसी रेखा पर सुबह हुआ था, वही रेखा फिर स्थापित हो गई। फिर सांझ वही होना है। फिर रात वही समझाना है, फिर सुबह वही होना है। पूरी जिंदगी वही दोहरना है। लेकिन दोनों में से कोई भी इस सत्य को न समझेगा कि सत्य क्या है? यह हो क्या रहा है? यह क्या जाल है? बेईमानी क्या है यह? दोनों एक-दूसरे को धोखा दिए चले जाएंगे। हम सब एक-दूसरे को धोखा दिए चले जाते हैं। और दूसरे को धोखा देना तो ठीक, अपने को ही धोखा दिए चले जाते हैं।

सहज योग का मतलब हैः अपने को धोखा मत देना। जो हैं, जान लेना, यही हूं; ऐसा ही हूं। और अगर ऐसा जान लेंगे तो बदलाहट तत्काल हो जाएगी--युगपत, उसके लिए रुकना न पड़ेगा कल के लिए। किसी के घर में आग लगी हो और उसे पता चल जाए कि घर में आग लगी है, तो रुकेगा कल तक? अभी छलांग लगाकर बाहर हो जाएगा। जिस दिन जिंदगी जैसी हमारी है हम उसे पूरा देख लेते हैं, उसी दिन छलांग की नौबत आ जाती है।

लेकिन घर में आग लगी है, हमने अंदर फूल सजा रखे हैं। हम आग को देखते ही नहीं, हम फूल को देखते हैं। जंजीरें हाथ में बंधी हैं, हमने सोने का पालिश चढ़ा रखा है। हम जंजीरें देखते ही नहीं, हम आभूषण देखते हैं। बीमारियों से सब घाव हो गए हैं, हमने पट्टियां बांध रखी हैं, पट्टियों पर रंग पोत दिए हैं। हम रंगों को देखते हैं, भीतर के घावों को नहीं देखते।

असत्य बांधता है, सत्य मुक्त करता है

धोखा लंबा है और पूरी जिंदगी बीत जाती है और परिवर्तन का क्षण नहीं आ पाता है। उसे हम पोस्टपोन करते चले जाते हैं। मौत पहले आ जाती है, वह पोस्टपोनमेंट किया हुआ क्षण नहीं आता। मर पहले जाते हैं, बदल नहीं पाते हैं।

बदलाहट कभी भी हो सकती है। सहज योग बदलाहट की बहुत अदभुत प्रक्रिया है। सहज योग का मतलब यह है कि जो है उसके साथ जीओ, बदल जाओगे। बदलने की कोशिश करने की कोई जरूरत नहीं है। सत्य बदल देता है।

जीसस का वचन हैः ट्रुथ लिबरेट्स। वह जो सत्य है वह मुक्त करता है।

लेकिन सत्य को हम जानते ही नहीं। हम असत्य को लीप-पोत कर खड़ा कर लेते हैं। असत्य बांधता है, सत्य मुक्त करता है। दुखद से दुखद सत्य भी सुखद से सुखद असत्य से बेहतर है, क्योंकि सुखद असत्य बहुत खतरनाक है; वह बांधेगा। दुखद सत्य भी मुक्त करेगा। उसका दुख भी मुक्तिदायी है। इसलिए दुखद सत्य के साथ जीना, सुखद असत्य को मत पालना। सहज योग इतना ही है। और फिर तो समाधि आ जाएगी। फिर समाधि को खोजने न जाना पड़ेगा, वह आ जाएगी।

जब रोना आए तो रोना, रोकना मत; और जब हंसना आए तो हंसना, रोकना मत। जब जो हो उसे होने देना और कहना, यह हो रहा है।

मैंने सुना है, जापान में एक फकीर मरा। उसके मरते समय लाखों लोग इकट्ठे हुए। उसकी बड़ी कीर्ति थी। लेकिन उससे भी ज्यादा कीर्ति उसके एक शिष्य की थी। उस शिष्य के कारण ही गुरु प्रसिद्ध हो गया था। लेकिन जब लोग आए तो उन्होंने देखा वह जो शिष्य है, वह बाहर बैठकर छाती पीटकर रो रहा है। तो लोगों ने कहा कि आप और रो रहे हैं? हम तो समझते थे आप ज्ञान को उपलब्ध हो गए! और आप रोते हैं? तो उस शिष्य ने कहा कि पागलो, तुम्हारे ज्ञान के पीछे मैं रोना न छोड़ूंगा। रोने की बात ही और। रखो अपने ज्ञान को, सम्हालो, मुझे नहीं चाहिए। पर उन्होंने कहा कि अरे, लोग क्या कहेंगे? अंदर जाओ! बदनामी फैल जाएगी। हम तो समझे तुम स्थितप्रज्ञ हो गए; हम तो समझे थे कि तुम परम ज्ञानी हो गए; और हम तो समझे थे कि अब तुम्हें कुछ भी नहीं छुएगा। उसने कहा, तुम गलत समझे थे। बल्कि पहले मुझे बहुत कम छूता था, संवेदनशीलता मेरी कम थी, मैं कठोर था। अब तो सब मुझे छूता है और आर-पार निकल जाता है। मैं तो रोऊंगा, मैं तो दिल भरकर रोऊंगा। तुम्हारे ज्ञान को फेंको। पर वे लोग, जैसा कि भक्तगण होते हैं, उन्होंने कहा कि सब में बदनामी फैल जाएगी। भीड़ करके, घेरा करके रोको, किसी को देखने मत दो। बदनामी हो जाएगी कि परम ज्ञानी... किसी एक ने कहा कि तुम तो सदा समझाते थे कि आत्मा अमर है, अब क्यों रो रहे हो? तो उस फकीर ने कहा, आत्मा के लिए कौन रो रहा है? मैं तो उस शरीर के लिए रो रहा हूं। वह शरीर भी बहुत प्यारा था, और वह शरीर अब दुबारा इस पृथ्वी पर कभी नहीं होगा। आत्मा के लिए कौन रो रहा है! वह तो सदा रहेगी। उसके लिए रो कौन रहा है? लेकिन वह शरीर भी बहुत प्यारा था जो टूट गया। और वह मंदिर भी बहुत प्यारा था जिसमें उस आत्मा ने वास किया। अब वह दुबारा नहीं होगा। मैं उसके लिए रो रहा हूं। अरे, उन्होंने कहा, पागल शरीर के लिए रोते हो? उस फकीर ने कहा कि रोने में भी शर्तें लगाओगे क्या? मुझे रोने भी नहीं दोगे?

प्रामाणिकता से रूपांतरण

मुक्त चित्त वही हो सकता है जो सत्यचित्त हो गया। सत्यचित्त का मतलब, जो हो रहा है--रोना है तो रोएं, हंसना है तो हंसें, क्रोध करना है तो बी आथेंटिक, क्रोध में भी पूरे प्रामाणिक हों। और जब क्रोध करें तो पूरे क्रोध ही हो जाएं--कि आपको भी पता चल जाए कि क्रोध क्या है और आपके आसपास को भी पता चल जाए कि क्रोध क्या है। वह मुक्तिदायी होगा। बजाय इंच-इंच क्रोध जिंदगी भर करने के, पूरा क्रोध एक ही दफे कर लें

और जान लें। तो उससे आप भी झुलस जाएं और आपके आसपास भी झुलस जाए और पता चल जाए कि क्रोध क्या है।

क्रोध का पता ही नहीं चलता। आधा-आधा चल रहा है। वह भी अनआथेंटिक चल रहा है। इंच भर करते हैं और इंच भर... हमारी यात्रा ऐसी है, एक कदम चलते हैं, एक कदम वापस लौटते हैं; न कहीं जाते, न कहीं लौटते, बस जगह पर खड़े नाचते रहते हैं। कहीं जाना-आना नहीं है।

सहज योग का इतना ही मतलब है कि जो है जीवन में, उसको स्वीकार कर लें, उसे जानें और जीएं। और इस जीने, जानने और स्वीकृति से आएगा परिवर्तन, म्यूटेशन, बदलाहट। और वह बदलाहट आपको वहां पहुंचा देगी जहां परमात्मा है।

यह जिसे मैं ध्यान कह रहा हूं, यह सहज योग की ही प्रक्रिया है। इसमें आप स्वीकार कर रहे हैं जो हो रहा है; अपने को छोड़ रहे हैं पूरा और स्वीकार कर रहे हैं जो हो रहा है। नहीं तो आप सोच सकते हैं, पढ़े-लिखे आदमी, सुशिक्षित, संपन्न, सोफिस्टिकेटेड, सुसंस्कृत--रो रहे हैं खड़े होकर, चिल्ला रहे हैं, हाथ-पैर पटक रहे हैं, विक्षिप्त की तरह नाच रहे हैं! यह सामान्य नहीं है। कीमती है लेकिन, असामान्य है। इसलिए जो देख रहा है उसकी समझ में नहीं आ रहा है कि यह क्या हो रहा है। उसे हंसी आ रही है कि यह क्या हो रहा है! उसे पता नहीं कि वह भी इस जगह खड़े होकर प्रामाणिक रूप से जो कहा जा रहा है, करेगा, तो उसे भी यही होगा। और हो सकता है उसकी हंसी सिर्फ डिफेंस-मेजर हो, वह सिर्फ हंसकर अपनी रक्षा कर रहा है। वह कह रहा है, हम ऐसा नहीं कर सकते। वह हंसकर यह बता रहा है, हम ऐसा नहीं कर सकते। लेकिन उसकी हंसी कह रही है कि उसका कुछ संबंध है। उसकी हंसी कह रही है कि वह इस मामले से कुछ न कुछ संबंध उसका है। अगर वह भी इस जगह इसी तरह खड़ा होगा, यही करेगा। उसने भी अपने को रोका है, दबाया है; रोया नहीं, हंसा नहीं, नाचा नहीं।

बर्ट्रेंड रसेल ने पीछे एक बार कहा कि मनुष्य की सभ्यता ने आदमी से कुछ कीमती चीजें छीन लीं--उसमें नाचना एक है। बर्ट्रेंड रसेल ने कहा, आज मैं ट्रैफलगर स्क्वायर पर खड़े होकर लंदन में नाच नहीं सकता। कहते हैं हम स्वतंत्र हो गए हैं, कहते हैं कि दुनिया में स्वतंत्रता आ गई है, लेकिन मैं चौरस्ते पर खड़े होकर नाच नहीं सकता। ट्रैफिक का आदमी फौरन मुझे पकड़कर थाने भेज देगा कि आप ट्रैफिक में बाधा डाल रहे हैं। और आप आदमी पागल मालूम होते हैं, चौरस्ता नाचने की जगह नहीं। बर्ट्रेंड रसेल ने कहा कि कई दफे आदिवासियों में जाकर देखता हूं, और जब उन्हें नाचते देखता हूं रात, आकाश के तारों की छाया में, तब मुझे ऐसा लगता हैः सभ्यता ने कुछ पाया या खोया?

बहुत कुछ खोया है। बहुत कुछ खोया है। कुछ पाया है, बहुत कुछ खोया है। सरलता खोई है, सहजता खोई है, प्रकृति खोई है, और बहुत तरह की विकृति पकड़ ली है। ध्यान आपको सहज अवस्था में ले जाने की प्रक्रिया है।

साधक के लिए पाथेय

इसलिए अंतिम बात जो आपसे कहना चाहूंगा वह यह कि यहां तीन दिन में जो हुआ, वह महत्वपूर्ण है। कुछ लोगों ने बड़ी अदभुत प्रतीति पाई, कुछ लोग प्रतीति की झलक तक पहुंचे, कुछ लोग प्रयास तो किए लेकिन पूरा नहीं कर पाए, फिर भी प्रयास किए और निकट थे, प्रवेश हो सकता था। लेकिन सभी ने कुछ किया, सिर्फ दो-चार-दस मित्रों को छोड़कर। उनको, जिन्हें बुद्धिमान होने का भ्रम है, उनको छोड़कर। जिनके पास बुद्धि

कम, किताबें ज्यादा हैं, उनको छोड़कर बाकी सारे लोग संलग्न हुए। और सारा वातावरण, बहुत सी बाधाओं के बावजूद भी, एक विशेष प्रकार की शक्ति से निर्मित हुआ। और बहुत कुछ घटा। लेकिन वह सिर्फ प्रारंभ है।

घर जाकर ध्यान का प्रयोग जारी रखें

आप घर जाकर घंटे भर इस प्रयोग को चौबीस घंटे में से देते रहना, तो आपकी जिंदगी में कोई द्वार खुल सकता है। और घर के लिए--कमरा बंद कर लें, और घर के लोगों को कह दें कि घंटे भर इस कमरे में कुछ भी हो, इस संबंध में चिंतित होने का कारण नहीं है। कमरे के भीतर नग्न हो जाएं, सब वस्त्र फेंक दें। और खड़े होकर प्रयोग करें। गद्दी बिछा लें, ताकि गिर जाएं तो कोई चोट न लग जाए। खड़े होकर प्रयोग करें। और घर के लोगों को पहले जता दें कि बहुत कुछ हो सकता है--आवाजें आ सकती हैं, रोना निकल सकता है--कुछ भी हो सकता है भीतर, लेकिन घर के लोगों को बाधा नहीं देनी है। यह पहले बता दें। और इस प्रयोग को घंटे भर दोहराते रहें, दुबारा शिविर में मिलने के पहले। और अगर जो मित्र यहां प्रयोग किए हैं वे अगर सारे मित्र घर जाकर दोहराते हैं, तो उनके लिए मैं फिर अलग शिविर ले सकूंगा। तब उन्हें और गति दी जा सकती है।

बहुत संभावना है, अनंत संभावनाएं हैं, लेकिन आप कुछ करें। आप एक कदम चलें तो परमात्मा आपकी तरफ सौ कदम चलने को सदा तैयार है। लेकिन आप एक कदम भी न चलें, तब फिर कोई उपाय नहीं है।

जाकर इस प्रयोग को जारी रखें। संकोच बहुत घेरेंगे। क्योंकि घर में छोटे बच्चे क्या कहेंगे कि पिता को क्या हो गया! वे तो कभी ऐसे न थे, सदा गुरु-गंभीर थे। ऐसा नाचते हैं, कूदते हैं, चिल्लाते हैं! हम नाचते-कूदते थे बच्चे घर में तो वे डांटते-डपटते थे कि गलत है यह, अब खुद को क्या हो गया है? जरूर बच्चे हंसेंगे। लेकिन उन बच्चों से माफी मांग लेना, और उन बच्चों से कह देना कि भूल हो गई। तुम अभी भी नाचो और कूदो और आगे भी नाचने-कूदने की क्षमता को बचाए रखना, वह काम पड़ेगी।

बच्चों को जल्दी हम बूढ़ा बना देते हैं।

घर में सबको जता देना कि यह घंटे भर कुछ भी हो, उसके संबंध में कोई व्याख्या नहीं करनी है, कोई पूछताछ नहीं करनी है। एक दिन कह देने से बात हल हो जाती है, दो या तीन दिन चलने पर घर के लोग समझ लेते हैं कि ठीक है, ऐसा होता है। और न केवल आप बल्कि आपके पूरे घर में परिणाम होने शुरू हो जाएंगे।

ऊर्जावान ध्यान कक्ष

जिस कमरे में आप करें इस प्रयोग को, अगर उस कमरे को संभव हो सके आपके लिए, तो फिर इसी प्रयोग के लिए रखें, उसमें कुछ दूसरा काम न करें। छोटी कोठरी हो, ताला बंद कर दें, उसमें सिर्फ यही प्रयोग करें। और अगर घर के दूसरे लोग भी उसमें आना चाहें तो वह प्रयोग करने के लिए आएं तो ही आ सकें, अन्यथा उसे बंद कर दें। नहीं संभव हो सके तो बात अलग है। संभव हो सके तो इसके बहुत फायदे होंगे। वह कमरा चार्ज्ड हो जाएगा।

वह रोज आप जब उसके भीतर जाएंगे तो आपको पता चलेगा कि साधारण कमरा नहीं है। क्योंकि हम पूरे समय अपने चारों तरफ रेडिएशन फैला रहे हैं। हमारे चारों तरफ हमारी चित्त-दशा की किरणें फिंक रही हैं। और कमरे और जगहें भी किरणों को पी जाती हैं।

और इसीलिए हजारों-हजारों साल तक भी कोई जगह पवित्र बनी रहती है। उसके कारण हैं। अगर वहां कभी कोई महावीर या बुद्ध या कृष्ण जैसा व्यक्ति बैठा हो, तो वह जगह हजारों साल के लिए और तरह का इम्पैक्ट ले लेती है; उस जगह पर खड़े होकर आपको दूसरी दुनिया में प्रवेश करना बहुत आसान हो जाता है।

तो जो संपन्न हैं... और संपन्न का मैं तो एक ही लक्षण मानता हूं कि उसके घर में मंदिर हो सके, बस वही संपन्न है, बाकी सब दरिद्र ही हैं। घर में एक कमरा तो मंदिर का हो सके, जो एक दूसरी दुनिया की यात्रा का द्वार हो। वहां कुछ और न करें। वहां जब जाएं, मौन जाएं; और वहां ध्यान को ही करें। और घर के लोगों को भी धीरे-धीरे उत्सुकता बढ़ जाएगी, क्योंकि आप में जो फर्क होने शुरू होंगे वे दिखाई पड़ने लगेंगे।

अब यहां जिन दो-चार लोगों को कीमती फर्क हुए हैं, दूसरे लोगों ने उनसे जाकर पूछना शुरू कर दिया कि आपको क्या हो गया है! उन्होंने मुझसे भी आकर कहा कि हम क्या जवाब दें? हमसे लोग पूछ रहे हैं कि क्या हो गया है!

तो वे आपके घर के बच्चे, आपकी पत्नी, पति, पिता, बेटे, वे सब पूछने लगेंगे, मित्र पूछने लगेंगे कि क्या हो रहा है! वे भी उत्सुक होंगे। और अगर इस प्रयोग को जारी रखते हैं तो दूर नहीं वह क्षण जब आपके जीवन में घटना घट सकती है--जिस घटना के लिए अनंत जन्मों की यात्रा करनी होती है, और जिस घटना के लिए अनंत जन्मों तक हम चूक सकते हैं।

विराट ध्यान आंदोलन की आवश्यकता

मनुष्य-जाति के इतिहास में आनेवाले कुछ वर्ष बहुत महत्वपूर्ण हैं। और अगर एक बहुत बड़ी स्प्रिचुएलिटी का जन्म नहीं हो सकता--अब आध्यात्मिक लोगों से काम नहीं चलेगा--अगर आध्यात्मिक आंदोलन नहीं हो सकता, कि लाखों-करोड़ों लोग उससे प्रभावित हो जाएं, तो दुनिया को भौतिकवाद के गर्त से बचाना असंभव है। और बहुत मोमेंटस क्षण हैं कि पचास साल में भाग्य का निपटारा होगा--या तो धर्म बचेगा, या निपट अधर्म बचेगा। इन पचास साल में बुद्ध, महावीर, कृष्ण, मोहम्मद, राम, जीसस, सबका निपटारा होने को है। इन पचास सालों में एक तराजू पर ये सारे लोग हैं और दूसरे तराजू पर सारी दुनिया के विक्षिप्त राजनीतिज्ञ, सारी दुनिया के विक्षिप्त भौतिकवादी, सारी दुनिया के भ्रांत और अज्ञान में स्वयं और दूसरों को भी धक्का देनेवाले लोगों की बड़ी भीड़ है। और एक तरफ तराजू पर बहुत थोड़े से लोग हैं। पचास सालों में निपटारा होगा। वह जो संघर्ष चल रहा है सदा से, वह बहुत निपटारे के मौके पर आ गया है। और अभी तो जैसी स्थिति है उसे देखकर आशा नहीं बंधती। लेकिन मैं निराश नहीं हूं, क्योंकि मुझे लगता है कि बहुत शीघ्र बहुत सरल-सहज मार्ग खोजा जा सकता है, जो करोड़ों लोगों के जीवन में क्रांति की किरण बन जाए।

और अब इक्का-दुक्का आदमियों से नहीं चलेगा। जैसा पुराने जमाने में चल जाता था कि एक आदमी ज्ञान को उपलब्ध हो गया। अब ऐसा नहीं चलेगा। ऐसा नहीं हो सकता। अब एक आदमी इतना कमजोर है, क्योंकि इतनी बड़ी भीड़ पैदा हुई है, इतना बड़ा एक्सप्लोजन हुआ है जनसंख्या का कि अब इक्का-दुक्का आदमियों से चलनेवाली बात नहीं है। अब तो उतने ही बड़े व्यापक पैमाने पर लाखों लोग अगर प्रभावित हों, तो ही कुछ किया जा सकता है।

लेकिन मुझे दिखाई पड़ता है कि लाखों लोग प्रभावित हो सकते हैं। और थोड़े से लोग अगर न्युक्लियस बनकर काम करना शुरू करें तो यह हिंदुस्तान उस मोमेंटस फाइट में, उस निर्णायक युद्ध में बहुत कीमती हिस्सा

अदा कर सकता है। कितना ही दीन हो, कितना ही दरिद्र हो, कितना ही गुलाम रहा हो, कितना ही भटका हो, लेकिन इस भूमि के पास कुछ संरक्षित संपत्तियां हैं। इस जमीन पर कुछ ऐसे लोग चले हैं, उनकी किरणें हैं, हवा में उनकी ज्योति, उनकी आकांक्षाएं सब पत्तों-पत्तों पर खुद गई हैं। आदमी गलत हो गया है, लेकिन अभी जमीन के कणों को बुद्ध के चरणों का स्मरण है। आदमी गलत हो गया है, लेकिन वृक्ष पहचानते हैं कि कभी महावीर उनके नीचे खड़े थे। आदमी गलत हो गया है, लेकिन सागर ने सुनी हैं और तरह की आवाजें भी। आदमी गलत हो गया है, लेकिन आकाश अभी भी आशा बांधे है। आदमी भर वापस लौटे तो बाकी सारा इंतजाम है।

तो इधर मैं इस आशा में निरंतर प्रार्थना करता रहता हूं कि कैसे लाखों लोगों के जीवन में एक साथ विस्फोट हो सके। आप उसमें सहयोगी बन सकते हैं। आपका अपना विस्फोट बहुत कीमती हो सकता है--आपके लिए भी, पूरी मनुष्य-जाति के लिए भी। इस आशा और प्रार्थना से ही इस शिविर से आपको विदा देता हूं कि आप अपनी ज्योति तो जलाएंगे ही, आपकी ज्योति दूसरे बुझे दीयों के लिए भी ज्योति बन सकेगी।

मेरी बातों को इतनी शांति और प्रेम से सुना है, उससे बहुत अनुगृहीत हूं; और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं, मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

सातवां प्रवचन

कुंडलिनी जागरण व शक्तिपात

ताओ--मूल स्वभाव

प्रश्नः ताओ को आज तक सही तौर से समझाया नहीं गया है। या तो विनोबा भावे ने ट्राई किया, या फारेनर्स ने ट्राई किया, या हमारे एक बहुत बड़े विद्वान मनोहरलाल जी ने ट्राई किया, लेकिन ताओ को या तो वे समझा नहीं पाए या मैं नहीं समझ पाया। क्योंकि यह एक बहुत बड़ा गंभीर विषय है।

ताओ का पहले तो अर्थ समझ लेना चाहिए। ताओ का मूल रूप से यही अर्थ होता है, जो धर्म का होता है। धर्म का मतलब है स्वभाव। जैसे आग जलाती है, यह उसका धर्म हुआ। हवा दिखाई नहीं पड़ती है, अदृश्य है, यह उसका स्वभाव है, यह उसका धर्म है। मनुष्य को छोड़कर सारा जगत धर्म के भीतर है। अपने स्वभाव के बाहर नहीं जाता। मनुष्य को छोड़कर जगत में, सभी कुछ स्वभाव के भीतर गति करता है। स्वभाव के बाहर कुछ भी गति नहीं करता। अगर हम मनुष्य को हटा दें तो स्वभाव ही शेष रह जाता है। पानी बरसेगा, धूप पड़ेगी, पानी भाप बनेगा, बादल बनेंगे, ठंडक होगी, गिरेंगे। आग जलाती रहेगी, हवाएं उड़ती रहेंगी, बीज टूटेंगे, वृक्ष बनेंगे। पक्षी अंडे देते रहेंगे। सब स्वभाव से होता रहेगा। स्वभाव में कहीं कोई विपरीतता पैदा न होगी।

स्वतंत्रता--मनुष्य की गरिमा भी, दुर्भाग्य भी

मनुष्य के आने के साथ ही एक अदभुत घटना जीवन में घटी। सबसे बड़ी घटना है जो इस जगत में घटी। और वह यह है कि मनुष्य के पास शक्ति और क्षमता है कि वह स्वभाव के प्रतिकूल जा सके, स्वभाव से उलटा जा सके। यह मनुष्य की गरिमा भी है और दुर्भाग्य भी। यह उसका गौरव भी है, इसीलिए वह श्रेष्ठतम प्राणी भी है। इसीलिए कि वह चाहे तो स्वभाव में जीए और चाहे तो स्वभाव के प्रतिकूल चला जाए। यानी स्वभाव की जो अनिवार्य परतंत्रता थी, वह मनुष्य पर नहीं है। मनुष्य स्वतंत्र प्राणी है।

इस ज्ञात जगत में मनुष्य अकेला स्वतंत्र है। स्वतंत्र का मतलब यह कि वह वह भी कर सकता है जो कि प्रकृति में नहीं होता। वह आग को ठंडी कर सकता है। हवा को दृश्य बना सकता है। वह पानी को नीचे न बहाकर ऊपर की तरफ बहाए। और इस सबका कारण यह है कि मनुष्य सोच सकता है। उसके पास बुद्धि है। तो बुद्धि निर्णायक है उसकी--क्या करें, क्या न करें! ऐसा करें या वैसा करें! यह करना ठीक होगा कि नहीं ठीक होगा! तो बुद्धि जो है वह मनुष्य के भीतर स्वतंत्रता का सूत्र है। और प्रकृति के ऊपर उठने की संभावना है। वह ट्रांसेनडेंस है उसमें।

स्वतंत्रता स्वच्छंदता नहीं है

लेकिन मनुष्य स्वभाव के प्रतिकूल तो जा सकता है, लेकिन स्वभाव के प्रतिकूल जाने से जो दुख होते हैं वे उसे झेलने ही पड़ेंगे।

प्रश्नः झेलने ही पड़ते हैं?

वे झेलने ही पड़ते हैं। तो उसकी स्वतंत्रता स्वच्छंदता नहीं है। उस पर एक गहरी रुकावट है। स्वतंत्र है वह कि वह प्रकृति से प्रतिकूल काम करे। लेकिन प्रतिकूल काम करने से जो भी परिणाम होंगे दुखद, वे उसे झेलने ही पड़ेंगे।

अधर्म का मतलब इतना ही है। अधर्म का मतलब यह है कि जो स्वभाव में नहीं है वैसा करना। जो नहीं करना चाहिए था वैसा करना। जिसे करने से दुख उत्पन्न होता है ऐसा करना। यह सब एक ही बात हुई। जिसे भी करने से दुखद परिणाम आते हैं वह अधर्म है। क्योंकि स्वभाव में दुख की गुंजाइश ही नहीं है। इसलिए मनुष्य को छोड़कर इस जगत में और कोई दुखी भी नहीं है, चिंतित भी नहीं है, तनावग्रस्त भी नहीं है। मनुष्य को छोड़कर और कोई प्राणी पागल होने की क्षमता नहीं रखता, विक्षिप्त नहीं हो सकता, क्योंकि वह अपने स्वभाव में ही जीता है। स्वभाव में सुख है, स्वभाव के प्रतिकूल जाने में दुख है।

लेकिन और कोई प्राणी जा ही नहीं सकता। स्वभाव में जीना उसका चुनाव नहीं है। स्वभाव में जीना उसकी मजबूरी है। इसलिए गौरवपूर्ण नहीं है वह बात। मनुष्य स्वभाव के प्रतिकूल जा सकता है। यह गौरवपूर्ण है। लेकिन यह जरूरी नहीं है कि इससे सौभाग्य आए, इससे दुर्भाग्य आ सकता है। अगर वह प्रतिकूल जाएगा तो दुख उठाएगा।

सुख धन स्वतंत्रता = आनंद

यहीं एक बात और समझ लेनी जरूरी हैः स्वभाव में रहने की अगर मजबूरी हो तो सुख तो होता है, लेकिन आनंद कभी नहीं होता। मनुष्य के जीवन में एक नया सूत्र खुलता है आनंद का। आनंद का मतलब यह हैः स्वभाव के प्रतिकूल जा सकता था और नहीं गया। जाता तो दुख उठाता; अगर जा ही न सकता और स्वभाव में रहता तो सुख पाता; लेकिन जा सकता था, नहीं गया, तब जो सुख उपलब्ध होता है वह आनंद है। सुख के साथ स्वतंत्रता जब जुड़ जाती है तो आनंद बन जाता है। सुख धन स्वतंत्रता आनंद बन जाता है।

ताओ का अर्थ हैः जैसा सारा जगत जीता है मजबूरी में, वैसे हम अपनी स्वतंत्रता में जीएं। स्वतंत्रतापूर्वक हम अपने स्वभाव में जीएं, तो ताओ उपलब्ध हो जाता है। तो ताओ के लिए या तो धर्म शब्द बहुत अदभुत है। लेकिन धर्म चूंकि हमारे बीच बहुत पिट गया, इसलिए हमारे ख्याल में नहीं पड़ता। और धर्म के हमने बड़े गलत उपयोग किए, इसलिए भी कहीं हिंदू और मुसलमान को धर्म बना दिया इससे भी कठिनाई हो गई। नहीं तो एक दूसरा वैदिक शब्द हैः ऋत। ऋत का अर्थ होता हैः दि लॉ। नियम। तो ताओ का भी मतलब ऋत है जो नियम है।

लेकिन नियम दो तरह से हो सकता है, जैसा मैंने कहा। मजबूरी! तब फिर प्रकृति रह जाती है। जहां सब सुखद है, लेकिन जहां चुनाव नहीं है। और नियम को तोड़ने की संभावना मनुष्य के साथ शुरू होती है। यानी मनुष्य जो है वह प्रकृति को पार कर गया और परमात्मा में प्रविष्ट नहीं हुआ ऐसा प्राणी है। वह द्वार पर खड़ा है परमात्मा के, चाहे तो प्रवेश करे, चाहे तो लौट जाए। इस पर कोई मजबूरी नहीं है। लौटने से जो दुख होगा वह झेलना पड़ेगा। प्रवेश से जो आनंद होगा वह मिलेगा। चुनावपूर्वक, स्वतंत्रतापूर्वक जो व्यक्ति स्वभाव में जीने को राजी हो जाता है, वह ताओ को उपलब्ध होता है।

प्रकृति में न कुछ शुभ है, न कुछ अशुभ

इसलिए अब ताओ में और भी कुछ बातें इस आधार पर समझनी जरूरी हैं। जैसे स्वभाव में कुछ अच्छा और बुरा नहीं होता। जो होता है होता है। हम यह नहीं कह सकते कि पानी नीचे की तरफ बहता है तो पाप करता है। हम ऐसा नहीं कह सकते। पानी नीचे की तरफ बहता ही है, उसका स्वभाव है। इसमें पाप-पुण्य कुछ भी नहीं है। अच्छा-बुरा भी कुछ नहीं है। आग जलाती है तो हम यह नहीं कह सकते कि आग बहुत पाप करती है। जलने से कोई कितना ही दुख पाता हो, लेकिन आग की तरफ से कोई पाप नहीं है, यह उसका स्वभाव है। यह उसकी मजबूरी है। वह आग है इसलिए जलाती है। इसमें कोई... आग होना और जलाना, एक ही चीज को कहने के दो ढंग हैं। इसलिए प्रकृति में कोई पाप-पुण्य नहीं हैं।

आदमी थोपने की कोशिश करता है। जैसे कि हम शेर को पापी समझते हैं, क्योंकि वह गाय को खा जाता है। इसलिए पुण्यात्मा लोग ऐसी तस्वीरें बनाते हैं कि गाय और शेर एक ही साथ पानी पी रहे हैं। इसमें गाय के साथ तो बहुत भला हो गया, लेकिन शेर का क्या होगा? इन पुण्यात्माओं ने भी कभी गाय को और घास को एक साथ खड़े नहीं बताया। नहीं तो गाय के साथ भी वही हो जाएगा जो शेर के साथ हो रहा है। क्योंकि घास भी तो मरा जा रहा है गाय के हाथ में। गाय मजे से घास चर रही है और शेर को गाय के बगल में बिठा दिया और वह गाय को नहीं चर रहा है।

हम अपनी धारणाएं थोपते हैं। प्रकृति में न कुछ शुभ है, न कुछ अशुभ है। कोई अच्छे और बुरे की बात प्रकृति में नहीं है, क्योंकि वहां विकल्प नहीं है, वहां चुनाव ही नहीं है। ऐसा शेर कोई जानकर गाय को नहीं खाता और गाय कोई जानकर घास को नहीं खाती। किसी का किसी को दुख पहुंचाने का कोई इरादा नहीं है। बस ऐसा होता है।

आदमी के साथ अनंत संभावनाएं

आदमी के साथ पहली दफा सवाल उठता है--क्या अच्छा और क्या बुरा। क्योंकि आदमी चुन सकता है। ऐसा कुछ भी नहीं है आदमी के साथ जो होता ही है। कुछ भी हो सकता है, अनंत संभावनाएं हैं। आदमी गाय भी खा सकता है, घास भी खा सकता है। गाय को भी छोड़ सकता है, घास को भी छोड़ सकता है। बिना खाए उपवासा भी मर सकता है। आदमी के साथ अनंत संभावनाएं खुल जाती हैं। इसलिए सवाल उठता है कि क्या ठीक है और क्या गलत है।

कहानी है कि कनफ्यूशियस लाओत्से के पास गया। और लाओत्से से उसने कहा कि लोगों को बताना पड़ेगाः क्या ठीक है, क्या गलत है। तो लाओत्से ने कहा कि यह तभी बताना पड़ता है जब ठीक खो जाता है। जब ठीक खो जाता है तभी बताना पड़ता है कि क्या ठीक है और क्या गलत है। जब ठीक खो जाता है, तभी बताना पड़ता है कि क्या ठीक है और क्या गलत है। तो कनफ्यूशियस ने कहा, लोगों को धर्म तो समझाना ही पड़ेगा। तो लाओत्से ने कहा, तभी समझाना पड़ता है जब धर्म का कुछ पता नहीं चलता कि क्या धर्म है। जब धर्म खो जाता है।

आदमी के साथ खो ही गया है। उसके पास कोई साफ सूत्र जन्म के साथ नहीं हैं जिन पर वह चले। उसे अपने चलने के सूत्र भी खोजने पड़ते हैं--जीने के साथ ही साथ।

इससे स्वतंत्रता तो बहुत है, लेकिन स्वभाव के प्रतिकूल चले जाने की भी संभावना उतनी ही है। तो हम ऐसा भी कर सकते हैं जो करना हमें दुख में ले जाए। और ऐसा हम रोज कर रहे हैं।

ताओ का मतलब है कि फिर उस जगह खड़े हो जाना, उस बिंदु पर, जहां से चीजें साफ दिखाई पड़नी शुरू हो जाती हैं। जहां हमें तय नहीं करना पड़ता कि क्या ठीक है और क्या गलत है, बल्कि जहां से हमें दिखाई ही पड़ता है कि यह ठीक है और वह गलत है। जहां हमें विचार नहीं करना पड़ता, बल्कि दिखाई पड़ता है।

ताओ की साधना--निर्विचार दृष्टि

तो पहली तो मैंने ताओ की परिभाषा की कि ताओ का मतलब क्या है। अब दूसरी बात मैं कह रहा हूं कि ताओ की साधना क्या है। ताओ की साधना, यह ऐसे बिंदु पर खड़े हो जाने का उपाय है जहां से हमें दिखाई पड़े कि क्या ठीक है और क्या गलत है। जहां हमें सोचना न पड़े कि क्या ठीक है और क्या गलत है।

क्योंकि सोचेगा कौन? सोचूंगा मैं। और अगर मैं सोच ही सकता, तब तो कहना ही क्या था। मुझे पता नहीं है इसलिए तो मैं सोच रहा हूं। और जो मुझे पता नहीं है उसे मैं सोचकर पता लगा नहीं सकता हूं। यानी सोच हम उसी को सकते हैं जो हम जानते ही हों। अनजान को, अननोन को हम सोच नहीं सकते।

इतना तो साफ है कि मुझे पता नहीं कि क्या ठीक है और क्या गलत है। क्या स्वभाव है, क्या विभाव है, मुझे कुछ पता नहीं। अब हम कहते हैं हम सोचेंगे। जहां से सोचना शुरू होता है वहां से फिलॉसफी शुरू होती है। और इसलिए कहूंगा कि ताओ की कोई फिलॉसफी नहीं है। ताओ कोई फिलॉसफी नहीं है। जहां से सोचना शुरू होता है कि क्या ठीक है और क्या गलत है; क्या करें, क्या न करें; क्या करना पुण्य है, क्या करना पाप है; क्या करेंगे तो सुख होगा, क्या करेंगे तो दुख होगा--जहां यह सोचना है वहां फिलॉसफी है। न, ताओ बिल्कुल एंटी-फिलॉसफी है। वह बिल्कुल अदर्शन है। ताओ यह कह रहा है, सोचकर तुम पाओगे कैसे? अगर तुम्हें पता ही होता तो तुम सोचते ही न। और अगर तुम्हें पता नहीं है तो तुम सोचोगे कैसे? सोचकर तुम वही जुगाली कर लोगे जो तुम जानते हो। सोचने से नया कभी उपलब्ध नहीं होता। न कभी उपलब्ध हुआ है, न हो सकता है। सोचने से सिर्फ पुराने के नये संयोग बनते हैं। कभी कोई नया उपलब्ध नहीं होता।

चाहे विज्ञान की कोई नई प्रतीति हो, चाहे धर्म की कोई नई अनुभूति हो, सब सोचने के बाहर घटती है, सोचने के भीतर नहीं घटती। विज्ञान की भी नहीं घटती। जब भी कुछ नया आता है, वह तब आता है जब आप सोचने के बाहर होते हैं। भला यह हो सकता है कि आप सोच-सोचकर थककर बाहर हो गए हों। यह हो सकता है कि एक आदमी अपनी प्रयोगशाला में सोच-सोचकर थक गया है दिन भर। और दिन भर सब तरह के प्रयोग किए हैं और कोई फल नहीं पाया। थक गया, थक गया, थक गया। वह रात सो गया है। और अचानक उसे सपने में ख्याल आ गया या सुबह उठा है और उसे ख्याल आया। तो वह यही कहेगा कि मैंने जो सोचा था उससे ही यह आया।

यह उससे नहीं आया। यह तो जब सोचना थक गया, ठहर गया, तब वह ताओ में पहुंच गया। जब कोई सोचने से छूट जाता है, तत्काल स्वभाव में आ जाता है। क्योंकि और कहीं जाने का उपाय नहीं है। विचार एकमात्र व्यवस्था है जिसमें हम स्वभाव के बाहर चले जाते हैं।

जैसे मैं इस कमरे में सोऊं और रात सपना देखूं, तो मैं इस कमरे के बाहर जा सकता हूं सपने में। लेकिन सपना टूट जाए, तो मैं इसी कमरे में खड़ा हो जाऊं। फिर मैं यह नहीं पूछूंगा कि मैं इस कमरे में आया कैसे? क्योंकि मैं तो सपने में बाहर चला गया था! तब मैं तत्काल जानूंगा कि सपने में बाहर गया था अर्थात मैं बाहर गया नहीं था सिर्फ ख्याल था मुझे कि मैं बाहर गया हूं। था मैं यहीं, जब मैं बाहर गया था ऐसा देख रहा था तब भी मैं यहीं था।

तो ताओ यह कहता है कि तुम कितना ही सोच रहे हो कि यहां चले गए, वहां चले गए, तुम ताओ से जा नहीं सकते। रहोगे तो तुम वहीं, क्योंकि स्वभाव के बाहर जाओगे कैसे? स्वभाव का मतलब ही यह है कि जिसके बाहर न जा सकोगे। जो तुम्हारा होना है, जो तुम्हारी बीइंग है, उससे बाहर जाओगे कैसे? लेकिन सोच सकते हो बाहर जाने की बात।

इसलिए यह दूसरी बात ख्याल में ले लेने जैसी है कि मनुष्य की जो स्वतंत्रता है वह भी सोचने की स्वतंत्रता है। सोचने में वह बाहर चला गया है। विचार में वह भटक रहा है। अगर सारा विचार ठहर जाए तो वह ताओ पर खड़ा हो जाएगा। जिसको हम ध्यान कहते हैं, या जिसको जापान में वे झेन कहते हैं, उसको लाओत्से ताओ कहता है। उस जगह खड़े हो जाना है जहां कोई विचार नहीं है। वहां से तुम्हें वह दिखाई पड़ेगा जो है। जैसा होना चाहिए, जैसा होना सुख देगा, आनंद देगा, वह दिखाई पड़ेगा। और यह अब चुनना नहीं पड़ेगा कि इसको मैं करूं। बस यह होना शुरू हो जाएगा।

तो ताओ की स्थिति को जहां कि पशु है ही, जहां पौधे हैं ही, जहां हम भी हैं, लेकिन हम विचार में भटक गए हैं। और ताओ हमारी वास्तविक स्थिति का हमें पता नहीं, और सब कुछ हमें पता होता है।

विचार है स्वभाव के बाहर छलांग

तो ताओ की जो मौलिक प्रक्रिया है साधना, वह तो ध्यान ही है। वहां आ जाना है जहां कोई सोच-विचार नहीं है। और लाओत्से कहता है, तुमने सोचा, रत्ती भर विचार, और स्वर्ग और नरक अलग, इतना बड़ा फासला हो जाएगा।

लाओत्से के पास कोई आया है और उससे कुछ पूछता है और लाओत्से उसे जवाब देता है। और जब वह जवाब देता है तो वह आदमी सोचने लगता है। अब लाओत्से कहता है कि बस, बस! सोचना मत। क्योंकि सोचा, कि जो मैंने कहा उसे तुम कभी न समझ पाओगे। सोचना ही मत। जो मैंने कहा उसे सुनो। सोचो मत। अगर सुन सके तो बात हो जाएगी और अगर सोचे तो गए। सोचना ही था तो मुझसे पूछा क्यों? तुम्हीं सोच लेते! तुम सोच ही लेते, कौन तुम्हें मना करता है!

सोचते ही हम तत्काल स्वभाव के बाहर हो जाते हैं। तो विचार जो है वह स्वभाव के बाहर छलांग है--लेकिन विचार में ही! इसलिए मूलतः हम कहीं नहीं गए होते, गए हुए मालूम पड़ते हैं।

तो ताओ की साधना का अर्थ हुआः सोच-विचार छोड़कर खड़े हो जाना। जहां कोई विचार न हो, सिर्फ चेतना रह जाए, सिर्फ होश रह जाए। तो वहां से जो ठीक है वह न केवल दिखाई पड़ेगा बल्कि होना शुरू हो जाएगा।

इसलिए ताओ को जीनेवाला आदमी न नैतिक होता, न अनैतिक होता; न पापी होता, न पुण्यात्मा होता। क्योंकि वह कहता है कि जो हो सकता है वही हो रहा है। मैं कुछ करता नहीं।

एक ताओ फकीर से कोई जाकर पूछता है कि आपकी साधना क्या है? तो वह कहता है, जब मेरी नींद टूटती है तब मैं उठ जाता हूं; और जब नींद आ जाती है तो मैं सो जाता हूं; और जब भूख लगती है तो खाना खा लेता हूं।

तो वह कहता है, यह तो हम सभी करते हैं।

तो वह कहता है, यह तुम सब नहीं करते। जब नींद आई तब तुम कब सोए? तुमने और हजार काम किए। और जब नींद नहीं आ रही थी तब तुमने नींद लाने की कोशिश भी की। और तुम कब उठे जब नींद टूटी हो?

तुमने सदा नींद तोड़कर तुम उठ आए हो। या नींद टूट गई है और तुम नहीं उठे हो। तुमने कब खाना खाया जब भूख लगी हो?

एक एस्कीमो साइबेरिया का पहली दफा इंग्लैंड आया। तो वह बहुत हैरान हुआ। और सबसे बड़ी हैरानी उसे यह हुई कि लोग घड़ी देखकर कैसे सो जाते हैं! और लोग घड़ी देखकर खाना कैसे खा लेते हैं! और जिस घर में वह मेहमान था वह इतना परेशान हुआ कि सारे लोग एक साथ खाना कैसे खा लेते हैं घर भर के! क्योंकि उसने कहा यह हो ही नहीं सकता कि सबको एक साथ भूख लगती हो। क्योंकि हमें तो... जब हमारे यहां जिसको भूख लगती है वह खाता है। किसी को कभी लगती है, किसी को कभी लगती है, किसी को कभी लगती है। यह बड़ा मिरेकल है कि घर भर के लोग एक साथ टेबल पर बैठकर खाना खाते हैं! क्योंकि सबको एक साथ भूख लगना बड़ी असंभव घटना है। और लोग कहते हैं कि बारह बज गए और सो जाते हैं। उसने कहा कि... उसकी यह बिल्कुल समझ के बाहर पड़ा उसे। स्वाभाविक, क्योंकि साइबेरिया से आनेवाला आदमी अभी भी ताओ के ज्यादा करीब है। अभी भी जब भूख लगती है तब खाता है, जब नहीं लगती तो नहीं खाता है। जब नींद आती है तो सोता है, जब नींद टूटती है तो उठता है।

ब्रह्ममुहूर्त में उठना चाहिए, ऐसा ताओ नहीं कहेगा। ताओ कहेगा कि जब तुम उठ जाते हो वही ब्रह्ममुहूर्त है। ऐसा नहीं कहेगा ताओ... । वह फकीर ठीक कह रहा है कि जो होता है हम वह होने देते हैं। हम कुछ भी नहीं करते, जो होता है हम होने देते हैं। तो मनुष्य एकबारगी फिर से अगर प्रकृति की तरह जीने लगे तो ताओ को उपलब्ध होता है। जब उसे जो होता है होने देता है। और यह बहुत गहरे तल तक! यह खाने और पीने की बात ही नहीं है। अगर उसे क्रोध आता है तो वह क्रोध को भी आने देता है। अगर उसे काम उठता है तो वह काम को भी उठने देता है। क्योंकि वह कहता है, मैं कौन हूं जो बीच में आऊं? असल में जो होता है, ताओ कहता है, उसे होने देना है। तुम कौन हो जो तुम बीच में आते हो? हर चीज पर तुम कौन हो जो बीच में आते हो?

ताओ की अंतिम घटना--साक्षी

और अगर कोई व्यक्ति सब होने दे जो होता है, तो साक्षी ही रह जाएगा, और तो कुछ बचेगा नहीं उसके भीतर। देखेगा कि क्रोध आया। देखेगा कि भूख आई। देखेगा कि नींद आई। वह साक्षी हो जाएगा। तो ताओ की जो गहरी से गहरी पकड़ है वह साक्षी में है। वह साक्षी रह जाएगा। वह देखता रहेगा, देखता रहेगा, एक दिन वह यह भी देखेगा कि मौत आई और देखता रहेगा। क्योंकि जिसने सब देखा हो जीवन, वह फिर मौत को भी देख पाता है। क्योंकि हम जीवन को ही नहीं देख पाते, हम सदा बीच में आ जाते हैं, तो मौत के वक्त भी हम बीच में आ जाते हैं और नहीं देख पाते कि क्या हो रहा है।

वह मौत को भी देखेगा। जिसने नींद को आते देखा और जाते देखा, जिसने बीमारी को आते देखा और जाते देखा, क्रोध को आते देखा जाते देखा, वह एक दिन मौत को भी आते देखेगा। वह जन्म को भी आते देखेगा। वह सब का देखनेवाला हो जाएगा। और जिस दिन हम सबके देखनेवाले हो जाते हैं उसी क्षण हम पर कोई भी कर्म का कोई बंधन नहीं रह जाता। क्योंकि कर्म का सारा बंधन हमारे कर्ता होने में है कि मैं कर रहा हूं। चाहे क्रोध कर रहे हों और चाहे ब्रह्मचर्य साध रहे हों, लेकिन मैं करनेवाला हूं मौजूद है। चाहे पूजा कर रहे हों और चाहे भोजन कर रहे हों, मैं करनेवाला मौजूद है।

तो ताओ की जो अंतिम घटना है उसमें मैं तो खो जाएगा, कर्ता खो जाएगा, साक्षी रह जाएगा। अब जो होता है होता है। अब इसमें कुछ भी करनेवाला नहीं है। डुअर जो है वह अब नहीं है। तो ऐसी जो चेतना की

अवस्था है--जहां न कोई शुभ है, न कोई अशुभ है; न अच्छा है, न बुरा है; जहां सिर्फ स्वभाव है; और स्वभाव के साथ पूरे भाव से रहने का राजीपन है; जहां कोई संघर्ष नहीं, कोई झगड़ा नहीं; ऐसा हो, वैसा हो, ऐसा कोई विकल्प नहीं; जो होता है उसे होने देने की तैयारी है--तो विस्फोट, एक्सप्लो.जन जिसको मैं कहता हूं वह तत्काल घटित हो जाएगा।

ताओ में समस्त अध्यात्म समाहित है

और इसलिए ताओ जैसे छोटे शब्द में सब आ गया है। सब जो भी श्रेष्ठतम है साधना में। और जो भी महानतम है मनुष्य की अध्यात्म की खोज में। ध्यान में, समाधि में जो भी पाया गया है, वह सब इस छोटे से शब्द में सब समाया हुआ है। यह शब्द बहुत कीमती है। और इसीलिए अनट्रांसलेटेबल है। इसलिए ताओ का अनुवाद नहीं हो सकता। धर्म से हो सकता था। लेकिन धर्म विकृत हुआ, उसके एसोसिएशंस गलत हो गए। ऋत से हो सकता था। लेकिन वह अव्यवहृत है, उसका कभी प्रयोग नहीं हुआ। व्यापक मन तक गया नहीं। लेकिन अर्थ वही है। अर्थ वही है। मूल स्वभाव में जीने की सामर्थ्य सबसे बड़ी सामर्थ्य है। क्योंकि तब न निंदा का उपाय है, न प्रशंसा का उपाय है। तब कोई उपाय ही नहीं है।

लाओत्से ने कुछ भी होना बंद कर दिया है

लाओत्से एक नदी के किनारे बैठा हुआ है। सम्राट ने किसी को भेजा है कि लाओत्से को खोज लाओ! सुनते हैं बहुत बुद्धिमान आदमी है। तो हम उसे अपना वजीर बना लें। वह आदमी गया है। बामुश्किल तो लाओत्से को खोज पाया। क्योंकि जहां-जहां लोगों से पूछा, उन्होंने कहा कि लाओत्से को खुद ही पता नहीं होता कि कहां जा रहा है। जहां पैर ले जाते हैं चला जाता है। तो पहले से तो वह खुद भी नहीं बता सकता कि कहां जाएगा। इसलिए बताना मुश्किल है। लेकिन फिर भी खोजो, कहीं न कहीं होगा। क्योंकि सुबह यहां दिखाई पड़ा है। इस गांव में वह था। कहीं बहुत दूर नहीं निकल गया होगा। दूर इसलिए भी नहीं निकल गया होगा, क्योंकि तेजी से वह चलता ही नहीं है। क्योंकि जाना ही नहीं है कहीं, पहुंचना ही नहीं है कहीं। तो कहीं दूर नहीं गया होगा, मिलेगा आसपास।

खोजा है तो वह नदी के किनारे बैठा हुआ है। तो उन्होंने जाकर उसको कहा कि मिल गए, हम बड़ी मुश्किल गांव-गांव खोजते फिर रहे हैं। सम्राट ने बुलाया है। कहा है कि वजीर का पद लाओत्से सम्हाल ले। तो लाओत्से चुपचाप बैठा रहा। फिर उसने कहा, देखते हो उस कछुए को! एक कछुआ वहां कीचड़ में मजा कर रहा है। उन्होंने कहा, देखते हैं। तो लाओत्से ने कहा, हमने सुना है कि तुम्हारे सम्राट के घर एक सोने का कछुआ है। उसकी पूजा होती है। कभी कोई कछुआ कई पीढ़ियों पहले किसी कारणवश उस परिवार में पूज्य हो गया था। उस पर सोने की खोल चढ़ाकर उसको बड़े उससे रखा गया है। क्या यह सच है? तो उन्होंने कहा, यह सच है। सोने की खोल मढ़ा हुआ वह कछुआ परम आदरणीय है। सम्राट स्वयं उसके सामने सिर झुकाते हैं। तो लाओत्से ने कहा, बस मैं यह तुमसे पूछता हूं--अगर तुम इस कछुए से कहो कि हम तुझे सोने से मढ़कर और सुंदर बहुमूल्य पेटी में बंद करके पूजा करेंगे, तो यह कछुआ सोने से मढ़ा जाना पसंद करेगा कि यहीं कीचड़ में लोटना पसंद करेगा? उन्होंने कहा, कछुआ तो कीचड़ में लोटना ही पसंद करेगा। तो लाओत्से ने कहा, हम भी पसंद करेंगे। नमस्कार! तुम जाओ। जब कछुआ तक इतना बुद्धिमान है, तो तुम लाओत्से को ज्यादा बुद्धिहीन समझे हो कछुए

से! तुम जाओ। तुम्हारा वजीर होना हमारे काम का नहीं है। असल में, लाओत्से ने कुछ भी होना बंद कर दिया अब। लाओत्से जो है वह है।

यह जो आदमी है, यह साधारणतः जिनको हम साधक कहते हैं, वैसा आदमी नहीं है। हम जिसे साधक कहते हैं वह आमतौर से, हम जिसे साधारण आदमी कहते हैं, उससे विपरीत होता है। अगर यह आदमी दुकान करता है तो वह आदमी दुकान नहीं करता। अगर यह आदमी धन कमाता है तो वह आदमी धन छोड़ देता है। अगर यह आदमी विवाह करता है तो वह आदमी विवाह नहीं करता। लेकिन उसके करने का जितना भी नियम है वह इसी गृहस्थ से मिलता है। वह सिर्फ इसका रिएक्शन होता है।

लाओत्से कहता है कि हम किसी के रिएक्शन नहीं हैं, हम किसी की प्रतिक्रिया नहीं हैं। कौन क्या करता है, इससे प्रयोजन नहीं है। न हम किसी के पीछे जाते कि वैसा करें जैसा वह करता है, न हम किसी के प्रतिकूल जाते हैं कि वैसा करें जैसा वह नहीं करता है। हम तो वही होने देते हैं जो हमारे भीतर से होता है।

स्वभाव को होने देने का मतलब यह है कि हम किसी का अनुकरण न करें, किसी की नकल न करें, किसी के विरोध में आयोजन न करें अपने व्यक्तित्व का। जो हो सकता है भीतर से, जो होना चाहता है, वह हम होने दें। उस पर कहीं कोई रुकावट न हो, कोई निंदा न हो, कोई विरोध न हो, कोई संघर्ष न हो, कोई द्वंद्व न हो, जो होता है उसे होने दें। तब उसका मतलब यह कि बुरे-भले का ख्याल तत्काल छोड़ देना पड़ेगा। क्योंकि बुरा-भला ही हमें निंदा करवाता है, रुकवाता है--यह करो और यह मत करो। यह सारे बुरे-भले का, शुभ-अशुभ का ख्याल छोड़कर और उस बिंदु पर हमें खड़े होकर देखना पड़े कि जीवन अब कहां जाए, जिस बिंदु पर कोई विचार नहीं है।

सोच-विचार से श्वास में फर्क

अगर आपके मस्तिष्क से सोचने की सारी शक्ति छीन ली जाए, फिर भी आप श्वास लोगे। अभी भी श्वास ले रहे हो। लेकिन श्वास तक के लेने में फर्क पड़ जाएगा। रात को आप दूसरी तरह से श्वास लेते हो दिन की बजाय। श्वास पर हम आमतौर से कोई ख्याल नहीं दिए हैं। लेकिन फिर भी हमारी विचार की प्रक्रिया श्वास पर कोई तरह की बाधा डालती रहती है। रात में हम दूसरी तरह की श्वास लेते हैं। अगर कोई बीमार रात सोना बंद कर दे तो उसकी बीमारी ठीक होना मुश्किल हो जाती है; क्योंकि जागते में बीमारी का ख्याल बीमारी को बढ़ावा देने लगता है। तो पहले जरूरी होता है कि कोई बीमार हो तो पहले उसको नींद आए। इलाज नंबर दो बाद है, पहले तो नींद आए। क्योंकि नींद में वह बीमारी का ख्याल छोड़ पाए और उसका स्वभाव जो कर सकता है वह कर सके। यह आदमी बाधा न दे।

ताओ का सौंदर्य

इसलिए बच्चे हमें इतने प्रीतिकर लगते हैं। बहुत मजे की बात है! आमतौर से कुरूप बच्चा खोजना बहुत मुश्किल है। सभी बच्चे सुंदर होते हैं असल में, बच्चा कुरूप होता ही नहीं। यानी कभी ख्याल में नहीं आया होगा किसी बच्चे को देखकर कि यह कुरूप है। लेकिन यही बच्चे बड़े होकर इनमें बहुत से लोग कुरूप हो जाते हैं अधिक लोग कुरूप हो जाते हैं, सुंदर आदमी खोजना मुश्किल हो जाता है। बात क्या हो जाती है? यह बच्चे का सौंदर्य कहां से आता है?

ताओ से। वह वैसा ही जी रहा है जैसा है। यानी बड़े से बड़ी जो कुरूपता है, बड़े से बड़ी अग्लीनेस जो है वह सुंदर होने की चेष्टा से पैदा होती है। वह सुंदर होने की चेष्टा से पैदा होती है। तब जो हम हैं वह नहीं रह जाता महत्वपूर्ण। जो हम दिखना चाहिए उसको हम थोपना शुरू कर देते हैं। इसलिए स्त्रियां मुश्किल से ही सुंदर हो पाती हैं। सुंदर होने का जो अति विचार है वह बहुत गहरी और छिपी कुरूपताएं भीतर भरता है। इसलिए बहुत कम स्त्रियां हैं जिनमें कोई गहराई होती है सौंदर्य की। इसलिए एक या दो दिन के बाद अगर एक स्त्री आपके साथ रह जाए, कितनी ही सुंदर हो, दो दिन के बाद उसका सौंदर्य दिखाई पड़ना बंद हो जाता है। क्योंकि बहुत सर्फेस पर था, बहुत ऊपर था, गया। वह गहरे दिखाई नहीं पड़ता।

बच्चे सभी सुंदर मालूम होते हैं, क्योंकि वे जैसे हैं वैसे हैं। कुरूप हैं तो कुरूप होने को भी राजी हैं, उसमें भी कोई बाधा नहीं है। और तब एक और तरह का सौंदर्य उनमें प्रकट होता है जिसको ताओ का सौंदर्य कहेंगे।

ताओ की अपनी एक बुद्धिमत्ता है

इसी तरह जीवन के सारे पहलुओं पर। एक बहुत बुद्धिमान आदमी है। वह सब प्रश्नों के उत्तर जानता है। लेकिन जरूर ऐसे प्रश्न होंगे जिनके उत्तर उसको पता नहीं हैं। जब तक उसके जाने हुए प्रश्न आप पूछते हैं तब तक वह उत्तर देता है। और एक प्रश्न आप ऐसा खड़ा कर दें जो उसे पता नहीं, वह तत्काल अज्ञानी हो जाता है। क्योंकि जो बुद्धिमत्ता थी वह साधी गई थी। वह साधी गई बुद्धिमत्ता थी। इसलिए बुद्धिमान आदमी नये प्रश्नों को स्वीकार नहीं करना चाहता, नये सवाल नहीं उठाना चाहता। वह कहता है, पुराने सवाल ठीक हैं। इसलिए वह कहता है, पुराने जवाब ठीक हैं। क्योंकि पुराने जवाब तभी तक ठीक हैं जब तक कि नया सवाल नहीं उठता। नया सवाल उठता है तो बुद्धिमान आदमी गया।

नहीं लेकिन, ताओ के पास कोई जवाब नहीं है। इसलिए ताओ की बुद्धिमत्ता जिसको उपलब्ध हो जाए, उसके लिए कोई सवाल न नया है, न कोई पुराना है। इधर सवाल खड़ा होता है, इधर वह उस सवाल से जूझ जाता है। उसके पास कुछ रेडीमेड नहीं है। उसके पास कुछ तैयार नहीं है।

कनफ्यूशियस जब लाओत्से से मिला है... तो कनफ्यूशियस बहुत से लोगों से मिलने गया था। और जब लौटकर उसके मित्रों ने पूछा कि क्या हुआ? तो उसने कहा, आदमी की जगह तुमने मुझे अजगर के पास भेज दिया। वह आदमी ही नहीं है, वह तो खा जाएगा। मेरी सारी बुद्धिमत्ता चकनाचूर हो गई। बल्कि उस आदमी के सामने मुझे पता चला कि मेरी बुद्धिमत्ता एक तरह की कनिंगनेस है, और कुछ भी नहीं; सिर्फ एक चालाकी है, जिसमें मैंने कुछ सवालों के जवाब तय कर रखे हैं जिनके मैं जवाब दे देता हूं। लेकिन उस आदमी ने ऐसे सवाल पूछे जिनके जवाब मुझे पता ही नहीं थे। मुझे यह भी पता नहीं था कि यह भी सवाल है। और तब वह बहुत हंसने लगा। और अब उस आदमी के सामने मैं दुबारा न जा सकूंगा। क्योंकि उस आदमी के पास मेरी सारी बुद्धिमत्ता चालाकी से ज्यादा साबित नहीं हुई जो मैंने तैयार कर रखी थी।

ताओ की अपनी एक बुद्धिमत्ता है। जिस बुद्धिमत्ता में कुछ तैयार नहीं है। चीजें आती हैं और स्वीकार कर ली जाती हैं। पर जो भी होता है उसे होने दिया जाता है।

ताओ का व्यवहार तय करना कठिन है

इसलिए बहुत, ताओ का व्यवहार तय करना बहुत कठिन है। हो सकता है कि आप किसी ताओ में स्थिर आदमी से कोई सवाल पूछें और वह जवाब न देकर आपको चांटा मार दे। क्योंकि वह यह कहेगा, यही हुआ! वह

यह नहीं कहता कि आप न मारें, आप जवाब में मार सकते हैं और जो करना हो कर सकते हैं। लेकिन वह यह कहेगा, जो हो सकता था वह हुआ। और अगर उसके चांटे को समझा जाए तो शायद आपके लिए वही जवाब था।

सभी प्रश्न ऐसे नहीं कि उनके उत्तर दिए जाएं। बहुत प्रश्न ऐसे ही हैं जिनका चांटा ही अच्छा होगा। हमारे ख्याल में नहीं आएगा एकदम से कि चांटा कैसे अच्छा हो सकता है।

एक ताओ फकीर के पास एक युवक पूछने गया है। वह उससे पूछता है कि ईश्वर क्या है? धर्म क्या है?

तो वह उसे उठाकर एक चांटा लगाता है और दरवाजा बंद करके बाहर कर देता है। तो वह बहुत परेशान होता है। वह बड़ी दूर से बड़ी पहाड़ी चढ़कर इसके पास आया। तो सामने ही एक दूसरे फकीर का झोपड़ा है, वह उसमें जाता है। और वह कहता है कि किस तरह का आदमी है यह! तो वह डंडा उठाता है वह फकीर। वह कहता है, यह आप क्या कर रहे हैं? तो उसने कहा कि तू बहुत दयालु आदमी के पास गया था। अगर हमारे पास तू आता तो हम डंडा ही मारते। वह आदमी सदा का दयालु है। तू वापस वहीं जा! उसकी बड़ी करुणा है। उसने इतना भी किया, यह कुछ कम नहीं है।

वह आदमी वापस लौटता है। वह कुछ समझ नहीं पाता कि क्या मामला है। दरवाजा खटखटाता है। वह आदमी फिर भीतर बुलाकर बड़े प्रेम से बिठा लेता है। उससे कहता है, पूछ! वह कहता है कि अभी मैं आया था तो आपने मुझे मारा और आप अब इतने प्रेम से बिठा रहे हैं! तो वह उससे कहता है, जो मार न सह सके, वह प्रेम तो सह ही न सकेगा। वह कहता है, जो मार न सह सके, वह प्रेम तो सह ही न सकेगा। क्योंकि प्रेम की मार तो बहुत कठिन है। मगर तू लौट आया, तो अब आगे बात चल सकती है। तो उसने कहा कि मैं तो डरकर भाग भी जा सकता था, वह तो सामनेवाले की करुणा है। तो उसने कहा, वह बड़ा कृपालु है। वह मुझसे ज्यादा कृपालु है। अगर तू उसके पास गया होता तो वह डंडा ही मार देता।

अब यह जो, यह जब बात सारी की सारी सारे जगत में पहुंची तो समझना बहुत मुश्किल हो गया कि यह सारा मामला क्या है! लेकिन चीजों के अपने आंतरिक नियम हैं, आंतरिक ताओ है चीजों का।

अब यह जरूरी नहीं है कि आप जब मुझसे प्रश्न पूछने आए हैं तो सच में प्रश्न ही पूछने आए हों। यह जरूरी नहीं है। और यह भी जरूरी नहीं है कि आपको उत्तर की ही जरूरत है। यह भी जरूरी नहीं है। और यह भी जरूरी नहीं है कि जो आपने पूछा है वही आप पूछने आए थे। यह भी जरूरी नहीं है। और यह भी जरूरी नहीं है कि जो आपने पूछा है यह आप पूछना ही चाहते हैं। यह भी जरूरी नहीं है। क्योंकि आपके पास भी बहुत चेहरे हैं। आप कुछ पूछना तय करके चलते हैं, कुछ रास्ते में हो जाता है, कुछ आप आकर पूछते हैं।

अब मेरे पास कई लोग आते हैं कि अगर मैं उनका दो मिनट प्रश्न छोड़ जाऊं, दूसरी बात करूं, फिर दुबारा वे घंटे भर बैठे रहेंगे, वे कभी वह नहीं पूछेंगे। जो आदमी एक प्रश्न पूछने आया था--मैंने उससे इतना ही पूछाः कैसे हो? ठीक हो? अच्छे हो? फिर मैंने पूछा कि कहो क्या है? वह गया। तो यह प्रश्न कितना गहरा हो सकता है? इसकी कितनी रूट्स हो सकती हैं? इस आदमी के व्यक्तित्व को कितनी इसकी जरूरत हो सकती है? उसको कोई जरूरत नहीं है। लेकिन आया यह ऐसे ही था जैसे कि बहुत जरूरी था इसको पूछना। जैसे इसके बिना पूछे यह जी न सकेगा।

ताओ की बुद्धिमत्ता--दर्पण की तरह

तो ताओ की अपनी एक बुद्धिमत्ता है जो सीधा डायरेक्ट एक्शन में है। कुछ कहा नहीं जा सकता कि ताओ में थिर आदमी क्या करेगा। हो सकता है चुप रह जाए।

लाओत्से रोज घूमने जाता है। एक मित्र उसके साथ जाता है। वे दो घंटे तक घूमते हैं पहाड़ों पर, फिर लौट आते हैं। फिर एक मेहमान आया हुआ है। तो वह मित्र उसे लाता है और कहता है कि हमारे मेहमान हैं, आज ये भी चलेंगे। वे दोनों चुप हैं। लाओत्से चुप है, साथी चुप है, वह मेहमान भी चुप है। रास्ते में जब सूरज ऊगा तब वह इतना ही कहता है मेहमान कि कितनी अच्छी सुबह है! तब लाओत्से बहुत गुस्से से उस अपने मित्र की तरफ देखता है जो इस मेहमान को ले आया है। वह मित्र भी घबड़ा जाता है, वह मेहमान तो और भी घबड़ा जाता है कि ऐसी भी कोई मैंने बुरी बात भी नहीं कह दी। और घंटा भर हो गया चुप रहते, सिर्फ इतना ही कहा है कि कितनी अच्छी सुबह है।

फिर वे लौट आते हैं, घंटा और बीत जाता है, दरवाजे पर लाओत्से उस मित्र से कहता है, इस आदमी को दुबारा मत लाना। यह बहुत बकवासी मालूम होता है। वह मेहमान कहता है कि मैंने कोई बकवास नहीं की, दो घंटे में सिर्फ इतना कहा कि कितनी अच्छी सुबह है। लाओत्से कहता है, वह हमको भी दिखाई पड़ रही थी। वह निपट बकवास थी। सुबह हमको भी दिखाई पड़ रही थी। जो बात सभी को दिखाई पड़ रही थी, उसको कहने की क्या जरूरत है! और जो बात नहीं कहनी, तुम वह कह सकते हो, तुम आदमी ठीक नहीं हो। तुम कल से मत आना।

अब यह बात जरा सोचने जैसी है। असल में, जब आप सुबह देखकर कहते हैं कि कितनी अच्छी सुबह है, तब सच में आपको सुबह से कोई मतलब नहीं होता। आप सिर्फ एक चर्चा शुरू करना चाहते हैं। सुबह तो हम सबको दिखाई पड़ रही है। सुबह सुंदर है तो चुप रहिए। नहीं, सिर्फ आदमी खूंटी खोजता है। तो वह जो पूरा कांसिक्वेंस है, लाओत्से पूरा पकड़ लेता है। वह कहता है, यह आदमी बकवासी है। इसने शुरुआत की थी, वह तो हम जरा ठीक आदमी नहीं थे, नहीं तो यह शुरू हो गया था। इसने ट्रेन तो चला दी थी। वह तो दो आदमियों ने सहयोग नहीं दिया इसलिए यह बेचारा चुप रह गया। इसने शुरुआत तो कर दी थी, इसने खूंटी गाड़ दी थी, अभी यह और सामान भी गाड़ता उसके ऊपर। यह आदमी बकवासी है।

अब यह इतनी सी बात कि सुबह सुंदर है, एक बकवासी आदमी के चित्त की सबूत हो सकती है। इससे ज्यादा उसने कुछ कहा ही नहीं। हमको भी लगता है कि लाओत्से ज्यादती कर रहा है। लेकिन मुझे नहीं लगता। वह ठीक ही कह रहा है। वह आदमी पकड़ लिया उसने। क्योंकि ताओ जो है उसकी अपनी बुद्धिमत्ता है, वह दर्पण की तरह है। वह चीजें जैसी हैं वैसी दिख जाती हैं। उसने पकड़ ली इस आदमी की तरकीब कि यह आदमी घंटे भर से बेचैन था, इसने कई तरकीबें लगाई होंगी, लेकिन दो आदमी बिल्कुल चुप थे, वे कुछ बोल ही नहीं रहे थे! इसने कहा, क्या करें, क्या न करें! इसने कहा सुबह हो गई, अब इसने कहा कि सुबह बहुत सुंदर है। अब इसने चाहा था कि इनमें से कोई कुछ तो कहेगा कि हां, सुंदर है। अब इसमें तो कोई इनकार नहीं करेगा। तो बात शुरू हो जाएगी। फिर जो बात शुरू हो जाती है उसका कोई अंत नहीं है। तो लाओत्से ने कहा, यह है बकवासी, इसको तुम कल से लाना ही मत। इसने बीज तो बो दिया था, फसल तो हमने बचाई।

तो ताओ का एक अपना दर्पण है। जिसमें चीजें कैसी दिखाई पड़ेंगी, यह सीधी चीजों को देखकर हम नहीं जानते। और चूंकि उसके पास अपना कोई बंधा हुआ उत्तर नहीं है, इसलिए बड़ी मुक्ति है। चूंकि कोई रेडीमेड बात नहीं है, इसलिए चीजें सरल और सीधी हैं और जाल कुछ भी नहीं है। लेकिन यह स्थिति पर खड़े होने की सारी बात है।

लाओत्से मेरे निकटतम है

तो जिसे मैं ध्यान कह रहा हूं, उसे ताओ कहें तो कोई फर्क नहीं पड़ता। हां, ताओ से मेरे बड़े निकट लेन-देन हैं। और अगर किसी भी व्यक्ति के निकट मैं मालूम अपने को करता हूं तो वह लाओत्से के। वह शुद्धतम! उसने कभी जिंदगी में किताब नहीं लिखी। कितने लोगों ने कहा कि लिखें, लिखें, लिखें। फिर आखिरी उम्र में वह देश छोड़कर जा रहा है। और तब उसे चौकी पर, चुंगी चौकी पर पकड़वा लिया है राजा ने। और उसने कहा कि कर्ज चुका जाओ; ऐसे न जाने दूंगा। उसने कहा कि मेरे पास तो कुछ भी नहीं है। चुंगी देने के लिए तो मेरे पास कुछ है ही नहीं। टैक्स मैं किस बात का दूं! तो वह जो टैक्स कलेक्टर है, उसने कहा कि तुम्हारे सिर में जो है वह हम जाने न देंगे। उसे लिख जाओ। तुम भागे जा रहे हो, तुम्हारे पास बहुत संपदा है। तो उसने एक छोटी सी किताब लिखी है। यह ताओ तेह किंग। और यह भी अदभुत किताब है। क्योंकि कम ही ऐसे लोग हैं जो लिखते वक्त यह कहें कि जो मैं कहने जा रहा हूं वह कहा न जा सकेगा; और जो मैं कहूंगा वह सत्य हो ही नहीं सकता, क्योंकि कहते ही असत्य हो जाता है। सत्य न कहा जा सकेगा और जो मैं कहूंगा वह असत्य हो जाएगा, क्योंकि कहते ही चीजें असत्य हो जाती हैं।

तो इस आदमी के पास कुछ है, और इस आदमी ने कुछ जाना है, और यह आदमी कहीं पहुंचा है।

ध्यान धन ताओ = झेन

झेन की जो पैदाइश है, झेन जो है, वह ताओ और बुद्ध, लाओत्से और बुद्ध दोनों की क्रासब्रीड है; झेन जो है। इसलिए झेन का कोई मुकाबला नहीं है। झेन अकेला बुद्धिज्म नहीं है। हिंदुस्तान से बौद्ध भिक्षु लेकर गए ध्यान की प्रक्रिया को। लेकिन हिंदुस्तान के पास ताओ की पूरी दृष्टि न थी, पूरा फैलाव न था। ध्यान की प्रक्रिया थी, जो स्वभाव में थिर कर देती है। लेकिन स्वभाव में थिर होने की पूरी की पूरी व्यापक कल्पना हिंदुस्तान के पास नहीं थी। वह लाओत्से के पास थी। और जब हिंदुस्तान से बौद्ध भिक्षु ध्यान को लेकर चीन गए, और वहां जाकर ताओ की पूरी फिलॉसफी और पूरी दृष्टि उनके ख्याल में आई, तो ध्यान और ताओ एक हो गए। इनसे जो पैदाइश हुई वह झेन है। इसलिए झेन न तो बुद्ध है, न झेन लाओत्से है। झेन बहुत ही अलग बात है। और इसलिए आज झेन की जो खूबी है जगत में वह किसी और बात की नहीं है। उसका कारण है कि दुनिया की दो अदभुत कीमती बातें--बुद्ध और लाओत्से--दोनों से पैदा हुई बात है। इतनी बड़ी दो हस्तियों के मिलन से कोई दूसरी बात पैदा नहीं हुई। तो उसमें ताओ का पूरा फैलाव है और ध्यान की पूरी गहराई है।

कठिन तो है जैसा आप कहते हैं, और सरल भी है। कठिन इसीलिए है कि हमारे सोचने के जो ढांचे हैं उनसे बिल्कुल प्रतिकूल है। और सरल इसीलिए है कि स्वभाव सरल ही हो सकता है। उसमें कुछ कठिन होने की बात नहीं है।

तीव्र श्वास और कुंडलिनी का संबंध

प्रश्नः तीव्र श्वास-प्रश्वास लेना और "मैं कौन हूं" पूछना, इसका कुंडलिनी जागरण और चक्र-भेदन की प्रक्रिया से किस प्रकार का संबंध है?

संबंध है और बहुत गहरा संबंध है। असल में, श्वास से ही हमारी आत्मा और शरीर का जोड़ है; श्वास सेतु है। इसलिए श्वास गई कि प्राण गए। मस्तिष्क चला जाए तो चलेगा, आंखें चली जाएं तो चलेगा, हाथ-पैर कट जाएं तो चलेगा। श्वास कट गई कि गए; श्वास से जोड़ है हमारी आत्मा और शरीर का। और आत्मा और शरीर के मिलन का जो बिंदु है, वहीं कुंडलिनी है--उसी बिंदु पर! वहीं वह शक्ति है जिसको कुंडलिनी कहते हैं। नाम कुछ भी दिया जा सकता है। वह ऊर्जा वहीं है।

कुंडलिनी ऊर्जा के दो रूप

और इसलिए उस ऊर्जा के दो रूप हैं। अगर वह कुंडलिनी की ऊर्जा शरीर की तरफ बहे, तो काम-शक्ति बन जाती है, सेक्स बन जाती है; और अगर वह ऊर्जा आत्मा की तरफ बहे, तो वह कुंडलिनी बन जाती है, या कोई और नाम दें। शरीर की तरफ बहने से वह अधोगामी हो जाती है और आत्मा की तरफ बहने से ऊर्ध्वगामी हो जाती है। पर जिस जगह वह है, उस जगह पर चोट श्वास से पड़ती है।

इसलिए तुम हैरान होओगेः संभोग करते समय शांत श्वास को नहीं रखा जा सकता; संभोग करते वक्त श्वास की गति में तत्काल अंतर पड़ जाएगा। इसलिए कामातुर होते ही चित्त श्वास को तेज कर लेगा, क्योंकि उस बिंदु पर चोट श्वास करेगी तभी वहां से काम-शक्ति बहनी शुरू होगी। श्वास की चोट के बिना संभोग भी असंभव है और श्वास की चोट के बिना समाधि भी असंभव है। समाधि उसके ऊर्ध्वगामी बिंदु का नाम है और संभोग उसके अधोगामी बिंदु का नाम है। पर श्वास की चोट तो दोनों पर पड़ेगी।

श्वास और वासना का घनिष्ठ संबंध

तो अगर चित्त काम से भरा हो, तब श्वास को धीमा करना, श्वास को शिथिल करना। जब चित्त में कामवासना घेरे, या क्रोध घेरे, या और कोई वासना घेरे, तो श्वास को शिथिल करना और कम करना और धीमी लेना। तो काम और क्रोध दोनों विदा हो जाएंगे, टिक नहीं सकते; क्योंकि जो ऊर्जा उनको चाहिए वह श्वास की बिना चोट पड़े नहीं मिल सकती।

इसलिए कोई आदमी क्रोध नहीं कर सकता, श्वास को धीमे लेकर। और करे तो वह चमत्कार है। करे तो बिल्कुल चमत्कार है; साधारण घटना नहीं है। हो नहीं सकता; श्वास धीमी हुई कि क्रोध गया। कामोत्तेजित भी नहीं हो सकता श्वास को शांत रखकर; क्योंकि श्वास शांत हुई कि कामोत्तेजना गई।

तो जब कामोत्तेजित हो मन, क्रोध से भरे मन, तब श्वास को धीमी रखना; और जब ध्यान की अभीप्सा से भरे मन, तो श्वास की तीव्र चोट करना। क्योंकि जब ध्यान की अभीप्सा भीतर हो और श्वास की चोट पड़े, तो जो ऊर्जा है वह ध्यान की यात्रा पर निकलनी शुरू हो जाती है।

तीव्र श्वास की चोट से शक्ति जागरण

तो कुंडलिनी पर गहरी श्वास का बहुत परिणाम है। प्राणायाम अकारण ही नहीं खोज लिया गया था। वह बहुत लंबे प्रयोग और अनुभवों से ज्ञात होना शुरू हुआ कि श्वास की चोट से बहुत कुछ किया जा सकता है; श्वास का आघात बहुत कुछ कर सकता है। और यह आघात जितना तीव्र हो, उतनी त्वरित गति होगी। और हम सब साधारणजनों में, जिनकी कुंडलिनी जन्मों-जन्मों से सोई है, उसको बड़े तीव्र आघात की जरूरत है; घने आघात की जरूरत है; सारी शक्ति इकट्ठी करके आघात करने की जरूरत है।

तो श्वास से तो कुंडलिनी पर चोट पड़नी शुरू होती है, मूल केंद्र पर चोट पड़नी शुरू होती है। और जैसे-जैसे तुम्हें अनुभव होना शुरू होगा, तुम बिल्कुल आंख बंद करके देख पाओगे कि श्वास की चोट कहां पड़ रही है। इसलिए अक्सर ऐसा हो जाएगा कि जब श्वास की तेज चोट पड़ेगी तो बहुत बार कामोत्तेजना भी हो सकती है। वह इसलिए हो सकती है कि तुम्हारे शरीर का एक ही अनुभव है, श्वास तेज पड़ने का और उस ऊर्जा पर चोट पड़ने का एक ही अनुभव है--सेक्स का। तो जो अनुभव है उस लीक पर शरीर फौरन काम करना शुरू कर देता है। इसलिए बहुत साधकों को, साधिकाओं को एकदम तत्काल यौन केंद्र पर चोट पड़नी शुरू हो जाती है।

गुरजिएफ के पास अनेक लोगों को ऐसा ख्याल हुआ--और होना बिल्कुल स्वाभाविक है--अनेक स्त्रियों को ऐसा ख्याल हुआ कि उसके पास जाते ही से उनके यौन केंद्र पर चोट होती है। अब यह बिल्कुल स्वाभाविक है। इसकी वजह से गुरजिएफ को बहुत बदनामी मिली। इसमें उसका कोई कसूर न था। इसमें उसका कोई कसूर न था। असल में, ऐसे व्यक्ति के पास, जिसकी अपनी कुंडलिनी जाग्रत हो, तुम्हारी कुंडलिनी पर चोट होनी शुरू होती है, उसकी चारों तरफ की तरंगों से। लेकिन तुम्हारी कुंडलिनी तो अभी बिल्कुल सेक्स सेंटर के पास सोई हुई होती है, इसलिए चोट वहीं पड़ती है, पहली चोट वहीं पड़ती है।

जागी हुई कुंडलिनी से चक्र सक्रिय

श्वास तो गहरा परिणाम लानेवाली है, कुंडलिनी के लिए।

और सारे चक्र जिन्हें तुम कहते हो, वे सब कुंडलिनी के यात्रा-पथ के स्टेशन समझो; जहां-जहां से कुंडलिनी होकर गुजरेगी, वे स्थान। ऐसे तो बहुत स्थान हैं, इसलिए कोई कितने ही चक्र गिन सकता है, लेकिन बहुत मोटे विभाजन करें तो जहां कुंडलिनी थोड़ी देर ठहरेगी, विश्राम करेगी, वे स्थान हैं।

तो सब चक्रों पर परिणाम होगा। और जिस व्यक्ति का जो चक्र सर्वाधिक सक्रिय है, उस पर सबसे पहले परिणाम होगा। जैसे कि अगर कोई व्यक्ति मस्तिष्क से ही दिन-रात काम करता है, तो तेज श्वास के बाद उसका सिर एकदम भारी हो जाएगा। क्योंकि उसका जो मस्तिष्क का चक्र है, वह सक्रिय चक्र है। श्वास का पहला आघात सक्रिय चक्र पर पड़ेगा। उसका सिर एकदम भारी हो जाएगा। कामुक व्यक्ति है तो उसकी कामोत्तेजना बढ़ जाएगी; बहुत प्रेमी व्यक्ति है तो उसका प्रेम बढ़ जाएगा; भावुक व्यक्ति है तो भावना बढ़ जाएगी। उसका जो अपने व्यक्तित्व का केंद्र बहुत सक्रिय है, पहले उस पर चोट होनी शुरू हो जाएगी।

लेकिन तत्काल दूसरे केंद्रों पर भी चोट शुरू होगी। और इसलिए व्यक्तित्व में रूपांतरण भी तत्काल अनुभव होना शुरू हो जाएगा कि मैं बदल रहा हूं; यह मैं वही आदमी नहीं हूं जो कल तक था। क्योंकि हमें आदमी का पता ही नहीं है कि हम कितने हैं; हमें तो पता है उसी चक्र का जिस पर हम जीते हैं। जब दूसरा चक्र हमारे भीतर खुलता है तो हमें लगता है कि हमारा व्यक्तित्व गया, यह तो हम दूसरे आदमी हुए; यह हम अब वह आदमी नहीं हैं जो कल तक थे। यह ऐसे ही है, जैसे कि इस मकान में हमें इसी कमरे का पता हो, यही कमरे का नक्शा हो हमारे दिमाग में। अचानक एक दरवाजा खुले और एक और कमरा हमें दिखाई पड़े, तो हमारा पूरा नक्शा बदलेगा। अब जिसको हमने अपना मकान समझा था, अब वह दूसरा हो गया। अब एक नई व्यवस्था उसमें हमें देनी पड़े।

सक्रिय केंद्रों से नये व्यक्तित्व का आविर्भाव

तो तुम्हारे जिन-जिन केंद्रों पर चोट होगी, वहां-वहां से व्यक्तित्व का नया आविर्भाव होगा। और जब सारे केंद्र सक्रिय होते हैं एक साथ, उसका मतलब है कि जब सबके भीतर से ऊर्जा एक सी प्रवाहित होती है, तब पहली दफे तुम अपने पूरे व्यक्तित्व में जीते हो। हममें से कोई भी अपने पूर व्यक्तित्व में साधारणतः नहीं जीता। और हमारे ऊपर के केंद्र तो अछूते रह जाते हैं। तो श्वास से इन केंद्रों पर भी चोट पड़ेगी।

और "मैं कौन हूं" का जो प्रश्न है, वह भी चोट करनेवाला है; वह दूसरी दिशा से चोट करनेवाला है। इसे थोड़ा समझो। श्वास से तो ख्याल में आया। अब "मैं कौन हूं", इससे कुंडलिनी पर कैसे चोट होगी?

यह कभी हमारे ख्याल में नहीं है। तुम आंख बंद कर लो, और एक नग्न स्त्री का चित्र सोचो। तुम्हारा सेक्स सेंटर फौरन सक्रिय हो जाएगा। क्यों? तुम सिर्फ एक कल्पना कर रहे हो, तुम्हारा सेक्स सेंटर क्यों सक्रिय हो गया?

असल में, प्रत्येक सेंटर की अपनी कल्पना है। समझे न? प्रत्येक सेंटर की अपनी इमेजिनेशन है। और अगर उसकी इमेजिनेशन के करीब तुमने इमेजिनेशन करनी शुरू की तो वह सेंटर तत्काल सक्रिय हो जाएगा। इसलिए कामवासना का विचार करते ही तुम्हारा सेक्स सेंटर वर्क करना शुरू कर देगा।

और तुम हैरान होओगेः नग्न स्त्री हो सकता है इतनी प्रभावी न हो, जितना नग्न स्त्री का विचार प्रभावी होगा। उसका कारण है कि नग्न स्त्री का विचार तो तुम्हें कल्पना में ले जाएगा और कल्पना चोट करेगी। और नग्न स्त्री तुम्हें कल्पना में नहीं ले जाएगी, वह तो प्रत्यक्ष खड़ी है। इसलिए प्रत्यक्ष जितनी चोट कर सकती है, करेगी। कल्पना भीतर से चोट करती है तुम्हारे सेंटर पर, प्रत्यक्ष स्त्री सामने से चोट करती है। सामने की चोट उतनी गहरी नहीं है, जितनी भीतर की चोट गहरी है।

इसलिए बहुत से ऐसे लोग हैं जो कि स्त्री के सामने तो इंपोटेंट सिद्ध होंगे, लेकिन कल्पना में बहुत पोटेंट हैं वे। कल्पना में उनकी पोटेंसी का कोई हिसाब नहीं है। क्योंकि कल्पना की जो चोट है वह तुम्हारे भीतर से जाकर सेंटर को छूती है। प्रत्यक्ष की जो चोट है वह भीतर से जाकर नहीं छूती, बाहर से तुम्हें सीधा छूती है। और मनुष्य चूंकि मन में जीता है, इसलिए मन से ही गहरी चोटें कर पाता है।

"मैं कौन हूं?" एक अस्तित्वगत सवाल

तो जब तुम पूछते होः "मैं कौन हूं?" तो तुम एक जिज्ञासा कर रहे हो; एक जानने की कल्पना कर रहे हो; एक प्रश्न उठा रहे हो। यह प्रश्न तुम्हारे किस सेंटर को छुएगा? यह प्रश्न तुम्हारे किसी सेंटर को छुएगा। जब तुम यह प्रश्न पूछते हो, जब तुम इसकी जिज्ञासा करते हो, इसकी अभीप्सा से भरते हो, और तुम्हारा रोआं-रोआं पूछने लगता हैः "मैं कौन हूं?" तब तुम भीतर जा रहे हो; और भीतर किसी केंद्र पर चोट होनी शुरू होगी। "मैं कौन हूं", ऐसा प्रश्न जो पूछा ही नहीं तुमने कभी। इसलिए तुम्हारे किसी ज्ञात सक्रिय केंद्र पर उसकी चोट नहीं होनेवाली है। समझे न? तुमने कभी पूछा ही नहीं है उसे; उसकी अभीप्सा ही कभी तुमने नहीं की। तुमने अक्सर पूछा हैः वह कौन है? यह कौन है? तुमने ये सारे प्रश्न पूछे हैं। लेकिन "मैं कौन हूं", यह अनपूछा प्रश्न है। यह तुम्हारे बिल्कुल अज्ञात केंद्र को चोट करेगा, जिस पर तुमने कभी चोट नहीं की है। और वह अज्ञात केंद्र, जहां "मैं कौन हूं", चोट करेगा, बहुत बेसिक है; क्योंकि यह प्रश्न बहुत बेसिक है, बहुत आधारभूत प्रश्न है कि "मैं कौन हूं?" बहुत एक्झिस्टेंशियल है यह सवाल। यह पूरे अस्तित्व की गहराई का सवाल है कि मैं हूं कौन?

यह मुझे वहां ले जाएगा जहां मैं जन्मों के पहले था; यह मुझे वहां ले जाएगा जहां जन्मों-जन्मों के पहले था। यह मुझे वहां ले जा सकता है जहां कि मैं आदि में था। इस प्रश्न की गहराई का कोई हिसाब नहीं है। इसकी

यात्रा बहुत गहरी है। इसलिए तुम्हारा जो मूल, गहरे से गहरा केंद्र है कुंडलिनी का, वहां इसकी तत्काल चोट होनी शुरू होगी।

चोट करने के विभिन्न उपाय

श्वास फिजियोलाजिकल चोट है, और "मैं कौन हूं" यह मेंटल चोट है। यह तुम्हारी माइंड एनर्जी से चोट पहुंचाना है, और वह तुम्हारी बॉडी एनर्जी से चोट पहुंचाना है। और अगर ये दोनों चोट पूरे जोर से पड़ जाएं... तो दो ही रास्ते हैं वहां तक चोट पहुंचाने के तुम्हारे पास सामान्यतया। और तरकीबें भी हैं, लेकिन वे जरा उलझी हुई हैं। दूसरा आदमी तुम्हें सहयोगी हो सकता है। इसलिए तुम अगर मेरे सामने करोगे तो तुम्हें चोट जल्दी पहुंच जाती है, क्योंकि तीसरी दिशा से भी चोट पहुंचनी शुरू होती है, जिसका तुम्हें ख्याल नहीं है; वह एस्ट्रल है। यह बॉडिली है, जब तुम श्वास गहरी लेते हो; और जब तुम पूछते हो, "मैं कौन हूं?" तब यह मेंटल है। और अगर तुम एक ऐसे व्यक्ति के पास बैठे हो, जिससे कि तुम्हारे एस्ट्रल को चोट पहुंच सके, तुम्हारे सूक्ष्म शरीर को चोट पहुंच सके, तो एक तीसरी यात्रा शुरू हो जाती है। इसलिए अगर यहां पचास लोग ध्यान करेंगे तो तीव्रता से होगा बजाय एक के; क्योंकि पचास लोगों की तीव्र आकांक्षाएं और पचास लोगों की तीव्र श्वासों का संवेदन इस कमरे को एस्ट्रल एटमास्फियर से भर देगा; यहां नई तरह की विद्युत किरणें चारों तरफ घूमने लगेंगी। और वे भी तुम्हें चोट पहुंचाने लगेंगी।

पर तुम्हारे पास साधारणतः दो सीधे उपाय हैंः शरीर का और मन का। तो "मैं कौन हूं" गहरी चोट करेगा; श्वास से भी गहरी करेगा। श्वास से इसलिए हम शुरू करते हैं कि वह शरीर की है; उसे करने में ज्यादा कठिनाई नहीं है। समझे न? "मैं कौन हूं" थोड़ा कठिन है; क्योंकि मन का है। शरीर से शुरू करते हैं। और जब शरीर पूरी तरह से वाइब्रेट होने लगता है, तब तुम्हारा मन भी इस योग्य हो जाता है कि पूछने लगे। फिर पूछने की एक ठीक सिचुएशन चाहिए।

हर कभी तुम "मैं कौन हूं" पूछोगे तो नहीं बनेगा काम। सब सवालों के लिए भी ठीक स्थितियां चाहिए, जब वे पूछे जा सकते हैं। जैसे कि जब तुम्हारा पूरा शरीर कंपने लगता है और डोलने लगता है, तब तुम्हें खुद ही सवाल उठता है कि यह हो क्या रहा है? यह मैं कर रहा हूं? यह मैं तो नहीं कर रहा हूं--यह सिर मैं नहीं घुमा रहा हूं; यह पैर मैं नहीं उठा रहा हूं; यह नाचना मैं नहीं कर रहा हूं--लेकिन यह हो रहा है। और अगर यह हो रहा है तो तुम्हारी जो आइडेंटिटी है सदा की कि यह शरीर मैं हूं, वह ढीली पड़ गई। अब तुम्हारे सामने एक नया सवाल उठ रहा है कि फिर मैं कौन हूं? अगर यह शरीर कर रहा है और मैं नहीं कर रहा, तो अब एक नया सवाल है कि कर कौन रहा है? फिर तुम कौन हो अब?

तो यह ठीक सिचुएशन है जब इस छेद में से तुम्हारा "मैं कौन हूं" का प्रश्न गहरा उतर सकता है। तो उस ठीक मौके पर उसे पूछना जरूरी है। असल में, हर प्रश्न का भी ठीक वक्त है। और ठीक वक्त खोजना बड़ी कीमती बात है। हर कभी पूछ लेने का सवाल नहीं है उतना बड़ा। तुम अगर अभी बैठकर पूछ लो कि मैं कौन हूं? तो यह हवा में घूम जाएगा, इसकी चोट कहीं नहीं होगी। क्योंकि तुम्हारे भीतर जगह चाहिए न जहां से यह प्रवेश कर जाए! रंध्र चाहिए!

कुंडलिनी जागरण पर अतींद्रिय अनुभव

इन दोनों की चोट से कुंडलिनी जगेगी। और उसका जागरण जब होगा तो अनूठे अनुभव शुरू हो जाएंगे। क्योंकि उस कुंडलिनी के साथ तुम्हारे समस्त जन्मों के अनुभव जुड़े हुए हैं--जब तुम वृक्ष थे, तब के भी; और जब तुम मछली थे, तब के भी; और जब तुम पक्षी थे, तब के भी। तुम्हारे अनंत-अनंत योनियों के अनुभव उस पूरे यात्रा-पथ पर पड़े हैं। तुम्हारी उस कुंडल शक्ति ने उन सब को आत्मसात किया है।

इसलिए बहुत तरह की घटनाएं घट सकती हैं। उन अनुभवों के साथ तादात्म्य जुड़ सकता है। और किसी भी तरह की घटना घट सकती है। और इतने सूक्ष्म अनुभव तुममें जुड़े हैं... क्योंकि तुम्हें ख्याल नहीं है... एक वृक्ष खड़ा हुआ है बाहर। अभी हवा चली जोर से, वर्षा हुई। वृक्ष ने जैसा वर्षा को जाना, वैसा हम कभी न जान सकेंगे। कैसे जान सकेंगे? वृक्ष ने जैसा जाना वर्षा को, वैसा हम कभी न जान सकेंगे! हम वृक्ष के पास भी खड़े हो जाएं तो हम न जान सकेंगे। हम वैसा ही जानेंगे जैसा हम जान सकते हैं। लेकिन कभी तुम वृक्ष भी रहे हो अपनी किसी जीवन-यात्रा में। और अगर कुंडलिनी उस जगह पहुंचेगी, उस अनुभूति के पास जहां वह संगृहीत है वृक्ष की अनुभूति, तो तुम अचानक पाओगे कि वर्षा हो रही है और तुम वह जान रहे हो जो वृक्ष जान रहा है। तब तुम बहुत घबड़ा जाओगे। तब तुम बहुत घबड़ा जाओगे कि यह क्या हो रहा है! तब तुम समझ पाओगे कि जो सागर अनुभव कर रहा है वह तुम अनुभव कर पाओगे; जो हवाएं अनुभव कर रही हैं वह तुम अनुभव कर पाओगे। इसलिए तुम्हारी एस्थेटिक न मालूम कितनी संभावनाएं खुल जाएंगी जो तुम्हें कभी भी नहीं थीं ख्याल में।

जैसे कि गोगा का एक चित्र हैः एक वृक्ष है और आकाश को छू रहा है! तारे नीचे रह गए हैं और वृक्ष बढ़ता ही चला जा रहा है! चांद नीचे पड़ गया है, सूरज नीचे पड़ गया है, छोटे-छोटे रह गए हैं, और वृक्ष ऊपर चलता जा रहा है। तो किसी ने कहा कि तुम पागल हो गए हो! वृक्ष कहीं ऐसे होते हैं? चांद-तारे नीचे पड़ गए हैं और वृक्ष ऊपर चला जा रहा है! तो गोगा ने कहा कि तुमने कभी वृक्ष को जाना ही नहीं, तुमने कभी वृक्ष के भीतर नहीं देखा। मैं उसको भीतर से जानता हूं। नहीं बढ़ पाता चांद-तारों के पार, यह बात दूसरी है, बढ़ना तो चाहता है। नहीं बढ़ पाता, यह बात दूसरी है, अभीप्सा तो यही है। उसने कहा, मैं तो कभी सोच ही नहीं सकता। मजबूरी है, नहीं बढ़ पाता, लेकिन भीतर प्राण तो सब चांद-तारे पार करते चले जाते हैं।

तो गोगा कहता था कि वृक्ष जो है वह पृथ्वी की आकांक्षा है आकाश को छूने की; पृथ्वी की डिजायर है, पृथ्वी अपने हाथ-पैर बढ़ा रही है आकाश को छूने के लिए। पर वैसा जब देख पाएंगे। मगर वह वृक्ष... फिर भी वृक्ष जैसा देखेगा, वैसा फिर भी हम नहीं देख पाएंगे।

पर ये सब हम रहे हैं, इसलिए कुछ भी होगा। और जो हम हो सकते हैं, उसकी भी संभावनाएं अनुभव में आनी शुरू हो जाएंगी। जो हम रहे हैं, वह तो अनुभव में आएगा; जो हम हो सकते हैं कल, उसकी संभावनाएं भी आनी शुरू हो जाएंगी।

और तब कुंडलिनी के यात्रा-पथ पर प्रवेश करने के बाद हमारी कहानी व्यक्ति की कहानी नहीं है, समस्त चेतना की कहानी हो जाती है। अरविंद इसी भाषा में बोलते थे, इसलिए बहुत साफ नहीं हो पाया मामला। तब फिर एक व्यक्ति की कहानी नहीं है वह, तब फिर कांशसनेस की कहानी है। तब तुम अकेले नहीं हो। तुममें अनंत हैं भीतर जो बीत गए, और तुममें अनंत हैं आगे जो प्रकट होंगे। एक बीज जो खुलता ही जा रहा है और मेनिफेस्ट होता चला जा रहा है, और जिसका कोई अंत नहीं दिखाई पड़ता। और जब इस तरह ओर-छोर हीन तुम अपने विस्तार को देखोगे--पीछे अनंत और आगे अनंत--तब स्थिति और हो जाएगी; तब सब बदल जाता है। और वे सब के सब कुंडलिनी पर छिपे हैं।

बहुत से रंग खुल जाएंगे जो तुमने कभी नहीं देखे। असल में, इतने रंग बाहर नहीं हैं जितने रंग तुम्हारे भीतर तुम्हें अनुभव में आ सकते हैं। क्योंकि वे रंग तुमने कभी जाने हैं, और-और तरह से जाने हैं। जब एक चील आकाश के ऊपर मंडराती है तो रंगों को और ढंग से देखती है; हम और ढंग से देखते हैं। अभी तुम जाओगे वृक्षों के पास से तो तुम्हें सिर्फ हरा रंग दिखाई पड़ता है; लेकिन जब एक चित्रकार जाता है तो उसे हजार तरह के हरे रंग दिखाई पड़ते हैं। हरा रंग एक रंग नहीं है, उसमें हजार शेड हैं; और कोई दो शेड एक से नहीं हैं, उनका अपना-अपना व्यक्तित्व है। हमको तो सिर्फ हरा रंग दिखाई पड़ता है। हरा रंग, बात खतम हो गई। एक मोटी धारणा है हमारी, बात खतम हो गई। हरा रंग एक रंग नहीं है, हरा रंग हजार रंग हैं--हर रंग में हजार रंग हैं। और जितनी उसकी बारीक से... जब तुम भीतर प्रवेश करोगे तो वहां तुमने हजारों बारीक अनुभव किए हैं।

सूक्ष्म अनुभवों का लोक

मनुष्य जो है, इंद्रियों की दृष्टि से बहुत कमजोर प्राणी है, सारे पशु-पक्षी बहुत शक्तिशाली हैं; उनकी अनुभूति और उनके अनुभव की गहराइयां-ऊंचाइयां बहुत हैं। कमी है कि उनको सबको पकड़कर वे चेतन में विचार नहीं कर पाते। लेकिन उनकी अनुभूतियां बहुत गहरी हैं; उनके संवेदन बहुत गहरे हैं।

अब जापान में एक चिड़िया है--आम चिड़िया--जो भूकंप के चौबीस घंटे पहले गांव छोड़ देगी। बस वह चिड़िया नहीं दिखाई पड़ेगी गांव में, समझो कि चौबीस घंटे के भीतर भूकंप आया। अभी हमारे पास जो यंत्र हैं, वे भी छह घंटे के पहले नहीं खबर दे पाते। और फिर भी बहुत सुनिश्चित नहीं है वह खबर। लेकिन उस चिड़िया का मामला तो सुनिश्चित है। और इतनी आम चिड़िया है कि गांव भर को पता चल जाए कि चिड़िया आज दिखाई नहीं पड़ रही, तो चौबीस घंटे के भीतर भूकंप पड़नेवाला है। उसका मतलब है कि भूकंप से पैदा होनेवाले अतिसूक्ष्म वाइब्रेशंस उस चिड़िया को किसी न किसी तल पर अनुभव होते हैं; वह गांव छोड़ देती है।

अब तुम कभी अगर यह चिड़िया रहे हो, तो तुम्हारी कुंडलिनी के यात्रा-पथ पर तुम्हें ऐसे वाइब्रेशंस होने लगेंगे जो तुम्हें कभी नहीं हुए। मगर तुम्हें कभी हुए हैं, तुम्हें पता नहीं, ख्याल में नहीं। तभी हो सकते हैं।

तुम्हें ऐसे रंग दिखाई पड़ने लगेंगे जो तुमने कभी नहीं देखे हैं; तुम्हें ऐसी ध्वनियां सुनाई पड़ने लगेंगी, जिसको कबीर कहते हैं नाद। कबीर कहते हैं, अमृत बरस रहा है, साधुओ, नाचो! तो वे साधु पूछते हैं, कहां अमृत बरस रहा है? और वह अमृत कहीं बाहर नहीं बरस रहा है। और कबीर कहते हैं, सुना? नाद बज रहे हैं, बड़े नगाड़े बज रहे हैं। पर साधु पूछते हैं, कहां बज रहे हैं? और कबीर कहते हैं, तुम्हें सुनाई नहीं पड़ रहे?

अब वह कबीर को जो सुनाई पड़ रहा है, वे नाद तुम्हें सुनाई पड़ेंगे, ध्वनियां सुनाई पड़ेंगी। ऐसे स्वाद आने शुरू होंगे जो तुम्हें कभी कल्पना में नहीं कि ये स्वाद हो सकते हैं।

तो सूक्ष्म अनुभूतियों का बड़ा लोक कुंडलिनी के साथ जुड़ा है, वह सब जग जाएगा, और सब तरफ से तुम पर हमला बोल देगा। और इसलिए अक्सर ऐसी स्थिति में आदमी पागल मालूम पड़ने लगता है। क्योंकि जब हम सब बैठे थे गंभीर तब वह हंसने लगता है, क्योंकि उसे कुछ दिखाई पड़ रहा है जो हमें दिखाई नहीं पड़ रहा; कि जब हम सब हंस रहे थे तब वह रोने लगता है, क्योंकि कुछ उसे हो रहा है जो हमें नहीं हो रहा।

शक्तिपात से ऊर्जा का नियंत्रित अवतरण

इन सबकी सामान्य मनुष्य के पास चोट करने के दो उपाय हैं, और असामान्य रूप से जिसको शक्तिपात कहें, वह तीसरा उपाय है; वह एस्ट्रल है। उसमें कोई माध्यम चाहिए। उसमें दूसरा व्यक्ति सहयोगी हो, तो

तुम्हारे भीतर तीव्रता बढ़ जा सकती है। और उस स्थिति में दूसरा व्यक्ति कुछ करता नहीं, सिर्फ उसकी मौजूदगी काफी है। वह सिर्फ एक मीडियम बन जाता है। अनंत शक्ति चारों तरफ पड़ी हुई है। अब जैसे कि हम घर के ऊपर लोहे की सलाख लगाए हुए हैं कि बिजली गिरे तो घर के नीचे चली जाए। सलाख न हो तब भी बिजली गिर सकती है, तब पूरे घर को तोड़ जाएगी। सलाख से पार हो जाएगी। लेकिन सलाख अभी हमको ख्याल में आई है, बिजली बहुत पहले से गिरती रही है; बिजली का शक्तिपात बहुत दिनों से हो रहा है, सलाख हमें अब ख्याल आई है।

तो अनंत शक्तियां हैं चारों तरफ मनुष्य के, उनका भी उपयोग किया जा सकता है उसके आध्यात्मिक विकास में। उन सबका उपयोग किया जा सकता है। लेकिन कोई माध्यम हो। तुम खुद भी माध्यम बन सकते हो। लेकिन प्राथमिक रूप से माध्यम बनना खतरनाक हो सकता है। क्योंकि इतना बड़ा शक्तिपात हो सकता है कि तुम उसे न झेल पाओ, बल्कि तुम्हारे कुछ तंतु जाम हो जाएं या टूट ही जाएं। क्योंकि शक्ति का एक वोल्टेज है, और वह तुम्हारे सहने की क्षमता के अनुकूल होना चाहिए। तो दूसरे व्यक्ति के माध्यम से तुम्हारे अनुकूल बनाने की सुविधा हो जाती है कि अगर एक दूसरा व्यक्ति उन शक्तियों का तुम्हारे ऊपर अवतरण कराना चाहता है, तो उस पर अवतरण हो चुका है, तभी। तब वह उतनी धारा में तुम तक पहुंचा सकता है जितनी धारा में तुम्हें जरूरत है।

और इसके लिए कुछ भी नहीं करना होता है; इसके लिए सिर्फ मौजूदगी जरूरी है बस। तब वह एक कैटेलेटिक एजेंट की तरह काम करता है। वह कुछ करता नहीं है। इसलिए कोई अगर कहता हो कि मैं शक्तिपात करता हूं, तो वह गलत कहता है; कोई शक्तिपात करता नहीं। लेकिन हां, किसी की मौजूदगी में शक्तिपात हो सकता है।

शक्ति जागरण और शक्तिपात में अंतर

और इधर मैं सोचता हूं, जरा इधर साधक थोड़ी गहराई लें, तो वह यहां होने लगेगा बड़े जोर से। इसमें कोई कठिनाई नहीं है। इसमें कोई कठिनाई नहीं है। किसी को करने की कोई जरूरत नहीं है, वह होने लगेगा। बस तुम अचानक पाओगे कि तुम्हारे भीतर कुछ और तरह की शक्ति प्रवेश कर गई है जो कहीं बाहर से आ गई है, जिसका कि तुम... तुम्हारे भीतर से नहीं आई।

तुम्हें कुंडलिनी का जब भी अनुभव होगा, तो तुम्हारे भीतर से उठता हुआ मालूम होगा; और जब तुम्हें शक्तिपात का अनुभव होगा, तो तुम्हारे बाहर से, ऊपर से आता हुआ मालूम होगा। यह इतना ही साफ होगा, जैसा कि ऊपर से आपके पानी गिरे और नीचे से पानी बढ़े--नदी में खड़े हैं और पानी बढ़ता जा रहा है, और नीचे से पानी ऊपर की तरफ आता जा रहा है, और आप डूब रहे हो।

तो कुंडलिनी का अनुभव सदा डूबने का होगा--नीचे से कुछ बढ़ रहा है और तुम उसमें डूबे जा रहे हो; कुछ तुम्हें घेरे ले रहा है। लेकिन शक्तिपात का जब भी तुम्हें अनुभव होगा तो वर्षा का होगा। वह जो कबीर कह रहे हैं कि अमृत बरस रहा है, साधुओ! पर वे साधु पूछते हैं, कहां बरस रहा है? वह ऊपर से गिरने का होगा। और तुम उसमें भीगे जा रहे हो। और ये दोनों अगर एक साथ हो सकें तो गति बहुत तीव्र हो जाती है--ऊपर से वर्षा हो रही है और नीचे से नदी बढ़ी जा रही है। इधर नदी का पूर आता है, इधर वर्षा बढ़ती जा रही है--और दोनों तरफ से तुम डूबे जा रहे हो और मिटे जा रहे हो। यह दोनों तरफ से हो सकता है, इसमें कोई कठिनाई नहीं है।

शक्तिपात निजी संपदा नहीं है

प्रश्नः शक्तिपात का प्रभाव अल्पकालीन होता है या दीर्घकालीन होता है? वह अंतिम यात्रा तक ले जाता है या अनेक बार शक्तिपात की आवश्यकता होती है?

असल बात यह है कि दीर्घकालीन तो तुम्हारे भीतर जो उठ रहा है उसका ही होगा; शक्तिपात जो है, वह सिर्फ सहयोगी हो सकता है, मूल नहीं बन सकता कभी भी। मूल नहीं बन सकता। तुम्हारे भीतर जो रहा है वही मूल बनेगा। संपत्ति तो तुम्हारी वही है। असली संपत्ति तुम्हारी वही है। शक्तिपात से तुम्हारी संपत्ति नहीं बढ़ेगी, शक्तिपात से तुम्हारी संपत्ति के बढ़ने की क्षमता बढ़ेगी। इस फर्क को ठीक से समझ लेना। शक्तिपात से तुम्हारी संपदा नहीं बढ़ेगी, लेकिन तुम्हारी संपदा के बढ़ने की जो गति है, तुम्हारी संपदा के फैलाव की जो गति है, वह तीव्र हो जाएगी।

इसलिए शक्तिपात तुम्हारी संपदा नहीं है। यानी ऐसे ही जैसे तुम दौड़ रहे हो, और मैं एक बंदूक लेकर तुम्हारे पीछे लग गया। बंदूक लेकर लगने से मेरी बंदूक तुम्हारे दौड़ने की संपत्ति नहीं बननेवाली, लेकिन मेरी बंदूक की वजह से तुम तेजी से दौड़ोगे। दौड़ोगे तुम ही, शक्ति तुम्हारी ही लगेगी, लेकिन जो नहीं लग रही थी तुम्हारे भीतर वह भी अब लग जाएगी। बंदूक का इसमें कोई भी हाथ नहीं है। बंदूक में से इंच भर शक्ति नहीं खोएगी इसमें। बंदूक की नाप-तौल पीछे करोगे तो वह उतनी की उतनी ही रहेगी। उसमें से कुछ जाने-आनेवाला नहीं है। लेकिन तुम उस बंदूक के प्रभाव में तीव्र हो जाओगे; जहां चल रहे थे धीमे, वहां दौड़ने लगोगे।

शक्तिपात से अंतर्यात्रा में प्रोत्साहन

तो शक्तिपात से तुम्हारी संपत्ति नहीं बढ़ती, लेकिन तुम्हारी संपत्ति की बढ़ने की क्षमता एकदम गतिमान हो जाती है। क्योंकि एक दफा तुम्हें... एक दफा तुम्हें अनुभव हो जाए, बिजली चमक जाए एक... बिजली चमकने से तुम्हें कोई रास्ता प्रकाशित नहीं हो जाता; हाथ में दीया नहीं बन जाता है बिजली का चमकना, सिर्फ एक झलक। लेकिन झलक बड़ी कीमत की हो जाती है--तुम्हारे पैर मजबूत हो जाते हैं, इच्छा प्रबल हो जाती है, पहुंचने की कामना तय हो जाती है, रास्ता दिखाई पड़ जाता है--रास्ता है, तुम यूं ही अंधेरे में नहीं भटक रहे हो। यह सब साफ एक बिजली की झलक में तुम्हें रास्ता दिख जाता है, दूर तुम्हें मंदिर दिख जाता है तुम्हारी मंजिल का।

फिर बिजली खो गई, फिर घुप्प अंधेरा हो गया, लेकिन अब तुम दूसरे आदमी हो। वहीं खड़े हो जहां थे, लेकिन दौड़ तुम्हारी बढ़ जाएगी। मंजिल पास है, रास्ता साफ है--न भी दिखाई पड़ता हो अंधेरे में, तो भी है। अब तुम आश्वस्त हो। तुम्हारा आश्वासन बढ़ जाता है। और तुम्हारे आश्वासन का बढ़ना तुम्हारे संकल्प को बढ़ा देता है।

तो इनडायरेक्ट परिणाम हैं। और इसलिए बार-बार जरूरत पड़ती है, एक बार से हल नहीं होता। बिजली दुबारा चमक जाए तो और फायदा होगा, तिबारा चमक जाए तो और फायदा होगा। पहली बार कुछ चूक गया होगा, न दिखाई पड़ा होगा, दूसरी बार दिख जाए, तीसरी बार दिख जाए! और इतना तो है कि आश्वासन गहरा होता जाएगा।

तो शक्तिपात से अंतिम परिणाम हल नहीं होता, अंतिम परिणाम तक तुम्हें पहुंचना है। और शक्तिपात के बिना भी पहुंच सकोगे। थोड़ी देर-अबेर होगी, इससे ज्यादा कुछ होना नहीं है। थोड़ी देर-अबेर होगी, अंधेरे में आश्वासन कम होगा, चलने में ज्यादा हिम्मत जुटानी पड़ेगी, ज्यादा बल लगाना पड़ेगा--भय पकड़ेगा, संकल्प-विकल्प पकड़ेंगे; पता नहीं, रास्ता है या नहीं--यह सब होगा, लेकिन फिर भी पहुंच जाओगे।

लेकिन शक्तिपात सहयोगी बन सकता है।

सामूहिक शक्तिपात भी संभव

तो इधर मैं चाहता ही हूं, तुम्हारी जरा गति बढ़े, तो एकाध-दो पर क्या, इकट्ठा, सामूहिक! एक-दो पर क्या करने का काम करना, इकट्ठा दस हजार लोगों को खड़ा करके शक्तिपात हो, इसमें कोई कठिनाई नहीं है। क्योंकि जितना एक पर होने में वक्त लगता है, उतना ही दस हजार पर। उससे कोई फर्क नहीं पड़ता।

शक्तिपात स्थायी नहीं है

प्रश्नः यदि संबंध न रहे मीडियम से तो इसका प्रभाव धीरे-धीरे घटते-घटते मिट भी जाता होगा?

कम तो होगा ही। सब प्रभाव क्षीण होनेवाले होते हैं। असल में, प्रभाव का मतलब ही यह है जो बाहर से आया है, वह क्षीण हो जाएगा। जो भीतर से आया, वह क्षीण नहीं होगा; वह तुम्हारा अपना है। प्रभाव तो सब घटनेवाले हैं, वे घट जाते हैं; लेकिन जो तुम्हारे भीतर से आता है वह नहीं घटता। उस प्रभाव में भी जो आ जाता है वह भी नहीं घटता; वह तो बना रह जाता है। तुम्हारी मूल संपत्ति नहीं घटती, प्रभाव तो घट जाता है।

विकास-क्रम में पीछे लौटना असंभव

प्रश्नः क्या दूसरों के असर से, जो थोड़ा-बहुत ऊपर उठा हो, वह नीचे भी गिर सकता है?

नहीं, नीचे की तरफ जाने का उपाय नहीं है। असल में, इस बात को भी ठीक से समझ लेना चाहिए। यह बड़े मजे की बात है, यह बहुत मजे की बात है कि नीचे की तरफ जाने का उपाय नहीं है। तुम जहां तक गई हो, तुम्हें उससे ऊंचा ले जाने में तो सहायता पहुंचाई जा सकती है; तुम्हें वहीं तक ठहराने में भी बाधा डाली जा सकती है; तुम्हें उससे नीचे नहीं ले जाया जा सकता। उसका कारण है कि उसके ऊंचे जाने में तुम बदल गई हो तत्काल।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

न, न, न। कोई सवाल ही नहीं उठता है। एक इंच भी कोई व्यक्तित्व में ऊपर गया, तो पीछे नहीं लौट सकता; पीछे लौटना असंभव है। यह मामला ऐसा ही है कि किसी बच्चे को हम पहली कक्षा से दूसरी में प्रवेश करवा सकते हैं। एक ट्यूटर रख सकते हैं जो उसको पहली में पढ़ाने में सहायता दे दे और दूसरी में पहुंचा दे। लेकिन ऐसा ट्यूटर खोजना बहुत मुश्किल है कि उसने पहली में जो पढ़ा है, उसको भुला दे--कि भई अब फिर इसको हमको पहली भुला देना है। और एक बच्चा दूसरी क्लास में जाकर नासमझ लड़कों की सोहबत करे, तो

इतना ही हो सकता है कि दूसरी में फेल होता रहे। बाकी पहली में उतार देंगे नासमझ लड़के, ऐसा नहीं है उपाय। मेरा मतलब समझीं न तुम? यह हो सकता है कि वह दूसरी ही में रुक जाए, और जनम भर दूसरी में रुका रहे, और तीसरी में न जा सके। लेकिन दूसरी से नीचे उतारने का कोई उपाय नहीं है। वह वहां अटक जाएगा।

तो आध्यात्मिक जीवन में कोई पीछे लौटना नहीं है; सदा आगे जाना है या रुक जाना है। बस रुक जाना ही पीछे लौट जाने का मतलब रखता है। तो रोक तो सकते हैं साथी, हटा नहीं सकते पीछे। हटाने का कोई उपाय नहीं है।

शक्तिपात व प्रसाद में फर्क है

प्रश्नः क्या शक्तिपात और ग्रेस में फर्क है?

बहुत फर्क है; बहुत फर्क है। शक्तिपात और प्रसाद में बहुत फर्क है। शक्तिपात जो है वह एक टेक्नीक है, और आयोजित है। उसकी आयोजना करनी पड़ेगी। हर कभी हर कहीं नहीं हो जाएगा। समझे न? साधक इस स्थिति में होना चाहिए कि उस पर हो सके, मीडियम इस स्थिति में होना चाहिए कि वह माध्यम बन सके। जब ये दोनों बातें व्यवस्थित हों, तालमेल खा जाएं, एक क्षण के बिंदु पर दोनों का मेल हो जाए, तो हो जाएगा। यह टेक्नीक की बात है। ग्रेस जो है वह अनकाल्ड फाल है; उसके लिए कभी बुलावा नहीं है, उसके लिए कभी कोई इंतजाम नहीं है। वह कभी होती है।

यानी फर्क उतना ही है जैसा कि हम बटन दबाकर बिजली जलाते हैं और आकाश की बिजली चमकती है, वैसा ही फर्क है। समझे न? यह टेक्नीक है। यह वही बिजली है जो आकाश में चमकती है, लेकिन यह टेक्नीक से बंधी हुई है। हम बटन दबाते हैं, जलती है; बुझाते हैं, बुझती है। आकाश की बिजली हमारे हाथ में नहीं है।

तो ग्रेस जो है वह आकाश की बिजली है, कभी किसी क्षण में चमकती है। और तुम भी अगर उस मौके पर उस हालत में हुए, तो घटना घट जाती है। लेकिन वह शक्तिपात नहीं है फिर। है वही घटना, लेकिन वह ग्रेस है। उसमें मीडियम भी नहीं होता। उसमें कोई मीडिएटर भी नहीं है बीच में; वह सीधी तुम पर होती है। और आकस्मिक है; और सदा सडन है; आयोजना नहीं की जा सकती। शक्तिपात तो आयोजित किया जा सकता है कि कल पांच बजे आ जाओ, इतनी तैयारी करके आना, इतनी व्यवस्था करके आ जाना, हो जाएगा। लेकिन ग्रेस के लिए पांच बजे आकर बैठने से कुछ मतलब नहीं है। हो जाए हो जाए, न हो जाए न हो जाए; उसे कोई हम अपने हाथ में नहीं ले सकते। घटना वही है, लेकिन इतना फर्क है। इतना फर्क है।

अहंशून्य स्थिति में ही शक्तिपात संभव

प्रश्नः आपने कहा था कि शक्तिपात ईगोलेस स्थिति में होता है तो आयोजना कैसे हो सकती है?

ईगोलेस स्थिति में आयोजना हो सकती है। ईगो का आयोजना से कोई संबंध नहीं है, उससे कोई संबंध नहीं है।

प्रश्नः ईगोलेस आयोजना हो सकती है?

हां, बिल्कुल हो सकती है, उससे कोई संबंध ही नहीं है। ईगो तो बात ही और है। ईगो तो बात ही और है। जैसे हमने तय किया कि पांच बजे इस-इस तैयारी में बैठेंगे हम सब। इसमें साधक की तरफ ईगोलेस होने का सवाल नहीं है, इसमें सिर्फ मीडियम जो बननेवाला है उसके ईगोलेस होने का सवाल है। और ईगोलेस मामला ऐसा नहीं है कि तुम कभी हो सकते हो और कभी न हो जाओ। हो गए तो हो गए, नहीं हुए तो नहीं हुए--ऐसा मामला नहीं है न! अगर मैं ईगोलेस हूं तो हूं, और नहीं हूं तो नहीं हूं। ऐसा नहीं है कि कल सुबह पांच बजे ईगोलेस हो जाऊंगा। मेरी बात समझ रहे हो न तुम? कैसे हो जाऊंगा? कोई उपाय नहीं है। अगर मैं अभी हूं तो पांच बजे भी रहूंगा--चाहे कोई आयोजन करूं और चाहे न करूं; चाहे तुम पांच बजे आओ तो और न आओ तो; मैं जागूं तो और सोऊं तो--अगर हूं तो हूं, नहीं हूं तो नहीं हूं।

अहंशून्यता क्रमिक नहीं होती

प्रश्नः ईगो की जो जनरल भावना है न, उससे ऐसा लगता है कि ईगोइस्ट है कि ईगोलेस है। एक क्षण लगता है कि ईगो है, दूसरे क्षण में लगता है कि ईगोलेस है।

हां-हां, ऐसा ही चल रहा है। ऐसा ही चल रहा है। असल में, हमारा तो सारा जो सोचना-विचारना है, वह डिग्रीज का होता है। वह ऐसा होता हैः अट्ठानबे डिग्री पर बुखार है तो हम कहते हैं, बिल्कुल ठीक है यह आदमी; और निन्यानबे डिग्री पर बुखार होता है तो हम कहते हैं, बुखार है। अट्ठानबे डिग्री भी बुखार है, लेकिन वह नॉर्मल बुखार है। निन्यानबे डिग्री में वह एबनॉर्मल हो जाता है। फिर अट्ठानबे हो जाता है तो हम कहते हैं, बिल्कुल ठीक है, नॉर्मल हो गया। अभी भी बुखार है, मतलब उतना बुखार है जितना सबको है। सबसे जरा इधर-उधर होता है तो गड़बड़ हो जाता है। वैसा ही हमारा ईगो को मामला है। वह हमारा बुखार है, उतनी ही डिग्री में जितना हम सबको है, तब तक हम कहते हैंः आदमी बिल्कुल विनम्र है, अच्छा आदमी है। जरा हमसे डिग्री उसकी निन्यानबे हुई और हमने कहा कि बहुत ईगोइस्ट आदमी मालूम होता है। जरा सत्तानबे हुआ कि हमने कहा कि बिल्कुल महात्मा, विनम्र हो गया है। इसके पैर छू लो।

बाकी ईगो और नो-ईगो बिल्कुल ही अलग बातें हैं; उनका कोई डिग्री से संबंध नहीं है। बुखार और बुखार का न होना, यह अट्ठानबे और निन्यानबे डिग्री का मामला नहीं है। सिर्फ मरे हुए आदमी को हम कह सकते हैं कि इसको बुखार नहीं है। क्योंकि जब तक भी गर्मी है, बुखार है ही; नॉर्मल और एबनॉर्मल का फर्क है। इसलिए तकलीफ हमें होती है। इसलिए तकलीफ हमें होती है।

और फिर ऐसा है न कि अगर किसी आदमी की ईगो हमारी ईगो को चोट पहुंचाती है तो वह ईगोइस्ट है, अगर किसी की ईगो हमारी ईगो को रस पहुंचाती है तो वह आदमी ईगोलेस है। हम नापें कैसे? पता कैसे चले? एक आदमी मेरे पास आए और वह अकड़ मेरे ऊपर दिखलाए, हम कहते हैं, ईगोइस्ट है। आए और मेरे पैर छुए, हम कहते हैं, बहुत विनम्र है। और क्या, उपाय क्या है जांच का? हमारी ईगो जांच का उपाय है; उससे हम जांचते हैं कि यह आदमी हमारी ईगो को गड़बड़ तो नहीं कर रहा है? गड़बड़ कर रहा है तो ईगोइस्ट है। और अगर फुसला रहा है और कह रहा है, आप बहुत बड़े महात्मा हैं, तो यह आदमी विनम्र है, इसमें अहंकार बिल्कुल भी नहीं है। मगर यह सब अहंकार है या नहीं, यह हमारा अहंकार ही इन सबका तौल है। इनके पीछे जो मेजरमेंट है हमारा, वह हमारा अहंकार है।

इसलिए जो नॉन-ईगो की स्थिति है उसको तो हम पहचान ही नहीं पाते। क्योंकि हम उसे कैसे पहचानें? हम डिग्री तक पहचान पाते हैं कि भई कितनी डिग्री है, इतना कहो। वे कहते हैं कि है ही नहीं, तब हमें बहुत कठिनाई हो जाती है। मगर वह जो घटना है शक्तिपात की, वह मीडियम तो ईगोलेस चाहिए ही। ईगोलेस कहना ठीक नहीं है, नो-ईगोवाला मीडियम चाहिए।

अहंशून्य व्यक्ति पर प्रसाद की सतत वर्षा

और ऐसे आदमी पर चौबीस घंटे ग्रेस बरसती रहती है, यह ख्याल में रख लेना। वह तो तुम्हारे लिए आयोजन कर देगा, लेकिन उस पर तो चौबीस घंटा अमृत बरस रहा है। इसीलिए तुम्हारे लिए भी आयोजन कर देगा कि तुम जरा एक क्षण के लिए द्वार खोलकर खड़े रह जाना। उस पर तो बरसता ही है, शायद दो-चार बूंद तुम्हारे द्वार के भीतर भी पड़ जाएं।

प्रश्नः यह जो डायरेक्ट ग्रेस मिलता है, इसका प्रभाव क्या स्थायी होता है? और क्या उपलब्धि तक ले जाता है?

डायरेक्ट ग्रेस तो मिलता ही उपलब्धि पर है न! इसके पहले तो मिलता नहीं! इसके पहले नहीं मिलता। इसके पहले नहीं मिलता। वह तो जब तुम्हारा अहंकार जाएगा तभी ग्रेस उतर पाएगी। अहंकार ही बाधा है।

प्रश्नः तो उपलब्धि की स्थिति कौन सी है?

जिसके आगे फिर उपलब्ध करने को कुछ शेष न रह जाए।

प्रश्नः ग्रेस अंतिम है?

हां, अंतिम चीज है।

कुंडलिनी है मनोगत ऊर्जा

प्रश्नः अच्छा यह कुंडलिनी साधना जो है, वह साइकिक है कि स्प्रिचुअल है?

तुम यह जानते हो कि खाना शारीरिक है, लेकिन न खाने पर आत्मा का बहुत जल्दी विलोप हो जाएगा। यद्यपि खाना शरीर को जाता है, लेकिन शरीर एक स्थिति में हो तो आत्मा उसमें बनी रहती है।

तो कुंडलिनी जो है वह मानसिक है। लेकिन कुंडलिनी एक स्थिति में हो तो आत्मा तक गति होती है, कुंडलिनी एक दूसरी स्थिति में हो तो आत्मा तक गति नहीं होती। तो साइकिक है, लेकिन स्टेप बनती है स्प्रिचुअल के लिए। स्प्रिचुअल नहीं है खुद। अगर कोई कहता हो कि कुंडलिनी स्प्रिचुअल है, तो गलत कहता है।

कोई अगर कहे कि खाना स्प्रिचुअल है, तो गलत कहता है। खाना तो फिजिकल ही है। लेकिन फिर भी आधार बनता है आध्यात्मिक के लिए। श्वास भी भौतिक है और विचार भी भौतिक है; सब भौतिक है। इनका

जो सूक्ष्मतम रूप है वह साइकिक हम उसे कह रहे हैं। वह भूत का सूक्ष्मतम रूप है। लेकिन ये सब आधार बनते हैं उस अभौतिक में छलांग लगाने के लिए। ये, जिसको कहना चाहिए, जंपिंग बोर्ड्स बनते हैं।

जैसे कोई आदमी नदी में छलांग लगा रहा है, तो किनारे पर एक बोर्ड पर खड़े होकर छलांग लगा रहा है। बोर्ड नदी नहीं है। और कोई तर्क कर सकता है कि क्यों बोर्ड पर खड़े हो? जब बोर्ड तो नदी है ही नहीं, और तुम्हें नदी में छलांग लगानी है, तो बोर्ड पर किसलिए खड़े हो? नदी में छलांग लगानी है तो नदी में खड़े हो जाओ! लेकिन नदी में कहीं कोई खड़ा हुआ है? खड़ा तो बोर्ड पर ही होना पड़ता है, छलांग नदी में लगती है। समझे न? और बोर्ड बिल्कुल अलग चीज है, वह नदी नहीं है।

तो तुम्हें जो छलांग लगानी है वह शरीर से लगानी है, मन से लगानी है। लगानी है जिसमें वह आत्मा है। वह तो जब लग जाएगी जब मिलेगी। अभी तो तुम जहां खड़े हो वहीं से तैयारी करनी पड़ेगी। तो शरीर से और मन से ही कूदना पड़ेगा। और इसलिए यहीं काम करना पड़ेगा। हां, जब छलांग लग जाएगी, तब तुम जहां पहुंचोगे, वह होगा स्प्रिचुअल, वह होगा आध्यात्मिक।

प्रश्नः आपने दो प्रकार की विधि बताई हैं। पहले आप जिस साधना की बातें करते थे उसमें आप साधक को शांत, शिथिल, मौन, सजग और साक्षी होने के लिए कहते थे। अब आप तीव्र श्वास और "मैं कौन हूं" पूछने के अंतर्गत साधक को पूरी शक्ति लगाकर प्रयत्न करने के लिए कहते हैं। पहली साधना करनेवाला साधक जब दूसरे ढंग के प्रयोग में जाता है तो थोड़ी देर के बाद उससे प्रयास करना छूट जाता है, कंट्रोल छूट जाता है। तो अच्छी व्यवस्था वह थी कि यह है?

अच्छे और बुरे का सवाल नहीं है यहां।

प्रश्नः मेरा मतलब कंट्रोल छूट जाता है। तो अच्छी व्यवस्था वह थी कि यह है?

मैं समझ गया, मैं समझ गया। अच्छे-बुरे का सवाल नहीं है। तुम्हें जिससे ज्यादा शांति और गति मिलती हो, उसकी फिकर करो; क्योंकि सबके लिए अलग-अलग होगा। सबके लिए अलग-अलग होगा। कुछ लोग हैं जो दौड़कर गिर जाएं तो ही विश्राम कर सकते हैं। कुछ लोग हैं जो कि अभी विश्राम कर सकते हैं। लेकिन बहुत कम लोग हैं। बहुत कम लोग हैं। एकदम सीधा मौन में जाना, कठिन है मामला; थोड़े से लोगों के लिए संभव है। अधिक लोगों के लिए तो पहले दौड़ जरूरी है, तनाव जरूरी है। मतलब एक ही है अंत में, प्रयोजन एक ही है।

शक्ति साधना से तनाव

प्रश्नः आपने यह भी कहा था कि यह अतियों से परिवर्तन की विधि है। तो तनाव की चरम सीमा में ले जाता हूं ताकि विश्राम की चरम सीमा उपलब्ध हो सके। तो क्या कुंडलिनी साधना तनाव की साधना है?

बिल्कुल तनाव की साधना है। बिल्कुल तनाव की साधना है। असल में, शक्ति की कोई भी साधना तनाव की ही साधना होगी। शक्ति का मतलब ही तनाव है। जहां तनाव है वहीं शक्ति पैदा होती है। जैसे हमने एटम से इतनी बड़ी शक्ति पैदा कर ली, क्योंकि हमने सूक्ष्मतम अणु को भी तनाव में डाल दिया; दो हिस्से तोड़ दिए और

दोनों को टेंशन में डाल दिया। तो शक्ति की तो समस्त साधना जो है वह तनाव की है। अगर ठीक से समझो तो तनाव ही शक्ति है; टेंशन जो है वही शक्ति है।

प्रश्नः साधना की दो पद्धतियां आप कहते हैंः पाजिटिव और निगेटिव। तो कुंडलिनी साधना निगेटिव है कि पाजिटिव?

पाजिटिव है। बिल्कुल पाजिटिव है।

प्रश्नः बहुत तनावग्रस्त होते हैं तो जल्दी शांत हो जाता है न!

हां, जल्दी।

प्रश्नः तो मैं जो बोलती थी न आपको कि बिना श्वास-प्रश्वास के भी शांत हो जाती हूं।

नहीं, तू तो डरती है। तू अपनी बात न बता। ये शांत होने से डरती है कि कहीं शांत हो गए तो फिर क्या होगा! यह डर है, इसलिए ये ऐसी तरकीबें निकालती है जिसमें जरा कम ही शांति रहे, ज्यादा शांति न हो जाए। न, तेरा मामला अलग है।

प्रश्नः बुद्ध ने चक्र और कुंडलिनी की बात क्यों नहीं की?

ये पूछते हैं कि बुद्ध ने चक्र और कुंडलिनी की बात क्यों नहीं की?

असल में, बुद्ध ने जितनी बातें की हैं, वे सब रिकार्डेड नहीं हैं। समझ रहे हो न? बड़ा प्राब्लम जो है वह यह है। और बुद्ध ने जो भी कहा है, उसमें से बहुत सा जानकर रिकार्डेड नहीं है। और बुद्ध ने जो कहा है, उनके मरने के पांच सौ वर्ष बाद रिकार्ड हुआ, उस वक्त तो रिकार्ड नहीं हुआ। पांच सौ वर्ष तक तो जिन भिक्षुओं के पास वह ज्ञान था, उन्होंने उसे रिकार्ड करने से इनकार किया। पांच सौ वर्ष बाद एक ऐसी घड़ी आ गई कि वे भिक्षु लोप होने लगे जिनको बातें पता थीं। और तब एक बड़ा संघ बुलाया गया और उसने यह तय किया कि अब तो यह मुश्किल है, अगर ये दस-पांच भिक्षु हमारे और खो गए, तो वह ज्ञान की सारी संपदा खो जाएगी। इसलिए उसे रिकार्ड कर लेना चाहिए। जब तक वह स्मरण रखा जा सकता था तब तक जिद्दपूर्वक उसे नहीं लिखा गया।

ऐसा जीसस के साथ भी हुआ, महावीर के साथ भी हुआ। और जरूरी था। उसके कारण हैं बहुत। क्योंकि ये लोग बोल रहे थे सिर्फ। इस बोलने में बहुत सी बातें थीं, जो बहुत तल के साधकों के लिए कही गई थीं। और पहले तल के साधक के लिए वे सारी बातें जरूरी रूप से सहयोगी नहीं हैं, नुकसान भी पहुंचा दें। अक्सर ऐसा होता है कि जिस सीढ़ी पर हम खड़े नहीं हैं, उसकी बातचीत हमें उस सीढ़ी पर भी ठीक से खड़ा नहीं रहने देती जहां हमें खड़े होना है, जहां हम खड़े हैं। आगे की सीढ़ियां अक्सर हमें आगे की सीढ़ियों पर जाने का ख्याल दे देती हैं, और हम पहली सीढ़ी पर खड़े ही नहीं हैं।

और भी कठिनाई यह है कि पहली सीढ़ी पर बहुत सी ऐसी बातें हैं जो दूसरी सीढ़ी पर जाकर गलत हो जाती हैं। अगर आपको दूसरी सीढ़ी की बात पहले ही पता चल जाए तो आपको पहली सीढ़ी पर ही वे गलत मालूम होने लगेंगी। तब आप पहली सीढ़ी से कभी पार न हो सकेंगे। पहली सीढ़ी पर तो उनका सही होना जरूरी है, तभी आप पहली सीढ़ी पार कर सकेंगे।

हम छोटे बच्चे को पढ़ाते हैंः ग गणेश का। अब इसका कोई मतलब नहीं है। ग गधे का भी होता है। और गधा और गणेश में कोई संबंध नहीं है; कोई भाईचारा नहीं है; कोई जोड़ नहीं है, कुछ भी नहीं है। ग का कोई संबंध ही नहीं है किसी से। लेकिन यह पहली क्लास के लड़के को बताना खतरनाक होगा। जब वह पढ़ रहा है ग गणेश का, तब उससे उसका बाप कहे, नालायक, ग से गणेश का क्या संबंध? कोई संबंध नहीं है। ग तो और हजार चीजों का भी है, गणेश से क्या लेना-देना है? तो यह लड़का ग को ही नहीं पकड़ पाएगा।

अभी इसको ग गणेश का, इतना ही पकड़ लेना उचित है। अभी और हजार चीजें भी ग में सम्मिलित हैं, यह ज्ञान रहने ही दो। अभी तो इसको गणेश भी ग में आ जाए तो काफी है। कल और हजार चीजें भी आ जाएंगी। जब हजार आएंगी तब यह खुद भी जान लेगा कि ठीक है, ग की गणेश से कोई अनिवार्यता नहीं थी; वह भी एक संबंध था, और भी बहुत संबंध हैं। और फिर जब यह ग पढ़ेगा हमेशा तो ग गणेश का, ऐसा नहीं पढ़ेगा; वह गणेश छूट जाएंगे, ग रह जाएगा।

गुह्य साधनों की गोपनीयता

तो हजार बातें हैं, हजार तल की हैं। और फिर कुछ बातें तो बिल्कुल निजी और सीक्रेट हैं। जैसे मैं भी जिस ध्यान की बात कर रहा हूं, यह बिल्कुल ऐसी बात है जो सामूहिक की जा सकती है। बहुत बातें हैं जो मैं समूह में नहीं कर सकता हूं, नहीं करूंगा। वह तो तभी करूंगा जब मुझे समूह में से कुछ लोग मिल जाएंगे जिनको कि वे बातें कही जा सकती हैं।

तो बुद्ध ने तो कहा है बहुत, वह सब रिकार्डेड नहीं है। मैं भी जो कहूंगा वह सब रिकार्डेड नहीं हो सकता। वह सब रिकार्डेड नहीं हो सकता, क्योंकि मैं वही कहूंगा जो रिकार्ड हो सकता है। सामने तो वही कहूंगा। जो रिकार्ड नहीं हो सकता, वह सामने नहीं कहूंगा; उसे तो स्मृति में ही रखना पड़ेगा।

प्रश्नः तो क्या कुंडलिनी और चक्रों की बात को रिकार्ड नहीं करना चाहिए? क्या उन्हें गुप्त रखना चाहिए?

नहीं, नहीं, नहीं। न, इसमें और बहुत सी बातें हैं न! जो मैंने कहा है, इसमें तो कोई कठिनाई नहीं है। इसमें कोई कठिनाई नहीं है। पर इसमें और बहुत बातें हैं।

लेकिन कठिनाई यह है न कि बुद्ध और आज में पच्चीस सौ साल का फर्क पड़ा है; मनुष्य की चेतना में बहुत फर्क पड़ा है। जिस चीज को बुद्ध समझते थे कि न बताया जाए; मैं समझता हूं, बताया जा सकता है। पच्चीस सौ साल में बहुत बुनियादी फर्क पड़ गए हैं। बुद्ध ने जितनी चीजों को कहा कि नहीं बताया जाए, उनको मैं कहता हूं कि उनमें से बहुत कुछ बताया जा सकता है आज। और जो मैं कहता हूं कि नहीं बताया जाए, पच्चीस सौ साल बाद बताया जा सकेगा। बताया जा सकना चाहिए, विकास अगर होता है तो। समझ रहे हैं न मेरी बात को?

तो बुद्ध भी लौट आएं तो बहुत सी बातें... बुद्ध तो बहुत ही समझ का काम किए थे। उन्होंने ग्यारह तो प्रश्न तय कर रखे थे, कोई पूछ न सकेगा। क्योंकि पूछो तो उनको कुछ न कुछ तो उत्तर देना पड़े। गलत दें उत्तर

तो उचित नहीं मालूम होता, ठीक उत्तर दें तो देना नहीं चाहिए। तो ग्यारह प्रश्न उन्होंने अव्याख्य करके तय कर रखे थे। वह जाहिर घोषणा थी सारे गांव में कि कोई बुद्ध से ये ग्यारह प्रश्नों में से न पूछे; क्योंकि बुद्ध को अड़चन में नहीं डालना है; क्योंकि वे इनका उत्तर नहीं देंगे। न देने का कारण हैः अगर दें तो नुकसान होगा और न दें तो उन्हें ऐसा लगता है कि मैं सत्य को छिपाता हूं। यह पूछना ही मत। इसलिए गांव-गांव में भिक्षु ढिंढोरा पीट देते थे कि बुद्ध आते हैं, ये ग्यारह प्रश्न मत पूछना। उससे उनको बहुत परेशानी होती है। तो वे अव्याख्य मान लिए गए, वे प्रश्न नहीं पूछे जाते थे। वे नहीं पूछे जाते थे।

कभी कोई विरोधी आ जाता और पूछ लेता था, तो बुद्ध उससे कहते कि रुको, कुछ दिन ठहरो। कुछ दिन ठहरो, कुछ दिन साधना करो; जब इस योग्य हो जाओगे, मैं उत्तर दूंगा। लेकिन कभी उनके उत्तर दिए नहीं।

इसलिए उन पर बड़ा आरोप तो यही था--जैनों का, हिंदुओं का यही आरोप था कि उनको पता नहीं है। उन पर बड़ा आरोप यही था कि ये ग्यारह प्रश्नों के उत्तर नहीं देते, हमारे शास्त्रों में तो हम सब उत्तर देते हैं। इनको मालूम होता है पता नहीं है। लेकिन उनके शास्त्रों में जो लिखा हुआ है, उतना उत्तर तो वे भी दे सकते थे! असल में, असली उत्तर शास्त्र में भी नहीं लिखा हुआ है। और असली दिया नहीं जा सकता था।

तो इसलिए, इसलिए नहीं यह सवाल है, यह सवाल नहीं है कि क्या हो जाए।

आठवां प्रवचन

यात्राः दृश्य से अदृश्य की ओर

प्रश्नः आपने नारगोल शिविर में कहा है कि कुंडलिनी साधना शरीर की तैयारी है। कृपया इसका अर्थ स्पष्ट समझाएं।

पहली बात तो यहः शरीर और आत्मा बहुत गहरे में दो नहीं हैं; उनका भेद भी बहुत ऊपर है। और जिस दिन दिखाई पड़ता है पूरा सत्य, उस दिन ऐसा दिखाई नहीं पड़ता कि शरीर और आत्मा अलग-अलग हैं, उस दिन ऐसा ही दिखाई पड़ता है कि शरीर आत्मा का वह हिस्सा है जो इंद्रियों की पकड़ में आ जाता है और आत्मा शरीर का वह हिस्सा है जो इंद्रियों की पकड़ के बाहर रह जाता है।

शरीर और आत्मा--एक ही सत्य के दो छोर

शरीर का ही अदृश्य छोर आत्मा है और आत्मा का ही दृश्य छोर शरीर है, यह तो बहुत आखिरी अनुभव में ज्ञात होगा। अब यह बड़े मजे की बात हैः साधारणतः हम सब यही मानकर चलते हैं कि शरीर और आत्मा एक ही हैं। लेकिन यह भ्रांति है; हमें आत्मा का कोई पता ही नहीं है; हम शरीर को ही आत्मा मानकर चलते हैं। लेकिन इस भ्रांति के पीछे भी वही सत्य काम कर रहा है। इस भ्रांति के पीछे भी कहीं अदृश्य हमारे प्राणों के कोने में वही प्रतीति है कि एक है।

उस एक की प्रतीति ने दो तरह की भूलें पैदा की हैं। एक अध्यात्मवादी है, वह कहता हैः शरीर है ही नहीं, आत्मा ही है। एक भौतिकवादी है, चार्वाक है, एपीकुरस है, वह कहता है कि शरीर ही है, आत्मा है ही नहीं। यह उसी गहरी प्रतीति की भ्रांतियां हैं; और प्रत्येक साधारणजन भी, जिसको हम अज्ञानी कहते हैं, वह भी यह एहसास करता है कि शरीर ही मैं हूं। लेकिन जैसे ही भीतर की यात्रा शुरू होगी, पहले तो यह टूटेगी बात और पता चलेगा कि शरीर अलग है और आत्मा अलग है। क्योंकि जैसे ही पता चलेगा आत्मा है, वैसे ही पता चलेगा कि शरीर अलग है और आत्मा अलग है। लेकिन यह मध्य की बात है। और गहरे जब उतरोगे, और गहरे जब उतरोगे, और चरम अनुभूति जब होगी, तब पता चलेगा कि कहां! दूसरा तो कोई है नहीं! फिर आत्मा और शरीर दो नहीं हैं; फिर एक ही है; उसके ही दो रूप हैं।

जैसे मैं एक हूं और मेरा बायां हाथ है और दायां हाथ है। बाहर से जो देखने आएगा, अगर वह कहे कि बायां और दायां हाथ एक ही हैं, तो गलत कहता है; क्योंकि बायां बिल्कुल अलग है, दायां बिल्कुल अलग है। जब मेरे करीब आकर समझेगा तो पाएगाः बायां अलग है, दायां अलग है; दायां दुखता है, बायां नहीं दुखता; दायां कट जाए तो बायां बच जाता है; एक तो नहीं हैं। लेकिन मेरे भीतर और प्रवेश करे तो पाएगा कि मैं तो एक ही हूं जिसका बायां है और जिसका दायां है। और जब बायां टूटता है तब भी मैं ही दुखता हूं, और जब दायां टूटता है तब भी मैं ही दुखता हूं; और जब बायां उठता है तब मैं ही उठता हूं, और जब दायां उठता है तब मैं ही उठता हूं।

तो बहुत अंतिम अनुभूति में तो शरीर और आत्मा दो नहीं हैं, वे एक ही सत्य के दो पहलू हैं, दो हाथ हैं। इसका यह मतलब है इसलिए मैंने यह बात कही कि इससे यह तुम्हें समझ में आ सके कि तब यात्रा कहीं से भी शुरू हो सकती है।

अगर कोई शरीर से यात्रा शुरू करे, और गहरा, और गहरा, और गहरा उतरता चला जाए, तो आत्मा पर पहुंच जाएगा। अगर कोई मेरा बायां हाथ पकड़ना शुरू करे, और पकड़ता जाए, पकड़ता जाए, और बढ़ता जाए, बढ़ता जाए, तो आज नहीं कल मेरा दायां हाथ उसकी पकड़ में आ जाएगा। या कोई चाहे तो दूसरी तरफ से भी यात्रा शुरू कर सकता है कि सीधी आत्मा से यात्रा शुरू करे, तो शरीर पकड़ में आ जाएगा।

लेकिन आत्मा से यात्रा शुरू करनी बहुत कठिन है। कठिन इसलिए है कि उसका हमें पता ही नहीं है। हम खड़े हैं शरीर पर, तो हमारी यात्रा तो शरीर से शुरू होगी। ऐसी विधियां भी हैं जिनमें यात्रा सीधी आत्मा से ही शुरू होती है। लेकिन साधारणतः वैसी विधियां बहुत थोड़े से लोगों के काम की हैं। कभी लाख में एक आदमी मिलेगा जो उस यात्रा को कर सके। अधिकतम लोगों को तो यात्रा शरीर से ही शुरू करनी पड़ेगी, क्योंकि वहां हम खड़े हैं। जहां हम खड़े हैं, वहीं से यात्रा शुरू होगी। और शरीर की जो यात्रा है उसकी तैयारी कुंडलिनी है। शरीर के भीतर में जो गहरे से गहरे अनुभव हैं, उन गहरे अनुभवों का जो मूल केंद्र है वह कुंडलिनी है। असल में, जैसा हम शरीर को जानते हैं और जैसा शरीर-शास्त्री जानता है, शरीर उतना ही नहीं है, शरीर उससे बहुत ज्यादा है।

यह पंखा चल रहा है। इस पंखे को हम उतार लें और तोड़कर सारा जांच कर डालें, तो भी बिजली हमें कहीं भी नहीं मिलेगी। और यह हो सकता है कि एक बहुत बुद्धिमान आदमी भी यह कहे कि पंखे में बिजली जैसी कोई भी चीज नहीं है। एक-एक अंग को काट डाले, कभी बिजली नहीं मिले। फिर भी पंखा बिजली से चल रहा था। और पंखा उसी क्षण बंद हो जाएगा जिस क्षण बिजली की धारा बंद होगी।

तो शरीर-शास्त्री ने एक तरह शरीर का अध्ययन किया है, काट-काट कर, तो उसे कुंडलिनी कहीं भी नहीं मिलती। मिलेगी भी नहीं। फिर भी कुंडलिनी की ही विद्युत शक्ति से सारा शरीर चल रहा है। यह जो कुंडलिनी की विद्युत शक्ति है, इसको बाहर से शरीर के विश्लेषण से कभी नहीं जाना जा सकता। क्योंकि विश्लेषण में वह तत्काल छिन्न-भिन्न होकर विदा हो जाती है, विलीन हो जाती है। उसे तो जानना हो तो भीतरी अनुभव से जाना जा सकता है। यानी शरीर को भी जानने के दो ढंग हैं। बाहर से शरीर को जानना, जैसा कि एक फिजियोलाजिस्ट, शरीर-शास्त्री, डाक्टर टेबल पर आदमी के शरीर को रखकर काट रहा है, पीट रहा है, जांच रहा है। और एक शरीर को भीतर से जानना है। जो व्यक्ति शरीर के भीतर बैठा है, वह अपने शरीर को भीतर से जान रहा है।

तो स्वयं के शरीर को जब कोई भीतर से जानना शुरू करता है... और यह ख्याल रखना कि हम अपने शरीर को भी बाहर से ही जानते हैं--अपने शरीर को भी! अगर मुझे मेरे बाएं हाथ का पता है, तो वह भी मेरी आंखें जो मेरे हाथ को देख रही हैं उसका पता है। यह बाएं हाथ का जो अनुभव है, यह शरीर-शास्त्री का अनुभव है। लेकिन आंख बंद करके इस बाएं हाथ की आंतरिक जो प्रतीति है, भीतर से जो इसका अनुभव है, वह मेरा अनुभव है।

तो अपने ही शरीर को भीतर से जानने अगर कोई जाएगा, तो बहुत शीघ्र वह उस कुंड पर पहुंच जाएगा जहां से शरीर की सारी शक्तियां उठ रही हैं। उस कुंड में सोई हुई शक्ति का नाम ही कुंडलिनी है। और तब वह अनुभव करेगा कि सब कुछ वहीं से फैल रहा है पूरे शरीर में। जैसे कि एक दीया जल रहा हो, पूरे कमरे में

प्रकाश हो, लेकिन हम खोजबीन करते, करते, करते दीये पर पहुंच जाएं और पाएं कि इस ज्योति से ही सारी प्रकाश की किरणें फैल रही हैं। वे दूर तक फैल गई हैं, लेकिन वे जा रही हैं यहां से।

जीवन-ऊर्जा का कुंड

तो कुंड से मतलब है शरीर के भीतर उस बिंदु की खोज, जहां से जीवन की ऊर्जा पूरे शरीर में फैल रही है। निश्चित ही, उसका कोई सेंटर होगा। असल में, ऐसी कोई ऊर्जा नहीं होती जिसका कोई केंद्र न हो। चाहे दस करोड़ मील दूर हो सूरज, लेकिन किरण है हमारे हाथ में तो हम कह सकते हैं कि कहीं केंद्र होगा, जहां से वह यात्रा कर रही है और जहां से वह चल रही है। असल में, कोई भी शक्ति केंद्र-शून्य नहीं हो सकती। शक्ति होगी तो केंद्र होगा। ऐसे ही, जैसे परिधि होगी तो केंद्र होगा; कोई परिधि बिना केंद्र के नहीं हो सकती।

तो तुम्हारा शरीर एक शक्ति का पुंज है, इसे तो सिद्ध करने की कोई जरूरत नहीं। वह शक्ति का पुंज है--उठ रहा है, बैठ रहा है, चल रहा है, सो रहा है। फिर ऐसा भी नहीं है कि उसकी शक्ति हमेशा एक सी ही काम करती हो! कभी ज्यादा भी शक्ति उसमें होती है, कभी कम भी होती है। जब तुम क्रोध में होते हो तो इतना बड़ा पत्थर उठाकर फेंक देते हो, जो तुम क्रोध में नहीं हो तो हिला भी न सकोगे। जब तुम भय में होते हो तो इतनी तेजी से दौड़ लेते हो, जितना कि तुम किसी ओलंपिक के खेल में भी दौड़ रहे हो तो भी नहीं दौड़ सकोगे।

तो ऐसा भी नहीं है कि शक्ति तुम्हारे भीतर एक सी है; उसमें तारतम्यताएं हैं--वह कभी ज्यादा हो रही है, कभी कम हो रही है। इससे यह भी साफ होता है कि तुम्हारे पास कुछ रिजर्वायर भी है, जिसमें से कभी शक्ति आ जाती है, कभी नहीं आती; जरूरत होती है तो आ जाती है, नहीं जरूरत होती तो छिपी रहती है। तुम्हारे पास एक केंद्र है, जिससे शक्ति तुम्हें मिलती है--सामान्यतया भी, असामान्यतया भी; रोजमर्रा के काम के लिए भी तुम्हें शक्ति मिलती है और असाधारण काम के लिए भी शक्ति मिलती है। फिर भी उस केंद्र को कभी तुम रिक्त नहीं कर पाते हो। वह केंद्र कभी रिक्त नहीं होता। और कभी तुम उस केंद्र का पूरा उपयोग भी नहीं कर पाते हो।

यानी इस संबंध में जिन्होंने खोज की है उनका ख्याल है कि पंद्रह प्रतिशत से ज्यादा अपनी ऊर्जा का असाधारण से असाधारण आदमी भी उपयोग नहीं करता है। यानी हमारा महापुरुष भी जिसको हम कहते हैं, वह भी पंद्रह प्रतिशत से ऊपर नहीं जाता है। और जिसको हम साधारणजन कहते हैं वह तो दो-ढाई प्रतिशत से काम चलाता है। उसकी अट्ठानबे प्रतिशत शक्ति यों ही पड़ी-पड़ी विदा हो जाती है। और इसलिए बड़े आदमी में और छोटे आदमी में कोई पोटेंशियल भेद नहीं होता; बीज शक्ति का कोई भेद नहीं होता; उपयोग का ही भेद होता है। महान से महान प्रतिभा का व्यक्ति भी जिस शक्ति का उपयोग कर रहा है, वह साधारण से साधारण बुद्धि के आदमी के पास भी है--बस अनुपयोग में है; उसे कभी पुकारा नहीं गया; उसे कभी चुनौती नहीं दी गई; उसे कभी जगाया नहीं गया; वह पड़ी रह गई है; और वह राजी हो गया है जितना है उससे ही; और उसको अपना उसने मैक्जिमम समझ लिया है जो उसका मिनिमम है।

हमारी जो न्यूनतम सीमा रेखा है उसको हम अपनी परम सीमा रेखा मानकर जी रहे हैं। और इसलिए कई क्षणों में, जब कि संकट का क्षण हो, साधारण से साधारण आदमी भी असाधारण क्षमता प्रकट कर पाता है। तो कई बार क्राइसिस और संकट में अचानक हमें ही पता चलता है कि हमारे भीतर क्या था।

एक केंद्र है, जिस पर यह सारी शक्ति ठहरी हुई है, छिपी हुई है, सोई हुई है--कहना चाहिए एक बीज की तरह, जिसमें सब कुछ अभी बंद है; मेनिफेस्ट हो सकती है, प्रकट हो सकती है। इसको कुंड...

अचेतन में सोई शक्ति

कुंड शब्द बहुत महत्वपूर्ण है; उसके कई अर्थ हैं। उसके कई अर्थ हैं। पहला तो अर्थ यह है कि जहां जरा सी लहर भी नहीं उठ रही; क्योंकि जरा सी भी लहर उठे तो सक्रिय हो गई शक्ति। कुंड का मतलब हैः जहां जरा सी भी लहर नहीं उठ रही--सब सोया हुआ, जरा सा कंपन नहीं, सब प्रसुप्त है।

दूसरा अर्थ यह है कि प्रसुप्त तो है, लेकिन किसी भी क्षण सक्रिय हो सकता है; मृत नहीं है। सूखा नहीं है कुंड, भरा है। किसी भी क्षण सक्रिय हो सकता है, लेकिन सब सोया हुआ है।

और इसलिए हो सकता है कि हमें पता भी न चले कि हमारे भीतर क्या सोया हुआ था। क्योंकि हमें उतना ही पता चलेगा जितना हम जगाएंगे। इसे समझ लेना! क्योंकि जगाने के पहले हमें पता ही नहीं चल सकता कि हमारे भीतर क्या सोया हुआ है। उतना ही पता चलेगा जितना जगेगा। जितना जगेगा उतना ही पता चलेगा। यानी तुम्हारे भीतर जितनी शक्ति सक्रिय होगी उतनी ही तुम्हारे चेतन में आएगी। और जो निष्क्रिय शक्ति है वह तुम्हारे अचेतन और अनकांशस में सोई रहेगी।

इसलिए महान से महान व्यक्ति को भी, जब तक वह महान हो नहीं जाता, पता नहीं चलता। न महावीर को पता है, न बुद्ध को पता है, न जीसस को, न कृष्ण को; वे जिस दिन हो जाते हैं उसी दिन पता चलता है। और इसलिए अनायास जिस दिन यह घटना घटती है उनके भीतर, उस दिन उनको अनुकंपा मालूम पड़ती है कि पता नहीं कहां से यह दान मिला! पता नहीं कहां से यह आया! कौन दे गया!

तो जो भी निकटतम होता है--अगर गुरु हो, तो वे सोचेंगे कि गुरु से मिल गया; अगर गुरु न हो, मूर्ति हो भगवान की, तो वे सोचेंगे उससे मिल गया। जो भी पूर्वगामी होगा। आया उनके ही भीतर से है सदा--तीर्थंकर होगा, आसमान में बैठा हुआ भगवान होगा--कुछ भी होगा; जो पूर्वगामी होगा, उसे वे कारण समझ लेंगे।

असल में, हम तो उसी को कारण समझ लेते हैं जो पहले गया।

अभी मैं एक कहानी पढ़ रहा था कि दो किसान पहली दफा ट्रेन में सवार हुए। उन दोनों का जन्मदिन था और पहाड़ी गांव में वे रहते थे। और दोनों का एक ही जन्मदिन था, और गांव के लोगों ने उनको कुछ भेंट करना चाही, नई-नई ट्रेन चली थी, तो उन्होंने कहा कि हम तुम्हें टिकट भेंट करते हैं, तुम ट्रेन में घूम आओ दोनों। और इससे बढ़िया क्या हो सकता था उनको!

तो वे दोनों ट्रेन में गए। अब वे हर चीज के लिए उत्सुक थे कि क्या हो रहा है, क्या नहीं हो रहा है। तो कोई शर्बत की बोतल बेचता हुआ आदमी आया, तो उन्होंने सोचा कि हमें भी चखनी चाहिए। तो उन्होंने कहा, एक बोतल ले लें और आधी-आधी चख लें। और फिर अच्छी लगे तो दूसरी भी ले सकते हैं। तो पहले आदमी ने आधी बोतल चखी, जब वह आधी बोतल चख रहा था तभी एक टनल में, एक बोगदे में गाड़ी प्रवेश कर गई। दूसरे आदमी ने उसके हाथ से बोतल छीनी कि भई, तुम पूरी मत पी जाना, आधी मुझे भी दो। उसने कहा, छूना ही मत! आई हैव बीन स्ट्रक ब्लाइंड! इसको तुम छूना ही मत; क्योंकि इसने मुझे अंधा कर दिया है। टनल में गाड़ी चली गई थी। जो पूर्वगामी था, तो उसने उस बोतल को पीया था, तो उसने उसको कहा, छूना ही मत; भूल के मत छूना, मैं अंधा हो गया हूं।

स्वाभाविक है, जो पूर्वगामी है वह हमें कारण मालूम पड़ता है। लेकिन शक्ति जहां से आ रही है, उसका हमें पता ही नहीं; और जब तक न आ जाए तब तक पता नहीं। और भी आ सकती है वहां से, उसका भी हमें पता नहीं; और कितनी आ सकती है, इसका भी हमें पता नहीं।

कुंड में उठी एक लहर

यह जो सोया हुआ कुंड है, अचेतन, इसमें से जितनी शक्ति जग जाती है, वह कुंडलिनी है। कुंड तो अचेतन है, कुंडलिनी चेतन है। कुंड तो सोई हुई शक्ति का नाम है, कुंडलिनी जागी हुई शक्ति का नाम है। उसमें से जितना हिस्सा जागकर ऊपर आ गया, उस कुंड से जितना बाहर आ गया, उतनी कुंडलिनी है। कुंडलिनी पूरा कुंड नहीं है, कुंडलिनी उसमें से बहुत छोटी सी एक लहर है जो उठ गई है। इसकी दोहरी खोज है इस यात्रा में। तुम्हारे भीतर जो कुंडलिनी जगी है वह तो सिर्फ खबर है तुम्हारे भीतर एक स्रोत की, जहां और भी बहुत कुछ सोया होगा। जब एक किरण आई है, तो अनंत किरणों की वहां संभावना है।

तो एक रास्ता तो कुंडलिनी को जगाने का है, जिसमें से तुम्हारी शक्ति... शरीर की शक्ति का तुम्हें पूरा बोध हो सकेगा। और इस शक्ति को जगाकर तुम शरीर के उन बिंदुओं पर पहुंच जाओगे, जहां से शरीर के अदृश्य रूपों में--आत्मा में--प्रवेश आसान है; उन द्वारों पर पहुंच जाओगे इस शक्ति को जगाकर, जहां से अदृश्य द्वार पर तुम जा सकते हो।

और इसको भी समझ लेना जरूरी है, क्योंकि हम जो कुछ भी कर रहे हैं, वह हमारी शक्ति किन्हीं द्वारों के द्वारा कर रही है। अगर तुम्हारे कान खराब हो जाएं, तो शक्ति वहां तक आकर लौट जाएगी, लेकिन तुम सुन न सकोगे। फिर धीरे-धीरे शक्ति वहां आनी बंद हो जाएगी; क्योंकि शक्ति वहीं आती है जहां उसको सक्रिय होने का कोई मौका हो। वह वहां नहीं आएगी। इससे उलटा भी हो सकता है। इससे उलटा भी हो सकता है कि कोई आदमी बहरा है, और अगर वह अपनी अंगुली से बहुत ज्यादा संकल्प करे सुनने का, तो अंगुली भी सुन सकती है। ऐसे लोग हैं जमीन पर आज भी जो शरीर के दूसरे हिस्सों से सुनने लगे हैं, ऐसे लोग भी हैं जो शरीर के दूसरे हिस्सों से देखने लगे हैं।

असल में, जिसको तुम आंख कहते हो, वह है क्या? तुम्हारी चमड़ी का ही हिस्सा है। लेकिन अनंत काल से मनुष्य उस हिस्से से देखता रहा है, इतना ही। लेकिन पहले दिन जिस दिन मनुष्य के पहले प्राणी ने उस अंग से देखा होगा, वह बिल्कुल ही संयोग की बात थी; वह कहीं और से भी देख सकता था। दूसरे प्राणियों ने और हिस्सों से देखा है। तो दूसरी तरफ उनकी आंखें आ गई हैं। ऐसे भी पशु-पक्षी हैं, कीड़े-मकोड़े हैं, जिनके पास असली आंख भी है और फाल्स आंख भी है। असली आंख, जिससे वे देखते हैं; और झूठी आंख, जिससे वे दूसरों को धोखा देते हैं, कि अगर कोई हमला करे तो झूठी आंख पर हमला करे, असली आंख पर हमला न करे। साधारण सी मक्खी तुम्हारे घर में जो है, उसकी हजार आंख हैं; उसकी एक आंख हजार आंखों का जोड़ है। उसकी देखने की क्षमता बहुत ज्यादा है उसके पास। मछलियां हैं जो पूंछ से देखती हैं, क्योंकि उनको पीछे से दुश्मन का डर होता है।

अगर हम सारी दुनिया के प्राणियों की आंखों का अध्ययन करें तो हमको पता चलेगा कि आंख का कोई इसी जगह होना कोई मतलब नहीं है। कान का इसी जगह होना कोई मतलब नहीं है। ये कहीं भी हो सकते हैं। इस जगह हैं, क्योंकि अनंत बार मनुष्य-जाति ने वहीं-वहीं उन्हें पुनरुक्त किया है, वे वहां स्थिर हो गए हैं। और हमारे भीतर उनकी जो स्मृति है, वह गहरी हो गई है हमारी चेतना में, इसलिए वहां पुनरुक्त हो जाते हैं।

यहां जो-जो अंग हमारे पास हैं, उन अंगों में से एक अंग भी खो जाए, तो उस दुनिया का दरवाजा बंद हो जाएगा। जैसे आंख खो जाए, तो फिर हमें प्रकाश का कोई अनुभव न हो सकेगा। फिर कितने ही अच्छे कान हों हमारे पास, और कितने ही अच्छे हाथ हों, प्रकाश का अनुभव नहीं हो सकेगा।

नये द्वारों पर दस्तक

तो जब कुंडलिनी तुम्हारी जागनी शुरू होती है तो वह कुछ ऐसे नये द्वारों पर भी चोट करती है जो सामान्य नहीं हैं; जिनसे तुम्हें कुछ और चीजों का पता चलना शुरू होता है--जो कि इन आंखों से पता नहीं चलता था; इन हाथों से पता नहीं चलता था। अगर ठीक से कहें तो ऐसा कह सकते हैं कि तुम्हारी अंतर-इंद्रियों पर चोट होनी शुरू हो जाती है। अभी भी तुम्हारी कुंडलिनी की शक्ति ही इन आंखों को और कानों को चला रही है, लेकिन ये बहिर-इंद्रियां हैं। और बहुत छोटी सी मात्रा कुंडलिनी की इनको चला लेती है। अगर तुम उस मात्रा में थोड़ी सी भी बढ़ती कर दो, तो तुम्हारे पास अतिरिक्त शक्ति होगी जो नये द्वारों पर चोट कर सके।

जैसे कि हम यहां से पानी बहा दें। अगर पानी की एक छोटी सी मात्रा हो, तो पानी की एक लीक बन जाएगी और फिर पानी उसी में से बहता हुआ चला जाएगा। लेकिन पानी की मात्रा एकदम से बढ़ जाए तो तत्काल नई धाराएं शुरू हो जाएंगी; क्योंकि उतने पानी को पुरानी धारा न ले जा सकेगी।

तो कुंडलिनी को जगाने का जो गहरा शारीरिक अर्थ है, वह यह है कि इतनी ऊर्जा तुम्हारे पास हो कि तुम्हारे पुराने द्वार उसको बहाने में समर्थ न रह जाएं। तब अनिवार्यरूपेण उस ऊर्जा को नये द्वारों पर चोट करनी पड़ेगी और तुम्हारी नई इंद्रियां जगनी शुरू हो जाएंगी। उन इंद्रियों में बहुत तरह की इंद्रियां हैं--उनसे टेलीपैथी होगी, क्लेअरवायन्स होगा। तुम्हें कुछ चीजें दिखाई पड़ने लगेंगी, कुछ सुनाई पड़ने लगेंगी, जो कि कान की नहीं हैं, आंख की नहीं हैं। तुम कुछ चीजें अनुभव करने लगोगे जिनमें तुम्हारी किसी इंद्रिय का कोई योगदान नहीं है। तुम्हारे भीतर नई इंद्रियां सक्रिय हो जाएंगी। और इन्हीं इंद्रियों की सक्रियता का जो गहरे से गहरा फल होगा, वह तुम्हारे शरीर के भीतर जो अदृश्य लोक है--जिसको आत्मा हम कह रहे हैं--तुम्हारे शरीर का जो सूक्ष्मतम अदृश्य छोर है, उसकी प्रतीति उसे पकड़नी शुरू हो जाएगी। तो यह कुंडलिनी के जागने से तुम्हारे भीतर संभावनाएं बढ़ेंगी। शरीर से काम शुरू होगा।

चेतना को कुंड में डुबोने का अनूठा प्रयोग

दूसरी बात मैंने छोड़ दी। यह साधारणतः प्रयोग हुआ है--कुंडलिनी को जगाने का। पर फिर भी कुंडलिनी पूरा कुंड नहीं है। एक दूसरा प्रयोग भी है जिस पर मैं फिर कभी तुमसे उसकी अलग ही पूरी बात करनी पड़े। बहुत थोड़े से लोगों ने पृथ्वी पर उस पर काम किया है। वह कुंडलिनी जगाने का नहीं है, बल्कि कुंड में डूब जाने का है। उसमें से कोई एक छोटी-मोटी शक्ति को उठाकर काम कर लेना नहीं, बल्कि समग्र चेतना को अपने उस कुंड में डुबा देना। तब कोई इंद्रिय नहीं जागेगी नई, कोई अतींद्रिय अनुभव नहीं होंगे, और आत्मा का अनुभव एकदम खो जाएगा, और सीधा परमात्मा का अनुभव होगा।

कुंडलिनी की शक्ति जगाकर जो अनुभव होंगे, वह तुम्हें पहले आत्मा का अनुभव होगा; और उसके साथ एक प्रतीति होगी कि दूसरे की आत्मा अलग है, मेरी आत्मा अलग है। जिन लोगों ने कुंडलिनी की शक्ति जगाकर अनुभव किए हैं, वे अनेक-आत्मवादी हैं; वे कहेंगे कि अनेक आत्माएं हैं, हर एक के भीतर अलग आत्मा है। लेकिन जिन लोगों ने कुंड में डुबकी लगाई है, वे कहेंगेः आत्मा है ही नहीं, परमात्मा ही है; अनेक नहीं हैं, एक ही है। क्योंकि उस कुंड में डुबकी लगाते से ही तुम अपने ही कुंड में डुबकी नहीं लगाते--तुम, सबका जो सम्मिलित कुंड है, उसमें प्रवेश कर जाते हो तत्काल।

तुम्हारा कुंड और मेरा कुंड और उनका कुंड अलग-अलग नहीं हैं। इसीलिए तो कुंड अनंत शक्तिवान है। तुम उसमें से कितना ही उठाओ, तो भी कुछ नहीं उठता। तुम उसमें से कितनी बालटी पानी भर लाए हो अपने घर के काम के लिए, उससे कुछ वहां फर्क नहीं पड़ता। लेकिन तुम अपना मटका भर लाए हो, मैं अपना मटका भर लाया हूं; मेरे मटके का पानी अलग है, तुम्हारे मटके का पानी अलग है। हम सागर से कुछ ले आए हैं। लेकिन एक आदमी सागर में डूब गया! तब वह कहता है कि मटके-वटके की कोई बात नहीं है, और किसी का पानी अलग नहीं है, सागर एक है; वह जिसे तुम घर ले गए हो, वह भी इसी का हिस्सा है; और कुछ दूर नहीं हो गया है, और तुम दूर रख न पाओगे, वह लौट आएगा। अभी धूप पड़ेगी और भाप बनेगी और बादल बनेंगे, वह सब लौट आएगा। वह कहीं दूर नहीं गया है, वह दूर जा नहीं सकता, वह सब यहीं लौट आएगा।

तो जिन लोगों ने कुंडलिनी को जगाने के प्रयोग किए, उन लोगों को अतींद्रिय अनुभव हुए। जो कि साइकिक, जो कि मनस की बड़ी अदभुत अनुभूतियां हैं। और उन्हें आत्म-अनुभव हुआ। जो कि परमात्मा का सिर्फ एक अंश है; जहां से तुम परमात्मा को पकड़ रहे हो।

जैसे एक सागर के किनारे से मैं सागर को छू रहा हूं। मैं उसी सागर को छू रहा हूं जो कि करोड़ों मील दूर तुम भी छू रहे होओगे। लेकिन मैं कैसे मानूं कि तुम भी उसी सागर को छू रहे हो? तुम अपने किनारे छू रहे हो, मैं अपने किनारे छू रहा हूं। तो मेरा सागर अलग होगा। मेरा सागर हिंद महासागर होगा, तुम्हारा सागर अटलांटिक महासागर होगा, उनका सागर पैसिफिक महासागर होगा। महासागर नहीं छुएंगे हम, अपने-अपने सागर भी हो जाएंगे, अपना-अपना तट भी हो जाएगा, हम कहीं विभाजन रेखा खींच लेंगे--जो मैंने छुआ।

तो आत्मा जो है वह परमात्मा को एक कोने से छूना है। और कोने से छूने का रास्ता है कि एक छोटी सी शक्ति जग जाए तो तुम छू लोगे। और इसलिए इस मार्ग से चलने पर एक दिन आत्मा को भी खोना पड़ता है, नहीं तो रुकावट हो जाती है; वह पूरा नहीं है मामला। फिर आत्मा को भी खोना पड़ता है; फिर छलांग लगानी पड़ती है कुंड में। लेकिन यह आसान है। यह आसान है। कई बार ऐसा होता है कि लंबा रास्ता आसान रास्ता होता है, और निकटतम रास्ता कठिन रास्ता होता है। उसके कारण हैं। उसके कारण हैं। लंबा रास्ता सदा आसान रास्ता होता है।

अब जैसे, मुझे अगर मेरे ही पास आना हो, तो भी मुझे दूसरे के माध्यम से आना पड़े। और अगर मुझे अपनी ही शक्ल देखनी हो, तो भी मुझे एक आईना रखना पड़े। अब यह फिजूल की लंबी यात्रा है कि आईने में मेरी शक्ल जाएगी और आईने से वापस लौटेगी, तब मैं देख पाऊंगा। यह इतनी यात्रा करनी पड़ेगी। लेकिन अपनी शक्ल को सीधा देखना, निकटतम तो है, लेकिन कठिनतम भी है। मेरा मतलब समझे न तुम?

स्वयं को जानने व खोने का आनंद

तो यह जो कुंडलिनी की छोटी सी शक्ति को उठाकर थोड़ी लंबी यात्रा तो होती है, क्योंकि इंद्रियों का सारा का सारा, अंतर-इंद्रियों का जगत खुलता है और आत्मा पर पहुंचते हैं, और फिर वहां से छलांग तो लेनी ही है, लेकिन बड़ी सरल हो जाती है। क्योंकि जिसको आत्म-अनुभव हुआ, जिसने अपने को जाना और आनंद पाया, वह आनंद उसे पुकारने लगता है कि अब अपने को भी खो दो तो और परम आनंद पा लोगे।

अपने को जानने का एक आनंद है, अपने को पाने का एक आनंद है, और अपने को खोने का एक परम आनंद है। क्योंकि जब तुम अपने को जान लोगे तब तुम्हें सिर्फ एक ही पीड़ा रह जाएगी कि मैं हूं; बस इतनी पीड़ा और रह जाएगी; सब पीड़ाएं मिट जाएंगी, एक ही पीड़ा रह जाएगी कि मेरा होना भी क्यों है। यह भी

अनावश्यक है। यह मेरा होना भी व्यर्थ, अनावश्यक है। इसलिए इससे भी तुम छलांग लगाओगे ही। एक दिन तुम कहोगे कि अब मैंने होना जान लिया, अब मैं न होना भी जानना चाहता हूं; मैंने बीइंग भी जान लिया, अब मैं नॉन-बीइंग भी जानना चाहता हूं; मैंने जान लिया प्रकाश, अब मैं अंधकार भी जानना चाहता हूं। और प्रकाश कितना ही बड़ा हो, उसकी सीमा है; और अंधकार असीम है। और बीइंग कितना ही महत्वपूर्ण हो, फिर भी सीमा है। अस्तित्व की सीमा होगी; अनस्तित्व की कोई सीमा नहीं।

इसलिए बुद्ध को लोग नहीं समझ पाए। क्योंकि बुद्ध से जब लोगों ने जाकर पूछा कि हम बचेंगे कि नहीं वहां? तो उन्होंने कहा कि तुम कैसे बचोगे? तुमसे ही तो छूटना है! तो उन्होंने पूछा कि मोक्ष में फिर कम से कम हम तो होंगे? और सब मिट जाए--वासना मिटे, दुख मिटे, पाप मिटे--हम तो बचेंगे? बुद्ध ने कहा कि तुम कैसे बचोगे? जब वासना मिट जाएगी, पाप मिट जाएगा, दुख मिट जाएगा, तो एक दुख बचेगा तुम्हारा--होने का दुख। होना भी खलने लगेगा।

यह बड़े मजे की बात है। क्योंकि जब तक वासना है तब तक होना नहीं खलता तुम्हें, क्योंकि तुम होने को काम में लगाए रखते हो। धन कमाना है, तो होने को तुमने धन कमाने में लगाया है; यश कमाना है, तो यश कमाने में लगाया है। जब यश की कामना न होगी, धन की कामना न होगी, काम की वासना न होगी, जब कुछ भी न होगा करने को, जब डूइंग बिल्कुल न बचेगी, तो बीइंग का करोगे क्या? तब बीइंग सीधा गड़ने लगेगा; होना ही घबराने लगेगा कि अब यह होना भी नहीं चाहिए।

तो बुद्ध कहते हैं कि नहीं, वहां कुछ भी नहीं होगा। जैसे दीया बुझ जाता है, फिर तुम पूछते हो कहां गया?

मरते समय तक बुद्ध से लोग पूछ रहे हैं कि तथागत का मरने के बाद क्या होता है? जब आप मर जाएंगे तो फिर क्या होगा? तो बुद्ध कहते हैं, जब मर ही गए तो फिर होने को बचा क्या? फिर कुछ बचेगा ही नहीं, जैसे दीया बुझ गया ऐसे सब बुझ जाएगा। तुम कब पूछते हो कि दीया बुझ गया, अब क्या हुआ? बुझ गया, बुझ गया।

तो आत्मा की उपलब्धि चरण ही है एक आत्मा को खोने की तैयारी का। लेकिन ऐसे ही आसान है। क्योंकि जो अभी वासना ही नहीं खो सका, उससे अगर सीधा कहो कि कुंड में डूब जाओ, अपने को ही खो दो। असंभव है! क्योंकि वह कहेगा, अभी मुझे बहुत काम हैं।

आखिर हम अपने को खोने से डरते क्यों हैं? हम अपने को खोने से इसलिए डरते हैं कि काम तो बहुत करने को हैं, मैं खो दूंगा तो फिर ये काम कौन करेगा? एक मकान बनाया, वह अधूरा है। तो उसे मैं पूरा बना लूं, फिर तैयार हो जाऊंगा। लेकिन तब तक दूसरे काम अधूरे रह जाएंगे।

असल में, काम की वासना, कुछ पूरा करना है, उसकी वजह से ही तो मैं अपने को चला रहा हूं। तो जब तक वासना है तब तक अगर कोई कहे कि आत्मा को खो दो, तो तब तक बिल्कुल संभव नहीं है। यह निकट का तो है, लेकिन संभव नहीं है। क्योंकि वह आदमी जिसकी अभी वासना नहीं खोई, वह आत्मा को कैसे खोएगा? हां, वासना खो जाए तो फिर एक दिन वह आत्मा को खोने को राजी हो सकता है, क्योंकि अब आत्मा का भी करना क्या है!

मेरा मतलब समझ रहे हो? मेरा मतलब यह है कि जिसने अभी दुख नहीं खोया, उससे कहो कि आनंद को खो दो! वह कहेगा, पागल हैं आप? लेकिन जिस दिन दुख खो जाए, आनंद ही रह जाए, फिर आनंद का भी क्या करोगे? फिर आनंद को भी खोने के लिए तुम तैयार हो जाओगे। और जिस दिन कोई आनंद को भी खोने

को तैयार है, उसी दिन कोई घटना घटती है। दुख खोने को तो कोई भी तैयार हो जाता है, लेकिन एक घड़ी आती है जब हम आनंद को भी खोने को तैयार हो जाते हैं। वह परम अस्तित्व में लीनता उपलब्ध उससे होती है।

यह सीधा भी हो सकता है; सीधा कुंड में जाया जा सकता है। लेकिन राजी होना मुश्किल होता है। धीरे-धीरे राजी होना आसान हो जाता है। वासना खोती है, वृत्तियां खोती हैं, क्रिया खोती है, वह सब खो जाता है जिनके सहारे तुम हो; फिर आखिर में तुम्हीं बचते हो जिसमें न नींव बची, न सहारे बचे। अब तुम कहते हो, इसको भी क्या बचाना! अब इसको भी जाने दे सकते हैं। तब तुम कुंड में डूब जाते हो। कुंड में डूबना निर्वाण है।

अगर सीधा कोई डूबना चाहे तो कुंडलिनी नहीं मार्ग में आती। इसलिए कुछ मार्गों ने उसकी बात नहीं की; जिन्होंने सीधे ही डूबने की बात की, उन्होंने उसकी बात नहीं की; उसकी कोई जरूरत नहीं थी। लेकिन मेरा अपना अनुभव यह है कि वह नहीं संभव हो सका। वह कभी एकाध-दो लोगों के लिए संभव हो सकता है, लेकिन एकाध-दो लोगों से कुछ हल नहीं होता। लंबे रास्ते ही जाना पड़ेगा। बहुत बार अपने घर पहुंचने के लिए दूसरों के घर के द्वार खटखटाने ही पड़ते हैं--अपने ही घर पहुंचने के लिए! और अपनी ही शक्ल पहचानने के लिए न मालूम कितनी शक्लों को पहचानना पड़ता है। और खुद को प्रेम करने के लिए न मालूम कितने लोगों को प्रेम करना पड़ता है। सीधा तो यही था कि अपने को प्रेम कर लेते। इसमें कौन कठिनाई थी? इसमें कौन बाधा डालता था? उचित तो यही था कि अपने घर में सीधे आ जाते। लेकिन ऐसा नहीं है।

असल में, जब तक हम दूसरों के घरों में न भटक लें, तब तक अपने घर को पहचानना ही मुश्किल होता है। और जब तक हम दूसरों से प्रेम न मांग लें और दूसरों को प्रेम न कर लें, तब तक यह पता ही नहीं चलता कि असली सवाल अपने को प्रेम करने का है। यह पता ही नहीं चलता। इसका पता चलता है तभी।

तो यह कुंडलिनी को मैंने जो कहा कि शरीर की तैयारी है; तैयारी है अशरीर में प्रवेश की, आत्मा में प्रवेश की। और तुम्हारी जितनी ऊर्जा अभी जगी है उससे तुम आत्मा में प्रवेश न कर सकोगे। क्योंकि तुम्हारी वह ऊर्जा तुम्हारे रोजमर्रा के काम में पूरी चुक जाती है। बल्कि करीब-करीब उसमें भी पूरी नहीं पड़ती, उसमें भी हम थक जाते हैं। वह उसमें भी पूरी नहीं पड़ रही है। बहुत मंदी-मंदी जल रही है लौ। इतने से इसको नहीं ले जाया जा सकता।

ऊर्जा अनंत है, उसे जगाओ

और इसीलिए संन्यास की वृत्ति पैदा हुई, ताकि रोजमर्रा का काम बंद कर दिया जाए। क्योंकि शक्ति तो इतनी सी ही है हमारे पास, अब इसको लगाना है किसी और यात्रा पर, तो फिर यह काम बंद कर दो, दुकान मत करो, बाजार मत जाओ, नौकरी मत करो।

लेकिन मेरा मानना है कि वे भ्रांति में हैं। क्योंकि यह जो दो पैसे की शक्ति उसकी इस काम में लग रही है, यह अगर वह किसी तरह बचा भी ले, तो बचाने में यह उतनी व्यय हो जाएगी। क्योंकि बचाने में भी बड़ी ताकत लग जाती है। बचाने में बड़ी ताकत लगती है; बहुत बार तो क्रोध करने में उतनी ताकत व्यय नहीं होती जितना क्रोध रोकने में व्यय हो जाती है; बहुत बार लड़ने में उतनी व्यय नहीं होती जितना लड़ने से बचने में व्यय हो जाती है।

तो मैं इसको उचित नहीं मानता, यह कंजूस का रास्ता है। यह जो संन्यास है, यह कंजूस का रास्ता है। वह यह कह रहा है कि इतने में ही हम उधर से बचा लेते हैं, इधर से बचा लेते हैं। मेरा मानना है कि कंजूस के

रास्ते से नहीं चलेगा। और जगा लो! बहुत है, अनंत है; बचाते क्यों हो, और जगा लो! और खर्च करनी है? और जगा लो! और तुम खर्च कर नहीं सकते इतनी तुम्हारे पास है, तो तुम उसे बचाने की फिक्र क्यों करते हो!

अब वह आदमी डर रहा है कि अगर मैंने अपनी पत्नी को प्रेम किया तो मैं परमात्मा को कैसे प्रेम करूंगा? क्योंकि उसके पास प्रेम की इतनी छोटी सी तो ऊर्जा है कि इसी में चुक जाएगी। तो वह कह रहा है, इससे बचा लें। लेकिन अगर इसको बचा भी लिया, तो इस बचाने में उसको लड़ना पड़ेगा; लड़ने में व्यय होगी। और इतनी छोटी सी ऊर्जा से, जिससे तुमने पत्नी को प्रेम किया था, उससे तुम परमात्मा को प्रेम कर पाओगे? उतनी सी ऊर्जा से पत्नी तक नहीं पहुंच पाए पूरी तरह, परमात्मा तक कैसे पहुंच पाओगे? यानी उतना छोटा सा जो ब्रिज तुमने बनाया था, वह पत्नी तक भी तो पूरा नहीं पहुंचता था। उसमें भी बीच में ही सीढ़ियां चुक जाती थीं। वह वहां तक भी सेतु पूरा नहीं बनता था कि तुम उसके हृदय तक भी पहुंच गए होओ ठीक; वह भी नहीं हो पाता था। उतनी सी ऊर्जा बचाकर तुम अनंत तक सेतु बनाने की सोचने बैठे हो, तो पागलपन में पड़ गए हो।

उसे बचाने का सवाल नहीं है; और ऊर्जा है, उसे जगाने का सवाल है। और इतनी अनंत ऊर्जा है कि जिसका कोई हिसाब नहीं। और एक बार वह जगनी शुरू हो जाए, तो वह जितनी जगती है, उतनी ही और जगने की संभावना प्रकट होने लगती है। उसका झरना फूटना शुरू हो जाए तो अनंत है। उसे तुम चुकता नहीं कर सकते कभी। यानी ऐसा कोई क्षण नहीं आ सकता जब तुम कह दो कि अब मेरे भीतर जगने को और कुछ भी शेष नहीं रहा।

जगने की, अवेकनिंग की अनंत संभावना है; कितना भी तुम जगा सकते हो। और जितना तुम जगाते हो, उतना और जगाने के लिए तुम शक्तिशाली होते चले जाते हो। और जब तुम्हारे पास अतिरिक्त होती है, एफ्लुएंस होता है तुम्हारे पास अंतर-ऊर्जा का, तभी तुम उसे उन रास्तों पर खर्च कर सकते हो जो अनजान हैं। समझ रहे हो न मेरा मतलब?

बाहर की दुनिया में भी एफ्लुएंस होता है। एक आदमी के पास अतिरिक्त धन है, अब वह सोचता है कि चलो, चांद की यात्रा कर आएं। हालांकि बेमानी है, और चांद पर कुछ मिलने को नहीं है। लेकिन हर्ज भी कुछ नहीं है, क्योंकि उसका खोने को भी क्या है! उसके पास अतिरिक्त है, वह खो सकता है। जब तक तुम्हारे पास अतिरिक्त नहीं है, उतना ही है जितनी तुम्हें जरूरत है--उससे भी कम है--तब तक तुम इंच-इंच जांच-पड़ताल करके खर्च करोगे। इसलिए तुम ज्ञात की दुनिया से कभी बाहर न हटोगे। अज्ञात में जाने के लिए तुम्हारे पास अतिरेक चाहिए।

तो कुंडलिनी की शक्ति तुम्हें अतिरेक से भर देती है। और तुम्हारे पास इतनी शक्ति होती है कि तुम्हारे सामने सवाल होता है कि इसको कहां खर्च करें? और ध्यान रहे, जिनके पास अतिरिक्त शक्ति होती है, अचानक वे पाते हैं कि उनके जो पुराने द्वार थे, वे एकदम बंद हो गए; क्योंकि उस अतिरिक्त शक्ति को बहाने में वे समर्थ नहीं होते। जैसे एक छोटी नदी हो और उसमें पूरा सागर आ गया है। वह नदी मिट जाएगी फौरन। उसका कहीं पता ही नहीं चलेगा कि वह कहां गई।

तो तुम्हारा क्रोध का एक मार्ग था, तुम्हारे सेक्स का एक मार्ग था, वे अचानक खो जाएंगे। जिस दिन अतिरिक्त ऊर्जा आएगी, वह सब घाट, तट, सब तोड़-फोड़ कर उनको खतम कर देगी। तुम अचानक पाओगे कि कुछ और ही हो गया! वह सब कहां गया जो कल मैं छोटा-छोटा बचा-बचा कर कंजूस की तरह चल रहा था; और ब्रह्मचर्य साध रहा था, और क्रोध दबा रहा था, और यह कर रहा था, और वह कर रहा था; वह सब अब कहां है? क्योंकि वे नदियां न रहीं, वे नहरें न रहीं; अब तो यह पूरा सागर आ गया है! अब इसको खर्च करने का

तुम्हारे पास जब उपाय नहीं है, तब अनायास तुम पाते हो कि इसकी दूसरी यात्रा शुरू हो गई। यात्रा तो होगी ही, वह तो रुक सकती नहीं। ऊर्जा बहेगी ही, वह रुक सकती नहीं। होनी चाहिए।

तो एक बार जगा लेने की बात है। और तब तुम्हारे दैनंदिन के द्वार बेमानी हो जाते हैं; और अनजान-अपरिचित द्वार, जो बंद पड़े हैं, उनमें पहली दफे दरारें पड़ती हैं और उनसे ऊर्जा धक्के देकर बहने लगती है। तो वहां तुम्हें अतींद्रिय अनुभव शुरू हो जाते हैं। और जैसे ही अतींद्रिय द्वार खुलते हैं वैसे ही तुम्हें अपने शरीर का अशरीरी छोर, जिसको आत्मा कहें, उसकी तुम्हें प्रतीति शुरू हो जाती है।

तो कुंडलिनी तुम्हारे शरीर की तैयारी है अशरीर में प्रवेश के लिए। उस अर्थ में मैंने वह बात कही।

कुंडलिनी का आरोहण-अवरोहण

प्रश्नः कुंडलिनी साधना में कुंडलिनी के एसेंड और डिसेंड की बात आती है--आरोहण और उसके बाद अवरोहण। तो यह जो डिसेंड है, वह क्या कुंड में डूबना है या और कोई दूसरी बात है?

असल में, कुंड में डूबना जो है, वह न तो उतरना है, न वह चढ़ना है। कुंड में डूबने में तो ये दोनों बातें ही नहीं हैं। वह उतरना-चढ़ना नहीं है, मिट जाना है, समाप्त हो जाना है। बूंद जब सागर में गिरती है, न तो उतरती, न चढ़ती। हां, बूंद जब सूरज की किरणों में सूखती है, तब चढ़ती है आकाश की तरफ; और जब बादल में ठंडक पाकर गिरती है जमीन की तरफ, तब उतरती है। लेकिन जब सागर में जाती है तो फिर उतरना-चढ़ना नहीं है--डूबना है, मिटना है, मरना है।

तो यह जो उतरने-चढ़ने की जो बात है, अवरोहण की, अवतरण की, यह बहुत दूसरे अर्थों में है। यह इस अर्थ में है कि कुंड से जिस शक्ति को हम उठाते हैं, इसे बहुत बार वापस कुंड में भी भेज देना पड़ता है। इस शक्ति को हम उठाते भी हैं, इसे हमें वापस भी भेज देना पड़ता है बहुत बार। कई कारण हो सकते हैं। सबसे बड़ा कारण तो यह होता है कि बहुत बार ऐसा होता है कि जितनी शक्ति के लिए तुम तैयार नहीं होते, उतनी शक्ति जग जाती है; उसे वापस लौटाना पड़ता है, अन्यथा खतरे हो सकते हैं। तो कुछ शक्ति जितनी तुम झेल सको... हमारे झेलने की भी क्षमताएं हैं न! हमारे झेलने की भी क्षमताएं हैं--सुख झेलने की भी क्षमता है, दुख झेलने की भी क्षमता है, शक्ति झेलने की भी क्षमता है। अगर हमारी क्षमता से बहुत बड़ा आघात हमारे ऊपर हो जाए, तो हमारा जो संस्थान है व्यक्तित्व का वह टूट सकता है। वह हितकर नहीं होगा। इसलिए बहुत बार ऐसी शक्ति उठ आती है जिसको वापस भेज देना पड़ता है।

लेकिन जिस प्रयोग की मैं बात कर रहा हूं, उस प्रयोग में इसकी कोई जरूरत कभी नहीं पड़ेगी। यह प्रयोग पर निर्भर बात है। ऐसे प्रयोग हैं जो तुम्हारे भीतर आकस्मिक रूप से, जिनको सडन एनलाइटेनमेंट के प्रयोग कहते हैं, जो तात्कालिक, इंस्टैंट शक्ति को जगा सकते हैं। ऐसे प्रयोग में सदा खतरा है, क्योंकि शक्ति इतनी आ सकती है जितनी कि तुम तैयार न थे। वोल्टेज इतना हो सकता है कि तुम्हारा बल्ब बुझ जाए, फ्यूज उड़ जाए, तुम्हारा पंखा जल जाए, तुम्हारी मोटर में आग लग जाए। जिस प्रयोग की मैं बात कर रहा हूं, वह प्रयोग तुम्हारे भीतर पहले पात्रता पैदा करता है, पहले शक्ति को नहीं जगाता। पहले पात्रता पैदा करता है।

साधना में दूसरों की सहायता

इसे ऐसे भी समझें कि यदि एक बड़ा बांध अचानक टूट जाए तो उसके पानी से बड़ा भारी नुकसान हो जाएगा, लेकिन उससे नहरें निकालकर उसी पानी को सुविधानुसार नियंत्रित रूप से प्रवाहित किया जा सकता है।

एक अदभुत घटना है कि किशोरावस्था में कृष्णमूर्ति को थियोसाफी के कुछ विशेष लोगों द्वारा कुंडलिनी की सारी साधनाओं से गुजारा गया। उन पर अनेक प्रयोग किए गए, जिनकी स्पष्ट स्मृति उन्हें न रही; उन्हें बोध नहीं है कि क्या हुआ। उनको तो बोध तभी आया जब उस नहर में सागर उतर आया। इसलिए उन्हें तैयारी का कोई भी पता नहीं है। इसलिए किसी प्रिप्रेशन को वे स्वीकार नहीं करेंगे कि किसी तैयारी की जरूरत है। लेकिन उन पर बड़ी तैयारी की गई, जैसा कि संभवतः पृथ्वी पर पहले किसी आदमी के साथ नहीं की गई। तैयारियां तो बहुत लोगों ने कीं, लेकिन अपने साथ कीं। यह पहली दफा कुछ दूसरे लोगों ने उनके साथ तैयारी की।

प्रश्नः दूसरे भी कर सकते हैं?

बिल्कुल कर सकते हैं। क्योंकि दूसरे बहुत गहरे में दूसरे नहीं हैं। इधर से जो हमें दूसरे दिखाई पड़ रहे हैं वे इतने दूसरे नहीं हैं।

तो वह तैयारी दूसरों ने की और किसी एक बहुत बड़ी घटना के लिए की थी। वह घटना भी चूक गई। वह घटना थी किसी और बड़ी आत्मा को प्रवेश कराने के लिए। कृष्णमूर्ति को तो सिर्फ एक वीहिकल की तरह उपयोग करना था, इसलिए उन्हें तैयार किया था; इसलिए नहर खोदी थी; इसलिए शक्ति को, ऊर्जा को जगाया था। लेकिन यह प्रारंभिक काम था। कृष्णमूर्ति जो थे वे खुद लक्ष्य नहीं थे उसमें। एक बड़े लक्ष्य के लिए साधन की तरह प्रयोग करना था उनका। किसी और आत्मा को उनके भीतर जगह देने की बात थी। वह नहीं हो सका। वह नहीं हो सका इसलिए कि जब पानी आ गया तो कृष्णमूर्ति ने साधन बनने से इनकार कर दिया; वह किसी और के लिए साधन बनने से इनकार कर दिया।

इसका डर था, इसका डर सदा है। इसलिए इसका प्रयोग नहीं किया गया था। इसका डर सदा है। क्योंकि जब व्यक्ति उस हालत में आ जाए जब कि वह खुद ही साध्य बन सके तो वह दूसरे के लिए क्यों साधन बनेगा? वह इनकार कर दे ऐन वक्त पर। यानी मैं तुम्हें अपने मकान की चाबी दूं इसलिए कि कल कोई मेहमान आ रहा है, उसके लिए तुम मकान तैयार करके रखना। लेकिन जब मैं चाबी तुम्हें देकर जाऊं और तुम मालिक हो जाओ, तो कल जब मेहमान आने की बात हो तो तुम इनकार ही कर दो, कि मालिक तो मैं हूं, चाबी मेरे पास है। और यह चाबी किन्हीं और ने तैयार की थी और यह मकान भी किन्हीं और ने बनाया था। इसलिए न तुम्हें बनाने का पता है, न तुम्हें यह चाबी कब ढाली गई, कैसे ढाली गई, इसका पता है। लेकिन इस चाबी के तुम मालिक हो और मकान तुम खोलना जानते हो, बात खत्म हो गई।

पहले तैयारी, पीछे उपलब्धि

ऐसी घटना घटी है। कुछ लोगों को तैयार किया जा सकता है। कुछ लोग पिछले जन्मों में तैयार होकर आते हैं। लेकिन यह साधारण मामला नहीं है। साधारणतः तो प्रत्येक को अपने को तैयार करना होता है। और उचित यही है कि ऐसा प्रयोग हो, जिसमें तैयारी पहले चलती हो और घटना पीछे घटती हो। तुम्हारी जितनी क्षमता बनती जाती हो उतना जल आता जाता हो। तुम्हारी क्षमता से ज्यादा शक्ति कभी न जग पाए। ऐसे बहुत

से प्रयोग थे जिनमें ऐसा हुआ। इसलिए बहुत से लोग उन्मादग्रस्त होंगे, पागल हो जाएंगे। धर्म से बहुत बड़ा भय पैदा हो गया था। इस तरह के प्रयोगों की वजह से पैदा हुआ था।

तो प्रयोग दो तरह के हो सकते हैं, इसमें कोई बहुत कठिनाई नहीं है।

अमेरिका में उन्होंने बिजली की जो व्यवस्था की है, उसमें उन्होंने एक जो काम किया है, उसके कई दफे क्या परिणाम हो सकते हैं, वह मैं कहता हूं। इस तरह की स्थिति भीतर भी हो सकती है। उन्होंने जो व्यवस्था की है वह यह व्यवस्था की है कि इस गांव को जितनी बिजली की जरूरत है उससे अगर ज्यादा कोटा इसके पास है आज, और आज रात गांव में कम बिजली का उपयोग किया जा रहा है, तो जितनी बिजली बचे वह दूसरे गांवों की तरफ आटोमेटिकली प्रवाहित हो जाए; यानी इस गांव के पास कुछ भी अतिरिक्त बिजली न पड़ी रह जाए व्यर्थ, वह दूसरे गांव के काम आ जाए। आज एक फैक्टरी बंद है जो कल शाम तक चल रही थी; आज बंद है, उसकी हड़ताल हो गई। तो जितनी बिजली उसको चाहिए थी वह आज इस गांव में बेकार पड़ी रहेगी, जब कि दूसरे गांव में हो सकता है बिजली की जरूरत हो और एक फैक्टरी को बिजली न दी जा सके। तो पूरा आटोमेटिक इंतजाम किया है कि सारे .जोन की बिजली पूरे वक्त प्रवाहित होती रहेगी दूसरी तरफ--जहां भी अतिरिक्त है वह तत्काल दूसरी तरफ बह जाएगी।

पीछे तीन-चार वर्ष पहले कोई आठ-दस-बारह घंटे के लिए पूरी बिजली चली गई अमेरिका की। वह इस इंतजाम में चली गई। एक गांव की बिजली गई तो उलटा प्रवाह शुरू हो गया। वह जो प्रवाह अतिरिक्त बिजली को ले जाता था, जब एक गांव की बिजली चली गई तो सारी बिजली उस तरफ दौड़ी, वहां वैक्यूम हो गया। उसकी कैपेसिटी थी उस गांव की, उतनी बिजली उसको मिलनी चाहिए थी; और वे सारे के सारे गांव संबंधित थे, वह सारी बिजली उस तरफ दौड़ी। वह इतने जोर से दौड़ी कि उस गांव के सारे फ्यूज चले गए और दूसरे गांव की मुसीबत हो गई। और पूरा का पूरा जितना .जोन का इंतजाम था, वह सब का सब एकदम से खत्म हो गया। एक बारह घंटे के लिए अमेरिका बिल्कुल कोई दो हजार साल पहले लौट गया; एकदम अंधेरा हो गया। जो जहां था वहां अंधकार में हो गया और सब काम ठप्प हो गया। और उस वक्त पहली दफा उनको पता चला कि हम जिस लिए इंतजाम करते हैं, उससे उलटा भी हो सकता है। हमारा इंतजाम जो हम करते हैं, उससे उलटा हुआ। अगर एक-एक गांव का अलग-अलग इंतजाम था तो ऐसा कभी नहीं हो सकता था। हिंदुस्तान में ऐसा कभी नहीं हो सकता कि पूरे हिंदुस्तान की बिजली चली जाए। अमेरिका में हो सकता है; क्योंकि वह सब इंटरकनेक्टेड है पूरा का पूरा। और पूरे वक्त धाराएं एक गांव से दूसरे गांव शिफ्ट होती रहेंगी। और कभी भी खतरा हो सकता है।

मनुष्य के भीतर भी ठीक विद्युतधारा की तरह इंतजाम हैं। और ये विद्युतधाराएं जो हैं, ये अगर तुम्हारी क्षमता से ज्यादा तुम्हारी तरफ प्रवाहित हो जाएं... और ऐसे इंतजाम हैं जिनसे प्रवाहित हो सकती हैं। यानी तुम यहां बैठे हुए हो, और यहां पचास लोग बैठे हुए हैं, तो ऐसे मेथड्स हैं कि तुम चाहो तो इन पचास लोगों की सारी विद्युतधारा तुम्हारी तरफ प्रवाहित हो जाए; ये सब पचास लोग यहां बिल्कुल ही फेंट हालत में हो जाएं और तुम एकदम ऊर्जा के केंद्र बन जाओ। लेकिन खतरे भी हैं उसमें। उसमें खतरे हैं; क्योंकि वह इतनी ज्यादा भी हो सकती है कि तुम उसे न झेल पाओ। और इससे उलटा भी हो सकता है कि जिस मार्ग से विद्युतधारा तुम तक आई, उसी मार्ग से तुम्हारी भी सारी विद्युत को लेकर दूसरी तरफ बह जाए। इन सबके प्रयोग हुए हैं।

तो वह जो उतरना है, वह तुम्हारे भीतर अगर कभी कोई अतिरिक्त मात्रा में शक्ति--तुम्हारी ही शक्ति--ऊपर चली जाए, तो उसे वापस लौटाने की विधियां हैं। लेकिन जिस विधि की मैं बात कर रहा हूं उसमें उनकी

भी कोई जरूरत नहीं है; उसमें कोई प्रयोजन ही नहीं है। तुम्हारे भीतर जितनी पात्रता बनती जाएगी उतनी ही तुम्हारे भीतर शक्ति जगती जाएगी। पहले जगह बनेगी, फिर शक्ति आएगी। और इसलिए कभी तुम्हारे पास ऐसा नहीं होगा कि तुम्हें कुछ भी वापस लौटाना पड़े। हां, एक दिन तुम खुद ही वापस लौटोगे, वह दूसरी बात है। एक दिन तुम खुद ही सब जानकर छलांग लगा जाओगे कुंड में, वह दूसरी बात है।

और इन शब्दों का और अर्थों में भी प्रयोग हुआ है। जैसे कि श्री अरविंद जिस अर्थ में प्रयोग करते हैं, वह बहुत दूसरा है। दो तरह से हम परमात्म शक्ति को सोच सकते हैंः या तो अपने से ऊपर, या तो अपने से ऊपर कहीं आकाश में--किसी भी ऊपर के भाव में; या अपने से गहरे, पाताल के भाव में। और जहां तक जगत की व्यवस्था का संबंध है, ऊपर और नीचे शब्द बेमानी हैं, इनका कोई अर्थ नहीं है; ये सिर्फ हमारे सोचने की धारणाएं हैं कि हम कैसा सोचते हैं। इस छत को तुम ऊपर कह रहे हो, कुछ ऊपर नहीं है; क्योंकि हम यहां एक छेद करें और वह जाकर अमेरिका में निकल जाएगा छेद जमीन में। और वहां से अगर कोई झांककर देखे तो यह छत हमारे नीचे मालूम पड़ेगी--हमारे सिर के नीचे--उस छेद से झांकने पर। हम उलटे मालूम पड़ेंगे, सब शीर्षासन करते हुए, और यह छत हमारे सिर के नीचे मालूम पड़ेगी। अभी भी वहीं है वह--हम कहां से देखते हैं, इस पर सब निर्भर करता है।

जैसे हमारा पूरब-पश्चिम सब झूठा है। क्या पूरब? क्या पश्चिम? और पूरब चलते जाओ, चलते जाओ, तो पश्चिम पहुंच जाओगे। और पश्चिम चलते जाओ, चलते जाओ, तो पूरब पहुंच जाओगे। जिस पश्चिम में चलते-चलते पूरब पहुंच जाते हैं उसको पश्चिम कहने का क्या मतलब है? कोई मतलब नहीं है; रिलेटिव है। रिलेटिव का मतलब यह कि बेमानी है। इसका मतलब यह है कि कोई मतलब नहीं है उसका; हमारी कामचलाऊ सीमा-रेखा है कि यह रहा पूरब, यह रहा पश्चिम; नहीं तो हम कैसे हिसाब बांटेंगे! लेकिन कहां पूरब है? किस जगह से शुरू होता है? कलकत्ते से? रंगून से? टोकियो से? कहां से पूरब शुरू होता है? पश्चिम कहां से शुरू होता है और कहां खतम होता है? न कहीं शुरू होता है, न कहीं खत्म होता है। वे कामचलाऊ ख्याल हैं जिनसे हमें सुविधा बनती है कि हम एक-दूसरे को बांट लेते हैं।

ठीक ऐसे ही, ऊपर-नीचे दूसरे डायमेंशन में कामचलाऊ हैं। पूरब-पश्चिम हॉरिजेंटल कामचलाऊ बातें हैं और ऊपर-नीचे वर्टिकल कामचलाऊ बातें हैं। न कुछ ऊपर है, न कुछ नीचे है; क्योंकि इस जगत की कोई छत नहीं है और इस जगत का कोई बाटम नहीं है। इसलिए ऊपर-नीचे की सब बातें बेमानी हैं। लेकिन हमारी ये कामचलाऊ धारणाएं हमारे धर्म की धारणाओं में भी घुस जाती हैं।

तो कुछ लोग ईश्वर को अनुभव करते हैं अबव, ऊपर। तो जब शक्ति उतरेगी तो उतरेगी, डिसेंड करेगी, हम तक आएगी। कुछ लोग अनुभव करते हैं ईश्वर को नीचे, रूट्स में। तो जब शक्ति आएगी तो चढ़ेगी, उठेगी, हम तक आएगी। लेकिन कोई मतलब नहीं है। कहां हम रखते हैं ईश्वर को, यह सिर्फ कामचलाऊ बात है। लेकिन इस कामचलाऊ बात में भी अगर चुनाव करना हो, तो मैं मानता हूं बजाय उतरने के, उठना ही ज्यादा सहयोगी होगा; बजाय उतरने के, शक्ति का तुम्हारे भीतर से उठना ही ज्यादा सहयोगी होगा। उसके कारण हैं। क्योंकि जब शक्ति के उठने की धारणा तुम पकड़ोगे, तो उठाने का सवाल उठेगा। तब तुम्हें कुछ करना पड़ेगा। और जब उतरने की बात है तो सिर्फ प्रार्थना रह जाएगी, और तुम कुछ भी न कर सकोगे। जब ऊपर से नीचे आना है तो हम हाथ जोड़कर प्रार्थना कर सकते हैं।

धर्म के दो आयाम--ध्यान और प्रार्थना

इसलिए दो तरह के धर्म दुनिया में बने--ध्यान करनेवाले और प्रार्थना करनेवाले। प्रार्थना करनेवाले वे धर्म हैं जिन्होंने ईश्वर को ऊपर अनुभव किया कहीं। अब हम कर भी क्या सकते हैं? उसको ला तो सकते नहीं! क्योंकि अगर लाएं तो उतने ऊपर हमको जाना पड़े! और उतने ऊपर हम जाएंगे कैसे? उतने ऊपर जाएंगे तो परमात्मा ही हो जाएंगे हम। वहां हम जा नहीं सकते, जहां हम खड़े हैं वहां हम खड़े रहेंगे। हम चिल्लाकर प्रार्थना कर सकते हैं कि हे परमात्मा, उतर!

लेकिन जिन धर्मों ने और जिन धारणाओं ने इस तरह सोचा कि उठाना है नीचे से, कहीं हमारी ही जड़ों में सोया हुआ है कुछ और हम ही कुछ करेंगे तो वह उठेगा, तो वे प्रार्थना के धर्म न बनकर फिर ध्यान के धर्म बने। तो मेडिटेशन और प्रेयर में इस ऊपर-नीचे की धारणा का फर्क है। प्रार्थना करनेवाला धर्म ईश्वर को ऊपर मानता है, ध्यान करनेवाला धर्म ईश्वर को जड़ों में मानता है, और वहां से उसको उठा लेता है।

और ध्यान रहे, प्रार्थना करनेवाले धर्म धीरे-धीरे हारते जा रहे हैं, खत्म होते जा रहे हैं; उनका कोई भविष्य नहीं है। उनका कोई भविष्य नहीं है। ध्यान करनेवाले धर्म की संभावना रोज प्रगाढ़ होती जा रही है। उसका बहुत भविष्य है।

तो मैं पसंद करूंगा कि हम समझें कि नीचे से ऊपर... । इसके और भी अर्थ होंगे। धारणा तो सापेक्ष है, इसलिए मुझे कोई दिक्कत नहीं है; किसी को ऊपर मानना हो तो मुझे कोई अड़चन नहीं आती। लेकिन मैं मानता हूं कि आपको अड़चन आएगी काम करने में। जैसे मैंने कहा कि अगर हम पूरब चलते जाएं तो पश्चिम पहुंच जाते हैं। फिर भी हमें पश्चिम जाना हो तो हम पूरब की तरफ नहीं चलते, हम पश्चिम की तरफ ही चलते हैं। धारणा बेमानी है, लेकिन फिर भी हमें पश्चिम जाना हो तो हम पश्चिम की तरफ चलना शुरू करते हैं। हालांकि पूरब की तरफ चलें तो चलते-चलते पश्चिम पहुंच जाएंगे, लेकिन वह नाहक लंबा रास्ता हो जाएगा। मेरा मतलब समझ रहे हो न तुम?

तो साधक के लिए और भक्त के लिए फर्क पड़ेगा। भक्त ऊपर मानेगा, इसलिए हाथ जोड़कर प्रतीक्षा करेगा; साधक नीचे मानेगा, इसलिए कमर कसकर जगाने की कोशिश करेगा।

और भी अर्थ हैं, जो ख्याल में आ जाने चाहिए। असल में, जब हम नीचे मानते हैं परमात्मा को, तो हमारी जिनको हम निम्न वृत्तियां कहते हैं, उनमें भी वह मौजूद हो जाता है। इसलिए हमारे चित्त में कुछ निम्न नहीं रह जाता। क्योंकि जब परमात्मा ही नीचे है, तो जिसको हम निम्नतम कहते हैं, वहां भी वह मौजूद है। और वहां से भी जगेगा; अगर सेक्स है, तो वहां से भी जगेगा। यानी ऐसी कोई जगह ही नहीं हो सकती जहां वह न हो। नीचे से नीचे, नीचे से नीचे नरक में भी कहीं अगर कुछ है कोई, तो वहां भी वह मौजूद है।

लेकिन जैसे ही हम उसे ऊपर मानते हैं, तो कंडेमनेशन शुरू हो जाता है, कि जो नीचे है वह कंडेम्ड हो जाता है, उसकी निंदा शुरू हो जाती है, क्योंकि वहां परमात्मा नहीं है। वहां परमात्मा नहीं है। और अनजाने स्वयं की भी हीनता शुरू हो जाती है कि हम नीचे हैं और वह ऊपर है। तो उसके घातक परिणाम हैं, मनोवैज्ञानिक घातक परिणाम हैं।

ध्यान-केंद्रित धर्म अधिक प्रभावकारी

और फिर जितनी शक्ति से खड़े होना हो, उतना उचित है कि शक्ति नीचे से आए। क्योंकि तुम्हारे पैरों को मजबूत करेगी। शक्ति ऊपर से आए तो तुम्हारे सिर को स्पर्श करेगी। और तुम्हारी जड़ों तक जाना चाहिए मामला। और जब ऊपर से आएगी तो तुम्हें हमेशा विजातीय और फारेन मालूम पड़ेगी।

इसलिए जिन लोगों ने प्रार्थना की, वे कभी नहीं मान पाते कि भगवान और हम एक हैं। वे कभी नहीं मान पाते। इसलिए मुसलमानों का निरंतर सख्त विरोध रहा कि कोई कहे कि मैं भगवान हूं। क्योंकि कहां वह ऊपर और कहां हम नीचे! इसलिए वे मंसूर का गला काट देंगे, सरमद को मार डालेंगे। क्योंकि यह सबसे बड़ा कुफ्र एक ही है उनकी नजर में न कि तुम कह रहे हो कि हम भगवान! इससे बड़ा कुफ्र नहीं हो सकता। क्योंकि कहां वह ऊपर और कहां तुम नीचे जमीन पर सरकते कीड़े-मकोड़े! और कहां वह परम, तुम उसके साथ अपनी आइडेंटिटी नहीं जोड़ सकते।

तो उसका कारण था; क्योंकि जब हम उसे ऊपर मानेंगे और अपने को नीचे मानेंगे, तो हम दो हो जाएंगे तत्काल। इसलिए सूफी कभी पसंद नहीं पड़ सके इस्लाम को, क्योंकि सूफी दावा कर रहे हैं इस बात का कि हम और वह एक हैं।

लेकिन हम और वह एक तभी हो सकते हैं जब वह नीचे से आता हो, क्योंकि हम नीचे हैं। जब वह जमीन से ही आता हो, आकाश से नहीं, तभी हम और वह एक हो सकते हैं। जैसे ही हम परमात्मा को ऊपर रखेंगे, पृथ्वी का जीवन निंदित हो जाएगा, पाप हो जाएगा; और जन्म लेना पाप का फल हो जाएगा। जैसे ही हम उसे नीचे रखेंगे, वैसे ही पृथ्वी का जीवन एक आनंद हो जाएगा; वह पाप का फल नहीं, वह परमात्मा की अनुकंपा हो जाएगा। और प्रत्येक चीज, चाहे वह कितनी ही अंधेरी हो, उसमें भी उसकी प्रकाश की किरण मौजूद अनुभव होगी। और कैसा ही बुरा से बुरा आदमी हो, कितना ही शैतान हो, फिर भी उसके अंतरतम कोर पर वह मौजूद रहेगा।

इसलिए मैं पसंद करूंगा कि हम उसे नीचे से ऊपर की तरफ उठना मानें। फर्क नहीं है, फर्क नहीं है धारणाओं में। जो जानता है उसके लिए कोई फर्क नहीं है, वह कहेगा, ऊपर-नीचे दोनों बेकार की बातें हैं। लेकिन जब हम नहीं जानते हैं और यात्रा करनी है, तो उचित होगा कि हम वही मानें जिससे यात्रा आसान हो सके।

तो इसलिए मेरे मन में तो साधक के लिए उचित यही है कि वह समझे कि नीचे से शक्ति उठेगी और ऊपर की तरफ जाएगी; ऊपर की तरफ यात्रा है। इसलिए जिन्होंने ऊपर की तरफ की यात्रा को स्वीकार किया उन्होंने अग्नि को प्रतीक माना, क्योंकि वह निरंतर ऊपर की तरफ जा रही है। दीया है, आग है, वे निरंतर ऊपर की तरफ जा रहे हैं; तो उन्होंने इसको प्रतीक माना परमात्मा का। इसलिए अग्नि जो है वह बहुत गहनतम मन में हमारे परमात्मा का प्रतीक बन गई। उसका कुल कारण इतना था कि कुछ भी करो, वह ऊपर की तरफ ही जाती है। और जितना ऊपर बढ़ती है, उतनी ही थोड़ी देर में खो जाती है; थोड़ी दूर तक दिखाई पड़ती है, फिर अदृश्य हो जाती है। ऐसा ही साधक भी ऊपर की तरफ जाएगा, थोड़ी देर तक दिखाई पड़ेगा और अदृश्य हो जाएगा। इसलिए मैं आरोहण--अवतरण नहीं--उस पर जोर देना पसंद करूंगा।

बस एक और पूछ लो, बस फिर उठेंगे।

शक्ति का जागरण

प्रश्नः नारगोल शिविर में आपने कहा है कि तीव्र श्वास-प्रश्वास और "मैं कौन हूं" पूछने के प्रयत्न से अपने को पूरी तरह से थका डालना है ताकि गहरे ध्यान में प्रवेश संभव हो सके। लेकिन ध्यान में प्रवेश के लिए अतिरिक्त ऊर्जा चाहिए, तो थकान की ऊर्जा-क्षीणता से ध्यान में प्रवेश कैसे संभव होगा?

नहीं-नहीं, थकान का मतलब ऊर्जाहीनता नहीं है। असल में, जब तुम अपने को थका डालते हो... "अपने" से मतलब क्या? "अपने" से मतलब तुम्हारे वे द्वार-दरवाजे, तुम्हारी वे इंद्रियां, जिनसे तुम्हारी ऊर्जा के बहने का दैनिक क्रम है--तुम्हारा जो संस्थान है, तुम अभी जो हो। उस तुम की बात नहीं कर रहा जो तुम हो सकते हो। जो तुम हो।

तो जब तुम अपने को थका डालते हो, तो दोहरी घटनाएं घटती हैं। इधर तुम अपने को थका डालते हो, तो तुम्हारी सारी इंद्रियां, तुम्हारा मन, तुम्हारा शरीर थक जाता है। और किसी तरह की ऊर्जा को वहन करने के लिए तैयार नहीं होता, इनकार कर देता है। थकान में तुम किसी तरह की ऊर्जा को वहन करने की तैयारी नहीं दिखलाते; तुम कहते हो, अभी मैं थका हूं।

तो एक तरफ तो यह प्रयोग तुम्हारे शरीर को, तुम्हारे मन को, तुम्हारी इंद्रियों को थकाता है, और दूसरी तरफ तुम्हारी कुंडलिनी पर चोट करता है; वहां से ऊर्जा जगती है और यहां से तुम थकते हो--यह दोनों एक साथ चलता है। समझे न! यह एक साथ चलता है--इधर तुम थकते हो, उधर से शक्ति जगती है। और उस शक्ति को वहन करने के योग्य भी तुम नहीं रहते, कि तुम्हारी आंख देखना चाहे तो कहती है--थकी हूं, देखने का मन नहीं; तुम्हारा मन सोचना चाहे तो मन कहता है--थका हूं, सोचने का मेरा मन नहीं; तुम्हारे पैर चलना चाहें तो पैर कहते हैं--हम थके हैं, हम चल नहीं सकते। तो अब अगर चलना है तो बिना पैरों की कोई यात्रा तुम्हारे भीतर करनी पड़ेगी; और अगर देखना है तो बिना आंखों के देखना पड़ेगा; क्योंकि आंख थकी है। समझ रहे हैं मेरा मतलब?

तो तुम्हारा संस्थान, तुम्हारा व्यक्तित्व थक जाता है, तो वह इनकार करता है कि हमें अभी कुछ करना नहीं है। और शक्ति जग गई है, जो कुछ करना चाहती है। तो तत्काल वह उन दरवाजों पर चोट करेगी जो अनथके पड़े हैं, जो थके हुए नहीं हैं; जो तुम्हारे भीतर सदा वहन करने के लिए तैयार हैं, लेकिन कभी उनको मौका ही नहीं मिला था कि तुम उनको भी मौका देते; तुम ही खुद इतने सशक्त थे कि तुम सारी शक्ति को लगा डालते थे। वह इधर से शक्ति तुम्हारी...

ये दरवाजे इनकार करेंगे कि क्षमा करो, इधर नहीं। वह जो शक्ति जग रही है, ये दरवाजे कहेंगे कि नहीं, हमारी कोई इच्छा देखने की नहीं है। तो जब देखने के लिए आंख इनकार कर दे और मन देखने की इच्छा से इनकार कर दे, तब भी जो शक्ति जग गई है देखने की, उसका क्या होगा? तो तुम किसी और आयाम में देखना शुरू कर दोगे; वह तुम्हारा बिल्कुल नया हिस्सा होगा। वही साइकिक सेंटर तुम्हारे देखने के खुलने शुरू हो जाएंगे। तुम कुछ ऐसी चीजें देखने लगोगे जो तुमने कभी नहीं देखीं, और ऐसी जगह से देखने लगोगे जहां से तुमने कभी नहीं देखीं। लेकिन उसको तो कभी मौका नहीं मिला था। उसको कभी मौका ही नहीं मिला था तुम्हारे भीतर से। तो उसके लिए मौका बनेगा।

अतींद्रिय केंद्रों का सक्रिय होना

तो थकाने का मेरा जोर है। इधर शरीर को थका डालना है, मन को थका डालना है--तुम जो हो, उसको थका डालना है--ताकि तुम जो अभी हो, लेकिन तुम्हें पता नहीं, वह सक्रिय हो सके तुम्हारे भीतर। और ऊर्जा जगेगी, वह तो फौरन कहेगी हमें... ऊर्जा जगेगी तो वह कहेगी काम चाहिए। और काम तुम्हारे अस्तित्व को देना पड़ेगा उसे। वह खुद काम खोज लेगी। तुम्हारे कान थके हैं, तो भी वह ऊर्जा जग गई है, तो वह सुनना

चाहेगी तो नाद सुनेगी। उन नादों के लिए तुम्हारे कान की कोई जरूरत नहीं है। तुम्हारी आंखों की कोई जरूरत नहीं है, ऐसा प्रकाश देखेगी। ऐसी सुगंध आने लगेगी जिसके लिए तुम्हारी नाक की कोई जरूरत नहीं है।

तो तुम्हारे भीतर सूक्ष्मतर इंद्रियां, या अतींद्रियां, जो भी हम नाम देना पसंद करें, वे सक्रिय हो जाएंगी। और हमारी सब इंद्रियों के साथ एक-एक अतींद्रिय का जोड़ है। यानी एक कान तो वह है जो बाहर से सुनता है, और एक कान और है तुम्हारे भीतर जो भीतर सुनता है। लेकिन उसको तो कभी मौका नहीं मिला। तो जब तुम्हारा बाहर का कान थका है और ऊर्जा जगकर कान के पास आ गई है, और कान कहता है, मुझे सुनना नहीं, सुनने की कोई इच्छा ही नहीं, तब वह ऊर्जा क्या करेगी? वह तुम्हारे उस दूसरे कान को सक्रिय कर देगी जो सुन सकेगा, जिसने कभी नहीं सुना।

इसलिए ऐसी चीजें तुम सुनोगे, ऐसी चीजें देखोगे, कि तुम किसी से कहोगे तो वह कहेगा, पागल हो! ऐसा कहीं होता है! किसी वहम में पड़ गए होओगे, कोई सपना देख लिया होगा! लेकिन तुम्हें तो वह इतना स्पष्ट मालूम पड़ेगा जितना कि बाहर की वीणा कभी मालूम नहीं पड़ी। वह भीतर की वीणा इतनी स्पष्ट होगी कि तुम कहोगे, हम कैसे मानें? अगर यह झूठ है तो फिर बाहर की वीणा का क्या होगा, वह तो बिल्कुल ही झूठ हो जाएगी!

तो तुम्हारी इंद्रियों का थकना तुम्हारे अस्तित्व के नये द्वारों के खुलने के लिए प्रारंभिक रूप से जरूरी है। एक दफा खुल जाए, फिर तो कोई बात नहीं। क्योंकि फिर तो तुम्हारे पास तुलना भी होती है कि अगर देखना ही है तो फिर भीतर ही देखो; क्योंकि इतना आनंदपूर्ण है कि क्यों फिजूल बाहर देखता रहूं! लेकिन अभी तुलना नहीं है तुम्हारे पास; अभी तो देखना है तो बाहर ही देखना है। एक ही विकल्प है। एक बार तुम्हारी भीतर की आंख भी देखने लगे, तब तुम्हारे सामने विकल्प साफ है। तो जब भी देखने का मन होगा, तुम भीतर देखना चाहोगे। क्यों मौका चूकना! बाहर देखने से क्या मतलब है!

राबिया के जीवन में उल्लेख है कि सांझ को सूरज ढल रहा है और वह अंदर अपने झोपड़े में बैठी है। हसन नाम का फकीर उससे मिलने आया है। सूरज ढल रहा है और बड़ी सुंदर सांझ है। तो हसन उससे चिल्लाकर कहता है कि राबिया, तू क्या कर रही है भीतर? बहुत सुंदर सांझ है; इतना सुंदर सूर्यास्त मैंने कभी देखा नहीं; ऐसा सूर्य दोबारा देखने नहीं मिलेगा, बाहर आ! तो राबिया उससे कहती है कि पागल, कब तक बाहर के सूर्य को देखता रहेगा! मैं तुझसे कहती हूं, तू भीतर आ! क्योंकि हम उसे देख रहे हैं जिसने सूर्य को बनाया; और हम ऐसे सूर्य देख रहे हैं जो अभी अनबने हैं और कभी बनेंगे। तो अच्छा हो कि तू भीतर आ!

अब वह हसन नहीं समझ पाया कि वह क्या कह रही है। पर यह औरत बहुत अदभुत हुई। दुनिया में जिन स्त्रियों ने कुछ किया है, उन दो-चार स्त्रियों में एक है वह राबिया। पर वह हसन नहीं समझ पाया। वह उससे फिर कह रहा है कि देख, सांझ चूकी जा रही है! और वह राबिया कह रही है कि पागल, तू सांझ में ही चूक जाएगा; इधर भीतर बहुत कुछ चूका जा रहा है।

वह बिल्कुल दो तल पर बात हो रही है, क्योंकि वह दो अलग इंद्रियों की बात हो रही है। लेकिन अगर दूसरी इंद्रिय का तुम्हें पता नहीं, तो भीतर का कोई मतलब ही नहीं होता, बाहर का ही सब मतलब होता है। इस अर्थ में मैंने कहा कि वे थक जाएं, तो शुभ है।

थकाने का अर्थ ऊर्जाहीनता नहीं है

प्रश्नः तो इस प्रयोग में थकाने का अर्थ ऊर्जाहीनता नहीं है!

नहीं, बिल्कुल नहीं। ऊर्जा तो जग रही है, ऊर्जा तो जग रही है; ऊर्जा को जगाने के लिए ही सारा काम चल रहा है। हां, इंद्रियां थक रही हैं। इंद्रियां ऊर्जा नहीं हैं, सिर्फ ऊर्जा के बहने के द्वार हैं। यह दरवाजा मैं नहीं हूं, मैं तो और हूं। इस दरवाजे से बाहर-भीतर आता-जाता हूं। दरवाजा थक रहा है, और दरवाजा कह रहा है--कृपा करके हमसे बाहर मत जाओ, बहुत थके हुए हैं। लेकिन कहां जाओगे, फिर रहना तो भीतर पड़ेगा। दरवाजा कह रहा है--हम बहुत थके हुए हैं, अब कृपा करो कि मत जाओ बाहर; क्योंकि जाओगे तो हमें फिर काम में लगना पड़ेगा। आंख कह रही है कि हम थक गए हैं, अब इधर से यात्रा मत करो।

इंद्रियां थक रही हैं। और इनका थकना प्राथमिक रूप से बड़ा सहयोगी है। उस अर्थ में।

तादात्म्य के कारण थकान

प्रश्नः यह ऊर्जा यदि अधिक है तो टायर्डनेस नहीं लगनी चाहिए, फ्रेशनेस लगनी चाहिए।

नहीं, शुरू में लगेगी। धीरे-धीरे तो तुम्हें बहुत ताजगी लगेगी, जैसी ताजगी तुमने कभी नहीं जानी। लेकिन शुरू में थकान लगेगी। शुरू में थकान इसलिए लगेगी कि तुम्हारी आइडेंटिटी इन इंद्रियों से है। इन्हीं को तुम समझते हो "मैं"। तो जब इंद्रियां थकती हैं, तुम कहते हो, मैं थक गया। इससे तुम्हारी आइडेंटिटी टूटनी चाहिए न! जिस दिन...

ऐसा मामला है कि तुम्हारा घोड़ा थक गया, तुम घोड़े पर बैठे हो। लेकिन तुम सदा से समझते थे कि मैं घोड़ा हूं। अब घोड़ा थक गया, अब तुमने कहा, हम मरे, हम थक गए। वह हमारे थकने का जो मतलब है, हमारी आइडेंटिटी जिससे है, वही हम कहते हैं। मैं घोड़ा हूं, तो मैं थक गया।

जिस दिन तुम जानोगे कि मैं घोड़ा नहीं हूं, उस दिन तुम्हारी फ्रेशनेस बहुत और तरह से आनी शुरू होगी। और तब तुम जानोगे कि इंद्रियां थक गई हैं, लेकिन मैं कहां थका! बल्कि इंद्रियां चूंकि थक गई हैं और काम नहीं कर रही हैं, इसलिए बहुत सी ऊर्जा जो उनसे विकीर्ण होकर व्यर्थ हो जाती थी, वह तुम्हारे भीतर संरक्षित हो गई है और पुंज बन गई है। और तुम ज्यादा, जिसको कहना चाहिए कंजर्वेशन ऑफ एनर्जी अनुभव करोगे कि तुमने बहुत ऊर्जा बचाई जो तुम्हारी संपत्ति बन गई है। और चूंकि बाहर नहीं गई, इसलिए तुम्हारे रोएं-रोएं पोर-पोर में भीतर फैल गई है। लेकिन इससे तुम एक हो, यह तुम्हें जब ख्याल आना शुरू होगा, तभी तुम्हें फर्क लगेगा।

ध्यान से ताजगी

तो धीरे-धीरे तो ध्यान के बाद बहुत ही ताजगी मालूम होगी। ताजगी कहना ही गलत है, तुम ताजगी हो जाओगे। यानी ऐसा नहीं कि ऐसा लगेगा कि ताजगी मालूम हो रही है। तुम ताजगी हो जाओगे--यू विल बी दि फ्रेशनेस। लेकिन वह तो आइडेंटिटी बदलेगी तब। अभी तो घोड़े पर बैठे हो, बहुत मुश्किल से, जिंदगी भर यही समझा है कि मैं घोड़ा हूं। सवार हूं, इसको समझने में वक्त लगेगा। और शायद घोड़ा थककर गिर पड़े, तो आसानी हो जाए तुम्हें। अपने पैर से चलना पड़े थोड़ा, तो पता चले कि मैं तो अलग हूं। लेकिन घोड़े पर ही चलते-चलते यह ख्याल ही भूल गया है कि मैं भी चल सकता हूं। ऐसा है! इसलिए थकेगा घोड़ा तो अच्छा होगा।

नौवां प्रवचन

श्वास की कीमिया

प्रश्नः रूस के बहुत बड़े अध्यात्मविद और मिस्टिक जॉर्ज गुरजिएफ ने अपनी आध्यात्मिक खोज-यात्रा के संस्मरण "मीटिंग्स विद दि रिमार्केबल मेन" नामक पुस्तक में लिखे हैं। एक दरवेश फकीर से उनकी काफी चर्चा भोजन को चबाने के संबंध में तथा योग के प्राणायाम व आसनों के संबंध में हुई, जिससे वे बड़े प्रभावित भी हुए। दरवेश ने उन्हें कहा कि भोजन को कम चबाना चाहिए, कभी-कभी हड्डी सहित भी निगल जाना चाहिए; इससे पेट शक्तिशाली होता है। इसके साथ ही दरवेश ने उन्हें किसी भी प्रकार के श्वास के अभ्यास को न करने का सुझाव दिया। दरवेश का कहना था कि प्राकृतिक श्वास-प्रणाली में कुछ भी परिवर्तन करने से सारा व्यक्तित्व अस्तव्यस्त हो जाता है और उसके घातक परिणाम होते हैं। इस संबंध में आपका क्या मत है?

इसमें पहली बात तो यह है कि यह तो ठीक है कि अगर भोजन चबाया न जाए, तो पेट शक्तिशाली हो जाएगा। और जो काम मुंह से कर रहे हैं वह काम भी पेट करने लगेगा। लेकिन इसके परिणाम बहुत घातक होंगे।

पहली तो बात यह है कि मुंह जो है वह पेट का हिस्सा है। वह पेट से अलग चीज नहीं है। वह पेट की शुरुआत है। पेट और मुंह दो चीजें नहीं हैं, दो अलग चीजें नहीं हैं; मुंह पेट की शुरुआत है। तो कहां से पेट शुरू होता है, यह जिस आदमी से गुरजिएफ की बात हुई उस दरवेश को कुछ पता नहीं है। पेट कहां से शुरू होता है? पेट मुंह से शुरू होता है। और अगर मुंह का काम आपने नहीं किया... उसका काम है और अनिवार्य काम है। अगर उसे आप छोड़ दें तो पेट उस काम को करने लगेगा। लेकिन उस करने में दोहरे नुकसान होंगे।

मुंह के साथ मस्तिष्क के आंतरिक संबंध

एक नुकसान तो यह होगा कि शरीर का सारा काम बंटा हुआ है। एक तरह का डिवीजन ऑफ लेबर है, श्रम विभाजित है शरीर में। अगर हम इस श्रम-विभाजन को तोड़ दें और एक ही अंग से और काम भी लेने लगें, तो वह अंग तो शक्तिशाली हो जाएगा, लेकिन जिस अंग से हम काम लेना बंद कर देंगे वह एकदम शक्तिहीन हो जाएगा। और पेट अगर बहुत शक्तिशाली हो तो आप एक पशु तो हो जाएंगे बड़े शक्तिशाली, लेकिन अगर मुंह कमजोर हो जाए तो आप मनुष्य नहीं रह जाएंगे। क्योंकि मुंह की कमजोरी के बहुत घातक परिणाम हैं। क्योंकि मुंह के साथ हमारे मस्तिष्क के बहुत आंतरिक संबंध हैं, जैसे पेट के संबंध हैं, वैसे मस्तिष्क के संबंध हैं। और हमारे मुंह के शक्तिशाली होने पर निर्भर करता है कि हमारे मस्तिष्क के स्नायु शक्तिशाली हों।

तो जैसे एक आदमी अगर गूंगा है, बोल नहीं सकता, तो उसके मस्तिष्क के बहुत से हिस्से सदा के लिए बेकार रह जाएंगे। गूंगा आदमी बुद्धिमान नहीं हो सकता। अंधा आदमी बहुत बुद्धिमान हो जाएगा। गूंगा आदमी ईडियट हो जाएगा, उसमें बुद्धि विकसित नहीं होगी। क्योंकि उसके मुंह के साथ बहुत से उसके मस्तिष्क के जोड़ हैं। और मुंह के चलाने के साथ आपके पेट का चलना शुरू हो जाता है। अगर आप मुंह न चलाएं, तो पेट का जो चलना शुरू होना है वह भी बहुत कठिन बात है। और हमारे मुंह के पास कुछ चीजें हैं, जो पेट के पास नहीं हैं।

प्रश्नः सलाइवा?

हां, सलाइवा; जो कि नहीं है पेट के पास और उसके लिए उसे अतिरिक्त श्रम करना पड़े। और यह बात सच है कि कोई अंग अगर काम करे तो शक्तिशाली होता है। लेकिन अगर उसे ऐसा काम करना पड़े जो कि उसका नहीं है, तो क्षीण होता है; क्योंकि उस पर अतिरिक्त भार है।

और भी बड़े मजे की बात है कि पेट के बहुत से काम को जब हम विभाजित कर देते हैं--कुछ मुंह कर लेता है, कुछ पेट कर लेता है--तो हमारी जो ऊर्जा है, हमारी जो एनर्जी है, वह पेट पर केंद्रित नहीं हो पाती। वह पेट से मुक्त होना शुरू होती है। इसलिए जैसे ही आप खाना खाते हैं, नींद आनी शुरू हो जाती है। क्योंकि आपके मस्तिष्क में जो शक्ति थी वह भी पेट अपने भीतर बुला लेता है। वह कहता है कि अब उसे भी काम में लगा देना है। क्योंकि खाना बहुत बुनियादी तत्व है जीवन के लिए। सोचना वगैरह गौण बातें हैं, इनमें पीछे लगेंगे, अभी पेट को पचा लेने दें। तो जैसे ही आप खाना खाते हैं, वैसे ही मन सोने का होने लगता है। उसका कारण यह है कि मस्तिष्क से सारी ऊर्जा वापस बुला ली गई।

पेट पर जितना काम बढ़ेगा, मस्तिष्क उतना कमजोर होता चला जाएगा। क्योंकि उसको उतनी ऊर्जा की जरूरत पड़ेगी। और जो नॉन-एसेंशियल हिस्से हैं जीवन में, वह उनसे खींच लेगा। मस्तिष्क जो है वह लग्जूरियस हिस्सा है। उसके बिना जानवर काम चला रहे हैं। वह कोई जीवित होने के लिए जरूरी हिस्सा नहीं है। लेकिन पेट जीवित होने के लिए जरूरी हिस्सा है। उसके बिना कोई काम नहीं चला रहा, वृक्ष भी काम नहीं चला सकता उसके बिना। तो वह बहुत एसेंशियल केंद्रीय तत्व है।

तो हमारे मस्तिष्क वगैरह को शक्ति तभी मिलती है, जब वह पेट से बचती है। अगर वह पेट में लग जाए तो वह मस्तिष्क को नहीं मिलती। इसलिए गरीब कौम के पास मस्तिष्क धीरे-धीरे क्षीण होने लगता है, विकसित नहीं होता। क्योंकि उसकी पेट पर सारी की सारी शक्ति लग जाती है। और उसके पेट से ही कुछ नहीं बचता कि वह कहीं और जा सके, शरीर के और हिस्सों में फैलाव हो सके।

रिफाइंड फूड से मस्तिष्क का विकास

तो जितना हम पेट का काम कम कर दें, उतना ही मस्तिष्क विकसित होता है। इसलिए जितना रिफाइंड फूड है, जिसको कि पेट को पचाने में कम से कम ताकत लगती है, उतना मस्तिष्क विकसित होता चला जाता है। इसलिए जिस दिन हम सिंथेटिक फूड ले सकेंगे, सिर्फ गोली आपने ली और आपका काम पूरा हो गया, उस दिन मस्तिष्क को इतनी ऊर्जा मिलेगी जितनी कभी भी नहीं मिली। और उस ऊर्जा के अनंत परिणाम होंगे।

असल में, पेट का काम नहीं बढ़ाना है, पेट का काम रोज कम करना है। अगर गौर से देखें तो जैसे-जैसे नीचे उतरेंगे उतना पेट का काम ज्यादा पाएंगे पशु में। जैसे एक भैंस है, वह चौबीस घंटे ही चबा रही है, चौबीस घंटे ही खा रही है। उसका पेट का ही काम पूरा नहीं हो पाता। इसलिए मस्तिष्क जैसी चीज की उसमें झलक नहीं मिल पाती। मनुष्य उतना ही विकसित होता चला जाएगा जितनी पेट से ऊर्जा उसकी मुक्त होने लगेगी। अगर बहुत ठीक से समझें तो जिस दिन मनुष्य पेट से मुक्त होगा उसी दिन पशुता से मुक्त हो जाएगा। उस दिन के बाद उसको पशु होने का कोई अर्थ नहीं है। और इसलिए पेट का काम बढ़ाना नहीं है, पेट का काम निरंतर कम करना है।

उपवास का यही प्रयोजन है। क्योंकि पेट का काम कुछ देर के लिए बिल्कुल बंद हो जाए, तो मस्तिष्क के लिए पूरी शक्ति मिल जाती है। इसलिए उपवास के क्षण में मस्तिष्क में शक्ति का बड़ा तीव्र प्रवाह होता है।

ज्यादा खाना खा लें तो मस्तिष्क की शक्ति सब पेट में चली जाती है तत्काल। इसलिए बहुत खाना खा लें तो फिर तो मस्तिष्क काम कर ही नहीं सकता। तो इसलिए पेट का काम निरंतर कम करना है। मुंह उसमें हाथ बंटाता है। इसलिए जितना आप चबा लें उतना हितकर है। यानी इतना चबा लें कि पेट को काम ही न बचे तो और भी ज्यादा हितकर है। और बड़े मजे की बात यह है, बड़े मजे की बात यह है, इसको थोड़ा सा देखने जैसा है, क्योंकि आदमी का सारा विकास पेट से मुक्त होने का विकास है। वह धीरे-धीरे पेट से मुक्त होने की कोशिश में लगा हुआ है। ठीक से ठीक भोजन खोज रहा है कि उसको डाइजेशन का उपद्रव कम हो जाए।

तो एक तो मैं तो इसमें गवाही नहीं दूंगा।

अच्छा दूसरी बात यह है कि हमारे मस्तिष्क का जो हिस्सा है... मुंह दो चीजों से जुड़ा है--इधर पेट से और इधर मस्तिष्क से। मुंह दोनों के बीच में पड़ता है। अगर हम आदमी का सारा विकास देखें तो वह, ठीक समझें हम तो, मुंह का ही विकास है। बाकी सारा शरीर इस छोटे से सिर का ही काम कर रहा है। बाकी सब जो है वह फैक्ट्री इस छोटे से सिर के लिए चल रही है। चाहे हमारा प्रेम हो, चाहे हमारी बुद्धि हो, चाहे हमारी प्रतिभा हो, वह बहुत गहरे में हमारे मुंह से संबंधित है। और इसका हम कैसे उपयोग करते हैं, कितना ज्यादा उपयोग करते हैं, यह कितना मजबूत होता है, उतनी ही ऊर्जा नीचे की तरफ जाने की बजाय ऊपर की तरफ जानी शुरू होती है। तो इसका तो ज्यादा से ज्यादा उपयोग होना चाहिए।

और अगर ठीक से चबाया हो किसी ने तो उसके दांत ही नहीं गिरेंगे। अगर ठीक से चबाया हो, तो वह जो बात कह रहा है दरवेश, वह कभी नहीं घटेगी। अगर किसी ने जिंदगी भर ठीक से चबाया तो दांत तो गिरेंगे ही नहीं। वह मरते दम तक अपने ठीक वही दांत लेकर जाएगा जो दांत लेकर आया था। शायद उससे भी ज्यादा मजबूत, क्योंकि वे इतना काम कर चुके होंगे। और जितना उसका मुंह मजबूत हो, उतना ही उसका पेट मजबूत होगा। क्योंकि मुंह शुरुआत है उसके पेट की। यानी मुंह जो है वह पेट का द्वार ही है। वह पेट से अलग कोई चीज नहीं। उसको अलग मानकर चलना गलत है। और अगर हड्डी, जैसा वह कह रहा है कि हड्डी भी ऐसे ही गटक जाओ, गटक सकते हैं आप, और पेट उसकी भी चेष्टा करेगा, लेकिन वह इनह्यूमन चेष्टा होगी। और तब पेट को इतनी शक्ति की जरूरत पड़ेगी कि आप कुछ और काम ही नहीं कर पाएंगे, बस हड्डी पचा ली तो बहुत काम हो गया। और आप पेट केंद्रित हो जाएंगे। आपका व्यक्तित्व जो है वह पेट पर केंद्रित हो जाएगा।

जीवन के महत्वपूर्ण काम--अंधेरे में

और दूसरी और जो बात है वह यह है कि पेट जितने अचेतन में हो उतना अच्छा। आपको उसका पता न चले, उतना उसकी वर्किंग जो है, स्मूथ और अच्छी होगी। अगर आपको पेट का पता चले तो आप रुग्ण हो जाएंगे। असल में, हमारे व्यक्तित्व में कुछ चीजें हैं, जो हमारी चेतना में नहीं होनी चाहिए। चेतना में होंगी तो आप नुकसान पाएंगे। तो पेट का काम जितना हलका हो, उतना ही अचेतन होगा, अनकांशस होगा। आपको पता नहीं चलेगा पेट का।

और जितना पेट का कम पता चलेगा उतने आप स्वस्थ और वेल बीइंग अनुभव करेंगे। अगर ठीक से समझें तो आपकी जो इलनेस का जो बोध है बीमारी का वह पेट के बोध से शुरू होता है। जैसे ही आपको पता चला कि पेट भी है शरीर में कि आप बीमार हुए। अगर आपको पता न चले कि पेट है तो आप स्वस्थ हैं। और पेट का जो काम है वह जो है आपकी अचेतना का काम है। जीवन के जितने महत्वपूर्ण काम हैं, वे अंधेरे में होते हैं और उनके लिए चेतना की जरूरत नहीं है। जड़ें अंधेरे में, जमीन में बड़ी होती हैं। बच्चा मां के पेट में अंधेरे में

बड़ा होता है। हमारे पेट का सारा का सारा काम हमारे ज्ञान के बाहर होता है। आपके ज्ञान के भीतर उसको लाने की जरूरत नहीं है। लेकिन अगर पेट पर बहुत काम आपने डाला तो वह आपके ज्ञान के भीतर आ जाएगा तत्काल, क्योंकि उस पर अतिरिक्त श्रम पड़ेगा। और पेट ज्ञान में आया तो आप चौबीस घंटे रुग्ण हैं।

तो गुरजिएफ को कुछ तो बहुत अदभुत बातों का ख्याल था। लेकिन एक खतरा उसके साथ हुआ और वह यह कि वह बहुत सी परंपराओं से संबंधित था। इसलिए कई अर्थों में वह भानुमति का पिटारा है। और वह कभी भी तय नहीं कर पाया कि इनके बीच तालमेल क्या है। अब यह बात जंचती है, दरवेश ने जब कही तो उसे यह बात जंच गई। अगर उसे जो मैं कह रहा हूं यह भी कहता, यह बात भी जंच सकती थी। और इन दोनों का तालमेल बिठालना बहुत मुश्किल हो जाता।

प्राणायाम और कृत्रिम श्वास से हानि का खतरा

दूसरी जो बात कह रहा है वह प्राणायाम और कृत्रिम श्वास के लिए, उसमें भी कुछ बातें सच हैं। असल में, ऐसा कोई असत्य नहीं होता जिसमें कि कुछ सत्य न हो; होता ही नहीं; होता ही नहीं। अच्छा वह जो उसमें सत्य होता है वही प्रभाव लाता है; और उसके साथ वह जो असत्य है वह भी सरक जाता है, हमें कभी पता नहीं चलता कि क्या हो गया। अब इसमें बहुत सच्चाई है कि जहां तक बने, साधारणतः, जीवन का जो सहज क्रम है, उसमें बाधा नहीं डालनी चाहिए। उपद्रव होने का डर है। तो जो व्यवस्था चल रही है सहज--आपकी श्वास की, उठने की, बैठने की, चलने की--जहां तक बने उसमें बाधा नहीं डालना उचित है। क्योंकि बाधा डालने से ही परिवर्तन शुरू होंगे।

यह ध्यान रहे कि हानि भी एक परिवर्तन है और लाभ भी एक परिवर्तन है; दोनों ही परिवर्तन हैं। तो आप जैसे हैं, अगर ऐसे ही रहना है, तब तो कुछ भी छेड़छाड़ करनी उचित नहीं है; लेकिन अगर कुछ भी इससे जाना है कहीं भी, कोई भी परिवर्तन करना है, कोई भी ट्रांसफार्मेशन, तो हानि का खतरा लेना पड़ेगा। वह जो... हानि का खतरा तो है ही, कि आपकी जो श्वास चल रही है अभी, अगर इसको और व्यवस्था दी जाए तो आपके पूरे व्यक्तित्व में अंतर पड़ेंगे। लेकिन अगर आप अपने व्यक्तित्व से राजी हैं, और सोचते हैं कि जैसा है ठीक है, तब तो उचित है। लेकिन अगर आप सोचते हैं कि यह व्यक्तित्व पर्याप्त नहीं मालूम होता, तो अंतर करने पड़ेंगे।

श्वास परिवर्तन से व्यक्तित्व में रूपांतरण

और तब श्वास पर अंतर सबसे कीमती बात है। और ये जो... जैसे ही श्वास पर आप अंतर करेंगे वैसे ही आपके भीतर बहुत सी चीजें टूटनी और बहुत सी नई चीजें बननी शुरू हो जाएंगी। अब हजारों प्रयोग के बाद यह तय किया गया है कि वह श्वास के किस प्रयोग से कौन सी चीजें बनेंगी, कौन सी टूटेंगी। और अब करीब-करीब सुनिश्चित बात हो गई है।

जैसे कुछ तो हम सबके भी अनुभव में होता है। जैसे जब आप क्रोध में होते हैं तो श्वास बदल जाती है; वह वैसी नहीं रहती जैसी थी। अगर कभी बहुत ही साइलेंस अनुभव होगी तो भी श्वास बदल जाएगी; वह वैसी नहीं रहेगी जैसी थी। अगर आपको पता चल गया है कि साइलेंस में श्वास कैसी हो जाती है, तो आप अगर वैसी श्वास कर सकें तो साइलेंस पैदा हो जाएगी। ये जो दोनों हैं, ये दोनों इंटर-कनेक्टेड हैं। जब मन कामातुर होगा तो श्वास बदल जाएगी। अगर मन कामातुर हो और आप श्वास को न बदलने दें, तो आप फौरन पाएंगे कि कामातुरता विदा हो गई। वह काम विलीन हो जाएगा, वह टिक नहीं सकता; क्योंकि बॉडी के मेकेनिज्म में

सारी चीजों में तारतम्य होना चाहिए तभी कुछ हो सकता है। अगर क्रोध जोर से आ रहा है और उस वक्त आप श्वास धीमी लेने लगें, तो क्रोध टिक नहीं सकता; क्योंकि श्वास में उसको टिकने की जगह नहीं मिलेगी।

श्वास और मन के वैज्ञानिक नियम

तो श्वास के जो अंतर हैं, वे बड़े कीमती हैं। और श्वास के अंतर से आपके मन का अंतर पड़ना शुरू होगा। और जब साफ हो चुका है और बहुत वैज्ञानिक रूप से साफ हो चुका हैः श्वास की कौन सी गति पर मन की क्या गति होगी, तब खतरे नहीं हैं। खतरे थे उनको जिन्होंने प्रारंभिक प्रयोग किए हैं; खतरा आज भी है उसको जो जीवन की किसी भी दिशा में प्रारंभिक प्रयोग करता है। लेकिन जब प्रयोग साफ हो जाते हैं तो वे बहुत साइंटिफिक हैं। यानी यह असंभव है कि एक आदमी श्वास को शांत रखे और क्रोध कर ले। यह असंभव है, ये दोनों बातें एक साथ नहीं घट सकतीं। इससे उलटा भी संभव है कि अगर आप उसी तरह की श्वास लेने लगें जैसी आप क्रोध में लेते हैं, तो आप थोड़ी देर में पाएं कि आपके भीतर क्रोध जग गया। तो प्राणायाम ने आपके चित्त के परिवर्तन के लिए बहुत से उपाय खोजे हैं।

प्राकृतिक और अप्राकृतिक श्वास

और दूसरी बात यह है कि जिसको हम कह रहे हैं आर्टिफीशियल ब्रीदिंग और जिसको हम नेचरल कह रहे हैं, यह फासला भी समझने जैसा है। जिसको आप नेचरल कह रहे हैं, वह भी नेचरल नहीं है; वह ब्रीदिंग नेचरल नहीं है। बल्कि बहुत ठीक से समझा जाए तो वह ऐसी आर्टिफीशियल ब्रीदिंग है जिसके आप आदी हो गए हैं; जिसको आप बहुत दिन से कर रहे हैं इसलिए आदी हो गए हैं; बचपन से कर रहे हैं इसलिए आदी हो गए हैं। आपको पता नहीं है कि नेचरल ब्रीदिंग क्या है। इसलिए दिन भर आप एक तरह से लेते हैं श्वास, रात में आप दूसरी तरह से लेते हैं। क्योंकि दिन में जो ली थी वह आर्टिफीशियल थी, और इसलिए रात में नेचरल शुरू होती है जो कि आपकी हैबिट के बाहर है।

तो रात की ही श्वास की प्रक्रिया ज्यादा स्वाभाविक है बजाय दिन के। दिन में तो हमने आदत डाली है ब्रीदिंग की, और आदत के हमारे कई कारण हैं। जब आप भीड़ में चलते हैं तब आप एहसास करें, जब आप अकेले में बैठते हैं तब एहसास करें, तो आप पाएंगे आपकी ब्रीदिंग बदल गई। भीड़ में आप और तरह से श्वास लेते हैं, अकेले में और तरह से। क्योंकि भीड़ में आप टेंस होते हैं। चारों तरफ लोग हैं, तो आपकी ब्रीदिंग छोटी हो जाएगी; ऊपर से ही जल्दी लौट जाएगी; पूरी गहरी नहीं होगी। जब आप आराम से बैठे हैं, अकेले हैं, तो वह पूरी गहरी होगी। इसलिए जब रात आप सो गए हैं तो वह पूरी गहरी होगी। ... वह आपने दिन में कभी नहीं ली है, क्योंकि वह इतनी कभी गहरी नहीं गई कि आवाज भी कर सके।

पेट से श्वास लेना निर्दोषता का लक्षण

तो जिसको हम कह रहे हैं नेचरल वह नेचरल नहीं है, सिर्फ कंडीशंड आर्टिफीशियल है; निश्चित हो गई है, आदत हो गई है। इसलिए बच्चे एक तरह से ब्रीदिंग ले रहे हैं। अगर बच्चे को सुलाएं, तो आप पाएंगे उसका पेट हिल रहा है, और आप ब्रीदिंग ले रहे हैं तो छाती हिल रही है।

बच्चा नेचरल ब्रीदिंग ले रहा है। अगर बच्चा जिस ढंग से श्वास ले रहा है, आप लें, तो आपके मन में वही स्थितियां पैदा होनी शुरू हो जाएंगी जो बच्चे की हैं। उतनी इनोसेंस आनी शुरू हो जाएगी जितनी बच्चे की है। या अगर आप इनोसेंट हो जाएंगे तो आपकी ब्रीदिंग पेट से शुरू हो जाएगी।

इसलिए जापान में और चीन में बुद्ध की जो मूर्तियां हैं, वे उन्होंने भिन्न बनाई हैं; वे हिंदुस्तानी मूर्तियों से भिन्न हैं। हिंदुस्तान में बुद्ध का पेट छोटा है; जापानी और चीनी मुल्कों में बुद्ध का पेट बड़ा है, छाती छोटी है।

हमें बेहूदी लगती है। हमें बेहूदी लगती है कि यह बेडौल कर दिया। लेकिन वही ठीक है। क्योंकि बुद्ध जैसा शांत आदमी जब श्वास लेगा तो वह पेट से ही लेगा। उतना इनोसेंट आदमी छाती से श्वास नहीं ले सकता, इसलिए पेट बड़ा हो जाएगा। वह पेट जो बड़ा है, वह प्रतीक है।

प्रश्नः झेन संत का?

हां, वह प्रतीक है। सब झेन मास्टर्स का पेट बड़ा है। वह प्रतीक है। उतना बड़ा न भी रहा हो, लेकिन वह बड़ा ही डिपिक्ट किया जाएगा। उसका कारण है कि वह श्वास जो है, वह पेट से ले रहा है; वह छोटे बच्चे की तरह हो गया है।

तो जब हमें यह ख्याल में साफ हो गया हो, तो नेचरल ब्रीदिंग की तरफ हमें कदम उठाने चाहिए। हमारी ब्रीदिंग आर्टिफीशियल है। वह दरवेश गलत कह रहा है कि आप आर्टिफीशियल ब्रीदिंग मत करो। आर्टिफीशियल ब्रीदिंग हम कर रहे हैं। तो जैसे ही हमें समझ बढ़ेगी, हम नेचरल ब्रीदिंग की तरफ कदम उठाएंगे। और जितनी नेचरल ब्रीदिंग हो जाएगी, उतने ही जीवन की अधिकतम संभावना हमारे भीतर से प्रकट होनी शुरू होगी।

और यह भी समझने जैसा है कि कभी-कभी एकदम आकस्मिक रूप से अप्राकृतिक ब्रीदिंग करने के भी बहुत फायदे हैं। और एक बात तो साफ ही है कि जहां बहुत फायदे हैं वहीं बहुत हानियां हैं। एक आदमी दुकानदारी कर रहा है, तो जितनी हानियां हैं उतने फायदे हैं। एक आदमी जुआ खेल रहा है, तो जितने फायदे हैं उतनी हानियां हैं। क्योंकि फायदा और हानि का अनुपात तो वही होनेवाला है। तो वह बात तो ठीक कह रहा है कि बहुत खतरे हैं, लेकिन आधी बात कह रहा है। बहुत संभावनाएं भी हैं वहां। वह जुआरी का दांव है।

तो अगर हम कभी किसी क्षण में थोड़ी देर के लिए बिल्कुल ही अस्वाभाविक--अस्वाभाविक इस अर्थों में कि जिसको हमने नहीं की है अभी तक--इस तरह की ब्रीदिंग करें, तो हमें अपने ही भीतर नई स्थितियों का पता चलना शुरू होता है। उन स्थितियों में हम पागल भी हो सकते हैं और उन स्थितियों में हम मुक्त भी हो सकते हैं--विक्षिप्त भी हो सकते हैं, विमुक्त भी हो सकते हैं। और चूंकि उस स्थिति को हम ही पैदा कर रहे हैं, इसलिए किसी भी क्षण उसे रोका जा सकता है। इसलिए खतरा नहीं है। खतरे का डर तब है, जब कि आप रोक न सकें। जब आपने ही पैदा किया है तो आप तत्काल रोक सकते हैं। और आपको प्रतिपल अनुभव होता है कि आप किस तरफ जा रहे हैं। आप आनंद की तरफ जा रहे हैं, कि दुख की तरफ जा रहे हैं, कि खतरे में जा रहे हैं, कि शांति में जा रहे हैं, वह आपको बहुत साफ एक-एक कदम पर मालूम होने लगता है।

अजनबी स्थिति के कारण मूर्च्छा पर चोट

और जब बिल्कुल ही आकस्मिक रूप से, तेजी से ब्रीदिंग बदली जाए, तो आपके भीतर की पूरी की पूरी स्थिति बदलती है एकदम से। जो हमारी सुनिश्चित आदत हो गई है श्वास लेने की, उसमें हमें कभी पता नहीं चल सकता कि मैं शरीर से अलग हूं। उसमें सेतु बन गया है, ब्रिज बन गया है। शरीर और आत्मा के बीच श्वास की एक निश्चित आदत ने एक ब्रिज बना दिया है। उसके हम आदी हो गए हैं।

यानी वह मामला ऐसा ही है कि जैसे आप रोज अपने घर जाते हैं और कार का आप व्हील घुमा लेते हैं और आपको कभी न सोचना पड़ता है, न विचार करना पड़ता है; आप अपने घर पर जाकर खड़े हो जाते हैं। लेकिन अचानक ऐसा हो कि व्हील आप दाएं मुड़ाएं और व्हील बाएं मुड़ जाए, कि जो रास्ता रोज आपका था, अचानक आप पाएं कि वह रास्ता आज पूरा का पूरा घूम गया है और दूसरा रास्ता उसकी जगह आ गया है, तब

एक स्ट्रेंजनेस की हालत में आप पहुंचेंगे, और पहली दफा आप होश से भर जाएंगे। वह जो होश से भर जाएंगे आप... स्ट्रेंजनेस जो है न, किसी भी चीज का अजनबीपन, वह आपकी मूर्च्छा को तोड़ देता है तत्काल। व्यवस्थित दुनिया, जहां सब रोज वही हुआ है, वहां आपकी मूर्च्छा कभी नहीं टूटती; आपकी मूर्च्छा टूटती है वहां, जहां अचानक कुछ हो जाता है।

जैसे कि मैं बोल रहा हूं, इसमें आपकी मूर्च्छा न टूटेगी। अचानक आप पाएं कि यह टेबल बोलने लगी, तो यहां एक आदमी भी बेहोश नहीं रह जाएगा। उपाय नहीं है बेहोश रहने का। यह टेबल अचानक बोल उठे, एक शब्द बोले--मैं हजार शब्द बोल रहा हूं तो भी आप मूर्च्छित सुनेंगे--लेकिन यह टेबल एक शब्द बोल दे तो आप सब इतनी अवेयरनेस में पहुंच जाएंगे जिसमें आप कभी नहीं गए; क्योंकि वह स्ट्रेंज है, और स्ट्रेंज आपके भीतर की सब स्थिति तोड़ देता है।

तो श्वास के अनूठे अनुभव जब स्ट्रेंजनेस में ले जाते हैं, तो आपके भीतर बड़ी नई संभावनाएं होती हैं और आप होश उपलब्ध कर पाते हैं और कुछ देख पाते हैं। और अगर कोई आदमी होशपूर्वक पागल हो सके, तो इससे बड़ा कीमती अनुभव नहीं है--होशपूर्वक अगर पागल हो सके।

प्रश्नः इंपासिबल है!

हां, यह इंपासिबल है, इसीलिए तो इससे कीमती अनुभव नहीं है।

ध्यान-प्रयोग में अजनबी, अज्ञात स्थितियों का बनना

तो यह जो मैं प्रयोग कह रहा हूं, यह प्रयोग जो है ऐसा है कि भीतर आपका पूरा होश है और बाहर आप बिल्कुल पागल हो गए हैं। जो कि आप कोई भी आदमी अगर कर रहा होता तो आप कहते, पागल है। भीतर तो आपको पूरा होश है और आप देख रहे हैं कि मैं नाच रहा हूं। और आप जानते हैं कि अगर यह कोई भी दूसरा आदमी कर रहा होता तो मैं कहता कि यह पागल है। अब आप अपने को पागल कह सकते हैं। लेकिन दोनों बातें एक साथ हो रही हैं--आप यह जान भी रहे हैं कि यह हो रहा है। इसलिए आप पागल भी नहीं हैं; क्योंकि आप होश में पूरे हैं और फिर भी वही हो रहा है जो पागल को होता है।

इस हालत में आपके भीतर एक ऐसा स्ट्रेंज मोमेंट आता है कि आप अपने को अपने शरीर से अलग कर पाते हैं। कर नहीं पाते, हो ही जाता है। अचानक आप पाते हैं कि सब तालमेल टूट गया। जहां कल रास्ता जुड़ता था वहां नहीं जुड़ता और जहां कल आपका ब्रिज जोड़ता था वहां नहीं जुड़ता; जहां व्हील घूमता था वहां नहीं घूमता। सब विसंगत हो गया है। वह जो रेलेवेंसी थी रोज-रोज की, वह टूट गई है; कहीं कुछ और हो रहा है। आप हाथ को नहीं घुमाना चाह रहे हैं, और वह घूम रहा है; आप नहीं रोना चाह रहे हैं, और आंसू बहे जा रहे हैं; आप चाहते हैं कि यह हंसी रुक जाए, लेकिन यह नहीं रुक रही है।

तो ऐसे स्ट्रेंज मोमेंट्स पैदा करना अवेयरनेस के लिए बड़े अदभुत हैं। और श्वास से जितने जल्दी ये हो जाते हैं, और किसी प्रयोग से नहीं होते। और प्रयोग में वर्षों लगाने पड़ें, श्वास में दस मिनट में भी हो सकता है। क्योंकि श्वास का इतना गहरा संबंध है हमारे व्यक्तित्व में कि उस पर जरा सी लगी चोट सब तरफ प्रतिध्वनित हो जाती है।

अव्यवस्थित श्वास का प्रयोग कीमती

तो श्वास के जो प्रयोग थे, वे बड़े कीमती थे। लेकिन प्राणायाम के जो व्यवस्थित प्रयोग हैं उन पर मेरा बहुत आग्रह नहीं है। क्योंकि जैसे ही वे व्यवस्थित हो जाते हैं, वैसे ही उनकी स्ट्रेंजनेस चली जाती है। जैसे एक आदमी एक-दो श्वास इस नाक से लेता है, फिर दो इससे लेता है। फिर इतनी देर रोकता है, फिर इतनी देर निकालता है। इसका अभ्यास कर लेता है। तो यह भी उसका अभ्यास का हिस्सा हो जाने के कारण सेतु बन जाता है। एमेथॉडिकल हो जाता है।

तो मैं जिस श्वास को कह रहा हूं, वह बिल्कुल नॉन-मेथॉडिकल है, एब्सर्ड है। उसमें न कोई रोकने का सवाल है, न छोड़ने का सवाल है। वह एकदम से स्ट्रेंज फीलिंग पैदा करने की बात है कि आप एकदम से ऐसी झंझट में पड़ जाएं कि इस झंझट को आप व्यवस्था न दे पाएं। अगर व्यवस्था दे दी, तो आपका मन बहुत होशियार है, वह उसमें भी राजी हो जाएगा कि ठीक है। वह इस नाक को दबा रहा है, इसको खोल रहा है; इतनी निकाल रहा है, उतनी बंद कर रहा है; तो उसका कोई मतलब नहीं है, वह एक नया सिस्टम हो जाएगा, लेकिन स्ट्रेंजनेस, अजनबीपन उसमें नहीं आएगा।

और आपको मैं चाहता हूं कि किसी क्षण में आपकी जो भी रूट्स हैं, जितनी भी जड़ें हैं और जितना भी आपका अपना परिचय है, वह सब का सब किसी क्षण में एकदम उखड़ जाए। एक दिन आप अचानक पाएं कि न कोई जड़ है मेरी, न मेरी कोई पहचान है, न मेरी कोई मां है, न मेरा कोई पिता है, न कोई भाई है, न यह शरीर मेरा है। आप एकदम ऐसी एब्सर्ड हालत में पहुंच जाएं जहां कि आदमी पागल होता है। लेकिन अगर आप इस हालत में अचानक पहुंच जाएं आपकी बिना किसी कोशिश के, तो आप पागल हो जाएंगे। और अगर आप अपनी ही कोशिश से इसमें पहुंचें तो आप कभी पागल नहीं हो सकते, क्योंकि यह आपके हाथ में है, अभी आप इसी सेकेंड वापस लौट सकते हैं।

ध्यान प्रयोग द्वारा पागलपन से मुक्ति

तो मेरा तो मानना है कि अगर हम पागल को भी इतनी श्वास--और मैं यहां चाहूंगा कि यह प्रयोग करने जैसा है--अगर हम पागल को भी यह श्वास का प्रयोग करवाएं तो उसके स्वस्थ हो जाने की पूरी संभावना है। क्योंकि अगर वह पागलपन को भी देख सके कि मैं पैदा कर लेता हूं, तो वह यह भी जान पाएगा कि मैं मिटा भी सकता हूं। अभी पागलपन उसके ऊपर उतर आया है, वह उसके हाथ की बात नहीं है।

इसलिए यह जो प्रयोग है, इसके खतरे हैं, लेकिन खतरे के भीतर उतनी ही संभावनाएं हैं। और पागल भी अगर इसको करे तो ठीक हो सकता है। और इधर मेरा ख्याल है पीछे कि इसको पागल के लिए भी इस प्रयोग को करवाने जैसा है। और जो आदमी इस प्रयोग को करता है उसकी गारंटी है कि वह कभी पागल नहीं हो सकता। वह इसलिए पागल नहीं हो सकता कि पागलपन को पैदा करने की उसके पास खुद ही कला है। जिस चीज को वह ऑन करता है उसको ऑफ भी कर लेता है। इसलिए आप उसको कभी पागल नहीं बना सकते। यानी किसी दिन ऐसा नहीं हो सकता कि वह अपने वश के बाहर हो जाए। क्योंकि उसने, जो वश के बाहर था, उसको भी वश में करके देख लिया है।

जिस श्वास की बात मैं कह रहा हूं, वह श्वास बिल्कुल ही नॉन-रिदमिक नॉन-मेथॉडिकल है। और कल जैसा किया था, वैसा भी आज नहीं कर सकते आप, क्योंकि उसका कोई मेथड ही नहीं है। कल जैसा किया था, वैसा भी आज नहीं कर सकते; अभी शुरू जैसा किया था, अंत करते तक भी वैसा नहीं कर सकते। वह जैसी होगी! और ख्याल सिर्फ इतना है कि आपकी सब जो कंडीशनिंग है माइंड की वह ढीली पड़ जाए।

वह जो दरवेश कह रहा है, वह ठीक कह रहा है कि कई नट और कई बोल्ट ढीले पड़ जाएंगे। वे करने हैं ढीले। वे नट-बोल्ट बहुत सख्ती से पकड़े हुए हैं और आत्मा और शरीर के बीच फासला नहीं हो पाता उनकी वजह से। वे एकदम से ढीले पड़ जाएं तो ही आपको पता चले कि कुछ और भी है भीतर, जो जुड़ा था और अलग हो गया है। लेकिन चूंकि वे श्वास की चोट से ही ढीले हुए हैं, वे श्वास की चोट जाते ही से अपने आप कस जाते हैं; उनको अलग से कसने के लिए कोई इंतजाम नहीं करना पड़ता। उनको इंतजाम करने की कोई जरूरत नहीं है।

हां, अगर श्वास पागलपन की हो जाए आपके भीतर, कि आपके वश के बाहर हो, आब्सेशन बन जाए और चौबीस घंटे उस ढंग से चलने लगे, तो फिर वह स्थिति खराब हो जा सकती है। लेकिन कोई घंटे भर के लिए अगर यह प्रयोग कर रहा है, और प्रयोग शुरू करता है और प्रयोग बंद कर देता है, तो जैसे ही वह प्रयोग बंद करता है, वैसे ही वे सब के सब अपनी जगह वापस सेट हो जाते हैं। आपको अनुभव भर रह जाता है पीछे कि एक अनुभव हुआ था जब मैं अलग था और अब सब चीजें फिर अपनी जगह सेट हो गई हैं। लेकिन अब सेट हो जाने के बाद भी आप जानते हैं कि मैं अलग हूं--जुड़ गया हूं, संयुक्त हूं, लेकिन फिर भी अलग हूं।

श्वास के बिना तो काम ही नहीं हो सकता है। हां, यह बात वह ठीक कह रहा है कि खतरे हैं। तो खतरे तो हैं ही, और जितने बड़े जीवन की हमारी खोज है उतने बड़े खतरे के लेने की हमें तैयारी होनी चाहिए। फर्क मैं इतना ही करता हूं कि एक तो वह खतरा है जो हम पर अचानक आ जाता है, उससे हम बच नहीं सकते; और एक वह खतरा है जो हम पैदा करते हैं, उससे हम कभी भी बच सकते हैं। यानी अब इतना मूवमेंट होता है शरीर का--इतना--रो रहा है कोई, चिल्ला रहा है, नाच रहा है, और एक सेकेंड उसको कि नहीं, तो वह सब गया। चूंकि यह क्रिएटेड है, यह उसने ही पैदा किया है सब, यह एक बात है। और यह अपने आप हो जाता है जब--कि एक आदमी सड़क पर खड़े होकर नाच रहा है--खुद नहीं उसने कुछ किया है, अब वह रोक भी नहीं सकता; क्योंकि कहां से यह आया, कैसे यह हुआ, उसे कुछ पता नहीं।

तो मेरी तो अपनी समझ यह है कि यह आज नहीं कल, जो मैं कह रहा हूं, यह एक बहुत बड़ी थैरेपी सिद्ध होगी। और आज नहीं कल, पागल को स्वस्थ करने के लिए यह अनिवार्य रास्ता बन जाएगा। और अगर हम प्रत्येक बच्चे को स्कूल में इसे करा सकें तो हम उस बच्चे के पागल नहीं होने की व्यवस्था किए दे रहे हैं; वह कभी पागल नहीं हो सकता। वह इम्यून हो जाएगा--एक। और वह मालिक हो जाएगा--इन सारी स्थितियों का मालिक हो जाएगा।

विभिन्न सूफी विधियां

लेकिन जिस दरवेश से उसकी बात हुई है, गुरजिएफ की, वे दूसरे पथ के राही हैं। उन्होंने श्वास का कोई प्रयोग नहीं किया। उन्होंने स्ट्रेंजनेस दूसरी तरह से पैदा की। और यही तकलीफ है। तकलीफ क्या है कि एक रास्ते को जाननेवाला आदमी तत्काल दूसरे रास्ते को गलत कह देगा। लेकिन कोई भी चीज किसी रास्ते के संदर्भ में गलत और सही होती है।

एक बैलगाड़ी में चके में एक डंडी लगी हुई है, कील लगी हुई है। एक कारवाला कह सकता है कि बिल्कुल बेकार! लेकिन कार के संदर्भ में बेकार होगी, वह बैलगाड़ी में उतनी ही सार्थक है जितनी कार में कोई चीज सार्थक हो।

तो किसी चीज का गलत और सही होना एब्सोल्यूट अर्थ नहीं रखता। लेकिन हमेशा यह भूल होती है।

रात्रि-जागरण

अब जैसे कि सूफी दरवेश है, वह दूसरे ढंग से इस तरफ पहुंचा है; उसके ढंग और हैं। जैसे सूफी जो है, वह निद्रा पर चोट करेगा, श्वास पर नहीं। तो नाइट विजिल्स की बड़ी कीमत है दरवेश के लिए। महीनों जागता रहेगा! लेकिन जागने से भी वही स्ट्रेंजनेस पैदा हो जाती है जो श्वास से पैदा होती है। अगर महीने भर जाग जाएं तो आप उसी तरह पागल हालत में पहुंच जाते हैं जिस हालत में श्वास से पहुंचेंगे।

तो एक तो नींद पर वह चोट करेगा, क्योंकि नींद बड़ी स्वाभाविक व्यवस्था है। उस पर चोट करने से फौरन आपके भीतर विचित्रताएं शुरू हो जाती हैं। लेकिन उसमें भी खतरे इतने ही हैं, बल्कि इससे ज्यादा हैं, क्योंकि लंबा प्रयोग करना पड़े। एक दिन की नींद के तोड़ने से नहीं होता वह। महीने भर, दो महीने की नींद तोड़ देनी पड़े।

लेकिन दो महीने की नींद तोड़कर अगर कुछ हो जाए तो एक सेकेंड में आप बंद नहीं कर सकते उसको। लेकिन दस मिनट की श्वास से कुछ भी हो जाए तो एक सेकेंड में बंद हो जाता है। दो महीने की नींद अगर नहीं ली है, तो आप अगर आज सो भी जाओ तो भी दो महीने की नींद आज पूरी नहीं होनेवाली। और दो महीने जो नहीं सोया है, वह आज शायद सो भी न पाए; क्योंकि वह जरा खतरनाक जगह से उसने काम शुरू किया है।

तो नाइट विजिल का बड़ा उपयोग है; फकीर रात-रात भर जागकर प्रतीक्षा करेंगे कि क्या होता है। तो उन्होंने उससे शुरू किया है। दूसरा उन्होंने नृत्य से भी शुरू किया है।

नृत्य का उपयोग

नृत्य को भी उपयोग किया जा सकता है शरीर से अलग होने के लिए। लेकिन वे भी उनके प्रयोग ऐसे ही हैं कि अगर नृत्य सीखकर किया आपने तो नहीं हो सकेगा। जैसा कि मैंने कहा कि प्राणायाम से नहीं होगा, क्योंकि वह व्यवस्थित है। अब एक आदमी ने अगर नृत्य सीख लिया, तो वह शरीर के साथ एक हो जाता है। नहीं, आप--जो कि नाच जानते नहीं--आप से मैं कहूं--नाचिए! और आप एकदम नाचना शुरू कर दें, कूदना-फांदना, तो हो जाएगा। हो जाएगा इसलिए कि यह इतना स्ट्रेंज मामला है कि आप इसके साथ अपने को एक न कर पाएंगे कि यह मैं नाच रहा हूं! यह आप एक न कर पाएंगे। तो नाच से उन्होंने प्रयोग शुरू किए हैं, रात की नींद से शुरू किए हैं।

ऊन के वस्त्र, उपवास, कांटे की शय्या

और तरह की उपद्रव की चीजें, जैसे कि ऊन के वस्त्र हैं। अब ठेठ रेगिस्तान की गरम हालत में ऊन पहने हुए हैं! तो शरीर के विपरीत चल रहे हैं। कोई उपवास कर रहा है, वह भी शरीर के विपरीत चल रहा है। कोई कांटे पर पैर रखे बैठा है, कोई कांटे की शय्या बिछाकर उस पर लेट गया है, वे सब स्ट्रेंजनेस पैदा करने की तरकीबें हैं।

लेकिन एक पथ के राही को कभी ख्याल में नहीं आता, और स्वभावतः नहीं भी आता है, कि दूसरे पथ से भी ठीक यही स्थिति पैदा हो सकती है।

तो वह दरवेश को तो कुछ पता नहीं प्राणायाम के बाबत। हां, अगर वह कुछ करेगा तो नुकसान उठा सकता है। वह कुछ करेगा तो नुकसान उठा सकता है और खतरे ज्यादा हो सकते हैं। खतरे ऐसे हो सकते हैं, जैसे कि एक बैलगाड़ी की कील को आपने कार के चाक में लगा दिया हो। तो वह कहेगा कि भई, यह कील बड़ी खतरनाक है, कभी मत लगाना, क्योंकि इससे तो हमारी गाड़ी खराब हो गई।

अब जो आदमी रात भर जग रहा है, अगर वह प्राणायाम का प्रयोग करे तो पागल हो जाएगा--फौरन पागल हो जाएगा। उसके कारण हैं; क्योंकि ये दोनों चोटें एक साथ व्यक्तित्व नहीं सह सकता।

लंबे उपवास में आसन और प्राणायाम हानिप्रद

इसलिए जैनों ने प्राणायाम का प्रयोग नहीं किया, क्योंकि उपवास से वे स्ट्रेंजनेस पैदा कर रहे हैं। अगर उपवास के साथ प्राणायाम करें तो बहुत खतरे में पड़ जाएंगे। एकदम खतरे में पड़ जाएंगे। इसलिए जैन के लिए कोई प्राणायाम का उपयोग नहीं रहा; बल्कि वह जैन साधु कहेगा कि कोई जरूरत नहीं है। मगर उसे पता नहीं है कि वह प्राणायाम को इनकार नहीं कर रहा है, वह सिर्फ इतना ही कह रहा है कि उसकी व्यवस्था में उसके लिए कोई जगह नहीं है; वह दूसरी चीज से वही काम पैदा कर ले रहा है।

इसलिए जैनों ने कोई योगासन वगैरह के लिए फिकर नहीं की। क्योंकि उपवास की हालत में, लंबे उपवास की हालत में, योगासन वगैरह बहुत खतरनाक सिद्ध हो सकते हैं। तो उनके लिए बहुत मृदु आहार चाहिए, घी चाहिए, दूध चाहिए, अत्यंत तृप्तिदायी आहार चाहिए। उपवास कर देता है रूखा भीतर बिल्कुल, और जठराग्नि इतनी बढ़ जाती है, क्योंकि उपवास से बिल्कुल पेट आग हो जाता है। इस आग की हालत में कोई भी आसन खतरनाक हो सकते हैं। यह आग मस्तिष्क तक चढ़ सकती है और पागल कर सकती है। तो जैन संन्यासी कह देगा कि नहीं-नहीं, आसन वगैरह में कुछ सार नहीं है, सब बेकार है।

लेकिन जिस रास्ते पर उनका उपयोग है, उस रास्ते पर उनकी कीमत बड़ी अदभुत है। अगर ठीक आहार लिया जाए, तो आसन अदभुत काम कर सकते हैं। लेकिन उसके लिए शरीर का बड़ा स्निग्ध होना जरूरी है। बिल्कुल ऐसा ही मामला है जैसे कि लुब्रीकेटिंग हालत होनी चाहिए बॉडी की; क्योंकि एक-एक हड्डी और एक-एक नस और एक-एक स्नायु को फिसलना है, बदलना है। उसमें जरा भी रूखापन हुआ तो टूट जाएगी। अत्यंत लोचपूर्ण चाहिए। और उस लोचपूर्ण हालत में अगर शरीर को ये सारी की सारी जो...

आसनः अनोखी देह-स्थितियां

अब ये जो आसन हैं, ये भी स्ट्रेंज पोजीशंस हैं, जिनमें आप कभी नहीं होते। और हमें ख्याल नहीं है कि हमारी सब पोजीशन हमारे चित्त से बंधी हुई है। अब एक आदमी चिंतित होता है और सिर खुजाने लगता है। कोई पूछे कि तुम सिर किसलिए खुजा रहे हो? चिंता से सिर खुजाने का क्या संबंध है? लेकिन अगर आप उसका हाथ पकड़ लें तो आप पाएंगे--वह चिंतित नहीं हो सकता। उसके चिंतित होने के लिए अनिवार्य है कि वह अपने सिर पर हाथ ले जाए। अगर उसका हाथ पकड़ लिया जाए तो वह चिंता नहीं कर सकता। क्योंकि उस चिंता के लिए उतना एसोसिएशन जरूरी है कि वह हाथ की मसल्स इस जगह पहुंचें, अंगुलियां इस स्थान को छुएं, इस स्नायु को छुएं, इस पोजीशन में जब वह हो जाएगा तो बस तत्काल उसकी चिंता सक्रिय हो जाएगी। अब इसी तरह की सारी की सारी मुद्राएं हैं, आसन हैं।

तो वे बहुत अनुभव से... जैसा मैं अभी सुबह ही कह रहा था कि अब यह ध्यान का जो प्रयोग हुआ इसमें अपने-आप आसन बनेंगे, अपने-आप मुद्राएं आएंगी। निरंतर हजारों प्रयोग के बाद यह पता चल गया कि चित्त की कौन सी दशा में कौन सी मुद्रा बन जाती है। तब फिर उलटा काम भी शुरू हो सका--वह मुद्रा बनाओ तो चित्त की वैसी दशा के बनने की संभावना बढ़ जाती है। जैसे कि बुद्ध बैठे हुए हैं, अगर आप ठीक उसी हालत में बैठें, तो आपको बुद्ध की चित्त-दशा में जाने में आसानी होगी। क्योंकि चित्त-दशा भी शरीर की दशाओं से बंधी हुई है। बुद्ध जैसे चलते हैं, अगर आप वैसे ही चलो; बुद्ध जैसी श्वास लेते हैं, अगर वैसी श्वास लो; बुद्ध जैसे लेटते हैं, वैसे लेटो; तो बुद्ध की जो चित्त की दशा है उसको पाना आपके लिए सुगमतर होगा। और या आप बुद्ध की

चित्त-दशा को पा लो तो आप पाओगे कि आपके चलने, उठने, बैठने में बुद्ध से तालमेल होने लगा। ये दोनों चीजें पैरलल हैं।

गुरजिएफ की अधूरी जानकारी

अब जैसे कि गुरजिएफ जैसे लोगों को, जो कि एक अर्थ में अपरूटेड हैं, इनके पीछे कोई हजारों वर्ष का काम नहीं है, तो इनको पता नहीं है। इनको पता नहीं है, हजारों वर्ष का काम नहीं है। और फिर इस आदमी ने दस-पच्चीस अलग-अलग तरह के लोगों से मिलकर कुछ इकट्ठा किया है। उसमें कई यंत्रों के सामान यह ले आया है। वे सब अपनी-अपनी जगह ठीक थे, लेकिन सब इकट्ठे होकर बड़े अजीब हो गए हैं। उनमें से कभी कोई किसी पर काम कर जाता है, लेकिन पूरा किसी पर काम नहीं कर पाता। इसलिए गुरजिएफ के पास जितने लोगों ने काम किया, पूर्णता पर उनमें से कोई भी नहीं पहुंच सका। वह पहुंच नहीं सकता। क्योंकि जब वह आता है तो कोई चीज एक काम कर जाती है उस पर, तो वह उत्सुक तो हो जाता है और प्रवेश कर जाता है, लेकिन दूसरी चीजें उलटा काम करने लगती हैं। क्योंकि सिस्टम जो है, पूरी की पूरी सिस्टम नहीं है एक। कहना चाहिए कि मल्टी-सिस्टम्स का बहुत कुछ उसमें ले लिया है उसने।

अच्छा और कुछ सिस्टम्स का उसे बिल्कुल पता नहीं है। उसके पास उनकी जानकारी नहीं है। उसकी ज्यादा जानकारी सूफी दरवेशों से है। उसे तिबेतन योग का कोई विशेष पता नहीं है; उसे हठयोग का भी कोई बहुत विशेष पता नहीं है। जो उसने सुना है, वह भी विरोधियों के मुंह से सुना है; वह भी दरवेशों से सुना है। वह हठयोगी नहीं है। तो उसकी जो जानकारी हठयोग के बाबत या कुंडलिनी के बाबत जो भी जानकारी है, वह दुश्मन के मुंह से सुनी गई जानकारी है, विपरीत पथगामियों के द्वारा सुनी गई जानकारी है। उस जानकारी के आधार पर वह जो कह रहा है वह बहुत अर्थों में तो कभी असंगत ही हो जाता है।

जैसे कुंडलिनी के बाबत तो उसने निपट नासमझी की बात कही; उसका उसे कुछ पता ही नहीं है। वह उसको कुंडा-बफर ही कहे चला जा रहा है। और बफर अच्छा शब्द नहीं है। वह यह कह रहा है कि कुंडलिनी एक ऐसी चीज है, जिसके कारण आप ज्ञान को उपलब्ध नहीं हो पाते, वह बफर की तरह काम कर रही है। और उसको पार करना जरूरी है। उसे मिटाकर पार कर जाना जरूरी है। इसलिए उसको जगाने की तो चिंता में ही मत पड़ना।

अब उसे पता ही नहीं है कि वह क्या कह रहा है। बफर्स हैं व्यक्तित्व में, ऐसी चीजें हैं जिनकी वजह से हम कई तरह के शॉक्स झेल जाते हैं। कुंडलिनी वह नहीं है; कुंडलिनी तो शॉक है। मगर उसे पता नहीं है। कुंडलिनी तो खुद बड़े से बड़ा शॉक है। जब कुंडलिनी जगती है तो आपको बड़े से बड़ा शॉक लगता है आपके व्यक्तित्व में। बफर और हैं दूसरे आपके भीतर, जिनसे वह शॉक एब्जार्बर्स की तरह वे काम करते हैं; वे पी जाते हैं उसे। उन बफर्स को तोड़ने की जरूरत है। लेकिन वह उसको ही बफर समझ रहा है। और उसका कारण है कि उसे कुछ पता नहीं है। अनुभव तो है ही नहीं उसे उसका, जिनको अनुभव है उनके पास बैठकर उसने कोई बात भी नहीं सुनी।

और इसलिए कई दफे बड़ी अजीब हालतें हो जाती हैं। गुरजिएफ, कृष्णमूर्ति, इन सब के साथ बहुत अजीब हालत हो गई है। इनके साथ अजीब हालत यह है कि वे जो सीक्रेट्स हैं उन शब्दों के पीछे और उन शक्तियों के पीछे, उनका कभी भी उन्हें कोई व्यवस्थित ज्ञान नहीं हो सका। और कठिन भी बहुत है। असल में, एक जन्म में संभव भी नहीं है। अगर एक आदमी दस-बीस जन्मों में दस-बीस व्यवस्थाओं के बीच बड़ा हो, तभी

संभव है; नहीं तो संभव नहीं है। दस-बीस जन्मों में दस-बीस व्यवस्थाओं के बीच बड़ा हो, तब कहीं किसी अंतिम जन्म में वह उन सब के बीच कोई सिंथीसिस खोज सकता है, नहीं तो नहीं खोज सकता।

लेकिन आमतौर से ऐसा होता है कि एक आदमी एक व्यवस्था से पहुंच जाता है तो दूसरा जन्म ही क्यों ले? बात ही खत्म हो गई। इसलिए सिंथीसिस नहीं हो पाती। और इधर मैं सोचता हूं इस पर, इस पर कभी काम करने जैसा है कि सारी दुनिया की व्यवस्थाओं के बीच एक सिंथीसिस संभव है। अलग-अलग छोर से पकड़ना पड़ेगा; घटनाएं वही घटती हैं, लेकिन अलग-अलग तरकीबें हैं उनको घटाने की।

झेन फकीरों के अनोखे उपाय

अब जैसे झेन फकीर है, वह एक आदमी को खिड़की से उठाकर फेंक देगा। सिर्फ स्ट्रेंजनेस पैदा होती है, और कुछ नहीं। लेकिन वह कह देगा, प्राणायाम की कोई जरूरत नहीं है; यह भस्त्रिका से क्या होगा? उसका कारण है। लेकिन भस्त्रिका से नहीं होगा तो एक आदमी को खिड़की से फेंकने से क्या होगा? बुद्ध से, महावीर से जाकर कहो, किसी को खिड़की से फेंकने से ज्ञान हो गया। तो वे कहेंगे, पागल! आदमी रोज गिर जाते हैं मकानों से, कहीं ज्ञान होता है!

लेकिन गिरना एक बात है, फेंका जाना बिल्कुल दूसरी बात है। जब एक आदमी मकान से गिरता है तो यह वैसा ही है जैसे एक आदमी पागल हो गया। लेकिन जब हम चार आदमी उठाकर काकू भाई को बाहर फेंक दें खिड़की के, और काकू भाई जानते हैं कि ये फेंके जा रहे हैं, तो एक स्ट्रेंजनेस अनुभव होगी। जब वे गिरते हैं जमीन पर और जाते हैं फिंके हुए, तब पूरे वक्त अवेयर होते हैं कि यह क्या हो रहा है। उस वक्त फौरन वे अलग हो जाते हैं, बॉडी से अलग हो जाते हैं।

अब एक झेन गुरु के पास गए, उसने एक डंडा उठाकर खोपड़ी पर मार दिया आपके। स्ट्रेंज है! आप गए थे कि भाई, मुझे आत्म-शांति चाहिए, उसने एक डंडा मार दिया। एकदम स्ट्रेंजनेस पैदा हो गई। लेकिन हिंदुस्तान में नहीं पैदा होगी। अगर आप यहां डंडा मारेंगे तो वह आदमी भी आपको डंडा मार देगा; वह लड़ने के लिए तैयार हो जाएगा। जापान में सिर्फ होगी, क्योंकि जापान में उसकी व्यवस्था ख्याल में आ गई लोगों को कि झेन फकीर डंडा मारकर भी कुछ कर सकता है।

अब एक फकीर है, और आप गए हैं और वह आपको मां-बहन की गाली देने लगा! वह स्ट्रेंजनेस पैदा कर देगा उससे। कहां आप गए थे ब्रह्मज्ञानी के पास, और वह मां-बहन की गाली दे रहा है खुले आम आपको। लेकिन आपको पता हो तो। पता न हो तो आपको दिक्कत पड़ जाएगी। आप दोबारा जाएंगे नहीं, कि यह आदमी गलत है, गाली बकता है। लेकिन उस व्यवस्था के भीतर उसका भी उपयोग किया गया है। वह गाली बककर भी स्ट्रेंजनेस पैदा कर देगा।

एक फकीर थे, गाडरवाड़ा के पास एक जगह है साईंखेड़ा। तो वे कुछ भी कर सकते थे। वे गाली भी बकते थे; और आप सब बैठे हैं, खड़े होकर सब के सामने पेशाब करने लगें! मगर बड़ा स्ट्रेंज हो जाता। एकदम स्ट्रेंज हो जाता था कि वे खड़े होकर यहीं पेशाब करने लगें--और आप एकदम चौंककर खड़े हो जाएं। एकदम स्ट्रेंज हो जाएगी इस कमरे की हालत--यह क्या हो गया! वे गाली तो देते ही थे, मारने भी दौड़ते थे। और मारेंगे तो मीलों तक दौड़ते चले जाएंगे उस आदमी के पीछे। लेकिन जो उनके पास जाते थे और जो समझने लगे थे, उनको बहुत लाभ हो गया। जो नहीं समझते थे, वे समझे पागल आदमी है। पर नहीं जो समझते उनसे कोई लेना-देना भी क्या है! जो समझते थे उनको फायदा हो गया। क्योंकि जिस आदमी के पीछे वे दो मील दौड़ते चले गए,

उसको बहुत स्ट्रेंज हालत में खड़ा कर दिया। और हजारों की भीड़ दौड़ रही है, और वे उसको मारने दौड़ रहे हैं, और वह आदमी भागा जा रहा है। अब यह पूरा स्ट्रेंज एटमास्फियर हो गया!

बहुत सी व्यवस्थाओं से वही किया जा सकता है। दूसरी व्यवस्थावाले को कभी पता नहीं चलता। और कठिनाई एक और हैः अगर पता भी हो, कई बार पता भी हो, जैसे मेरे को कुछ पता है अगर, तब भी जब मैं एक व्यवस्था की बात कर रहा हूं तो मुझे एक्सट्रीम पर बात करनी पड़ती है, नहीं तो उसका परिणाम नहीं होगा। अगर मुझे पता भी है कि दूसरी बात से भी हो सकता है, लेकिन जब मैं एक बात कह रहा हूं तो मैं कहूंगा कि किसी से नहीं हो सकता, इसी से होगा। कारण है वह भी। कारण है, क्योंकि आपके पास दिमाग नहीं कि आप इतना सब... सबसे होगा, ऐसा समझकर आपको ऐसा ही लगेगा कि किसी से नहीं होगा। और वे सब इतनी विपरीत व्यवस्थाएं हैं कि सबसे कैसे होगा, आप इसी झंझट में पड़ जाएंगे। इसलिए बहुत बार तो ज्ञानियों को भी, जो जानते भी हैं, उनको भी अज्ञानी की भाषा बोलनी पड़ती है। उनको कहना पड़ता हैः सिर्फ इसी से होगा, और किसी से नहीं हो सकता!

इसलिए मैं तो बहुतमुश्किलमेंपड़ गयाहूं। मैंबहुतमुश्किलमेंपड़ गयाहूं, क्योंकिमैंजानताहूंः उससेभी हो सकताहै। उससेभी यह हो सकताहै।

दसवां प्रवचन

आंतरिक रूपांतरण के तथ्य

प्रश्नः कल की चर्चा में आपने कहा कि शक्ति का कुंड प्रत्येक व्यक्ति का अलग-अलग नहीं है। लेकिन कुंडलिनी जागरण में तो साधक के शरीर में स्थित कुंड से ही शक्ति ऊपर उठती है। तो क्या कुंड अलग-अलग हैं या कुंड एक ही है, इस इस स्थिति को कृपया समझाएं।

ऐसा है, जैसे एक कुएं से तुम पानी भरो। तो तुम्हारे घर का कुआं अलग है, मेरे घर का कुआं अलग है, लेकिन फिर भी कुएं के भीतर के जो झरने हैं वे सब एक ही सागर से जुड़े हैं। तो अगर तुम अपने कुएं के ही झरने की धारा को पकड़कर खोदते ही चले जाओ, तो उस मार्ग में मेरे घर का कुआं भी पड़ेगा, औरों के घर के कुएं भी पड़ेंगे, और एक दिन तुम वहां पहुंच जाओगे जहां कुआं नहीं, सागर ही होगा। जहां से शुरू होती है यात्रा वहां तो व्यक्ति है, और जहां समाप्त होती है यात्रा वहां व्यक्ति बिल्कुल नहीं है, वहां समष्टि है; इंडिविजुअल से शुरू होती है और एब्सोल्यूट पर खतम होती है।

तो अगर यात्रा का प्रारंभिक बिंदु पकड़ोगे, तब तो तुम अलग हो, मैं अलग हूं; और अगर इस यात्रा का चरम बिंदु पकड़ोगे, तो न तुम हो, न मैं हूं। और जो है, हम दोनों उसके ही हिस्से और टुकड़े हैं। तो जब तुम्हारे भीतर कुंडलिनी का आविर्भाव होगा तो वह पहले तो तुम्हें व्यक्ति की ही मालूम पड़ेगी, तुम्हारी अपनी मालूम पड़ेगी। स्वभावतः, कुएं पर तुम खड़े हो गए हो। लेकिन जब कुंडलिनी का आविर्भाव बढ़ता चला जाएगा, तब तुम धीरे-धीरे पाओगे कि तुम्हारा कुआं तुम्हारा ही नहीं है, वह औरों से भी जुड़ा है। और जितनी तुम्हारी यह गहराई बढ़ती जाएगी उतना ही तुम्हारा कुआं मिटता जाएगा और सागर होता जाएगा। अंतिम अनुभव में तुम कह सकोगे कि यह कुंड सबका था। तो इसी अर्थ में मैंने कहा कि... इसी भांति हम व्यक्ति की तरह अलग-अलग मालूम हो रहे हैं।

आत्मा से परमात्मा में छलांग

ऐसा समझो कि एक वृक्ष का एक पत्ता होश में आ जाए, तो उसे पड़ोस का जो पत्ता लटका हुआ दिखाई पड़ रहा है, वह दूसरा मालूम पड़ेगा। उसी वृक्ष की दूसरी शाखा पर लटका हुआ पत्ता उसे स्वयं कैसे मालूम पड़ सकता है कि यह मैं ही हूं! दूसरी शाखा भी छोड़ दें, उसी शाखा पर लगा हुआ दूसरा पत्ता भी उस वृक्ष के पत्ते को कैसे लग सकता है कि मैं ही हूं! उतनी दूरी भी छोड़ दें, उसी के बगल में, पड़ोस में लटका हुआ जो पत्ता है, वह भी दूसरा ही मालूम पड़ेगा; क्योंकि पत्ते का भी जो होश है, वह व्यक्ति का है।

फिर पत्ता अपने भीतर प्रवेश करे, तो बहुत शीघ्र वह पाएगा कि मैं जिस डंठल से लगा हूं, उसी डंठल से मेरे पड़ोस का पत्ता भी लगा है, और हम दोनों की प्राणधारा एक ही डंठल से आ रही है। वह और थोड़ा प्रवेश करे, तो वह पाएगा कि मेरी शाखा ही नहीं, पड़ोस की शाखा भी एक ही वृक्ष के दो हिस्से हैं और हमारी जीवनधारा एक है। वह और थोड़ा नीचे प्रवेश करे और वृक्ष की रूट्स पर पहुंच जाए, तो उसे लगेगा कि सारी शाखाएं और सारे पत्ते और मैं, एक ही के हिस्से हैं। वह और वृक्ष के नीचे प्रवेश करे और उस भूमि में पहुंच जाए जिस भूमि से पड़ोस का वृक्ष भी निकला हुआ है, तो वह अनुभव करेगा कि मैं, मेरा यह वृक्ष, मेरे ये पत्ते, और

यह पड़ोस का वृक्ष, ये हम एक ही भूमि के पुत्र हैं, और एक ही भूमि की शाखाएं हैं। और अगर वह प्रवेश करता ही जाए, तो यह पूरा जगत अंततः उस छोटे से पत्ते के अस्तित्व का अंतिम छोर होगा। वह पत्ता इस बड़े अस्तित्व का एक छोर था! लेकिन छोर की तरह होश में आ गया था तो व्यक्ति था, और समग्र की तरह होश में आ जाए तो व्यक्ति नहीं है।

तो कुंडलिनी के पहले जागरण का अनुभव तुम्हें आत्मा की तरह होगा और अंतिम अनुभव तुम्हें परमात्मा की तरह होगा। अगर तुम पहले जागरण पर ही रुक गए, और तुमने घेराबंदी कर ली अपने कुएं की, और तुमने भीतर खोज न की, तो तुम आत्मा पर ही रुक जाओगे।

इसलिए बहुत से धर्म आत्मा पर ही रुक गए हैं। वह परम अनुभव नहीं है; वह अनुभव की आधी ही यात्रा है। और थोड़ा आगे जाएंगे तो आत्मा भी विलीन हो जाएगी और तब परमात्मा ही शेष रह जाएगा। और जैसा मैंने तुमसे कहा कि और अगर आगे गए तो परमात्मा भी विलीन हो जाएगा, और तब निर्वाण और शून्य ही शेष रह जाएगा--या कहना चाहिए, कुछ भी शेष नहीं रह जाएगा।

तो परमात्मा से भी जो एक कदम आगे जाने की जिनकी संभावना थी, वे निर्वाण पर पहुंच गए हैं; वे परम शून्य की बात कहेंगे। वे कहेंगेः वहां जहां कुछ भी नहीं रह जाता। असल में, सब कुछ का अनुभव जब तुम्हें होगा, तो साथ ही कुछ नहीं का अनुभव भी होगा। जो एब्सोल्यूट है, वह नथिंगनेस भी है।

शून्य और पूर्णः एक के ही दो नाम

इसे ऐसा हम समझें... शून्य और पूर्ण एक ही चीज के दो नाम हैं, इसलिए दोनों कनवर्टेबल हैं। शून्य पूर्ण है। तुमने अधूरा शून्य न देखा होगा। आधा शून्य तुम नहीं कर सकते हो। अगर तुमसे हम कहें कि शून्य को आधा कर दो, दो टुकड़े कर दो! तो तुम कहोगे, यह कैसे हो सकता है? एक के दो टुकड़े हो सकते हैं, दो के दो टुकड़े हो सकते हैं, शून्य के दो टुकड़े नहीं हो सकते। शून्य के टुकड़े ही नहीं हो सकते। और जब तुम कागज पर एक शून्य बनाते हो तो वह सिर्फ प्रतीक है; वह तुम्हारे बनाते ही शून्य नहीं रह जाता, क्योंकि तुम रेखा बांध देते हो।

इसलिए यूक्लिड से पूछोगे तो वह कहेगा कि शून्य हम उसे कहते हैं, जिसमें न लंबाई है, न चौड़ाई है। लेकिन तुम तो कितना ही छोटा सा बिंदु भी बनाओगे, तो उसमें भी लंबाई-चौड़ाई होगी। इसलिए वह सिर्फ सिंबालिक है, वह असली बिंदु नहीं है; क्योंकि असली बिंदु में तो लंबाई-चौड़ाई नहीं हो सकती। लंबाई-चौड़ाई होगी तो फिर बिंदु नहीं रह जाएगा।

इसलिए उपनिषद कह सके कि शून्य से तुम निकाल लो शून्य भी, तो भी पीछे शून्य ही शेष रह जाता है। उसका मतलब यह है कि तुम निकाल नहीं सकते उसमें से कुछ। तुम अगर पूरे शून्य को भी लेकर भाग जाओ तब भी पीछे पूरा शून्य ही शेष रह जाएगा। तुम आखिर में पाओगे, चोरी बेकार गई; तुम उसे लेकर भाग नहीं सके; वह वहीं शेष रह गया। लेकिन जो शून्य के संबंध में सही है, वही पूर्ण के संबंध में भी सही है। असल में, पूर्ण की कोई कल्पना सिवाय शून्य के और नहीं हो सकती।

पूर्ण का मतलब हैः जिसमें अब और आगे विकास नहीं हो सकता। शून्य का मतलब हैः जिसमें अब और नीचे पतन नहीं हो सकता। शून्य के और नीचे उतरने का उपाय नहीं, पूर्ण के और आगे जाने का उपाय नहीं। तुम पूर्ण के भी खंड नहीं कर सकते; तुम शून्य के भी खंड नहीं कर सकते। पूर्ण की भी कोई सीमा नहीं हो सकती; क्योंकि जब भी किसी चीज की सीमा होगी तब वह पूर्ण नहीं हो सकेगा। क्योंकि उसका मतलब हुआ कि सीमा

के बाहर फिर कुछ शेष रह जाएगा। और अगर कुछ बाहर शेष रह गया तो पूर्णता कैसी? फिर यह अपूर्णता हो जाएगी।

जहां मेरा घर खतम होता है, तुम्हारा घर शुरू हो जाता है। मेरे घर की सीमा पर मेरा घर समाप्त होता है और तुम्हारा शुरू होता है। अगर मेरा घर पूर्ण है, तो तुम्हारा घर मेरे घर के बाहर नहीं हो सकता। तो पूर्ण की कोई सीमा नहीं हो सकती, क्योंकि कौन उसकी सीमा बनाएगा? सीमा बनाने के लिए हमेशा नेबर चाहिए; सीमा बनाने के लिए कोई पड़ोसी चाहिए। और पूर्ण है अकेला; उसका कोई पड़ोसी नहीं है, जिससे उसकी सीमा इंगित हो सके।

सीमा दो बनाते हैं, एक नहीं--यह ख्याल रखना; सीमा बनाने के लिए दो चाहिए। जहां मैं समाप्त होऊं और कोई शुरू हो, वहां सीमा बनेगी। अगर कोई शुरू ही न हो तो मैं समाप्त भी न हो सकूंगा। और अगर मैं समाप्त ही न हो सकूं, हो ही न सकूं समाप्त, तो फिर मेरी कोई सीमा न बनेगी। पूर्ण की कोई सीमा नहीं है, क्योंकि कौन उसकी सीमा बनाए? शून्य की कोई सीमा नहीं है; क्योंकि जिसकी सीमा हो जाती है, वह कुछ हो गया, वह शून्य कैसे रहा? तो अगर इसे बहुत ठीक से समझोगे तो शून्य और पूर्ण जो हैं, वे एक ही चीज को कहने के दो ढंग हैं।

ब्रह्म और शून्यः दो ओर से यात्रा

तो धर्म भी दो तरफ से यात्रा कर सकता हैः या तो तुम पूर्ण हो जाओ, या तुम शून्य हो जाओ। दोनों स्थितियों में तुम वही हो जाओगे जो होने की बात है। तो जो पूर्ण की यात्रा करनेवाला है, या पूर्ण शब्द को प्रेम करता है, पाजिटिव को प्रेम करता है, वह कहेगा--अहं ब्रह्मास्मि! मैं ब्रह्म हूं! वह यह कह रहा है कि मैं ही ब्रह्म हूं। यह सब जो है, यह मैं ही हूं। और मेरे अतिरिक्त कोई तू नहीं है; सब तू मैंने अपने मैं में घेर लिए हैं। अगर यह हो सके तो यह बात हो जाएगी।

लेकिन अंतिम चरण में मैं को भी खोना पड़ेगा, क्योंकि जब कोई तू नहीं है तो तुम कैसे कहोगे कि मैं ही ब्रह्म हूं? क्योंकि मैं की उदघोषणा तू की मौजूदगी पर ही सार्थक है। और जब तुम ही ब्रह्म हो, तो यह कहना भी बहुत अर्थ का नहीं रह जाएगा कि मैं ब्रह्म हूं। क्योंकि इसमें भी दो की स्वीकृति है--ब्रह्म की और मेरी। तो अंत में मैं भी व्यर्थ हो जाएगा, ब्रह्म भी व्यर्थ हो जाएगा और चुप हो जाना पड़ेगा।

दूसरा एक मार्ग है कि तुम कहो... इतने मिट जाओ तुम कि तुम कह सको, मैं हूं ही नहीं। एक जगह तुम कह सके, मैं ब्रह्म हूं अर्थात मैं सब हूं। दूसरी यात्रा है जिसमें तुम कह सको कि मैं हूं ही नहीं, कुछ भी नहीं है; सब परम शून्य है। लेकिन इससे भी तुम वहीं पहुंच जाओगे। और पहुंचकर तुम यह भी न कह सकोगे कि मैं नहीं हूं। क्योंकि मैं नहीं हूं, यह कहने के लिए भी मैं का होना जरूरी है। तो मैं खो जाएगा। तुम यह भी न कह सकोगे कि सब शून्य है; क्योंकि यह कहने के लिए भी सब भी होना चाहिए और शून्य भी होना चाहिए। तब तुम फिर चुप हो जाओगे।

तो यात्रा चाहे कहीं से हो--चाहे वह पूर्णता की तरफ से हो, चाहे शून्यता की तरफ से हो--लेकिन वह परम मौन में ले जाएगी, जहां बोलने को कुछ भी नहीं बचेगा। इसलिए कहां से कोई जाता है, यह बड़ा सवाल नहीं है; कहां पहुंचता है, यह जांचने की बात है। उसकी अंतिम मंजिल पकड़ी जा सकती है, पहचानी जा सकती है। अगर वह यहां पहुंच गया तो वह जहां से भी गया हो, ठीक ही रास्ते से गया है। कोई रास्ता गलत नहीं है, कोई रास्ता ठीक नहीं है--इस अर्थ में कि जो पहुंचा दे वह ठीक है। और पहुंचना यहां है। लेकिन प्राथमिक

अनुभव कहीं से भी मैं से ही शुरू होगा, क्योंकि हमारी वह स्थिति है; वह गिवेन सिचुएशन है, जहां से हमको चलना है।

तो चाहे हम कुंडलिनी को जगाएं, तो भी वह व्यक्तिगत मालूम पड़ेगी; चाहे ध्यान में जाएं, तो भी वह व्यक्तिगत मालूम पड़ेगा; चाहे शांत हों तो व्यक्तिगत होगा; जो कुछ भी होगा वह व्यक्तिगत होगा, क्योंकि अभी हम व्यक्ति हैं। लेकिन जैसे-जैसे इसमें प्रवेश करोगे, भीतर जितने गहरे उतरोगे, व्यक्ति मिटता जाएगा। और अगर बाहर गए, तो व्यक्ति बढ़ता चला जाएगा।

व्यक्ति का अंतिम छोर

जैसे समझ लो कि एक आदमी कुएं पर खड़ा है। अगर वह कुएं में भीतर जाए, तो एक दिन सागर में पहुंच जाएगा। और अनुभव करे कि कुआं तो नहीं था... असल में कुआं है क्या? जस्ट ए होल सागर को झांकने के लिए। और क्या है? कुएं का और अर्थ क्या है? एक छेद है जिससे तुम सागर को झांक लेते हो। अगर तुम पानी को कुआं समझते हो तो गलती समझते हो, पानी तो सागर ही है। हां, वह छेद जिससे तुमने झांका है, वह है कुआं। तो वह जो छेद है, वह जितना बड़ा होता जाए, सागर उतना बड़ा दिखाई पड़ने लगेगा।

लेकिन अगर तुम कुएं के भीतर प्रवेश न किए और कुएं से दूर हटते चले गए, तो तुम्हें कुएं का पानी भी दिखाई पड़ना थोड़ी देर में बंद हो जाएगा। फिर तो वह जो कुएं का छेद है और पाट है, वही दिखाई पड़ेगा। और उसका सागर से कभी तुम तालमेल न कर पाओगे। एकदम तुम सागर के किनारे भी पहुंच जाओ, तो भी तुम यह तालमेल न बिठा पाओगे कि वह जो कुएं में झांका था वह और यह सागर एक हो सकता है।

अंतर्यात्रा तो तुम्हें एकता पर ले जाएगी, बहिर्यात्रा तुम्हें अनेकता पर ले जाएगी। लेकिन सभी अनुभव का प्रारंभिक छोर व्यक्ति होगा, कुआं होगा; अंतिम छोर अव्यक्ति होगा--या परमेश्वर कहो--सागर होगा। इस अर्थ में मैंने कहाः अगर तुम गहरे जाओगे तो कुंड जो है तुम्हारा नहीं रह जाएगा; कुछ भी तुम्हारा नहीं रह जाएगा। कुछ भी नहीं रह जा सकता है।

पीड़ा कुएं की, आनंद सागर का

प्रश्नः अगर शून्य को ही उपलब्ध होना है तो कुंडलिनी जगाने की जरूरत क्या है? और साधना की जरूरत क्या है?

यह जो बात है न, क्योंकि तुम्हें समझ में आ रहा है कि शून्य यानी कुछ भी नहीं, इसलिए साधना की क्या जरूरत? कुछ हो तो जरूरत है। तुम्हें ख्याल में आ रहा है कि शून्य यानी ना-कुछ हो गए। तो साधना की क्या जरूरत? साधना की जरूरत तो तब लगती है, जब कुछ हम हो जाएं। लेकिन तुम्हें यह पता नहीं कि शून्य का मतलब है पूर्ण; शून्य का मतलब है सब कुछ। शून्य का मतलब कुछ नहीं नहीं, सब कुछ।

लेकिन अभी तुम्हारे ख्याल में नहीं आ सकता कि शून्य यानी सब कुछ का क्या मतलब होता है। एक कुआं भी कह सकता है कि अगर सागर की तरफ जाने का मतलब इसी बात का पता चलना है कि मैं हूं ही नहीं, तो मैं जाऊं ही क्यों? यह ठीक कह रहा है कुआं। यह कहे कि अगर मैं सागर की तरफ जाऊं और आखिर में यही पता चलना है कि मैं हूं ही नहीं, तो मैं जाऊं क्यों? लेकिन तुम्हारे न जाने से फर्क नहीं पड़ता है। तुम नहीं हो, एक बात; तुम्हारे जाने, न जाने का सवाल नहीं। न जाओ, कुएं पर ही रुके रहो, कुएं ही बने रहो, लेकिन तुम हो नहीं

कुआं। यह झूठ है सरासर। यह झूठ तुम्हें दुख देता रहेगा। यह झूठ तुम्हें पीड़ा देता रहेगा। यह झूठ तुम्हें बांधे रहेगा। इस झूठ में आनंद की कोई संभावना नहीं है।

कुआं मिटेगा जरूर सागर तक जाकर, लेकिन मिटते ही उसकी सारी चिंता, दुख, सब मिट जाएगा; क्योंकि वह उसके कुएं और व्यक्ति होने से बंधा था, उसकी ईगो और अहंकार से बंधा था। और हमें तो ऐसा लगेगा कि कुआं जाकर सागर में मिट गया, कुछ भी नहीं हुआ। लेकिन कुएं को थोड़े ही ऐसा लगेगा। कुआं तो कहेगा कि मैं सागर हो गया। कौन कहता है, मैं मिट गया! यह तो जो नहीं गया कुआं, पड़ोस का जो कुआं नहीं गया वह उससे कहेगा, पागल! कहां जाता है? वहां तो मिट ही जाना है, तो जाना क्यों? लेकिन जो गया है, वह कहेगाः कौन कहता है, मिट जाना है! मैं तो मिटूंगा एक अर्थ में--कुएं के अर्थ में, लेकिन सागर के अर्थ में हो भी जाऊंगा।

इसलिए चुनाव कुआं बने रहने का या सागर होने का है सदा; क्षुद्र से बंधे रहने का या विराट के साथ एक हो जाने का है। लेकिन वह अनुभव की बात है। और अगर कुएं ने कहा कि मैं मिटने से डरता हूं, तो फिर तो उसको सागर से सब संबंध छोड़ लेने पड़ेंगे; क्योंकि उन संबंधों में सदा भय है कि कभी भी पता न चल जाए कि मैं सागर हूं। तो उसको सब अपने झरने तोड़ लेने पड़ेंगे, क्योंकि वे झरने सब सागर तक जाते हैं। या उसे झरने की तरफ से आंख मोड़ लेनी पड़ेगी। वह सदा बाहर देखता रहे, भीतर न देखे भूलकर; क्योंकि भीतर देखने से कभी भी संभावना है कि उसे पता चल जाए कि अरे, मैं नहीं हूं, सागर ही है। तो फिर वह बाहर देखे। और झरने जितने छोटे हों, उतने अच्छे; क्योंकि उनसे भीतर जाना कम आसान रह जाएगा। जितने सूखे हों, उतने अच्छे; बिल्कुल सूख जाएं तो और भी अच्छे।

लेकिन तब कुआं मरेगा। समझेगा कि मैं बचा रहा हूं अपने को, लेकिन मरेगा।

मिटना बहुत आनंदपूर्ण है

जीसस का वचन है कि जो अपने को बचाएगा, वह मिटेगा; और जो मिटाएगा, वही केवल बच सकता है।

तो यह तो हमारे मन में सवाल उठता ही है कि मिट जाएंगे, वहां जाएं क्यों? वहां जाएं क्यों, मिट जाएंगे! तो अगर यह... अगर मिटना ही हमारा सत्य है, तो ठीक है। और बचाने से कैसे बचेंगे? अगर सागर में पहुंचकर मिटना होता है तो कुएं बने रहकर कितने दिन बच सकोगे? इतना बड़ा सागर होकर भी मिटना हो जाता है तो इतने से कुएं को कैसे बचाओगे? कितने दिन बचाओगे? जल्दी इसकी ईंटें गिर जाएंगी, जल्दी इस पर मिट्टी गिरेगी, जल्दी इसका पानी सूख जाएगा। जब सागर में भी न बच सकोगे, तो कुएं में कैसे बचोगे? और कितनी देर बचोगे?

इसी से मृत्यु का भय पैदा होता है। वह कुएं का भय है। सागर से मिलना नहीं चाहता, क्योंकि उसमें डर है मिटने का, इसलिए सागर से अपने को दूर कर लेता है और कुआं बन जाता है। और फिर मौत का भय सताने लगता है, क्योंकि सागर से जैसे ही टूटा कि मरने की स्थिति करीब आने लगी; क्योंकि सागर से जुड़कर जीवन है।

तो इसलिए हम सब मृत्यु से भयभीत हैं, डरे हुए हैं कि कहीं मर न जाएं। मरना पड़ेगा। और दो ही तरह के मरने हैंः या तो तुम सागर में कूदकर मर जाओ। वह मरना बहुत आनंदपूर्ण है; क्योंकि मरोगे नहीं, सागर हो जाओगे। और एक यह कि तुम कुएं को जोर से पकड़े बैठे रहो--सूखोगे, सड़ोगे, मिट जाओगे। हमारा मन कहता हैः कोई प्रलोभन चाहिए--क्या, मिलेगा क्या जिसकी वजह से हम सागर में जाएं? क्या मिलेगा जिससे

हम समाधि को खोजें, शून्य को खोजें? मिलेगा क्या? हम पहले पूछते हैं, मिलेगा क्या? हम इसको पूछते ही नहीं कि इस मिलने की दौड़ में हमने अपने को खो दिया है। सब तो मिल गया है--मकान मिल गया है, धन मिल गया है--वह सब मिल गया है और हम खो गए हैं; हम बिल्कुल नहीं हैं वहां।

तो अगर मिलने की भाषा में पूछते हो तो मैं कहूंगा कि अगर खोने को तैयार हो जाओ तो तुम तुमको मिल जाओगे। अगर खोने को तैयार नहीं हो, बचाने की कोशिश की, तो तुम खो जाओगे और सब बच जाएगा; और बहुत सी चीजें बच जाएंगी, बस तुम खो जाओगे।

तीव्र श्वास से प्राण-ऊर्जा में वृद्धि

प्रश्नः आपने कहा था कि डीप ब्रीदिंग लेने से आक्सीजन और कार्बन डाइआक्साइड का अनुपात बदल जाता है। तो इस अनुपात के बदलने का कुंडलिनी जागरण के साथ कैसे संबंध है?

बहुत संबंध है। एक तो हमारे भीतर जीवन और मृत्यु दोनों की संभावनाएं हैं। उसमें जो आक्सीजन है वह हमारे जीवन की संभावना है, और जो कार्बन है वह हमारी मृत्यु की संभावना है। जब आक्सीजन क्षीण होते-होते-होते-होते समाप्त हो जाएगी और सिर्फ कार्बन रह जाएगी तुम्हारे भीतर, तो तुम लाश हो जाओगे। ऐसे ही, जैसे कि हम एक लकड़ी को जलाते हैं। जब तक आक्सीजन मिलती है, जलती चली जाती है। आग होती है, जीवन होता है। फिर आक्सीजन चुक गई, आग चुक गई, फिर कोयला, कार्बन पड़ा रह जाता है पीछे। वह मरी हुई आग है। वह जो कोयला पड़ा है पीछे, वह मरी हुई आग है।

तो हमारे भीतर दोनों का काम चल रहा है पूरे समय। भीतर हमारे जितनी ज्यादा कार्बन होगी, उतनी ही लिथार्जी होगी, उतनी सुस्ती होगी। इसलिए दिन में नींद लेना मुश्किल पड़ता है, रात में आसान पड़ता है; क्योंकि रात में आक्सीजन की मात्रा कम हो गई है और कार्बन की मात्रा बढ़ गई है। इसलिए रात में हम सरलता से सो जाते हैं और दिन में सोना इतना सरल नहीं पड़ता, क्योंकि आक्सीजन बहुत मात्रा में है। आक्सीजन हवा में बहुत मात्रा में है। सूरज के आ जाने के बाद आक्सीजन का अनुपात पूरी हवा में बदल जाता है। सूरज के हटते ही से आक्सीजन का अनुपात नीचे गिर जाता है।

इसलिए अंधेरा जो है, रात्रि जो है, वह प्रतीक बन गया है सुस्ती का, आलस्य का, तमस का। सूर्य जो है वह तेजस का प्रतीक बन गया है, क्योंकि उसके साथ ही जीवन आता है। रात सब कुम्हला जाता है--फूल बंद हो जाते, पत्ते झुक जाते, आदमी सो जाता--सारी पृथ्वी एक अर्थों में टेम्प्रेरी डेथ में चली जाती है, एक अस्थायी मृत्यु में समा जाती है। सुबह होते ही से फिर फूल खिलने लगते, फिर पत्ते जीवित हो जाते, फिर वृक्ष हिलने लगते, फिर आदमी जगता, पक्षी गीत गाते--सब तरफ फिर पृथ्वी जागती है; वह जो टेम्प्रेरी डेथ थी, वह जो अस्थायी मृत्यु थी रात के आठ-दस घंटे की, वह गई; अब जीवन फिर लौट आया है।

तो तुम्हारे भीतर भी ऐसी घटना घटती है कि जब तुम्हारे भीतर आक्सीजन की मात्रा तीव्रता से बढ़ती है, तो तुम्हारे भीतर जो सोई हुई शक्तियां हैं वे जगती हैं; क्योंकि सोई हुई शक्तियां को जगने के लिए सदा ही आक्सीजन चाहिए--किसी भी तरह की सोई हुई शक्तियों को जगने के लिए। अब एक आदमी मर रहा है, मरने के बिल्कुल करीब है, हम उसकी नाक में आक्सीजन का सिलिंडर लगाए हुए हैं। उसे हम दस-बीस घंटे जिंदा रख लेंगे। उसकी मृत्यु घट गई होती दस-बीस घंटे पहले, लेकिन हम उसे दस-बीस घंटे खींच लेंगे। वर्ष, दो वर्ष भी खींच सकते हैं, क्योंकि उसकी बिल्कुल क्षीण होती शक्तियों को भी हम आक्सीजन दे रहे हैं तो वे सो नहीं पा

रहीं। उसकी सब शक्तियां मौत के करीब जा रही हैं, डूब रही हैं, डूब रही हैं, लेकिन हम फिर भी आक्सीजन दिए जा रहे हैं।

तो आज यूरोप और अमेरिका में तो हजारों आदमी आक्सीजन पर अटके हुए हैं। और सारे अमेरिका और यूरोप में एक बड़े से बड़ा सवाल है अथनासिया का--कि आदमी को स्वेच्छा-मरण का हक होना चाहिए। क्योंकि डाक्टर अब उसको लटका सकता है बहुत दिन तक। बड़ा भारी सवाल है, क्योंकि अब डाक्टर चाहे तो कितने ही दिन तक एक आदमी को न मरने दे। अच्छा, डाक्टर की तकलीफ यह है कि अगर वह उसे जानकर मरने दे तो वह हत्या का आरोपण उस पर हो सकता है; वह मर्डर हो गया। यानी वह अभी आक्सीजन देकर इस अस्सी साल के मरते हुए बूढ़े को बचा सकता है। अगर न दे, तो यह हत्या के बराबर जुर्म है। तो वह तो इसे देगा; वह इसे आक्सीजन देकर लटका देगा। अब उसकी जो सोती हुई शक्तियां हैं वे कार्बन की कमी के कारण नहीं सो पाएंगी। समझ रहे हो न मेरा मतलब?

अधिक प्राण से अधिक जागृति

ठीक इससे उलटा प्राणायाम और भस्त्रिका और जिसे मैं श्वास की तीव्र प्रक्रिया कह रहा हूं, उसमें होता है। तुम्हारे भीतर तुम इतनी ज्यादा जीवनवायु ले जाते हो, प्राणवायु ले जाते हो कि तुम्हारे भीतर जो सोए हुए तत्व हैं वह तो जगने की क्षमता उनकी बढ़ जाती है, तत्काल वे जगने शुरू हो जाते हैं; और तुम्हारे भीतर जो सोने की प्रवृत्ति है, भीतर वह भी टूटती है।

तुम तो हैरान होओगे, अभी मेरे पास कोई चार वर्ष पहले सीलोन से एक बौद्ध भिक्षु आया। वह तीन साल से सो नहीं सका। सब तरह के इलाज किए, वे काम नहीं किए। वे काम कर नहीं सकते थे, क्योंकि वह एक अनापानसती योग का प्रयोग कर रहा था श्वास का--चौबीस घंटे गहरी श्वास पर ध्यान रख रहा था। अब जिसने उसे बता दिया था उसे कुछ पता नहीं होगा कि चौबीस घंटे गहरी श्वास पर अगर ध्यान रखा जाएगा तो नींद बिल्कुल विदा हो जाएगी; नींद को लाया ही नहीं जा सकता।

तो इधर तो वह चौबीस घंटे श्वास पर ध्यान रख रहा है और उधर उसको दवाइयां दिलवाए जा रहे हैं। तो उसकी बड़ी तकलीफ खड़ी हो गई; क्योंकि उसके शरीर में कांफ्लिक्ट पैदा हो गई। दवाइयां उसको सुला रही हैं, और वह गहरी श्वास का जो प्रयोग चौबीस घंटे जारी रखे हुए है, वह उसकी शक्तियों को जगा रहा है। तो उसके भीतर ऐसी जिच पैदा हो गई, जैसे कि कोई कार में एक्सीलरेटर और ब्रेक दोनों एक साथ दबाता हो। समझे न? तो वह तो बहुत परेशानी में था। किसी ने मेरा उसको कहा तो वह मेरे पास आया।

मैं उसको देखकर समझा कि वह तो पागलपन में पड़ा है, यह तो कभी हो ही नहीं सकता। तो मैंने उससे कहा कि अनापानसती योग बंद करो। तो उसने कहा, इससे क्या संबंध है? तो उसे ख्याल ही नहीं है कि अगर श्वास का इतना ज्यादा प्रयोग करोगे कि आक्सीजन इतनी मात्रा में हो जाए कि शरीर सो ही न सके, तो फिर कैसे सोओगे! और या फिर, मैंने उससे कहा कि सोने का ख्याल छोड़ दो और ये दवाइयां लेना बंद कर दो। और तुम्हें कोई जरूरत नहीं है नींद की। नींद नहीं आएगी तो हर्ज नहीं है। अगर यह प्रयोग जारी रखते हो तो नींद नहीं आने से कोई हर्ज नहीं होगा।

एक आठ दिन उसने प्रयोग बंद किया है कि उसे नींद आनी शुरू हो गई, कोई दवा की जरूरत न रही।

अधिक कार्बन से अधिक मूर्च्छा

तो हमारे भीतर सोने की संभावना बढ़ती है कार्बन के बढ़ने से। इसलिए जिन-जिन चीजों से हमारे भीतर कार्बन बढ़ती है, वे सभी चीजें हमारे भीतर सोई हुई शक्तियों को और सुलाती हैं। उतनी हमारी मूर्च्छा बढ़ती चली जाती है।

जैसे दुनिया में जितनी संख्या आदमी की बढ़ रही है उतनी मूर्च्छा का तत्व ज्यादा होता चला जाएगा; क्योंकि जमीन पर आक्सीजन कम और आदमी ज्यादा होते चले जाएंगे। कल एक ऐसी हालत हो सकती है कि हमारे भीतर जागने की क्षमता कम से कम रह जाए। इसलिए तुम सुबह ताजा अनुभव करते हो; एक जंगल में जाते हो, ताजा अनुभव करते हो; समुद्र के तट पर तुम ताजा अनुभव करते हो। बाजार की भीड़ में सुस्ती छा जाती है, सब तमस हो जाता है; वहां बहुत कार्बन है।

प्रश्नः क्या नया आक्सीजन नहीं बनता है?

निरंतर बन रहा है। लेकिन हमारी भीड़, हमारी भीड़ में रहने की आदतें, वे सारी आक्सीजन को पीए चली जाती हैं। तो इसलिए जहां भी आक्सीजन ज्यादा है वहां तुम प्रफुल्ल अनुभव करोगे--वह चाहे बगीचा हो, चाहे नदी का किनारा हो, चाहे पहाड़ हो--जहां भी आक्सीजन ज्यादा है, वहां तुम एकदम प्रफुल्लित हो जाओगे, स्वस्थ हो जाओगे। जहां भीड़ है, भड़क्का है, सिनेमागृह है--चाहे मंदिर हो--वहां तुम एकदम से सुस्त हो जाओगे; वहां मूर्च्छा पकड़ेगी।

तीव्र परिवर्तन से देखना सुगम

तो तुम्हारे भीतर आक्सीजन को बढ़ाने का प्रयोजन है। उससे तुम्हारे भीतर का संतुलन बदलता है--तुम सोने की तरफ उन्मुख न रहकर जागने की तरफ उन्मुख होते हो। और अगर यह मात्रा तेजी से और एकदम बढ़ाई जा सके, तो तुम्हारे भीतर संतुलन में एकदम से इतना फर्क होता है जैसे तराजू का एक पल्ला जो नीचे लगा था, एकदम ऊपर चला गया; ऊपर का तराजू का पल्ला बिल्कुल नीचे आ गया। अगर झटके के साथ तुम्हारे भीतर का संतुलन बदला जा सके, तो उसका तुम्हें अनुभव भी जल्दी होगा। अगर पल्ला बहुत धीरे-धीरे-धीरे-धीरे आए, तुम्हें पता नहीं चलेगा कि कब बदलाहट हो गई। इसलिए मैं तीव्र श्वास के प्रयोग के लिए कह रहा हूं--कि इतने जोर से परिवर्तन करो कि दस मिनट में तुम एक स्थिति से ठीक दूसरी स्थिति में प्रवेश कर जाओ, और तुम साफ देख सको। क्योंकि जितने जल्दी चीज बदलती है, तभी देखी जा सकती है।

जैसे कि हम सब जवान से बूढ़े होते हैं, बच्चे से जवान होते हैं, लेकिन हम कभी पता नहीं लगा पाते कि कब हम बच्चे थे और कब जवान हो गए; और कब हम जवान थे और कब हम बूढ़े हो गए। अगर कोई तारीख हमसे पूछे कि किस तारीख को आप जवानी से बूढ़े हुए हैं, तो हम तारीख न बता सकेंगे। बल्कि बड़ी भ्रांति चलती रहती हैः बूढ़ा मन में समझ ही नहीं पाता कि बूढ़ा हो गया; क्योंकि उसकी जवानी और उसके बुढ़ापे के बीच कोई गैप नहीं है, कोई तीव्रता नहीं है।

बच्चा कभी नहीं समझ पाता कि अब वह जवान हो गया, वह अपने बचपन के ही ढंग अख्तियार किए चला जाता है। दूसरों को वह जवान दिखने लगता है, उसको पता नहीं चला कि वह जवान हो गया है। मां-बाप समझते हैंः जिम्मेवार होना चाहिए, यह होना चाहिए, वह होना चाहिए। वह अपने को बच्चा समझे जा रहा

है! क्योंकि कभी ऐसी तीव्रता से कोई घटना नहीं घटी जिसमें उसको पता चले कि अब वह बच्चा नहीं रहा, अब जवान हो गया है।

बूढ़ा आदमी जवान की तरह व्यवहार किए चला जाता है। उसे पता नहीं चल पा रहा है कि वह बूढ़ा हो गया। पता कैसे चले? क्योंकि पता चलने के लिए तीव्र संक्रमण चाहिए।

अगर ऐसा हो कि एक आदमी फलां तारीख को घंटे भर में जवान से बूढ़ा हो जाए, तो किसी को कहने की जरूरत न होगी कि तुम बूढ़े हो गए हो। एक बच्चा एक घंटे में फलां तारीख को बीस साल का पूरा हो और एकदम जवान हो जाए, तो किसी को, बाप को कहना न पड़ेगा कि अब तुम्हारी उम्र बड़ी हो गई है, अब जरा यह बचपना छोड़ो। यह किसी को कहने की जरूरत नहीं, वह खुद ही जान लेगा कि बात घट गई है; अब मैं दूसरा आदमी हूं।

तो मैं इतना ही तीव्र संक्रमण चाहता हूं कि तुम पहचान सको इन दो स्थितियों का फर्क कि तुम्हारा सोया हुआ चित्त, तुम्हारा सोया हुआ व्यक्तित्व, वह तुम्हारी स्लीपिंग कांशसनेस; और यह तुम्हारी अवेकंड, जागी हुई, प्रबुद्ध चेतना। यह इतनी तीव्रता से, झटके से होना चाहिए--जंप की तरह, छलांग की तरह--कि तुम पहचान पाओ कि फर्क हो गया। यह पहचान काम पड़ेगी। यह पहचान बहुत कीमत की है।

इसलिए मैं ऐसे प्रयोगों का पक्षपाती हूं जो तुम्हें तीव्रता से रूपांतरित करते हों। अगर बहुत वक्त ले लें, तो तुम कभी समझ न पाओगे कि क्या हो रहा है। और खतरा क्या है कि अगर तुम समझ न पाओ, तो हो सकता है थोड़ा-बहुत रूपांतरण भी हो जाए, लेकिन उससे तुम्हारी समझ गहरी न हो पाए। कई बार ऐसा हो जाता है; कई मौकों पर ऐसा होता है कि एक आदमी बहुत बार ऐसा होता है कि आत्मिक अनुभव के बहुत निकट पहुंच जाता है अनायास, चलते-चलते कहीं से, लेकिन झटके से नहीं, तीव्रता से नहीं, तो वह पकड़ नहीं पाता कि क्या हुआ। और उसकी वह जो व्याख्या करता है वह कभी भी ठीक नहीं होती; क्योंकि उसकी व्याख्या के लिए उतना फासला नहीं होता। बहुत मौकों पर ऐसी घटना घटती है जब कि तुम करीब होते हो एक नये अनुभव के, लेकिन तुम उसको टाल जाओगे; तुम उसकी व्याख्या अपने पुराने हिसाब में ही कर लोगे, क्योंकि वह इतने धीरे-धीरे हुआ है कि उसका कभी पता नहीं चलेगा।

एक आदमी को मैं जानता हूं कि वह भैंस को उठा लेता है। उसके घर भैंसें हैं। और वह बचपन से, जब भैंस उसके घर में पैदा हुई होगी तब से उसे उठाता रहा है रोज; उसे उठाकर घूमता रहा है। भैंस रोज धीरे-धीरे बड़ी होती गई है और रोज उसका भी उठाने का बल थोड़ा-थोड़ा बढ़ता चला गया। अब वह पूरी भैंस को उठा लेता है। अब वह चमत्कार मालूम होता है। हालांकि उसको भी नहीं लगता कि यह कोई चमत्कार है। दूसरों को लगता है कि बड़ा मुश्किल का मामला है, भैंस को उठा ले एक आदमी! मगर वह इतना क्रमिक हुआ है कि उसे भी पता नहीं है। और हमें यह चमत्कार दिखता है, क्योंकि हमारे लिए बड़ा फासला मालूम हो रहा है दोनों में; उसमें कहीं तालमेल नहीं दिखता है--हम उठा नहीं सकते, वह उठा रहा है!

कुंडलिनी का ईंधन है प्राण-ऊर्जा

तो तीव्रता का प्रयोग इसलिए कहता हूं। और प्राणवायु का तो बहुत मूल्य है। उसका तो बहुत मूल्य है। असल में, जितनी मात्रा में तुम अपने शरीर को प्राणवायु से, आक्सीजन से भर लोगे, उतनी ही त्वरा से, स्पीड से तुम शरीर के अनुभव से आत्म-अनुभव की तरफ झुक जाओगे। क्योंकि अगर बहुत ठीक से समझो तो शरीर तुम्हारा डेड एंड है--यानी तुम्हारा वह हिस्सा, जो मर चुका है। इसलिए वह दिखाई पड़ रहा है। तुम्हारा वह

हिस्सा जो सख्त हो चुका है। इसलिए दिखाई पड़ रहा है। तुम्हारा वह हिस्सा जो अब तरल नहीं है, ठोस हो गया है। और आत्मा तुम्हारा वह हिस्सा है जो तरल है, ठोस नहीं है; हवाई है, पकड़ में नहीं आता है।

तो जितनी ज्यादा तुम्हारे भीतर ऊर्जा होगी प्राण की, और जागरण और जीवन होगा, उतना ही तुम इन दोनों के बीच साफ फासला कर पाओगे। ये दो बहुत भिन्नतम तुम्हें मालूम पड़ेंगे, तुम्हारे ही--एक हिस्सा यह, एक हिस्सा वह--बिल्कुल अलग मालूम पड़ेंगे। इसलिए बहुत गहरा उपयोग है।

प्रश्नः कुंडलिनी जागरण के लिए?

हां, कुंडलिनी जागरण के लिए। इसलिए कि कुंडलिनी जो है, वह तुम्हारी सोई हुई शक्ति है। उसको तुम कार्बन के साथ न जगा सकोगे; कार्बन उसे और सुला देगी। उसको जगाने के लिए आक्सीजन बहुत सहयोगी है। इसलिए जिस तरह से भी हो सके... इसलिए सुबह का ध्यान निरंतर समझा गया है कि सुबह का ध्यान उपयोगी है। उसका कोई और ज्यादा मूल्य नहीं है। उसका मूल्य इतना ही है कि सुबह तुम थोड़ी भी श्वास लो तो भी ज्यादा आक्सीजन तुम्हारे भीतर पहुंच जाती है। तो उधर सूर्य उगने के साथ घंटे भर पृथ्वी बहुत ही अनोखी स्थिति में होती है। तो उस स्थिति का उपयोग करने के लिए सुबह सारी दुनिया में ध्यान का वक्त चुन लिया गया। तुम्हारे भीतर जो सोई हुई शक्ति है उस पर जितने जोर से प्राणवायु की चोट होगी, उतनी ही शीघ्रता से...

हमें दिखाई नहीं पड़ता न! एक दीया जल रहा है, तो हमें तो तेल दिखाई पड़ता है, बाती दिखाई पड़ती है; माचिस से आग लगाई, वह दिखाई पड़ती है; लेकिन जो जल रही है आक्सीजन, वह भर नहीं दिखाई पड़ती। न तेल मूल्य का है उतना, न बाती उतने मूल्य की है, न माचिस उतने मूल्य की है। लेकिन यह दृश्य हिस्सा है; यह शरीर है उसका; यह दिखाई पड़ता है। और आक्सीजन जो जल रही है, वह दिखाई नहीं पड़ती।

मैंने सुना है कि एक घर में बच्चे को छोड़ गए हैं, और भगवान का मंदिर है उस घर में, और दीया जलाकर रख गए हैं, और जोर की तूफान की हवा आई है, तो उस बच्चे ने सोचाः बाप कह गया है, दीया बुझ न जाए। उसे चौबीस घंटे घर में वे जलाते हैं। अब जोर की हवा है, बच्चा क्या करे? तो उसने लाकर एक कांच का बड़ा बर्तन उस दीये पर ढांक दिया। जोर की हवा से तो सुरक्षा हो गई, लेकिन थोड़ी देर में दीया बुझ गया। अब वह बड़ी मुश्किल में पड़ गया। शायद उतनी तेज हवा को भी दीया झेल जाता, लेकिन हवा के न होने को कैसे झेलेगा? वह मर ही गया। पर वह दिखाई नहीं पड़ता न!

हमारे भीतर भी जिसको हम जीवन कह रहे हैं, वह आक्सीडाइजेशन ही है--उसी तरह, जैसे दीये के। असल में, अगर जीवन को हम वैज्ञानिक अर्थों में लें, तो वह प्राणवायु के जलने का नाम है। चाहे वह वृक्ष में हो, चाहे आदमी में, चाहे दीये में, चाहे सूरज में--कहीं भी हो--जहां भी प्राणवायु जल रही है, वहां जीवन है। तो जितना तुम प्राणवायु को जला सको, उतनी तुम्हारी जीवन की ज्योति प्रगाढ़ हो जाएगी। और तुम्हारी जीवन की ज्योति ही है कुंडलिनी। वह उतनी ही प्रगाढ़ होकर बहने लगेगी, उतनी ही तीव्र हो जाएगी। तो उस पर प्राणवायु का तीव्र आघात परिणामकारी है।

गुफा में साधना करने के सूक्ष्म कारण

प्रश्नः समाधि के प्रयोग के लिए गुफाओं का उपयोग किया जाता था। वहां तो प्राणवायु कम रहती है!

असल में, बहुत सी बातों का आधार है समाधि में--बहुत सी बातों का। और जो लोग भी गुफाओं का प्रयोग करते हैं समाधि के लिए, उसमें अगर और बातें नहीं हैं, तो समाधि में न जाकर वे मूर्च्छा में चले जाएंगे। और जिसे वे समाधि समझेंगे, वह केवल प्रगाढ़ तंद्रा होगी और मूर्च्छा की अवस्था होगी।

गुफा का उपयोग सिर्फ वही कर सकता है, जिसने बहुत प्राणायाम के द्वारा अपने को आक्सीडाइज किया हुआ है कि गुफा उसके लिए बेमानी है। इसलिए एक आदमी अगर बहुत गहरा प्राणायाम किया है, और उसके खून का कण-कण, रोआं-रोआं, रेशा-रेशा आक्सीडाइज हो गया है, तो वह आठ दिन जमीन के नीचे भी दब जाए तो मर नहीं जाएगा। और कोई कारण नहीं है। उसके शरीर को जितनी आक्सीजन की जरूरत है, उसके पास उतना अतिरिक्त संचय है। हमारे पास कोई अतिरिक्त संचय नहीं है। तो अगर तुम बिना प्राणायाम को समझे और उस आदमी की बगल में सो गए, तो तुम मरे हुए निकलोगे, वह आदमी आठ दिन के बाद जिंदा निकल आएगा। असल में, आठ दिन के लिए जो न्यूनतम, मिनिमम आक्सीजन की जरूरत है, उतना उसके पास संचय है, उतना वह पी गया है।

तो गुफा में जा सकता है एक आदमी, और तब गुफा में उसको फायदे हो जाएंगे। आक्सीजन को तो इस तरह पूरा कर लेगा, उसका उसे डर नहीं है ज्यादा। और गुफा जो सुरक्षा देती है और बहुत सी चीजों से, वह उसके लिए गुफा का उपयोग कर रहा है। गुफा बहुत तरह की सुरक्षा देती है। बाहर के शोरगुल से ही नहीं, बाहर की बहुत सी तरंगों से, बाहर की बहुत सी वेव्स से। और पत्थर की, और खास तरह के पत्थर की गुफा के खास अर्थ हैं।

कुछ पत्थर, कुछ विशेष पत्थर, जैसे संगमरमर, कुछ तरंगों को भीतर प्रविष्ट नहीं होने देता। इसलिए संगमरमर का मंदिरों में विशेष प्रयोग किया गया। कुछ तरंगें उस मंदिर के भीतर प्रवेश नहीं कर सकतीं उस पत्थर की वजह से। वह कारीगरी का उतना नहीं है मामला, उसके पीछे बहुत गहरे अनुभव हैं कि कुछ पत्थर किसी खास तरह की तरंगों को पी जाते हैं, भीतर नहीं जाने देते हैं। कुछ पत्थरों पर से कुछ खास तरह की तरंगें वापस लौट जाती हैं; कुछ पत्थर कुछ खास तरह की तरंगों को आकर्षित करते हैं। तो विशेष तरह की गुफाएं विशेष आकार में काटी गईं; क्योंकि आकार का भी बड़ा मूल्य है। और वह आकार भी विशेष तरंगों को हटाने में सहयोगी होता है।

पर हमें ख्याल में नहीं होता है। जब एक साइंस खो जाती है तो बड़ी मुश्किल हो जाती है।

हम एक कार बनाते हैं। कार को हम एक खास आकार में बनाते हैं। अगर खास आकार में न बनाएं तो उसकी गति कम हो जाएगी। कार का आकार ऐसा होना चाहिए कि वह हवा को चीर सके, हवा से लड़ने न लगे। अगर आकार उसका चपटा हो सामने से और हवा से लड़ने लगे तो वह गति को तोड़ेगा। अगर हवा को चीर सके--लड़े न, सिर्फ तीर की तरह चीरे, तो वह हवा के रेसिस्टेंस से जो उसकी गति को बाधा पड़ती है, वह तो पड़ेगी नहीं, बल्कि चीरने की वजह से पीछे जो वैक्यूम पैदा होगा, वह भी उसकी गति को बढ़ाने में सहयोगी हो जाएगा।

तुम इलाहाबाद का ब्रिज अगर कभी देखोगे, तो इलाहाबाद का ब्रिज बहुत मुश्किल से बना। क्योंकि वह गंगा उसके पिलर्स को खड़ा न होने दे; वे पिलर्स गिरते ही चले गए। और एक पिलर तो बनाना असंभव ही हो गया! सारे पिलर्स बन गए, लेकिन एक पिलर नहीं बना। तो तुम वहां देखोगे कि एक जूते के आकार का पिलर है। लेकिन जिसने बनाया, उसे बड़ी मुश्किल हुई। उसने जूते के आकार का पिलर बनाया। तो वह गंगा का जो

धक्का है, पी जाता है। जूते का आकार भी तुम्हें चलने में सहयोगी है; वह हवा को काटता है, रोकता नहीं। तो उस ख्याल से जूते के आकार का पिलर है। वह गंगा का जो धक्का था जो दुश्मनी का, वह उसको एब्जार्ब कर गया।

गुफाओं के विशेष आकार, आयतन व पत्थरों का रहस्य

तो गुफाओं के विशेष आकार हैं, विशेष आयतन हैं। तो विशेष आकार, विशेष पत्थर और विशेष आयतन। एक व्यक्ति एक खास सीमा तक अपने व्यक्तित्व को आरोपित कर सकता है। और वे अनुभव में आ जाते हैं; उसके सारे रास्ते हैं कि वे ख्याल में आ जाते हैं; कि अगर मैं आठ फीट चौड़े और आठ फीट लंबे चौकोर कमरे को अपने से आपूरित कर सकता हूं, यानी मैं तो एक ही जगह बैठा रहूंगा लेकिन मेरे व्यक्तित्व से निकलनेवाली सारी किरणें इतने हिस्से को घेरा बांधकर भर सकती हैं, तो यह जगह बड़ी सुरक्षित हो जाती है। इसलिए इसमें कम से कम रंध्र होने चाहिए, कम से कम द्वार--एक ही द्वार होगा। और इसके अपने आकार होंगे, और उन आकारों की अपनी विशेषता होगी। तो बाहर के संवेदनों को भीतर न आने देंगे, और भीतर जो पैदा हो रहा है उसको बाहर न जाने देंगे। फिर अगर एक ही गुफा पर बहुत साधकों ने प्रयोग किया हो तब तो अदभुत फायदा होता है; उसका मूल्य ही बहुत बढ़ जाता है। वह विशेष तरह की सारी की सारी तरंगें वह गुफा पी जाती है और नये साधक के लिए सहयोगी हो जाती है। इसलिए हजारों-हजार साल तक एक-एक गुफा का प्रयोग चला है।

अब अजंता जब पहली दफा खोजा गया, तो वे सब मिट्टी से बंद कर दी गई थीं गुफाएं। उसके मिट्टी से बंद करने के लिए कारण था। ख्याल में नहीं है कि क्यों बंद कर दी गईं। पर सब गुफाएं मिट्टी में ढंकी हुई मिलीं। सब मिट्टी से बंद थीं पूरी की पूरी। सैकड़ों साल तक उनका कोई पता नहीं रहा था, वह पहाड़ ही रह गया था; क्योंकि मिट्टी भर दी गई थी और उस मिट्टी पर वृक्ष पैदा हो गए थे। और वे इसलिए भर दी गई थीं कि जब साधक उपलब्ध नहीं हो सके, तो उन गुफाओं में जो विशेषता थी, उसको बचाने के लिए और कोई रास्ता नहीं रहा, तो उसे बंद कर दिया गया। कभी भी कोई साधक खोजेगा तो फिर काम में लाई जा सकती हैं। लेकिन वे विजिटर्स के लिए नहीं थीं; वे दर्शकों के लिए नहीं हैं। दर्शकों ने सब नष्ट कर दिया; अब वहां कुछ भी नहीं है, दर्शकों ने सब नष्ट कर दिया।

तो इन गुफाओं में आक्सीजन का तो फायदा नहीं मिलेगा तुम्हें। फायदे दूसरे हैं। लेकिन साधना तो बहुत जटिल मामला है। उसके बहुत हिस्से हैं। पर उनके लिए गुफा फायदे की हो सकती है, जिन्होंने काफी प्रयोग किया है।

फिर जो गुफा में बैठता था, वह गुफा में ही नहीं बैठा रहता था। समय-समय पर गुफा में था, समय-समय गुफा के बाहर था। जो बाहर करने योग्य था वह बाहर कर रहा था, जो भीतर करने योग्य था वह भीतर कर रहा था।

मंदिर हैं, मस्जिद हैं, वे कभी इसी अर्थ में खोजे गए थे कि वहां एक विशेष तरह की तरंगों और कंपनों का संग्रह है; और उन तरंगों और कंपनों का उपयोग किया जा सकता है। कहीं अचानक किसी स्थान पर तुम पाओगे कि तुम्हारे विचार एकदम से बदल गए। हालांकि तुम पहचान न पाओगे; तुम यही समझोगे कि अपने भीतर ही कोई फर्क हो गया। तुम अचानक किसी आदमी के पास जाकर पाओगे कि तुम दूसरे आदमी हो गए हो थोड़ी देर के लिए; तुम्हारा कोई दूसरा पहलू ही ऊपर आ गया। तुम यही समझोगे कि अपने भीतर ही कुछ हो गया है, मूड की बात है। ऐसा नहीं है; इतना आसान नहीं है।

महापुरुषों के मृत शरीर भी मूल्यवान

और उसके लिए बड़ी अदभुत... अब जैसे कि पिरामिड्स हैं। अब कितनी खोजबीन चलती है! उससे कोई संबंध नहीं है। अभी खोजबीन चलती है कि पिरामिड्स किसलिए बनाए गए? क्या है? इतने-इतने बड़े पिरामिड्स उस रेगिस्तान में बनाने का क्या प्रयोजन है? कितना श्रम व्यय हुआ है! कितनी शक्ति लगी है! और सिर्फ आदमियों की लाशें गड़ाने के लिए इतनी बड़ी कब्रें बनाना बिल्कुल बेकार है।

वे सब के सब साधना के लिए विशेष अर्थ में बनाए गए स्थान हैं। और साधना के उपयोग के लिए ही विशेष लोगों की लाशें भी वहां रखी गईं।

अभी तिब्बत में हजार-हजार, दो-दो हजार साल पुराने साधकों की ममी.ज हैं, जिनको बहुत गहरे में सुरक्षित रखा हुआ है। जो शरीर बुद्ध के पास रहा हो, वह शरीर साधारण नहीं रह जाता। जिस शरीर के साथ अस्सी साल तक बुद्ध जैसी आत्मा संबंधित रही हो, वह शरीर भी साधारण नहीं रह जाता; वह काया भी कुछ ऐसी चीजें पी जाती है और ऐसी तरंगें पकड़ लेती है जो कि अनूठी हैं--जिनका कि अब दोबारा शायद जगत में वैसा होगा कि नहीं होगा, कहना कठिन हो जाता है।

जीसस के मरने के बाद उनकी लाश को एक गुफा में रख दिया गया था कि सुबह दफना दिया जाएगा। लेकिन वह लाश फिर मिली नहीं। और यह बड़ी मिस्ट्री है ईसाई के लिए कि वह क्या हुआ? वह कहां गई? फिर कहानी है कि वे कहीं देखे गए, दिखाई पड़े। तो रिसरेक्शन हुआ; वे पुनरुज्जीवित हो गए। लेकिन फिर कब मरे? पुनरुज्जीवित होकर फिर उनका जीवन क्या है? ईसाइयों के पास उनकी कोई कथा नहीं है। असल में, जीसस की लाश इतनी कीमती है कि उसे तत्काल उन जगहों में पहुंचा दिया गया जहां वह सुरक्षित की जा सके बहुत लंबे समय के लिए। और इसकी कोई खबर सामान्य नहीं बनाई जा सकती थी। क्योंकि इस लाश को बचाना बहुत जरूरी था। ऐसा आदमी मुश्किल से कभी होता है।

तो जो ममी.ज हैं पिरामिड्स में, और ये जो पिरामिड्स हैं, इनका जो आकार है, इनके जो कोण हैं...

प्रश्नः वह लाश कौन ले गया?

वह अलग बात करनी पड़े। वह तो अलग बात है न! जब जीसस पर पूरी बात कभी करेंगे, तब पूरी बात होगी तो ख्याल में आएगा।

गहरे ध्यान में कम श्वास की जरूरत

प्रश्नः जब हमारा गहरे ध्यान में प्रवेश होता है तब शरीर क्रमशः जड़ होता जाता है और श्वास बिल्कुल क्षीण होने लगती है, मिटने लगती है। श्वास के इस धीमे होने के कारण शरीर में आक्सीजन तो घटता है। तो आक्सीजन की इस कमी का और शरीर के जड़ होने का ध्यान व समाधि से क्या संबंध है?

हां, हां। असल में... असल में, जब श्वास पूरी तीव्रता से जग जाएगी, और तुम्हारे और तुम्हारे शरीर के बीच एक गैप पैदा हो जाएगा उसकी तीव्रता के कारण, तुम्हारा सोया हिस्सा और तुम्हारा जागा हिस्सा भिन्न मालूम होने लगेगा, तो जैसे ही तुम इस जागे हुए हिस्से की तरफ यात्रा शुरू करोगे, शरीर को फिर आक्सीजन

की कोई जरूरत नहीं है--शरीर को। अब तो उचित है कि बिल्कुल सो जाए वह; अब तो उचित है कि वह बिल्कुल जड़ हो जाए, मुर्दे की तरह पड़ा रह जाए। क्योंकि तुम्हारी जीवन-ऊर्जा अब शरीर की तरफ नहीं बह रही है, अब तुम्हारी जीवन-ऊर्जा तो आत्मा की तरफ बहनी शुरू हो गई है।

आक्सीजन की जो जरूरत है वह है शरीर की; वह जरूरत आत्मा की नहीं है। समझ रहे हो न तुम? वह है जरूरत शरीर की। इसलिए जब तुम्हारी आत्मा की तरफ तुम्हारी जीवन-ऊर्जा बहने लगी, तो अब शरीर के लिए बहुत मिनिमम आक्सीजन की जरूरत है, जितने से कि वह सिर्फ जीवित रह पाए बस। इससे ज्यादा की कोई जरूरत नहीं है। इससे ज्यादा अगर उसको मिलेगी, तो वह बाधा बनेगा। इसलिए क्षीण होती जाएगी श्वास पीछे तुम्हारी। उसका जगाने के लिए उपयोग है कि तुम्हारे भीतर कोई चीज जग गई; जब वह जग गई, तब उसका कोई उपयोग नहीं है। अब तुम्हारे शरीर को बहुत कम से कम श्वास की जरूरत है। कुछ क्षण तो ऐसे आ जाएंगे जब श्वास बिल्कुल बंद हो जाएगी। होगी ही नहीं।

समाधि में श्वास का खो जाना

असल में, जब तुम ठीक संतुलन पर पहुंचोगे, बैलेंस पर पहुंचोगे--जिसको हम समाधि कहें, उस पर पहुंचोगे--तो श्वास बंद हो जाएगी। लेकिन हमें श्वास बंद होने का कोई ख्याल नहीं है कि उसका मतलब क्या होता है? अगर अभी हम अनुभव भी करें तो हम बंद करेंगे। वह अनुभव वह नहीं है। श्वास चल रही है, हमने रोक ली, यह एक बात है। श्वास बाहर जा रही है, श्वास भीतर आ रही है, ये दो अनुभव हमारे हैं--बाहर जाना, भीतर आना; बाहर जाना, भीतर आना। लेकिन एक बिंदु ऐसा आता है कि श्वास आधी बाहर है और आधी भीतर है और सब ठहर गया है।

तो कुछ क्षण ऐसे आएंगे ध्यान में जब कि तुम्हें लगेगा कि श्वास ठहर तो नहीं गई! कहीं बंद तो नहीं हो गई! कहीं मर तो नहीं जाऊंगा! बिल्कुल ऐसे क्षण आएंगे। जितना तुम गहरे जाओगे, उतना इधर श्वास के कंपन कम होते चले जाएंगे; क्योंकि उस गहराई पर तुम्हें आक्सीजन की कोई जरूरत नहीं है; उसकी जरूरत थी बिल्कुल पहली चोट पर।

यह ऐसा ही है, जैसे कि मैंने चाबी लगाई ताले में। लेकिन ताला खुल गया; अब मैं चाबी लगाए ही थोड़ा चला जाऊंगा। चाबी बेकार हो गई; वह ताले में अटकी रह गई, मैं भीतर चला गया। तुम कहोगे कि आपने पहले चाबी लगाई थी, अब आप भीतर चाबी क्यों नहीं लगा रहे हैं? वह चाबी लगाई ही इसलिए थी कि वह द्वार पर ही उसकी जरूरत थी।

जब तक तुम्हारे भीतर जगी नहीं है कुंडलिनी, तब तक तो तुम्हें श्वास की चाबी का जोर से प्रयोग करना पड़ेगा। लेकिन जैसे ही वह जग गई, यह बात बेकार हो गई, अब तुम भीतर की यात्रा पर चल पड़े हो। और अब तुम्हारा शरीर बहुत कम श्वास मांगेगा। यह तुम्हें बंद नहीं करनी है, यह अपने से होने लगेगी धीमी, धीमी, धीमी, धीमी... और ऐसे क्षण आएंगे बीच-बीच में, झलक आएगी ऐसी कि जैसे सब बंद हो गया, सब ठहर गया।

समाधि जीवन का नहीं, अस्तित्व का अनुभव

असल में, वह जो क्षण है जब श्वास बिल्कुल ठहरी हुई है--न बाहर जाती; न भीतर जाती--वह परम संतुलन के जो क्षण हैं, वही समाधि का क्षण है। उस क्षण में तुम अस्तित्व को जानोगे, जीवन को नहीं। इस फर्क को ठीक से समझ लेना! लाइफ को नहीं, एक्झिस्टेंस को। जीवन की जानकारी तो श्वास से ही बंधी है; जीवन तो

आक्सीडाइजेशन ही है; वह तो श्वास का ही हिस्सा है। लेकिन उस क्षण तुम उस अस्तित्व को जानोगे जहां श्वास भी अनावश्यक है, जहां सिर्फ होना है; जहां पत्थर हैं, पहाड़ हैं, चांद हैं, तारे हैं--जहां सब ठहरा हुआ है; जहां कोई कंपन भी नहीं है। उस क्षण तुम्हारे श्वास का कंपन भी रुक जाएगा। वहां श्वास का भी प्रवेश नहीं है, क्योंकि वहां जीवन का भी प्रवेश नहीं है। वह जो है--बियांड! जीवन के भी पार!

और ध्यान रहे, जो चीज मृत्यु के पार है वह जीवन के भी पार होगी।

इसलिए परमात्मा को हम जीवित नहीं कह सकते; क्योंकि जिसके मरने की कोई संभावना नहीं है उसे जीवित कहना फिजूल है; कोई अर्थ नहीं है। परमात्मा का कोई जीवन नहीं है, अस्तित्व है। हमारा जीवन है; अस्तित्व के बाहर जब हम आते हैं तो हमारा जीवन है; जब हम अस्तित्व में वापस लौटते हैं तो हमारी मौत है। जैसे एक लहर उठी सागर में, यह इसका जीवन है--लहर का। इसके पहले लहर तो नहीं थी, सागर था। उसमें कोई कंपन न था, उसमें लहर थी नहीं। लहर उठी, यह जीवन शुरू हुआ; फिर लहर गिरी, यह लहर की मौत हुई। उठना लहर का जीवन है; गिरना मर जाना है। लेकिन सागर का जो अस्तित्व है, लहरहीन; जब लहर नहीं उठी थी जो तब भी था, और जब लहर गिर जाएगी तब भी होगा, उस अस्तित्व का, उस ट्रैंक्विलिटी का जो अनुभव है वह समाधि है।

तो समाधि जीवन का अनुभव नहीं है, अस्तित्व का अनुभव है; एक्झिस्टेंशियल है वह। वहां श्वास की कोई जरूरत नहीं है। वहां श्वास का कोई अर्थ नहीं है। वहां नहीं श्वास का कोई सवाल नहीं है, श्वास का कोई सवाल नहीं है। वहां कभी-कभी सब ठहर जाएगा।

समाधिस्थ व्यक्ति के वापस लौटने की समस्या

इसलिए जब गहरी साधक की स्थिति हो, तो अनेक बार उसे जीवित रखने के लिए और लोगों की जरूरत पड़ती है, अन्यथा वह खो जा सकता है। अन्यथा वह खो जा सकता है; वह अस्तित्व से वापस ही न लौटे।

रामकृष्ण बहुत बार ऐसी हालत में पहुंच जाते। तो छह-छह दिन लग जाते, वे नहीं लौटने की हालत में हो जाते। रामकृष्ण को इतना सम्मान है, लेकिन जिस आदमी ने रामकृष्ण को दुनिया को दिया, उसका हमें पता भी नहीं है। उनका एक भतीजा उनके पास था। उसने उनको बचाया निरंतर। वह रात-रात भर जागता, जबरदस्ती मुंह में पानी डालता, जबरदस्ती दूध पिलाता; श्वास घुटने लगती तो वह मालिश करता। वह उनको वापस लाता रहा। रामकृष्ण को, विवेकानंद ने तो उनकी चर्चा की दुनिया से, लेकिन जिस आदमी ने बचाया, उसका तो हमें पता भी नहीं चलता। उस आदमी ने सारी मेहनत की। वर्षों की मेहनत थी उसकी। और रामकृष्ण तो कभी भी जा सकते थे; क्योंकि वह इतना आनंदपूर्ण है कि लौटना कहां?

तो अस्तित्व के उस क्षण में खोना संभव है बिल्कुल। वह बहुत बारीक रेखा है जहां से तुम उस पार चले जा सकते हो। तो उसके बचाने के लिए स्कूल पैदा हुए, उसको बचाने के लिए आश्रम पैदा हुए। इसलिए जिन संन्यासियों ने आश्रम नहीं बनाए, वे संन्यासी समाधि में बहुत गहरे नहीं जा सके। जिनका संन्यास परिव्राजक का है, सिर्फ घूमते रहने का, वे ज्यादा गहरे नहीं जा सके; क्योंकि उस गहरे जाने के लिए ग्रुप चाहिए, स्कूल चाहिए; उस गहरे जाने के लिए और बचाव के लिए और लोग भी चाहिए जो जानते हों, नहीं तो आदमी कभी भी खो जा सकता है।

तो उन्होंने छोटी सी व्यवस्था कर ली कि भई, कहीं ज्यादा देर रुकेंगे तो मोह हो जाएगा। लेकिन जिसको ज्यादा देर रुकने से मोह पैदा हो जाता है, उसको कम देर से भी होता होगा--थोड़ा कम होता होगा, और क्या फर्क पड़ेगा! तीन महीने से ज्यादा होता होगा, तीन दिन में जरा कम होता होगा। मात्रा का ही फर्क पड़ेगा, और तो कोई फर्क पड़नेवाला नहीं है।

तो जिन-जिन लोगों के संन्यासी सिर्फ घूम रहे हैं, उनमें योग खो जाएगा, उनमें समाधि खो जाएगी, उनमें समाधि नहीं बच सकती, क्योंकि समाधि के लिए ग्रुप चाहिए। व्यक्ति तो समाधि में जा सकता है, लेकिन उसका लौटना बहुत मामला और है। तो ध्यान तक तो व्यक्ति को कोई कठिनाई नहीं है, समाधि के क्षणों के बाद बहुत सुरक्षा की जरूरत है। और वही क्षण है जब वह बचाया जा सके तो उस लोक की खबरें ला सकता है--जहां उसने पीप किया, जहां उसने झांक लिया जरा सा। उसको अगर हम लौटा सकें तो वहां की थोड़ी खबरें ला सकता है। जितनी खबरें हमें मिली हैं, वे उन थोड़े से लोगों की वजह से मिली हैं जो वहां से थोड़ा सा लौट आए। नहीं तो उस लोक की हमें कोई खबर नहीं मिल सकती। उसके बाबत सोचा तो जा ही नहीं सकता; उसके सोचने का तो कोई उपाय नहीं है। और अक्सर यह है कि वहां जो जाए उसके लौटने की कठिनाई हो जाती है; वह वहां से खो सकता है। वह प्वाइंट ऑफ नो रिटर्न है। वह वह जगह है जहां से छलांग हो जाती है और खड्ड मिल जाता है; जहां से रास्ता टूट जाता है और पीछे लौटने के लिए रास्ता नहीं दिखाई पड़ता। उस वक्त बड़े काम की जरूरत है।

इधर मैं निरंतर चाहता हूं कि जिस दिन भी तुम्हें मैं समाधि की तरफ उन्मुख करूं, उस दिन व्यक्ति कीमती नहीं रह जाता, उस दिन फौरन स्कूल चाहिए जो तुम्हारी फिकर ले सके--अन्यथा तुम तो गए--और तुम्हें लौटा सके; और तुम्हें जो अनुभव मिला है वह सुरक्षित करवा सके। नहीं तो वह अनुभव खो जाएगा।

सहज समाधिस्थ व्यक्ति की लयबद्ध श्वास

प्रश्नः सहज समाधि की अवस्था में जो व्यक्ति जीता है, उसकी श्वास की अवस्था कैसी होती है?

बहुत ही रिदमिक हो जाती है, बहुत लयबद्ध हो जाती है, संगीतपूर्ण हो जाती है। और बहुत सी बातें होती हैं। जो आदमी चौबीस घंटे ही सहज समाधि में है, वह जिसका मन डोलता नहीं, इधर-उधर नहीं होता, जैसा है वैसा ही बना रहता है, जो जीता नहीं अस्तित्व में होता है, ऐसा जो आदमी है, उसकी श्वास एक बहुत ही अपने तरह की लयबद्धता ले लेती है। और जब वह कुछ भी नहीं कर रहा है--बोल नहीं रहा है, खाना नहीं खा रहा है, चल नहीं रहा है--तब श्वास उसके लिए बड़ी आनंदपूर्ण स्थिति हो जाती है; तब सिर्फ होना, सिर्फ श्वास का चलना इतना रस देता है जितनी और कोई चीज नहीं देती। और बहुत संगीतपूर्ण हो जाती है, बहुत नादपूर्ण हो जाती है।

उस अनुभव को थोड़ा-बहुत श्वास की व्यवस्था से भी अनुभव किया जा सकता है। इसलिए श्वास की व्यवस्थाएं पैदा हुईंः कि जैसा सहज समाधिस्थ व्यक्ति की श्वास होती है, जिस रिदम, जिस छंद में चलती है, उसी छंद में दूसरा आदमी भी अपनी श्वास चलाए, तो उसे शांति का अनुभव होगा। इसलिए सब प्राणायाम इत्यादि की अनेक व्यवस्थाएं पैदा हुईं। ये अनेक समाधिस्थ लोगों के पास उनकी श्वास की लयबद्धता को देखकर पैदा की गई हैं। थोड़ा परिणाम होगा, और सहायता मिलेगी।

और यह जो श्वास है, सहज समाधिस्थ व्यक्ति की, यह अत्यंत मिनिमम हो जाती है, न्यूनतम हो जाती है। क्योंकि जीवन अब जो है उतना अर्थपूर्ण नहीं रह जाता, जितना अस्तित्व अर्थपूर्ण हो जाता है। यानी इस व्यक्ति के भीतर एक और दिशा खुल गई है जो अस्तित्व की है, जहां श्वास वगैरह की कोई जरूरत नहीं है। वह जीता तो वहीं है, वह रहता तो वहीं है, वह हमसे जब संबंधित होता है तभी वह शरीर का उपयोग कर रहा है, अन्यथा वह शरीर का उपयोग नहीं कर रहा है। और हमसे संबंधित होने के लिए उसे जो-जो करना पड़ता है--वह खाना खा रहा है, कपड़े पहन रहा है, सो रहा है, स्नान कर रहा है, वह हमसे संबंधित होने की व्यवस्था है; अब उसके लिए कोई अर्थ नहीं है। और इस सबके लिए जितनी जीवन-ऊर्जा चाहिए, उतनी उसकी श्वास चल रही है। वह बहुत न्यून हो जाती है।

इसलिए वह बहुत कम आक्सीजन की जगह में भी जी सकता है। बहुत कम आक्सीजन की जगह में जी सकता है।

निर्वात स्थानों में साधकों का रहना

इसलिए पुराने मंदिरों या पुरानी गुफाओं में द्वार-दरवाजे नहीं हैं। जिसको हम आज की दुनिया में कहें तो बहुत हैरानी की बात है। क्योंकि वे सब के सब हमें बिल्कुल ही स्वास्थ्य विज्ञान के विपरीत मालूम पड़ेंगे--सारे पुराने मंदिर। न खिड़की है, न दरवाजा है, न कुछ है। गुफाएं हैं, कुछ उपाय नहीं है, वायु के आने-जाने का कोई खास उपाय नहीं दिखाई पड़ता।

जो उनके भीतर रह रहा था, उसे बहुत उपयोग नहीं था। और वायु को, वह चाहता नहीं था कि वह ज्यादा भीतर आए-जाए। क्योंकि वायु के जो कंपन भीतर आते हैं, वह भीतर के जो और एस्ट्रल कंपन हैं, जो सूक्ष्म कंपन हैं, उनको सबको नष्ट कर डालते हैं; उनके धक्के से उनको जला जाते हैं। इसलिए वह उनकी सुरक्षा कर रहा था। वह आने देने के लिए उत्सुक नहीं था उनको बहुत। लेकिन आज नहीं हो सकता, क्योंकि आज... उसके लिए पहले पूरी श्वास की लंबी साधना चाहिए, तब! या समाधिस्थ स्थिति चाहिए, तब।

अनापानसतीः कीमती प्रयोग है

प्रश्नः बुद्धिस्ट साधना में जो अनापानसती है, उसमें श्वास पर ध्यान करने से आक्सीजन की मात्रा पर क्या असर पड़ता है?

बहुत असर पड़ता है। असल में--यह बहुत मजे की बात है और समझने जैसी है--जीवन की जो भी क्रियाएं हैं, इन में किसी पर भी अगर तुम ध्यान ले जाओ, तो उनकी गति बढ़ जाती है। जीवन की जो क्रियाएं हैं वे ध्यान के बाहर चल रही हैं। जैसे तुम्हारी नाड़ी चल रही है। तो जब तुम्हारा डाक्टर तुम्हारी नाड़ी जांचता है, तो वह उतनी ही नहीं होती जितनी जांचने के पहले थी, थोड़ी सी बढ़ जाती है; क्योंकि तुम्हारा ध्यान और डाक्टर--दोनों का ध्यान उस पर चला जाता है। और अगर लेडी डाक्टर जांच रही है तो और ज्यादा बढ़ जाएगी; क्योंकि ध्यान और ज्यादा चला जाएगा। समझ रहे हैं न? उतनी ही नहीं होती, जितनी थी; थोड़ा सा अंतर पड़ जाता है। इसको तुम ऐसा भी प्रयोग करोः अपनी नाड़ी ही जांचो पहले; और फिर दस मिनट नाड़ी पर ध्यान रखो कि वह कैसी चल रही है, और इसके बाद जांचो; तो तुम पाओगेः उसके कंपन बढ़ गए।

असल में, शरीर के भीतर जो भी क्रियाएं चल रही हैं, वे हमारे ध्यान के बाहर चल रही हैं। ध्यान के जाते ही उनकी गति बढ़ जाएगी। ध्यान की मौजूदगी उनकी गति को बढ़ाने के लिए कैटेलिटिक एजेंट का काम करती है।

तो अनापानसती जो है, वह जो प्रयोग है, वह बहुत कीमती प्रयोग है। वह श्वास पर ध्यान देने का प्रयोग है। श्वास को घटाना-बढ़ाना नहीं है, श्वास जैसी चल रही है, उसे तुम्हें देखना है। लेकिन तुम्हारे देखते से ही वह बढ़ जाती है। तुमने देखा, तुम आब्जर्वर हुए कि श्वास की गति बढ़ी। वह अनिवार्य है उसका बढ़ना। तो उसके बढ़ जाने से परिणाम होंगे। और उसको देखने के भी परिणाम होंगे। लेकिन अनापानसती का मूल लक्ष्य उसको बढ़ाना नहीं है, उसका मूल लक्ष्य तो उसे देखना है। क्योंकि जब तुम अपनी श्वास को देख पाते हो, धीरे-धीरे-धीरे, निरंतर-निरंतर देखने से श्वास तुमसे अलग होती जाती है। क्योंकि जिस चीज को भी तुम दृश्य बना लेते हो, तुम बहुत गहरे में उससे भिन्न हो जाते हो।

असल में, दृश्य से द्रष्टा एक हो ही नहीं सकता; उससे वह तत्काल भिन्न होने लगता है। जिस चीज को भी तुम दृश्य बना लोगे, उससे तुम भिन्न होने लगोगे। तो श्वास को अगर तुमने दृश्य बना लिया अपना, और चौबीस घंटे, चलते, उठते, बैठते, तुम उसको देखने लगे--जा रही, आ रही; जा रही, आ रही--तो तुम देखते रहे, देखते रहे, तुम्हारा फासला अलग होता जाएगा। एक दिन तुम अचानक पाओगे कि तुम अलग खड़े हो और श्वास वह चल रही है; बहुत दूर तुमसे उसका आना-जाना हो रहा है। तो इससे वह घटना घट जाएगी, तुम्हारे शरीर से पृथक होने का अनुभव उससे हो जाएगा।

इसलिए किसी भी चीज को... अगर तुम शरीर की गतियों को देखने लगो--रास्ते पर चलते वक्त ख्याल रखो कि बायां पैर उठा, दायां पैर उठा। बस तुम अपने दोनों पैर ही देखते रहो एक पंद्रह दिन, तुम अचानक पाओगे कि तुम पैर से अलग हो गए; अब तुम्हें पैर अलग से उठते हुए मालूम पड़ने लगेंगे और तुम बिल्कुल देखनेवाले रह जाओगे। तुम्हारे ही पैर तुम्हें बिल्कुल ही मैकेनिकल मालूम होने लगेंगे कि उठ रहे हैं, चल रहे हैं, और तुम बिल्कुल अलग हो गए।

इसलिए ऐसा आदमी कह सकता है कि चलता हुआ चलता नहीं, बोलता हुआ बोलता नहीं, सोता हुआ सोता नहीं, खाता हुआ खाता नहीं; ऐसा आदमी कह सकता है। उसका दावा गलत नहीं है, मगर उसका दावा समझना बहुत मुश्किल है। अगर वह खाने में साक्षी है तो वह खाते हुए खाता नहीं, ऐसा उसे पता चलता है; अगर वह चलने में साक्षी है तो वह चलते हुए चलता नहीं, क्योंकि वह उसका साक्षी है।

तो अनापानसती का तो उपयोग है, पर दूसरी दिशा से वह यात्रा है।

पूर्ण श्वास से पूर्ण जीवन

प्रश्नः तीव्र व गहरी श्वास से क्या आवश्यकता से अधिक आक्सीजन फेफड़े में नहीं चली जाएगी और उससे क्या कोई हानि नहीं होगी?

असल में, कोई भी आदमी ऐसा नहीं है जिसके पूरे फेफड़े में आक्सीजन जाती हो। कोई छह हजार छिद्र अगर हैं फेफड़े में, तो हजार, डेढ़ हजार छिद्रों तक स्वस्थ आदमी की जाती है, जिसको पूर्ण स्वस्थ कहें।

प्रश्नः बाकी में क्या होता है?

बाकी में कार्बन डाइआक्साइड भरी रहती है। वे सब गंदी हवा से भरे रहते हैं। तो इसलिए ऐसा तो आदमी मिलना मुश्किल है जो जरूरत से ज्यादा ले ले। जरूरत में ही लेनेवाला आदमी मिलना मुश्किल है। बहुत बड़ा हिस्सा बेकार पड़ा रहता है। उस तक, पूरे तक आप पहुंचा दें तो बड़े परिणाम होंगे। बड़े अदभुत परिणाम होंगे। आप की कांशसनेस का एक्सपैंशन एकदम से हो जाएगा। क्योंकि जितनी मात्रा में आपके फेफड़े में आक्सीजन पहुंचती है, उतना ही जीवन का आपको विस्तार मालूम पड़ता है; उतनी ही आपके जीवन की सीमा होती है। जैसे-जैसे फेफड़े में ज्यादा पहुंचती है, आपके जीवन का विस्तार बड़ा होता है। तो अगर हम पूरे फेफड़े तक आक्सीजन पहुंचा सकें, तो मैक्जिमम जिंदगी का हमें अनुभव होगा।

और स्वस्थ और बीमार आदमी में वही फर्क है कि बीमार आदमी और भी कम पहुंचा पाता है, और भी कम पहुंचा पाता है। बहुत बीमार को हमें आक्सीजन ऊपर से देनी पड़ती है, वह पहुंचा ही नहीं पाता। उस पर ही छोड़ देंगे तो वह मर जाएगा। बीमार और स्वस्थ को भी हम अगर चाहें तो आक्सीजन की मात्रा से भी नाप सकते हैं कि उसके भीतर कितनी आक्सीजन जा रही है। इसलिए आप दौड़ेंगे तो स्वस्थ हो जाएंगे, क्योंकि आक्सीजन की मात्रा बढ़ जाएगी; व्यायाम करेंगे तो स्वस्थ हो जाएंगे, क्योंकि आक्सीजन की मात्रा बढ़ जाएगी। आप कुछ भी ऐसा करेंगे जिससे आक्सीजन की मात्रा बढ़ती हो, वह आपके स्वास्थ्य में वर्द्धक हो जाएगी। और आप कुछ भी ऐसा करेंगे जिससे आक्सीजन की मात्रा कम होती है, वह आपकी बीमारी के लाने में सहयोगी हो जाएगी।

लेकिन जितनी आप ले सकते हैं उतनी ही कभी नहीं ले रहे हैं; और जितनी आप पूरी ले सकते हैं उससे ज्यादा लेने का सवाल ही नहीं उठता, आप ले नहीं सकते। आपका पूरा फेफड़ा भर जाए, उससे ज्यादा आप ले नहीं सकते। उतनी भी नहीं ले पाएंगे, उतना भी बहुत मुश्किल मामला है। उतनी भी नहीं ले पाएंगे।

प्रश्नः हम श्वास में जो वायु लेते हैं उसमें केवल आक्सीजन ही नहीं होती, उसमें नाइट्रोजन, हाइड्रोजन आदि अनेक प्रकार की हवाएं भी हैं। क्या उन सब का ध्यान के लिए सहयोग हैं?

बिल्कुल ही ध्यान के लिए सहयोगी होगी। क्योंकि हवा में जो कुछ भी है--और बहुत कुछ है, आक्सीजन ही नहीं है, और बहुत कुछ है--वह सब का सब आपके लिए, जीवन के लिए सार्थक है, इसीलिए आप जिंदा हैं। जिस ग्रह पर, जिस उपग्रह पर हवा में उतनी मात्रा में वे सब चीजें नहीं हैं, वहां जीवन नहीं हो सकेगा। वह जीवन की पासिबिलिटी है सब का सब। इसलिए उसमें चिंता लेने की जरूरत नहीं है। उसमें चिंता लेने की जरूरत नहीं है। और जितनी तीव्रता से आप लेंगे उतना हितकर है, क्योंकि उतनी तीव्रता में आक्सीजन ही ज्यादा से ज्यादा प्रवेश कर पाएगी और आपका हिस्सा बन पाएगी। बाकी चीजें फेंक दी जाएंगी। और वह जिस अनुपात में जो चीजें हैं, वे सब की सब आपके जीवन के लिए उपयोगी हैं; उससे कोई हानि नहीं है। उससे कोई हानि नहीं है।

हलकेपन का अनुभव और उसकी अभिव्यक्ति

प्रश्नः इससे शरीर हलका सा महसूस होता है!

हां, हलका महसूस होगा। हलका महसूस होगा, क्योंकि हमारे शरीर का जो बोध है, शरीर का बोध ही हमारा भारीपन है। जिसको हम भारीपन कहते हैं, वह हमारे शरीर का बोध है। इसलिए बीमार दुबला-पतला हो तो भी उसको बोझ मालूम पड़ता है और स्वस्थ आदमी कितना ही वजनी हो तो भी उसे हलका मालूम पड़ेगा। शरीर की जो कांशसनेस है हमारी, वही हमारा बोझ है। और शरीर की कांशसनेस, शरीर का जो बोध है उसी मात्रा में होता है जिस मात्रा में शरीर में तकलीफ हो। अगर पैर में दर्द है तो पैर का पता चलता है, सिर में दर्द है तो सिर का पता चलता है; अगर कहीं कोई तकलीफ नहीं है, तो शरीर का पता ही नहीं चलता।

इसलिए स्वस्थ आदमी की परिभाषा ही हैः जो विदेह अनुभव करे; जिसको ऐसा न लगे कि मैं शरीर हूं। तो समझना चाहिए वह आदमी स्वस्थ है। अगर उसको कोई भी हिस्सा लगता हो कि यह मैं हूं, तो समझ लेना चाहिए वह हिस्सा बीमार है।

तो जिस मात्रा में आक्सीजन बढ़ेगी और कुंडलिनी जगेगी, तो कुंडलिनी के जगते ही आपको आत्मिक प्रतीतियां शुरू हो जाएंगी जो कि शरीर की नहीं हैं। और सब बोझ शरीर का है। तो उनकी वजह से तत्काल हलकापन लगना शुरू हो जाएगा। बहुत हलकापन लगेगा। यानी बहुत लोगों को लगेगा कि जैसे हम जमीन से ऊपर उठ गए हैं। सभी उठ नहीं जाते, कभी ऐसी घटती है सौ में एकाध दफे घटना कि कभी शरीर थोड़ा ऊपर उठता है; आमतौर से उठता नहीं है, लेकिन अनुभव बहुत लोगों को होगा। जब आंख खोलकर देखेंगे तो पाएंगे, बैठे तो वहीं हैं।

लेकिन यह क्यों अनुभव हुआ था कि उठ गए?

असल में, इतनी वेटलेसनेस मालूम हुई, इतना हलकापन मालूम हुआ कि हलकेपन को जब हम चित्रों की भाषा में कहेंगे तो कैसे कहेंगे? और हमारा जो गहरा मन है वह भाषा नहीं जानता, वह चित्र जानता है। तो वह यह नहीं कह सकता कि हलके हो गए, वह चित्र बना लेता है कि जमीन से उठ गए।

अचेतन मन की चित्रमय भाषा

हमारा जो गहरा मन है अचेतन, वह चित्र ही जानता है। इसलिए रात सपने में भाषा नहीं होती आपके, चित्र ही चित्र होते हैं। और सपने को सारी बातों को चित्रों में बदलना पड़ता है। इसलिए हमारे सपने समझ में नहीं आते सुबह; क्योंकि हम जो सुबह जागकर भाषा बोलते हैं, वह सपने में नहीं होती; और जो भाषा हम सपने में अनुभव करते हैं, वह सुबह नहीं होती। तो इतना बड़ा ट्रांसलेशन है सपने से जिंदगी में कि उसके लिए बड़े भारी व्याख्याकार चाहिए, नहीं तो वह ट्रांसलेट नहीं होता।

अब एक आदमी बहुत महत्वाकांक्षी है, बहुत एंबीशस है, तो सपने में अब वह एंबीशन को कैसे अनुभव करे? वह पक्षी हो जाएगा। वह आकाश में ऊपर से ऊपर उड़ता जाएगा; सब उसके नीचे आ जाएंगे। अब महत्वाकांक्षा सपने में जब प्रकट होगी तो उड़ान की तरह प्रकट होगी--उड़ रहा है एक आदमी। कुछ आदमी उड़ने-उड़ने के ही सपने देखेंगे। वह महत्वाकांक्षा का सपना है। लेकिन महत्वाकांक्षा शब्द वहां होगा ही नहीं। सुबह वह आदमी कहेगा, क्या बात है कि मुझे उड़ने-उड़ने के सपने आते हैं! पर उसकी जो महत्वाकांक्षा है वह सपने में उड़ना बन जाती है।

ऐसे ही ध्यान की गहराई में पिक्टोरिअल लैंग्वेज होगी। हलकापन अनुभव होगा तो ऐसा लगेगा शरीर उठ गया। क्योंकि शरीर उठ गया है, यही हलकेपन का पिक्चर बन सकता है, और तो कोई पिक्चर बन नहीं सकता। और कभी बहुत ही हलकेपन की हालत में शरीर उठ भी जाता है।

शारीरिक रूपांतरण की प्रक्रिया

प्रश्नः कभी-कभी टूटने का डर लगता है कि जैसे कुछ भी टूट जाएगा।

हां, लग सकता है, बिल्कुल लग सकता है। ... बिल्कुल लग सकता है।

प्रश्नः वह डर नहीं रखना चाहिए बिल्कुल?

रखने की तो कोई जरूरत नहीं है, लेकिन वह लगता है; वह स्वाभाविक है।

प्रश्नः गरमी भी बहुत पैदा होती है!

वह भी हो सकता है; क्योंकि हमारे भीतर सारी की सारी व्यवस्था बदलती है। यानी जो-जो हमारा इंतजाम है, वह सब बदलता है; जहां-जहां से हम शरीर से जुड़े हैं वहां-वहां ढिलाई होनी शुरू होती है; जहां हम नहीं जुड़े हैं वहां नये जोड़ बनने शुरू होते हैं; पुराने ब्रिज गिरते हैं, नये ब्रिज बनते हैं; पुराने दरवाजे बंद होते हैं, नये दरवाजे खुलते हैं। वह पूरा मकान आलट्रेशन में होता है, तो इसलिए बहुत सी चीजें टूटती मालूम पड़ती हैं, बहुत से डर मालूम पड़ते हैं, सब व्यवस्था अव्यवस्था हो जाती है। तो ट्रांजीशन के वक्त में यह चलेगा। लेकिन जैसे ही नई व्यवस्था आ जाएगी, वह पुरानी व्यवस्था से अदभुत है, उसका फिर कोई मुकाबला नहीं। फिर कभी ख्याल भी नहीं आएगा कि पुरानी व्यवस्था टूट गई, या थी! बल्कि ऐसा लगेगा कि इतने दिनों उसको कैसे खींचा? तो वह होगा।

अंत तक प्रयत्न जारी रखो

प्रश्नः शक्तिपात के बाद भी क्या तीव्र श्वास और "मैं कौन हूं" पूछने का प्रयत्न करना पड़ेगा या वह सहज ही होने लगता है?

जब सहज होने लगे तब तो सवाल नहीं है। तब तो सवाल नहीं है; तब कोई सवाल नहीं है। तब तो सवाल भी असहज है। होने लगे वह, तब तो कोई बात ही नहीं है।

लेकिन जब तक नहीं हुआ है, तब तक कई बार मन मानने का होता है कि अब छोड़ो, अब तो हो गया! अब क्या बार-बार पूछते चले जा रहे हैं! अब कितने दिन से तो पूछ रहे हैं! जब तक मन तुमसे कहे कि छोड़ो, अब क्या फायदा है, तब तक तो करते ही चले जाना; क्योंकि मन अभी है। जिस दिन अचानक तुम पाओ कि अब तो करने का कोई सवाल ही नहीं, करना भी चाहो तो नहीं कर सकते; क्योंकि "मैं कौन हूं" तुम तभी तक पूछ सकते हो जब तक पता नहीं है; जिस दिन पता चल जाएगा उस दिन तुम पूछोगे कैसे? वह तो एब्सर्डिटी है, उसको तुम पूछ ही कैसे सकते हो जब तुम्हें पता ही चल गया?

मैं पूछता हूं कि दरवाजा कहां है? दरवाजा कहां है? अब मुझे पता चल गया कि यह रहा दरवाजा। अब मैं पूछूंगा दरवाजा कहां है? यह भी नहीं पूछूंगा कि क्या मैं पूछूं अब कि दरवाजा कहां है। इसका कोई मतलब नहीं है। जो हमें पता नहीं है, वहीं तक हम पूछ सकते हैं; जैसे ही हमें पता हुआ वैसे ही बात खत्म हो गई।

तो जैसे ही "मैं कौन हूं" इसकी अनुभूति तुम पर बरस जाए, वैसे ही तुम्हारे प्रश्न की दुनिया गई। और जैसे ही तुम छलांग लगा जाओ उस लोक में, फिर करने का कोई सवाल नहीं है; फिर तो तुम जो करोगे, वह सभी वही होगा। तुम चलोगे तो ध्यान होगा, तुम बैठोगे तो ध्यान होगा, तुम चुप रहोगे तो ध्यान होगा, तुम बोलोगे तो ध्यान रहेगा। ऐसा भी कि तुम लड़ने भी चले जाओगे तो भी ध्यान होगा। यानी, तुम्हारा क्या करना है, इससे फिर कोई फर्क नहीं पड़ता। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता।

दांव पूरा ही लगाना

प्रश्नः शक्तिपात का प्रभाव जब क्रियाशील होता है तो श्वास तो तेज होती है आप ही आप, लेकिन बीच-बीच में श्वास की गति बिल्कुल रुक जाती है। तो क्या उस स्थिति में प्रयास करना चाहिए श्वास का?

करोगे तो फायदा होगा। सवाल यह नहीं है कि श्वास चले कि नहीं; वह न चले तो कोई हर्जा नहीं। तुमने प्रयास किया कि नहीं! यह सवाल नहीं है; वह नहीं चलेगी तो नहीं चलेगी, तुम क्या करोगे? लेकिन तुम मत छोड़ देना प्रयास। तुम्हारा प्रयास ही सार्थक है। बड़ा सवाल इतना नहीं है कि वह हुआ कि नहीं हुआ। तुमने किया! तुमने अपने को पूरा दांव पर लगाया; तुमने कहीं बचा नहीं लिया अपने को। नहीं तो मन बहुत बचाव करता है। वह कहता हैः अब तो हो ही नहीं रहा, अब छोड़ो। हमारे मन के साथ कठिनाई ऐसी है कि वह रोज हजार रास्ते खोजता हैः कि अब तो यह हो ही नहीं रहा, अब बिल्कुल दम घुटी जा रही है, अब बिल्कुल मर ही जाओगे, अब छोड़ो।

तो तुम यह मत सुनना। तुम कहना, घुट जाए तो बड़ा आनंद! नहीं आ सकेगी तो वह दूसरी बात है, उसमें तुम्हारा कोई वश नहीं है। लेकिन अपनी तरफ से तुम पूरी कोशिश करना; तुम अपने को पूरा दांव पर लगाना। उसमें रत्ती भर अपने को बचाना मत। क्योंकि कभी-कभी रत्ती भर बचाना ही सब रोक देता है--रत्ती भर बचाना! कोई नहीं जानता कि ऊंट आखिरी तिनके से बैठ जाए। तुमने बहुत वजन लादा है ऊंट पर, लेकिन अभी इतना वजन नहीं हुआ है कि ऊंट बैठे। और हो सकता है सिर्फ आखिरी तिनका--घास का एक छोटा सा टुकड़ा--और ऊंट बैठ जाए। क्योंकि संतुलन तो एक छोटे से तिनके से ही आखिर में तय होता है।

प्रश्नः पहले नहीं होता!

पहले नहीं होता तय। पहले तुमने दो मन लादा और उससे कुछ नहीं हुआ, ऊंट चलता ही चला गया। तुमने एक हथौड़े से ताला तोड़ा। तुम पचास हथौड़े मार चुके पूरी ताकत से--और इक्यावनवां तुमने बहुत धीमी ताकत से मारा और टूट गया। संतुलन तो अंत में बड़ी छोटी बात से तय होता है; कभी-कभी इंच भर से तय होता है, तिनके से तय होता है। इसलिए ऐसा न हो कि तुम सारी मेहनत करो और एक तिनके से चूक जाओ। और चूक गए तो तुम पूरे चूक गए।

अभी ऐसा हुआः एक मित्र अमृतसर में तीन दिन से ध्यान कर रहे थे। पढ़े-लिखे डाक्टर हैं। पर नहीं कुछ हो रहा था। आखिरी दिन--मुझे तो पता ही नहीं था कि वे क्या कर रहे हैं, क्या नहीं कर रहे हैं; जानता भी नहीं था उनको--आखिरी दिन मैंने यह कहा कि हम पानी को गरम करते हैं, तो वह सौ डिग्री पर भाप बनता है। और अगर निन्यानबे डिग्री से भी वापस लौट गए, तो यह मत सोचना कि हमने निन्यानबे तक बनाया था तो एक डिग्री की क्या बात थी! वह पानी रह जाएगा। साढ़े निन्यानबे तक भी पानी रह जाएगा; रत्ती भर फासला रह जाएगा तो भी पानी रह जाएगा। वह तो आखिरी रत्ती भी, जब सौ को पार करेगा, क्रास करेगा, तभी भाप बनेगा। और इसमें कोई शिकायत नहीं की जा सकती है।

तो वे उसी दिन सांझ को मेरे पास आए कि आपने यह अच्छा कहा, मैं तो कर रहा था कि भई, चलो धीरे-धीरे कर रहे हैं, बहुत नहीं होगा तो थोड़ा तो होगा! हमारे क्या ख्याल में होते हैं! तो आपने जब कहा तब मुझे ख्याल में आया कि यह बात तो ठीक है। अट्ठानबे डिग्री पर गर्म किया तो ऐसा नहीं कि थोड़ा पानी भाप बनेगा और थोड़ा नहीं बनेगा; बनेगा ही नहीं। बनना तो शुरू होगा, एक भी बिंदु अगर बना हो तो वह सौ डिग्री पर ही उड़ेगा; उसकी उड़ान तो सौ डिग्री पर ही होगी। उसके पहले वह पानी होना नहीं छोड़ सकता। पानी होना छोड़ने के लिए उतनी यात्रा उसे करनी ही पड़ेगी, आखिरी इंच तक।

तो उन्होंने मुझसे कहा कि आपने अच्छा कह दिया यह; आज मैंने पूरी ताकत लगाई। तो मैं तो हैरान हूं कि मैं तीन दिन से मेहनत फिजूल कर रहा था; थक भी जाता था, कुछ होता भी नहीं था; आज थका भी नहीं हूं, और कुछ हो भी गया। पर उन्होंने कहा कि मुझे सौ डिग्री की बात ख्याल रही पूरे वक्त; और मैंने इंच भर भी नहीं छोड़ा, मैंने कहा कि अपनी तरफ से नहीं छोड़ना है, पूरी ताकत लगा देनी है।

जिनको नहीं हो रहा है और जिनको हो रहा है, उनमें और कोई फर्क नहीं है, सिर्फ इतना ही फर्क है। सिर्फ इतना ही फर्क है। और एक बात और ध्यान रखना कि कई दफे ऐसा लगता है कि तुम्हारा पड़ोसी तुमसे ज्यादा ताकत लगा रहा है और उसको नहीं हो रहा। लेकिन उसकी सौ डिग्री और तुम्हारी सौ डिग्री में फर्क है। अगर उसके पास ताकत ज्यादा है...

एक आदमी के पास पांच सौ रुपए हैं और वह तीन सौ रुपए लगा रहा है दांव पर, और तुम्हारे पास पांच रुपए हैं और तुम चार रुपए दांव पर लगा रहे हो--तुम आगे निकल जाओगे। यह तीन सौ और चार से तय नहीं होगा, पूरे अनुपात से तय होगा। तुमने अपना पूरा लगाया तो सौ डिग्री पर हो। और सबकी सौ डिग्री अलग होंगी। उसका कितना पूरा लगाने का सवाल है। अगर तुमने पांच रुपए लगा दिए तो तुम जीत जाओगे, और वह तीन सौ और चार सौ भी लगा दे तो नहीं जीतेगा। उसके पास पांच सौ थे; जब तक वह पांच सौ न लगा दे, तब तक वह जीतनेवाला नहीं है।

चरम-बिंदु पर ही सावधानी

इसलिए अंतिम अर्थों में एक बात ध्यान रखना सदा जरूरी है कि तुम अपने को बचाना मत; कहीं भी यह मत सोचना कि अब ठीक है, इतने से हो जाएगा। ऐसा तुमने सोचा कि तुम लौटना शुरू हो जाओगे।

और अक्सर ऐसा होगा कि जिस बिंदु से घटना घटती है उसी बिंदु से ऐसा होगा; क्योंकि मन उसी बिंदु पर घबड़ाना शुरू होता है कि अब तो भाप बनी, अब भाप बनी। अब वह कहता है कि अब बस काफी हो गया, उबल चुके, पानी आग हुआ जा रहा है, अब क्या फायदा; अब लौट आओ।

वही क्षण बहुत कीमती है जब तुम्हारा मन कहे कि अब लौट चलो। अब मन को लगने लगा कि अब मामला खतरे का है; अब टूटने का वक्त करीब आता है, अब मिटे, अब मरे। तो जैसे ही उसको लगा कि अब खतरा आता है... जब तक खतरा नहीं है, तब तक वह कहेगा कि खूब मजे से करो, जैसे ही खतरे के करीब पहुंचोगे, ब्वाइलिंग प्वाइंट के पहले ही वह तुमसे कहेगा कि अब बस, अब तो सारी ताकत लगा दी, अब तो होता ही नहीं है। उसी वक्त सावधान रहना। वही क्षण है जब तुम्हें पूरा लगा देना है। उस एक क्षण में चूकने से कभी वर्ष चूकना हो जाता है। और निन्यानबे डिग्री तक पहुंचने में भी वर्षों लग जाते हैं कभी तो। और कभी पहुंच पाते हैं और तत्काल चूक जाते हैं। जरा सी बात और चुका सकती है। इसलिए तुम मत बचाव करना। वह नहीं होगा, नहीं होगा।

प्रश्नः जोर से करने से नाड़ियों पर कुछ असर नहीं हो सकता?

ये सारी की सारी जो बातें हैं, सारी की सारी जो बातें हैं, हमारे सारे भय जो हैं... असर तो होगा ही, असर क्यों नहीं होगा? असर तो होगा ही। असर होने के लिए ही तो सारी बात है।

प्रश्नः टूट जाएं नाड़ी तो?

हां, तो देखो भी न! टूट जाने दो, बचाकर भी क्या करना है! टूट ही जाएगी, बचाकर भी क्या करोगी।

प्रश्नः इग्नोरेंस में तो मरना नहीं चाहते!

तो मरोगी इग्नोरेंस में अगर नाड़ी बचाओगी। करोगी क्या? हमारी तकलीफ यह है कि हम जिन चीजों को बचाने के लिए चिंतित रहते हैं उनको बचाने से होना क्या है?

प्रश्नः हमारे पास इतना ही अल्प सा तो है; उसे भी खो दें?

हां, अगर वह भी होता तब भी कुछ था; तब तुम्हें डर न होता उसके खोने का। वह भी नहीं है। अक्सर नंगे आदमी कपड़े चोरी जाने के डर से भयभीत रहते हैं, क्योंकि इससे एक मजा आता है कि अपने पास भी कपड़े हैं। उसका जो रस है भीतर वह यह रहता है कि अरे, अपन कोई नंगे थोड़े ही हैं, कपड़े चोरी न चले जाएं। कपड़े हैं तो चोरी जाने की इतनी फिकर नहीं रहती है। कपड़े ही हैं न, चोरी चले जाएंगे तो चले जाएंगे। यह भय छोड़ना।

इसका यह मतलब नहीं है कि तुम्हारी नाड़ियां टूट जाएंगी। भय से टूट सकती हैं, ध्यान से नहीं टूट सकतीं। भय से टूट ही जाती हैं। लेकिन भय से हम भयभीत नहीं होते। भय से टूट जाएंगी, चिंता से टूट जाएंगी, उससे हम भयभीत नहीं हैं। तनाव से टूट जाएंगी, उससे हम भयभीत नहीं हैं। ध्यान से हम भयभीत हैं, जहां कि टूटने का कोई सवाल नहीं है, जहां टूटी भी होंगी तो जुड़ सकती हैं।

लेकिन हम अपने भय पालते हैं। और वे भय हमें सुविधा बना देते हैं कि ऐसा न हो जाए, ऐसा न हो जाए, ऐसा न हो जाए। लौट आने का हम सारा इंतजाम कर लेते हैं।

तो मैं यह कहता हूं, जाओ ही क्यों? यह दुविधा खतरनाक है। मैं कहता हूं, जाओ ही मत; बात ही छोड़ो; उसकी चिंता ही मत लो।

दुविधा साधक की एकमात्र शत्रु

लेकिन हम दोनों काम करना चाहते हैं। हम जाना भी चाहते हैं और नहीं भी जाना चाहते हैं। तब दुविधा हमारे प्राण ले लेती है। और तब हम अकारण परेशान होते हैं। सैकड़ों-लाखों लोग अकारण परेशान होते हैं। उनको परमात्मा को खोजना भी है और बचना भी है कि कहीं मिल न जाए।

अब ये दोहरी दिक्कतें हैं। हमारी सारी तकलीफ जो है न वह ऐसी है कि हम जो करना चाहते हैं उसको किसी दूसरे तल पर मन के नहीं भी करना चाहते। दुविधा हमारा प्राण है। हम ऐसा कर ही नहीं पाते कि कुछ हम करना चाहते हैं तो करना चाहते हैं। जिस दिन ऐसा हो उस दिन तुम्हें कोई रुकावट नहीं होगी। उस दिन जिंदगी गति बन जाती है। लेकिन हमारी हालतें ऐसी हैं कि एक पैर उठाते हैं और एक वापस लौटा लेते हैं; एक ईंट मकान की रखते हैं और दूसरी उतार लेते हैं। रखने का भी मजा लेते रहते हैं और रोने का भी मजा लेते रहते हैं कि मकान बन नहीं रहा। दिन भर मकान जमाते हैं, रात भर उतार देते हैं। दूसरे दिन फिर दीवालें वहीं की वहीं हो जाती हैं, फिर हम रोने लगते हैं कि बड़ी मुश्किल है कि मकान बन नहीं रहा।

यह जो कठिनाई है, यह समझनी चाहिए अपने भीतर। और इसको ऐसे ही समझ सकोगी जब तुम यह समझो कि ठीक है, टूटेंगी न, तो टूट ही जाएंगी। तीस-चालीस साल नहीं भी टूटीं तो करोगी क्या? एक दफ्तर में नौकरी करोगी, रोज खाना खाओगी, दो-चार बच्चे पैदा करोगी, नहीं पैदा करोगी; पति होगा; यह होगा, वह होगा; यही सब होगा। और इनको छोड़ जाओगी तो ये बेचारे अपनी नाड़ियां न टूट जाएं उसके लिए डरते रहेंगे। यही करती रहोगी। करोगी क्या?

अगर हमको थोड़ा सा भी यह ख्याल में आ जाए कि जिंदगी जिसको हम बचाने की कोशिश में हैं, इसमें बचाने योग्य भी क्या है! तो दांव पर लगा सकते हैं, नहीं तो नहीं लगा सकते। और यह बहुत ही जिसको कहना चाहिए स्पष्ट, हमारे मन में साफ हो जाना चाहिए कि जिस-जिस चीज को हम बचाना चाहते हैं, उसमें बचाने जैसा भी क्या है? क्या है बचाने जैसा? और बचाकर भी कहां बचता है? यह स्पष्ट हो तो फिर तुम्हें कठिनाई नहीं होगी। टूटेगी तो टूट जाएगी। टूटती नहीं है, अभी तक टूटी नहीं है। अगर तोड़ दो तो तुम एक नई घटना होगी।

प्रश्नः रिकार्ड टूट जाएगा?

हां, रिकार्ड टूट जाएगा।

ग्यारहवां प्रवचन

मुक्ति सोपान की सीढ़ियां

प्रश्नः आपने नारगोल शिविर में कहा कि शक्तिपात का अर्थ है--परमात्मा की शक्ति आप में उतर गई। बाद की चर्चा में आपने कहा कि शक्तिपात और ग्रेस में फर्क है। इन दोनों बातों में विरोधाभास सा लगता है। कृपया इसे समझाएं।

दोनों में थोड़ा फर्क है, और दोनों में थोड़ी समानता भी है। असल में, दोनों के क्षेत्र एक-दूसरे पर प्रवेश कर जाते हैं। शक्तिपात परमात्मा की ही शक्ति है। असल बात तो यह है कि उसके अलावा और किसी की शक्ति ही नहीं है। लेकिन शक्तिपात में कोई व्यक्ति माध्यम की तरह काम करता है। अंततः तो वह भी परमात्मा है। लेकिन प्रारंभिक रूप से कोई व्यक्ति माध्यम की तरह काम करता है।

जैसे आकाश में बिजली कौंधी; घर में भी बिजली जल रही है; वे दोनों एक ही चीज हैं। लेकिन घर में जो बिजली जल रही है, वह एक माध्यम से प्रवेश की है घर में--नियोजित है। आदमी का हाथ उसमें साफ और सीधा है। वह भी परमात्मा की है। वर्षा में जो बिजली कौंध रही है वह भी परमात्मा की है। लेकिन इसमें बीच में आदमी भी है, उसमें बीच में आदमी नहीं है। अगर दुनिया से आदमी मिट जाए तो आकाश की बिजली तो कौंधती रहेगी, लेकिन घर की बिजली बुझ जाएगी।

शक्तिपात घर की बिजली जैसा है, जिसमें आदमी माध्यम है; और प्रसाद, ग्रेस आकाश की बिजली जैसा है, जिसमें आदमी माध्यम नहीं है।

व्यक्तिः परमात्म शक्ति का माध्यम

तो जिस व्यक्ति को ऐसी शक्ति उपलब्ध हुई है, जो परमात्मा से किसी अर्थों में संयुक्त हुआ है, वह तुम्हारे लिए माध्यम बन सकता है; क्योंकि वह ज्यादा अच्छा वीहिकल है, तुमसे ज्यादा अच्छा वाहन है। उस शक्ति के लिए वह आदमी परिचित है, उसके रास्ते परिचित हैं; वह शक्ति उस आदमी से बहुत शीघ्रता से प्रवेश कर सकती है। तुम बिल्कुल अपरिचित हो, अनगढ़ हो। वह आदमी गढ़ा हुआ है। और उसके माध्यम से तुम में प्रवेश करे, तो एक तो वह गढ़ा हुआ वाहन है, इसलिए बड़ी सरलता है; और दूसरा वह तुम्हारे लिए बहुत संकीर्ण द्वार है जहां से तुम्हारी पात्रता के योग्य शक्ति तुम्हें मिल जाएगी। तो घर की बिजली में बैठकर तुम पढ़ सकते हो, आकाश की बिजली के नीचे बैठकर पढ़ नहीं सकते। घर की बिजली एक नियंत्रण में है, आकाश की बिजली किसी नियंत्रण में नहीं है।

तो कभी अगर किसी व्यक्ति के ऊपर आकस्मिक प्रसाद की स्थिति बन जाए, अनायास ऐसे संयोग इकट्ठे हो जाएं कि उसके ऊपर शक्तिपात हो जाए, तो बहुत संभावना है वह व्यक्ति पागल हो जाए, विक्षिप्त हो जाए, उन्मादग्रस्त हो जाए। क्योंकि वह शक्ति इतनी बड़ी हो और उसकी पात्रता सब अस्तव्यस्त हो जाए।

फिर अनजान, अपरिचित सुखद अनुभव भी दुखद हो जाते हैं। जो आदमी वर्षों तक अंधेरे में रहा हो, उसके सामने अचानक सूरज आ जाए, तो उसे प्रकाश दिखाई नहीं पड़ेगा। और भी ज्यादा अंधेरा दिखाई पड़ेगा-

-जितना अंधेरे में भी दिखाई नहीं पड़ता था। अंधेरे में तो वह थोड़ा देखने का आदी हो गया था; रोशनी में तो उसकी आंख ही बंद हो जाएगी।

तो कभी ऐसा हो जाता है कि ऐसी स्थितियां बन सकती हैं भीतर कि अनायास तुम पर विराट शक्ति का आगमन हो जाए। लेकिन उससे तुम्हें सांघातिक नुकसान पहुंच सकते हैं; क्योंकि तुम तो तैयार नहीं हो; तुम तो चौंककर पकड़ लिए गए हो। तो दुर्घटना हो जाए। ग्रेस भी दुर्घटना बन सकती है।

शक्ति का नियंत्रित संचार

दूसरी जो शक्तिपात की स्थिति है, उसमें दुर्घटना की संभावना बहुत कम है--नहीं के बराबर है; क्योंकि कोई व्यक्ति माध्यम है। और संकीर्ण माध्यम से एक तो शक्ति का मार्ग बहुत संकरा हो जाता है, फिर वह व्यक्ति नियंत्रण भी कर सकता है; वह तुम तक उतना ही पहुंचने दे सकता है, जितना तुम झेल सको। लेकिन ध्यान रहे कि फिर भी वह व्यक्ति स्वयं शक्ति का मालिक नहीं है, सिर्फ वाहक है। इसलिए कोई कहता होः मैंने शक्तिपात किया, तो वह गलत कहता है।

वह ऐसे ही होगा, जैसे बल्ब कहने लगे कि मैं प्रकाश दे रहा हूं। तो वह गलत कहता है। हालांकि बल्ब को यह भ्रांति हो सकती है। इतने दिन से रोज-रोज प्रकाश देता है, यह भ्रांति हो सकती है कि प्रकाश मैं दे रहा हूं। बल्ब से प्रकाश प्रकट तो हो रहा है, लेकिन बल्ब से प्रकाश पैदा नहीं हो रहा; वह उदगम का स्रोत नहीं है, अभिव्यक्ति का माध्यम है। तो जो कोई दावा करता हो कि मैं शक्तिपात करता हूं, वह भ्रांति में पड़ गया है; वह बल्ब की भ्रांति में पड़ गया है।

शक्तिपात तो सदा परमात्मा का ही है। लेकिन कोई व्यक्ति माध्यम बने तो उसको शक्तिपात कहेंगे; कोई व्यक्ति माध्यम न हो, तो यह आकस्मिक हो सकता है कभी, तो नुकसान पहुंच सकता है। लेकिन किसी व्यक्ति ने बड़ी अनंत प्रतीक्षा की हो, और किसी व्यक्ति ने अनंत धैर्य से ध्यान किया हो, तो भी प्रसाद के रूप में शक्तिपात हो जाएगा। तब कोई माध्यम भी नहीं होगा, लेकिन तब दुर्घटना नहीं होगी। क्योंकि उसकी अनंत प्रतीक्षा, उसका अनंत धैर्य, उसकी अनंत लगन, उसका अनंत संकल्प, उसमें अनंतता को झेलने की सामर्थ्य पैदा करता है। तो दुर्घटना नहीं होगी।

इसलिए दोनों तरह से घटना घटती है। लेकिन तब उसे शक्तिपात मालूम नहीं पड़ेगा, उसको प्रसाद ही मालूम पड़ेगा; क्योंकि कोई माध्यम तो नहीं है; कोई बीच में दूसरा व्यक्ति नहीं है।

अहंशून्य व्यक्ति ही माध्यम

तो दोनों बातों में समानता है, दोनों बातों में भेद है। मैं इसी पक्ष में हूं कि जहां तक हो सके प्रसाद उपलब्ध हो, जहां तक हो सके ग्रेस उपलब्ध हो, जहां तक हो सके कोई व्यक्ति बीच में माध्यम न बने। लेकिन कई स्थितियों में यह असंभव है; कई लोगों के लिए असंभव है। तो बजाय इसके कि वे अनंत काल तक भटकते रहें, किसी व्यक्ति को माध्यम भी बनाया जा सकता है। लेकिन वही व्यक्ति माध्यम बन सकता है जो व्यक्ति न रह गया हो। तब खतरा बहुत कम हो जाता है। वही व्यक्ति माध्यम बन सकता है जिसमें अब कोई अस्मिता, कोई ईगो शेष न रह गई हो। तब खतरा न के बराबर हो जाता है। खतरा इसलिए न के बराबर हो जाता है कि ऐसा व्यक्ति माध्यम भी बन जाएगा और फिर भी गुरु नहीं बनेगा; क्योंकि गुरु बननेवाला तो अब कोई नहीं रहा।

सदगुरु वही, जो गुरु नहीं बनता

इस फर्क को ठीक से समझ लेना। जब कोई व्यक्ति गुरु बनता है तो तुम्हारे संबंध में बनता है, और जब माध्यम बनता है तब परमात्मा के संबंध में बनता है; तुमसे कुछ लेना-देना फिर नहीं रह जाता। समझ रहे हो न मेरा फर्क? और परमात्मा के संबंध में कोई भी स्थिति बने, वहां अहंकार नहीं टिक सकता। लेकिन तुम्हारे संबंध में कोई भी स्थिति बने, तो अहंकार टिक जाएगा। तो जिसको ठीक गुरु कहें वह वही है जो गुरु नहीं बनता है। सदगुरु की परिभाषा अगर करनी हो तो यही है सदगुरु की परिभाषा कि जो गुरु नहीं बनता है। इसका मतलब हुआ कि समस्त गुरु बननेवाले लोग गुरु नहीं होने की योग्यता रखते हैं। गुरु बनने के दावे से बड़ी अयोग्यता और कोई नहीं है। यानी वही डिसक्वालिफिकेशन है; क्योंकि तुम्हारे संबंध में वह एक अहंकार की स्थिति ले रहा है। और खतरनाक हो जाएगा।

अगर अनायास कोई व्यक्ति शून्य हो गया है, अहंकार विलीन हो गया है, और वाहन बन सकता है--बन सकता है, कहना भी शायद गलत है; कहना चाहिए, वाहन बन गया है--तो उसके निकट भी शक्तिपात की घटना घट सकती है। लेकिन तब उसमें दुर्घटना की कोई संभावना नहीं रहती। न तो तुम्हारे व्यक्तित्व को दुर्घटना की संभावना है, और न जिस वाहन से शक्ति तुम तक आई है उसके व्यक्तित्व को दुर्घटना की संभावना है।

फिर भी मौलिक रूप से मैं ग्रेस के पक्ष में हूं। और जब इतनी शर्तें पूरी हो जाएं कि व्यक्ति न हो, अहंकार न हो, तो फिर शक्तिपात ग्रेस के करीब पहुंच गया, बहुत करीब पहुंच गया। और अगर उस व्यक्ति को कोई पता ही नहीं हो, तब फिर वह बहुत ही करीब पहुंच गया। तब उसके पास होने से घटना घट जाए। तो अब यह जो व्यक्ति है, तुम्हें व्यक्ति की तरह दिखाई पड़ रहा है, लेकिन अब यह परमात्मा के साथ एकाकार ही हो गया। कहना चाहिए, परमात्मा का फैला हुआ हाथ हो गया जो तुम्हारे करीब है। अब यह बिल्कुल इंस्ट्रूमेंटल है, साधन मात्र है। और ऐसी स्थिति में अगर यह व्यक्ति मैं की भाषा भी बोले, तो भूल हमें हो जाती है बहुत बार; क्योंकि ऐसी अवस्था में जब यह व्यक्ति मैं बोलता है, तो उसका मतलब होता है परमात्मा। लेकिन हमें बड़ी कठिनाई... क्योंकि हम तो...

इसलिए कृष्ण कह सकते हैं अर्जुन से--मामेकं शरणं व्रज। मेरी शरण में आ जा तू। और हजारों साल तक हम सोचेंगे कि यह आदमी कैसा रहा होगा, जो कहता हैः मेरी शरण में आ जा। तब तो अहंकार पक्का है।

लेकिन यह आदमी कह ही इसलिए पाया है कि यह बिल्कुल नहीं है। अब यह तो किसी का फैला हुआ हाथ है, और वही बोल रहा हैः मेरी शरण आ जा--मुझ एक की शरण आ जा। यह शब्द बड़ा कीमती है, मामेकं! मुझ एक की शरण आ जा। "मैं" तो एक कभी नहीं होता, "मैं" तो अनेक है। यह किसी ऐसी जगह से बोल रहा है जहां "मैं" एक ही होता है। लेकिन अब यह कोई अहंकार की भाषा नहीं है।

लेकिन हम तो अहंकार की भाषा ही समझते हैं। इसलिए हम समझेंगे कि कृष्ण अर्जुन से कह रहे हैंः मेरी शरण में आ जा। तब भूल हो जाएगी। इसलिए हमारे प्रत्येक शब्द को देखने के दो मार्ग हैंः एक हमारी तरफ से, जहां से भ्रांति सदा होगी; और एक परमात्मा की तरफ से, जहां कोई भ्रांति का सवाल नहीं है। तो कृष्ण जैसे व्यक्ति से घटना घट सकती है; और उसमें कृष्ण के व्यक्तित्व का कोई लेना-देना नहीं है।

इतने करीब आ जाना चाहिए शक्तिपात प्रसाद के कि तुम जो कहते हो कि आपकी दोनों बातों में विरोध दिखाई पड़ता है... दोनों घटनाएं अपनी अति पर बहुत विरुद्ध हैं, लेकिन दोनों घटनाएं अपने केंद्र पर अति निकट हैं। और मैं उसी पक्ष में हूं जहां कि प्रसाद में और शक्तिपात में किंचित फर्क करना मुश्किल हो जाए। वहीं सार्थक है बात, वहीं कीमती है।

चीन में एक संन्यासी बड़ा समारोह मना रहा है। वह अपने गुरु का जन्मदिन मना रहा है। और उस तरह का त्योहार गुरु के जन्मदिन पर ही मनाया जाता है। लेकिन लोग उससे पूछते हैं कि तुम तो कहते थे कि मेरा कोई गुरु नहीं है, तो तुम जन्मदिन किसका मना रहे हो? और तुम तो सदा कहते थे कि गुरु की कोई जरूरत ही नहीं है, तो तुम आज यह उत्सव किसका मना रहे हो? तो वह आदमी कहता है कि मुझे मुश्किल में मत डालो; अच्छा हो कि मैं चुप रहूं। लेकिन जितना वह चुप रहता है उतना लोग और पूछते हैं कि बात क्या है, तुम यह मना क्या रहे हो? क्योंकि यह दिन तो गुरु पर्व है; इस दिन तो गुरु का उत्सव ही मनाया जाता है। तो तुम्हारा कोई गुरु है क्या? तो वह आदमी कहता है, तुम नहीं मानोगे तो मुझे कहना पड़ेगा। मैं आज उस आदमी का स्मरण कर रहा हूं जिसने मेरा गुरु बनने से इनकार कर दिया था; क्योंकि अगर वह मेरा गुरु बन जाता तो मैं सदा के लिए भटक जाता। उस दिन तो मैं बहुत नाराज हुआ था, आज लेकिन उसे धन्यवाद देने का मन होता है... कि वह चाहता तो गुरु तत्काल बन सकता था, मैं तो खुद गया था उसको मनाने, लेकिन वह गुरु बनने को राजी नहीं हुआ था।

तो वे लोग पूछते हैं कि फिर धन्यवाद क्या दे रहे हो, जब वह गुरु बनने को राजी नहीं हुआ?

तो वह संन्यासी कहता है, तुम मुझे ज्यादा मुश्किल में मत डालो; अब इतना मैंने कह दिया, यह काफी है। क्योंकि वह आदमी गुरु तो नहीं बना था, लेकिन जो कोई गुरु नहीं कर सकता है, वह आदमी कर गया है। इसलिए ऋण दोहरा हो गया। एक तो वह आदमी गुरु भी बन जाता तो भी लेन-देन हो जाता न दोनों तरफ से! कुछ उसने भी हमें दिया था, हमने भी कुछ उसे दिया था--आदर दिया था, श्रद्धा दी थी, पैर छू लिए थे--निपटारा हो गया था; कुछ हमने भी कर लिया था। लेकिन वह आदमी गुरु भी नहीं बना, उसने आदर भी नहीं मांगा, श्रद्धा भी नहीं मांगी, तो ऋण दोहरा हो गया--बिल्कुल इकतरफा हो गया; वह दे गया और हम कुछ धन्यवाद भी नहीं दे पाए; क्योंकि धन्यवाद देने का भी उसने स्थान नहीं छोड़ा था।

शुद्धतम शक्तिपात प्रसाद के निकट

तो यहां शक्तिपात--ऐसी स्थिति में--और प्रसाद में कोई फर्क नहीं रह जाएगा। और जितना फर्क हो उतना ही शक्तिपात से बचना; और जितना फर्क कम हो उतना ही ठीक है। इसलिए मैं जोर देता हूं प्रसाद पर, ग्रेस पर। और जिस दिन शक्तिपात भी प्रसाद के करीब आ जाए--इतने करीब आ जाए कि तुम डिस्टिंग्विश न कर सको, फर्क न कर सको कि दोनों में क्या फर्क है--उस दिन समझ लेना कि बात ठीक हो गई।

तुम्हारे घर की बिजली जिस दिन आकाश की बिजली की तरह स्वच्छंद, सहज और विराट शक्ति का हिस्सा हो जाए, और जिस दिन तुम्हारे घर का बल्ब दावा करना छोड़ दे कि मैं हूं शक्ति का स्रोत, उस दिन तुम समझना कि अब शक्तिपात भी हो तो वह प्रसाद ही है। मेरी बात ख्याल किए!

विस्फोटः दो शक्तियों का मिलन

प्रश्नः आपने समझाया कि आप से शक्ति उठे और परमात्मा से मिल जाए या परमात्मा की शक्ति आए और आप में मिल जाए। प्रथम तो कुंडलिनी का उठना है और दूसरी बात ईश्वर की ग्रेस मिलने की है। आगे आपने कहा है कि आपके भीतर सोई हुई ऊर्जा जब विराट की ऊर्जा से मिलती है तब एक्सप्लोजन, विस्फोट होता है। तो एक्सप्लोजन या समाधि के लिए कुंडलिनी जागरण और ग्रेस का मिलन आवश्यक है या कुंडलिनी का सहस्रार तक विकास और ग्रेस की उपलब्धि एक बात है?

असल में, विस्फोट एक शक्ति से कभी नहीं होता, विस्फोट सदा दो शक्तियों का मिलन है। एक्सप्लोजन जो है, वह एक शक्ति से कभी नहीं होता। अगर एक शक्ति से होता होता तो कभी का हो जाता।

तुम्हारी माचिस भी रखी है, तुम्हारी माचिस की काड़ी भी रखी है, वह रखी रहे अनंत जन्मों तक--एक इंच के फासले पर, आधा इंच के फासले पर वह रखी है, रखी रहे, तो आग पैदा नहीं होगी। उस विस्फोट के लिए उन दोनों की रगड़ जरूरी है, तो आग पैदा होगी। वह छिपी है दोनों में, लेकिन किसी एक में भी अकेले पैदा होने का उपाय नहीं है। जो विस्फोट है, वह दो शक्तियों के मिलने पर पैदा हुई संभावना है।

तो व्यक्ति के भीतर जो सोई हुई है शक्ति, वह उठे और उस बिंदु तक आ जाए। सहस्रार वह बिंदु है जिसके पहले मिलन बहुत असंभव है। जैसे कि तुम्हारे दरवाजे बंद हैं और सूरज बाहर खड़ा है। रोशनी तुम्हारे दरवाजे पर आकर रुक गई है। तुम अपने घर से चलो, चलो; भीतर से बाहर की तरफ आओ, आओ; दरवाजे तक आकर भी खड़े हो जाओ, तो भी तुम्हारा सूरज की रोशनी से मिलन न हो। दरवाजा खुले और मिलन हो जाए।

सहस्रार पर प्रतीक्षारत परमात्मा

तो जो हमारा अंतिम चरम बिंदु है कुंडलिनी का, सहस्रार, वह हमारा द्वार है, जहां ग्रेस सदा ही खड़ी हुई है, जिस द्वार पर परमात्मा निरंतर तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है। लेकिन तुम ही अपने द्वार पर नहीं हो; तुम ही अपने द्वार से बहुत भीतर कहीं और हो। तो तुम्हें अपने द्वार तक आना है, वहां मिलन हो जाएगा। और वह मिलन विस्फोट होगा।

विस्फोट इसलिए कह रहे हैं उसे कि उस मिलन में तुम तत्काल विलीन हो जाओगे; एक्सप्लोजन इसलिए है कि उस मिलन के बाद तुम बचोगे नहीं। वह जो काड़ी है वह बचेगी नहीं माचिस की उस विस्फोट के बाद। माचिस तो बचेगी, काड़ी नहीं बचेगी। काड़ी तो जलकर राख हो जाएगी, काड़ी तो निराकार में विलीन हो जाएगी। तो उस घटना में तुम चूंकि मिट जाओगे, टूट जाओगे, बिखर जाओगे, खो जाओगे, तुम बचोगे नहीं; तुम जैसे थे द्वार तक आने के पहले, वैसे तुम नहीं बचोगे। तुम्हारा सब खो जाएगा, तुम मिट जाओगे। जो द्वार पर खड़ा था वही बचेगा, तुम उसी के हिस्से हो जाओगे।

यह घटना तुमसे अकेले नहीं हो सकती। इस विस्फोट के लिए उस विराट शक्ति के पास तुम्हारा जाना जरूरी है। उस शक्ति के पास जाने के लिए, तुम्हारी शक्ति जहां सोई है वहां से उसे उठकर वहां तक जाना पड़ेगा जहां वह शक्ति तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही है। तो कुंडलिनी की जो यात्रा है, वह तुम्हारे सोए हुए केंद्र से उस स्थान तक है, उस सीमांत तक, जहां तुम समाप्त होते हो; तुम्हारी जो सीमा है।

मनुष्य की दो सीमाएं

तो एक सीमा तो हमारे शरीर की है जो हमने मान रखी है। यह बड़ी सीमा नहीं है; क्योंकि मेरा हाथ कट जाए, तो भी कुछ खास फर्क नहीं पड़ता; मेरे पैर कट जाएं, तो भी कुछ खास फर्क नहीं पड़ता; फिर भी मैं रहता हूं। यानी इन सीमाओं के घटने-बढ़ने से मैं मिटता नहीं। मेरी आंखें चली जाएं, मेरे कान चले जाएं, तो भी मैं हूं। तुम्हारी असली सीमा तुम्हारे शरीर की सीमा नहीं है, तुम्हारी असली सीमा सहस्रार का बिंदु है, जिसके बाद तुम नहीं बच सकते। उस सीमा पर एनक्रोचमेंट हुआ कि तुम गए, फिर तुम नहीं बच सकते।

तुम्हारी कुंडलिनी तुम्हारी सोई हुई शक्ति है। तो वह तुम्हारे यौन के केंद्र के निकट और तुम्हारे मस्तिष्क के केंद्र के निकट तुम्हारी सीमा है। इसीलिए हमें निरंतर यह ख्याल होता है कि हम अपने पूरे शरीर से चाहे अपनी आइडेंटिटी छोड़ दें, लेकिन अपने सिर से, अपने चेहरे से आइडेंटिटी नहीं छोड़ पाते। यानी मुझे यह मानने में बहुत कठिनाई नहीं लगती कि हो सकता है यह हाथ मैं न होऊं, लेकिन अगर दर्पण में अपना चेहरा

देखकर यह सोचूं कि यह चेहरा मैं नहीं हूं, तो बहुत मुश्किल हो जाती है; वह सीमांत है। इसलिए आदमी सब खोने को तैयार हो सकता है, बुद्धि खोने को तैयार नहीं होता।

सुकरात से किसी ने पूछा है कि तुम एक असंतुष्ट सुकरात होना पसंद करोगे कि एक संतुष्ट सुअर होना पसंद करोगे? क्योंकि सुकरात संतोष की बात कर रहा था; वह कह रहा थाः संतोष परम धन है। तो कोई उससे पूछ रहा है कि तुम एक संतुष्ट सुअर होना पसंद करोगे कि एक असंतुष्ट सुकरात होना? तो वह सुकरात कहता है कि संतुष्ट सुअर होने से तो मैं एक असंतुष्ट सुकरात होना ही पसंद करूंगा; क्योंकि संतुष्ट सुअर को संतोष का पता भी तो नहीं हो सकता, असंतुष्ट सुकरात को कम से कम असंतोष का पता तो होगा।

अब यह जो कह रहा है असंतुष्ट सुकरात, वह हम यह कह रहे हैं कि हम सब खोने को तैयार हैं लेकिन बुद्धि को न खोएंगे, चाहे बुद्धि असंतुष्ट ही क्यों न हो। बुद्धि भी हमारे उस केंद्र के बहुत निकट है।

अगर हम ठीक से समझें तो हमारे सीमांत दो हैं। एक यौन हमारी सीमा रेखा है, जिसके पार प्रकृति शुरू होती है; जिसके नीचे, बिलो दैट प्रकृति की दुनिया शुरू होती है। तो जहां हम सेक्स के बिंदु पर होते हैं, वहां हम में, पशु में, पौधे में कोई फर्क नहीं होता; क्योंकि पशु की, पौधे की वह अंतिम सीमा है जो हमारी प्रथम सीमा है; वहां उनकी सीमा खतम होती है। इसलिए सेक्स के बिंदु पर पशु में और हम में कोई फर्क नहीं होता। वह पशु की अंतिम सीमा है और हमारी पहली सीमा है। उस बिंदु पर जब हम खड़े होते हैं तो हम पशु ही होते हैं।

हमारी दूसरी सीमा है बुद्धि; वह हमारे दूसरे सीमांत के निकट है, जिसके पार परमात्मा है। उस बिंदु पर होकर भी फिर हम नहीं होते, फिर हम परमात्मा ही होते हैं। और ये हमारी दो सीमा रेखाएं हैं, और इनके बीच हमारी शक्ति का आंदोलन है।

अभी हमारी सारी शक्ति जिस कुंड पर सोई है, वह यौन के पास है। इसलिए आदमी का निन्यानबे प्रतिशत चिंतन, निन्यानबे प्रतिशत स्वप्न, निन्यानबे प्रतिशत क्रिया-कलाप, निन्यानबे प्रतिशत जीवन उसी कुंड के आसपास व्यतीत होता है। सभ्यता कितना ही झुठलाए, समाज कितना ही और कुछ कहे, आदमी जीता वहीं है; वह काम के पास ही जीता है। वह धन कमाता है तो इसलिए, मकान बनाता है तो इसलिए, यश कमाता है तो इसलिए--वह जो भी कर रहा है, उसके बहुत मूल में खोजने पर उसका काम मिल जाएगा।

दो लक्ष्य, दो साधन

इसलिए जिनको समझ थी, उन्होंने दो ही लक्ष्य बताएः काम और मोक्ष। ये दो लक्ष्य हैं। और अर्थ और धर्म, दो साधन हैं। अर्थ यानी धन, वह काम का साधन है। इसलिए जितना कामुक युग होगा, उतना धनपिपासु होगा; जितना मोक्ष की आकांक्षा करनेवाला युग होगा, उतना धर्मपिपासु होगा। धर्म साधन है, जैसे धन साधन है। अगर मोक्ष पाना है तो धर्म साधन बन जाता है, और अगर काम-तृप्ति पानी है तो धन साधन बन जाता है।

तो दो हैं लक्ष्य और दो हैं साधन, क्योंकि दो हमारी सीमाएं हैं। और उन सीमाओं पर हम... और यह बड़े मजे की बात है कि उन दो सीमाओं के बीच में तुम कहीं भी नहीं टिक सकते; उनके बीच में तुम कहीं नहीं ठहर सकते; क्योंकि उनके बीच में तुम ऐसे मालूम पड़ोगे कि जैसा गधा घर का न घाट का हो जाता है। कुछ लोग उस हालत में पड़कर बड़ी मुसीबत में पड़ जाते हैं। बहुत लोग पड़ जाते हैं उस मुसीबत में तो बहुत मुश्किल में पड़ जाते हैं। उनको मोक्ष की अभीप्सा नहीं होती और काम का विरोध अगर किसी वजह से पैदा हो गया, तो वे कठिनाई में पड़ जाएंगे; वे काम के बिंदु से दूर हटने लगेंगे और मोक्ष के बिंदु के पास नहीं जाएंगे। तब वे एक

ऐसी दुविधा में पड़ जाएंगे जो बहुत ही कठिन है, बहुत दुखद है, बहुत नारकीय है। और उनका जीवन सारा का सारा अंतर्द्वंद्व से भर जाएगा।

बीच के बिंदु पर टिकना न उचित है, न स्वाभाविक है, न अर्थपूर्ण है। इसे हम ऐसा समझ लें कि जैसे कोई सीढ़ी पर चढ़े और बीच में रुक जाए। तो हम उससे कहेंगेः कुछ भी करो, या तो वापस लौट आओ या ऊपर चले जाओ! क्योंकि सीढ़ी कोई मकान नहीं है, सीढ़ी कोई निवास नहीं है; उसमें बीच में रुक जाना किसी भी अर्थ का नहीं है। यानी एक आदमी अगर सीढ़ी पर रुक जाए तो समझो उससे ज्यादा व्यर्थ आदमी खोजना बहुत मुश्किल होगा; क्योंकि उसे कुछ भी करना है तो उसे सीढ़ी के या तो नीचे के बिंदु पर आना पड़े या ऊपर के बिंदु पर जाना पड़े।

तो हमारी जो रीढ़ है, समझ लो कि सीढ़ी है। है भी सीढ़ी। और रीढ़ का एक-एक गुरिया समझो कि एक-एक स्टेप है। और वह जो हमारी कुंडलिनी है, वह नीचे के केंद्र से यात्रा शुरू करती है और ऊपर के अंतिम केंद्र तक जाती है। ऊपर के केंद्र पर वह पहुंच जाए तो विस्फोट निश्चित है; वहां फिर विस्फोट नहीं बच सकता। और नीचे के केंद्र पर पहुंच जाए तो स्खलन निश्चित है, वहां स्खलन नहीं बच सकता।

इन दोनों बातों को ठीक से समझ लेना।

निम्न बिंदु पर स्खलन और उच्चतम पर विस्फोट

कुंडलिनी नीचे के बिंदु पर है तो स्खलन निश्चित है, ऊपर के बिंदु पर पहुंच जाए तो विस्फोट निश्चित है। दोनों ही विस्फोट हैं, और दोनों के लिए ही दूसरे की जरूरत है। वह जो यौन का स्खलन है, उसमें भी दूसरा अपेक्षित है--चाहे कल्पना में ही सही, लेकिन दूसरा अपेक्षित है। तो उस जगह से भी तुम्हारी ऊर्जा विकीर्ण होगी।

पर उस जगह से तुम्हारी पूरी ऊर्जा विकीर्ण नहीं हो सकती। नहीं हो सकती इसलिए कि वह बिंदु तुम्हारा प्राथमिक बिंदु है; तुम उससे बहुत ज्यादा हो; उस बिंदु से तुम आगे जा चुके हो। पशु तो वहां पूरा तृप्त हो जाता है। इसलिए पशु मोक्ष नहीं खोजता। अगर पशु कोई शास्त्र लिखे तो वहां दो ही पुरुषार्थ होंगे--काम और धन, अर्थ और काम।

धन भी पशु की दुनिया का धन होगा। अब जिस पशु के पास ज्यादा मांस है, ज्यादा शक्ति है, उसके पास ज्यादा धन है; वह दूसरे पशुओं से काम की प्रतियोगिता में जीत जाएगा; वह अपने आसपास दस मादाएं इकट्ठी कर लेगा। वह भी एक तरह का धन इकट्ठा किया है। उसके पास चर्बी ज्यादा है, वह धन है। एक के पास तिजोरी ज्यादा है, वह भी चर्बी है, जो कभी भी चर्बी में कनवर्ट हो सकती है।

तो एक राजा है, वह हजार रानियां इकट्ठी कर लेगा। एक जमाना था कि आदमी के पास कितनी संपदा है, वह उसकी स्त्रियों से नापा जाता था कि उसके पास कितनी स्त्रियां हैं। गरीब आदमी है तो वह कैसे चार स्त्री रख सकता है! तो जैसे आज हम शिक्षा से नापते हैं कि कौन आदमी कितना शिक्षित है, या कौन आदमी के पास कितना बैंक बैलेंस है। ये सब बहुत बाद के मेजरमेंट हैं, पहला मेजरमेंट तो एक ही था कि उसके पास कितनी स्त्रियां हैं।

इसलिए बहुत बार हमें अपने महापुरुषों को बड़ा बताने के लिए बहुत स्त्रियां गिनानी पड़ीं, जो झूठी हैं। जैसे कृष्ण की सोलह हजार! अब यह कृष्ण को बड़ा बताने का उस वक्त और कोई उपाय नहीं था--कि अगर कृष्ण बड़े आदमी हैं तो औरतें कितनी हैं? वह एकमात्र मेजरमेंट होने की वजह से हमको फिर गिनती करानी

पड़ी कि भई बहुत हैं। और सोलह हजार अब बहुत कम मालूम पड़ती हैं, क्योंकि अब हमारे पास बहुत बड़ी संख्याएं हैं। उन दिनों संख्याएं बहुत बड़ी नहीं थीं।

अगर अफ्रीका में जाएं तो अब भी ऐसी कौमें हैं कि जिनकी कुल संख्या तीन पर खतम हो जाती है। तो अगर किसी के पास चार औरतें हैं तो वह यह कहेगा, बहुत! क्योंकि तीन के बाद संख्या खतम हो जाती है। तो वह कहेगा, मेरे पास बहुत, असंख्य औरतें हैं। असंख्य! क्योंकि तीन के बाद तो संख्या खतम हो जाती है उसकी, तो तीन के बाद जितनी हैं उनको वह गिन तो सकता नहीं, तो वह कहता है, असंख्य औरतें हैं।

दोनों के लिए दूसरा अपेक्षित

उस तल पर भी दूसरा अपेक्षित है। अगर दूसरा वस्तुतः मौजूद न हो, तो भी कल्पना में अपेक्षित है। बाकी दूसरा अपेक्षित है। दूसरे के बिना स्खलन भी नहीं हो सकता ऊर्जा का। लेकिन कल्पना में भी दूसरा उपस्थित हो तो स्खलन हो सकता है। इसी वजह से यह ख्याल पैदा हुआ कि अगर कल्पना में भी परमात्मा उपस्थित हो तो विस्फोट हो सकता है। इसलिए भक्ति की लंबी धारा चली जिसने कि कल्पना को ही विस्फोट का आधार बनाने की कोशिश की। क्योंकि जब कल्पना में वीर्य-स्खलन हो सकता है, तो सहस्रार से ऊर्जा का विस्फोट क्यों नहीं हो सकता? इस ख्याल ने काल्पनिक ईश्वर को भी जोर से मन में बिठा लेने की संभावनाओं को प्रगाढ़ कर दिया। उसका कारण यही था।

लेकिन यह नहीं हो सकता। स्खलन इसलिए हो सकता है कल्पना में, क्योंकि वस्तुतः स्खलन हुआ है, इसलिए उसकी कल्पना की जा सकती है। लेकिन परमात्मा से तो कभी मिलन नहीं हुआ, इसलिए कोई कल्पना नहीं की जा सकती उसकी। कल्पना हम उसकी ही कर सकते हैं जो हुआ है। तो फिर उसकी कल्पना से भी काम लिया जा सकता है। यानी एक आदमी ने कोई एक तरह का सुख लिया है तो फिर वह आंख बंद करके उसका सपना भी देख सकता है, लेकिन अगर लिया ही नहीं है तो फिर सपना नहीं देख सकता।

जैसे बहरा आदमी लाख कोशिश करे, सपने में भी शब्द नहीं सुन सकता, उसकी कल्पना भी नहीं कर सकता। अंधा आदमी हजार उपाय करे तो भी सपने में भी प्रकाश नहीं देख सकता। हां, यह हो सकता है कि एक आदमी की आंखें चली गईं, अब वह सपने में बराबर प्रकाश देख सकता है। बल्कि अब सपने में ही देख सकता है! क्योंकि अब तो आंख तो नहीं है, इसलिए असलियत में तो नहीं देख सकता।

तो जो हमारा अनुभव हुआ है, उसकी हम कल्पना भी कर सकते हैं; लेकिन जो अनुभव नहीं हुआ है, उसकी तो कल्पना का भी उपाय नहीं। और विस्फोट हमारा अनुभव नहीं है, इसलिए वहां कल्पना काम नहीं कर सकती है। वहां वस्तुतः जाना होगा और वस्तुतः ही घटना घट सकती है।

मनुष्यः पशु और परमात्मा के बीच का सेतु

तो जो सहस्र चक्र है, वह तुम्हारी अंतिम सीमा है, जहां से तुम समाप्त होते हो। जैसा मैंने कहा कि सीढ़ी। और आदमी एक सीढ़ी ही है। इसलिए नीत्शे के वचन बहुत कीमती हैं। वह कहता है कि आदमी सिर्फ एक सेतु है--मैन इ.ज ए ब्रिज बिट्वीन टू इटरनिटीज--दो अनंतताओं के बीच में एक सेतु।

एक अनंतता है प्रकृति की, उसकी भी कोई सीमा नहीं है; और एक अनंतता है परमात्मा की, उसकी भी कोई सीमा नहीं है। और आदमी दोनों के बीच में झूलता हुआ एक सेतु है। इसलिए आदमी पड़ाव नहीं है। या तो पीछे जाओ या आगे जाओ, इस सेतु पर मकान बनाने की जगह नहीं है। और जो भी इस पर मकान बनाएगा वह पछताएगा; क्योंकि सेतु कोई मकान बनाने की जगह नहीं है, सिर्फ पार होने के लिए है।

फतेहपुर सीकरी में अकबर ने जो एक सर्व धर्म मंदिर बनाने की कल्पना की थी, उसमें जो एक दीन-ए-इलाही का ख्याल था कि सब धर्मों का सारभूत हो, तो उसने उस दरवाजे पर जो वचन खुदवाया है वह जीसस का वचन है। जीसस का वचन उसने खुदवाया है उस दरवाजे पर, वह वचन यह है कि यह जगत मुकाम नहीं, सिर्फ पड़ाव है। यहां थोड़ी देर ठहर सकते हो, लेकिन रुक ही मत जाना; यह कोई यात्रा का अंत नहीं है, यह सिर्फ थकान मिटाने के लिए एक पड़ाव है, एक सराय है--जहां हम रात भर रुकते हैं और सुबह फिर चल पड़ते हैं। और रुकते सिर्फ इसीलिए हैं कि सुबह चल सकें, और रुकने का कोई प्रयोजन नहीं है; रुकने के लिए नहीं रुकते।

पशु-वृत्तियों का सुख हमेशा क्षणिक

तो आदमी एक सीढ़ी है जिस पर यात्रा है। इसलिए आदमी सदा तनावग्रस्त है। अगर हम ठीक से कहें तो तनावग्रस्त है आदमी, यह कहना शायद ठीक नहीं; यही कहना ठीक है कि मनुष्य एक तनाव है। क्योंकि ब्रिज जो है तनाव ही है, तना हुआ है; तना हुआ होकर ही ब्रिज हो सकता है। वह दो छोरों पर--और बीच में बेसहारा--तना हुआ है। इसलिए मनुष्य एक अनिवार्य तनाव है। इसलिए मनुष्य कभी शांत नहीं हो सकता। या तो वह पशु होता है तो थोड़ी सी शांति मिलती है, और या फिर वह परमात्मा होता है तो फिर पूरी शांति मिलती है। पशु होकर भी तनाव उतर जाता है, क्योंकि वह वापस लौट आया सीढ़ी से, नीचे जमीन पर खड़ा हो गया--परिचित जमीन पर, पहचानी हुई जमीन पर, जिसमें वह अनंत-अनंत जन्मों रहा है, वहां वापस आ गया; झंझट के बाहर हो गया। अभी कोई तनाव नहीं है। इसलिए या तो आदमी सेक्स में खोजता है तनाव की मुक्ति, या सेक्स से संबंधित और अनुभवों में खोजता है--शराब में, नशे में--जहां भी मूर्च्छा है, वहां वह खोज लेता है।

लेकिन वहां तुम थोड़ी देर ही रुक सकते हो; क्योंकि तुम अब कुछ भी चाहो तो स्थायी रूप से पशु नहीं हो सकते। बुरे से बुरा आदमी भी क्षण काल को ही पशु हो सकता है। वह जो आदमी किसी की हत्या कर देता है, वह भी क्षण भर में ही कर पाता है। अगर क्षण भर और रुक गया होता तो शायद नहीं कर पाता। यानी हमारा पशु होना करीब-करीब ऐसा है जैसे एक आदमी जमीन पर छलांग लगाता है; तो एक सेकेंड को हवा में रह पाता है, फिर वापस जमीन पर लौट आता है। तो बुरे से बुरा आदमी भी स्थायी बुरा नहीं होता, न हो सकता है। बुरे से बुरा आदमी भी किन्हीं क्षणों में बुरा होता है। और उन क्षणों के बाहर वह ऐसा ही आदमी होता है जैसे सारे आदमी हैं। पर उस एक क्षण को उसे राहत मिल सकती है, क्योंकि वह परिचित भूमि पर पहुंच गया, जहां कोई तनाव नहीं था।

इसलिए पशु के मन में तुम्हें कोई तनाव नहीं दिखेगा; उसकी आंख में झांकोगे तो कोई तनाव नहीं दिखेगा। पशु पागल नहीं होता, आत्महत्या नहीं करता, उसे हृदय का दौरा नहीं पड़ता। उसे ये सब बातें नहीं होतीं। हां, आदमी के चक्कर में पड़ जाए तो हो सकती हैं; आदमी की बैलगाड़ी में जुट जाए तो हृदय का दौरा हो सकता है; आदमी का घोड़ा बन जाए तो मुश्किल में पड़ सकता है; आदमी का कुत्ता हो तो पागल भी हो सकता है। वह दूसरी बात है। वह भी इसीलिए है कि वह आदमी अपने ब्रिज पर उसको खींच लेता है, इसलिए वह झंझट में डाल देता है उसे।

अब जैसे एक कुत्ता इस कमरे में आए तो अपनी मौज से घूमेगा। लेकिन अगर किसी आदमी का पाला हुआ कुत्ता हो तो वह उससे कहेगा--बैठ जाओ उस कोने में! तो वह कुत्ता उस कोने में बैठेगा। वह आदमी की दुनिया में प्रवेश कर गया। वह पशु की दुनिया के बाहर हो गया। अब वह झंझट में पड़नेवाला है कुत्ता। वह बैठा

है। है तो वह कुत्ता, लेकिन बैठा है आदमी की तरह। अब तुमने उसको तनाव में डाल दिया है। अब वह बड़ी झंझट में है कि कब आज्ञा हटे और वह यहां से बाहर हो जाए।

आदमी कुछ देर के लिए, क्षण, दो क्षण के लिए वहां पहुंच सकता है। इसीलिए जो हम निरंतर कहते हैं कि हमारे सब सुख क्षणिक हैं, उसका और कोई कारण नहीं है। सुख शाश्वत हो सकता है। लेकिन जहां हम सुख खोजते हैं वह स्थिति क्षणिक है, सुख क्षणिक नहीं है। हम खोजते हैं पशु होने में, तो वह क्षणिक ही हो सकता है, क्योंकि हम पशु क्षण भर को मुश्किल से हो पाते हैं। वह ऐसा ही है कि जैसे हम... किसी स्थिति में वापस लौटना सदा मुश्किल है। अगर तुम कल में वापस लौटना चाहो, बीते कल में, तो तुम आंख बंद करके एकाध क्षण को ऐसी कल्पना में हो सकते हो कि लौट गए। लेकिन कितनी देर? आंख खोलोगे और पाओगे कि नहीं, वापस खड़े हो--जहां थे वहीं आ गए हो।

पीछे लौटा नहीं जा सकता; क्षण भर की कोई जबरदस्ती की जा सकती है। फिर पछतावा होगा। इसलिए जितने भी क्षणिक सुख हैं, सबके पीछे पछतावा है, सबके पीछे रिपेंटेंस है, सबके पीछे एक दुख-बोध है--कि बेकार मेहनत की, वह सब व्यर्थ गया। लेकिन फिर चार दिन बाद तुम भूल जाओगे और फिर छलांग लगा लोगे।

पशु के तल पर जाकर क्षण भर को सुख पाया जा सकता है, प्रभु के तल पर जाकर शाश्वत सुख में डूबा जा सकता है। लेकिन यह यात्रा तुम्हारे भीतर पहले पूरी होगी; तुम्हें अपने सेतु के एक कोने से दूसरे कोने पर पहुंचना होगा, तब दूसरी घटना घटेगी।

संभोग और समाधि में समानता

इसलिए मैं संभोग और समाधि को बड़ी समतुल बातें मानता हूं। समतुल मानने का कारण है। असल में, वे ही दो समतुल घटनाएं हैं, और कोई घटना समतुल नहीं है। संभोग की स्थिति में हम ब्रिज के इस छोर पर होते हैं, सीढ़ी के नीचेवाले हिस्से पर होते हैं, जहां से हम प्रकृति से मिलते हैं। और समाधि में हम सीढ़ी के दूसरे छोर पर होते हैं, जहां हम परमात्मा से मिलते हैं। दोनों मिलन हैं, दोनों विस्फोट हैं एक अर्थों में, दोनों में किसी खास अर्थ में तुम खोते हो। हां, किसी में क्षण भर के लिए, सेक्स में और संभोग में क्षण भर के लिए और समाधि में सदा के लिए। वह दूसरी बात है। लेकिन दोनों स्थितियों में तुम मिटते हो। यह बड़ा क्षणिक विस्फोट है जो वापस लौट आता है; तुम रिक्रिस्टलाइज हो जाते हो; क्योंकि तुम जहां गए थे वह तुमसे पीछे की अवस्था थी, उसमें तुम लौट नहीं सकते। लेकिन परमात्मा में जाकर तुम रिक्रिस्टलाइज नहीं हो सकते, वापस तुम सुसंगठित नहीं हो सकते। क्योंकि जिसमें तुम गए हो, उसमें जाते ही, फिर तुम्हारा वापस लौटना उतना ही असंभव है जैसे कि पहले तुम पीछे वापस लौटने में असंभव थे। अब तो और भी असंभव है। अब तो इतना असंभव है, ऐसे ही जैसे कि एक आदमी बड़ा हो गया और उसके बचपन के पाजामे में उसे वापस लौट आना पड़े। पर वह भी संभव है; यह संभव नहीं है। क्योंकि तुम विराट के साथ एक हो गए, अब तुम व्यक्ति में नहीं लौट सकते। अब वह व्यक्ति इतनी क्षुद्र, संकीर्ण जगह है कि जहां तुम्हारे प्रवेश का कोई उपाय नहीं है। अब तुम सोच ही नहीं सकते कि इसमें जाना कैसे हो सकता है! तुम यह भी नहीं सोच सकते कि मैं इसमें कभी था तो कैसे था; इतने छोटे होने में कैसे हो सकता हूं। वह बात खत्म हो जाती है।

उस विस्फोट के लिए दोनों बातें जरूरी हैं; तुम्हारे भीतर की यात्रा तुम्हारे अंतिम बिंदु सहस्रार तक आनी चाहिए।

सहस्र-दल कमल का खिलना

और क्यों उसे हम सहस्र कहते हैं, वह भी थोड़ा ख्याल में लेना जरूरी है। ये सारे शब्द आकस्मिक नहीं हैं।

हमारी भाषा आमतौर से आकस्मिक है, उपयोग से पैदा हुई है। जैसे किसी चीज को हम दरवाजा कहते हैं। दरवाजा न कहें, कुछ और कहें, तो कुछ हर्ज नहीं होता। दुनिया में हजार भाषाएं हैं तो हजार शब्द होंगे दरवाजे के लिए, और सभी शब्द काम कर जाते हैं। लेकिन फिर भी कोई एक बात जो सांयोगिक नहीं है, वह शायद सभी में मेल खाएगी। तो दरवाजा या डोर या द्वार का जो भाव हैः जिसके द्वारा हम बाहर-भीतर जाते हैं, वह सभी भाषाओं में मेल खाएगा; क्योंकि वह अनुभव का हिस्सा है, वह सांयोगिक नहीं है। जिससे हम बाहर-भीतर आते-जाते हैं; जिससे जगह मिलती है बाहर-भीतर आने-जाने की; स्पेस का एक ख्याल जो उसमें है, वह सबमें होगा।

तो सहस्र शब्द बड़ा अनुभव का है, सांयोगिक नहीं है। जैसे ही तुम उस अनुभूति को उपलब्ध होते हो, तुम्हें लगता है कि तुम्हारे भीतर जैसे हजार-हजार फूल एकदम से खिल गए--सब बंद हजार फूल एकदम से खिल गए। हजार भी इसी अर्थ में कि संख्या के बाहर जैसी घटना घटती है। और फूल इस अर्थ में कि फ्लावरिंग होती है, कोई चीज जो बंद थी कली की तरह वह खुलती है। फूल का मतलब है खिलना। फूल का मतलब वही होता है जो प्रफुल्ल होने का होता है--खुल जाना। फ्लावरिंग का भी वही मतलब होता है--खुल जाना। कोई चीज जो बंद थी वह खुल गई है। तो कली की तरह कोई चीज थी वह फूल की तरह हो गई है। और फिर एकाध चीज नहीं खुल गई, अनंत चीजें जैसे पूरे तरफ से खुल गई हैं।

तो इसलिए इसको सहस्र कमल, हजार कमल खिल गए हैं, यह ख्याल आना बिल्कुल स्वाभाविक था। अगर तुमने कभी सुबह कमल को खिलते देखा है--नहीं देखा तो गौर से देखना चाहिए, बहुत निकटता से, बहुत चुपचाप बैठकर उसके पूरे, धीरे-धीरे पूरे खिलने को देखना चाहिए--तो तुम्हें ख्याल आ सकेगा कि अगर हजार मस्तिष्क के कमल एकदम से खिल जाएंगे तो कैसी प्रतीति, उसकी तुम थोड़ी सी रूप-रेखा कल्पना में ले सकोगे।

और भी एक अदभुत अनुभव हुआ है। जिन लोगों को संभोग का बहुत गहरा अनुभव होगा, उन्हें भी खिलने का एक अनुभव होता है क्षण भर को; उनके भीतर भी कोई चीज खिलती है--बस क्षण भर को, फिर बंद हो जाती है। लेकिन उस खिलने में और इस खिलने में एक और अनुभव होगा कि जैसे कि फूल नीचे की तरफ लटका हुआ खिले और फूल ऊपर की तरफ खिले। पर वह तुलना तभी हो सकती है जब दूसरा अनुभव तुम्हारे ख्याल में आ जाए; तब तुम्हें पता चलेगा कि नीचे की तरफ फूल खिल रहे थे और अब ऊपर की तरफ फूल खिल रहे हैं। नीचे की तरफ जो फूल खिलते थे, स्वभावतः वे नीचे के जगत से जोड़ देते थे; ऊपर की तरफ जो फूल खिलते हैं, स्वभावतः वे ऊपर के जगत से जोड़ देते हैं। असल में, उनका खिलना और उनकी ओपनिंग तुम्हें वलनरेबल बना देती है, तुम्हें खोल देती है; दूसरी दुनिया के लिए दरवाजा बन जाते हो, वहां से कुछ तुममें प्रवेश करता है। और उस प्रवेश से तुम्हारे भीतर विस्फोट घटित होता है।

इसलिए दोनों बातें जरूरी हैंः तुम जाओगे वहां तक और वहां कोई प्रतीक्षा ही कर रहा है। आना कहना ठीक नहीं है कि वहां से कोई आएगा; तुम जाओगे वहां तक, कोई वहां प्रतीक्षा कर रहा है, घटना घट जाएगी।

शक्तिपात दोहरी घटना

प्रश्नः क्या केवल शक्तिपात के माध्यम से कुंडलिनी सहस्रार तक विकसित हो सकती है? उसके सहस्रार पर पहुंचने पर क्या समाधि का एक्सप्लोजन हो जाता है? यदि शक्तिपात के माध्यम से कुंडलिनी सहस्रार तक विकसित हो सकती है, तो इसका अर्थ यह हो जाएगा कि दूसरे से समाधि उपलब्ध हो सकती है!

इसे थोड़ा समझना पड़े। असल बात यह है, इस जगत में, इस जीवन में कोई भी घटना इतनी सरल नहीं है जिसको तुम एक ही तरफ से देखो और समझ लो; उसे बहुत तरफ से देखना पड़े। अब जैसे मैं इस दरवाजे पर आऊं और जोर से एक हथौड़ा मारूं और दरवाजा खुल जाए, तो मैं यह कह सकता हूं कि मेरे हथौड़े से दरवाजा खुला। और यह कहना एक अर्थ में सच भी है, क्योंकि मैं अगर हथौड़ा नहीं मारता तो दरवाजा अभी खुलता नहीं था। लेकिन इसी हथौड़े को मैं दूसरे दरवाजे पर मारूं और दरवाजा न खुले, हथौड़ा ही टूट जाए--तब? तब तुम्हें दूसरा पहलू भी ख्याल में आएगा कि जब एक दरवाजे पर मैंने हथौड़ा मारा और दरवाजा खुला, तो सिर्फ हथौड़े के मारने से नहीं खुला, दरवाजा भी खुलने के लिए पूरी तरह तैयार था; क्योंकि दूसरा दरवाजा नहीं खुला। किसी भी कारण से तैयार था--कमजोर था, जराजीर्ण था, पर उसकी तैयारी थी। यानी खुलने में सिर्फ हथौड़ा ही नहीं खोल दिया है उसे, दरवाजा भी खुला; क्योंकि और दूसरे दरवाजों पर हथौड़े की चोट करके देखी है तो हथौड़ा ही टूट गया है कहीं; कहीं हथौड़ा नहीं टूटा, न दरवाजा खुला; कहीं हम थक गए चोट कर-कर के, वह नहीं खुला।

तो इस घटना में जहां शक्तिपात से कुछ घटना घटती है, वहां शक्तिपात से ही घटती है, इस भ्रांति में नहीं पड़ने की जरूरत है। वहां वह दूसरा व्यक्ति भी किसी बहुत आंतरिक तैयारी के एक छोर पर पहुंच गया है, जहां जरा सी चोट सहयोगी हो जाती है। नहीं यह चोट लगती तो शायद थोड़ी देर लग सकती थी। तो इस शक्तिपात से जो हो रहा है वह कुंडलिनी सहस्रार तक नहीं पहुंच रही, इस शक्तिपात से इतना ही हो रहा है कि टाइम एलिमेंट जो है, समय का जो थोड़ा व्यवधान था, वह कम हो रहा है; और कुछ भी नहीं हो रहा। यह आदमी पहुंच तो जाता ही।

समझ लो कि मैं इस हथौड़े से चोट नहीं मारता इस दरवाजे पर, और यह जराजीर्ण दरवाजा, यह बिल्कुल गिरने को हो रहा है; कल हवा के थपेड़े से गिर जाता। हवा का थपेड़ा भी न आता, क्योंकि दरवाजे का भाग्य--न आए, हवा का थपेड़ा ही न आए उस तरफ--तो क्या तुम सोचते हो, यह दरवाजा खड़ा ही रहता? यह दरवाजा जो एक ही चोट से गिर गया, जो हवा के थपेड़े से डरता था कि गिर जाएगा, यह बिना हवा के थपेड़े के भी एक दिन गिर जाएगा। जब तुम्हें कारण भी बताना मुश्किल हो जाएगा कि किसने गिराया, तब यह अपने से भी गिर जाएगा, यह गिरने की तैयारी इकट्ठी करता जा रहा है।

तो ज्यादा से ज्यादा जो फर्क लाया जा सकता है, वह सिर्फ समय की परिधि का, टाइम गैप का। जो घटना रामकृष्ण के पास अगर विवेकानंद को घटी, उसमें अगर अकेले रामकृष्ण ही जिम्मेवार हैं, तो फिर और किसी को भी घट जाती, बहुत लोग उनके करीब गए। सैकड़ों उनके शिष्य हैं। तो और किसी को नहीं घट गई है। और अगर विवेकानंद ही जिम्मेवार थे अकेले, तो वे रामकृष्ण के पहले और बहुत लोगों के पास गए थे, उनके पास वह नहीं घटी थी।

समझ रहे हो न? तो विवेकानंद की अपनी एक तैयारी थी, रामकृष्ण की अपनी एक सामर्थ्य थी, यह तैयारी और यह सामर्थ्य किसी बिंदु पर अगर मिल जाएं, तो टाइम गैप कम हो सकता है। विवेकानंद, हो सकता है अगले जन्म में यह घटना घटती--वर्ष भर बाद घटती, दो वर्ष बाद घटती, दस जन्मों बाद घटती--यह सवाल नहीं है; इस व्यक्ति की अपनी भीतरी तैयारी अगर हो रही थी तो घटना घटती।

टाइम गैप कम हो सकता है। और समझने की बात यह है कि टाइम बड़ी ही फिक्टीशस, बड़ी मायिक घटना है, इसलिए उसका कोई बहुत मूल्य नहीं है। असल में, समय इतनी ज्यादा स्वप्निल घटना है कि उसका कोई बड़ा मूल्य नहीं है। अभी तुम एक झपकी लो और हो सकता है कि घड़ी में एक ही मिनट गुजरे और तुम

जागकर कहो कि मैंने इतना लंबा स्वप्न देखा कि मैं बच्चा था, जवान था, बूढ़ा हुआ, मेरे लड़के थे, शादी हुई, धन कमाया, सट्टे में हार गया--यह सब हो गया! और यहां बाहर हम कहें कि यह तुम कैसी बातें कर रहे हो, इतना लंबा सपना देखने के लिए भी वक्त लगेगा। क्योंकि अभी तुम एक सेकेंड तुम्हारी आंख बंद हुई है सिर्फ, तुमने झपकी भर ली है।

असल में ड्रीम टाइम जो है, स्वप्न का जो समय है, उसकी यात्रा बहुत अलग है। वह बहुत छोटे से समय में बहुत घटनाएं घटाने की उसकी संभावना है, इसलिए हमें बड़ी भ्रांति होती है।

अब ये कुछ कीड़े हैं जो कि पैदा होते हैं सुबह और सांझ मर जाते हैं। हम कहते हैं, बेचारे! लेकिन हमें यह पता नहीं कि उनका टाइम का जो अनुभव है, वह उतना ही है जितना हमें सत्तर साल में होता है। कोई फर्क नहीं पड़ता। वे इस बारह घंटे में वह सब काम कर लेते हैं--घर बना लेते हैं, पत्नी खोज लेते हैं, शादी-विवाह रचा लेते हैं, लड़ाई-झगड़ा कर लेते हैं--जो भी करना है, सब कर-करा के सांझ मर जाते हैं। इसमें कुछ कमी नहीं छोड़ते; इसमें सब हो जाता है। इसमें शादी-विवाह, तलाक, लड़ाई-झगड़ा, सब घटना घट-घटा कर वे संन्यास वगैरह भी सब कर डालते हैं--सुबह से सांझ तक! पर वह जो समय का उनका जो बोध है, उसमें फर्क है। इसलिए हमें लगता है, बेचारे! और वे अगर सोचते होंगे तो हमारे बाबत सोचते होंगे कि जो हम बारह घंटे में कर लेते हैं, तुमको सत्तर साल लग जाते हैं--बेचारे! इतना काम तो हम बहुत जल्दी निपटा लेते हैं, इन लोगों को क्या हो गया! कैसी मंद बुद्धि के हैं, सत्तर साल लगा देते हैं!

समय जो है, वह बिल्कुल ही मनोनिर्भर, मेंटल एनटाइटी है। इसलिए हम भी हमारे मन के अनुसार समय का अनुपात छोटा-बड़ा होता रहता है। जब तुम सुख में होते हो, समय एकदम छोटा हो जाता है; जब तुम दुख में होते हो, समय एकदम लंबा हो जाता है। घर में कोई मर रहा है और तुम उसकी खाट के पास बैठे हो, तब रात बहुत लंबी हो जाती है, कटती ही नहीं। ऐसा लगता है कि अब यह रात कभी खत्म होगी कि नहीं होगी! सूरज उगेगा कि नहीं उगेगा! रात इतनी लंबी होती जाती है कि लगता है कि अब नहीं, यह आखिरी रात है! अब यह कभी होगा नहीं, सूरज उगेगा नहीं! दुख समय को बहुत लंबा कर देता है; क्योंकि दुख में तुम जल्दी से समय को बिताना चाहते हो; तुम्हारी अपेक्षा जल्दी की हो जाती है। तुम्हारा एक्सपेक्टेशन है--जल्दी बीत जाए। जितनी तुम्हारी अपेक्षा तीव्र हो जाती है, समय उतना मंदा मालूम पड़ने लगता है, क्योंकि उसका अनुभव रिलेटिव है। जब तुम्हारी अपेक्षा बहुत तीव्र होती है, वह तो अपनी गति से चला जा रहा है, पर तुम्हें ऐसा लगता है कि बहुत धीमे जा रहा है। जैसे कोई प्रेमी अपनी प्रेयसी से मिलने बैठा है और वह चली आ रही है। वह तो चाहता है कि बिल्कुल दौड़ती हुई जेट की रफ्तार से आओ, लेकिन वह आदमी की रफ्तार से आ रही है। तो उसे लगता है, कैसी मंद गति चल रही है!

तो दुख में तुम्हारा समय का बोध एकदम लंबा हो जाता है। सुख आता है, तुम्हारा मित्र मिलता है, प्रियजन मिलता है, रात भर जागकर तुम गपशप करते रहते हो, सुबह विदा होने का वक्त आता है; तुम कहते हो, रात कैसे बीत गई क्षण भर में! यह तो आई न आई बराबर हो गई! ऐसा लगता ही नहीं कि आई भी।

सुख में तुम्हारे समय का बोध एकदम भिन्न हो जाता है, दुख में भिन्न हो जाता है।

तो तुम्हारी मनोनिर्भर इकाई है समय। इसलिए इसमें तो फर्क पैदा ही किए जा सकते हैं, क्योंकि तुम्हारे मन तक तो चोट की जा सकती है। इसमें कोई कठिनाई नहीं है। अगर मैं तुम्हारे सिर पर लट्ठ मार दूं तो तुम्हारा सिर खुल जाता है। तो अब तुम क्या कहोगे कि तुम्हारा सिर एक आदमी ने खोल दिया, उस पर निर्भर हो गए तुम! हो ही गए निर्भर। तुम्हारे शरीर को चोट की जा सकती है; तुम्हारे मन को भी चोट की जा सकती है। हां,

तुमको चोट नहीं की जा सकती; क्योंकि तुम न शरीर हो, न तुम मन हो। लेकिन अभी तुम मन पर ठहरे हुए अपने को मन मान रहे हो, या अपने को शरीर मान रहे हो, तो इन सबको तो चोट की जा सकती है। और इनकी चोट से तुम्हारे समय के अंतर को बहुत कम किया जा सकता है--कल्पों को क्षणों में बदला जा सकता है; क्षणों को कल्पों में बदला जा सकता है।

मुक्ति समयातीत है

लेकिन जिस दिन तुम जागोगे, यह बहुत मजे की बात है कि बुद्ध जिस दिन जागे, उनको तो पच्चीस सौ साल हो गए, जीसस को दो हजार साल हो गए, कृष्ण को शायद पांच हजार साल हो गए, जरथुस्त्र को बहुत समय हुआ, मूसा को बहुत समय हुआ--लेकिन जिस दिन तुम जागोगे, तुम अचानक पाओगे कि अरे, वे भी अभी ही जागे हैं! क्योंकि वह जो टाइम गैप है, एकदम खतम हो जाएगा। ये पच्चीस सौ साल, और दो हजार, और पांच हजार साल एकदम सपने के मालूम पड़ेंगे।

इसलिए जब कोई जागता है, तो एक ही क्षण में सब जागते हैं, कोई क्षण में फर्क नहीं पड़ता। लेकिन यह बड़ा कठिन है ख्याल में लेना। यह बड़ा कठिन है कि जिस दिन तुम जाओगे, उस दिन तुम एकदम कंटेम्प्रेरी हो जाओगे--बुद्ध के, महावीर के, कृष्ण के। वे सब तुम्हें चारों तरफ खड़े हुए मालूम पड़ेंगे; सब अभी-अभी जागे--अभी! तुम्हारे साथ ही! एक क्षण का भी फासला वहां नहीं है। वहां नहीं हो सकता।

असल में, ऐसा समझो कि हम एक बड़ा वृत्त खींचें, एक बड़ा सर्किल बनाएं; और सर्किल के सेंटर पर हम वृत्त से बहुत सी रेखाएं खींचें; हजार रेखाएं परिधि से खींचें और केंद्र पर जोड़ दें। परिधि पर तो बहुत फासला होगा दो रेखाओं के बीच में। फिर तुम केंद्र की तरफ बढ़ने लगे, फासला कम होने लगा। फिर तुम जब केंद्र पर पहुंचोगे, तुम पाओगे--फासला खतम हो गया, दोनों रेखाएं एक हो गईं।

तो जिस दिन अनुभूति की उस प्रगाढ़ता के केंद्र पर कोई पहुंचता है, तो वे जो परिधि पर फासले थे, ढाई हजार साल का, दो हजार साल का, वे सब खत्म हो जाते हैं। इसलिए बहुत दिक्कत होती है, बड़ी कठिनाई होती है, क्योंकि उस जगह से बोलने से कई बार भूल हो जाती है। क्योंकि जिनसे हम बोल रहे हैं, वे परिधि की भाषा समझते हैं। इसलिए बहुत भूल की संभावना है वहां।

एक आदमी मेरे पास आया। भक्त है, जीसस का भक्त। तो उसने मुझसे पूछा कि आपका जीसस के बाबत क्या ख्याल है? तो मैंने उससे कहा कि अपने ही बाबत ख्याल बनाना अच्छा नहीं होता। मुझे थोड़ा उसने चौंककर देखा, उसने कहा कि नहीं, शायद आप सुने नहीं; मैं पूछ रहा हूंः जीसस के बाबत आपका क्या ख्याल है? तो मैंने उससे कहा कि मैं भी समझता हूं कि तुमने शायद सुना नहीं! मैं कहता हूं कि अपने ही बाबत ख्याल बनाना ठीक नहीं होता। उसने कुछ परेशानी से मुझे देखा। मैंने उससे कहा कि जीसस के बाबत ख्याल तभी तक बनाया जा सकता है जब तक जीसस को नहीं जानते। जिस दिन जानोगे उस दिन तुममें और जीसस में क्या फर्क है? कैसे ख्याल बनाओगे?

ऐसा हुआ कि रामकृष्ण के पास कभी कोई चित्रकार आया और उनका एक चित्र बनाकर लाया। और वह रामकृष्ण को लाकर उसने बताया कि देखिए, आपका चित्र बनाया है, कैसा बना है? रामकृष्ण उस चित्र के पैरों में सिर लगाकर नमस्कार करने लगे। तो वहां जितने लोग बैठे थे उन सबने सोचा कि कुछ भूल हो गई, क्योंकि अपने ही चित्र के पैर पड़ रहे हैं! क्या, गड़बड़ क्या है? शायद समझे नहीं, चित्र उन्हीं का है।

तो उस चित्रकार ने कहा, माफ करिए, यह चित्र आपका ही है और आप ही इसके...

तो उन्होंने कहा कि अरे, मैं भूल गया। असल में, उन्होंने कहा कि यह चित्र इतना समाधिस्थ है कि मेरा कैसे हो सकता है! रामकृष्ण ने कहा, यह चित्र इतना समाधि का है कि मेरा कैसे हो सकता है! क्योंकि समाधि में कहां मैं और कहां तू। तो मैं तो समाधि के पैर पड़ने लगा; तुमने ठीक याद दिला दी, और वक्त पर याद दिला दी, नहीं तो लोग बहुत हंसते। ... पर लोग तो हंस ही चुके थे।

परिधि की और केंद्र की भाषाएं अलग हैं। इसलिए अगर कृष्ण कहते हैं कि मैं ही था राम, और अगर जीसस कहते हैं कि मैं ही पहले भी आया था और तुम्हें कह गया था, और अगर बुद्ध कहते हैं कि मैं फिर आऊंगा, तो इस सब में वे सब केंद्र की भाषा बोल रहे हैं जिससे हमको बड़ी कठिनाई होती है। अब बौद्ध भिक्षु प्रतीक्षा कर रहे हैं कि वे कब आएंगे!

वे बहुत बार आ चुके। वे रोज खड़े होंगे तो भी नहीं पहचान में आएंगे, क्योंकि अब उसी शक्ल में तो आने का कोई उपाय नहीं है; वह शक्ल तो सपने की शक्ल थी, वह खो गई।

तो वहां कोई समय का अंतराल नहीं है। और इसीलिए तुम्हारे समय की स्थिति में तो तीव्रता और कमी की जा सकती है, बहुत कमी की जा सकती है। उतना शक्तिपात से हो सकता है।

कोई दूसरा नहीं है

और दूसरी बात जो तुम उसमें पूछते हो कि इसमें तो दूसरा...

वह दूसरा भी तभी तक दिखाई पड़ रहा है न! वह दूसरे का जो दूसरा होना है, वह भी हमारी अपनी सीमा को जोर से पकड़े होने की वजह से मालूम पड़ रहा है। तो विवेकानंद को लगेगा कि रामकृष्ण की वजह से मुझे हो गया। रामकृष्ण को लगे तो बड़ी नासमझी हो जाएगी। रामकृष्ण के लिए तो ऐसे ही घटना घटी है, जैसे कि मेरे हाथ पर कोई चोट लगी हो और मैंने मलहम लगा दी। तो मेरा यह हाथ, बायां हाथ समझेगा कि कोई और मेरी सेवा कर रहा है। दाएं हाथ से मैं लगाऊंगा न! तो कोई और कर रहा है। हो सकता है धन्यवाद भी दे; हो सकता है इनकार भी कर दे कि भई, रहने दो; मैं स्वावलंबी हूं; मैं दूसरे की सहायता नहीं लेता। लेकिन उसे पता नहीं कि जो उसमें प्रवेश किया हुआ है, बाएं में, वही दाएं में भी प्रवेश किया हुआ है; वह एक ही है।

तो जब कभी कोई किसी दूसरे के लिए दूसरे की तरफ से सहायता पहुंचती है, तो सच में कोई दूसरा नहीं है; तुम्हारी तैयारी ही उस सहायता को तुम्हारे ही दूसरे हिस्से से बुलाती और पुकारती है।

इजिप्त में एक बहुत पुरानी किताब है जो यह कहती है कि तुम गुरु को कभी मत खोजना, क्योंकि जिस दिन तुम तैयार हो, गुरु तुम्हारे दरवाजे पर हाजिर हो जाएगा। तुम खोजने जाना ही मत। और वह यह भी कहती है कि अगर तुम खोजने भी जाओगे तो खोज कैसे सकोगे? तुम पहचानोगे कैसे? क्योंकि अगर तुम इस योग्य ही हो गए कि गुरु को भी पहचान लो, तब फिर और क्या कमी रह गई! इसलिए सदा ही गुरु शिष्य को पहचानता है, शिष्य कभी गुरु को नहीं पहचान सकता। उसका कोई उपाय नहीं है। मेरा मतलब समझे न? उसका उपाय कहां है? अभी तुम अपने को नहीं पहचानोगे तो तुम गुरु को कैसे पहचानोगे कि यह आदमी है! तुम नहीं पहचान सकते। हां, लेकिन जिस दिन तुम तैयार हो, उस दिन तुम्हारा ही कोई हाथ तुम्हारी सहायता के लिए मौजूद हो जाता है। वह दूसरे का हाथ तभी तक है जब तक तुम्हें पता नहीं चला है। जिस दिन तुम्हें पता चलेगा उस दिन तुम धन्यवाद देने को भी नहीं रुकोगे।

जापान में झेन मॉनेस्ट्री का एक हिसाब है कि जब कोई मॉनेस्ट्री में, आश्रम में आता है ध्यान सीखने, तो अपनी चटाई आकर बिछाता है। चटाई दबाकर लाता है, बिछा देता है, बैठ जाता है; समझ लेता है, ध्यान करके चला जाता है, चटाई वहीं छोड़ जाता है। फिर वह रोज आता रहता है और अपनी चटाई पर बैठता है, चला

जाता है। जिस दिन हो जाता है उस दिन अपनी चटाई गोल करके चला जाता है; गुरु समझ जाता है, हो गया। इसमें धन्यवाद देने की भी क्या जरूरत है? वह जिस दिन चटाई गोल करता है, उस दिन गुरु कहता है कि अच्छा, जा रहे हो! क्योंकि किसको धन्यवाद देना है। वह यह भी नहीं कहता कि हो गया, वह अपनी चटाई लपेटने लगता है, तो गुरु समझता है कि चलो ठीक है, बस चटाई लपेटने का वक्त आ गया, अच्छी बात है। इतनी औपचारिकता की भी कहां जरूरत है कि धन्यवाद दो। और किसको धन्यवाद दो! और अगर कोई धन्यवाद देने जाएगा तो गुरु डंडा भी मार सकता है उसको--कि खोल चटाई वापस, अभी तेरा नहीं हुआ! किसको धन्यवाद दोगे?

तो वह जो दूसरे का ख्याल है वह हमारे अज्ञान की ही धारणा है, अन्यथा कौन है दूसरा! हम ही हैं बहुत रूपों में, हम ही हैं बहुत यात्राओं पर, हम ही हैं बहुत दर्पणों में। निश्चित ही, सभी दर्पणों में लेकिन दिखाई तो कोई और ही पड़ रहा है।

एक सूफी कहानी है कि एक कुत्ता एक राजमहल में घुस गया। और उस राजमहल में सारी दीवालें दर्पण की बनाई गई थीं। वह कुत्ता बहुत मुश्किल में पड़ गया, क्योंकि उसे चारों तरफ कुत्ते ही कुत्ते दिखाई पड़ने लगे। वह बहुत घबड़ाया। इतने कुत्ते चारों तरफ! अकेला घिर गया इतने कुत्तों में! निकलने का भी रास्ता नहीं रहा। द्वार-दरवाजों पर भी आईने थे। सब तरफ आईने ही आईने थे। फिर वह भौंका। लेकिन उसके भौंकने के साथ सारे कुत्ते भौंके और उसकी आवाज सारी दीवालों से टकराकर वापस लौटी, तब तो बिल्कुल पक्का हो गया कि खतरे में जान है और बहुत दूसरे कुत्ते मौजूद हैं। और वह चिल्लाता रहा! और जितना चिल्लाया, उतने जोर से बाकी कुत्ते भी चिल्लाए; और जितना वह लड़ा और भौंका और दौड़ा, उतने ही सारे कुत्ते भी दौड़े और भौंके। और उस कमरे में वह अकेला कुत्ता था। रात भर वह भौंकता रहा, भौंकता रहा। सुबह जब पहरेदार आया तो वह कुत्ता मरा हुआ पाया गया, क्योंकि वह दीवालों से लड़कर और भौंककर थक गया और मर गया। हालांकि वहां कोई भी नहीं था। जब वह मर गया तो वे दीवालें भी शांत हो गईं, वे दर्पण चुप हो गए।

बहुत दर्पण हैं; और हम सब एक-दूसरे को जो देख रहे हैं, वे बहुत तरह के मिरर्स, बहुत तरह के दर्पणों में अपनी ही तस्वीरें हैं। इसलिए दूसरा कोई है, यह भ्रांति है; इसलिए दूसरे की हम सहायता कर रहे हैं, यह भी भ्रांति है, और दूसरे से हमें सहायता मिल रही है, यह भी भ्रांति है। असल में, दूसरा ही भ्रांति है। और तब जीवन में एक सरलता आती है, जहां तुम दूसरे को दूसरा मानकर कुछ नहीं करते हो--कुछ भी नहीं करते हो; न दूसरे को दूसरा मानकर अपने लिए कुछ करवाते हो; तब तुम ही रह जाते हो। और अगर रास्ते पर किसी गिरते आदमी को तुमने सहारा दिया है तो वह तुमने अपने को ही दिया है; और अगर रास्ते पर किसी और ने तुम्हें सहारा दिया है तो वह भी उसने अपने को ही दिया है। मगर यह परम अनुभव के बाद ख्याल में आना शुरू होगा, उसके पहले तो निश्चित ही दूसरा है।

अनुभूति और अभिव्यक्ति

प्रश्नः विवेकानंद को शक्तिपात से नुकसान हुआ था, ऐसा आपने एक बार कहा है!

असल में, विवेकानंद को शक्तिपात से तो नुकसान नहीं हुआ, लेकिन शक्तिपात के पीछे जो हुआ उससे नुकसान हुआ; जो और चीजें चलीं। पर नुकसान और हानि की बात भी सपने के भीतर की बात है, बाहर की नहीं। तो जिस भांति रामकृष्ण की सहायता से उनको एक झलक मिली--जो झलक शायद उनको अपने ही पैरों

पर कभी मिलती, वक्त लग जाता--लेकिन उस झलक के बाद, चूंकि वह झलक दूसरे से मिली थी, दूसरे के द्वारा मिली थी... । जैसे मैंने हथौड़ा मारा दरवाजे पर, दरवाजा टूट गया। लेकिन मैं दरवाजे को फिर खड़ा कर गया, उसी हथौड़े से खीलें ठोंक गया और वापस ठीक कर गया। जो हथौड़ा दरवाजा गिरा सकता है, वह कीलें भी ठोंक सकता है। हालांकि दोनों हालत में एक ही बात हो रही है, पहले भी समय ही थोड़ा कम हुआ था, अब समय ही फिर थोड़ा हो जाएगा।

रामकृष्ण की कुछ कठिनाइयां थीं जिनके लिए उन्हें विवेकानंद का उपयोग करना पड़ा। रामकृष्ण निपट देहाती, अपढ़, अशिक्षित आदमी थे; अनुभव उनको गहरा हुआ था, लेकिन अभिव्यक्ति उनके पास नहीं थी। और जरूरी था कि वे अपनी अभिव्यक्ति के लिए किसी आदमी को साधन बनाएं, वाहन बनाएं। नहीं तो रामकृष्ण का आपको पता ही न चलता। और रामकृष्ण को जो मिला था, यह उनकी करुणा का हिस्सा ही है कि वह किसी आदमी के द्वारा आप तक पहुंचा दें।

मेरे घर में खजाना मिल जाए मुझे, और मेरे पैर टूटे हों, और मैं किसी आदमी के कंधे पर खजाना रखकर आपके घर तक पहुंचा दूं। तो उस आदमी के कंधे का तो मैंने उपयोग किया, उसे थोड़ी तकलीफ भी दी; क्योंकि इतनी दूर वजन तो उसे ढोना ही पड़ेगा। लेकिन उस आदमी को तकलीफ देने का इरादा नहीं है, इरादा वह जो खजाना मुझे मिला है, आप तक पहुंचाने का है। क्योंकि मैं हूं लंगड़ा, और यह खजाना यहीं पड़ा रह जाएगा, और मैं घर के बाहर खबर भी नहीं ले जा सकूंगा।

तो रामकृष्ण को एक कठिनाई थी। बुद्ध को ऐसी कठिनाई नहीं थी। बुद्ध के व्यक्तित्व में रामकृष्ण और विवेकानंद एक साथ मौजूद थे। तो बुद्ध जो जानते थे, वह कह भी सकते थे; रामकृष्ण जो जानते थे, वह कह नहीं सकते थे। कहने के लिए उन्हें एक आदमी चाहिए था जो उनका मुंह बन जाए। तो विवेकानंद को उन्होंने झलक तो दिखा दी, लेकिन तत्काल विवेकानंद से कहा कि अब चाबी मैं रखे लेता हूं अपने हाथ, अब मरने के तीन दिन पहले लौटा दूंगा। अब विवेकानंद बहुत चिल्लाने लगे कि आप यह क्या कर रहे हैं! अब जो मुझे मिला है, छीनिए मत! रामकृष्ण ने कहा, लेकिन अभी तुझे और दूसरा काम करना है; अगर यह तू इसमें डूबा, तो गया। तो अभी मैं तेरी चाबी रखे लेता हूं; इतनी तू कृपा कर। और मरने के तीन दिन पहले तुझे लौटा दूंगा। और अब मरने के तीन दिन पहले तक तुझे समाधि उपलब्ध न हो, क्योंकि तुझे कुछ और काम करना है जो समाधि के पहले ही तू कर पाएगा।

और इसका भी कारण यही था कि रामकृष्ण को पता नहीं था कि समाधि के बाद भी लोगों ने यह काम किया है। लेकिन रामकृष्ण को पता हो भी नहीं सकता था, क्योंकि वे समाधि के बाद कुछ भी नहीं कर पाए थे। स्वभावतः हम अपनी ही अनुभूति से चलते हैं। रामकृष्ण की अनुभूति के बाद रामकृष्ण कुछ भी नहीं कह पाते थे; बोल नहीं पाते थे। बोलना तो बहुत मुश्किल था, वे तो इतने... कोई कह देता राम--और वे बेहोश हो जाते। यह तो दूसरा कह दे! कोई चला आया है और उसने कहा कि जय राम जी--और वे बेहोश होकर गिर गए! उनके लिए तो राम शब्द भी सुनाई पड़ जाए तो मुश्किल मामला था--उनको याद आ गई उसी जगत की। किसी ने कह दियाः अल्लाह, तो वे गए। मस्जिद दिखाई पड़ गई, तो वे वहीं खड़े होकर बेहोश हो गए। कहीं भजन-कीर्तन हो रहा है, वे चले जा रहे हैं अपने रास्ते से--वे गए, वहीं सड़क पर गिर गए। उनकी कठिनाई यह हो गई थीः कहीं से भी जरा सी स्मृति आ जाए उनको उस रस की, कि वे गए। तो अब उनको तो बहुत कठिनाई थी। और उनका अनुभव उनके लिहाज से ठीक ही था कि विवेकानंद को अगर यह अनुभूति हो गई तो फिर क्या होगा! तो उन्होंने विवेकानंद से कहा कि तुझे तो मैं कुछ, एक बड़ा काम है, वह तू कर ले, उसके बाद...

इसलिए विवेकानंद की पूरी जिंदगी समाधि-रहित बीती; और इसलिए बहुत तकलीफ में बीती। तकलीफ लेकिन सपने की! इस बात को ख्याल में रखना कि तकलीफ सपने की है; एक आदमी सोया है और बड़ी तकलीफ का सपना देख रहा है। मरने के तीन दिन पहले चाबी वापस मिल गई, लेकिन मरने तक बहुत पीड़ा थी। मरने के पांच-सात दिन पहले तक भी जो पत्र उन्होंने लिखे, वे बहुत दुख के हैं--कि मेरा क्या होगा, मैं तड़प रहा हूं। और तड़प और भी बढ़ गई, क्योंकि जो देख लिया है एक दफा, उसकी दुबारा झलक नहीं मिली।

अभी उतनी तड़प नहीं है आपको, क्योंकि कुछ पता ही नहीं है कि क्या हो सकता है। उसकी एक झलक मिल जाए...

आप खड़े थे अंधेरे में, कोई तकलीफ न थी; हाथ में कंकड़-पत्थर थे, तो भी बड़ा आनंद था, क्योंकि संपत्ति थी। फिर चमक गई बिजली और दिखाई पड़ा कि हाथ में कंकड़-पत्थर हैं--और सामने दिखाई पड़ा कि रास्ता भी है, और सामने दिखाई पड़ा कि हीरों की खदान भी है। लेकिन बिजली खो गई। और बिजली कह गई कि अभी दूसरा काम तुम्हें करना हैः वे जो और पत्थर बीन रहे हैं उनसे कहना है कि यहां आगे खदान है। इसलिए अभी तुम्हारे लिए वापस बिजली नहीं चमकेगी। अब तुम ये जो बाकी पत्थर इकट्ठे कर रहे हैं इनको समझाओ।

तो विवेकानंद से एक काम लिया गया है जो रामकृष्ण के लिए सप्लीमेंट्री था, जरूरी था, जो उनके व्यक्तित्व में नहीं था वह दूसरे व्यक्ति से लेना पड़ा। ऐसा बहुत बार हो गया है, बहुत बार हो जाता है; कुछ बात जो नहीं संभव हो पाए एक व्यक्ति से, उसके लिए दो-चार व्यक्ति भी खोजने पड़ते हैं। कई बार तो एक ही काम के लिए दस-पांच व्यक्ति भी खोजने पड़ते हैं। उन सबके सहारे से वह बात पहुंचाई जा सकती है। उसमें है तो करुणा, लेकिन विवेकानंद के साथ तो...

इसलिए मेरा कहना यह है कि जहां तक बने शक्तिपात से बचना; जहां तक बने वहां तक प्रसाद की फिक्र करना। और शक्तिपात भी वही उपयोगी है जो प्रसाद जैसा हो। जिसकी कोई कंडीशनिंग न हो, जिसके साथ कोई शर्त न हो, जो यह न कहे कि अब हम चाबी रखे लेते हैं। मेरा मतलब समझे न? जो यह न कहे कि अब कोई शर्त है इसके साथ; जो बेशर्त, अनकंडीशनल हो; जो आपको हो जाए और वह आदमी कभी आपसे पूछने भी न आए कि क्या हुआ; जो गया तो आपको अगर धन्यवाद भी देना हो तो उसको खोजना मुश्किल हो जाए कि उसे कहां जाकर धन्यवाद दें। उतना ही आपके लिए आसान पड़ेगा। लेकिन कभी रामकृष्ण जैसे व्यक्ति को जरूरत पड़ती है। तो उसके सिवाय कोई रास्ता नहीं था। नहीं तो रामकृष्ण का जानना खो जाता; वे कह नहीं पाते। उनके लिए जबान चाहिए थी जो उनके पास नहीं थी। वह जबान उन्हें विवेकानंद से मिल गई।

इसलिए विवेकानंद निरंतर कहते थे कि जो भी मैं कह रहा हूं वह मेरा नहीं है। और अमेरिका में जब उन्हें बहुत सम्मान मिला, तो उन्होंने कहा कि मुझे बड़ा दुख हो रहा है और मुझे बड़ी मुश्किल पड़ती है, क्योंकि जो सम्मान मुझे दिया जा रहा है वह उस एक और दूसरे ही आदमी को मिलना चाहिए था जिसका आपको पता ही नहीं। और जब उन्हें कोई महापुरुष कहता, तो वे कहते कि जिस महापुरुष के पास मैं बैठकर आया हूं, मैं उसके चरणों की धूल भी नहीं हूं।

लेकिन रामकृष्ण अगर अमेरिका में जाते, तो वे किसी पागलखाने में भर्ती किए जाते; और उनकी चिकित्सा की जाती। उनकी कोई नहीं सुनता; वे बिल्कुल पागल सिद्ध होते। वे पागल थे। अभी तक हम यह नहीं साफ कर पाए कि एक सेक्युलर पागलपन होता है और एक नॉन-सेक्युलर पागलपन भी होता है। अभी हम फर्क नहीं कर पाए कि एक पागलपन सांसारिक पागलपन, और एक और पागलपन भी है--डिवाइन भी है। वह हमें फर्क तो नहीं हो पाया।

तो अमेरिका में कभी दोनों पागल एक साथ एक से पागलखाने में बंद कर दिए जाते हैं; दोनों की एक चिकित्सा हो जाती है। रामकृष्ण की चिकित्सा हो जाती, विवेकानंद को सम्मान मिला। क्योंकि विवेकानंद जो कह रहे हैं, वह कहने की बात है; वे खुद कोई दीवाने नहीं हैं; वे एक संदेशवाहक हैं, एक डाकिया। चिट्ठी ले गए हैं किसी की, वह जाकर पढ़कर सुना दी है। लेकिन वे अच्छी तरह पढ़कर सुना सकते हैं।

नसरुद्दीन के जीवन में एक बहुत अदभुत घटना है। नसरुद्दीन अपने गांव में अकेला पढ़ा-लिखा आदमी है। और जिस गांव में एक ही अकेला पढ़ा-लिखा हो, वह भी बहुत पढ़ा-लिखा तो होता नहीं! तो चिट्ठी किसी को लिखवानी हो, तो उसी से लिखवानी पड़ती है। तो एक आदमी उससे चिट्ठी लिखवाने आया है। और वह नसरुद्दीन उससे कहता है कि मैं न लिखूंगा, मेरे पैर में बड़ी तकलीफ है।

उस आदमी ने कहा, भई पैर से चिट्ठी लिखने को कहता कौन है! आप हाथ से चिट्ठी लिखिए।

नसरुद्दीन ने कहा कि तुम समझे नहीं, असल में हम चिट्ठी लिखते हैं तो हम ही पढ़ते हैं; हमें दूसरे गांव में जाकर पढ़नी भी पड़ती है। पैर में बहुत तकलीफ है, अभी हमें चिट्ठी लिखने की झंझट में नहीं पड़ना। लिख तो देंगे, पढ़ेगा कौन? वह दूसरे गांव में हमीं को जाना पड़ता है न! तो अभी जब तक पैर में तकलीफ है, हम चिट्ठी लिखना बंद ही रखेंगे।

तो रामकृष्ण जैसे जो लोग हैं, ये जो चिट्ठी भी लिखेंगे, ये खुद ही पढ़ सकते हैं। ये आपकी भाषा भूल ही गए; आपकी भाषा का इनको कोई पता ही नहीं है। और ये एक और ही तरह की भाषा बोल रहे हैं जो आपके लिए बिल्कुल मीनिंगलेस, अर्थहीन हो गई है। हम इनको पागल कहेंगे कि यह आदमी पागल है। तो हमारे बीच में से इन्हें कोई डाकिया पकड़ना पड़े जो हमारी भाषा में लिख सके। निश्चित ही, वह डाकिया ही होगा। इसलिए विवेकानंद से जरा सावधान रहना। उनका कोई अपना अनुभव बहुत गहरा नहीं है। जो वे कह रहे हैं, वह किसी और का है। हां, कहने में वे कुशल हैं, होशियार हैं। जिसका था, वह इतनी कुशलता से नहीं कह सकता था। लेकिन फिर भी वह विवेकानंद का अपना नहीं है।

ज्ञानियों की झिझक और अज्ञानियों का अति आत्मविश्वास

इसलिए विवेकानंद की बातचीत में ओवरकांफिडेंस मालूम पड़ेगा। जरूरत से ज्यादा वे बल दे रहे हैं। वह बल कमी की पूर्ति के लिए है। उन्हें खुद भी पता है कि वे जो कह रहे हैं, वह उनका अपना अनुभव नहीं है। इसलिए ज्ञानी तो थोड़ा-बहुत हे.जटेट करता है; वह थोड़ा-बहुत डरता है। उसके मन में पचास बातें होती हैं कि यह कहूं, ऐसा कहूं, वैसा कहूं, गलत न हो जाए। जिसको कुछ पता नहीं है वह बेधड़क जो उसे कहना है, कह देता है; क्योंकि उसे कोई कठिनाई नहीं होती, हे.जटेशन कभी नहीं होता; वह कह देता है कि ठीक है।

बुद्ध जैसे ज्ञानी को तो बड़ी कठिनाई थी। तो वे तो बहुत सी बातों का जवाब ही नहीं देते थे। वे कहते थे कि मैं जवाब ही नहीं दूंगा, क्योंकि कहने में बड़ी कठिनाई है। कुछ लोग तो कहते, इससे तो हमारे गांव में अच्छे आदमी हैं, वे जवाब तो देते हैं, वे ज्यादा ज्ञानी हैं आपसे! कोई भी चीज पूछो, जवाब दे देते हैं। भगवान है कि नहीं? तो वे कहते तो हैं कि है या नहीं। उनको पता तो है। आपको पता नहीं है क्या? आप क्यों नहीं कहते कि है या नहीं?

अब बुद्ध की बड़ी मुश्किल है। है कहें तो मुश्किल है, नहीं कहें तो मुश्किल है। तो वे हे.जटेट करेंगे, वे कहेंगे कि नहीं भई, इस संबंध में बात ही मत करो, कुछ और बातें करते हैं। स्वभावतः हम कहेंगे कि फिर पता नहीं है आपको, यही कह दो। यह भी बुद्ध नहीं कह सकते, क्योंकि पता तो है। और हमारी कोई भाषा काम नहीं करती।

इसलिए बहुत बार ऐसा हुआ है कि रामकृष्ण जैसे बहुत लोग पृथ्वी पर अपनी बात को बिना कहे खो गए हैं। वे नहीं कह पाते, क्योंकि यह बहुत रेअर कांबिनेशन है कि एक आदमी जाने भी और कह भी सके। और जब यह घटना घटती है तो ऐसे ही व्यक्ति को हम तीर्थंकर, अवतार, पैगंबर, इस तरह के शब्दों का उपयोग करने लगते हैं। उसका कारण यह नहीं है कि इस तरह के और लोग नहीं होते, इस तरह के और भी लोग हुए हैं, लेकिन कह नहीं सके।

बुद्ध से किसी ने पूछा कि आपके पास ये दस हजार भिक्षु हैं, चालीस साल से आप लोगों को समझा रहे हैं, इनमें से कितने लोग आपकी स्थिति को उपलब्ध हुए? बुद्ध ने कहा, बहुत लोग हैं इनमें। तो उस आदमी ने कहा, आप जैसा कोई पता तो नहीं चलता हमें। बुद्ध ने कहा, फर्क इतना ही है कि मैं कह सकता हूं, वे कह नहीं सकते; और कोई फर्क नहीं है। मैं भी न कहूं तो तुम मुझको भी नहीं पहचान सकोगे, बुद्ध ने कहा; क्योंकि तुम बोलना पहचानते हो, तुम जानना थोड़े ही पहचानते हो। यह संयोग की बात है कि मैं बोल भी सकता हूं, जानता भी हूं; यह बिल्कुल संयोग की बात है।

तो इसलिए वह थोड़ी सी कठिनाई विवेकानंद के लिए हुई जो उनको अगले जन्मों में पूरी करनी पड़े, लेकिन वह कठिनाई जरूरी थी। इसलिए रामकृष्ण को लेनी मजबूरी थी। लेनी पड़ी। और नुकसान लेकिन सपने का है। फिर भी मैं कहता हूं, सपने में भी क्यों नुकसान उठाना? सपना ही देखना है तो अच्छा क्यों नहीं देखना, क्यों बुरा देखना?

मैंने सुना है कि--ईसप की एक फेबल है--कि एक बिल्ली एक वृक्ष के नीचे बैठी है और सपना देख रही है। एक कुत्ता भी उधर आकर विश्राम कर रहा है। और बिल्ली बड़ा आनंद ले रही है, बहुत ही आनंद ले रही है सपने में। उसकी प्रसन्नता देखकर कुत्ता भी बहुत हैरान है कि क्या देख रही है! क्या कर रही है! जब उसकी आंख खुली तो उसने पूछा कि जाने से पहले जरा बता दे कि क्या मामला था कि इतनी प्रसन्न हो रही थी? उसने कहा कि बड़ा ही आनंद आ रहा था, एकदम चूहे बरस रहे थे आकाश से। तो उस कुत्ते ने कहा, नासमझ! चूहे कभी बरसते ही नहीं। हम भी सपने देखते हैं, हमेशा हड्डियां बरसती हैं। और हमारे शास्त्रों में भी लिखा हुआ है कि चूहे कभी नहीं बरसते; जब बरसती हैं, हड्डियां बरसती हैं। मूरख बिल्ली, अगर सपना ही देखना था तो हड्डी बरसने का देखना था।

कुत्ते के लिए हड्डी अर्थपूर्ण है। कुत्ते काहे के लिए चूहे बरसाएं। लेकिन बिल्ली के लिए हड्डी बिल्कुल बेकार है। तो वह कुत्ता उससे कहता है, सपना ही देखना था तो कम से कम हड्डी का देखती। यानी एक तो सपना देख रही है, यही बेकार की बात है; फिर वह भी चूहे का देख रही है, और भी बेकार बात है।

तो मैं आपसे कहता हूं, सपना ही देखना हो तो दुख का क्यों देखना? और जागना ही है, तो जहां तक बने--जहां तक बने--अपनी सामर्थ्य, अपनी शक्ति, अपने संकल्प का पूरे से पूरा जितना प्रयोग आप कर सकें, वह करें; और रत्ती भर दूसरे की प्रतीक्षा न करें कि वह सहायता पहुंचाएगा। सहायता मिलेगी, वह दूसरी बात है; आप प्रतीक्षा न करें कि सहायता मिलेगी। क्योंकि जितनी आप प्रतीक्षा करेंगे उतना ही आपका संकल्प क्षीण हो जाएगा। आप तो फिकर ही छोड़ दें कि कोई सहायता करनेवाला है, आप तो अपनी पूरी ताकत अकेला समझकर लगाएं कि मैं अकेला हूं। हां, सहायता बहुत तरह से मिल जाएगी, लेकिन वह बिल्कुल दूसरी बात है।

साधना में स्वावलंबी बनना सदा उपादेय

इसलिए मेरा जोर जो है वह निरंतर आपकी पूरी संकल्प शक्ति पर है, ताकि कोई और जरा सी भी बाधा आपके लिए न हो। और जब दूसरे से मिले तो वह आपकी मांगी हुई न हो, और न आपकी अपेक्षा हो; वह ऐसे ही आ जाए जैसे हवा आती है और चली जाए।

इस वजह से मैंने कहा कि नुकसान पहुंचा। और जितने दिन वे जिंदा रहे, उतने दिन बहुत तकलीफ में रहे; क्योंकि जो वे कह रहे थे, उस कही हुई बात की दूसरे की आंखों में तो झलक मालूम पड़ती थी, क्योंकि वह चौंक गया है, खुश हुआ है, लेकिन खुद उन्हें पता था कि यह मुझे नहीं हो रहा है। अब यह बड़ी कठिनाई की बात है न कि मैं आपको मिठाई की खबर लेकर आऊं और मुझे स्वाद भी न हो! बस एक दफे सपने में थोड़ा सा दिखाई पड़ा हो, फिर सपना टूट गया हो, और उसने कहा कि अब सपना ही नहीं आएगा दुबारा तुम्हें। बस अब तुम लोगों तक खबर ले जाओ।

तो विवेकानंद का अपना कष्ट है। लेकिन वे सबल व्यक्ति थे, इस कष्ट को उन्होंने झेला। यह भी करुणा का हिस्सा है। लेकिन इसलिए आपको झेलना चाहिए, यह प्रयोजन नहीं है।

विवेकानंद को समाधि की मानसिक झलक

प्रश्नः विवेकानंद को जो समाधि का अनुभव हुआ था रामकृष्ण के संपर्क से, वह प्रामाणिक अनुभव था समाधि का?

प्राथमिक कहो। प्रामाणिक तो उतना बड़ा सवाल नहीं है--प्राथमिक, अत्यंत प्राथमिक, जिसमें एक झलक उपलब्ध हो जाती है। और वह झलक, निश्चित ही, बहुत गहरी नहीं हो सकती और आत्मिक भी नहीं हो सकती; बहुत गहरी नहीं हो सकती। बिल्कुल ही जहां हमारा मन समाप्त होता है और आत्मा शुरू होती है, उस परिधि पर घटेगी वह घटना। साइकिक ही होगी गहरे में, और इसलिए खो गई। और उसको उससे गहरा होने नहीं दिया गया। उससे गहरा हो जाए तो रामकृष्ण डरे हुए थे। उससे गहरा हो जाए तो यह आदमी काम का न रह जाए। और उनको इतनी चिंता थी काम की कि उन्हें यह ख्याल ही नहीं था कि यह कोई जरूरी नहीं है कि यह आदमी काम का न रह जाए! बुद्ध चालीस साल तक बोलते रहे हैं, जीसस बोलते रहे हैं, महावीर बोलते रहे हैं, कोई इससे कठिनाई नहीं आ जाती। मगर रामकृष्ण का भय स्वाभाविक था, उनको कठिनाई थी। तो जिसको जो कठिनाई होती है, वही उनके ख्याल में थी। इसलिए बहुत ही छोटी सी झलक उनको मिली। प्रामाणिक तो है; जितने दूर तक जाती है उतने दूर तक प्रामाणिक है। लेकिन प्राथमिक है, बहुत गहरी नहीं है। नहीं तो लौटना मुश्किल हो जाए।

प्रश्नः समाधि का आंशिक अनुभव भी हो सकता है?

आंशिक नहीं है, प्राथमिक है। इन दोनों में फर्क है। आंशिक अनुभव नहीं है यह। और समाधि का अनुभव आंशिक हो ही नहीं सकता। लेकिन समाधि की मानसिक झलक हो सकती है। अनुभव तो आध्यात्मिक होगा, झलक मानसिक हो सकती है। जैसे, मैं एक पहाड़ पर चढ़कर सागर को देख लूं। निश्चित ही मैंने सागर देखा, लेकिन सागर बहुत फासले पर है। मैं सागर के तट पर नहीं पहुंचा; मैंने सागर को छुआ भी नहीं; मैंने सागर का

जल चखा भी नहीं; मैं सागर में उतरा भी नहीं; मैं नहाया भी नहीं, डूबा भी नहीं; मैंने एक पहाड़ की चोटी पर से सागर देखा और वापस चोटी से खींच लिया गया।

तो मेरे अनुभव को सागर का आंशिक अनुभव कहोगे?

नहीं, आंशिक भी नहीं कह सकते, क्योंकि मैंने छुआ भी नहीं--जरा भी नहीं छुआ, एक इंच भी नहीं छुआ, एक बूंद भी नहीं छुई, एक बूंद चखी भी नहीं।

लेकिन फिर भी क्या मेरे अनुभव को अप्रामाणिक कहोगे?

नहीं, देखा तो है! मेरे देखने में तो कोई कमी नहीं है, सागर मैंने देखा। सागर होकर नहीं देखा, डूबकर नहीं देखा, दूर किसी पीक से, किसी दूर शिखर से दिखाई पड़ गया!

तो तुम अपनी आत्मा को कभी अपने शरीर की ऊंचाई पर खड़े होकर भी देख लेते हो। शरीर की भी ऊंचाइयां हैं, शरीर के भी पीक एक्सपीरिएंसेस हैं। शरीर की भी कोई अनुभूति अगर बहुत गहरी हो तो तुम्हें आत्मा की झलक मिलती है। जैसे अगर बहुत वेल-बीइंग का अनुभव हो शरीर में, तुम परिपूर्ण स्वस्थ हो, और तुम्हारा शरीर स्वास्थ्य से लबालब भरा है, तो तुम शरीर की एक ऐसी ऊंचाई पर पहुंचते हो जहां से तुम्हें आत्मा की झलक दिखाई पड़ेगी। और तब तुम अनुभव कर पाओगे कि नहीं, मैं शरीर नहीं हूं, मैं कुछ और भी हूं। लेकिन तुम आत्मा को जान नहीं लिए। लेकिन शरीर की एक ऊंचाई पर चढ़ गए।

मन की भी ऊंचाइयां हैं। जैसे कि कोई बहुत गहरे प्रेम में--सेक्स में नहीं, सेक्स शरीर की ही संभावना है। और सेक्स भी अगर बहुत गहरा और पीक पर हो, तो वहां से भी तुम्हें आत्मा की एक झलक मिल सकेगी। लेकिन बहुत दूर की झलक, बिल्कुल दूसरे छोर से।

लेकिन प्रेम की अगर बहुत गहराई का अनुभव हो तुम्हें, और किसी को जिसे तुम प्रेम करते हो उसके पास तुम क्षण भर को चुप बैठे हो, सब सन्नाटा है, सिर्फ प्रेम रह गया है तुम्हारे दोनों के बीच डोलता हुआ, और कुछ शब्द नहीं, कोई भाषा नहीं, कुछ लेन-देन नहीं, कुछ आकांक्षा नहीं, सिर्फ प्रेम की तरंगें यहां से वहां पार होने लगी हैं, तो उस प्रेम के क्षण में भी तुम एक ऐसे शिखर पर चढ़ जाओगे जहां से तुम्हें आत्मा की झलक मिल जाए। प्रेमियों को भी आत्मा की झलक मिली है।

एक चित्रकार एक चित्र बना रहा है; और इतना डूब जाए उस चित्र को बनाने में कि एक क्षण में परमात्मा हो जाए, स्रष्टा हो जाए। जब एक चित्रकार चित्र को बनाता है तो वह उसी अनुभूति को पहुंच जाता है कि अगर भगवान ने कभी दुनिया बनाई होगी तो पहुंचा होगा, उस क्षण में। तो उस पीक पर... लेकिन वह मन की है ऊंचाई। उस जगह से वह एक क्षण को स्रष्टा है, क्रिएटर है; एक झलक मिलती है उसको आत्मा की। इसलिए कई बार वह उसे समझ लेता है कि पर्याप्त हो गई। वह भूल हो जाती है।

संगीत में मिल सकती है कभी, काव्य में मिल सकती है कभी, प्रकृति के सौंदर्य में मिल सकती है कभी, और बहुत जगह से मिल सकती है, लेकिन हैं सब दूर की चोटियां। समाधि में डूबकर मिलती है। बाहर से तो बहुत शिखर हैं जिन पर चढ़कर तुम झांक ले सकते हो।

तो यह जो अनुभूति है विवेकानंद की, यह भी मन के ही तल की है; क्योंकि मैंने तुमसे कहा कि दूसरा तुम्हारे मन तक आंदोलन कर सकता है। तो एक पीक पर चढ़ा दिया है!

समाधि की मानसिक झलक भी बहुत महत्वपूर्ण

यानी ऐसा समझो कि एक छोटा बच्चा है, मैंने उसे कंधे पर बिठा लिया, और उसने देखा, और मैंने उसे कंधे से नीचे उतार दिया। क्योंकि मेरा शरीर उसका शरीर नहीं हो सकता। उसके पैर तो जितने बड़े हैं उतने ही

बड़े हैं। अपने पैर से तो जब वह खुद बड़ा होगा, तब देखेगा। लेकिन मैंने कंधे पर बिठाकर उसको कुछ दिखा दिया। वह कह सकता है जाकर कि मैंने देखा। फिर भी शायद लोग उसका भरोसा भी न करें। वे कहें, तूने देखा कैसे होगा? क्योंकि तेरी तो ऊंचाई नहीं है इतनी कि तू देख सके! लेकिन किसी के कंधे पर क्षण भर बैठकर देखा जा सकता है।

पर वह है संभावना सब मन की, इसलिए वह आध्यात्मिक नहीं है। इसलिए अप्रामाणिक नहीं कहता हूं, लेकिन प्राथमिक कहता हूं। और प्राथमिक अनुभूति शरीर पर भी हो सकती है, मन पर भी हो सकती है। आंशिक नहीं है वह, है तो पूरी, पर मन की पूरी अनुभूति है वह। आत्मा की पूरी अनुभूति नहीं है। आत्मा की पूरी होगी तो वहां से लौटना नहीं है, वहां से कोई चाबी नहीं रख सकता तुम्हारी। और वहां से कोई यह नहीं कह सकता कि जब हम चाबी लौटाएंगे तब होगा। वहां से फिर कोई वश नहीं है। इसलिए वहां अगर किसी को काम लेना हो तो उसके पहले ही उसे रोक लेना पड़ता है। उसे उस तक नहीं जाने देना पड़ता है, नहीं तो फिर कठिनाई हो जाएगी।

है तो प्रामाणिक, लेकिन प्रामाणिकता जो है वह साइकिक है, स्प्रिचुअल नहीं है। वह भी छोटी घटना नहीं है, क्योंकि सभी को वह नहीं हो सकती; उसके लिए भी मन का बड़ा प्रबल होना जरूरी है। वह भी सबको नहीं हो सकती।

प्रश्नः विवेकानंद का शोषण किया उन्होंने, ऐसा कहा जा सकता है?

कहने में कोई कठिनाई नहीं है। लेकिन शब्द जो है वह बहुत ज्यादा, जिसको कहें सिर्फ शब्द सूचक नहीं है वह, उसमें निंदा भी है। इसलिए नहीं कहना चाहिए। शोषण शब्द में निंदा है, गहरे में उसमें कंडेमनेशन है। शोषण नहीं किया; क्योंकि रामकृष्ण को कुछ भी नहीं लेना-देना है विवेकानंद से। लेकिन विवेकानंद के द्वारा किसी को कुछ मिल सकेगा, यह ख्याल है। इस अर्थ में शोषण किया कि उपयोग तो किया, उपयोग तो किया ही। लेकिन उपयोग और शोषण में बहुत फर्क है। और शोषण शब्द, जहां मैं अहंकेंद्रित, अपने अहंकार के लिए कुछ खींच रहा हूं और उपयोग कर रहा हूं, वहां तो शोषण हो जाता है; लेकिन जहां मैं जगत, विश्व, सबके लिए कुछ कर रहा हूं, वहां शोषण का कोई कारण नहीं है।

और फिर यह भी तो ख्याल में नहीं है तुम्हें कि अगर रामकृष्ण वह झलक न दिखाते तो विवेकानंद को वह भी हो जाती, यह भी थोड़े ही पक्का है। इसी जन्म में हो जाती, यह भी थोड़े ही पक्का है। और इस बात को जो जानते हैं, वे तय कर सकते हैं। जैसे, हो सकता है--जैसी मेरी समझ है, यही है! लेकिन अब इसके लिए कोई प्रमाण नहीं जुटाए जा सकते हैं। रामकृष्ण का यह कहना कि मृत्यु के तीन दिन पहले तुझे चाबी वापस लौटा दूंगा, कुल इसका कारण इतना भी हो सकता है कि रामकृष्ण की समझ में विवेकानंद अपने ही आप प्रयास करते तो मरने के तीन दिन पहले समाधि को उपलब्ध हो सकते थे। रामकृष्ण का ऐसा ख्याल है कि अगर यह आदमी अपने आप ही चलता है तो मरने के तीन दिन पहले इस जगह पहुंच जाता। तो उस दिन चाबी लौटा देंगे। वे भी चाबी कैसे लौटाएंगे, क्योंकि रामकृष्ण तो मर गए! रामकृष्ण तो मर गए, चाबी लौटानेवाला भी मर गया, लेकिन चाबी लौट गई तीन दिन पहले। तो इसकी बहुत संभावना है। क्योंकि तुम्हारे व्यक्तित्व को जितना तुम नहीं जानते, उतना जो जितनी गहराइयों में गया है उतनी गहराइयों में तुम्हें जान सकता है; और यह भी जान सकता है कि तुम अगर अपने ही मार्ग से चलते रहो... ।

स्वभावतः, अगर मैं एक यात्रा पर गया और एक पहाड़ चढ़ गया। पहाड़ का रास्ता मुझे मालूम है, सीढ़ियां मुझे मालूम हैं, समय कितना लगता है वह मुझे मालूम है, कठिनाइयां कितनी हैं वे मुझे मालूम हैं। मैं तुम्हें पहाड़ चढ़ते देख रहा हूं; मैं जानता हूं कि तीन महीने लग जाएंगे; समझ रहे हो न? मैं जानता हूं कि तुम जिस रफ्तार से चल रहे हो, जिस ढंग से चल रहे हो, जिस ढंग से भटक रहे हो, डोल रहे हो, उसमें इतना समय लग जाएगा। तो बहुत गहरे में तो इतना भी शोषण नहीं है। पर मैंने तुम्हें वहीं बीच में आकर, ऊपर उठाकर, पहाड़ के ऊपर जो है उसकी झलक दिखा दी है और तुम्हें उसी जगह छोड़ दिया और कहा कि तीन महीने बाद रास्ता मिल जाएगा; अभी तीन महीने तक रास्ता नहीं मिलेगा।

तो इतना, भीतर इतना सूक्ष्म है बहुत सा और इतना कांप्लेक्स है कि तुम्हें एकदम से ऊपर से नहीं दिखाई पड़ता, ख्याल में नहीं आता। अब जैसे अभी कल निर्मल गई वहां वापस, तो उसको किसी ने कहा हुआ है कि त्रेपन वर्ष की उम्र में मर जाएगी; तो मैंने उसकी गारंटी ले ली कि त्रेपन वर्ष में नहीं मरेगी। अब यह गारंटी पूरी मैं नहीं करूंगा, पर यह गारंटी पूरी हो जाएगी। लेकिन अगर वह बच गई त्रेपन वर्ष के बाद, तो वह कहेगी कि मैंने गारंटी पूरी की।

विवेकानंद कहेंगे कि चाबी तीन दिन पहले लौटा दी। बाकी किसको चाबी लौटानी है!

प्रश्नः ऐसा भी हो सकता है कि रामकृष्ण जानते रहे हों कि विवेकानंद को साधना की लंबी यात्रा बिना सफलता के करनी है जिसमें उन्हें बहुत दुख भी होगा। इसलिए उन्होंने दुख दूर करने के लिए पहले ही विवेकानंद को समाधि की एक झलक बता दी?

"ऐसा भी हो सकता है", ऐसा करके कभी सोचना ही मत, क्योंकि इसका कोई अंत नहीं है। "ऐसा भी हो सकता है", ऐसा करके सोचने का कोई मतलब नहीं होता। इसलिए मतलब नहीं होता कि फिर तुम कुछ भी सोचती रहोगी, और उसका कोई अर्थ नहीं है। इसलिए ऐसा कभी मत सोचना कि ऐसा भी हो सकता है, ऐसा भी हो सकता है, ऐसा भी हो सकता है। जितना हो सकता है पता हो, उतना ही सोचना। ऐज इफ करके नहीं सोचा चाहिए। जहां तक बने नहीं सोचना चाहिए। उससे कोई मतलब नहीं है, क्योंकि वे बिल्कुल ही अर्थहीन रास्ते हैं, जिन पर हम कुछ भी सोचते रहें, उससे कुछ होगा नहीं। और उससे एक नुकसान होगा। वह नुकसान यह होगा कि "जैसा है", उसका पता चलने में बहुत देर लग जाएगी।

इसलिए हमेशा इसकी फिक्र करना कि कैसा है? और जैसा है, उसको जानना हो, तो ऐसा हो सकता है, ऐसा हो सकता है, ऐसा हो सकता है, यह अपने मन से काट डालना बिल्कुल। इनको जगह ही मत देना। न मालूम हो तो समझना कि मुझे मालूम नहीं कि कैसा है। लेकिन यह अज्ञान की जो स्थिति है कि मुझे मालूम नहीं है, इसे इस ज्ञान से मत ढांक लेना कि ऐसा भी हो सकता है। क्योंकि हम ऐसे ढांके हुए हैं बहुत सी बातें। हम सब लोग इस तरह सोचते रहते हैं। इससे बचो तो हितकर है।

अब कल बात करेंगे!

बारहवां प्रवचन

सतत साधनाः न कहीं रुकना, न कहीं बंधना

प्रश्नः आपने पिछली एक चर्चा में कहा कि सीधे अचानक प्रसाद के उपलब्ध होने पर कभी-कभी दुर्घटना भी घटित हो सकती है और व्यक्ति क्षतिग्रस्त तथा पागल भी हो सकता है या उसकी मृत्यु भी हो सकती है। तो सहज ही प्रश्न उठता है कि क्या प्रसाद हमेशा ही कल्याणकारी नहीं होता है? और क्या वह स्व-संतुलन नहीं रखता है? दुर्घटना का यह भी अर्थ होता है कि व्यक्ति अपात्र था। तो अपात्र पर कृपा कैसे हो सकती है?

दो-तीन बातें समझ लेनी जरूरी हैं। एक तो प्रभु कोई व्यक्ति नहीं है, शक्ति है। और शक्ति का अर्थ हुआ कि एक-एक व्यक्ति का विचार करके कोई घटना वहां से नहीं घटती है। जैसे नदी बह रही है। किनारे जो दरख्त होंगे, उनकी जड़ें मजबूत हो जाएंगी; उनमें फूल लगेंगे, फल आएंगे। नदी की धार में जो पड़ जाएंगे, उनकी जड़ें उखड़ जाएंगी, बह जाएंगे, टूट जाएंगे। नदी को न तो प्रयोजन है कि किसी वृक्ष की जड़ें मजबूत हों, और न प्रयोजन है कि कोई वृक्ष उखाड़ दे। नदी बह रही है। नदी एक शक्ति है, नदी एक व्यक्ति नहीं है।

परमात्मा कोई व्यक्ति नहीं, शक्ति है

लेकिन निरंतर यह भूल हुई है कि हमने परमात्मा को एक व्यक्ति समझ रखा है। इसलिए हम सोचते हैं, जैसे हम व्यक्ति के संबंध में सोचते हैं। हम कहते हैं, वह बड़ा दयालु है; हम कहते हैं, वह बड़ा कृपालु है; हम कहते हैं, वह सदा कल्याण ही करता है। ये हमारी आकांक्षाएं हैं जो हम उस पर थोप रहे हैं।

व्यक्ति पर तो ये आकांक्षाएं थोपी जा सकती हैं; और अगर वह इनको पूरा न करे तो उसको उत्तरदायी ठहराया जा सकता है। शक्ति पर ये आकांक्षाएं नहीं थोपी जा सकतीं। और शक्ति के साथ जब भी हम व्यक्ति मानकर व्यवहार करते हैं तब हम बड़े नुकसान में पड़ते हैं; क्योंकि हम बड़े सपनों में खो जाते हैं। शक्ति के साथ शक्ति मानकर व्यवहार करेंगे तो बहुत दूसरे परिणाम होंगे।

जैसे कि जमीन में ग्रेविटेशन है, कशिश है, गुरुत्वाकर्षण है। आप जमीन पर चलते हैं तो उसी की वजह से चलते हैं। लेकिन वह इसलिए नहीं है कि आप चल सकें। आप न चलेंगे तो गुरुत्वाकर्षण नहीं रहेगा, इस भूल में मत पड़ जाना। आप नहीं थे जमीन पर, तो भी था; एक दिन हम नहीं भी होंगे, तो भी होगा। और अगर आप गलत ढंग से चलेंगे, तो गिर पड़ेंगे, टांग भी टूट जाएगी; वह भी गुरुत्वाकर्षण के कारण ही होगा। लेकिन आप किसी अदालत में मुकदमा न चला सकेंगे, क्योंकि वहां कोई व्यक्ति नहीं है। गुरुत्वाकर्षण एक शक्ति की धारा है। अगर उसके साथ व्यवहार करना है तो आपको सोच-समझकर करना होगा। वह आपके साथ सोच-समझकर व्यवहार नहीं कर रही है।

परमात्मा की शक्ति आपके साथ सोच-समझकर व्यवहार नहीं करती है। परमात्मा की शक्ति कहना ठीक नहीं है; परमात्मा शक्ति ही है। वह आपके साथ सोच-समझकर व्यवहार नहीं है उसका, उसका अपना शाश्वत नियम है। उस शाश्वत नियम का नाम ही धर्म है। धर्म का अर्थ है, उस परमात्मा नाम की शक्ति के व्यवहार का नियम। अगर आप उसके अनुकूल करते हैं, समझपूर्वक करते हैं, विवेकपूर्वक करते हैं, तो वह शक्ति आपके लिए

कृपा बन जाएगी--उसकी तरफ से नहीं, आपके ही कारण। अगर आप उलटा करते हैं, नियम के प्रतिकूल करते हैं, तो वह शक्ति आपके लिए अकृपा बन जाएगी। परमात्मा अकृपा नहीं है, आपके ही कारण।

तो परमात्मा को व्यक्ति मानेंगे तो भूल होगी। परमात्मा व्यक्ति नहीं है, शक्ति है। और इसलिए परमात्मा के साथ न प्रार्थना का कोई अर्थ है, न पूजा का कोई अर्थ है; परमात्मा के साथ अपेक्षाओं का कोई भी अर्थ नहीं है। यदि चाहते हैं कि परमात्मा, वह शक्ति आपके लिए कृपा बन जाए, तो आपको जो भी करना है वह अपने साथ करना है। इसलिए साधना का अर्थ है, प्रार्थना का कोई अर्थ नहीं है। ध्यान का अर्थ है, पूजा का कोई अर्थ नहीं है।

इस फर्क को ठीक से समझ लें।

प्रार्थना में आप परमात्मा के साथ कुछ कर रहे हैं--अपेक्षा, आग्रह, निवेदन, मांग; ध्यान में आप अपने साथ कुछ कर रहे हैं। पूजा में आप परमात्मा से कुछ कर रहे हैं; साधना में आप अपने से कुछ कर रहे हैं। साधना का अर्थ है, अपने को ऐसा बना लेना कि धर्म के प्रतिकूल आप न रह जाएं; और जब नदी की धारा बहे तो आप बीच में न पड़ जाएं--तट पर हों कि नदी की धारा का पानी आपकी जड़ों को मजबूत कर जाए, उखाड़ न जाए। जैसे ही हम परमात्मा को शक्ति के रूप में समझेंगे, हमारे धर्म की पूरी व्यवस्था बदल जाती है।

तो जो मैंने कहा कि यदि आकस्मिक घटना घट जाए, तो दुर्घटना बन सकती है।

प्रसाद से दुर्घटना भी हो सकती है

दूसरी बात पूछी है कि क्या अपात्र को भी वह घटना घट सकती है?

न, अपात्र को कभी नहीं घटती, घटती तो है पात्र को ही, लेकिन अपात्र कभी आकस्मिक रूप से पात्र बन जाता है, जिसका उसे खुद भी पता नहीं चलता। घटना तो सदा ही पात्र को घटती है। जैसे प्रकाश आंख को ही दिखाई पड़ता है, आंखवाले को ही दिखाई पड़ता है; अंधे को नहीं दिखाई पड़ता; न दिखाई पड़ सकता है। लेकिन अगर अंधे की आंख का इलाज किया गया हो, और वह आज ही अस्पताल से बाहर निकलकर सूरज को देख ले, तो दुर्घटना घट जाएगी। उसे महीने, दो महीने हरा चश्मा लगाकर प्रतीक्षा करनी चाहिए। अपात्र एकदम से पात्र बन जाए तो दुर्घटना ही घटेगी, इसमें सूरज कसूरवार नहीं होगा। उसको दो महीने आंखों को सूर्य के प्रकाश के झेलने की क्षमता भी विकसित करने देनी चाहिए। नहीं तो वह पहले जितना अंधा था उससे भी ज्यादा खतरनाक अंधा हो जाएगा; क्योंकि पहलेवाले अंधेपन का इलाज भी हो सकता था, अब इलाज भी मुश्किल होगा; क्योंकि यह दुबारा अंधा हुआ है वह।

तो इसको ठीक से समझ लेनाः पात्र को ही अनुभूति आती है, लेकिन अपात्र कभी शीघ्रता से पात्र बन सकता है; कभी ऐसे कारणों से पात्र बन सकता है जिसका उसे पता भी न चले। और तब... तब दुर्घटना के सदा डर हैं; क्योंकि शक्ति अनायास उतर आए तो आप झेलने की स्थिति में नहीं होते।

ऐसा समझ लें, एक आदमी को अनायास कुछ भी मिल जाए--धन मिल जाए। तो धन के मिलने से दुर्घटना नहीं होनी चाहिए, लेकिन अनायास मिलने से दुर्घटना हो जाएगी। अनायास बहुत बड़ा सुख भी मिल जाए तो भी दुर्घटना हो जाएगी; क्योंकि उस सुख को भी झेलने के लिए क्षमता चाहिए। सुख भी धीरे-धीरे ही मिले तो हम तैयार हो पाते हैं; आनंद भी धीरे-धीरे ही मिले तो हम तैयार हो पाते हैं। क्योंकि तैयारी बहुत सी बातों पर निर्भर है; और हमारे भीतर झेलने की क्षमता भी बहुत सी बातों पर निर्भर है। हमारे मस्तिष्क के स्नायु, हमारे शरीर की क्षमता, हमारे मन की क्षमता, सब की सीमा है। और जिस शक्ति की हम बात कर रहे हैं,

वह असीम है। वह ऐसा ही है, जैसे बूंद के ऊपर सागर गिर जाए। तो बूंद के पास कुछ पात्रता चाहिए सागर को पी जाने की, नहीं तो अनायास तो सिर्फ बूंद मरेगी ही, मिटेगी ही, पा नहीं सकेगी कुछ।

इसलिए, अगर इसे ठीक से समझें तो साधना में दोहरा काम हैः उस शक्ति के मार्ग पर अपने को लाना है, उसके अनुकूल लाना है, और अनुकूल लाने के पहले अपने को सहने की क्षमता भी बढ़ानी है। ये दोहरे काम साधना के हैं। एक तरफ से द्वार खोलना है, आंख ठीक करनी है; और दूसरी तरफ से आंख ठीक हो जाए, तो भी प्रतीक्षा करनी है और आंख को भी इस योग्य बनाना है कि वह प्रकाश को देख सके। अन्यथा बहुत प्रकाश अंधेरे से भी ज्यादा अंधेरा सिद्ध होता है। इसमें प्रकाश का कोई भी कसूर नहीं है, इसमें प्रकाश का कोई लेना-देना नहीं है, यह बिल्कुल एकतरफा मामला है; यह हमारे ऊपर ही निर्भर है। इसमें हम जिम्मेवारी कभी दूसरे पर न दे पाएंगे।

अब जैसे, आदमी की तो जन्मों-जन्मों की यात्रा है। उस जन्मों-जन्मों की यात्रा में उसने बहुत कुछ किया है। और कई बार ऐसा होता है कि वह बिल्कुल पात्र होने के इंच भर पहले छूट गया। वे पिछले जन्मों की सारी स्मृतियां उसकी खो गईं; उसे कुछ पता नहीं है। यदि आप पिछले जन्म में किसी साधना में लगे थे और निन्यानबे डिग्री तक पहुंच गए थे, सौवीं डिग्री तक नहीं पहुंचे थे, अब वह साधना भूल गई, वह जीवन भूल गया, वह सारी बात भूल गई, लेकिन निन्यानबे डिग्री तक की जो आपकी स्थिति थी, वह आपके साथ है। एक दूसरा आदमी आपके पास में बैठा हुआ है; वह एक ही डिग्री पर रुक गया है; उसको भी कोई पता नहीं है। आप दोनों एक ही दिन ध्यान करने बैठे हैं, तो भी आप दोनों अलग-अलग तरह के आदमी हैं। उसकी एक डिग्री बढ़ेगी तो अभी कोई घटना घटनेवाली नहीं है; वह दो ही डिग्री पर पहुंचेगा। आपकी एक डिग्री बढ़ेगी तो घटना घट जानेवाली है। यह आकस्मिक ही होगी आपके लिए घटना; क्योंकि आपको कोई अंदाज भी नहीं है कि निन्यानबे डिग्री पर आप थे। आप कहां हैं, इसका अंदाज नहीं है। और इसलिए एकदम से पहाड़ टूट पड़ सकता है। उसकी तैयारी चाहिए।

और जब मैं कहता हूं दुर्घटना, तो मेरा मतलब इतना ही है कि जिसकी हमारे लिए तैयारी नहीं थी। अनिवार्य रूप से दुर्घटना का मतलब दुख नहीं होता; दुर्घटना का इतना ही मतलब होता है कि जिसके घटने के लिए हम अभी तैयार न थे। दुर्घटना का मतलब अनिवार्य रूप से बुरा नहीं होता। अब एक आदमी को एक लाख रुपये की लाटरी मिल गई हो, तो कुछ बुरा नहीं हो गया है, लेकिन मृत्यु घटित हो जाएगी; वह मर सकता है। एक लाख! ये उसके हृदय की गति को बंद कर जा सकते हैं। दुर्घटना का मतलब इतना है कि जिस घटना के लिए हम अभी तैयार न थे।

और इससे उलटा भी हो सकता है कि अगर कोई आदमी तैयार हो और उसकी मृत्यु आ जाए, तो जरूरी नहीं है कि मृत्यु दुर्घटना ही हो। अगर कोई आदमी तैयार हो, सुकरात जैसी हालत में हो, तो वह मृत्यु को भी आलिंगन करके स्वागत कर लेगा, और उसके लिए मृत्यु तत्काल समाधि बन जाएगी, दुर्घटना नहीं; क्योंकि उस मरते क्षण को वह इतने प्रेम और आनंद से स्वीकार करेगा कि वह उस तत्व को भी देख लेगा जो नहीं मरता है।

हम तो मरने को इतनी घबड़ाहट से स्वीकार करते हैं कि मरने के पहले बेहोश हो जाते हैं; मरने की प्रक्रिया हम होशपूर्वक नहीं अनुभव कर पाते, मरने के पहले बेहोश हो जाते हैं। इसलिए हम बहुत बार मरे हैं, लेकिन मरने की प्रक्रिया का हमें कोई पता नहीं। एक बार भी हमें पता चल जाए कि मरना क्या है, तो फिर हमें कभी भी यह ख्याल नहीं उठेगा कि मैं और मर सकता हूं; क्योंकि मौत की घटना घट जाएगी और आप पार खड़े रह जाएंगे। लेकिन यह होश में होना चाहिए।

तो मृत्यु भी किसी के लिए सौभाग्य हो सकती है; और प्रसाद, ग्रेस भी किसी के लिए दुर्भाग्य हो सकती है। इसलिए साधना दोहरी हैः पुकारना है, बुलाना है, खोजना है, जाना है; और साथ-साथ तैयार भी होते चलना है कि जब आ जाए द्वार पर प्रकाश, तो ऐसा न हो कि प्रकाश भी हमें अंधेरा ही सिद्ध हो, और अंधा कर जाए। इसमें एक बात अगर ख्याल रखेंगे जो मैंने पहले कही, तो अड़चन न होगी। अगर परमात्मा को व्यक्ति मान लेंगे तो फिर बहुत अड़चन हो जाती है, अगर शक्ति मानेंगे तब कोई अड़चन नहीं।

व्यक्ति मानकर बहुत कठिनाई हो गई। और हमारे मन की इच्छा ऐसी होती है कि व्यक्ति हो; क्योंकि व्यक्ति बनाकर हम उसको रिस्पांसिबल बना देते हैं; तो जिम्मेवारी अपनी पूरी नहीं रह जाती, उसकी भी कुछ हो जाती है।

और हम तो छोटी-छोटी चीजों के लिए उसको उत्तरदायी बनाते हैं, बड़ी चीजों की तो बात अलग है। एक आदमी को नौकरी मिल जाए तो परमात्मा को धन्यवाद देता है; नौकरी छूट जाए तो परमात्मा पर नाराज होता है; किसी को फोड़ा-फुंसी हो जाए तो परमात्मा को कहता है उसने कर दिया; किसी का फोड़ा-फुंसी ठीक हो जाए तो वह कहता है, भगवान की कृपा से ठीक हो गया। लेकिन हम कभी ख्याल नहीं करते कि हम कैसे काम भगवान से ले रहे हैं! और कभी यह ख्याल नहीं करते कि बड़ी ईगोसेंट्रिक धारणा है यह कि मेरे फोड़े-फुंसी की फिकर भी भगवान कर रहा है! कि हमारा एक रुपया गिर गया और सड़क पर लौटकर मिल गया तो हम कहते हैं, भगवान की कृपा से!

मेरे एक रुपये का भी हिसाब-किताब जो है वह भगवान रख रहा है, यह सोचकर भी मन को बड़ी तृप्ति मिलती है, क्योंकि मैं तब इस सारे जगत के केंद्र पर खड़ा हो गया। और परमात्मा से भी जो मैं व्यवहार कर रहा हूं, वह एक नौकर का व्यवहार है। उससे भी हम एक पुलिसवाले का उपयोग ले रहे हैं--कि वह तैयार खड़ा है, हमारे रुपये को बचा रहा है।

व्यक्ति बनाने से यह सुविधा है कि जिम्मेवारी उस पर टाल सकते हैं। लेकिन साधक जिम्मेवारी अपने ऊपर लेता है। असल में, साधक होने का एक ही अर्थ है कि अब इस जगत में वह किसी बात के लिए किसी और को जिम्मेवार ठहराने नहीं जाएगा। अब दुख है तो अपना है, सुख है तो अपना है, शांति है तो अपनी है, अशांति है तो अपनी है--कोई उत्तरदायी नहीं, कोई रिस्पांसिबल नहीं, मैं ही उत्तरदायी हूं। अगर टांग टूट जाती है गिरकर, तो ग्रेविटेशन जिम्मेवार नहीं, मैं ही जिम्मेवार हूं। ऐसी मनोदशा हो तो फिर बात समझ में आ जाएगी। और तब, तब दुर्घटना का अर्थ और होगा। और इसलिए मैंने कहा कि प्रसाद भी तैयार व्यक्तित्व को उपलब्ध होता है, तो कल्याणकारी, मंगलदायी हो जाता है। असल में, हर चीज की एक घड़ी है, हर चीज का एक ठीक क्षण है, और ठीक क्षण और ठीक घड़ी को चूक जाना बड़ी दुर्घटना है। इस ख्याल से।

गुरु और शिष्य का गलत संबंध

प्रश्नः आपने पिछली एक चर्चा में कहा कि शक्तिपात का प्रभाव धीरे-धीरे कम हो जाता है, इसलिए माध्यम से बार-बार संबंध होना चाहिए। तो यह क्या गुरुरूपी किसी व्यक्ति पर परावलंबन नहीं हुआ?

यह हो सकता है परावलंबन। अगर कोई गुरु बनने को उत्सुक हो, कोई बनाने को उत्सुक हो, तो यह परावलंबन हो जाएगा। इसलिए भूलकर भी शिष्य मत बनना और भूलकर भी गुरु मत बनना, यह परावलंबन हो जाएगा। लेकिन, यदि शिष्य और गुरु बनने का कोई सवाल नहीं है, तब कोई परावलंबन नहीं है; तब जिससे

आप सहायता ले रहे हैं, वह अपना ही आगे गया रूप है। अपना ही आगे गया रूप है--कौन बने गुरु, कौन बने शिष्य?

मैं निरंतर कहता रहा हूं कि बुद्ध ने अपने पिछले जन्मों के स्मरण में एक बात कही है। कहा है कि मैं तब अज्ञानी था और एक बुद्ध पुरुष परमात्मा को उपलब्ध हो गए थे, तो मैं उनके दर्शन करने गया था। बुद्ध पिछले जन्म में, जब वे बुद्ध नहीं हुए थे, किसी बुद्ध पुरुष के दर्शन करने गए थे। झुककर उन्होंने प्रणाम किया था, और वे प्रणाम करके खड़े भी नहीं हो पाए थे कि बहुत मुश्किल में पड़ गए, क्योंकि वह बुद्ध पुरुष उनके चरणों में झुके और उन्हें प्रणाम किया। तो उन्होंने कहा, आप यह क्या कर रहे हैं? मैं आपके पैर छुऊं, यह ठीक। आप मेरे पैर छूते हैं! तो उन्होंने कहा था कि तू मेरे पैर छुए और मैं तेरे पैर न छुऊं तो बड़ी गलती हो जाएगी; गलती इसलिए हो जाएगी कि मैं तेरा ही दो कदम आगे गया एक रूप हूं। और जब मैं तेरे पैर में झुक रहा हूं तो तुझे याद दिला रहा हूं कि तू मेरे पैरों पर झुका, वह ठीक किया, लेकिन इस भूल में मत पड़ जाना कि तू अलग और मैं अलग; और इस भूल में मत पड़ जाना कि तू अज्ञानी और मैं ज्ञानी। घड़ी भर की बात है कि तू भी ज्ञानी हो जाएगा। यानी ऐसे ही कि जब मेरा दायां पैर आगे जाता है तो बायां पीछे छूट जाता है। असल में, दायां आगे जाए, इसके लिए भी बाएं को पीछे थोड़ी देर छूटना पड़ता है।

गुरु और शिष्य का संबंध घातक है। गुरु और शिष्य का असंबंधित रूप बड़ा सार्थक है। असंबंधित रूप का मतलब ही यह होता है कि जहां अब दो नहीं हैं। जहां दो हैं, वहीं संबंध हो सकता है। तो यह तो समझ में भी आ सकता है कि शिष्य को यह ख्याल हो कि गुरु है, क्योंकि शिष्य अज्ञानी है; लेकिन जब गुरु को भी यह ख्याल होता है कि गुरु है, तब फिर हद हो जाती है; तब उसका मतलब हुआ कि अंधा अंधे को मार्गदर्शन कर रहा है! और इसमें आगे जानेवाला अंधा ही ज्यादा खतरनाक है। क्योंकि वह एक दूसरे अंधे को यह भरोसा दिलवा रहा है कि बेफिकर रहो।

गुरु और शिष्य के संबंध का कोई आध्यात्मिक अर्थ नहीं है। असल में, इस जगत में हमारे सारे संबंध शक्ति के संबंध हैं, पावर पालिटिक्स के संबंध हैं। कोई बाप है, कोई बेटा है। बाप और बेटा, अगर प्रेम का संबंध हो तो बात और होगी। तब बाप को बाप होने का पता नहीं होगा, बेटे को बेटे होने का पता नहीं होगा। तब बेटा बाप का ही बाद में आया हुआ रूप होगा, और बाप बेटे का पहले आ गया रूप होगा। स्वभावतः बात भी यही है।

एक बीज हमने बोया है और वृक्ष आया; और फिर उस वृक्ष में हजार बीज लग गए। वह पहला बीज और इन बीजों के बीच क्या संबंध है? वे पहले आ गए थे, ये पीछे आए हैं, उसी की यात्रा है--उसी बीज की यात्रा है जो वृक्ष के नीचे टूटकर बिखर गया है। बाप पहली कड़ी थी, यह दूसरी कड़ी है उसीशृंखला में।

लेकिन तबशृंखला है और दो व्यक्ति नहीं हैं। तब अगर बेटा अपने बाप के पैर दबा रहा है तो सिर्फ बीती हुई कड़ी को--स्वभावतः बीती हुई कड़ी को वह सम्मान दे रहा है, बीती हुई कड़ी की सेवा कर रहा है, जो जा रहा है उसको वह आदर दे रहा है। क्योंकि उसके बिना वह आ भी नहीं सकता था; वह उससे आया है। और अगर बाप अपने बेटे को बड़ा कर रहा है, पाल रहा है, पोस रहा है, भोजन-कपड़े की चिंता कर रहा है, तो यह किसी दूसरे की चिंता नहीं है, वह अपने ही एक रूप को सम्हाल रहा है। और अपने जाने के पहले उसे... अगर इसे हम ऐसा कहें कि बाप अपने बेटे में फिर से जवान हो रहा है, तो कठिनाई नहीं है। तब संबंध की बात नहीं है, तब एक और बात है। तब एक प्रेम है जहां संबंध नहीं है।

लेकिन आमतौर से जो बाप और बेटे के बीच संबंध है, वह राजनीति का संबंध है। बाप ताकतवर है, बेटा कमजोर है; बाप बेटे को दबा रहा है; बाप बेटे को कह रहा है कि तू अभी कुछ भी नहीं, मैं सब कुछ हूं। तो उसे

पता नहीं कि आज नहीं कल बेटा ताकतवर हो जाएगा, बाप कमजोर हो जाएगा; और तब बेटा उसे दबाना शुरू करेगा कि मैं सब कुछ हूं और तू कुछ भी नहीं है।

यह जो गुरु और शिष्य के बीच जो संबंध है, पति और पत्नी के बीच जो संबंध है, ये सब परवरशंस हैं, विकृतियां हैं। नहीं तो पति और पत्नी के बीच संबंध की क्या बात है! दो व्यक्तियों ने ऐसा अनुभव किया है कि वे एक हैं, इसलिए वे साथ हैं। लेकिन नहीं, ऐसा मामला नहीं है। पति पत्नी को दबा रहा है--अपने ढंगों से; पत्नी पति को दबा रही है--अपने ढंगों से; और वे एक-दूसरे के ऊपर पूरी की पूरी ताकत और पावर पालिटिक्स का पूरा प्रयोग कर रहे हैं।

गुरु-शिष्य घूमकर फिर ऐसी की ऐसी बात है। गुरु शिष्य को दबा रहा है, और शिष्य गुरु के मरने की प्रतीक्षा कर रहे हैं कि वे कब गुरु बन जाएं। या अगर गुरु ज्यादा देर टिक जाए तो बगावत शुरू हो जाएगी। इसलिए ऐसा गुरु खोजना बहुत मुश्किल है जिसके शिष्य उससे बगावत न करते हों। ऐसा गुरु खोजना मुश्किल है जिसके शिष्य उसके दुश्मन न हो जाते हों। जो भी चीफ डिसाइपल है वह दुश्मन होनेवाला है। तो चीफ डिसाइपल जरा सोचकर बनाना चाहिए। कहीं भी, वह अनिवार्य है; क्योंकि वह जो शक्ति का दबाव है, उसकी बगावत, रिबेलियन भी होती है। अध्यात्म का इससे कोई लेना-देना नहीं।

तो मेरी समझ में आता है कि बाप बेटे को दबाए, क्योंकि दो अज्ञानियों की बात है, माफ की जा सकती है; अच्छी तो नहीं है, सही जा सकती है। पति पत्नी को दबाए, पत्नी पति को दबाए, चल सकता है; शुभ तो नहीं है, चलना तो नहीं चाहिए, लेकिन फिर भी छोड़ा जा सकता है। लेकिन गुरु भी शिष्य को दबा रहा है, तब फिर बड़ा मुश्किल हो जाता है। कम से कम यह तो जगह ऐसी है जहां कोई दावेदार नहीं होना चाहिए--कि मैं जानता हूं, और तुम नहीं जानते।

अब गुरु और शिष्य के बीच क्या संबंध है? दावेदार है एक, वह कहता है, मैं जानता हूं और तुम नहीं जानते; तुम अज्ञानी हो और मैं ज्ञानी हूं; इसलिए अज्ञानी को ज्ञानी के चरणों में झुकना चाहिए।

मगर हमें यह पता ही नहीं है कि यह कैसा ज्ञानी है जो किसी से कह रहा है कि चरणों में झुकना चाहिए! यह महाअज्ञानी हो गया। हां, इसे कुछ थोड़ी बातें पता चल गई हैं, शायद उसने कुछ किताबें पढ़ ली हैं, शायद परंपरा से कुछ सूत्र उसको उपलब्ध हो गए हैं, वह उनको दोहराना जान गया है। इससे ज्यादा कुछ और मामला नहीं है।

दावेदार गुरु अज्ञानी

शायद तुमने एक कहानी न सुनी हो। मैंने सुना है कि एक बिल्ली थी जो सर्वज्ञ हो गई थी। बिल्लियों में उसकी बड़ी ख्याति हो गई, क्योंकि वह तीर्थंकर की हैसियत पा गई थी। और उसके सर्वज्ञ होने का, आलनोइंग होने का कारण यह था कि वह एक पुस्तकालय में प्रवेश कर जाती थी, और उस पुस्तकालय के बाबत सभी कुछ जानती थी। सभी कुछ का मतलब--कहां से प्रवेश करना, कहां से निकलना, किस किताब की आड़ में बैठने से ज्यादा आराम होता है, और कौन सी किताब ठंड में भी गर्मी देती है। तो बिल्लियों में यह खबर हो गई थी कि अगर पुस्तकालय के संबंध में कुछ भी जानना हो, तो वह बिल्ली आलनोइंग है, वह सर्वज्ञ है।

और निश्चित ही, जो बिल्ली पुस्तकालय के बाबत सब जानती है--जो भी पुस्तकालय में है, सब जानती है--उसके ज्ञानी होने में क्या कमी थी! उस बिल्ली को शिष्य भी मिल गए थे। लेकिन उसको कुछ भी पता नहीं था; किताब का पता उसे इतना ही था कि उसकी आड़ में बैठकर छिपने की सुविधा है। उस किताब के बाबत

उसे इतना ही पता था कि उसकी जिल्द जो है वह ऊनी कपड़े की है, उसमें ठंड में भी गर्मी मिलती है। यही जानकारी थी उसकी किताब के बाबत, और उसे कुछ भी पता नहीं था कि भीतर क्या है। और भीतर का बिल्ली को पता हो भी कैसे सकता था!

आदमियों में भी ऐसी आलनोइंग बिल्लियां हैं, जिनको किताबों की आड़ में छिपने का पता है; जिन पर आप हमला करो तो फौरन रामायण बीच में कर लेंगे--और कहेंगेः रामायण में ऐसा लिखा है! और आपकी गर्दन को रामायण से दबा देंगे। गीता में ऐसा लिखा है! अब गीता से कौन झगड़ा करेगा? अगर मैं सीधा कहूं कि मैं ऐसा कहता हूं, तो मुझसे झगड़ा हो सकता है। लेकिन मैं कहता हूं, गीता ऐसा कहती है! मैं गीता को बीच में ले लेता हूं; गीता की आड़ में मुझे सुरक्षा है। गीता गर्मी भी देती है ठंड में, व्यवसाय भी देती है; दुश्मन से बचाव के लिए शस्त्र भी बन जाती है; आभूषण भी बन जाती है; और गीता के साथ खेल खेला जा सकता है।

लेकिन गीता में जो है, ऐसे आदमी को उतना ही पता है, जितना कि उस बिल्ली को जो पुस्तकालय में आराम करती थी; उससे भिन्न कुछ पता नहीं है। और यह तो हो सकता है कि उस पुस्तकालय में रहते-रहते बिल्ली किसी दिन जान जाए कि किताब में क्या है, लेकिन ये किताब जाननेवाले गुरु बिल्कुल भी नहीं जान पाएंगे। क्योंकि जितनी इनको किताब कंठस्थ हो जाएगी, उतना ही इनको जानने की कोई जरूरत न रह जाएगी; इनको भ्रम पैदा होगा कि हमने जान लिया है।

जब भी कोई आदमी दावा करे कि जान लिया है, तब समझना कि अज्ञान मुखर हो गया। दावेदार अज्ञान है। लेकिन जब कोई आदमी जानने के दावे से भी झिझक जाए, तब समझना कि कहीं कोई झलक और किरण मिलनी शुरू हुई। लेकिन ऐसा आदमी गुरु न बन सकेगा। ऐसा आदमी गुरु बनने की कल्पना भी नहीं कर सकता; क्योंकि गुरु के साथ अथॉरिटी है; गुरु के साथ दावा जरूरी है। गुरु का मतलब ही यह है कि मैं जानता हूं, पक्का जानता हूं; तुम्हें अब जानने की कोई जरूरत नहीं, मुझसे जान लो।

तो जहां अथॉरिटी है, जहां आप्तता है और जहां दावा है कि मैं जानता हूं, वहां दूसरे की अन्वेषण और खोज की वृत्ति की हत्या भी है; क्योंकि अथॉरिटी बिना हत्या किए नहीं रह सकती; दावेदार दूसरे की गर्दन काटे बिना नहीं रह सकता; क्योंकि यह भी डर है कि कहीं तुम पता न लगा लो, अन्यथा मेरे अधिकार का क्या होगा, मेरी अथॉरिटी का क्या होगा! तो मैं तुम्हें रोकूंगा। अनुयायी बनाऊंगा, शिष्य बनाऊंगा। शिष्यों में भी हायरेरकी बनाई जाएगी--कौन प्रधान है, कौन कम प्रधान है। और सब वही जाल खड़ा हो जाएगा जो राजनीति का जाल है, जिससे अध्यात्म का कोई भी संबंध नहीं है।

शक्तिपात प्रोत्साहन बने, गुलामी नहीं

तो जब मैं कहता हूं कि शक्तिपात जैसी घटना, परमात्मा के प्रकाश और उसकी विद्युत को, ऊर्जा को उपलब्ध करने की घटना किन्हीं व्यक्तियों के करीब सुगमता से घट सकती है, तो मैं यह नहीं कह रहा हूं कि तुम उन व्यक्तियों को पकड़कर रुक जाना, न यह कह रहा हूं कि तुम परतंत्र हो जाना, न यह कह रहा हूं कि तुम उन्हें गुरु बना लेना, न यह कह रहा हूं कि तुम अपनी खोज बंद कर देना। बल्कि सच तो यह है कि जब भी तुम्हें किसी व्यक्ति के करीब वह घटना घटेगी, तो तुम्हें तत्काल ऐसा लगेगा कि जब दूसरे व्यक्ति के माध्यम से आकर भी इस घटना ने इतना आनंद दिया तो जब सीधी अपने माध्यम से आती होगी तो बात ही और हो जाएगी। आखिर दूसरे से आकर थोड़ी तो जूठी हो ही जाती है, थोड़ी तो बासी हो ही जाती है। मैं बगीचे में गया और वहां के

फूलों की सुगंध से भर गया, और फिर तुम मेरे पास आए, और मेरे पास से तुम्हें फूलों की सुगंध आई; लेकिन मेरे पसीने की बदबू भी उसमें थोड़ी मिल ही जाएगी; और तब तक फीकी भी बहुत हो जाएगी।

तो जब मैं कह रहा हूं कि यह प्राथमिक रूप से बड़ी उपयोगी है कि तुम्हें खबर तो लग जाए कि बगीचा भी है, फूल भी हैं, तब तुम अपनी यात्रा पर जा सकोगे। अगर गुरु बनाओगे तो रुकोगे।

मील के पत्थरों के पास हम रुकते नहीं हैं। हालांकि मील के पत्थर, जिनको हम गुरु कहते हैं, उनसे बहुत ज्यादा बताते हैं, पक्की खबर देते हैंः कितने मील चल चुके और कितने मील मंजिल की यात्रा बाकी है। अभी कोई गुरु इतनी पक्की खबर नहीं देता। लेकिन फिर भी मील के पत्थर की न हम पूजा करते हैं, न उसके पास बैठ जाते हैं। और अगर मील के पत्थर के पास हम बैठ जाएंगे तो हम पत्थर से बदतर सिद्ध होंगे। क्योंकि वह पत्थर सिर्फ बताने को था कि आगे! वह रोकनेवाला नहीं है, न रोकनेवाले का कोई अर्थ है। लेकिन अगर पत्थर बोल सकता होता तो वह कहता, कहां जा रहे हो? मैंने तुम्हें इतना बताया और तुम मुझे छोड़कर जा रहे हो! बैठो, तुम मेरे शिष्य हो गए, क्योंकि मैंने ही तुम्हें बताया कि दस मील चल चुके और बीस मील अभी बाकी है। अब तुम्हें कहीं जाने की जरूरत नहीं है, मेरे पीछे रहो।

तो पत्थर बोल नहीं सकता, इसलिए गुरु नहीं बनता है; आदमी बोल सकता है, इसलिए गुरु बन जाता है; क्योंकि वह कहता हैः मेरे प्रति कृतज्ञ रहो, अनुगृहीत रहो, ग्रेटिट्यूड प्रकट करो, मैंने तुम्हें इतना बताया। और ध्यान रहे, जो ऐसा आग्रह करता हो, अनुग्रह मांगता हो, समझना कि उसके पास बताने को कुछ भी न था, कोई सूचना थी। जैसे मील के पत्थर के पास सूचना है। उसे कुछ पता थोड़े ही है कि कितनी मंजिल है और कितनी नहीं है; उसे कुछ पता नहीं है, सिर्फ एक सूचना उसके ऊपर खुदी है। वह उस सूचना को दोहराए चला जा रहा है--कोई भी निकलता है, उसी को दोहराए चला जा रहा है।

ऐसे ही, अनुग्रह जब तुमसे मांगा जाए तो सावधान हो जाना। और व्यक्तियों के पास नहीं रुकना है, जाना तो है अव्यक्ति के पास; जाना तो है उसके पास जहां कोई आकार और सीमा नहीं। लेकिन व्यक्तियों से भी उसकी झलक मिल सकती है, क्योंकि अंततः व्यक्ति हैं तो उसी के। जैसा मैंने कल कहा कि कुएं से भी सागर का पता चलता है, ऐसे ही किसी व्यक्ति से भी उस अनंत का पता चलता है; अगर तुम झांक सको, तो तुम्हें पता चल सकता है। लेकिन कहीं निर्भर नहीं होना है, और किसी चीज को परतंत्रता नहीं बना लेना है। लेकिन सभी तरह के संबंध परतंत्रता बनते हैं--चाहे वह पति-पत्नी का हो, चाहे बाप-बेटे का हो, चाहे गुरु-शिष्य का हो; जहां संबंध है वहां परतंत्रता शुरू हो जाएगी।

तो आध्यात्मिक खोजी को संबंध ही नहीं बनाने हैं। और पति-पत्नी के बनाए रखे तो कोई बहुत हर्जा नहीं है, क्योंकि उनसे कोई बाधा नहीं है, वे इररेलेवेंट हैं। लेकिन मजा यह है कि वह पति-पत्नी के, बाप-बेटे के संबंध तोड़कर एक नया संबंध बनाता है जो बहुत खतरनाक है; वह गुरु-शिष्य का संबंध बनाता है। आध्यात्मिक संबंध का कोई मतलब ही नहीं होता। सब संबंध सांसारिक हैं। संबंध मात्र सांसारिक हैं। अगर हम ऐसा कहें कि संबंध ही संसार है, तो कोई कठिनाई नहीं होगी। असंग, अकेले हो तुम!

लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि अहंकार। क्योंकि तुम्हीं अकेले हो, ऐसा नहीं है, और भी अकेले हैं। और तुमसे कोई दो कदम आगे है। उसकी अगर तुम्हें पैरों की ध्वनि भी मिल जाती है कि कोई दो कदम आगे है, तो दो कदम आगे के रास्ते की भी खबर मिल जाती है। कोई तुमसे दो कदम पीछे है, कोई तुम्हारे साथ है, कोई दूर है--ये सब चारों तरफ हजार-हजार, अनंत-अनंत आत्माएं यात्रा कर रही हैं। इस यात्रा में सब संगी-साथी हैं,

फासला आगे-पीछे का है। इससे जितना फायदा ले सको वह लेना, लेकिन इसको गुलामी मत बनाना। यह गुलामी संबंध बनाने से शुरू हो जाती है।

इसलिए परतंत्रता से बचना, संबंध से बचना; आध्यात्मिक संबंध से सदा बचना। सांसारिक संबंध उतना खतरनाक नहीं है, क्योंकि संसार का मतलब ही संबंध है; वहां कोई इतनी अड़चन की बात नहीं है। और जहां से तुम्हें खबर मिले, वहां से खबर ले लेना। और यह नहीं कह रहा हूं मैं कि तुम धन्यवाद मत देना। यह नहीं कह रहा हूं। इसलिए कठिनाई होती है; इसलिए जटिलता हो जाती है। कोई अनुग्रह मांगे, यह गलत है, लेकिन तुम धन्यवाद न दो तो उतना ही गलत है। मील के पत्थर को भी धन्यवाद तो दे ही देना जाते वक्त--कि तेरी बड़ी कृपा! वह सुने या न सुने।

तो इससे बड़ी भ्रांति होती है। जब हम कहते हैं कि गुरु अनुग्रह न मांगे, तो आमतौर से आदमी के अहंकार को एक रस मिलता है; वह सोचता हैः बिल्कुल ठीक है, किसी को धन्यवाद भी देने की जरूरत नहीं। तब भूल हो रही है; यह बिल्कुल दूसरे पहलू से बात को पकड़ा जा रहा है। यह मैं नहीं कह रहा हूं कि तुम धन्यवाद मत दे देना। मैं यह कह रहा हूं कि कोई अनुग्रह मांगे, यह गलत है। लेकिन तुम अनुगृहीत न होओ तो उतना ही गलत हो जाएगा। तुम तो अनुगृहीत होना ही। लेकिन वह अनुग्रह बांधेगा नहीं; क्योंकि जो मांगा नहीं जाता, वह कभी नहीं बांधता है; जो दान है, वह कभी नहीं बांधता है। अगर मैंने तुम्हें धन्यवाद दिया है, तो वह कभी नहीं बांधता; और अगर तुमने मांगा है, फिर मैं दूं या न दूं, उपद्रव शुरू हो जाता है।

और जहां से तुम्हें झलक मिले उसकी, वहां से झलक को ले लेना। और वह झलक चूंकि दूसरे से आई है, इसलिए बहुत स्थायी नहीं होगी; वह खोएगी बार-बार। स्थायी तो वही होगी जो तुम्हारी है। इसलिए उसे तुम्हें बार-बार, बार-बार लेना पड़ेगा। और अगर डरते हो परतंत्रता से तो अपनी खोजना।

परतंत्रता से डरने से कुछ भी न होगा, दूसरे पर निर्भर होने का भय भी लेने की जरूरत नहीं है। क्योंकि इससे कोई फर्क नहीं पड़ताः मैं तुम पर परतंत्र हो जाऊं तो भी संबंधित हो गया, और तुमसे डरकर भाग जाऊं तो भी संबंधित हो गया और परतंत्र हो गया। इसलिए चुपचाप लेना, धन्यवाद देना, बढ़ जाना।

और अगर लगे कि कुछ है जो आता है और खो जाता है, तो फिर अपना स्रोत खोजना, जहां से वह कभी न खोए, जहां से खोने का कोई उपाय न रह जाए। अपनी संपदा ही अनंत हो सकती है। दूसरे से मिला हुआ दान चुक ही जाता है। भिखारी मत बन जाना कि दूसरे से ही मांगते चले जाओ। वह दूसरे से मिला हुआ भी तुम्हें अपनी ही खोज पर ले जाए। और यह तभी होगा जब तुम दूसरे से कोई संबंध नहीं बनाते हो, धन्यवाद देकर आगे बढ़ जाते हो।

शक्ति है निष्पक्ष

प्रश्नः आपने कहा कि परमात्मा एक शक्ति है और उसको मनुष्य के जीवन में कोई दिलचस्पी नहीं है, कोई सरोकार नहीं है। कठोपनिषद में एक श्लोक है जिसका मतलब है कि वह परमात्मा जिसको पसंद करता है उसको ही मिलता है। तो उसकी पसंदगी का कारण व आधार क्या है?

असल में, मैंने यह नहीं कहा कि उसकी आपमें कोई रुचि नहीं है। यह मैंने नहीं कहा। मैंने यह नहीं कहा कि परमात्मा की आपमें कोई रुचि नहीं है। उसकी रुचि न हो तो आप हो ही नहीं सकते हैं। यह मैंने नहीं कहा।

यह मैंने नहीं कहा। और यह भी मैंने नहीं कहा कि वह आपके प्रति तटस्थ है; यह भी मैंने नहीं कहा। और हो भी नहीं सकता तटस्थ; क्योंकि आप उससे कुछ अलग नहीं हो; आप उसके ही फैले हुए विस्तार हो।

जो कहा, वह मैंने यह कहा कि आपमें उसकी कोई विशेष रुचि नहीं है। यह दोनों बातों में फर्क है। आपमें उसकी कोई विशेष रुचि नहीं है। आपके लिए वह नियम से बाहर नहीं जाएगी शक्ति। और अगर आप अपने सिर पर पत्थर मारेंगे, तो लहू बहेगा, और प्रकृति आपमें विशेष रुचि न लेगी। रुचि तो पूरी ले रही है, क्योंकि खून जब बह रहा है, वह भी रुचि है; वह भी उसके ही द्वारा बह रहा है। आपने जो किया है, उसमें पूरी रुचि ली गई है। आप अगर नदी में बहकर डूब रहे हैं, तब भी प्रकृति पूरी रुचि ले रही है--डुबाने में ले रही है। लेकिन विशेष रुचि नहीं है। कोई स्पेशल, कोई अतिरिक्त, आपमें कोई रुचि नहीं है कि नियम तो था डुबाने का और बचाया जाए; नियम तो था कि आप जब छत पर से गिरें तो सिर टूट जाए, लेकिन छत पर से गिरें और सिर न टूटे, ऐसी विशेष रुचि नहीं है।

जिन्होंने ईश्वर को व्यक्ति माना, उन्होंने इस तरह की विशेष रुचियों का फिक्शन खड़ा किया है कि प्रह्लाद को वह जलाएगा नहीं आग में; पहाड़ से गिराओ तो चोट नहीं लगेगी। ये जो कहानियां हैं, ये हमारी आकांक्षाएं हैं--ऐसा हम चाहते हैं कि ऐसा हो; इतनी विशेष रुचि हममें हो; हम उसके केंद्र बन जाएं।

यह मैं नहीं कह रहा हूं कि रुचि नहीं है, मैं यह कह रहा हूं कि उसकी रुचि नियम में है। शक्ति की रुचि सदा नियम में होती है। व्यक्ति की रुचि विशेष बन सकती है। व्यक्ति पक्षपाती हो सकता है। शक्ति सदा निष्पक्ष है। निष्पक्षता ही उसकी रुचि है। इसलिए जो नियम में होगा, वह होगा; जो नियम में नहीं होगा, वह नहीं होगा। परमात्मा की तरफ से मिरेकल नहीं हो सकते, चमत्कार नहीं हो सकते।

जाननेवालों की विनम्रता

और वह जो दूसरा सूत्र आप कह रहे हैं, कठोपनिषद का, उसके मतलब बहुत और हैं। उसमें कहा गया हैः उसकी जिसके प्रति पसंद होती, वह जिस पर प्रसन्न होता, वह जिस पर आनंदित होता, उसे ही मिलता है। स्वभावतः, आप कहेंगे, यह तो वही बात हो गई कि उसकी विशेष रुचि जिसमें होती है।

नहीं, यह बात नहीं है। असल में, आदमी की बड़ी तकलीफ है। और जब हमें किसी सत्य को कहना होता है तो उसके बहुत पहलू हैं। असल में, जिनको वह मिला है, उनका यह कहना है। जिनको वह मिला है, उनका यह कहना है कि हमारे प्रयास से क्या हो सकता था! हम क्या थे! हम तो ना-कुछ थे, हम तो धूल के कण भी न थे, फिर भी हमें वह मिल गया! और अगर हमने दो घड़ी ध्यान किया था, तो उसका भी क्या मूल्य था कि हम दो घड़ी चुप बैठ गए थे! जो मिला है, वह अमूल्य है। तो जो हमने किया था और जो मिला है, इसमें कोई तालमेल ही नहीं है। तो जिनको मिला है, वे कहते हैं कि नहीं, यह अपने प्रयास का फल नहीं है, यह उसकी कृपा है। उसने पसंद किया तो मिल गया, अन्यथा हम क्या खोज पाते! यह निरहंकार व्यक्ति का कहना है, जिसको पाकर पता चला है कि अपने से क्या हो सकता था!

लेकिन, यह जिनको नहीं मिला है, अगर उनकी धारणा बन जाए तो बहुत खतरनाक है। जिनको मिला है, उनकी तरफ से तो यह कहना बड़ा सुरुचिपूर्ण है, और बहुत, इसमें बड़ा ही सुसंस्कृत भाव है। यानी वे यह कह रहे हैं कि हम कौन थे कि वह हमें मिलता! हमारी क्या ताकत थी, हमारी क्या सामर्थ्य थी, हमारा क्या अधिकार था, हम कहां दावेदार थे! हम तो कुछ भी न थे, फिर भी वह हमें मिल गया; उसकी ही कृपा है, हमारा कोई प्रयास नहीं है। यह उनका कहना तो उचित है। उनके कहने का मतलब सिर्फ यह है कि यह किसी प्रयास भर से नहीं मिल गया; यह कोई हमारी अहंकार की उपलब्धि नहीं है; यह कोई अचीवमेंट नहीं है; यह प्रसाद है।

यह उनका कहना तो बिल्कुल ठीक है, लेकिन कठोपनिषद पढ़कर आप दिक्कत में पड़ जाओगे। सभी शास्त्रों को पढ़कर आदमी दिक्कत में पड़ा है। क्योंकि वह कहना है जाननेवालों का और पढ़ रहे हैं न जाननेवाले--और वे उसको अपना कहना बना रहे हैं। तो न जाननेवाला कहता है कि ठीक है, फिर हमें क्या करना है! जब वह उसकी पसंद से ही मिलता है, तो हम परेशान क्यों हों! जिस पर उसकी इच्छा होती है, उसी को मिलता है, तो जब उसकी इच्छा होगी तब मिल जाएगा। तो हम क्यों परेशान हों? हम क्यों कुछ करें?

तो जो निरहंकार का दावा था, वह हमारे लिए आलस्य की रक्षा बन जाता है। यह इतना बड़ा परिवर्तन है इन दोनों में कि जमीन-आसमान का फर्क है। जो शून्यता का भाव था, वह हमारे लिए प्रमाद बन जाता है। हम कहते हैं, वह तो जिसको मिलना है उसको मिलेगा; जिसको नहीं मिलना है, नहीं मिलेगा।

ज्ञानियों के शास्त्र, अज्ञानियों के हाथ

अब अगस्तीन का एक वचन है इससे मिलता-जुलता, जिसमें वह कहता है कि जिसको उसने चाहा, अच्छा बनाना; जिसको उसने चाहा, बुरा बनाया।

बड़ा खतरनाक मालूम होता है! क्योंकि अगर यह उसकी चाह से हो गया कि जिसको उसने अच्छा बनाया था, अच्छा बनाया; और जिसको बुरा बनाना था, उसको बुरा बनाया; तो बात खत्म हो गई। और हद्द पागल परमात्मा है कि किसी को बुरा बनाना चाहता है और किसी को अच्छा बनाना चाहता है! न जाननेवाला जब इसको पढ़ेगा, तो इसके अर्थ बड़े खतरनाक हैं।

लेकिन अगस्तीन जो कह रहा है, वह कुछ और ही बात कह रहा है। वह अच्छे आदमी से कह रहा है कि तू अहंकार मत कर कि तू अच्छा है; क्योंकि जिसको उसने चाहा, अच्छा बनाया। वह बुरे आदमी से कह रहा हैः परेशान मत हो, चिंता से मत घिर; उसने जिसको बुरा बनाया, बुरा बनाया। वह बुरे आदमी का भी दंश खींच रहा है, वह अच्छे आदमी का भी दंश खींच रहा है। लेकिन वह जाननेवाले की तरफ से है।

लेकिन बुरा आदमी सुन रहा है, वह कह रहा हैः तो फिर ठीक है, तो फिर मैं बुराई करूं। क्योंकि अपना तो कोई सवाल ही नहीं है; जिससे उसने बुरा करवाया, वह बुरा कर रहा है। और अच्छे आदमी की भी यात्रा शिथिल पड़ गई, क्योंकि वह कह रहा है कि अब क्या होना है! वह जिसको अच्छा बनाता है, बना देता है; जिसको नहीं बनाता, नहीं बनाता। तब जिंदगी बड़ी बेमानी हो जाती है।

सारी दुनिया में शास्त्रों से ऐसा हुआ। क्योंकि शास्त्र हैं उनके कहे हुए वचन जो जानते हैं। और निश्चित ही, जो जानता है वह शास्त्र-वास्त्र पढ़ने काहे के लिए जाएगा! जो नहीं जानता वह शास्त्र पढ़ने चला जाता है। फिर दोनों के बीच उतना ही फर्क है जितना जमीन और आसमान के बीच फर्क है; और जो व्याख्या हम करते हैं वह हमारी है।

वह (शास्त्र) हमारी व्याख्या नहीं है। इसलिए मेरे इधर ख्याल में आता है कि दो तरह के शास्त्र रचे जाने चाहिए-- ज्ञानियों के कहे हुए अलग, अज्ञानियों के पढ़ने के लिए अलग। ज्ञानियों के कहे हुए बिल्कुल छिपा देने चाहिए; अज्ञानियों के हाथ में नहीं पड़ने चाहिए। क्योंकि अज्ञानी उनसे अर्थ तो अपना ही निकालेगा। और तब सब विकृत हो जाता है; सब विकृत हो गया है। मेरी बात ख्याल में आती है?

आध्यात्मिक अनुभवों के नकली प्रतिरूप

प्रश्नः आपने कहा है कि शक्तिपात अहंशून्य व्यक्ति के माध्यम से होता है; और जो कहता है कि मैं तुम पर शक्तिपात करूंगा, तो जानना कि वह शक्तिपात नहीं कर सकता। लेकिन इस प्रकार शक्तिपात देनेवाले बहुत से व्यक्तियों से मैं परिचित हूं। उनके शक्तिपात से लोगों को ठीक शास्त्रोक्त ढंग से कुंडलिनी की प्रक्रियाएं होती हैं। क्या वे प्रामाणिक नहीं हैं? क्या वे झूठी, स्यूडो प्रक्रियाएं हैं? ... क्यों और कैसे?

हां, यह भी समझने की बात है। असल में, दुनिया में ऐसी कोई भी चीज नहीं है जिसका नकली सिक्का न हो सके; दुनिया में ऐसी कोई भी चीज नहीं है जिसका फाल्स कॉइन न बनाया जा सके। सभी चीजों के नकली हिस्से भी हैं और नकली पहलू भी हैं। और अक्सर ऐसा होता है कि नकली सिक्का ज्यादा चमकदार होता है--उसे होना पड़ता है; क्योंकि चमक से ही वह चलेगा; असलीपन से तो चलता नहीं। असली सिक्का बेचमक का हो, तो भी चलता है। नकली सिक्का दावेदार भी होता है; क्योंकि असलीपन की जो कमी है, वह दावे से पूरी करनी पड़ती है। और नकली सिक्का एकदम आसान होता है, क्योंकि उसका कोई मूल्य तो होता नहीं।

तो जितनी आध्यात्मिक उपलब्धियां हैं, सबका काउंटर पार्ट भी है। ऐसी कोई आध्यात्मिक उपलब्धि नहीं है, जिसका फाल्स, झूठा काउंटर पार्ट नहीं है। अगर असली कुंडलिनी है, तो नकली कुंडलिनी भी है। नकली कुंडलिनी का क्या मतलब है? और अगर असली चक्र हैं, तो नकली चक्र भी हैं। और अगर असली योग की प्रक्रियाएं हैं, तो नकली प्रक्रियाएं भी हैं। फर्क एक ही है, और वह फर्क यह है कि सब असली आध्यात्मिक तल में घटित होता है, और सब नकली साइकिक, मनस के तल में घटित होता है।

अब जैसे, उदाहरण के लिए, एक व्यक्ति को चित्त की गहराइयों में प्रवेश मिले, तो उसे बहुत से अनुभव होने शुरू होंगे। जैसे उसे सुगंध आ सकती हैं, बहुत अनूठी, जो उसने कभी नहीं जानीं; संगीत सुनाई पड़ सकता है, बहुत अलौकिक, जो उसने कभी नहीं सुना; रंग दिखाई पड़ सकते हैं, ऐसे, जैसे कि पृथ्वी पर होते ही नहीं।

लेकिन ये सब की सब बातें हिप्नोसिस से तत्काल पैदा की जा सकती हैं बिना कठिनाई के--रंग पैदा किए जा सकते हैं, ध्वनियां पैदा की जा सकती हैं, स्वाद पैदा किया जा सकता है, सुगंध पैदा की जा सकती है। और इसके लिए किसी साधना से गुजरने की जरूरत नहीं है, इसके लिए सिर्फ बेहोश होने की जरूरत है। और तब जो भी सजेस्ट किया जाए बाहर से, वह भीतर घटित हो जाएगा।

अब यह फाल्स कॉइन है। ध्यान में जो-जो घटित होता है, वह सब का सब हिप्नोसिस से भी घटित हो सकता है। लेकिन वह आध्यात्मिक नहीं है; वह सिर्फ डाला गया है, और ड्रीम है, स्वप्न जैसा है। अब जैसे, तुम एक स्त्री को प्रेम कर सकते हो जागते हुए भी, स्वप्न में भी कर सकते हो। और आवश्यक नहीं है कि स्वप्न की जो स्त्री है, वह जागनेवाली स्त्री से कम सुंदर हो। अक्सर ज्यादा होगी। और समझ लो कि एक आदमी अगर सोए और फिर उठे न, सपना ही देखता रहे, तो उसे कभी भी पता नहीं चलेगा कि जो वह देख रहा है वह असली स्त्री है, कि जो वह देख रहा है वह सपना है। कैसे पता चलेगा? वह तो नींद टूटे तभी वह जांच कर सकता है कि अरे, जो मैं देख रहा था वह सपना था!

तो इस तरह की प्रक्रियाएं हैं जिनसे तुम्हारे भीतर सभी तरह के सपने पैदा किए जा सकते हैं--कुंडलिनी का सपना पैदा किया जा सकता है, चक्रों के सपने पैदा किए जा सकते हैं, अनुभूतियों के सपने पैदा किए जा सकते हैं। और अगर तुम उन सपनों में लीन रहो--और वे इतने सुखद हैं कि तोड़ने का मन न होगा; और ऐसे सपने हैं जिनको कि सपना कहना मुश्किल है, क्योंकि वे जागते में चलते हैं, दिवा-स्वप्न हैं, डे-ड्रीम्स हैं; और

उनको साधा जा सकता है--तो तुम उनको जिंदगी भर साधकर गुजार सकते हो। और तुम आखिर में पाओगेः तुम कहीं भी नहीं पहुंचे हो; तुम सिर्फ एक लंबा सपना देखे हो।

इन सपनों को पैदा करने की भी तरकीबें हैं, व्यवस्थाएं हैं। और दूसरा व्यक्ति तुममें इनको पैदा कर सकता है। और तुम्हें तय करना मुश्किल हो जाएगा कि इन दोनों में फर्क क्या है; क्योंकि दूसरे का तुम्हें पता नहीं है। अगर एक आदमी को कभी असली सिक्का न मिला हो और नकली सिक्का ही हाथ में मिला हो, तो वह कैसे तय करेगा कि यह नकली है? नकली के लिए असली भी मिल जाना जरूरी है। तो जिस दिन व्यक्ति को कुंडलिनी का आविर्भाव होगा, उस दिन वह फर्क कर पाएगा कि इन दोनों में तो जमीन-आसमान का फर्क है! यह तो बात ही और है!

अनुभवों की जांच का रहस्य-सूत्र

और ध्यान रहे, शास्त्रोक्त कुंडलिनी जो है, वह फाल्स होगी। उसके कारण हैं। अब यह तुम्हें मैं एक सीक्रेट की बात कहता हूं। उसके कारण हैं और बड़ा राज है। असल में, जो भी बुद्धिमान लोग इस पृथ्वी पर हुए हैं, उन सबने प्रत्येक शास्त्र में कुछ बुनियादी भूल छोड़ दी है, जो कि पहचान के लिए है। कुछ बुनियादी भूल छोड़ दी है। जैसे मैंने तुमसे कहा कि इस मकान में--मैंने तुम्हें खबर दी इस मकान के बाहर--कि इस मकान में पांच कमरे हैं। छह कमरे हैं, यह मैं जानता हूं; मैंने तुमसे कहा, पांच कमरे हैं। एक दिन तुम आए और तुमने कहा कि वह मैं मकान देख आया, आपने बिल्कुल ठीक कहा था, बिल्कुल पांच ही कमरे हैं। तो मैं जानता हूं कि तुम किसी झूठे मकान में हो आए, तुमने कोई सपना देखा, क्योंकि कमरे तो वहां छह हैं।

वह एक कमरा बचाया गया है हमेशा के लिए। वह तुम्हें खबर देता है कि तुम्हें हुआ कि नहीं हुआ। अगर बिल्कुल शास्त्रोक्त हो, तो समझना कि नहीं हुआ, फाल्स कॉइन है; क्योंकि शास्त्र में एक कमरा सदा बचाया गया है। उसे बचाना बहुत जरूरी है। उसे बचाना बहुत जरूरी है। तो अगर तुमको बिल्कुल किताब में लिखे ढंग से सब हो रहा हो, तो समझना कि किताब प्रोजेक्ट हो रही है। लेकिन जिस दिन तुमको किताब में लिखे हुए ढंग से नहीं, किसी और ढंग से कुछ हो, जिसमें कि कहीं किताब से मेल भी खाता हो और कहीं नहीं भी मेल खाता हो उस दिन तुम जानना कि तुम किसी असली ट्रैक पर चल रहे हो, जहां चीजें अब तुम्हें साफ हो रही हैं; जहां तुम शास्त्र को ही सिर्फ कल्पना में पिरोए-पिरोए नहीं चले जा रहे हो।

तो जब कुंडलिनी तुम्हें ठीक से जगेगी, तब तुम जांच पाओगे कि अरे, शास्त्र में कहां-कहां, कुछ-कुछ तरकीब है। लेकिन वह तुम्हें उसके पहले पता नहीं चल सकती। और प्रत्येक शास्त्र को अनिवार्य रूप से कुछ चीजें छोड़ देनी पड़ी हैं, नहीं तो कभी भी तय करना मुश्किल हो जाए।

मेरे एक शिक्षक थे; यूनिवर्सिटी के प्रोफेसर थे। कभी भी मैं किसी किताब का नाम लूं तो वे कहें, हां, मैंने पढ़ी है। एक दिन मैंने झूठी ही किताब का नाम लिया, जो है ही नहीं; न वह लेखक है, न वह किताब है। मैंने उनसे कहा, आपने फलां लेखक की किताब पढ़ी है? बड़ी अदभुत किताब है! उन्होंने कहा, हां, मैंने पढ़ी है। तो मैंने उनसे कहा कि अब जो पहले पढ़े हुए दावे थे, वे भी गड़बड़ हो गए; क्योंकि न यह कोई लेखक है और न यह कोई किताब है। मैंने कहा, अब इस किताब को आप मुझे मौजूद करवाकर बता दें, तो बाकी दावों के संबंध में बात होगी, बाकी अब खत्म हो गई बात। वे कहने लगे, क्या मतलब, यह किताब नहीं है? तो मैंने कहा, आपकी जांच के लिए अब इसके सिवाय कोई और रास्ता नहीं था।

जो जानते हैं, वे तुम्हें फौरन पकड़ लेंगे। अगर तुम्हें बिल्कुल शास्त्रोक्त हो रहा है, तुम फंस जाओगे। क्योंकि वहां कुछ गैप छोड़ा गया है; कुछ गलत जोड़ा गया है, कुछ सही छोड़ दिया गया है। जो कि अनिवार्य था; नहीं तो पहचान बहुत मुश्किल है कि किसको क्या हो रहा है।

पर यह जो शास्त्रोक्त है, यह पैदा किया जा सकता है। सभी चीजें पैदा की जा सकती हैं। आदमी के मन की क्षमता कम नहीं है। और इसके पहले कि वह आत्मा में प्रवेश करे, मन बहुत तरह के धोखे दे सकता है। और धोखा अगर वह खुद देना चाहे, तब तो बहुत ही आसान है।

तो मैं यह कहता हूं कि व्यवस्था से, दावे से, शास्त्र से, नियम से, उतना नहीं है सवाल। और सवाल बहुत दूसरा है। फिर इसके पहचान के और भी रास्ते हैं। इसके पहचान के और भी रास्ते हैं कि तुम्हें जो हो रहा है, वह असली है या झूठ।

प्रामाणिक अनुभवों से आमूल रूपांतरण

एक आदमी दिन में पानी पीता है तो उसकी प्यास बुझती है; सपने में भी पानी पीता है, लेकिन प्यास नहीं बुझती और सुबह जागकर वह पाता है कि ओंठ सूख रहे हैं और गला तड़प रहा है। क्योंकि सपने का पानी प्यास नहीं बुझा सकता, असली पानी प्यास बुझा सकता है। तो तुमने पानी जो पीया था, वह असली था या नकली, यह तुम्हारी प्यास बताएगी कि प्यास बुझी कि नहीं बुझी।

तो जिन कुंडलिनी जागरण करनेवालों की--या जिनकी जाग्रत हो गई--तुम बात कर रहे हो, वे अभी भी तलाश कर रहे हैं, अभी भी खोज रहे हैं। वे यह भी कह रहे हैं कि हमें यह हो गया, और वह खोज भी उनकी जारी है। वे कहते हैं, हमें पानी भी मिल गया। और अभी भी कह रहे हैं, सरोवर का पता क्या है?

परसों ही एक मित्र आए थे। और वे कहते हैं, मुझे निर्विचार स्थिति उपलब्ध हो गई; और मुझसे पूछने आए हैं कि ध्यान कैसे करें! तो अब क्या किया जाए? अब मैं कैसे कहूं उनसे कि यह क्या... तुम्हारे साथ क्या... किया क्या जाए! तुम कह रहे हो, निर्विचार स्थिति उपलब्ध हो गई है; विचार शांत हो गए हैं; और ध्यान का रास्ता बता दें। क्या मतलब होता है इसका?

एक आदमी कह रहा है, कुंडलिनी जग गई है; और कहता है, मन शांत नहीं होता! एक आदमी कहता है, कुंडलिनी तो जग गई, लेकिन यह सेक्स से कैसे छुटकारा मिले!

तो अवांतर उपाय भी हैं--कि जो हुआ है, वह सच में हुआ है?

अगर सच में हुआ है तो खोज खत्म हो गई। अगर भगवान भी उससे आकर कहे कि थोड़ी शांति हम देने आए हैं, तो वह कहेगाः अपने पास रखो, हमें कोई जरूरत नहीं है। अगर भगवान भी आए और कहे कि हम कुछ आनंद तुम्हें देना चाहते हैं, बड़े प्रसन्न हैं, तो वह कहेगाः आप उसको बचा लो, और थोड़े ज्यादा प्रसन्न हो जाओ; और हमसे कुछ लेना हो तो ले जाओ। तो उसको जांचने के लिए तुम उस व्यक्तित्व में भी देखना कि और क्या हुआ है?

झूठी समाधि का धोखा

अब एक आदमी कहता है कि उसे समाधि लग जाती है; वह छह दिन मिट्टी के नीचे पड़ा रह जाता है। और वह बिल्कुल ठीक पड़ा रह जाता है, गड्ढे से वह जिंदा निकल आता है। लेकिन घर में अगर रुपये छोड़ दो तो वह चोरी कर सकता है; मौका मिल जाए तो शराब पी सकता है। और उस आदमी का अगर तुम्हें पता न हो कि

इसको समाधि लग गई है, तो तुम उसमें कुछ भी न पाओगे; उसमें कुछ भी नहीं है--कोई सुगंध नहीं है, कोई व्यक्तित्व नहीं है, कोई चमक नहीं है--कुछ भी नहीं है; एक साधारण आदमी है।

नहीं, तो उसको समाधि नहीं लग गई है, वह समाधि की ट्रिक सीख गया है; वह छह दिन जमीन के अंदर जो रह रहा है, वह समाधि नहीं है। वह समाधि नहीं है, वह छह दिन जमीन के नीचे रहने की अपनी ट्रिक है, अपनी व्यवस्था है। वह उतना सीख गया है। वह प्राणायाम सीख गया है, वह श्वास को शिथिल करना सीख गया है; वह छह दिन, जितनी छोटी सी जमीन का घेरा उसने अंदर बनाया है, जिस आयतन का, वह जानता है कि उतनी आक्सीजन से वह छह दिन काम चला लेता है। वह इतनी धीमी श्वास लेता है कि जो मिनिमम, जिससे ज्यादा लेने में ज्यादा आक्सीजन खर्च होगी, उतनी श्वास लेकर वह छह दिन गुजार देता है। वह करीब-करीब उस हालत में होता है, जिस हालत में साइबेरिया का भालू छह महीने के लिए बर्फ में दबा पड़ा रह जाता है। उसको कोई समाधि नहीं लग गई है। बरसात के बाद मेंढक जमीन में पड़ा रह जाता है। आठ महीने पड़ा रहता है। उसे कोई समाधि नहीं लग गई है। वही इसने सीख लिया है; और कुछ भी नहीं हो गया।

लेकिन जिसको समाधि उपलब्ध हो गई है, उसको अगर तुम छह दिन के लिए बंद कर दो, तो वह हो सकता है मर जाए और यह निकल आए। क्योंकि समाधि से छह दिन जमीन के नीचे रहने का कोई संबंध नहीं है। महावीर स्वामी या बुद्ध कहीं मिल जाएं, और उनको जमीन के भीतर छह दिन रख दो, बचकर लौटने की आशा नहीं है। यह बचकर लौट आएगा। क्योंकि इससे कोई संबंध ही नहीं है। उससे कोई वास्ता ही नहीं है; वह बात ही और है। लेकिन यह जंचेगा। और अगर महावीर न निकल पाएं और यह निकल पाए, तो तीर्थंकर यह असली मालूम पड़ेगा, वे नकली सिद्ध हो जाएंगे।

तो ये सारे के सारे जो साइकिक फाल्स कॉइन्स पैदा किए गए हैं, जो मनस ने झूठे-झूठे सिक्के पैदा किए हैं, उन्होंने अपने झूठे दावे भी पैदा किए हैं; उन दावों को सिद्ध करने की पूरी व्यवस्था भी पैदा की है। और उन्होंने एक अलग ही दुनिया खड़ी कर रखी है। जिसका कोई लेना-देना नहीं है, जिससे कोई संबंध नहीं है। और असली चीजें उन्होंने छोड़ दी हैं; जो असली रूपांतरण थे, उनके छह दिन जमीन के नीचे रहने या छह महीने रहने से कोई संबंध नहीं है। लेकिन इस व्यक्ति का चरित्र क्या है? इस व्यक्ति के मनस की शांति कितनी है? इसके आनंद का क्या हुआ? इसका एक पैसा खो जाता है तो यह रात भर सो नहीं पाता, और छह दिन जमीन के भीतर रह जाता है! यह सोचना पड़ेगा कि इसके असली संबंध क्या हैं?

झूठे शक्तिपात के लिए सम्मोहन का उपयोग

तो जो भी दावेदार हैं कि हम शक्तिपात करते हैं, वे कर सकते हैं, लेकिन वह शक्तिपात नहीं है, वह बहुत गहरे में किसी तरह का सम्मोहन है, हिप्नोसिस है; बहुत गहरे में कुछ मैग्नेटिक फोर्सेस का उपयोग है, जिनको वे सीख गए हैं। और जरूरी नहीं है कि वे भी जानते हों। उसके पूरे विज्ञान को जानते हों, यह भी जरूरी नहीं है। और यह भी जरूरी नहीं है कि वह दावा जो है जानकर कर रहे हों कि झूठा है। इतने जाल हैं!

अब एक मदारी को तुम सड़क पर देखते हो कि वह एक लड़के को लिटाए हुए है, चादर बिछा दी है, उसकी छाती पर एक ताबीज रख दी है। अब उस लड़के से वह पूछ रहा है कि फलां आदमी के नोट का नंबर क्या है? वह नोट का नंबर बता रहा है। फलां आदमी की घड़ी में कितना बजा है? वह घड़ी बता रहा है। पूछ रहा है कान में, इस आदमी का नाम क्या है? वह लड़का नाम बता रहा है। और वह सब देखनेवालों को सिद्ध हुआ जा रहा है कि ताबीज में कुछ खूबी है। वह ताबीज उठा लेता है और पूछता है, इस आदमी की घड़ी में क्या

है? वह लड़का पड़ा रह जाता है, वह जवाब नहीं दे पाता। ताबीज वह बेच लेता है--छह आने, आठ आने में वह ताबीज बेच लेता है। तुम ताबीज घर पर ले जाकर छाती पर रखकर जिंदगी भर बैठे रहो, उससे कुछ नहीं होगा। अच्छा ऐसा नहीं है... नहीं, ऐसा नहीं है कि वह लड़के को सिखाया हुआ है उसने; ऐसा नहीं है कि वह कहता है कि जब ताबीज उठा लूं तो मत बोलना। नहीं, ऐसा नहीं है। और ऐसा भी नहीं है कि ताबीज में कुछ गुण है। लेकिन तरकीब और गहरी है। और वह ख्याल में आए तो बहुत हैरानी होती है।

इसको कहते हैं पोस्ट हिप्नोटिक सजेशन। अगर एक व्यक्ति को हम बेहोश करें, और बेहोश करके उसको कहें कि आंख खोलकर इस ताबीज को ठीक से देख लो! और जब भी यह ताबीज मैं तुम्हारी छाती पर रखूंगा और कहूंगा--एक... दो... तीन... तुम तत्काल फिर से बेहोश हो जाओगे। यह बेहोशी में कहा गया सजेशन--जब भी इस ताबीज को मैं तुम्हारी छाती पर रखूंगा, तुम पुनः बेहोश हो जाओगे। और उस बेहोशी की हालत में इसकी बहुत संभावना है कि वह नोट का नंबर पढ़ा जा सकता है, घड़ी देखी जा सकती है। इसमें कुछ झूठ नहीं है। जैसे ही वह चादर रखता है और लड़के के ऊपर ताबीज रखता है, वह लड़का हिप्नोटिक ट्रांस में चला गया, वह सम्मोहित स्थिति में चला गया। अब वह तुम्हारे नोट का नंबर बता पाता है। यह कुछ सिखाया हुआ नहीं है वह। उस लड़के को भी पता नहीं है कि क्या हो रहा है।

इस आदमी को भी पता नहीं है कि भीतर क्या हो रहा है। इस आदमी को एक ट्रिक मालूम है कि एक आदमी को बेहोश करके अगर कोई भी चीज बताकर कह दिया जाए कि पुनः जब भी यह चीज तुम्हारे ऊपर रखी जाएगी, तुम बेहोश हो जाओगे, तो वह बेहोश हो जाता है, इतना इसको भी पता है। इसके क्या भीतर मैकेनिज्म है, इसका डाइनामिक्स क्या है, इन दोनों को किसी को कोई पता नहीं है। क्योंकि जिसको उतना डाइनामिक्स पता हो, वह सड़क पर मदारी का काम नहीं करता है। उतना डाइनामिक्स बहुत बड़ी बात है। मन का ही है, लेकिन वह भी बहुत बड़ी बात है। उतना डाइनामिक्स किसी फ्रायड को भी पूरा पता नहीं है, उतना डाइनामिक्स किसी जुंग को भी पूरा पता नहीं है, उतना डाइनामिक्स बड़े से बड़े मनोवैज्ञानिक को भी अभी पूरा पता नहीं है कि हो क्या रहा है। लेकिन इसको एक ट्रिक पता है, उतनी ट्रिक से यह काम कर लेता है।

तुम्हें बटन दबाने के लिए यह जानना थोड़े ही जरूरी है कि बिजली क्या है! और बटन दबाने के लिए यह भी जानना जरूरी नहीं है कि बिजली कैसे पैदा होती है। और यह भी जानना जरूरी नहीं है कि बिजली की पूरी इंजीनियरिंग क्या है। तुम बटन दबाते हो, बिजली जल जाती है। तुम्हें एक ट्रिक पता है, हर आदमी दबाकर बिजली जला लेता है।

ऐसे ही ट्रिक उसको पता है कि यह ताबीज रखने से और यह-यह करने से यह हो जाता है, वह उतना कर ले रहा है। आप ताबीज खरीदकर ले जाओगे, वह ताबीज बिल्कुल बेमानी है। क्योंकि वह सिर्फ उसी के लिए सार्थक है जिसके ऊपर पहले उसका प्रयोग किया गया हो सम्मोहित अवस्था में। आप अपनी छाती पर रखकर बैठे रहो, कुछ भी नहीं होगा। तब लगेगा कि हम ही कुछ गलत हैं, ताबीज तो ठीक; क्योंकि ताबीज को तो काम करते देखा है।

तो बहुत तरह की मिथ्या, झूठी... मिथ्या और झूठी इस अर्थों में नहीं कि वे कुछ भी नहीं हैं। मिथ्या और झूठी इस अर्थों में कि वे स्प्रिचुअल नहीं हैं, आध्यात्मिक नहीं हैं, सिर्फ मानसिक घटनाएं हैं। और सब चीजों की मानसिक पैरेलल घटनाएं संभव हैं--सभी चीजों की। तो वे पैदा की जा सकती हैं; दूसरा आदमी पैदा कर सकता है। और दावेदार उतना ही कर सकता है। हां, गैर-दावेदार ज्यादा कर सकता है।

मात्र उपस्थिति से घटनेवाला शक्तिपात

पर गैर-दावेदार का मतलब हैः वह कहकर नहीं जाता कि मैं शक्तिपात कर रहा हूं! मैं तुममें ऐसा कर दूंगा, मैं तुममें ऐसा कर दूंगा! यह हो जाएगा तुममें, मैं करनेवाला हूं! और जब हो जाएगा तो तुम मुझसे बंधे रह जाओगे! वह इस सबका कोई सवाल नहीं है। वह एक शून्य की भांति हो गया है वैसा आदमी। तुम उसके पास भी जाते हो तो कुछ होना शुरू हो जाता है। यह उसको ख्याल ही नहीं है कि यह हो रहा है।

एक बहुत पुरानी रोमन कहानी है कि एक बड़ा संत हुआ। और उसके चरित्र की सुगंध और उसके ज्ञान की किरणें देवताओं तक पहुंच गईं। और देवताओं ने आकर उससे कहा कि तुम कुछ वरदान मांग लो; तुम जो कहो, हम करने को तैयार हैं। लेकिन उस फकीर ने कहा कि जो होना था वह हो चुका है, और तुम मुझे मुश्किल में मत डालो। क्योंकि तुम कहते हो, मांगो! अगर मैं न मांगूं तो अशिष्टता होती है। और मांगने को मुझे कुछ बचा नहीं है; बल्कि जो मैंने कभी नहीं मांगा था, वह सब हो गया है। तो तुम मुझे क्षमा करो, इस झंझट में मुझे मत डालो, इस मांगने की कठिनाई मुझ पर पैदा मत करो। लेकिन वे देवता तो और भी... क्योंकि अब तो यह सुगंध और भी जोर से उठी इस आदमी की, कि जो मांगने के ही बाहर हो गया है। उन्होंने कहा कि तब तो तुम कुछ मांग ही लो, और हम बिना दिए अब न जाएंगे।

उस आदमी ने कहा कि बड़ी मुश्किल हो गई! तो तुम्हीं कुछ दे दो; क्योंकि मैं क्या मांगूं, मुझे सूझता नहीं; क्योंकि मेरी कोई मांग न रही; तुम्हीं कुछ दे दो, मैं ले लूंगा। तो उन देवताओं ने कहा कि हम तुम्हें ऐसी शक्ति दिए देते हैं कि तुम जिसे छुओगे, वह मुर्दा भी होगा तो जिंदा हो जाएगा; बीमार होगा तो बीमारी ठीक हो जाएगी। उसने कहा कि यह तो बड़ा काम हो जाएगा। यह बड़ा काम हो जाएगा। और इससे जो ठीक होगा वह तो ठीक है, मेरा क्या होगा? मैं बड़ी मुश्किल में पड़ जाऊंगा। क्योंकि मुझको यह लगने लगेगा--मैं ठीक कर रहा हूं। तो यह जो बीमार ठीक हो जाएगा, वह तो ठीक है, लेकिन मैं बीमार हो जाऊंगा। उसने कहा कि मेरे बाबत क्या ख्याल है? क्योंकि एक मुर्दे को मैं छुऊंगा, वह जिंदा हो जाएगा, तो मुझे लगेगा--मैं जिंदा कर रहा हूं। तो वह तो जिंदा हो जाएगा, मैं मर जाऊंगा। मुझे मत मारो, मुझ पर कृपा करो! ऐसा कुछ करो कि मुझे पता न चले।

तो उन देवताओं ने कहा, अच्छा हम ऐसा कुछ करते हैंः तुम्हारी छाया जहां पड़ेगी, वहां कोई बीमार होगा तो ठीक हो जाएगा, कोई मुर्दा होगा तो जिंदा हो जाएगा। उसने कहा, यह ठीक है। और इतनी और कृपा करो कि मेरी गर्दन पीछे की तरफ न मुड़ सके। नहीं तो छाया से भी दिक्कत हो जाएगी--अपनी छाया! तो मेरी गर्दन अब पीछे न मुड़े।

वह वरदान पूरा हो गया, उस फकीर की गर्दन मुड़नी बंद हो गई। वह गांव-गांव चलता रहता। अगर कुम्हलाए हुए फूल पर उसकी छाया पड़ जाती तो वह खिल जाता, लेकिन तब तक वह जा चुका होता। क्योंकि उसकी गर्दन पीछे मुड़ सकती नहीं थी; उसे कभी पता नहीं चला। और जब वह मरा तो उसने देवताओं से पूछा कि तुमने जो दिया था, वह हुआ भी कि नहीं? क्योंकि हमको पता नहीं चल पाया।

तो मुझे लगता है--यह कहानी प्रीतिकर है--तो घटना तो घटती है, ऐसी ही घटती है, पर वह छाया से घटती है और गर्दन भी नहीं मुड़ती। पर शून्य होना चाहिए उसकी शर्त, नहीं तो गर्दन मुड़ जाएगी। अगर जरा सा भी अहंकार शेष रहा तो पीछे लौटकर देखने का मन होगा, कि हुआ कि नहीं हुआ! और अगर हो गया तो फिर मैंने किया है। उसे बचाना बहुत मुश्किल हो जाएगा। तो शून्य जहां घटता है वहां आसपास शक्तिपात जैसी बहुत साधारण बातें हैं, बहुत बड़ी बातें नहीं हैं, वे ऐसे ही घटने लगती हैं जैसे सूरज निकलता है, फूल खिलने

लगते हैं--बस ऐसे ही; नदी बहती है, जड़ों को पानी मिल जाता है--बस ऐसे ही। न नदी दावा करती है, न बड़े बोर्ड लगाती है रास्ते पर कि मैंने इतने झाड़ों को पानी दे दिया, इतनों में फूल खिल रहे हैं। यह सब कुछ... कोई सवाल नहीं है। यह नदी को इसका पता ही नहीं चलता। जब तक फूल खिलते हैं, तब तक नदी सागर पहुंच गई होती है। तो कहां फुर्सत? रुककर देखने की भी सुविधा कहां? पीछे लौटकर मुड़ने का उपाय कहां?

तो ऐसी स्थिति में जो घटता है, उसका तो आध्यात्मिक मूल्य है। लेकिन जहां अहंकार है, कर्ता है; जहां कोई कह रहा हैः मैं कर रहा हूं; वहां फिर साइकिक फिनामिनन है, फिर मनस की घटनाएं हैं, और वह सम्मोहन से ज्यादा नहीं है।

मेरे ध्यान में सम्मोहन का प्रयोग

प्रश्नः आपकी जो ध्यान की नयी विधि है, उसमें भी क्या सम्मोहन व भ्रम की संभावना नहीं है? बहुत से लोगों को कुछ भी नहीं हो रहा है, तो क्या ऐसा है कि वे सच्चे रास्ते पर नहीं हैं? और जिनको बहुत सी प्रक्रियाएं चल रही हैं, क्या वे सच्चे रास्ते पर ही हैं? या उनमें भी कोई जान-बूझकर ही कर रहे हैं, ऐसी बात नहीं है क्या?

इसमें दो-तीन बातें समझनी चाहिए। असल में, सम्मोहन एक विज्ञान है। और अगर सम्मोहन का तुम्हें धोखा देने के लिए उपयोग किया जाए, तो किया जा सकता है। लेकिन सम्मोहन का उपयोग तुम्हारी सहायता के लिए भी किया जा सकता है। और सभी विज्ञान दोधारी तलवार हैं। अणु की शक्ति है, वह खेत में गेहूं भी पैदा कर सकती है, और गेहूं खानेवाले को भी दुनिया से मिटा सकती है--वे दोनों काम हो सकते हैं; दोनों ही अणु की शक्ति हैं। यह बिजली घर में हवा भी दे रही है, और इसका तुम्हें शॉक लगे तो तुम्हारे प्राण भी ले सकती है। लेकिन इससे तुम बिजली को कभी जिम्मेवार न ठहरा पाओगे।

तो सम्मोहन, अगर कोई अहंकार सम्मोहन का उपयोग करे--और दूसरे को दबाने, और दूसरे को मिटाने, और दूसरे में कुछ इल्यूजंस और सपने पैदा करने के लिए--तो किया जा सकता है। लेकिन इससे उलटा भी किया जा सकता है। सम्मोहन तो सिर्फ तटस्थ शक्ति है, वह तो एक साइंस है। उससे तुम्हारे भीतर जो सपने चल रहे हैं, उनको तोड़ने का भी काम किया जा सकता है; और तुम्हारे जो इल्यूजंस डीप रूटेड हैं, उनको भी उखाड़ा जा सकता है।

तो मेरी जो प्रक्रिया है, उसके प्राथमिक चरण सम्मोहन के ही हैं। लेकिन उसके साथ एक बुनियादी तत्व और जुड़ा हुआ है जो तुम्हारी रक्षा करेगा और जो तुम्हें सम्मोहित न होने देगा--और वह है साक्षी-भाव। बस सम्मोहन में और ध्यान में उतना ही फर्क है। लेकिन वह बहुत बड़ा फर्क है। जब तुम्हें कोई सम्मोहित करता है तो वह तुम्हें मूर्च्छित करना चाहता है, क्योंकि तुम मूर्च्छित हो जाओ तो ही फिर तुम्हारे साथ कुछ किया जा सकता है। जब मैं कह रहा हूं कि ध्यान में सम्मोहन का उपयोग है, लेकिन तुम साक्षी रहो पीछे, तुम पूरे समय जागे रहो, जो हो रहा है उसे जानते रहो, तब तुम्हारे साथ कुछ भी तुम्हारे विपरीत नहीं किया जा सकता; तुम सदा मौजूद हो। सम्मोहन के वही सुझाव तुम्हें बेहोश करने के काम में लाए जा सकते हैं, वही सुझाव तुम्हारी बेहोशी तोड़ने के भी काम में लाए जा सकते हैं।

तो जिसे मैं ध्यान कहता हूं, उसके प्राथमिक चरण सब के सब सम्मोहन के हैं। और होंगे ही, क्योंकि तुम्हारी कोई भी यात्रा आत्मा की तरफ तुम्हारे मन से ही शुरू होगी। क्योंकि तुम मन में हो; वह तुम्हारी जगह है जहां तुम हो। वहीं से तो यात्रा शुरू होगी। लेकिन वह यात्रा दो तरह की हो सकती हैः या तो तुम्हें मन के

भीतर एक चकरीले पथ पर डाल दे कि तुम मन के भीतर चक्कर लगाने लगो, कोल्हू के बैल की तरह चलने लगो। तब यात्रा तो बहुत होगी, लेकिन मन के बाहर तुम न निकल पाओगे। वह यात्रा ऐसी भी हो सकती हैः तुम्हें मन के किनारे पर ले जाए और मन के बाहर छलांग लगाने की जगह पर पहुंचा दे। दोनों हालत में तुम्हारे प्राथमिक चरण मन के भीतर ही पड़ेंगे।

तो सम्मोहन का भी प्राथमिक रूप वही है जो ध्यान का है, लेकिन अंतिम रूप भिन्न है; और दोनों का लक्ष्य भिन्न है। और दोनों की प्रक्रिया में एक बुनियादी तत्व भिन्न है। सम्मोहन चाहता है तत्काल मूर्च्छा--नींद, सो जाओ। इसलिए सम्मोहन का सारा सुझाव नींद से शुरू होगा, तंद्रा से शुरू होगा--सोओ; स्लीप; फिर बाकी कुछ होगा। ध्यान का सारा सुझाव--जागो, अवेक, वहां से होगा और पीछे साक्षी पर जोर रहेगा। क्योंकि तुम्हारा साक्षी जगा हुआ है तो तुम पर कोई भी बाहरी प्रभाव नहीं डाले जा सकते। और अगर तुम्हारे भीतर जो भी हो रहा है, वह भी तुम्हारे जानते हुए हो रहा है... तो एक तो यह ख्याल में लेना जरूरी है।

ध्यान-प्रयोग से बचने की तरकीबें

और दूसरी बात यह ख्याल में लेना जरूरी है कि जिनको हो रहा है और जिनको नहीं हो रहा, उनमें जो फर्क है, वह इतना ही है कि जिनको नहीं हो रहा है उनका संकल्प थोड़ा क्षीण है--भयभीत, डरे हुए; कहीं हो न जाए, इससे भी डरे हुए। अब यह आदमी कितना अजीब है! करने आए हैं, आए इसीलिए हैं कि ध्यान हो जाए। लेकिन अब डर भी रहे हैं कि कहीं हो न जाए! और जिनको हो रहा है उनको देखकर, जिनको नहीं हो रहा है उनके मन में ऐसा लगेगाः कहीं ये ऐसे ही तो नहीं कर रहे हैं! कहीं बनावटी तो नहीं कर रहे हैं!

ये डिफेंस मेजर हैं; ये उनके सुरक्षा के उपाय हैं। इस भांति वे कह रहे हैं कि अरे, हम कोई इतने कमजोर नहीं कि हमको हो जाए! ये कमजोर लोग हैं जिनको हो रहा है। इससे वे अपने अहंकार को तृप्ति भी दे रहे हैं। और यह नहीं जान पा रहे हैं कि यह कमजोरों को नहीं होता, यह शक्तिशाली को होता है; और यह भी नहीं जान पा रहे हैं कि यह बुद्धिहीनों को नहीं होता, बुद्धिमानों को होता है। एक ईडियट को न तो सम्मोहित किया जा सकता है, न ध्यान में ले जाया जा सकता है; दोनों ही नहीं किया जा सकता। एक जड़बुद्धि आदमी को सम्मोहित भी नहीं किया जा सकता। एक पागल आदमी को कोई सम्मोहित कर दे; तब तुम्हें पता चलेगा कि नहीं कर सकता। जितनी प्रतिभा का आदमी हो, उतनी जल्दी सम्मोहित हो जाएगा; और जितना प्रतिभाहीन हो, उतनी देर लग जाएगी। लेकिन वह प्रतिभाहीन अपनी सुरक्षा क्या करे? वह संकल्पहीन अपनी सुरक्षा क्या करे? वह कहेगा कि अरे, ऐसा मालूम होता है कि इसमें कुछ लोग तो बनकर कर रहे हैं; और कुछ जिनको हो रहा है, ये कमजोर शक्ति के लोग हैं, तो इनकी कोई अपनी शक्ति नहीं है; इन पर प्रभाव दूसरे का पड़ गया है; ये करने लगे हैं।

अभी एक आदमी अमृतसर में मुझे मिलने आए। डाक्टर हैं, पढ़े-लिखे आदमी हैं, बूढ़े आदमी हैं, रिटायर्ड हैं। वे मुझसे तीसरे दिन माफी मांगने आए। उन्होंने मुझसे कहा, मैं सिर्फ आपसे माफी मांगने आया हूं; क्योंकि मेरे मन में एक पाप उठा था, उसकी मुझे क्षमा चाहिए। क्या हुआ, मैंने उनसे पूछा। उन्होंने कहा, पहले दिन जब मैं ध्यान करने आया तो मुझे लगा कि आपने दस-पांच आदमी अपने खड़े कर दिए हैं, जो बन-ठनकर कुछ भी कर रहे हैं। और कुछ कमजोर लोग हैं, वह उनकी देखा-देखी वे भी करने लगे हैं। तो ऐसा मुझे पहले दिन लगा। पर मैंने कहा, दूसरे दिन भी मैं देखूं तो जाकर कि अब क्या हुआ! लेकिन दूसरे दिन मैंने अपने दो-चार मित्र देखे, जिनको हो रहा था, वे सब डाक्टर हैं। तो मैं उनके घर गया। मैंने कहा कि भई, अब मैं यह नहीं मान सकता कि

तुमको कोई उन्होंने तैयार किया होगा, लेकिन तुम बनकर कर रहे थे कि तुमको हो रहा था? तो उन्होंने कहा कि बनकर करने का क्या कारण है? कल तो हमको भी शक था कि कुछ लोग बनकर तो नहीं कर रहे! लेकिन आज तो हमें हुआ।

तो वह डाक्टर, तीसरे दिन उसको हुआ, तो वह तीसरे दिन मुझसे क्षमा मांगने आया। उसने कहा, जब आज मुझे हुआ तभी मेरी पूरी भ्रांति गई। नहीं तो मैं मान ही नहीं सकता था; मुझे यह भी शक हुआ कि पता नहीं, ये डाक्टर भी मिल गए हों! आजकल कुछ पक्का तो है ही नहीं कि कौन क्या करने लगे! पता नहीं, ये भी मिल गए हों! अपने पहचान के तो हैं, लेकिन क्या कहा जा सकता है? या किसी प्रभाव में आ गए हों, हिप्नोटाइज्ड हो गए हों, या कुछ हो गया हो! लेकिन आज मुझे हुआ है; और आज जब मैं घर गया--तो उसका छोटा भाई भी डाक्टर है--तो उसने कहा कि देख आए आप वह खेल, वहां आपको कुछ हुआ कि नहीं? तो मैंने उससे कहा कि माफ कर भाई, अब मैं न कह सकूंगा खेल; दो दिन मैंने भी मजाक उड़ाई, लेकिन आज मुझे भी हुआ है। लेकिन मैं तुझ पर नाराज भी नहीं होऊंगा; क्योंकि यही तो मैं भी सोच रहा था, जो तू सोच रहा है। और उस आदमी ने कहा कि मैं माफी मांगने आया हूं, क्योंकि मेरे मन में ऐसा ख्याल उठा।

ये हमारे सुरक्षा के उपाय हैं। जिनको नहीं होगा वे सुरक्षा का इंतजाम करेंगे। लेकिन जिनको नहीं हो रहा है उनमें और होनेवालों में बहुत इंच भर का ही फासला है; सिर्फ संकल्प की थोड़ी सी कमी है। अगर वे थोड़ी सी हिम्मत जुटाएं और संकल्प करें और संकोच थोड़ा छोड़ सकें...

अब आज ही एक महिला ने मुझे आकर कहा कि किसी महिला ने उनको फोन किया है कि रजनीश जी के इस प्रयोग में तो कोई नंगा हो जाता है, कुछ हो जाता है। तो भले घर की महिलाएं तो फिर आ नहीं सकेंगी! तो भले घर की महिलाओं का क्या होगा?

अब किसी को यह भी वहम होता है कि हम भले घर की महिला हैं, और कोई बुरे घर की महिला है! तो बुरे घर की महिला तो जा सकेगी, भले घर की महिला का क्या होगा? अब ये सब डिफेंस मेजर हैं। और वह भले घर की महिला अपने को भला मानकर घर रोक लेगी। और भले घर की महिला कैसी है? अगर एक आदमी नग्न हो रहा है तो जिस महिला को भी अड़चन हो रही है, वह बुरे घर की महिला है। उसे प्रयोजन क्या है?

बिना किए निर्णय मत लो

तो हमारा मन बहुत अजीब-अजीब इंतजाम करता है; वह कहता है कि ये सब गड़बड़ बातें हो रही हैं, यह अपने को नहीं होनेवाला; हम कोई कमजोर थोड़े ही हैं, हम ताकतवर हैं। लेकिन ताकतवर होते तो हो गया होता; बुद्धिमान होते तो हो गया होता। क्योंकि बुद्धिमान आदमी का पहला लक्षण तो यह है कि जब तक वह खुद न कर ले तब तक वह कोई निर्णय न लेगा। वह यह भी न कहेगा कि दूसरा झूठा कर रहा है। क्योंकि मैं कौन हूं यह निर्णय लेनेवाला? और दूसरे के संबंध में झूठे होने का निर्णय बहुत ग्लानिपूर्ण है। दूसरे के संबंध में कि वह झूठा कर रहा है... हम कौन हैं? और मैं कैसे निर्णय करूं कि दूसरा झूठा कर रहा है? ये इसी तरह के गलत निर्णय ने तो बड़ी दिक्कत डाली है।

जीसस को लोगों ने थोड़े ही माना कि इसको कुछ हुआ है, नहीं तो सूली पर न लटकाएं। वे समझे कि सब... आदमी गड़बड़ है, और कुछ भी कह रहा है। महावीर को पत्थर न मारें लोग। उनको लग रहा है कि यह गड़बड़ आदमी है, नंगा खड़ा हो गया है, इसको कुछ हुआ थोड़े ही है।

दूसरे आदमी को भीतर क्या हो रहा है, हम निर्णायक कहां हैं? कैसे हैं? तो जब तक मैं न करके देख लूं, तब तक निर्णय न लेना बुद्धिमत्ता का लक्षण है। और अगर मुझे नहीं हो रहा है, तो जो प्रयोग कहा जा रहा है, उसको मैं पूरा कर रहा हूं न, इसकी थोड़ी जांच कर लूं--कि मैं उसे पूरा कर रहा हूं? अगर मैं पूरा नहीं कर रहा हूं तो होगा कैसे?

इधर पोरबंदर... मैं कह रहा था तो एक... आखिरी दिन मैंने कहा कि अगर किसी ने सौ डिग्री ताकत नहीं लगाई, निन्यानबे डिग्री लगाई, तो भी चूक जाएगा। तो एक मित्र ने आकर मुझे कहा कि मैं तो धीरे-धीरे कर रहा था, मैंने कहा थोड़ी देर में होगा। लेकिन मुझे ख्याल में आया कि वह तो कभी नहीं होगा; सौ डिग्री होनी ही चाहिए। तो आज मैंने पूरी ताकत लगाई तो हो गया है। मैं तो सोचता था कि मैं धीरे-धीरे करता रहूंगा, होगा।

धीरे-धीरे क्यों कर रहे थे? नहीं करो, ठीक है। धीरे-धीरे क्यों कर रहे हो?

वह धीरे-धीरे करने में हम दोनों नाव पर सवार रहना चाहते हैं। और दो नावों पर सवार यात्री बहुत कठिनाई में पड़ जाता है। एक ही नाव अच्छी--नरक जाए तो भी एक तो हो। लेकिन स्वर्ग की नाव पर भी एक पैर रखे हैं, नरक की नाव पर भी एक पैर रखे हैं। असल में, संदिग्ध है मन कि कहां जाना है। और डर है कि पता नहीं नरक में सुख मिलेगा कि स्वर्ग में सुख मिलेगा। दोनों पर पैर रखे खड़े हैं। इसमें दोनों जगह चूक सकती हैं, और नदी में प्राणांत हो सकते हैं। ऐसा हमारा मन है पूरे वक्त--जाएंगे भी, फिर वहां रोक भी लेंगे। और नुकसान होता है।

पूरा प्रयोग करो! और दूसरे के बाबत निर्णय मत लो। और पूरा प्रयोग जो भी करेगा उसे होना सुनिश्चित है; क्योंकि यह विज्ञान की बात कह रहा हूं मैं, अब मैं कोई धर्म की बात नहीं कह रहा हूं। और यह बिल्कुल ही साइंस का मामला है कि अगर इसमें पूरा हुआ तो होना निश्चित है, इसमें कोई और उपाय नहीं है। क्योंकि परमात्मा को मैं शक्ति कह रहा हूं। उधर कोई पक्षपात, और कोई प्रार्थना-व्रार्थना करने से, कि अच्छे कुल में पैदा हुए हैं, और फलां घर में पैदा हुए हैं, यह सब कुछ चलेगा नहीं; कि भारत भूमि में पैदा हो गए हैं तो ऐसे ही पार हो जाएंगे, ऐसे नहीं चलेगा।

बिल्कुल विज्ञान की बात है। उसको जो पूरा करेगा, उसको परमात्मा भी अगर खिलाफ हो जाए, तो रोक नहीं सकता। और न भी हो परमात्मा, तो कोई सवाल नहीं है। पूरा कर रहे हो कि नहीं, इसकी फिकर करो। और सदा निर्णय भीतर के अनुभव से लो, बाहर से मत लो। अन्यथा भूल हो सकती है।

तेरहवां प्रवचन

सात शरीरों से गुजरती कुंडलिनी

प्रश्नः कल की चर्चा में आपने कहा कि कुंडलिनी के झूठे अनुभव भी प्रोजेक्ट किए जा सकते हैं--जिन्हें आप आध्यात्मिक अनुभव नहीं मानते हैं, मानसिक मानते हैं। लेकिन प्रारंभिक चर्चा में आपने कहा था कि कुंडलिनी मात्र साइकिक है। इसका ऐसा अर्थ हुआ कि आप कुंडलिनी की दो प्रकार की स्थितियां मानते हैं--मानसिक और आध्यात्मिक। कृपया इस स्थिति को स्पष्ट करें।

असल में, आदमी के पास सात प्रकार के शरीर हैं। एक शरीर तो जो हमें दिखाई पड़ता है--फिजिकल बॉडी, भौतिक शरीर। दूसरा शरीर जो उसके पीछे है और जिसे ईथरिक बॉडी कहें--आकाश शरीर। और तीसरा शरीर जो उसके भी पीछे है, जिसे एस्ट्रल बॉडी कहें--सूक्ष्म शरीर। और चौथा शरीर जो उसके भी पीछे है, जिसे मेंटल बॉडी कहें--मनस शरीर। और पांचवां शरीर जो उसके भी पीछे है, जिसे स्प्रिचुअल बॉडी कहें--आत्मिक शरीर। छठवां शरीर जो उसके भी पीछे है, जिसे हम कास्मिक बॉडी कहें--ब्रह्म शरीर। और सातवां शरीर जो उसके भी पीछे है, जिसे हम निर्वाण शरीर, बॉडीलेस बॉडी कहें--अंतिम।

इन सात शरीरों के संबंध में थोड़ा समझेंगे तो फिर कुंडलिनी की बात पूरी तरह समझ में आ सकेगी।

भौतिक शरीर, भाव शरीर और सूक्ष्म शरीर

पहले सात वर्ष में भौतिक शरीर ही निर्मित होता है। जीवन के पहले सात वर्ष में भौतिक शरीर ही निर्मित होता है, बाकी सारे शरीर बीजरूप होते हैं; उनके विकास की संभावना होती है, लेकिन वे विकसित उपलब्ध नहीं होते। पहले सात वर्ष, इसलिए इमिटेशन, अनुकरण के ही वर्ष हैं। पहले सात वर्षों में कोई बुद्धि, कोई भावना, कोई कामना विकसित नहीं होती, विकसित होता है सिर्फ भौतिक शरीर।

कुछ लोग सात वर्ष से ज्यादा कभी आगे नहीं बढ़ पाते; कुछ लोग सिर्फ भौतिक शरीर ही रह जाते हैं। ऐसे व्यक्तियों में और पशु में कोई अंतर नहीं होगा। पशु के पास भी सिर्फ भौतिक शरीर ही होता है, दूसरे शरीर अविकसित होते हैं।

दूसरे सात वर्ष में भाव शरीर का विकास होता है; या आकाश शरीर का। इसलिए दूसरे सात वर्ष व्यक्ति के भाव जगत के विकास के वर्ष हैं। चौदह वर्ष की उम्र में इसीलिए सेक्स मैच्योरिटी उपलब्ध होती है; वह भाव का बहुत प्रगाढ़ रूप है। कुछ लोग चौदह वर्ष के होकर ही रह जाते हैं; शरीर की उम्र बढ़ती जाती है, लेकिन उनके पास दो ही शरीर होते हैं।

तीसरे सात वर्षों में सूक्ष्म शरीर विकसित होता है--इक्कीस वर्ष की उम्र तक। दूसरे शरीर में भाव का विकास होता है; तीसरे शरीर में तर्क, विचार और बुद्धि का विकास होता है।

इसलिए सात वर्ष के पहले दुनिया की कोई अदालत किसी बच्चे को सजा नहीं देगी, क्योंकि उसके पास सिर्फ भौतिक शरीर है; और बच्चे के साथ वही व्यवहार किया जाएगा जो एक पशु के साथ किया जाता है। उसको जिम्मेवार नहीं ठहराया जा सकता। और अगर बच्चे ने कोई पाप भी किया है, अपराध भी किया है, तो यही माना जाएगा कि किसी के अनुकरण में किया है; मूल अपराधी कोई और होगा।

तीसरे शरीर में विचार का विकास

दूसरे शरीर के विकास के बाद--चौदह वर्ष--एक तरह की प्रौढ़ता मिलती है; लेकिन वह प्रौढ़ता यौन-प्रौढ़ता है। प्रकृति का काम उतने से पूरा हो जाता है। इसलिए पहले शरीर और दूसरे शरीर के विकास में प्रकृति पूरी सहायता देती है; लेकिन दूसरे शरीर के विकास से मनुष्य मनुष्य नहीं बन पाता। तीसरा शरीर--जहां विचार, तर्क और बुद्धि विकसित होती है--वह शिक्षा, संस्कृति, सभ्यता का फल है। इसलिए दुनिया के सभी मुल्क इक्कीस वर्ष के व्यक्ति को मताधिकार देते हैं।

अभी कुछ मुल्कों में संघर्ष है अठारह वर्ष के बच्चों को मताधिकार मिलने का। वह संघर्ष स्वाभाविक है; क्योंकि जैसे-जैसे मनुष्य विकसित हो रहा है, सात वर्ष की सीमा कम होती जा रही है। अब तक तेरह और चौदह वर्ष में दुनिया में लड़कियां मासिक धर्म को उपलब्ध होती थीं। अमेरिका में पिछले तीस वर्षों में यह उम्र कम होती चली गई है; ग्यारह वर्ष की लड़की भी मासिक धर्म को उपलब्ध हो जाती है। अठारह वर्ष का मताधिकार इसी बात की सूचना है कि मनुष्य, जो काम इक्कीस वर्ष में पूरा हो रहा था, उसे अब और जल्दी पूरा करने लगा है; वह अठारह वर्ष में भी पूरा कर ले रहा है।

लेकिन साधारणतः इक्कीस वर्ष लगते हैं तीसरे शरीर के विकास के लिए। और अधिकतम लोग तीसरे शरीर पर रुक जाते हैं; मरते दम तक उसी पर रुके रहते हैं; चौथा शरीर, मनस शरीर भी विकसित नहीं हो पाता।

जिसको मैं साइकिक कह रहा हूं, वह चौथे शरीर की दुनिया की बात है--मनस शरीर की। उसके बड़े अदभुत और अनूठे अनुभव हैं। जैसे जिस व्यक्ति की बुद्धि विकसित न हुई हो, वह गणित में कोई आनंद नहीं ले सकता। वैसे गणित का अपना आनंद है। कोई आइंस्टीन उसमें उतना ही रसमुग्ध होता है, जितना कोई संगीतज्ञ वीणा में होता हो, कोई चित्रकार रंग में होता हो। आइंस्टीन के लिए गणित कोई काम नहीं है, खेल है। पर उसके लिए बुद्धि का उतना विकास चाहिए कि वह गणित को खेल बना सके।

प्रत्येक शरीर के अनंत आयाम

जो शरीर हमारा विकसित होता है, उस शरीर के अनंत-अनंत आयाम हमारे लिए खुल जाते हैं। जिसका भाव शरीर विकसित नहीं हुआ, जो सात वर्ष पर ही रुक गया है, उसके जीवन का रस खाने-पीने पर समाप्त हो जाएगा। जिस कौम में पहले शरीर के लोग ज्यादा मात्रा में हैं, उसकी जीभ के अतिरिक्त कोई संस्कृति नहीं होगी।

जिस कौम में अधिक लोग दूसरे शरीर के हैं, वह कौम सेक्स सेंटर्ड हो जाएगी; उसका सारा व्यक्तित्व--उसकी कविता, उसका संगीत, उसकी फिल्म, उसका नाटक, उसके चित्र, उसके मकान, उसकी गाड़ियां--सब किसी अर्थों में सेक्स सेंट्रिक हो जाएंगी; वे सब वासना से भर जाएंगी।

जिस सभ्यता में तीसरे शरीर का विकास हो पाएगा ठीक से, वह सभ्यता अत्यंत बौद्धिक चिंतन और विचार से भर जाएगी। जब भी किसी कौम या समाज की जिंदगी में तीसरे शरीर का विकास महत्वपूर्ण हो जाता है, तो बड़ी वैचारिक क्रांतियां घटित होती हैं। बुद्ध और महावीर के वक्त में बिहार ऐसी ही हालत में था कि उसके पास तीसरी क्षमता को उपलब्ध बहुत बड़ा समूह था। इसलिए बुद्ध और महावीर की हैसियत के आठ आदमी बिहार के छोटे से देश में पैदा हुए, छोटे से इलाके में। और हजारों प्रतिभाशाली लोग पैदा हुए।

सुकरात और प्लेटो के वक्त यूनान की ऐसी ही हालत थी। कनफ्यूशियस और लाओत्से के समय चीन की ऐसी ही हालत थी। और बड़े मजे की बात है कि ये सारे महान व्यक्ति पांच सौ साल के भीतर सारी दुनिया में हुए। उस पांच सौ साल में मनुष्य के तीसरे शरीर ने बड़ी ऊंचाइयां छुईं।

लेकिन आमतौर से तीसरे शरीर पर मनुष्य रुक जाता है; अधिक लोग इक्कीस वर्ष के बाद कोई विकास नहीं करते।

चौथे मनस शरीर की अतींद्रिय क्रियाएं

लेकिन ध्यान रहे, चौथा जो शरीर है उसके अपने अनूठे अनुभव हैं--जैसे तीसरे शरीर के हैं, दूसरे शरीर के हैं, पहले शरीर के हैं। चौथे शरीर के बड़े अनूठे अनुभव हैं। जैसे सम्मोहन, टेलीपैथी, क्लेअरवायंस--ये सब चौथे शरीर की संभावनाएं हैं। आदमी बिना समय और स्थान की बाधा के दूसरे से संबंधित हो सकता है; बिना बोले दूसरे के विचार पढ़ सकता है या अपने विचार दूसरे तक पहुंचा सकता है; बिना कहे, बिना समझाए, कोई बात दूसरे में प्रवेश कर सकता है और उसका बीज बना सकता है; शरीर के बाहर यात्रा कर सकता है--एस्ट्रल प्रोजेक्शन--शरीर के बाहर घूम सकता है; अपने इस शरीर से अपने को अलग जान सकता है।

इस चौथे शरीर की, मनस शरीर की, साइकिक बॉडी की बड़ी संभावनाएं हैं, जो हम बिल्कुल ही विकसित नहीं कर पाते हैं; क्योंकि इस दिशा में खतरे बहुत हैं--एक; और इस दिशा में मिथ्या की बहुत संभावना है--दो। क्योंकि जितनी चीजें सूक्ष्म होती चली जाती हैं, उतनी ही मिथ्या और फाल्स संभावनाएं बढ़ती चली जाती हैं।

अब एक आदमी अपने शरीर के बाहर गया या नहीं--वह सपना भी देख सकता है अपने शरीर के बाहर जाने का, जा भी सकता है। और उसके अतिरिक्त, स्वयं के अतिरिक्त और कोई गवाह नहीं होगा। इसलिए धोखे में पड़ जाने की बहुत गुंजाइश है; क्योंकि दुनिया जो शुरू होती है इस शरीर से, वह सब्जेक्टिव है; इसके पहले की दुनिया ऑब्जेक्टिव है।

अगर मेरे हाथ में रुपया है, तो आप भी देख सकते हैं, मैं भी देख सकता हूं, पचास लोग देख सकते हैं। यह कॉमन रियलिटी है, जिसमें हम सब सहभागी हो सकते हैं और जांच हो सकती है--रुपया है या नहीं? लेकिन मेरे विचारों की दुनिया में आप सहभागी नहीं हो सकते, मैं आपके विचारों की दुनिया में सहभागी नहीं हो सकता; वह निजी दुनिया शुरू हो गई। जहां से निजी दुनिया शुरू होती है, वहां से खतरा शुरू होता है; क्योंकि किसी चीज की वैलिडिटी, किसी चीज की सच्चाई के सारे बाह्य नियम खतम हो जाते हैं।

इसलिए असली डिसेप्शन का जो जगत है, वह चौथे शरीर से शुरू होता है। उसके पहले के सब डिसेप्शन पकड़े जा सकते हैं, उसके पहले के सब धोखे पकड़े जा सकते हैं। और ऐसा नहीं है कि चौथे शरीर में जो धोखा दे रहा है, वह जरूरी रूप से जानकर दे रहा हो। बड़ा खतरा यह है! वह अनजाने दे सकता है; खुद को दे सकता है, दूसरों को दे सकता है। उसे कुछ पता ही न हो, क्योंकि चीजें इतनी बारीक और निजी हो गई हैं कि उसके खुद के पास भी कोई कसौटी नहीं है कि वह जाकर जांच करे कि सच में जो हो रहा है वह हो रहा है? कि वह कल्पना कर रहा है?

चौथे शरीर के लाभ और खतरे

तो यह जो चौथा शरीर है, इससे हमने मनुष्यता को बचाने की कोशिश की। और अक्सर ऐसा हुआ कि इस शरीर का जो लोग उपयोग करनेवाले थे, उनकी बहुत तरह की बदनामी और कंडेमनेशन हुई। योरोप में हजारों स्त्रियों को जला डाला गया विचे.ज कहकर, डाकिनी कहकर; क्योंकि उनके पास यह चौथे शरीर का काम था। हिंदुस्तान में सैकड़ों तांत्रिक मार डाले गए इस चौथे शरीर की वजह से, क्योंकि वे कुछ सीक्रेट्स जानते थे जो कि हमें खतरनाक मालूम पड़े। आपके मन में क्या चल रहा है, वे जान सकते हैं; आपके घर में कहां क्या रखा है, यह उन्हें घर के बाहर से पता हो सकता है। तो सारी दुनिया में इस चौथे शरीर को एक तरह का

ब्लैक आर्ट समझ लिया गया कि एक काले जादू की दुनिया है जहां कि कोई भरोसा नहीं कि क्या हो जाए! और एकबारगी हमने मनुष्य को तीसरे शरीर पर रोकने की भरसक चेष्टा की कि चौथे शरीर पर खतरे हैं।

खतरे थे; लेकिन खतरों के साथ उतने ही अदभुत लाभ भी थे। तो बजाय इसके कि रोकते, जांच-पड़ताल जरूरी थी कि वहां भी हम रास्ते खोज सकते हैं जांचने के। और अब वैज्ञानिक उपकरण भी हैं और समझ भी बढ़ी है; रास्ते खोजे जा सकते हैं। जैसे कुछ चीजों के रास्ते अभी खोजे गए। कल ही मैं देख रहा था।

अभी तक यह पक्का नहीं हो पाता था कि जानवर सपने देखते हैं कि नहीं देखते। क्योंकि जब तक जानवर कहे न, तब तक कैसे पता चले? हमारा भी पता इसीलिए चलता है कि हम सुबह कह सकते हैं कि हमने सपना देखा। चूंकि जानवर नहीं कह सकता, तो कैसे पता चले कि जानवर सपना देखता है या नहीं देखता! बहुत तकलीफ से लेकिन रास्ता खोज लिया गया। एक आदमी ने बंदरों पर वर्षों मेहनत की यह बात जांचने के लिए कि वे सपने देखते हैं कि नहीं।

अब अपना बहुत निजी, चौथी बॉडी की बात है; बहुत निजी बात है। पर उसकी जांच की उसने जो व्यवस्था की, वह समझने जैसी है। उसने बंदरों को फिल्म दिखानी शुरू की--पर्दे पर फिल्म दिखानी शुरू की। और जैसे ही फिल्म चलनी शुरू हो, नीचे से बंदर को शॉक देने शुरू किए बिजली के। और उसकी कुर्सी पर एक बटन लगा रखी, जो उसको सिखा दी कि जब भी उसको शॉक लगे तो वह बटन बंद कर दे, तो शॉक लगना बंद हो जाए। फिल्म शुरू हो और शॉक लगे और वह बटन बंद करे, ऐसा उसका अभ्यास कराया। फिर उस कुर्सी पर उसको सो जाने दिया। जब उसका सपना चला, तो उसको घबराहट हुई कि शॉक न लग जाए--नींद में उसको घबराहट हुई; क्योंकि वह सपना और पर्दे पर फिल्म एक ही चीज है उसके लिए--उसने तत्काल बटन दबाई। इस बटन के दबाने का बार-बार प्रयोग करने पर ख्याल में आया कि उसको जब भी सपना चलता, तब वह बटन दबा देता फौरन। अब सपने जैसी गहरी भीतर की दुनिया के, वह भी बंदर की, जो कह न सके, बाहर से जांच का कोई उपाय खोजा जा सका।

साधकों ने चौथे शरीर के भी बाहर से जांचने के उपाय खोज लिए हैं। और अब तय किया जा सकता है कि जो हुआ, वह सच है या गलत; वह मिथ्या है या सही; जिस कुंडलिनी का तुमने चौथे शरीर पर अनुभव किया, वह वास्तविक है या झूठ। सिर्फ साइकिक होने से झूठ नहीं होती, फाल्स साइकिक स्थितियां भी हैं और ट्रू साइकिक स्थितियां भी हैं। यानी जब मैं कहता हूं कि वह मनस की है बात, तो इसका मतलब यह नहीं होता कि झूठ हो गई; मनस में भी झूठ हो सकती है और मनस में भी सही हो सकती है।

तुमने एक सपना देखा रात। यह सपना एक सत्य है, क्योंकि यह घटा। लेकिन सुबह उठकर तुम ऐसे सपने को भी याद कर सकते हो जो तुमने देखा नहीं, लेकिन तुम कह रहे हो कि मैंने देखा; तब यह झूठ है। एक आदमी सुबह उठकर कहता है कि मैं सपना देखता ही नहीं। हजारों लोग हैं जिनको ख्याल है कि वे सपने नहीं देखते। वे सपने देखते हैं; क्योंकि सपने जांचने के अब बहुत उपाय हैं जिनसे पता चलता है कि वे रात भर सपने देखते हैं; लेकिन सुबह वे कहते हैं कि हमने सपने देखे ही नहीं। तो वे जो कह रहे हैं, बिल्कुल झूठ कह रहे हैं; हालांकि उन्हें पता नहीं है। असल में, उनको स्मृति नहीं बचती सपने की। इससे उलटा भी हो रहा हैः जो सपना तुमने कभी नहीं देखा, उसकी भी तुम सुबह कल्पना कर सकते हो कि तुमने देखा। वह झूठ होगा।

सपना कहने से ही कुछ झूठ नहीं हो जाता, सपने के अपने यथार्थ हैं। झूठा सपना भी हो सकता है, सच्चा सपना भी। मेरा मतलब समझे? सच्चे का मतलब यह है कि जो हुआ है, सच में हुआ है। और ठीक-ठीक तो सपने को तुम बता ही नहीं पाते सुबह। मुश्किल से कोई आदमी है जो सपने की ठीक रिपोर्ट कर सके।

इसलिए पुरानी दुनिया में जो आदमी अपने सपने की ठीक-ठीक रिपोर्ट कर सकता था, उसकी बड़ी कीमत हो जाती थी। उसकी बड़ी कठिनाइयां हैं, सपने की रिपोर्ट ठीक से देने की। बड़ी कठिनाई तो यह है कि जब तुम सपना देखते हो तब उसका सीक्वेंस अलग होता है और जब याद करते हो तब उलटा होता है, फिल्म की तरह। जब हम फिल्म देखते हैं तो शुरू से देखते हैं, पीछे की तरफ। सपना जब आप देखते हैं नींद में तो जो घटना पहले घटी, वह स्मृति में सबसे बाद में घटेगी; क्योंकि वह सबसे पीछे दबी रह गई। जब तुम सुबह उठते हो तो सपने का आखिरी हिस्सा तुम्हारे हाथ में होता है और उससे तुम पीछे की तरफ याद करना शुरू करते हो। यह ऐसे उपद्रव का काम है, जैसे कोई किताब को उलटी तरफ से पढ़ना शुरू करे, और सब शब्द उलटे हो जाएं, और वह डगमगा जाए। इसलिए थोड़ी दूर तक ही जा पाते हो सपने में, बाकी सब गड़बड़ हो जाता है। उसे याद रखना और उसको ठीक से रिपोर्ट कर देना बड़ी कला की बात है। इसलिए हम आमतौर से गलत रिपोर्ट करते हैं; जो हमें नहीं हुआ होता, वह रिपोर्ट करते हैं। उसमें बहुत कुछ खो जाता है, बहुत कुछ बदल जाता है, बहुत कुछ जुड़ जाता है।

यह जो चौथा शरीर है, सपना इसकी ही घटना है।

योग-सिद्धियां, कुंडलिनी, चक्र इत्यादि

इस चौथे शरीर की बड़ी संभावनाएं हैं। जितनी भी योग में सिद्धियों का वर्णन है, वह इस सारे चौथे शरीर की ही व्यवस्था है। और निरंतर योग ने सचेत किया है कि उनमें मत जाना। और सबसे बड़ा डर यही है कि उसमें मिथ्या में जाने के बहुत उपाय हैं और भटक जाने की बड़ी संभावनाएं हैं। और अगर वास्तविक में भी चले जाओ तो भी उसका आध्यात्मिक मूल्य नहीं है।

तो जब मैंने कहा कि कुंडलिनी साइकिक है, तो मेरा मतलब यह था कि वह इस चौथे शरीर की घटना है, वस्तुतः। इसलिए फिजियोलाजिस्ट तुम्हारे इस शरीर को जब खोजने जाएगा तो उसमें कोई कुंडलिनी नहीं पाएगा। तो तुम, सारी दुनिया के सर्जन, डाक्टर कहेंगे कि कहां की फिजूल की बातें कर रहे हो! कुंडलिनी जैसी कोई चीज इस शरीर में नहीं है; तुम्हारे चक्र इस शरीर में कहीं भी नहीं हैं।

वह चौथे शरीर की व्यवस्था है। वह चौथा शरीर लेकिन सूक्ष्म है, उसे पकड़ा नहीं जा सकता, पकड़ में तो यही शरीर आता है। लेकिन उस शरीर और इस शरीर के तालमेल पड़ते हुए स्थान हैं। जैसे कि हम सात कागज रख लें, और एक आलपीन सातों कागज में डाल दें; और एक छेद सातों कागज में एक जगह पर हो जाए। अब समझ लो कि पहले कागज पर छेद विदा हो गया, नहीं है। फिर भी, दूसरे कागज पर, तीसरे कागज पर जहां छेद है उससे कॉरस्पांड करनेवाला स्थान पहले कागज पर भी है; छेद तो नहीं है, इसलिए पहले कागज की जांच पर वह छेद नहीं मिलेगा; लेकिन पहले कागज पर भी कॉरस्पांडिंग कोई बिंदु है, जिसको अगर हाथ रखा जाए तो वह तीसरे-चौथे कागज पर जो बिंदु है, उसी जगह पर होगा।

तो इस शरीर में जो चक्र हैं, कुंडलिनी है, जो बात है, वह इस शरीर की नहीं है, वह इस शरीर में सिर्फ कॉरस्पांडिंग बिंदुओं की है। और इसलिए कोई शरीर-शास्त्री इनकार करे तो गलत नहीं कह रहा है--वहां कोई कुंडलिनी नहीं मिलती, कोई चक्र नहीं मिलता। वह किसी और शरीर पर है। लेकिन इस शरीर से संबंधित बिंदुओं का पता लगाया जा सकता है।

कुंडलिनीः मनस शरीर की घटना

तो कुंडलिनी चौथे शरीर की घटना है; इसलिए मैंने कहा, साइकिक है। और जब मैं कह रहा हूं कि यह साइकिक होना, यह मानसिक होना भी दो तरह का हो सकता है--गलत और सही, तो मेरी बात तुम्हारे ख्याल में जा आएगी। गलत तब होगा जब तुमने कल्पना की; क्योंकि कल्पना भी चौथे शरीर की ही स्थिति है।

जानवर कल्पना नहीं कर पाते। तो जानवर का अतीत थोड़ा-बहुत होता है, भविष्य बिल्कुल नहीं होता। इसलिए जानवर निश्चिंत हैं; क्योंकि चिंता सब भविष्य के बोध से पैदा होती है। जानवर रोज अपने आसपास किसी को मरते देखते हैं, लेकिन यह कल्पना नहीं कर पाते कि मैं मरूंगा। इसलिए मृत्यु का कोई भय जानवर को नहीं है। आदमी में भी बहुत आदमी हैं जिनको यह ख्याल नहीं आता है कि मैं मरूंगा; उनको भी ख्याल आता है--कोई और मरता है, कोई और मरता है, कोई और मरता है। मैं मरूंगा, इसका ख्याल नहीं आता। उसका कारण सिर्फ यह है कि चौथे शरीर में कल्पना जितनी विस्तीर्ण होनी चाहिए कि दूर तक देख पाए, वह नहीं हो रहा।

अब इसका मतलब यह हुआ कि कल्पना भी सही होती है और मिथ्या होती है। सही का मतलब सिर्फ यह है कि हमारी संभावना दूर तक देखने की है। जो अभी नहीं है, उसको देखने की संभावना कल्पना की बात है। लेकिन जो होगा ही नहीं, जो है ही नहीं, उसको भी मान लेना कि हो गया है और है, वह मिथ्या कल्पना होगी।

तो कल्पना का अगर ठीक उपयोग हो तो विज्ञान पैदा हो जाता है, क्योंकि विज्ञान सिर्फ एक कल्पना है--प्राथमिक रूप से। हजारों साल से आदमी सोचता है कि आकाश में उड़ेंगे। जिस आदमी ने यह सोचा है आकाश में उड़ेंगे, बड़ा कल्पनाशील रहा होगा। लेकिन अगर किसी आदमी ने यह न सोचा होता तो राइट ब्रदर्स हवाई जहाज नहीं बना सकते थे। हजारों लोगों ने कल्पना की है और सोचा है कि हवाई जहाज में उड़ेंगे, इसकी संभावना को जाहिर किया है। फिर धीरे-धीरे, धीरे-धीरे संभावना प्रकट होती चली गई--खोज हो गई और बात हो गई। फिर हम सोच रहे हैं हजारों वर्षों से कि चांद पर पहुंचेंगे। वह कल्पना थी; उस कल्पना को जगह मिल गई। लेकिन वह कल्पना आथेंटिक थी। यानी वह कल्पना मिथ्या के मार्ग पर नहीं थी। वह कल्पना भी उस सत्य के मार्ग पर थी जो कल आविष्कृत हो सकता है।

तो वैज्ञानिक भी कल्पना कर रहा है, एक पागल भी कल्पना कर रहा है। तो अगर मैं कहूं कि पागलपन भी कल्पना है और विज्ञान भी कल्पना है, तो तुम यह मत समझ लेना कि दोनों एक ही चीज हैं। पागल भी कल्पना कर रहा है, लेकिन वह ऐसी कल्पनाएं कर रहा है जिनका वस्तु जगत से कभी कोई तालमेल न है, न हो सकता है। वैज्ञानिक भी कल्पना कर रहा है, लेकिन ऐसी कल्पना कर रहा है जो वस्तु जगत से तालमेल रखती है। और अगर कहीं तालमेल नहीं रखती है तो तालमेल होने की संभावना है पूरी की पूरी।

तो इस चौथे शरीर की जो भी संभावनाएं हैं उनमें सदा डर है कि हम कहीं भी चूक जाएं और मिथ्या का जगत शुरू हो जाता है। तो इसलिए इस चौथे शरीर में जाने के पहले सदा अच्छा है कि हम कोई अपेक्षाएं लेकर न जाएं, एक्सपेक्टेशंस न हों। क्योंकि यह चौथा शरीर मनस शरीर है।

जैसे कि मुझे अगर इस मकान से नीचे उतरना है--वस्तुतः, तो मुझे सीढ़ियां खोजनी पड़ेंगी, लिफ्ट खोजनी पड़ेगी। लेकिन मुझे अगर विचार में उतरना है, तो लिफ्ट और सीढ़ी की कोई जरूरत नहीं, मैं यहीं बैठकर उतर जाऊंगा।

तो विचार और कल्पना में खतरा यह है कि चूंकि कुछ नहीं करना पड़ता, सिर्फ विचार करना पड़ता है, कोई भी उतर सकता है। और अगर अपेक्षाएं लेकर कोई गया, तो जो अपेक्षाएं लेकर जाता है उन्हीं में उतर जाएगा। क्योंकि मन कहेगा कि ठीक है, कुंडलिनी जगानी है? यह जाग गई! और तुम कल्पना करने लगोगे कि

जाग रही, जाग रही, जाग रही। और तुम्हारा मन कहेगा कि बिल्कुल जाग गई और बात खत्म हो गई, कुंडलिनी उपलब्ध हो गई है; चक्र खुल गए हैं; ऐसा हो गया।

लेकिन इसको जांचने की कोई कसौटी है। और वह कसौटी यह है कि प्रत्येक चक्र के साथ तुम्हारे व्यक्तित्व में आमूल परिवर्तन होगा। उस परिवर्तन की तुम कल्पना नहीं कर सकते, क्योंकि वह परिवर्तन वस्तु जगत का हिस्सा है।

कुंडलिनी जागरण से व्यक्तित्व में आमूल रूपांतरण

जैसे, कुंडलिनी जागे तो शराब नहीं पी जा सकती है। असंभव है! क्योंकि वह जो मनस शरीर है, वह सबसे पहले शराब से प्रभावित होता है; वह बहुत डेलिकेट है। इसलिए बड़ी हैरानी की बात जानकर होगी कि अगर स्त्री शराब पी ले और पुरुष शराब पी ले, तो पुरुष शराब पीकर इतना खतरनाक कभी नहीं होता, जितनी स्त्री शराब पीकर खतरनाक हो जाती है। उसका मनस शरीर और भी डेलिकेट है। अगर एक पुरुष और एक स्त्री को शराब पिलाई जाए, तो पुरुष शराब पीकर इतना खतरनाक कभी नहीं होता, जितना स्त्री हो जाए। स्त्री तो इतनी खतरनाक सिद्ध होगी शराब पीकर जिसका कोई हिसाब लगाना मुश्किल है। उसके पास और भी डेलिकेट मेंटल बॉडी है, जो इतनी शीघ्रता से प्रभावित होती है कि फिर उसके वश के बाहर हो जाती है।

इसलिए स्त्रियों ने आमतौर से नशे से बचने की व्यवस्था कर रखी है, पुरुषों की बजाय ज्यादा। इस मामले में उन्होंने समानता का दावा अब तक नहीं किया था। लेकिन अब वे कर रही हैं; वह खतरनाक होगा। जिस दिन भी वे इस मामले में समानता का दावा करेंगी, उस दिन पुरुष के नशे करने से जो नुकसान नहीं हुआ, वह स्त्री के नशे करने से होगा।

यह जो चौथा शरीर है, इसमें सच में ही कुंडलिनी जगी है, यह तुम्हारे कहने और अनुभव करने से सिद्ध नहीं होगा; क्योंकि वह तो झूठ में भी तुम्हें अनुभव होगा और तुम कहोगे। नहीं, वह तो तुम्हारा जो वस्तु जगत का व्यक्तित्व है, उससे तय हो जाएगा कि वह घटना घटी है या नहीं घटी है; क्योंकि उसमें तत्काल फर्क पड़ने शुरू हो जाएंगे।

इसलिए मैं निरंतर कहता हूं कि आचरण जो है वह कसौटी है--साधन नहीं है; भीतर कुछ घटा है, उसकी कसौटी है। और प्रत्येक प्रयोग के साथ कुछ बातें अनिवार्य रूप से घटना शुरू होंगी। जैसे चौथे शरीर की शक्ति के जगने के बाद किसी भी तरह का मादक द्रव्य नहीं लिया जा सकता। अगर लिया जाता है, और उसमें रस है, तो जानना चाहिए कि किसी मिथ्या कुंडलिनी के ख्याल में पड़ गए हो। वह नहीं संभव है।

जैसे कुंडलिनी जागने के बाद हिंसा करने की वृत्ति सब तरफ से विदा हो जाएगी--हिंसा करना ही नहीं, हिंसा करने की वृत्ति! क्योंकि हिंसा करने की जो वृत्ति है, हिंसा करने का जो भाव है, दूसरे को नुकसान पहुंचाने की जो भावना और कामना है, वह तभी तक हो सकती है जब तक कि तुम्हारी कुंडलिनी शक्ति नहीं जगी है। जिस दिन वह जगती है, उसी दिन से तुम्हें दूसरा दूसरा नहीं दिखाई पड़ता, कि उसको तुम नुकसान पहुंचा सको; उसको तुम नुकसान नहीं पहुंचा सकते। और तब तुम्हें हिंसा रोकनी नहीं पड़ेगी, तुम हिंसा नहीं कर पाओगे। और अगर तब भी रोकनी पड़ रही हो, तो जानना चाहिए कि अभी वह जगी नहीं है। अगर तुम्हें अब भी संयम रखना पड़ता हो हिंसा पर, तो समझना चाहिए कि अभी कुंडलिनी नहीं जगी है।

अगर आंख खुल जाने पर भी तुम लकड़ी से टटोल-टटोलकर चलते हो, तो समझ लेना चाहिएः आंख नहीं खुली है--भला तुम कितना ही कहते हो कि आंख खुल गई है। क्योंकि तुम अभी लकड़ी नहीं छोड़ते और तुम टटोलना अभी जारी रखे हुए हो, टटोलना भी बंद नहीं करते। तो साफ समझा जा सकता है। हमें पता नहीं है

कि तुम्हारी आंख खुली है कि नहीं खुली, लेकिन तुम्हारी लकड़ी और तुम्हारा टटोलना और डर-डरकर तुम्हारा चलना बताता है कि आंख नहीं खुली है।

चरित्र में आमूल परिवर्तन होगा। और सारे नियम, जो कहे गए हैं महाव्रत, वे सहज हो जाएंगे। तो समझना कि सच में ही आथेंटिक है--साइकिक ही है, लेकिन आथेंटिक है। और अब आगे जा सकते हो, क्योंकि आथेंटिक से आगे जा सकते हो; अगर झूठी है तो आगे नहीं जा सकते। और चौथा शरीर मुकाम नहीं है, अभी और शरीर हैं।

चौथे शरीर में चमत्कारों का प्रारंभ

तो मैंने कहा कि चौथा शरीर कम लोगों का विकसित होता है। इसीलिए दुनिया में मिरेकल्स हो रहे हैं। अगर चौथा शरीर हम सबका विकसित हो तो दुनिया में चमत्कार तत्काल बंद हो जाएंगे। यह ऐसे ही है, जैसे कि चौदह साल तक हमारा शरीर विकसित हो, और हमारी बुद्धि विकसित न हो पाए, तो एक आदमी जो हिसाब-किताब लगा सकता हो बुद्धि से, गणित का हिसाब कर सकता हो, वह चमत्कार मालूम हो।

ऐसा था। आज से हजार साल पहले जब कोई कह देता था कि फलां दिन सूर्य-ग्रहण पड़ेगा, तो वह बड़ी चमत्कार की बात थी; वह परम ज्ञानी ही बता सकता था। अब आज हम जानते हैं कि यह मशीन बता सकती है, यह सिर्फ गणित का हिसाब है। इसमें कोई ज्योतिष और कोई प्रोफेसी और कोई बड़े भारी ज्ञानी की जरूरत नहीं है, एक कंप्यूटर बता सकता है--और एक साल का नहीं, आनेवाले करोड़ों साल का बता सकता है कि कब-कब सूर्य-ग्रहण पड़ेगा। और अब तो कंप्यूटर यह भी बता सकता है कि सूरज कब ठंडा हो जाएगा। क्योंकि अब तो सारा हिसाब है! वह जितनी गर्मी फेंक रहा है, उससे उसकी कितनी गर्मी रोज कम होती जा रही है, उसमें कितना गर्मी का भंडार है, वह इतने हजार वर्ष में ठंडा हो जाएगा, एक मशीन बता देगी। लेकिन यह अब हमको चमत्कार नहीं मालूम पड़ेगा, क्योंकि हम सब तीसरे शरीर को विकसित कर लिए हैं। आज से हजार साल पहले यह बात चमत्कार की थी कि कोई आदमी बता दे कि अगले साल, फलां रात को, ऐसा होगा कि चांद पर ग्रहण हो जाएगा। तो जब साल भर बाद ग्रहण हो जाता, तो हमें मानना पड़ता कि यह आदमी अलौकिक है।

अभी जो चमत्कार घट रहे हैं, कि कोई आदमी ताबीज निकाल देता है, किसी आदमी की तस्वीर से राख गिर जाती है, ये सब चौथे शरीर के लिए बड़ी साधारण सी बातें हैं। लेकिन वह हमारे पास नहीं है, तो हमारे लिए बड़ा भारी चमत्कार है।

यह सारी बात ऐसी है जैसे कि एक झाड़ के नीचे तुम खड़े हो और मैं झाड़ के ऊपर बैठा हूं। मैं तुमसे कहता हूं कि घंटे भर बाद एक बैलगाड़ी इस रास्ते पर आएगी। वह मुझे दिखाई पड़ रही है--मैं झाड़ के ऊपर बैठा हूं, तुम झाड़ के नीचे बैठे हो, हम दोनों में बातें हो रही हैं। मैं कहता हूं, एक घंटे बाद एक बैलगाड़ी इस झाड़ के नीचे आएगी।

तुम कहते हो, बड़े चमत्कार की बातें कर रहे हो! बैलगाड़ी कहीं दिखाई नहीं पड़ती। क्या आप कोई भविष्यवक्ता हैं? मैं नहीं मान सकता।

लेकिन घंटे भर बाद बैलगाड़ी आ जाती है, और तब आपको मेरे चरण छूने पड़ते हैं कि गुरुदेव, मैं नमस्कार करता हूं, आप बड़े भविष्यवक्ता हैं। लेकिन फर्क कुल इतना है कि मैं थोड़ी ऊंचाई पर एक झाड़ पर बैठा हूं, जहां से मुझे बैलगाड़ी घंटे भर पहले वर्तमान हो गई थी। भविष्य की बात मैं नहीं कह रहा हूं, मैं भी वर्तमान की ही बात कह रहा हूं। लेकिन आपके वर्तमान में, मेरे वर्तमान में घंटे भर का फासला है, क्योंकि मैं एक ऊंचाई पर बैठा हूं। आपके लिए घंटे भर बाद वह वर्तमान बनेगा, मेरे लिए अभी वर्तमान हो गया है।

तो जितने गहरे शरीर पर व्यक्ति खड़ा हो जाएगा, उतना ही पीछे के शरीर के लोगों के लिए चमत्कार हो जाएगा। और उसकी सब चीजें मिरेकुलस मालूम पड़ने लगेंगी कि यह हो रहा है, यह हो रहा है, यह हो रहा है। और हमारे पास कोई उपाय न होगा कि कैसे हो रहा है; क्योंकि उस चौथे शरीर के नियम का हमें कोई पता नहीं है। इसलिए दुनिया में जादू चलता है, चमत्कार घटित होते हैं; वे सब चौथे शरीर के थोड़े से विकास से हैं।

इसलिए दुनिया से अगर चमत्कार खतम करने हों, तो लोगों को समझाने से खतम नहीं होंगे; चमत्कार खतम करने हों तो जैसे हम तीसरे शरीर की शिक्षा देकर प्रत्येक व्यक्ति को गणित और भाषा समझने के योग्य बना देते हैं, उसी तरह हमें चौथे शरीर की शिक्षा भी देनी पड़ेगी और प्रत्येक व्यक्ति को इस तरह की चीजों के योग्य बना देना होगा। तब दुनिया से चमत्कार मिटेंगे, उसके पहले नहीं मिट सकते। कोई न कोई आदमी इसका फायदा लेता रहेगा।

चौथा शरीर अट्ठाइस वर्ष तक विकसित होता है--यानी सात वर्ष फिर और। लेकिन मैंने कहा कि कम ही लोग इसको विकसित करते हैं।

पांचवां आत्म शरीर

पांचवां शरीर बहुत कीमती है, जिसको अध्यात्म शरीर या स्प्रिचुअल बॉडी कहें। वह पैंतीस वर्ष की उम्र तक, अगर ठीक से जीवन का विकास हो, तो उसको विकसित हो जाना चाहिए।

लेकिन वह तो बहुत दूर की बात है, चौथा शरीर ही नहीं विकसित हो पाता। इसलिए आत्मा वगैरह हमारे लिए बातचीत है, सिर्फ चर्चा है; उस शब्द के पीछे कोई कंटेंट नहीं है। जब हम कहते हैं "आत्मा", तो उसके पीछे कुछ नहीं होता, सिर्फ शब्द होता है; जब हम कहते हैं "दीवाल", तो सिर्फ शब्द नहीं होता, पीछे कंटेंट होता है। हम जानते हैं, दीवाल यानी क्या। "आत्मा" के पीछे कोई अर्थ नहीं है, क्योंकि आत्मा हमारा अनुभव नहीं है। वह पांचवां शरीर है। और चौथे शरीर में कुंडलिनी जगे तो ही पांचवें शरीर में प्रवेश हो सकता है, अन्यथा पांचवें शरीर में प्रवेश नहीं हो सकता। चौथे का पता नहीं है, इसलिए पांचवें का पता नहीं हो पाता। और पांचवां भी बहुत थोड़े से लोगों को पता हो पाता है। जिसको हम आत्मवादी कहते हैं, कुछ लोग उस पर रुक जाते हैं, और वे कहते हैंः बस यात्रा पूरी हो गई; आत्मा पा ली और सब पा लिया।

यात्रा अभी भी पूरी नहीं हो गई।

इसलिए जो लोग इस पांचवें शरीर पर रुकेंगे, वे परमात्मा को इनकार कर देंगे; वे कहेंगे, कोई ब्रह्म, कोई परमात्मा वगैरह नहीं है। जैसे जो पहले शरीर पर रुकेगा, वह कह देगा कि कोई आत्मा वगैरह नहीं है। तो एक शरीरवादी है, एक मैटीरियलिस्ट है, वह कहता हैः शरीर सब कुछ है; शरीर मर जाता है, सब मर जाता है। ऐसा ही आत्मवादी है, वह कहता हैः आत्मा ही सब कुछ है, इसके आगे कुछ भी नहीं; बस परम स्थिति आत्मा है। लेकिन वह पांचवां शरीर ही है।

छठवां ब्रह्म शरीर और सातवां निर्वाण काया

छठवां शरीर ब्रह्म शरीर है, वह कास्मिक बॉडी है। जब कोई आत्मा को विकसित कर ले और उसको खोने को राजी हो, तब वह छठवें शरीर में प्रवेश करता है। वह बयालीस वर्ष की उम्र तक सहज हो जाना चाहिए--अगर दुनिया में मनुष्य-जाति वैज्ञानिक ढंग से विकास करे, तो बयालीस वर्ष तक हो जाना चाहिए।

और सातवां शरीर उनचास वर्ष तक हो जाना चाहिए। वह सातवां शरीर निर्वाण काया है; वह कोई शरीर नहीं है, वह बॉडीलेसनेस की हालत है। वह परम है। वहां शून्य ही शेष रह जाएगा। वहां ब्रह्म भी शेष नहीं है। वहां कुछ भी शेष नहीं है। वहां सब समाप्त हो गया है।

इसलिए बुद्ध से जब भी कोई पूछता है, वहां क्या होगा? तो वे कहते हैंः जैसे दीया बुझ जाता है, फिर क्या होता है? खो जाती है ज्योति, फिर तुम नहीं पूछते, कहां गई? फिर तुम नहीं पूछते, अब कहां रहती होगी? बस खो गई।

निर्वाण शब्द का मतलब होता है, दीये का बुझ जाना। इसलिए बुद्ध कहते हैं, निर्वाण हो जाता है। पांचवें शरीर तक मोक्ष की प्रतीति होगी, क्योंकि परम मुक्ति हो जाएगी; ये चार शरीरों के बंधन गिर जाएंगे और आत्मा परम मुक्त होगी।

तो मोक्ष जो है, वह पांचवें शरीर की अवस्था का अनुभव है।

अगर चौथे शरीर पर कोई रुक जाए, तो स्वर्ग का या नरक का अनुभव होगा; वे चौथे शरीर की संभावनाएं हैं।

अगर पहले, दूसरे और तीसरे शरीर पर कोई रुक जाए, तो यही जीवन सब कुछ है--जन्म और मृत्यु के बीच; इसके बाद कोई जीवन नहीं है।

अगर चौथे शरीर पर चला जाए, तो इस जीवन के बाद नरक और स्वर्ग का जीवन है; दुख और सुख की अनंत संभावनाएं हैं वहां।

अगर पांचवें शरीर पर पहुंच जाए, तो मोक्ष का द्वार है।

अगर छठवें पर पहुंच जाए, तो मोक्ष के भी पार ब्रह्म की संभावना है; वहां न मुक्त है, न अमुक्त है; वहां जो भी है उसके साथ वह एक हो गया। अहं ब्रह्मास्मि की घोषणा इस छठवें शरीर की संभावना है।

लेकिन अभी एक कदम और, जो लास्ट जंप है--जहां न अहं है, न ब्रह्म है; जहां मैं और तू दोनों नहीं हैं; जहां कुछ है ही नहीं, जहां परम शून्य है--टोटल, एब्सोल्यूट वॉयड--वह निर्वाण है।

हर सात साल में एक शरीर का विकास

ये सात शरीर हैं। इसलिए पचास वर्ष की... उनचास वर्ष में यह पूरा होता है, इसलिए औसतन पचास वर्ष को क्रांति का बिंदु समझा जाता था। पच्चीस वर्ष तक एक जीवन-व्यवस्था थी। इस पच्चीस वर्ष में कोशिश की जाती थी कि हमारे जो भी जरूरी शरीर हैं वे विकसित हो जाएं--यानी चौथे शरीर तक आदमी पहुंच जाए; मनस शरीर तक आदमी पहुंच जाए, तो उसकी शिक्षा पूरी हुई। फिर वह पांचवें शरीर को जीवन में खोजे। और पचास वर्ष तक--शेष पच्चीस वर्षों में--वह सातवें शरीर को उपलब्ध हो जाए। इसलिए पचास वर्ष में दूसरा क्रांति का बिंदु आएगा कि अब वह वानप्रस्थ हो जाए। वानप्रस्थ का मतलब केवल इतना ही है कि उसका मुख अब जंगल की तरफ हो जाए; अब आदमी की तरफ से, समाज की तरफ से, भीड़ की तरफ से वह मुंह को फेर ले। और पचहत्तर वर्ष फिर एक क्रांति का बिंदु है जहां से वह संन्यस्त हो जाए। वन की तरफ मुंह फेर ले--यह भीड़ और आदमी से बचे। और संन्यस्त का मतलब है--अपने से भी बचे; अब अपने से भी मुंह फेर ले। मतलब समझ रहे हो न तुम? यानी जंगल में अब मैं तो बच ही जाऊंगा! फिर इसको भी छोड़ने का वक्त है कि पचहत्तर वर्ष में फिर इसको भी छोड़ दे।

लेकिन गृहस्थ जीवन में उसके सातों शरीर का अनुभव और विकास हो जाना चाहिए, तो यह सब आगे बड़ा सहज और आनंदपूर्ण हो जाएगा; और अगर यह न हो पाए, तो यह बड़ा कठिन हो जाएगा। क्योंकि प्रत्येक उम्र के साथ विकास की एक स्थिति जुड़ी है। अगर एक बच्चे का शरीर सात वर्ष में स्वस्थ न हो पाए, तो फिर जिंदगी भर वह किसी न किसी अर्थों में बीमार रहेगा। ज्यादा से ज्यादा हम इतना ही इंतजाम कर सकते हैं कि वह बीमार न रहे, लेकिन स्वस्थ कभी न हो सकेगा। क्योंकि उसकी बेसिक फाउंडेशन जो सात साल में पड़नी

थी, वह डगमगा गई; वह उसी वक्त पड़नी थी। जैसे कि हमने मकान की नींव भरी; अगर नींव कमजोर रह गई, तो शिखर पर पहुंचकर उसको ठीक करना बहुत मुश्किल मामला है; वह जब नींव भरी थी, तभी मजबूत हो जानी चाहिए थी।

तो वे जो पहले सात वर्ष हैं, वह अगर भौतिक शरीर के लिए पूरी व्यवस्था मिल जाए, तो बात बनेगी। दूसरे सात वर्ष में अगर भाव शरीर का ठीक विकास न हो पाए, तो पच्चीस सेक्सुअल परवर्शन पैदा हो जाएंगे; फिर उनको सुधारना बहुत मुश्किल हो जाएगा। वह वही वक्त है, जब कि तैयारी उसकी हो जानी चाहिए। यानी जीवन की प्रत्येक सीढ़ी पर प्रत्येक शरीर की साधना का सुनिश्चित समय है। उसमें इंच, दो इंच का फेर-फासला और बात है। लेकिन एक सुनिश्चित समय है।

हर शरीर का समय पर विकसित हो जाना जरूरी

अगर किसी बच्चे में चौदह साल तक सेक्स का विकास न हो पाए, तो अब उसकी पूरी जिंदगी किसी तरह की मुसीबत में बीतेगी। अगर इक्कीस वर्ष तक उसकी बुद्धि विकसित न हो पाए, तो फिर अब बहुत कम उपाय हैं कि इक्कीस वर्ष के बाद हम उसकी बुद्धि को विकसित करवा पाएं।

लेकिन इस संबंध में हम सब राजी हो जाते हैं कि यह ठीक बात है। इसलिए हम पहले शरीर की भी फिकर कर लेते हैं, स्कूल में भी पढ़ा देते हैं, सब कर देते हैं। लेकिन बाद के शरीरों का विकास भी उस सुनिश्चित उम्र से बंधा हुआ है, और वह चूक जाने की वजह से बहुत कठिनाई होती है। एक आदमी पचास साल की उम्र में उस शरीर को विकसित करने में लगता है जो उसे इक्कीस वर्ष में लगना चाहिए था। तो इक्कीस वर्ष में जितनी ताकत उसके पास थी उतनी पचास वर्ष में उसके पास नहीं है। इसलिए अकारण कठिनाई पड़ती है और उसे बहुत ज्यादा श्रम उठाना पड़ता है जो कि इक्कीस वर्ष में आसान हुआ होता। वह अब एक लंबा पथ और कठिन पथ हो जाता है। और एक कठिनाई हो जाती है कि इक्कीस वर्ष में उस द्वार पर खड़ा था, और इक्कीस वर्ष और पचास वर्ष के बीच तीस वर्ष में वह इतने बाजारों में भटका है कि वह दरवाजे पर भी नहीं है अब, जहां इक्कीस वर्ष में अपने आप खड़ा हो गया था; जहां से जरा सी चोट और दरवाजा खुलता, अब उसको वह दरवाजा फिर से खोजना है। और वह इस बीच इतना भटक चुका है और इतने दरवाजे देख चुका है कि उसे पता लगाना भी मुश्किल है कि वह दरवाजा कौन सा है, जिस पर मैं इक्कीस वर्ष में खड़ा हो गया था।

इसलिए पच्चीस वर्ष तक बड़ी सुनियोजित व्यवस्था की जरूरत है बच्चों के लिए। वह इतनी सुनियोजित होनी चाहिए कि उनको चौथे पर तो पहुंचा दे। चौथे के बाद बहुत आसान है मामला। फाउंडेशन सब भर दी गई हैं, अब तो सिर्फ फल आने की बात है। पांचवें से फल आने शुरू हो जाते हैं। चौथे तक वृक्ष निर्मित होता है, पांचवें से फल आने शुरू होते हैं, सातवें पर पूरे हो जाते हैं। इसमें थोड़ी देर-अबेर हो सकती है, लेकिन यह बुनियाद पूरी की पूरी मजबूत हो जाए।

इस संबंध में एक-दो बातें और ख्याल में ले लेनी चाहिए।

स्त्री और पुरुष के चार विद्युतीय शरीर

चार शरीर तक स्त्री और पुरुष का फासला है। जैसे कोई व्यक्ति पुरुष है, तो उसकी फिजिकल बॉडी मेल बॉडी होती है; वह पुरुष शरीर होता है उसका भौतिक शरीर। लेकिन उसके पीछे की, नंबर दो की ईथरिक बॉडी, भाव शरीर स्त्रैण होती है; वह फीमेल बॉडी होती है। क्योंकि कोई निगेटिव या कोई पाजिटिव अकेला नहीं रह सकता। स्त्री का शरीर और पुरुष का शरीर, इसको अगर हम विद्युत की भाषा में कहें, तो निगेटिव और पाजिटिव बॉडी.ज हैं।

स्त्री के पास निगेटिव बॉडी है--स्थूल। इसीलिए स्त्री कभी भी सेक्स के संबंध में आक्रामक नहीं हो सकती, वह पुरुष पर बलात्कार नहीं कर सकती; उसके पास निगेटिव बॉडी है। वह बलात्कार झेल सकती है, कर नहीं सकती। पुरुष की बिना इच्छा के स्त्री उसके साथ कुछ भी नहीं कर सकती। लेकिन पुरुष के पास पाजिटिव बॉडी है, वह स्त्री की बिना इच्छा के भी कुछ कर सकता है; आक्रामक शरीर है उसके पास। निगेटिव का मतलब ऐसा नहीं कि शून्य, और ऐसा नहीं कि ऋणात्मक। निगेटिव का मतलब विद्युत की भाषा में इतना ही होता है--रिजर्वायर। स्त्री के पास एक ऐसा शरीर है जिसमें शक्ति संरक्षित है--बड़ी शक्ति संरक्षित है। लेकिन सक्रिय नहीं है; है वह निष्क्रिय शक्ति।

इसलिए स्त्रियां कुछ सृजन नहीं कर पातीं--न कोई बड़ी कविता का जन्म कर पाती हैं, न कोई बड़ी पेंटिंग बना पाती हैं, न कोई विज्ञान की खोज कर पाती हैं। उनके ऊपर कोई बड़ी खोज नहीं है, उनके ऊपर कोई सृजन नहीं है। क्योंकि सृजन के लिए आक्रामक होना जरूरी है; वे सिर्फ प्रतीक्षा करती रहती हैं। इसलिए सिर्फ बच्चे पैदा कर पाती हैं।

पुरुष के पास एक पाजिटिव बॉडी है--भौतिक शरीर। लेकिन जहां भी पाजिटिव है, उसके पीछे निगेटिव को होना चाहिए, नहीं तो वह टिक नहीं सकता। वे दोनों इकट्ठे ही मौजूद होते हैं, तब उनका पूरा सर्किल बनता है। तो पुरुष का जो नंबर दो का शरीर है, वह स्त्रैण है; स्त्री के पास जो नंबर दो का शरीर है, वह पुरुष का है।

इसलिए एक और मजे की बात है कि पुरुष दिखता बहुत ताकतवर है--जहां तक उसके भौतिक शरीर का संबंध है, वह बहुत ताकतवर है; लेकिन उसके पीछे एक कमजोर शरीर खड़ा हुआ है, स्त्रैण। इसलिए उसकी ताकत क्षणों में प्रकट होगी, लंबे अरसे में वह स्त्री से हार जाएगा; क्योंकि स्त्री के पीछे जो शरीर है, वह पाजिटिव है।

इसलिए रेसिस्टेंस की, सहने की क्षमता पुरुष से स्त्री में सदा ज्यादा होगी। अगर एक बीमारी पुरुष और स्त्री पर हो, तो स्त्री उसे लंबे समय तक झेल सकती है, पुरुष उतने लंबे समय तक नहीं झेल सकता। बच्चे स्त्रियां पैदा करती हैं, अगर पुरुष को पैदा करना पड़ें तब उसे पता चले। शायद दुनिया में फिर संतति-नियमन की कोई जरूरत न रह जाए, वह बंद ही कर दे। वह इतना कष्ट नहीं झेल सकता--और इतना लंबा! क्षण, दो क्षण को क्रोध में वह पत्थर फेंक सकता है, लेकिन नौ महीने एक बच्चे को पेट में नहीं झेल सकता और वर्षों तक उसे बड़ा नहीं कर सकता। और रात भर वह रोए तो उसकी गर्दन दबा देगा, उसको झेल नहीं सकता। ताकत तो उसके पास ज्यादा है, लेकिन पीछे उसके पास एक डेलिकेट और कमजोर शरीर है जिसकी वजह से वह उसको झेल नहीं पाता। इसलिए स्त्रियां कम बीमार पड़ती हैं।

स्त्रियों की उम्र पुरुष से ज्यादा है। इसलिए हम पांच साल का फासला रखते हैं शादी करते वक्त। नहीं तो दुनिया विधवाओं से भर जाए। इसलिए हम लड़का बीस साल का चुनते हैं तो लड़की पंद्रह साल की चुनते हैं, सोलह साल की चुनते हैं। क्योंकि चार और पांच साल का फासला है, नहीं तो सारी दुनिया विधवाओं से भर जाए। क्योंकि पुरुष की उम्र चार-पांच साल कम है। वह जब सत्तर साल में मरेगा तो कठिनाई खड़ी हो जाएगी। तो उसका, दोनों के बीच तालमेल बैठ जाए और वे बराबर जगह आ जाएं।

एक सौ सोलह लड़के पैदा होते हैं और एक सौ लड़कियां पैदा होती हैं; पैदा होते वक्त सोलह का फर्क होता है, सोलह लड़के ज्यादा पैदा होते हैं। लेकिन दुनिया में स्त्री-पुरुष की संख्या बराबर हो जाती है पीछे। सोलह लड़के चौदह साल के होने के पहले मर जाते हैं और करीब-करीब बराबर अनुपात हो जाता है। लड़के

ज्यादा मरते हैं, लड़कियां कम मरती हैं, उनके पास रेसिस्टेंस की क्षमता, प्रतिरोध की क्षमता प्रबल है। वह उनके पीछे के शरीर से आती है।

दूसरी बातः तीसरा शरीर जो है पुरुष का, वह फिर पुरुष का होगा--यानी सूक्ष्म शरीर। और चौथा शरीर, मनस शरीर फिर स्त्री का होगा। और ठीक इससे उलटा स्त्री में होगा।

चार शरीरों तक स्त्री-पुरुष का विभाजन है, पांचवां शरीर बियांड सेक्स है।

इसलिए आत्म-उपलब्धि होते ही इस जगत में फिर कोई स्त्री और पुरुष नहीं है। लेकिन तब तक स्त्री-पुरुष है।

और इस संबंध में एक बात और ख्याल आती है, वह मैं आपसे कहूं कि चूंकि प्रत्येक पुरुष के पास स्त्री का शरीर है भीतर और प्रत्येक स्त्री के पास पुरुष का शरीर है, अगर संयोग से स्त्री को ऐसा पति मिल जाए जो उसके भीतर के पुरुष शरीर से मेल खाता हो, तभी विवाह सफल होता है, नहीं तो नहीं हो पाता; या पुरुष को ऐसी स्त्री मिल जाए तो उसके भीतर की स्त्री से मेल खाती है, तो ही सफल होता है, नहीं तो नहीं हो पाता।

प्रथम चार शरीरों के विकास के बिना विवाह असफल

इसलिए सारी दुनिया में सौ में निन्यानबे विवाह असफल होते हैं, क्योंकि उनकी गहरी सफलता का सूत्र अभी तक साफ नहीं हो सका है। और उसको हम कैसे खोजबीन करें कि उनके भीतरी शरीरों से मेल खा जाए, तब तक दुनिया में विवाह असफल ही होता रहेगा। उसके लिए हम कुछ भी इंतजाम कर लें, वह सफल नहीं हो सकता। और उसको हम तभी खोज पाएंगे जब यह सारी की सारी शरीरों की पूरी वैज्ञानिक व्यवस्था अत्यंत स्पष्ट हो जाए।

और इसलिए अगर एक युवक विवाह के पहले, एक युवती विवाह के पहले, अपनी कुंडलिनी जागरण तक पहुंच गए हों, तो उन्हें ठीक साथी चुनना सदा आसान है। उसके पहले ठीक साथी चुनना कभी भी आसान नहीं है। क्योंकि वे अपने भीतर के शरीरों की पहचान से बाहर के ठीक शरीर को चुन पा सकते हैं।

इसलिए हमारी कोशिश थी, जो लोग जानते थे, वे पच्चीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य वास में और इन चार शरीरों के विकास तक ले जाने के बाद... तभी विवाह, उसके पहले विवाह नहीं! क्योंकि किससे विवाह करना है? किसके साथ तुम्हें रहना है? खोज किसकी है? हम किसको खोज रहे हैं? एक पुरुष एक स्त्री को... कौन सी स्त्री को खोज रहा है जिससे वह तृप्त हो सकेगा?

वह अपने ही भीतर की स्त्री को खोज रहा है; एक स्त्री अपने ही भीतर के पुरुष को खोज रही है। अगर कहीं तालमेल बैठ जाता है संयोग से, तब तो वह तृप्त हो जाता है, अन्यथा वह अतृप्ति बनी रहती है। फिर हजार तरह की विकृति पैदा होती है--कि वह वेश्या को खोज रहा है, वह पड़ोस की स्त्री को खोज रहा है, वह यहां जा रहा है, वह वहां जा रहा है। वह परेशानी बढ़ती चली जाती है। और जितनी मनुष्य की बुद्धि विकसित होगी उतनी यह परेशानी बढ़ेगी। अगर चौदह वर्ष तक ही आदमी रुक जाए तो यह परेशानी नहीं होगी। क्योंकि यह सारी परेशानी तीसरे शरीर के विकास से शुरू होगी, बुद्धि के। अगर सिर्फ दूसरा शरीर विकसित हो, भाव शरीर, तो वह सेक्स से तृप्त हो जाएगा।

इसलिए दो रास्ते थेः या तो हम पच्चीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य के काल में उसको चार शरीरों तक पहुंचा दें, और या फिर बाल-विवाह कर दें। क्योंकि बाल-विवाह का मतलब है कि बुद्धि का शरीर विकसित होने के पहले। ताकि वह सेक्स पर ही रुक जाए और कभी झंझट में न पड़े। तब उसका जो संबंध है स्त्री-पुरुष का, वह बिल्कुल पाशविक संबंध है। बाल-विवाह का जो संबंध है, वह सिर्फ सेक्स का संबंध है; प्रेम जैसी संभावना वहां नहीं है।

इसलिए अमेरिका जैसे मुल्कों में, जहां शिक्षा बहुत बढ़ गई, और जहां तीसरा शरीर पूरी तरह विकसित हो गया, वहां विवाह टूटेगा, वह नहीं बच सकता। क्योंकि तीसरा शरीर कहता हैः मेल नहीं खाता। इसलिए तलाक फौरन तैयार हो जाएगा, क्योंकि मेल नहीं खाता तो इसको खींचना कैसे संभव है।

सम्यक शिक्षा में चार शरीरों का विकास

ये चार शरीर अगर विकसित हों, तो ही मैं कहता हूंः शिक्षा ठीक है, सम्यक है। राइट एजुकेशन का मतलब हैः चार शरीर तक तुम्हें ले जाए। क्योंकि पांचवें शरीर तक कोई शिक्षा नहीं ले जा सकती, वहां तो तुम्हें जाना पड़ेगा। लेकिन चार शरीर तक शिक्षा ले जा सकती है। इसमें कोई कठिनाई नहीं है।

पांचवां कीमती शरीर है, उसके बाद यात्रा निजी शुरू हो जाती है। फिर छठवां और सातवां तुम्हारी निजी यात्रा है।

कुंडलिनी जो है वह चौथे शरीर की संभावना है। मेरी बात ख्याल में आई न?

प्रश्नः शक्तिपात में कंडक्टर का काम करनेवाले व्यक्ति के साथ क्या साधक की साइकिक बाइंडिंग हो जाती है? उससे क्या-क्या हानियां साधक को हो सकती हैं? क्या उसके अच्छे उपयोग भी हैं?

बंधन का तो कोई अच्छा उपयोग नहीं है, क्योंकि बंधन ही बुरी बात है; और जितना गहरा बंधन हो उतनी ही बुरी बात है। तो साइकिक बाइंडिंग तो बहुत बुरी बात है। अगर मेरे हाथ में कोई जंजीर डाल दे तो चलेगा; क्योंकि वह मेरे भौतिक शरीर को ही पकड़ पाती है। लेकिन कोई मेरे ऊपर प्रेम की जंजीर डाल दे तो ज्यादा झंझट शुरू हुई; क्योंकि वह जंजीर गहरे चली गई। वह जंजीर गहरे चली गई और उसको तोड़ना उतना आसान नहीं रह गया। कोई श्रद्धा की जंजीर डाल दे तो और गहरी चली गई, उसको तोड़ना और अनहोली काम हो गया न! अपवित्र काम हो गया। वह और मुश्किल बात हो गई।

तो बंधन तो सभी बुरे हैं; और मनस बंधन तो और भी बुरे हैं।

शक्तिपात का सही माध्यम

जो व्यक्ति शक्तिपात में वाहन का काम करे, वह व्यक्ति तो तुम्हें बांधना ही न चाहेगा। अगर शक्तिपात हो रहा है, तो वह व्यक्ति तो तुम्हें बांधना न चाहेगा; क्योंकि अगर वह बांधना चाहता हो तो वह पात्र ही नहीं है कि वह वाहन बन सके। हां, लेकिन तुम बंध सकते हो। तुम बंध सकते हो, तुम उसके पैर पकड़ ले सकते हो कि मैं अब आपको न छोडूंगा, आपने मेरे ऊपर इतना उपकार किया। उस समय सजग होने की जरूरत है। उस समय बहुत सजग होने की जरूरत है कि साधक, जिस पर शक्तिपात हो, वह अपने को बंधन से बचा सके।

लेकिन अगर यह ख्याल हो, और अगर यह बात साफ हो कि बंधन मात्र आध्यात्मिक यात्रा में भारी पड़ जाते हैं, तो अनुग्रह बांधेगा नहीं, बल्कि अनुग्रह भी खोलेगा। यानी मैं तुम्हारे प्रति कृतज्ञ हो जाऊं, तो यह बंधन क्यों बने? इसमें बंधन होने की क्या बात है? बल्कि अगर मैं कृतज्ञता ज्ञापन न कर पाऊं तो शायद भीतर एक बंधन रह जाए कि मैं धन्यवाद भी नहीं दे पाया। लेकिन धन्यवाद देने का मतलब यह है कि बात समाप्त हो गई।

सुरक्षा--भयभीत की खोज

अनुग्रह बंधन नहीं है, बल्कि अनुग्रह का भाव परम स्वतंत्रता का भाव है। लेकिन हम कोशिश करते हैं बंधने की, क्योंकि हमारे भीतर भय है। और हम सोचते हैंः अकेले खड़े रह पाएंगे, नहीं खड़े रह पाएंगे? किसी से बंध जाएं। दूसरे की तो बात छोड़ दें, अंधेरी गली में से आदमी निकलता है तो खुद ही जोर-जोर से गाना गाने

लगता है; अपनी ही आवाज जोर से सुनकर भी भय कम होता है। अपनी ही आवाज! दूसरे की आवाज भी होती तब भी ठीक था कि कोई दूसरा भी मौजूद है! लेकिन अपनी ही आवाज जोर से सुनकर कांफिडेंस बढ़ता मालूम पड़ता है कि कोई डर नहीं।

तो आदमी भयभीत है और वह कुछ भी पकड़ने लगता है। और अगर डूबते को तिनका भी मिल जाए, तो वह आंख बंद करके उसको भी पकड़ लेता है। हालांकि इस तिनके से डूबने से नहीं बचता, सिर्फ डूबनेवाले के साथ तिनका भी डूब जाता है। लेकिन भय में हमारा चित्त पकड़ लेना चाहता है। सारी बाइंडिंग फियर की है। तो गुरु हो--यह हो, वह हो--कोई भी, उसको पकड़ लेंगे हम। पकड़कर हम सुरक्षित होना चाहते हैं। एक तरह की सिक्योरिटी है।

असुरक्षा में ही आत्मा का विकास

और साधक को सुरक्षा से बचना चाहिए। साधक के लिए सुरक्षा सबसे बड़ा मोहजाल है। अगर उसने एक दिन भी सुरक्षा चाही, और उसने कहा कि अब मैं किसी की शरण में सुरक्षित हो जाऊंगा, और किसी की आड़ में अब कोई भय नहीं है, अब मैं भटक नहीं सकता, अब मैंने ठीक मुकाम पा लिया, अब मैं कहीं जाऊंगा नहीं, अब मैं यहीं बैठा रहूंगा, तो वह भटक गया; क्योंकि साधक के लिए सुरक्षा नहीं है। साधक के लिए असुरक्षा वरदान है; क्योंकि जितनी असुरक्षा है, उतना ही साधक की आत्मा को फैलने, बलवान होने, अभय होने का मौका है; जितनी सुरक्षा है, उतना साधक के निर्बल होने की व्यवस्था है; वह उतना निर्बल हो जाएगा।

बेसहारा होने के लिए ही सहारे का उपयोग

सहारा लेना एक बात है, सहारा लिए ही चले जाना बिल्कुल दूसरी बात है। सहारा दिया ही इसलिए गया है कि तुम बेसहारे हो सको; सहारा दिया ही इसलिए गया है कि अब तुम्हें सहारे की जरूरत न रहे।

एक बाप अपने बेटे को चलना सिखा रहा है। कभी ख्याल किया है कि जब बाप अपने बेटे को चलना सिखाता है, तो बाप बेटे का हाथ पकड़ता है; बेटा नहीं पकड़ता। लेकिन थोड़े दिन बाद जब बेटा थोड़ा चलना सीख जाता है, तो बाप का हाथ बाप तो छोड़ देता है, लेकिन बेटा पकड़ लेता है। कभी बाप को चलाते देखें, तो अगर बेटा हाथ पकड़े हो तो समझो कि वह चलना सीख गया है, लेकिन फिर भी हाथ नहीं छोड़ रहा है; और अगर बाप हाथ पकड़े हो तो समझना कि अभी चलना सिखाया जा रहा है, अभी छोड़ने में खतरा है; अभी छोड़ा नहीं जा सकता। और बाप तो चाहेगा ही यह कि कितनी जल्दी हाथ छूट जाए; क्योंकि इसीलिए तो सिखा रहा है।

और अगर कोई बाप इस मोह से भर जाए कि उसे मजा आने लगे कि बेटा उसका हाथ पकड़े ही रहे, तो वह बाप दुश्मन हो गया। बहुत बाप हो जाते हैं। बहुत गुरु हो जाते हैं। लेकिन चूक गए वे। जिस बात के लिए उन्होंने सहारा दिया था, वही खत्म हो गई। वह तो उन्होंने क्रिपिल्ड पैदा कर दिए जो अब उनकी बैसाखी लेकर चलेंगे। हालांकि उनको मजा आता है कि मेरी बैसाखी के बिना तुम नहीं चल सकते। अहंकार की तृप्ति मिलती है। लेकिन जिस गुरु को अहंकार की तृप्ति मिल रही हो, वह तो गुरु ही नहीं है।

लेकिन बेटा पकड़े रह सकता है पीछे भी; क्योंकि बेटा डर जाए कि कहीं गिर न जाऊं! क्योंकि बिना बाप के मैं कैसे चल सकूंगा? तो गुरु का काम है कि उसके हाथ को झिड़के और कहे कि अब तुम चलो। और कोई फिकर नहीं, दो-चार बार गिरो तो ठीक है, उठ आना। आखिर उठने के लिए गिरना जरूरी है। और, गिरने का डर मिटाने के लिए भी कुछ बार गिरना जरूरी है कि अब नहीं गिरेंगे।

हमारे मन में यह हो सकता है कि किसी का सहारा पकड़ लें, तो फिर बाइंडिंग पैदा हो जाती है। वह पैदा नहीं करना है। किसी साधक को ध्यान लेकर चलना है कि वह कोई सुरक्षा की तलाश में नहीं है; वह सत्य की खोज में है, सुरक्षा की खोज में नहीं है। और अगर सत्य की खोज करनी है तो सुरक्षा का ख्याल छोड़ना पड़ेगा। नहीं तो असत्य बहुत बार बड़ी सुरक्षा देता है--और जल्दी से दे देता है। तो फिर सुरक्षा का खोजी असत्य को पकड़ लेता है। कनवीनिएंस का खोजी सत्य तक नहीं पहुंचता, क्योंकि लंबी यात्रा है। फिर वह यहीं असत्य को गढ़ लेता है और यहीं बैठे हुए पा लेता है। और बात समाप्त हो जाती है।

अंधश्रद्धा क्यों

इसलिए किसी भी तरह का बंधन... और गुरु का बंधन तो बहुत ही खतरनाक है, क्योंकि वह आध्यात्मिक बंधन है। और आध्यात्मिक बंधन शब्द ही कंट्राडिक्टरी है; क्योंकि आध्यात्मिक स्वतंत्रता तो अर्थ रखती है, आध्यात्मिक गुलामी का कोई अर्थ नहीं होता। लेकिन इस दुनिया में आध्यात्मिक रूप से जितने लोग गुलाम हैं, उतने लोग और किसी रूप से गुलाम नहीं हैं। उसका कारण है; क्योंकि जिस चौथे शरीर के विकास से आध्यात्मिक स्वतंत्रता की संभावना पैदा होगी, वह चौथा शरीर नहीं है। उसके कारण हैं--वे तीसरे शरीर तक विकसित हैं।

इसलिए अक्सर देखा जाएगा कि एक आदमी हाईकोर्ट का चीफ जस्टिस है, किसी युनिवर्सिटी का वाइसचांसलर है, और किसी निपट गंवार आदमी के पैर पकड़े बैठा हुआ है। और उसको देखकर हजार गंवार उसके पीछे बैठे हुए हैं--कि जब हाईकोर्ट का जस्टिस बैठा है, वाइसचांसलर बैठा है युनिवर्सिटी का, तो हम क्या हैं! लेकिन उसे पता नहीं कि यह जो आदमी है, इसका तीसरा शरीर तो बहुत विकसित हुआ है, इसने बुद्धि का तो बहुत विकास किया था, लेकिन चौथे शरीर के मामले में यह बिल्कुल गंवार है; उसके पास वह शरीर नहीं है। और इसके पास चूंकि तीसरा शरीर है केवल, बुद्धि और तर्क का विचार करते-करते यह थक गया और अब विश्राम कर रहा है। और जब बुद्धि थककर विश्राम करती है तो बड़े अबुद्धिपूर्ण काम करती है। कोई भी चीज जब थककर विश्राम करती है तो उलटी हो जाती है। इसलिए यह बड़ा खतरा है।

इसलिए आश्रमों में आपको मिल जाएंगे, हाईकोर्ट के जजे.ज वहां निश्चित मिलेंगे। वे थक गए हैं, वे बुद्धि से परेशान हो गए हैं, वे इससे छुटकारा चाहते हैं। वे कोई भी अबुद्धिपूर्ण, इररेशनल, किसी भी चीज में विश्वास करके आंख बंद करके बैठ जाते हैं। वे कहते हैंः सोच लिया बहुत, विवाद कर लिया बहुत, तर्क कर लिया बहुत, कुछ नहीं मिला; अब इसको हम छोड़ते हैं। तो वे किसी को भी पकड़ लेते हैं। और उनको देखकर, पीछे जो बुद्धिहीन वर्ग है, वह कहता हैः जब इतने बुद्धिमान लोग हैं, तो फिर हमको भी पकड़ लेना चाहिए। लेकिन वे जहां तक चौथे शरीर का संबंध है, निपट ना-कुछ हैं।

इसलिए चौथे शरीर का किसी व्यक्तित्व में थोड़ा सा भी विकास हुआ हो, तो बड़े से बड़ा बुद्धिमान उसके चरणों को पकड़कर बैठ जाएगा; क्योंकि उसके पास कुछ है, जिसके मामले में यह बिल्कुल निर्धन है।

तो चूंकि चौथा शरीर विकसित नहीं है, इसलिए बाइंडिंग पैदा होती है। ऐसा मन होता है कि किसी को पकड़ लो; जिसका विकसित है, उसको पकड़ लो। लेकिन उसको पकड़ने से विकसित नहीं हो जाएगा; उसको समझने से विकसित हो सकता है। और पकड़ना समझने से बचने का उपाय है--कि समझने की क्या जरूरत है? समझने की क्या जरूरत है, हम आपके ही चरण पकड़े रहते हैं! तो जब आप वैतरणी पार होओगे, हम भी हो जाएंगे। हम आपको ही नाव बनाए लेते हैं; हम उसी में सवार रहेंगे; जब आप पहुंचोगे, हम भी पहुंच जाएंगे।

साधना के श्रम से बचने के लिए अंधानुकरण

समझने में कष्ट है। समझने में अपने को बदलना पड़ेगा। समझना एक प्रयास, एक साधना है। समझना एक श्रम है, समझना एक क्रांति है। समझने में एक रूपांतरण होगा, सब बदलेगा पुराना; नया करना पड़ेगा। इतनी झंझट क्यों करनी! जो आदमी जानता है, हम उसको पकड़ लेते हैं; हम उसके पीछे चले जाएंगे।

लेकिन इस जगत में सत्य तक कोई किसी के पीछे नहीं जा सकता; वहां अकेले ही पहुंचना पड़ता है। वह रास्ता ही निर्जन है। वह रास्ता ही अकेले का है। इसलिए किसी तरह का बंधन वहां बाधा है।

तो सीखना, समझना, जहां से जो झलक मिले उसे लेना, लेकिन रुकना कहीं भी मत; किसी भी जगह को तुम मुकाम मत बना लेना और उसका हाथ पकड़ मत लेना कि बस अब ठीक, आ गए। हालांकि बहुत लोग मिलेंगे, जो कहेंगेः कहां जाते हो? रुक जाओ मेरे पास! बहुत लोग मिलेंगे जिनको...

यह दूसरा हिस्सा है। जैसा कि मैंने कहा, भयभीत आदमी बंधना चाहता है किसी से, तो कुछ भयभीत आदमी बांधना भी चाहते हैं किसी को; उनको उससे भी अभय हो जाता है। जिस आदमी को लगता है, मेरे साथ हजार अनुयायी हैं, उसको लगता है--मैं ज्ञानी हो गया, नहीं तो हजार अनुयायी कैसे होते! जब हजार आदमी मुझे माननेवाले हैं, तो जरूर मैं कुछ जानता हूं, नहीं तो मानेंगे कैसे!

यह बड़े मजे की बात है कि गुरु बनना कई बार तो सिर्फ इसी मानसिक हीनता के कारण होता है--कि दस हजार मेरे शिष्य हैं, बीस हजार! तो गुरु लगे हैं शिष्य बढ़ाने में--कि मेरे सात सौ संन्यासी हैं, मेरे हजार संन्यासी हैं, मेरे इतने शिष्य हैं--वे फैलाने में लगे हैं। क्योंकि जितना यह विस्तार फैलता है, वे आश्वस्त होते हैं कि जरूर मैं जानता हूं, नहीं तो हजार आदमी मुझे क्यों मानते! यह तर्क लौटकर उनको विश्वास दिलाता है कि मैं जानता हूं। अगर ये हजार शिष्य खो जाएं, तो उनको लगेगा कि गया। इसका मतलब कि मैं नहीं जानता।

जहां बंधन है, वहां संबंध नहीं है

बड़े मानसिक खेल चलते हैं। बड़े मानसिक खेल चलते हैं। उन मानसिक खेलों से सावधान होने की जरूरत है--दोनों तरफ से; क्योंकि दोनों तरफ से खेल हो सकता है। शिष्य भी बांध सकता है; और जो शिष्य आज किसी से बंधेगा, वह कल किसी को बांधेगा, क्योंकि यह सबशृंखलाबद्ध काम है। वह आज शिष्य बनेगा तो कल गुरु भी बनेगा। क्योंकि शिष्य कब तक बना रहेगा! अभी एक को पकड़ेगा, तो कल फिर किसी को खुद को भी पकड़ाएगा।शृंखलाबद्ध गुलामियां हैं।

मगर उसका बहुत गहरे में कारण वह चौथे शरीर का विकसित न होना है। उसको विकसित करने की चिंता चले तो तुम स्वतंत्र हो सकोगे। फिर बंधन नहीं होगा।

इसका यह मतलब नहीं है कि तुम अमानवीय हो जाओगे, कि तुम्हारा मनुष्यों से कोई संबंध न रह जाएगा; बल्कि इसका मतलब ही उलटा है। असल में, जहां बंधन है, वहां संबंध होता ही नहीं। अगर एक पति और पत्नी के बीच बंधन है... हम कहते हैं न कि विवाह-बंधन में बंध रहे हैं! निमंत्रण पत्रिकाएं भेजते हैं कि मेरा बेटा और मेरी बेटी प्रणय-सूत्र के बंधन में बंध रहे हैं! जहां बंधन है, वहां संबंध नहीं हो सकता। क्योंकि गुलामी में कैसा संबंध?

कभी भविष्य में जरूर कोई बाप निमंत्रण पत्र भेजेगा कि मेरी बेटी किसी के प्रेम में स्वतंत्र हो रही है। वह तो समझ में आती है बात कि अब किसी का प्रेम उसको स्वतंत्र कर रहा है जीवन में; अब उसके ऊपर कोई बंधन नहीं रहेगा; वह मुक्त हो रही है प्रेम में। और प्रेम मुक्त करना चाहिए। अगर प्रेम भी बांध लेता है तो फिर इस जगत में मुक्त क्या करेगा? कौन करेगा?

संबंध वही, जो मुक्त करे

और जहां बंधन है, वहां सब कष्ट हो जाता है, सब नरक हो जाता है। ऊपर से चेहरे और रह जाते हैं, भीतर सब गंदगी हो जाती है। वह चाहे गुरु-शिष्य का हो, चाहे बाप-बेटे का हो, चाहे पति-पत्नी का हो, चाहे दो मित्रों का हो--जहां बंधन है, वहां संबंध नहीं होता। और अगर संबंध है तो बंधन बेमानी है। लगता तो ऐसा ही है कि जिससे हम बंधे हैं, उसी से संबंध है; लेकिन सिर्फ उसी से हमारा संबंध होता है, जिससे हमारा कोई भी बंधन नहीं।

इसलिए कई बार ऐसा हो जाता है कि आप अपने बेटे से वह बात नहीं कह सकते जो एक अजनबी से कह सकते हैं। मैं इधर हैरान हुआ हूं जानकर कि पत्नी अपने पति से नहीं कह सकती और ट्रेन में एक अजनबी आदमी से कह सकती है, जिसको वह बिल्कुल नहीं जानती, घंटे भर पहले मिला है।

असल में, कोई बंधन नहीं है, तो संबंध के लिए सरलता मिल जाती है। इसलिए तुम एक अजनबी से जितने भले ढंग से पेश आते हो, उतना परिचित से नहीं आते। वहां कोई भी तो बंधन नहीं है, तो सिर्फ संबंध ही हो सकता है। लेकिन परिचित के साथ तुम उतने भले ढंग से कभी पेश नहीं आते, क्योंकि वहां तो बंधन है। वहां नमस्कार भी करते हो तो ऐसा मालूम पड़ता है, एक काम है।

इसलिए गुरु-शिष्य का एक संबंध तो हो सकता है। और संबंध सब मधुर हैं। लेकिन बंधन नहीं हो सकता। और संबंध का मतलब ही है कि वह मुक्त करता है।

न बांधनेवाले अदभुत झेन फकीर

झेन फकीरों की एक बात बड़ी कीमती है कि अगर किसी भी झेन फकीर के पास कोई सीखने आएगा, तो जब वह सीख चुका होगा, तब वह उससे कहेगा कि अब मेरे विरोधी के पास चले जाओ, अब कुछ दिन वहां सीखो। क्योंकि एक पहलू तुमने जाना, अब तुम दूसरे पहलू को समझो।

और फिर साधक अलग-अलग आश्रमों में वर्षों घूमता रहेगा। उनके पास जाकर बैठेगा जो उसके गुरु के विरोधी हैं; उनके चरणों में बैठेगा और उनसे भी सीखेगा। क्योंकि उसका गुरु कहेगा कि हो सकता है वह ठीक हो; तुम उधर भी जाकर सारी बात समझ लो। और कौन ठीक है, इसका क्या पता? हो सकता है, हम दोनों से मिलकर जो बनता हो, वही ठीक हो; या यह भी हो सकता है कि हम दोनों को काटकर जो बचता हो, वही ठीक हो। इसलिए जाओ, उसे खोजो।

जब कोई देश में आध्यात्मिक प्रतिभा विकसित होती है, तो ऐसा होता है; तब बंधन नहीं बनतीं चीजें।

अब यह मैं चाहता हूं, ऐसा इस मुल्क में जिस दिन हो सकेगा, उस दिन बहुत परिणाम होंगे--कि कोई किसी को बांधता न हो, भेजता हो लंबी यात्रा पर, कि वह जाए। और कौन जानता है कि क्या होगा अंतिम! लेकिन जो इस भांति भेज देगा, अगर कल तुम्हें उसकी सब बातें भी गलत मालूम पड़ें, तब भी वह आदमी गलत मालूम नहीं पड़ेगा। जो इस भांति तुम्हें भेज देगा कि जाओ कहीं और खोजो--हो सकता है मैं गलत होऊं। तो यह हो भी सकता है कि किसी दिन उसकी सारी बातें भी तुम्हें गलत मालूम पड़ें, तब भी तुम अनुगृहीत रहोगे; वह आदमी कभी गलत नहीं हो पाएगा। क्योंकि उस आदमी ने ही तो भेजा था तुम्हें।

अभी हालतें ऐसी हैं कि सब रोक रहे हैं। एक गुरु रोकता है, किसी दूसरे की बात मत सुन लेना! शास्त्रों में लिखता है कि दूसरे के मंदिर में मत चले जाना! चाहे पागल हाथी के पैर के नीचे दबकर मर जाना, मगर दूसरे के मंदिर में शरण भी मत लेना; कहीं ऐसा न हो कि वहां कोई चीज कान में पड़ जाए!

तो भला ऐसे आदमी की सब बातें भी सही हों, तब भी यह आदमी तो गलत ही है। और इसके प्रति अनुग्रह कभी नहीं हो सकता; क्योंकि इसने तुम्हें गुलाम बनाया, कुचल डाला और मार डाला है।

यह अगर ख्याल में आ जाए तो बंधन का कोई सवाल नहीं है।

प्रश्नः आपने कहा कि अगर शक्तिपात प्रामाणिक व शुद्धतम हो तो बंधन नहीं होगा।

हां, नहीं होगा।

शक्तिपात के नाम पर शोषण

प्रश्नः शक्तिपात के नाम पर साइकिक एक्सप्लायटेशन संभव है क्या? कैसे संभव है और उससे साधक बचे कैसे?

संभव है, शक्तिपात के नाम पर बहुत आध्यात्मिक शोषण संभव है। असल में, जहां भी दावा है, वहां शोषण होगा। और जहां कोई कहता है, मैं कुछ दूंगा, वह लेगा भी कुछ। क्योंकि देना जो है, वह बिना लेने के नहीं हो सकता। जहां कोई कहेगा, मैं कुछ देता हूं, वह तुमसे वापस भी कुछ लेगा। कॉइन कोई भी हो--वह धन के रूप में ले, आदर के रूप में ले, श्रद्धा के रूप में ले--किसी भी रूप में ले, वह लेगा जरूर। जहां देना है--आग्रहपूर्वक, दावेपूर्वक--वहां लेना है। और जो देने का दावा कर रहा है, वह जो देगा, उससे ज्यादा लेगा। नहीं तो बाजार में चिल्लाने की उसे कोई जरूरत न थी।

असल में, वह दे इसी तरह रहा है, जैसे कोई मछली मारनेवाला कांटे पर आटा लगाता है; क्योंकि मछली कांटे नहीं खाती। हो सकता है, किसी दिन मछलियों को समझाया-बुझाया जा सके, वे सीधा कांटा खा लें। अभी तक कोई मछली सीधा कांटा नहीं खाती। उसके ऊपर आटा लगाना पड़ता है। हां, मछली आटा खा लेती है। और आटे के दावे की वजह से कांटे के पास आ जाती है। आटा मिलेगा, इस आशय में कांटे को भी गटक जाती है। गटकने पर पता चलता है कि आटा तो व्यर्थ था, कांटा असली था। लेकिन तब तक कांटा छिद गया होता है।

दावेदार गुरुओं से बचो

तो जहां दावा है--कोई कहे कि मैं शक्तिपात करूंगा, मैं ज्ञान दिलवा दूंगा, मैं समाधि में पहुंचा दूंगा, मैं ऐसा करूंगा, मैं वैसा करूंगा--जहां ये दावे हों, वहां सावधान हो जाना। क्योंकि उस जगत का आदमी दावेदार नहीं होता। उस जगत के आदमी से अगर तुम कहोगे भी जाकर कि आपकी वजह से मुझ पर शक्तिपात हो गया, तो वह कहेगा, तुम किसी भूल में पड़ गए; मुझे तो पता ही नहीं, मेरी वजह से कैसे हो सकता है! उस परमात्मा की वजह से ही हुआ होगा। वहां तो तुम धन्यवाद देने जाओगे तो भी स्वीकृति नहीं होगी कि मेरी वजह से हुआ है। वह तो कहेगा, तुम्हारी अपनी ही वजह से हो गया होगा। तुम किस भूल में पड़ गए हो, वह परमात्मा की कृपा से हो गया होगा। मैं कहां हूं! मैं किस कीमत में हूं! मैं कहां आता हूं!

जीसस निकल रहे हैं एक गांव से, और एक बीमार आदमी को लोग उनके पास लाए हैं। उन्होंने उसे गले से लगा लिया और वह ठीक हो गया। और वह आदमी कहता है कि मैं आपको कैसे धन्यवाद दूं, क्योंकि आपने मुझे ठीक कर दिया है। जीसस ने कहा कि ऐसी बातें मत कर; जिसे धन्यवाद देना है उसे धन्यवाद दे! मैं कौन हूं? मैं कहां आता हूं?

उस आदमी ने कहा, आपके सिवाय तो यहां कोई भी नहीं है।

तो जीसस ने कहा, हम-तुम दोनों नहीं हैं; जो है, वह तुझे दिखाई ही नहीं पड़ रहा; उससे ही सब हो रहा है। ही हैज हील्ड यू! उसी ने तुझे स्वस्थ कर दिया है!

अब यह जो आदमी है, यह कैसे शोषण करेगा? शोषण करने के लिए आटा लगाना पड़ता है कांटे पर। यह तो, कांटा तो दूर, आटा भी मेरा है, यह भी मानने को राजी नहीं है। इसका कोई उपाय नहीं है।

तो जहां तुम्हें दावा दिखे--साधक को--वहीं सम्हल जाना। जहां कोई कहे कि ऐसा मैं कर दूंगा, ऐसा हो जाएगा, वहां वह तुम्हारे लिए तैयार कर रहा है; वह तुम्हारी मांग को जगा रहा है; वह तुम्हारी अपेक्षा को उकसा रहा है; वह तुम्हारी वासना को त्वरित कर रहा है। और जब तुम वासनाग्रस्त हो जाओगे, कहोगे कि दो महाराज! तब वह तुमसे मांगना शुरू कर देगा। बहुत शीघ्र तुम्हें पता चलेगा कि आटा ऊपर था, कांटा भीतर है।

इसलिए जहां दावा हो, वहां सम्हलकर कदम रखना, वह खतरनाक जमीन है। जहां कोई गुरु बनने को बैठा हो, उस रास्ते से मत निकलना; क्योंकि वहां उलझ जाने का डर है। इसलिए साधक कैसे बचे? बस वह दावे से बचे तो सबसे बच जाएगा। वह दावे को न खोजे; वह उस आदमी की तलाश न करे जो दे सकता है। नहीं तो झंझट में पड़ेगा। क्योंकि वह आदमी भी तुम्हारी तलाश कर रहा है--जो फंस सकता है। वे सब घूम रहे हैं। वह भी घूम रहा है कि कौन आदमी को चाहिए। तुम मांगना ही मत, तुम दावे को स्वीकार ही मत करना। और तब...

पात्र बनो, गुरु मत खोजो

तुम्हें जो करना है, वह और बात है। तुम्हें जो तैयारी करनी है, वह तुम्हारे भीतर तुम्हें करनी है। और जिस दिन तुम तैयार होओगे, उस दिन वह घटना घट जाएगी; उस दिन किसी भी माध्यम से घट जाएगी। माध्यम गौण है; खूंटी की तरह है। जिस दिन तुम्हारे पास कोट होगा, क्या तकलीफ पड़ेगी खूंटी खोजने में? कहीं भी टांग दोगे। नहीं भी खूंटी होगी तो दरवाजे पर टांग दोगे। दरवाजा नहीं होगा, झाड़ की शाखा पर टांग दोगे। कोई भी खूंटी का काम कर देगा। असली सवाल कोट का है।

लेकिन कोट नहीं है हमारे पास, खूंटी दावा कर रही है कि इधर आओ, मैं खूंटी यहां हूं! तुम फंसोगे। कोट तो तुम्हारे पास नहीं है, खूंटी के पास जाकर भी क्या करोगे? खतरा यही है कि खूंटी में तुम्हीं न टंग जाओ। क्योंकि कोट तो नहीं है तुम्हारे पास। इसलिए अपनी पात्रता खोजनी है, अपनी योग्यता खोजनी है, अपने को उस योग्य बनाना है कि मैं किसी दिन प्रसाद को ग्रहण करने योग्य बन सकूं। फिर तुम्हें चिंता नहीं लेनी है, वह तुम्हारी चिंता नहीं है।

इसलिए कृष्ण जो कहते हैं अर्जुन को, वह ठीक ही कहते हैं। उसका मतलब ही इतना है। वे कहते हैंः तू कर्म कर और फल परमात्मा पर छोड़ दे; उसकी तुझे फिकर नहीं करनी है। उसकी तूने फिकर की तो कर्म में बाधा पड़ती है। क्योंकि उसकी फिकर की वजह से ऐसा लगता हैः कर्म क्या करना, फल की पहले चिंता करो! उसकी वजह से ऐसा लगता है कि क्या करना है मुझे! फल क्या होगा, इसको देखूं! और तब गलती सुनिश्चित हो जानेवाली है। इसलिए कर्म की फिकर ही अकेली फिकर है हमारी; हम अपने को पात्र बनाने योग्य करते रहें। जिस दिन क्षमता हमारी पूरी होगी--ऐसे ही, जैसे जिस दिन बीज की क्षमता फूटने की पूरी होती है, उस दिन सब मिल जाता है। जिस दिन फूल खिलने को पूरा तैयार होता है, कली टूटने को तैयार होती है, सूरज तो निकल ही आता है। उसमें कोई अड़चन नहीं है। सूरज सदा तैयार है। लेकिन हमारे पास कली नहीं है खिलने को,

सूरज निकल गया है, होगा क्या? इसलिए सूरज की तलाश मत करो, अपनी कली को गहरा करने की फिकर करो; सूरज सदा निकला हुआ है, वह तत्काल उपलब्ध हो जाता है।

खाली पात्र भर दिया जाता है

इस जगत में पात्र एक क्षण को भी खाली नहीं रह जाता है; जिस तरह की भी पात्रता हो, वह तत्काल भर दी जाती है। असल में, पात्रता का हो जाना और भर जाना दो घटनाएं नहीं, एक ही घटना के दो पहलू हैं। जैसे हम इस कमरे की हवा बाहर निकाल दें, दूसरी हवा इस कमरे की खाली जगह को तत्काल भर देगी। ये दो हिस्से नहीं हैं। इधर हम निकाल नहीं पाए कि उधर नई हवा ने दौड़ना शुरू कर दिया। ऐसे ही अंतर-जगत के नियम हैंः हम इधर तैयार नहीं हुए कि वहां से जो हमारी तैयारी की मांग है, वह उतरनी शुरू हो जाती है।

लेकिन कठिनाई हमारी है कि हम तैयार नहीं होते और मांग हमारी शुरू हो जाती है; तब झूठी मांग के लिए झूठी सप्लाई भी हो जाती है। अब इधर मैं बहुत हैरान होता हूं; ऐसे लोग हैरानी में डालते हैं। एक आदमी आता है, वह कहता है, मेरा मन बड़ा अशांत है, मुझे शांति चाहिए। उससे आधा घंटा मैं बात करता हूं, मैं कहता हूं कि सच में ही तुम्हें शांति चाहिए? तो वह कहता है, शांति तो अभी क्या है कि मेरे लड़के को पहले नौकरी चाहिए, उसी की वजह से अशांति है; नौकरी मिल जाए तो सब ठीक हो जाए। तो अब यह आदमी कहता हुआ आया था कि मुझे शांति चाहिए, वह इसकी जरूरत नहीं है; इसकी असली जरूरत दूसरी है, जिसका शांति से कुछ लेना-देना नहीं है; इसकी जरूरत है कि इसके लड़के को नौकरी चाहिए। अब यह मेरे पास, गलत आदमी के पास आ गया।

धर्म के दुकानदारों का रहस्य

अब वह जो बाजार में दुकान लेकर बैठा है, वह कहता है, नौकरी चाहिए? इधर आओ! हम नौकरी भी दिलवा देंगे और शांति भी मिल जाएगी। इधर जो भी आते हैं, उनको नौकरी मिल जाती है; इधर जो आते हैं, उनका धन बढ़ जाता है; इधर जो आते हैं, उनकी दुकान चलने लगती है। और उस दुकान के आसपास दस-पांच आदमी आपको मिल जाएंगे, जो कहेंगे, मेरे लड़के को नौकरी मिल गई, मेरी पत्नी मरते से बच गई, मेरा मुकदमा हारते से जीत गया, धन के अंबार लग गए; वे दस आदमी उस दुकान के आसपास मिल जाएंगे।

ऐसा नहीं कि वे झूठ बोल रहे हैं! ऐसा नहीं कि वे झूठ बोल रहे हैं, ऐसा भी नहीं कि वे किराए के आदमी हैं, ऐसा भी नहीं कि वे दुकान के दलाल हैं। नहीं, ऐसा कुछ भी नहीं है। जब हजार आदमी किसी दुकान पर नौकरी खोजने आते हैं, दस को मिल ही जाती है। जिनको मिल जाती है वे रुक जाते हैं, नौ सौ निन्यानबे चले जाते हैं। वे जो रुक जाते हैं, वे खबर करते रहते हैं; धीरे-धीरे उनकी भीड़ बड़ी होती जाती है।

इसलिए हर दुकान के पास आथेंटिक हैं वे दावेदार। वे जो कह रहे हैं कि मेरे लड़के को नौकरी मिली, इसमें झूठ नहीं है कोई; यह कोई खरीदा हुआ आदमी नहीं है। यह भी आया था, इसके लड़के को मिली है; जिनको नहीं मिली है, वे जा चुके हैं; वे दूसरे गुरु को खोज रहे हैं कि कहां मिले; जहां मिले वहां चले गए हैं। यहां वे ही रह गए हैं जिनको मिल गई है। वे हर साल लौट आते हैं, हर त्योहार पर लौट आते हैं; उनकी भीड़ बढ़ती चली जाती है। और इस आदमी के आसपास एक वर्ग खड़ा हो जाता है, जो सुनिश्चित प्रमाण बन जाता है कि भई मिली है इतने लोगों को, तो मुझे क्यों न मिलेगी! यह आटा बन जाता है, और कांटा बीच में है। और ये सारे लोग आटे बन जाते हैं। और आदमी फंस जाता है।

मांगना ही मत; नहीं तो फंसना निश्चित है। मांगना ही मत; अपने को तैयार करना। और भगवान पर छोड़ देना कि जिस दिन होता होगा, होगा; नहीं होगा तो हम समझेंगे हम पात्र नहीं थे।

प्रामाणिक शक्तिपात के बाद भटकना समाप्त

प्रश्नः एक साधक का कई व्यक्तियों के माध्यम से शक्तिपात लेना उचित है या हानिप्रद है? कंडक्टर बदलने में क्या-क्या हानियां संभव हैं और क्यों?

असल बात तो यह है कि बहुत बार लेने की जरूरत तभी पड़ेगी जब कि शक्तिपात न हुआ हो। बहुत लोगों से लेने की भी जरूरत तभी पड़ेगी जब कि पहले जिनसे लिया हो वह बेकार गया हो, न हुआ हो। अगर हो गया, तो बात खतम है। बहुत बार लेने की जरूरत इसीलिए पड़ती है कि दवा काम नहीं कर पाई, बीमारी अपनी जगह खड़ी है। स्वभावतः, फिर डाक्टर बदलने पड़ते हैं। लेकिन जो बीमार ठीक हो गया, वह नहीं पूछता कि डाक्टर बदलूं, या न बदलूं। वह जो ठीक नहीं हुआ है, वह कहता है कि मैं दूसरे डाक्टर से दवा लूं या क्या करूं! दस-बीस डाक्टर बदल लेता है।

तो एक तो अगर शक्तिपात की किरण उपलब्ध हुई जरा भी, तो बदलने की कोई जरूरत नहीं पड़ती है। वह प्रश्न ही नहीं है फिर उसका। नहीं उपलब्ध हुई, तो बदलना ही पड़ता है; और बदलते ही रहते हैं आदमी। और अगर उपलब्ध हुई है कभी एक से, तो फिर किसी से भी उपलब्ध होती रहे, कोई फर्क नहीं पड़ता। वे सब एक ही स्रोत से आनेवाले माध्यम ही अलग हैं, इससे कोई अंतर नहीं पड़ता। रोशनी सूरज से आती, कि दीये से आती, कि बिजली के बल्ब से आती, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता; प्रकाश एक का ही है। उससे कोई अंतर नहीं पड़ता। अगर घटना घटी है तो कोई अंतर नहीं पड़ता, और कोई हानि नहीं है।

लेकिन इसको खोजते मत फिरना; वही मैं कह रहा हूं, इसे खोजते मत फिरना। यह मिल जाए रास्ते पर चलते, तो धन्यवाद दे देना और आगे बढ़ जाना। इसे खोजना मत। खोजोगे तो खतरा है। क्योंकि फिर वे जो दावेदार हैं, वे ही तो तुम्हें मिलेंगे न! वह नहीं मिलेगा जो दे सकता था; वह मिलेगा, जो कहता है, देते हैं। जो दे सकता है वह तो तुम्हें उसी दिन मिलेगा, जिस दिन तुम खोज ही नहीं रहे हो, लेकिन तैयार हो गए हो। वह उसी दिन मिलेगा।

इसलिए खोजना गलत है, मांगना गलत है। होती रहे घटना, होती रहे। और हजार रास्तों से प्रकाश मिले तो हर्ज नहीं है। सब रास्ते एक ही प्रकाश के मूल स्रोत को प्रमाणित करते चले जाएंगे। सब तरफ से मिलकर वही...

मूल स्रोत परमात्मा है

कल मुझसे कोई कह रहा था... किसी साधु के पास जाकर कहा होगा कि ज्ञान अपना होना चाहिए। तो उन साधु ने कहा, ऐसा कैसे हो सकता है! ज्ञान तो सदा पराए का होता है--फलां मुनि ने फलां मुनि को दिया, उन मुनि ने उन मुनि को दिया। खुद कृष्ण गीता में कहते हैं कि उससे उसको मिला, उससे उसको मिला, उससे उसको मिला। तो कृष्ण के पास भी अपना नहीं है।

तो मैंने उसको कहा कि कृष्ण के पास अपना है। लेकिन जब वे कह रहे हैं कि उससे उसको मिला, उससे उसको मिला, तो वे यह कह रहे हैं कि यह जो ज्ञान मेरा है, यह जो मुझे घटित हुआ है, यह मुझे ही घटित नहीं हुआ है, यह पहले फलां आदमी को भी घटित हुआ था; और प्रमाण है कि उसको घटित हुआ था, उसने फलां

आदमी को बताया भी था; और फलां आदमी को भी घटित हुआ था, उसने उसको भी बताया था। लेकिन बताने से घटित नहीं हुआ था, घटने से बताया था। तो मुझको भी घटित हुआ है, और अब मैं तुम्हें बता रहा हूं--वे अर्जुन से कह रहे हैं। लेकिन मेरे बताने से तुम्हें घटित हो जाएगा, ऐसा नहीं है; तुम्हें घटित होगा तो तुम भी किसी को बता सकोगे, ऐसा है।

उसे दूसरे से मांगते ही मत फिरना, वह दूसरे से मिलनेवाली बात नहीं है। उसकी तो तैयारी करना। फिर वह बहुत जगह से मिलेगी, सब जगह से मिलेगी। और एक दिन जिस दिन घटना घटती है, उस दिन ऐसा लगता है कि मैं कैसा अंधा हूं, जो चीज सब तरफ से मिल रही थी, वह मुझे दिखाई क्यों नहीं पड़ती थी!

एक अंधा आदमी है, वह दीये के पास से भी निकलता है, वह सूरज के पास से भी निकलता है, बिजली के पास से भी निकलता है, लेकिन प्रकाश नहीं मिलता। और एक दिन, जब उसकी आंख खुलती है, तब वह कहता हैः मैं कैसा अंधा था, कितनी जगह से निकला, सब जगह प्रकाश था और मुझे दिखाई नहीं पड़ा! और अब मुझे सब जगह दिखाई पड़ रहा है।

तो जिस दिन घटना घटेगी, उस दिन तो तुम्हें सब तरफ वही दिखाई पड़ेगा; और जब तक नहीं घटी है, तब तक जहां भी दिखाई पड़े, वहां उसको प्रणाम कर लेना; जहां भी दिखाई पड़े, वहां उसे पी लेना। लेकिन मांगते मत जाना, भिखारी की तरह मत जाना; क्योंकि सत्य भिखारी को नहीं मिल सकता। उसे मांगना मत। नहीं तो कोई दुकानदार बीच में मिल जाएगा, जो कहेगा, हम देते हैं। और तब एक आध्यात्मिक शोषण शुरू हो जाएगा। तुम चलना अपनी राह--अपने को तैयार करते, अपने को तैयार करते--जहां मिल जाए, ले लेना; धन्यवाद देकर आगे बढ़ जाना।

फिर जिस दिन तुम्हें पूरा उपलब्ध होगा, उस दिन तुम ऐसा न कह पाओगेः मुझे फलाने से मिला। उस दिन तुम यही कहोगे कि आश्चर्य है! मुझे सबसे मिला; जिनके करीब मैं गया, सभी से मिला! और तब अंतिम धन्यवाद जो है वह समस्त के प्रति हो जाता है, वह किसी एक के प्रति नहीं रह जाता।

दूसरे से आए प्रभाव की सीमा

प्रश्नः यह प्रश्न इसलिए आया था कि शक्तिपात का प्रभाव धीरे-धीरे कम भी तो हो सकता है!

हां-हां, वह कम होगा ही। असल में, दूसरे से कुछ भी मिलेगा तो वह कम होता चला जाएगा; वह सिर्फ झलक है। उस पर तुम्हें निर्भर भी नहीं होना है। उसे तो तुम्हें अपने भीतर ही जगाना है किसी दिन, तभी वह कम नहीं होगा। असल में, सब प्रभाव क्षीण हो जाएंगे, क्योंकि प्रभाव जो हैं वे फारेन हैं, वे विजातीय हैं, वे बाहरी हैं।

मैंने एक पत्थर फेंका। तो पत्थर की कोई अपनी ताकत नहीं है। मैंने फेंका, मेरे हाथ की ताकत है। तो मेरे हाथ की ताकत जितनी लगी है, पत्थर उतनी दूर जाकर गिर जाएगा। लेकिन बीच में जब पत्थर हवा चीरेगा, तो पत्थर को ख्याल हो सकता है कि अब तो मैं हवा चीरने लगा, अब तो मुझे गिरानेवाला कोई भी नहीं है। लेकिन उसे पता नहीं कि वह प्रभाव से गया है, किसी के धक्के से गया है, दूसरे का हाथ पीछे है। वह एक पचास फीट दूर जाकर गिर जाएगा। गिरेगा ही! असल में, दूसरे से आए प्रभाव की सदा सीमा होगी। वह गिर जाएगा।

दूसरे से आए प्रभाव का एक ही फायदा हो सकता है, और वह यह है कि उस प्रभाव की क्षीण झलक में तुम अपने मूल स्रोत को खोज सको, तब तो ठीक। यानी मैंने एक माचिस जलाई, प्रकाश हुआ। पर मेरी माचिस

कितनी देर जलेगी? अब तुम दो काम कर सकते होः तुम यहीं अंधेरे में खड़े रहो और मेरी माचिस पर निर्भर हो जाओ--कि हम इस रोशनी में जीएंगे अब। एक घड़ी, क्षण भर भी नहीं बीतेगा, माचिस बुझ जाएगी, फिर घुप्प अंधेरा हो जाएगा। यह एक बात हुई। मैंने माचिस जलाई, घुप्प अंधेरे में थोड़ी सी रोशनी हुई, तुम एकदम दरवाजा दिखाई पड़ा और बाहर भाग गए। तुम मेरी माचिस पर निर्भर न रहे, तुम बाहर निकल गए; मेरी माचिस बुझे या जले, अब तुम्हें कोई मतलब न रहा; लेकिन तुम वहां पहुंच गए जहां सूरज है। अब कोई चीज थिर हो पाएगी।

तो ये जितनी घटनाएं हैं, इनका एक ही उपयोग है कि इससे तुम समझकर कुछ कर लेना अपने भीतर, इसके लिए मत रुक जाना। इसकी प्रतीक्षा करते रहोगे तो यह तो बार-बार माचिस जलेगी, बुझेगी। फिर धीरे-धीरे कंडीशनिंग हो जाएगी। फिर तुम इसी माचिस के मोहताज हो जाओगे। फिर तुम अंधेरे में प्रतीक्षा करते रहोगे--कब जले! फिर जलेगी तो तुम प्रतीक्षा करोगे--अब बुझनेवाली है, अब बुझनेवाली है, अब गए, अब गए, अब फिर अंधेरा हो जाएगा। बस यह एक चक्कर पैदा हो जाएगा। नहीं, जब माचिस जले, तब माचिस पर मत रुकना; क्योंकि माचिस इसलिए जली है कि तुम रास्ता देखो और भागो--निकल जाओ, जितने दूर अंधेरे के बाहर जा सकते हो।

झलक पाकर अपनी राह चल देना

दूसरे से हम इतना ही लाभ ले सकते हैं। लेकिन दूसरे से हम स्थायी लाभ नहीं ले सकते। पर यह कोई कम लाभ नहीं है। यह कोई थोड़ा लाभ नहीं है, बहुत बड़ा लाभ है; दूसरे से इतना भी मिल जाता है, यह भी आश्चर्य है। इसलिए जो दूसरा अगर समझदार होगा तो तुमसे नहीं कहेगा कि रुको। तुमसे कहेगा--माचिस चल गई, अब तुम भागो! अब तुम यहां ठहरना मत, नहीं तो माचिस तो अभी बुझ जाएगी।

लेकिन अगर दूसरा तुमसे कहे कि अब रुको, देखो मैंने माचिस जलाई अंधेरे में! और किसी ने तो नहीं जलाई न, मैंने जलाई! अब तुम मुझसे दीक्षा लो; अब तुम यहीं ठहरो, अब तुम कहीं छोड़कर मत जाना, खाओ कसम! अब यह संबंध रहेगा, अब यह टूट नहीं सकता। मैंने ही माचिस जलाई! मैंने ही तुम्हें अंधेरे में दिखाया! अब तुम किसी और की माचिस के पास तो न जाओगे? अब तुम कोई और प्रकाश तो न खोजोगे? अब तुम किसी और गुरु के पास मत रुकना, सुनना भी मत, अब तुम मेरे हुए! तो फिर, तो फिर खतरा हो गया।

झलक दिखाकर बांधनेवाले तथाकथित गुरु

इससे अच्छा था यह आदमी माचिस न जलाता। इसने बड़ा नुकसान किया। अंधेरे में तुम खोज भी लेते; किसी तरह टकराते, धक्के खाते, किसी दिन प्रकाश में पहुंच जाते; अब इस माचिस को पकड़ने की वजह से बड़ी मुश्किल हो गई, अब कहां जाओगे?

और तब इतना भी पक्का है कि यह माचिस इस आदमी की अपनी नहीं है, यह किसी से चुरा लाया है। यह कहीं से चुराई गई माचिस है। नहीं तो इसको अब तक पता होता कि बाहर भेजने के लिए है यह, किसी को रोकने के लिए नहीं है, यहां बिठा रखने के लिए नहीं है। यह चोरी की गई माचिस है। इसलिए अब यह माचिस की दुकान कर रहा है; अब यह कह रहा हैः जिन-जिनको हम झलक दिखा देंगे, उनको यहीं रुका रहना पड़ेगा; अब वे कहीं जा नहीं सकते।

तब तो हद्द हो गई! अंधेरा रोकता था, अब यह गुरु रोकने लगा। इससे अंधेरा अच्छा था कि कम से कम अंधेरा हाथ फैलाकर तो नहीं रोक सकता था। अंधेरे का जो रोकना था वह बिल्कुल ही पैसिव था। लेकिन यह

गुरु तो एक्टिव रोकेगा; यह तो हाथ पकड़कर रोकेगा, छाती अड़ा देगा बीच में, और कहेगा कि धोखा दे रहे हो! दगा कर रहे हो!

अभी एक लड़की ने मुझे आकर कहा कि उसके गुरु ने उससे कहा कि तुम उनके पास क्यों गई? यह तो ऐसे ही है, जैसे कोई पत्नी अपने पति को छोड़कर चली जाए! गुरु कह रहा है उससे कि यह तो जैसे पत्नीव्रत और पतिव्रत एक के साथ होता है, ऐसा गुरु को छोड़कर चला जाए कोई दूसरे के पास, तो यह महान पाप है!

यह चुराई हुई माचिसवाला अब माचिस से काम चलाएगा। और चुराई जा सकती हैं माचिसें, इसमें कोई कठिनाई नहीं है; शास्त्रों में बहुत माचिसें उपलब्ध हैं, उनको कोई चुरा सकता है।

प्रश्नः क्या चुराई हुई माचिस जल सकती है?

जल सकने का मतलब यह है कि... असल में, अंधेरे में मजा ऐसा है... अंधेरे में मजा ऐसा है, जिसने प्रकाश देखा ही नहीं, उसको कौन सी चीज जलती हुई बताई जा रही है, यह भी तय करना मुश्किल है। समझे न? जिसने प्रकाश देखा ही नहीं, उसे कौन सी चीज जली हुई बताई जा रही है, यह पक्का करना बहुत मुश्किल है। यह तो प्रकाश के बाद उसको पता चलेगा कि तुम क्या जला रहे थे, क्या नहीं जला रहे थे! वह जल भी रही थी कि नहीं जल रही थी! कि आंख बंद करके समझा रहे थे कि जल गई! वह सब तो तुम्हें प्रकाश दिखाई पड़ेगा, तब तुम्हें पता चलेगा। जिस दिन प्रकाश दिखाई पड़ेगा, उस दिन सौ में से निन्यानबे गुरु अंधेरे के साथी और प्रकाश के दुश्मन सिद्ध होते हैं! पता चलता है कि ये तो बहुत दुश्मन थे; ये सब शैतान के एजेंसीज थे।

चौदहवां प्रवचन

सात शरीर और सात चक्र

प्रश्नः कल की चर्चा में आपने कहा कि साधक को पात्र बनने की पहले फिकर करनी चाहिए, जगह-जगह मांगने नहीं जाना चाहिए। लेकिन साधक अर्थात खोजी का अर्थ ही है कि उसे साधना में बाधाएं हैं। उसे पता नहीं है कि कैसे पात्र बने, कैसे तैयारी करे। तो वह मांगने न जाए तो क्या करे? सही मार्गदर्शक से मिलना कितना मुश्किल से हो पाता है!

लेकिन खोजना और मांगना दो अलग बातें हैं। असल में, जो खोजना नहीं चाहता वही मांगता है। खोजना और मांगना एक तो हैं ही नहीं, विपरीत बातें हैं। खोजने से जो बचना चाहता है वह मांगता है, खोजी कभी नहीं मांगता। और खोज और मांगने की प्रक्रिया बिल्कुल अलग है। मांगने में दूसरे पर ध्यान रखना पड़ेगा--जिससे मिलेगा। और खोजने में अपने पर ध्यान रखना पड़ेगा--जिसको मिलेगा।

यह तो ठीक है कि साधक के मार्ग पर बाधाएं हैं। लेकिन साधक के मार्ग पर बाधाएं हैं, अगर हम ठीक से समझें तो इसका मतलब होता है कि साधक के भीतर बाधाएं हैं; मार्ग भी भीतर है। और अपनी बाधाओं को समझ लेना बहुत कठिन नहीं है। तो इस संबंध में थोड़ी सी विस्तीर्ण बात करनी पड़ेगी कि बाधाएं क्या हैं और साधक उन्हें कैसे दूर कर सकेगा।

जैसे मैंने कल सात शरीरों की बात कही, उस संबंध में कुछ और बात समझेंगे तो यह भी समझ में आ सकेगा।

ूलाधार चक्र की संभावनाएं

जैसे सात शरीर हैं, ऐसे ही सात चक्र भी हैं। और प्रत्येक एक चक्र मनुष्य के एक शरीर से विशेष रूप से जुड़ा हुआ है। जैसे सात शरीर में जो हमने कहे--भौतिक शरीर, फिजिकल बॉडी, इस शरीर का जो चक्र है, वह मूलाधार है; वह पहला चक्र है। इस मूलाधार चक्र का भौतिक शरीर से केंद्रीय संबंध है; यह भौतिक शरीर का केंद्र है। इस मूलाधार चक्र की दो संभावनाएं हैंः एक इसकी प्राकृतिक संभावना है, जो हमें जन्म से मिलती है; और एक साधना की संभावना है, जो साधना से उपलब्ध होती है।

मूलाधार चक्र की प्राथमिक प्राकृतिक संभावना कामवासना है, जो हमें प्रकृति से मिलती है; वह भौतिक शरीर की केंद्रीय वासना है। अब साधक के सामने पहला ही सवाल यह उठेगा कि यह जो केंद्रीय तत्व है उसके भौतिक शरीर का, इसके लिए क्या करे? और इस चक्र की एक दूसरी संभावना है, जो साधना से उपलब्ध होगी, वह ब्रह्मचर्य है। सेक्स इसकी प्राकृतिक संभावना है और ब्रह्मचर्य इसका ट्रांसफार्मेशन है, इसका रूपांतरण है। जितनी मात्रा में चित्त कामवासना से केंद्रित और ग्रसित होगा, उतना ही मूलाधार अपनी अंतिम संभावनाओं को उपलब्ध नहीं कर सकेगा। उसकी अंतिम संभावना ब्रह्मचर्य है। उस चक्र की दो संभावनाएं हैंः एक जो हमें प्रकृति से मिली, और एक जो हमें साधना से मिलेगी।

न भोग, न दमन--वरन जागरण

अब इसका मतलब यह हुआ कि जो हमें प्रकृति से मिली है उसके साथ हम दो काम कर सकते हैंः या तो जो प्रकृति से मिला है हम उसमें जीते रहें, तब जीवन में साधना शुरू नहीं हो पाएगी; दूसरा काम जो संभव है

वह यह कि हम इसे रूपांतरित करें। रूपांतरण के पथ पर जो बड़ा खतरा है, वह खतरा यही है कि कहीं हम प्राकृतिक केंद्र से लड़ने न लगें। साधक के मार्ग में खतरा क्या है? या तो जो प्राकृतिक व्यवस्था है वह उसको भोगे, तब वह उठ नहीं पाता उस तक जो चरम संभावना है--जहां तक उठा जा सकता था; भौतिक शरीर जहां तक उसे पहुंचा सकता था वहां तक वह नहीं पहुंच पाता; जहां से शुरू होता है वहीं अटक जाता है। तो एक तो भोग है। दूसरा दमन है, कि उससे लड़े। दमन बाधा है साधक के मार्ग पर--पहले केंद्र की जो बाधा है। क्योंकि दमन के द्वारा कभी ट्रांसफार्मेशन, रूपांतरण नहीं होता।

दमन बाधा है तो फिर साधक क्या बनेगा? साधन क्या होगा?

समझ साधन बनेगी, अंडरस्टैंडिंग साधन बनेगी। कामवासना को जो जितना समझ पाएगा उतना ही उसके भीतर रूपांतरण होने लगेगा। उसका कारण हैः प्रकृति के सभी तत्व हमारे भीतर अंधे और मूर्च्छित हैं। अगर हम उन तत्वों के प्रति होशपूर्ण हो जाएं तो उनमें रूपांतरण होना शुरू हो जाता है। जैसे ही हमारे भीतर कोई चीज जागनी शुरू होती है वैसे ही प्रकृति के तत्व बदलने शुरू हो जाते हैं। जागरण कीमिया है, अवेयरनेस केमिस्ट्री है उनके बदलने की, रूपांतरण की।

तो अगर कोई अपनी कामवासना के प्रति पूरे भाव और पूरे चित्त, पूरी समझ से जागे, तो उसके भीतर कामवासना की जगह ब्रह्मचर्य का जन्म शुरू हो जाएगा। और जब तक कोई पहले शरीर पर ब्रह्मचर्य पर न पहुंच जाए तब तक दूसरे शरीर की संभावनाओं के साथ काम करना बहुत कठिन है।

स्वाधिष्ठान चक्र की संभावनाएं

दूसरा शरीर मैंने कहा था भाव शरीर या आकाश शरीर--ईथरिक बॉडी। दूसरा शरीर हमारे दूसरे चक्र से संबंधित है, स्वाधिष्ठान चक्र से। स्वाधिष्ठान चक्र की भी दो संभावनाएं हैं। मूलतः प्रकृति से जो संभावना मिलती है, वह है भय, घृणा, क्रोध, हिंसा। ये सब स्वाधिष्ठान चक्र की प्रकृति से मिली हुई स्थिति है। अगर इन पर ही कोई अटक जाता है, तो इसकी जो दूसरी, इससे बिल्कुल प्रतिकूल ट्रांसफार्मेशन की स्थिति है--प्रेम, करुणा, अभय, मैत्री, वह संभव नहीं हो पाता।

साधक के मार्ग पर, दूसरे चक्र पर जो बाधा है, वह घृणा, क्रोध, हिंसा, इनके रूपांतरण का सवाल है। यहां भी वही भूल होगी जो सब तत्वों पर होगी। कोई चाहे तो क्रोध कर सकता है और कोई चाहे तो क्रोध को दबा सकता है। हम दो ही काम करते हैंः कोई भयभीत हो सकता है और कोई भय को दबाकर व्यर्थ ही बहादुरी दिखा सकता है। दोनों ही बातों से रूपांतरण नहीं होगा। भय है, इसे स्वीकार करना पड़ेगा; इसे दबाने, छिपाने से कोई प्रयोजन नहीं है। हिंसा है, इसे अहिंसा के बाने पहना लेने से कोई फर्क पड़नेवाला नहीं है; अहिंसा परम धर्म है, ऐसा चिल्लाने से इसमें कोई फर्क पड़नेवाला नहीं है। हिंसा है, वह हमारे दूसरे शरीर की प्रकृति से मिली हुई संभावना है। उसका भी उपयोग है, जैसे कि सेक्स का उपयोग है। वह प्रकृति से मिली हुई संभावना है, क्योंकि सेक्स के द्वारा ही दूसरे भौतिक शरीर को जन्म दिया जा सकेगा। यह भौतिक शरीर मिटे, इसके पहले दूसरे भौतिक शरीरों को जन्म मिल सके, इसलिए वह प्रकृति से दी हुई संभावना है। भय, हिंसा, क्रोध, ये सब भी दूसरे तल पर अनिवार्य हैं, अन्यथा मनुष्य बच नहीं सकता, सुरक्षित नहीं रह सकता। भय उसे बचाता है; क्रोध उसे संघर्ष में उतारता है; हिंसा उसे साधन देती है दूसरे की हिंसा से बचने का। वे उसके दूसरे शरीर की संभावनाएं हैं।

लेकिन साधारणतः हम वहीं रुक जाते हैं। इन्हें अगर समझा जा सके--अगर कोई भय को समझे, तो अभय को उपलब्ध हो जाता है; और अगर कोई हिंसा को समझे, तो अहिंसा को उपलब्ध हो जाता है; और अगर कोई

क्रोध को समझे, तो क्षमा को उपलब्ध हो जाता है। असल में, क्रोध एक पहलू है और दूसरा पहलू क्षमा है; वह उसी के पीछे छिपा हुआ पहलू है; वह सिक्के का दूसरा हिस्सा है। लेकिन सिक्का उलटे तब। लेकिन सिक्का उलट जाता है। अगर हम सिक्के के एक पहलू को पूरा समझ लें, तो अपने आप हमारी जिज्ञासा उलटाकर देखने की हो जाती है दूसरी तरफ।

लेकिन हम उसे छिपा लें और कहें, हमारे पास है ही नहीं! भय तो हममें है ही नहीं! तो हम अभय को कभी भी न देख पाएंगे। जिसने भय को स्वीकार कर लिया और कहा, भय है; और जिसने भय को पूरा जांचा-पड़ताला, खोजा, वह जल्दी ही उस जगह पहुंच जाएगा जहां वह जानना चाहेगाः भय के पीछे क्या है? जिज्ञासा उसे उलटाने को कहेगी कि सिक्के को उलटाकर भी देख लो। और जिस दिन वह उलटाएगा उस दिन वह अभय को उपलब्ध हो जाएगा। ऐसे ही हिंसा करुणा में बदल जाएगी। वे दूसरे शरीर की साधक के लिए संभावनाएं हैं।

इसलिए साधक को जो मिला है प्रकृति से, उसको रूपांतरण करना है। और इसके लिए किसी से बहुत पूछने जाने की जरूरत नहीं है, अपने ही भीतर निरंतर खोजने और पूछने की जरूरत है। हम सब जानते हैं कि क्रोध बाधा है; हम सब जानते हैं, भय बाधा है। क्योंकि जो भयभीत है वह सत्य को खोजने कैसे जाएगा? भयभीत मांगने चला जाएगा। वह चाहेगा कि बिना किसी अज्ञात, अनजान रास्ते पर जाए, कोई दे दे तो अच्छा।

मणिपुर चक्र की संभावनाएं

तीसरा शरीर मैंने कहा, एस्ट्रल बॉडी है, सूक्ष्म शरीर है। उस सूक्ष्म शरीर के भी दो हिस्से हैं। प्राथमिक रूप से सूक्ष्म शरीर संदेह, विचार, इनके आसपास रुका रहता है। और अगर ये रूपांतरित हो जाएं--संदेह अगर रूपांतरित हो तो श्रद्धा बन जाता है; और विचार अगर रूपांतरित हो तो विवेक बन जाता है।

संदेह को किसी ने दबाया तो वह कभी श्रद्धा को उपलब्ध नहीं होगा। हालांकि सभी तरफ ऐसा समझाया जाता है कि संदेह को दबा डालो, विश्वास कर लो। जिसने संदेह को दबाया और विश्वास किया, वह कभी श्रद्धा को उपलब्ध नहीं होगा; उसके भीतर संदेह मौजूद ही रहेगा--दबा हुआ; भीतर कीड़े की तरह सरकता रहेगा और काम करता रहेगा। उसका विश्वास संदेह के भय से ही थोपा हुआ होगा।

न, संदेह को समझना पड़ेगा, संदेह को जीना पड़ेगा, संदेह के साथ चलना पड़ेगा। और संदेह एक दिन उस जगह पहुंचा देता है, जहां संदेह पर भी संदेह हो जाता है। और जिस दिन संदेह पर संदेह होता है उसी दिन श्रद्धा की शुरुआत हो जाती है।

विचार को छोड़कर भी कोई विवेक को उपलब्ध नहीं हो सकता। विचार को छोड़नेवाले लोग हैं, छुड़ानेवाले लोग हैं; वे कहते हैं--विचार मत करो, विचार छोड़ ही दो। अगर कोई विचार छोड़ेगा, तो विश्वास और अंधे विश्वास को उपलब्ध होगा। वह विवेक नहीं है। विचार की सूक्ष्मतम प्रक्रिया से गुजरकर ही कोई विवेक को उपलब्ध होता है।

विवेक का क्या मतलब है?

विचार में सदा ही संदेह मौजूद है। विचार सदा इनडिसीसिव है। इसलिए बहुत विचार करनेवाले लोग कभी कुछ तय नहीं कर पाते। और जब भी कोई कुछ तय करता है, वह तभी तय कर पाता है जब विचार के चक्कर के बाहर होता है। डिसीजन जो है वह हमेशा विचार के बाहर से आता है। अगर कोई विचार में पड़ा रहे तो वह कभी निश्चय नहीं कर पाता। विचार के साथ निश्चय का कोई संबंध नहीं है।

इसलिए अक्सर ऐसा होता है कि विचारहीन बड़े निश्चयात्मक होते हैं, और विचारवान बड़े निश्चयहीन होते हैं। दोनों से खतरा होता है। क्योंकि विचारहीन बहुत डिसीसिव होते हैं। वे जो करते हैं, पूरी ताकत से करते हैं। क्योंकि उनमें विचार होता ही नहीं जो जरा भी संदेह पैदा कर दे। दुनिया भर के डाग्मेटिक, अंधे जितने लोग हैं, फेनेटिक जितने लोग हैं, ये बड़े कर्मठ होते हैं; क्योंकि इनमें शक का तो सवाल ही नहीं है, ये कभी विचार तो करते नहीं। अगर इनको ऐसा लगता है कि एक हजार आदमी मारने से स्वर्ग मिलेगा, तो एक हजार एक मारकर ही फिर रुकते हैं, उसके पहले वे नहीं रुकते। एक दफा उनको ख्याल नहीं आता कि यह ऐसा--ऐसा होगा? उनमें कोई इनडिसीजन नहीं है। विचारवान तो सोचता ही चला जाता है, सोचता ही चला जाता है।

तो विचार के भय से अगर कोई विचार का द्वार ही बंद कर दे, तो सिर्फ अंधे विश्वास को उपलब्ध होगा। अंधा विश्वास खतरनाक है और साधक के मार्ग में बड़ी बाधा है। चाहिए आंखवाला विवेक, चाहिए ऐसा विचार जिसमें डिसीजन हो। विवेक का मतलब इतना ही होता है। विवेक का मतलब है कि विचार पूरा है, लेकिन विचार से हम इतने गुजरे हैं कि अब विचार की जो भी संदेह की, शक की बातें थीं, वे विदा हो गई हैं; अब धीरे-धीरे निष्कर्ष में शुद्ध निश्चय साथ रह गया है।

तो तीसरे शरीर का केंद्र है मणिपुर, चक्र है मणिपुर। उस मणिपुर चक्र के ये दो रूप हैंः संदेह और श्रद्धा। संदेह रूपांतरित होगा तो श्रद्धा बनेगी।

लेकिन ध्यान रखेंः श्रद्धा संदेह के विपरीत नहीं है, शत्रु नहीं है; श्रद्धा संदेह का ही शुद्धतम विकास है, चरम विकास है; वह आखिरी छोर है जहां संदेह का सब खो जाता है, क्योंकि संदेह स्वयं पर संदेह बन जाता है और स्युसाइडल हो जाता है, आत्मघात कर लेता है और श्रद्धा उपलब्ध होती है।

अनाहत चक्र की संभावनाएं

चौथा शरीर है हमारा, मेंटल बॉडी, मनस शरीर, साइक। इस चौथे शरीर के साथ हमारे चौथे चक्र का संबंध है, अनाहत का। चौथा जो शरीर है, मनस, इस शरीर का जो प्राकृतिक रूप है, वह है कल्पना--इमेजिनेशन, स्वप्न--और ड्रीमिंग। हमारा मन स्वभावतः यह काम करता रहता है--कल्पना करता है और सपने देखता है। रात में भी सपने देखता है, दिन में भी सपने देखता है और कल्पना करता रहता है।

इसका जो चरम विकसित रूप है, अगर कल्पना पूरी तरह से, चरम रूप से विकसित हो, तो संकल्प बन जाती है, विल बन जाती है; और अगर ड्रीमिंग पूरी तरह से विकसित हो, तो वि.जन बन जाती है, तब वह साइकिक वि.जन हो जाती है।

अगर किसी व्यक्ति की स्वप्न देखने की क्षमता पूरी तरह से विकसित होकर रूपांतरित हो, तो वह आंख बंद करके भी चीजों को देखना शुरू कर देता है। सपना नहीं देखता तब वह, तब वह चीजों को ही देखना शुरू कर देता है। वह दीवाल के पार भी देख लेता है। अभी तो दीवाल के पार का सपना ही देख सकता है, लेकिन तब दीवाल के पार भी देख सकता है। अभी तो आप क्या सोच रहे होंगे, यह सोच सकता है; लेकिन तब आप क्या सोच रहे हैं, यह देख सकता है। वि.जन का मतलब यह है कि इंद्रियों के बिना अब उसे चीजें दिखाई पड़नी और सुनाई पड़नी शुरू हो जाती हैं। टाइम और स्पेस के, काल और स्थान के जो फासले हैं, उसके लिए मिट जाते हैं।

सपने में भी आप जाते हैं। सपने में आप बंबई में हैं, कलकत्ता जा सकते हैं। और वि.जन में भी जा सकते हैं। लेकिन दोनों में फर्क होगा। सपने में सिर्फ ख्याल है कि आप कलकत्ता गए, वि.जन में आप चले ही जाएंगे। वह जो चौथी साइकिक बॉडी है, वह मौजूद हो सकती है।

इसलिए पुराने जगत में जो सपनों के संबंध में ख्याल था--वह धीरे-धीरे छूट गया और नये समझदार लोगों ने उसे इनकार कर दिया; क्योंकि हमें चौथे शरीर की चरम संभावना का कोई पता नहीं रहा--सपने के संबंध में पुराना अनुभव यही था कि सपने में आदमी का कोई शरीर निकलकर बाहर चला जाता है यात्रा पर।

स्वीडनबर्ग एक आदमी था। उसे लोग सपना देखनेवाला आदमी ही समझते थे। क्योंकि वह स्वर्ग-नरक की बातें भी कहता था; और स्वर्ग-नरक की बातें सपना ही हो सकती हैं! लेकिन एक दिन दोपहर वह सोया था, और उसने दोपहर एकदम उठकर कहा कि बचाओ, आग लग गई है! बचाओ, आग लग गई है! घर के लोग आ गए, वहां कोई आग नहीं लगी थी। तो उसको उन्होंने जगाया और कहा कि तुम नींद में हो या सपना देख रहे हो? आग कहीं भी नहीं लगी है! उसने कहा, नहीं, मेरे घर में आग लग गई है। तीन सौ मील दूर था उसका घर, लेकिन उसके घर में उस वक्त आग लग गई थी। दूसरे-तीसरे दिन तक खबर आई कि उसका घर जलकर बिल्कुल राख हो गया। और जब वह सपने में चिल्लाया था तभी आग लगी थी।

अब यह सपना न रहा, यह वि.जन हो गया। अब तीन सौ मील का जो फासला था वह गिर गया और इस आदमी ने तीन सौ मील दूर जो हो रहा था वह देखा।

विज्ञान के समक्ष अतींद्रिय घटनाएं

अब तो वैज्ञानिक भी इस बात के लिए राजी हो गए हैं कि चौथे शरीर की बड़ी साइकिक संभावनाएं हैं। और चूंकि स्पेस ट्रेवेल की वजह से उन्हें बहुत समझकर काम करना पड़ रहा है; क्योंकि आज नहीं कल यह कठिनाई खड़ी हो जाने ही वाली है कि जिन यात्रियों को हम अंतरिक्ष की यात्रा पर भेजेंगे--मशीन कितने ही भरोसे की हो, फिर भी भरोसे की नहीं है--अगर उनके यंत्र जरा भी बिगड़ गए, उनके रेडियो यंत्र, तो हमसे उनका संबंध सदा के लिए टूट जाएगा; फिर वे हमें खबर भी न दे पाएंगे कि वे कहां गए और उनका क्या हुआ। इसलिए वैज्ञानिक इस समय बहुत उत्सुक हैं कि यह साइकिक, चौथे शरीर का अगर वि.जन का मामला संभव हो सके और टेलीपैथी का मामला संभव हो सके--वह भी चौथे शरीर की आखिरी संभावनाओं का एक हिस्सा है--कि अगर वे यात्री बिना रेडियो यंत्रों के हमें सीधी टेलीपैथिक खबर दे सकें, तो कुछ बचाव हो सकता है।

इस पर काफी काम हुआ है। आज से कोई तीस साल पहले एक यात्री उत्तर ध्रुव की खोज पर गया था। तो रेडियो यंत्रों की व्यवस्था थी जिनसे वह खबर देता, लेकिन एक और व्यवस्था थी जो अभी-अभी प्रकट हुई है। और वह व्यवस्था यह थी कि एक साइकिक आदमी को, एक ऐसे आदमी को जिसके चौथे शरीर की दूसरी संभावनाएं काम करती थीं, उसको भी नियत किया गया था कि वह उसको भी खबरें दे।

और बड़े मजे की बात यह है कि जिस दिन पानी, हवा, मौसम खराब होता और रेडियो में खबरें न मिलतीं, उस दिन भी उसे तो खबरें मिलतीं। और जब पीछे सब डायरी मिलाई गईं, तो कम से कम अस्सी से पंचानबे प्रतिशत के बीच उसने जो साइकिक आदमी ने जो माध्यम की तरह ग्रहण की थीं, वे सही थीं। और मजा यह है कि रेडियो ने जो खबर की थीं, वह भी बहत्तर प्रतिशत से ज्यादा ऊपर नहीं गई थीं; क्योंकि इस बीच कभी कुछ गड़बड़ हुई, कभी कुछ हुई, तो बहुत सी चीजें छूट गई थीं।

और अभी तो रूस और अमेरिका दोनों अति उत्सुक हैं उस संबंध में। इसलिए टेलीपैथी और क्लेअरवायंस और थॉट रीडिंग और थॉट प्रोजेक्शन, इन पर बहुत काम चलता है। वे हमारे चौथे शरीर की संभावनाएं हैं।

स्वप्न देखना उसकी प्राकृतिक संभावना है; सत्य देखना, यथार्थ देखना उसकी चरम संभावना है। यह अनाहत हमारा चौथा चक्र है।

विशुद्ध चक्र की संभावनाएं

पांचवां चक्र है विशुद्ध; वह कंठ के पास है। और पांचवां शरीर है स्प्रिचुअल बॉडी, आत्म शरीर। वह उसका चक्र है, वह उस शरीर से संबंधित है। अब तक जो चार शरीर की मैंने बात की और चार चक्रों की, वे द्वैत में बंटे हुए थे। पांचवें शरीर से द्वैत समाप्त हो जाता है। जैसा मैंने कल कहा था कि चार शरीर तक मेल और फीमेल का फर्क होता है बॉडी में; पांचवें शरीर से मेल और फीमेल का, स्त्री और पुरुष का फर्क समाप्त हो जाता है। अगर बहुत गौर से देखें तो सब द्वैत स्त्री और पुरुष का है; द्वैत मात्र, डुआलिटी मात्र स्त्री-पुरुष की है। और जिस जगह से स्त्री-पुरुष का फासला खत्म होता है, उसी जगह से सब द्वैत खत्म हो जाता है। पांचवां शरीर अद्वैत है। उसकी दो संभावनाएं नहीं हैं, उसकी एक ही संभावना है।

इसलिए चौथे के बाद साधक के लिए बड़ा काम नहीं है, सारा काम चौथे तक है। चौथे के बाद बड़ा काम नहीं है। बड़ा इस अर्थों में कि विपरीत कुछ भी नहीं है वहां। वहां प्रवेश ही करना है। और चौथे तक पहुंचते-पहुंचते इतनी सामर्थ्य इकट्ठी हो जाती है कि पांचवें में सहज प्रवेश हो जाता है।

लेकिन प्रवेश न हो और हो, तो क्या फर्क होगा? पांचवें शरीर में कोई द्वैत नहीं है। लेकिन कोई साधक जो... एक व्यक्ति अभी प्रवेश नहीं किया है, उसमें क्या फर्क है? और जो प्रवेश कर गया है, उसमें क्या फर्क है?

इनमें फर्क होगा। वह फर्क इतना होगा कि जो पांचवें शरीर में प्रवेश करेगा उसकी समस्त तरह की मूच्र्छा टूट जाएगी; वह रात भी नहीं सो सकेगा। सोएगा, शरीर ही सोया रहेगा; भीतर उसके कोई सतत जागता रहेगा। अगर उसने करवट भी बदली है तो वह जानता है, नहीं बदली है तो जानता है; अगर उसने कंबल ओढ़ा है तो जानता है, नहीं ओढ़ा है तो जानता है। उसका जानना निद्रा में भी शिथिल नहीं होगा; वह चौबीस घंटे जागरूक होगा।

जिनका नहीं पांचवें शरीर में प्रवेश हुआ, उनकी स्थिति बिल्कुल उलटी होगीः वे नींद में तो सोए हुए होंगे ही, जिसको हम जागना कहते हैं, उसमें भी एक पर्त उनकी सोई ही रहेगी।

आदमी की मूच्र्छा और यांत्रिकता

काम करते हुए दिखाई पड़ते हैं लोग। आप अपने घर आते हैं, कार का घूमना बाएं और आपके घर के सामने आकर ब्रेक का लग जाना, तो आप यह मत समझ लेना कि आप सब होश में कर रहे हैं! यह सब बिल्कुल आदतन, बेहोशी में होता रहता है। कभी-कभी किन्हीं क्षणों में हम होश में आते हैं, बहुत खतरे के क्षणों में! जब खतरा इतना होता है कि नींद से नहीं चल सकता--कि एक आदमी आपकी छाती पर छुरा रख दे--तब आप एक सेकेंड को होश में आते हैं। एक सेकेंड को वह छुरे की धार आपको पांचवें शरीर तक पहुंचा देती है। लेकिन बस, ऐसे दो-चार क्षण जिंदगी में होते हैं, अन्यथा साधारणतः हम सोए-सोए ही जीते हैं।

न तो पति अपनी पत्नी का चेहरा देखा है ठीक से, कि अगर अभी आंख बंद करके सोचे तो ख्याल कर पाए। नहीं कर पाएगा। रेखाएं थोड़ी देर में ही इधर-उधर हट जाएंगी और पक्का नहीं हो पाएगा कि यह मेरी पत्नी का चेहरा है जिसको तीस साल से मैं देखा हूं। देखा ही नहीं है कभी। क्योंकि देखने के लिए भीतर कोई जागा हुआ आदमी चाहिए।

सोया हुआ आदमी, दिखाई पड़ रहा है कि देख रहा है, लेकिन वह देख नहीं रहा है। उसके भीतर तो नींद चल रही है, और सपने भी चल रहे हैं। उस नींद में सब चल रहा है। आप क्रोध करते हैं और पीछे कहते हैं कि

पता नहीं कैसे हो गया! मैं तो नहीं करना चाहता था। जैसे कि कोई और कर गया हो। आप कहते हैं, यह मुंह से मेरे गाली निकल गई, माफ करना, मैं तो नहीं देना चाहता था, कोई जबान खिसक गई होगी। आपने ही गाली दी, आप ही कहते हैं कि मैं नहीं देना चाहता था। हत्यारे हैं, जो कहते हैं कि पता नहीं, इंसपाइट ऑफ अस, हमारे बावजूद हत्या हो गई; हम तो करना ही नहीं चाहते थे, बस ऐसा हो गया।

तो हम कोई आटोमेटा हैं? यंत्रवत चल रहे हैं? जो नहीं बोलना है वह बोलते हैं, जो नहीं करना है वह करते हैं। सांझ को तय करते हैंः सुबह चार बजे उठेंगे! कसम खा लेते हैं। सुबह चार बजे हम खुद ही कहते हैं कि क्या रखा है! अभी सोओ, कल देखेंगे। सुबह छह बजे उठकर फिर पछताते हैं और हम ही कहते हैं कि बड़ी गलती हो गई। ऐसा कभी नहीं करेंगे, अब कल तो उठना ही है, जो कसम खाई थी उसको निभाना था।

आश्चर्य की बात है, शाम को जिस आदमी ने तय किया था, सुबह चार बजे वही आदमी बदल कैसे गया? फिर सुबह चार बजे तय किया था तो फिर छह बजे कैसे बदल गया? फिर सुबह छह बजे जो तय किया है, फिर सांझ तक बदल जाता है। सांझ बहुत दूर है, उस बीच पच्चीस दफे बदल जाता है।

न, ये निर्णय, ये ख्याल, हमारी नींद में आए हुए ख्याल हैं, सपनों की तरह। बहुत बबूलों की तरह बनते हैं और टूट जाते हैं। कोई जागा हुआ आदमी पीछे नहीं है; कोई होश से भरा हुआ आदमी पीछे नहीं है।

तो नींद आत्मिक शरीर में प्रवेश के पहले की सहज अवस्था है--नींद; सोया हुआ होना। और आत्म शरीर में प्रवेश के बाद की सहज अवस्था है जागृति। इसलिए चौथे शरीर के बाद हम व्यक्ति को बुद्ध कह सकते हैं। चौथे शरीर के बाद जागना आ गया। अब आदमी जागा हुआ है। बुद्ध, गौतम सिद्धार्थ का नाम नहीं है, पांचवें शरीर की उपलब्धि के बाद दिया गया विशेषण है--गौतम दि बुद्धा! गौतम जो जाग गया, यह मतलब है उसका। नाम तो गौतम ही है, लेकिन वह गौतम सोए हुए आदमी का नाम था। इसलिए फिर धीरे-धीरे उसको गिरा दिया और बुद्ध ही रह गया।

सोए हुए आदमियों की दुनिया

यह हमारे पांचवें शरीर का फर्क, उसमें प्रवेश के पहले आदमी सोया-सोया है, वह स्लीपी है। वह जो भी कर रहा है, वे नींद में किए गए कृत्य हैं। उसकी बातों का कोई भरोसा नहीं; वह जो कह रहा है, वह विश्वास के योग्य नहीं; उसकी प्रामिस का कोई मूल्य नहीं; उसके दिए गए वचन को मानने का कोई अर्थ नहीं। वह कहता है कि मैं जीवन भर प्रेम करूंगा! और अभी दो क्षण बाद हो सकता है कि वह गला घोंट दे। वह कहता है, यह संबंध जन्मों-जन्मों तक रहेगा! यह दो क्षण न टिके। उसका कोई कसूर भी नहीं है, नींद में दिए गए वचन का क्या मूल्य है? रात सपने में मैं किसी को वचन दे दूं कि जीवन भर यह संबंध रहेगा, इसका क्या मूल्य है? सुबह मैं कहता हूं, सपना था।

सोए हुए आदमी का कोई भी भरोसा नहीं है। और हमारी पूरी दुनिया सोए हुए आदमियों की दुनिया है। इसलिए इतना कनफ्यूजन, इतनी कांफ्लिक्ट, इतना द्वंद्व, इतना झगड़ा, इतना उपद्रव, ये सोए हुए आदमी पैदा कर रहे हैं।

सोए हुए आदमी और जागे हुए आदमी में एक और फर्क पड़ेगा, वह भी हमें ख्याल में ले लेना चाहिए। चूंकि सोए हुए आदमी को यह कभी पता नहीं चलता कि मैं कौन हूं, इसलिए वह पूरे वक्त इस कोशिश में लगा रहता है कि मैं किसी को बता दूं कि मैं यह हूं! पूरे वक्त लगा रहता है। उसे खुद ही पता नहीं कि मैं कौन हूं, इसलिए पूरे वक्त वह हजार-हजार रास्तों से... कभी राजनीति के किसी पद पर सवार होकर लोगों को दिखाता है कि मैं यह हूं; कभी एक बड़ा मकान बनाकर दिखाता है कि मैं यह हूं; कभी पहाड़ पर चढ़कर

दिखाता है कि मैं यह हूं; वह सब तरफ से कोशिश कर रहा है कि लोगों को बता दे कि मैं यह हूं। और इस सब कोशिश से वह घूमकर अपने को जानने की कोशिश कर रहा है कि मैं हूं कौन? मैं हूं कौन, यह उसे पता नहीं है।

"मैं कौन हूं" का उत्तर

चौथे शरीर के पहले इसका कोई पता नहीं चलेगा। पांचवें शरीर को आत्म शरीर इसीलिए कह रहे हैं कि वहां तुम्हें पता चलेगा कि तुम कौन हो। इसलिए पांचवें शरीर के बाद "मैं" की आवाजें एकदम बंद हो जाएंगी। पांचवें शरीर के बाद वह समबडी होने का दावा एकदम समाप्त हो जाएगा। उसके बाद अगर तुम उससे कहोगे कि तुम यह हो, तो वह हंसेगा। और अपनी तरफ से उसके दावे खत्म हो जाएंगे; क्योंकि अब वह जानता है, अब दावे करने की कोई जरूरत नहीं। अब किसी के सामने सिद्ध करने की कोई जरूरत नहीं; अपने ही सामने सिद्ध हो गया है कि मैं कौन हूं।

इसलिए पांचवें शरीर के भीतर कोई द्वंद्व नहीं है; लेकिन पांचवें शरीर के बाहर और भीतर गए आदमी में बुनियादी फर्क है; द्वंद्व अगर है तो इस भांति है--बाहर और भीतर में। भीतर, पांचवें शरीर में गए आदमी में कोई द्वंद्व नहीं है।

पांचवां शरीर बहुत ही तृप्तिदायी

लेकिन पांचवें शरीर का अपना खतरा है कि चाहो तो तुम वहां रुक सकते हो; क्योंकि तुमने अपने को जान लिया। और यह इतनी तृप्तिदायी स्थिति है और इतनी आनंदपूर्ण, कि शायद तुम आगे की गति न करो। अब तक जो खतरे थे वे दुख के थे, अब जो खतरा शुरू होता है वह आनंद का है। पांचवें शरीर के पहले जितने खतरे थे वे सब दुख के थे, अब जो खतरा शुरू होता है वह आनंद का है। यह इतना आनंदपूर्ण है कि अब शायद तुम आगे खोजो ही न।

इसलिए पांचवें शरीर में गए व्यक्ति के लिए अत्यंत सजगता जो रखनी है वह यह कि आनंद कहीं पकड़ न ले, रोकनेवाला न बन जाए। और आनंद परम है। यहां आनंद अपनी पूरी ऊंचाई पर प्रकट होगा; अपनी पूरी गहराई में प्रकट होगा। एक बड़ी क्रांति घटित हो गई हैः तुम अपने को जान लिए हो। लेकिन अपने को ही जाने हो। और तुम ही नहीं हो, और भी सब हैं। लेकिन बहुत बार ऐसा होता है कि दुख रोकनेवाले सिद्ध नहीं होते, सुख रोकनेवाले सिद्ध हो जाते हैं; और आनंद तो बहुत रोकनेवाला सिद्ध हो जाता है। बाजार की भीड़-भाड़ तक को छोड़ने में कठिनाई थी, अब इस मंदिर में बजती वीणा को छोड़ने में तो बहुत कठिनाई हो जाएगी। इसलिए बहुत से साधक आत्मज्ञान पर रुक जाते हैं और ब्रह्मज्ञान को उपलब्ध नहीं हो पाते।

आनंद में लीन मत हो जाना

तो इस आनंद के प्रति भी सजग होना पड़ेगा। यहां भी काम वही है कि आनंद में लीन मत हो जाना। आनंद लीन करता है, तल्लीन करता है, डुबा लेता है। आनंद में लीन मत हो जाना। आनंद के अनुभव को भी जानना कि वह भी एक अनुभव है--जैसे सुख के अनुभव थे, दुख के अनुभव थे, वैसा आनंद का भी अनुभव है। लेकिन तुम अभी भी बाहर खड़े रहना, तुम इसके भी साक्षी बन जाना। क्योंकि जब तक अनुभव है, तब तक उपाधि है; और जब तक अनुभव है, तब तक अंतिम छोर नहीं आया। अंतिम छोर पर सब अनुभव समाप्त हो जाएंगे। सुख और दुख तो समाप्त होते ही हैं, आनंद भी समाप्त हो जाता है। लेकिन हमारी भाषा इसके आगे फिर नहीं जा पाती। इसलिए हमने परमात्मा का रूप सच्चिदानंद कहा है। यह परमात्मा का रूप नहीं है, यह जहां तक भाषा जाती है वहां तक। आनंद हमारी आखिरी भाषा है।

असल में, पांचवें शरीर के आगे फिर भाषा नहीं जाती। तो पांचवें शरीर के संबंध में कुछ कहा जा सकता है--आनंद है वहां, पूर्ण जागृति है वहां, स्वबोध है वहां; यह सब कहा जा सकता है, इसमें कोई कठिनाई नहीं है।

आत्मवाद के बाद रहस्यवाद

इसलिए जो आत्मवाद पर रुक जाते हैं उनकी बातों में मिस्टिसिज्म नहीं होगा। इसलिए आत्मवाद पर रुक गए लोगों में कोई रहस्य नहीं होगा; उनकी बातें बिल्कुल साइंस जैसी मालूम पड़ेंगी; क्योंकि मिस्ट्री की दुनिया तो इसके आगे है, रहस्य तो इसके आगे है। यहां तक तो चीजें साफ हो सकती हैं। और मेरी समझ है कि जो लोग आत्मवाद पर रुक जाते हैं, आज नहीं कल, उनके धर्म को विज्ञान आत्मसात कर लेगा; क्योंकि आत्म तक विज्ञान भी पहुंच सकेगा।

सत्य का खोजी आत्मा पर नहीं रुकेगा

और आमतौर से साधक जब खोज पर निकलता है तो उसकी खोज सत्य की नहीं होती, आमतौर से आनंद की होती है। वह कहता है सत्य की खोज पर निकला हूं, लेकिन खोज उसकी आनंद की होती है। दुख से परेशान है, अशांति से परेशान है, वह आनंद खोज रहा है। इसलिए जो आनंद खोजने निकला है, वह तो निश्चित ही इस पांचवें शरीर पर रुक जाएगा। इसलिए एक बात और कहता हूं कि खोज आनंद की नहीं, सत्य की करना। तब फिर रुकना नहीं होगा।

तब एक सवाल नया उठेगा कि आनंद है, यह ठीक; मैं अपने को जान रहा हूं, यह भी ठीक; लेकिन ये वृक्ष के फूल हैं, वृक्ष के पत्ते हैं, जड़ें कहां हैं? मैं अपने को जान रहा हूं, यह भी ठीक; मैं आनंदित हूं, यह भी ठीक; लेकिन मैं कहां से हूं? फ्रॉम व्हेयर? मेरी जड़ें कहां हैं? मैं आया कहां से? मेरे अस्तित्व की गहराई कहां है? कहां से मैं आ रहा हूं। यह जो मेरी लहर है, यह किस सागर से उठी है?

सत्य की अगर जिज्ञासा है, तो पांचवें शरीर से आगे जा सकोगे। इसलिए बहुत प्राथमिक रूप से ही, प्रारंभ से ही जिज्ञासा सत्य की चाहिए, आनंद की नहीं। नहीं तो पांचवें तक तो बड़ी अच्छी यात्रा होगी, पांचवें पर एकदम रुक जाएगी बात। सत्य की अगर खोज है तो यहां रुकने का सवाल नहीं है।

तो पांचवें शरीर में जो सबसे बड़ी बाधा है, वह उसका अपूर्व आनंद है। और हम एक ऐसी दुनिया से आते हैं, जहां दुख और पीड़ा और चिंता और तनाव के सिवाय कुछ भी नहीं जाना। और जब इस आनंद के मंदिर में प्रविष्ट होते हैं तो मन होता है कि अब बिल्कुल डूब जाओ, अब खो ही जाओ, इस आनंद में नाचो और खो जाओ।

खो जाने की यह जगह नहीं है। खो जाने की जगह भी आएगी, लेकिन तब खोना न पड़ेगा, खो ही जाओगे। वह बहुत और है--खोना और खो ही जाना। यानी वह जगह आएगी जहां बचाना भी चाहोगे तो नहीं बच सकोगे। देखोगे खोते हुए अपने को, कोई उपाय न रह जाएगा। लेकिन यहां खोना हो सकता है, यहां भी खो सकते हैं हम। लेकिन वह उसमें भी हमारा प्रयास, हमारी चेष्टा... और बहुत गहरे में--अहंकार तो मिट जाएगा पांचवें शरीर में--अस्मिता नहीं मिटेगी। इसलिए अहंकार और अस्मिता का थोड़ा सा फर्क समझ लेना जरूरी है।

आत्म शरीर में अहंकार नहीं, अस्मिता रह जाएगी

अहंकार तो मिट जाएगा, "मैं" का भाव तो मिट जाएगा। लेकिन "हूं" का भाव नहीं मिटेगा। मैं हूं, इसमें दो चीजें हैं--"मैं" तो अहंकार है, और "हूं" अस्मिता है--होने का बोध। "मैं" तो मिट जाएगा पांचवें शरीर में, सिर्फ होना रह जाएगा, "हूं" रह जाएगा; अस्मिता रह जाएगी।

इसलिए इस जगह पर खड़े होकर अगर कोई दुनिया के बाबत कुछ कहेगा तो वह कहेगा, अनंत आत्माएं हैं, सबकी आत्माएं अलग हैं; आत्मा एक नहीं है, प्रत्येक की आत्मा अलग है। इस जगह से आत्मवादी अनेक आत्माओं को अनुभव करेगा; क्योंकि अपने को वह अस्मिता में देख रहा है, अभी भी अलग है।

अगर सत्य की खोज मन में हो और आनंद में डूबने की बाधा से बचा जा सके... बचा जा सकता है; क्योंकि जब सतत आनंद रहता है तो उबानेवाला हो जाता है। आनंद भी उबानेवाला हो जाता है; एक ही स्वर बजता रहे आनंद का तो वह भी उबानेवाला हो जाता है।

बर्ट्रेंड रसेल ने कहीं मजाक में यह कहा है कि मैं मोक्ष जाना पसंद नहीं करूंगा, क्योंकि मैं सुनता हूं कि वहां सिर्फ आनंद है, और कुछ भी नहीं। तो वह तो बहुत मोनोटोनस होगा, कि आनंद ही आनंद है; उसमें एक दुख की रेखा भी बीच में न होगी; उसमें कोई चिंता और तनाव न होगा। तो कितनी देर तक ऐसे आनंद को झेल पाएंगे?

आनंद की लीनता बाधा है पांचवें शरीर में। फिर, अगर आनंद की लीनता से बच सकते हो--जो कि कठिन है, और कई बार जन्म-जन्म लग जाते हैं। पहली चार सीढ़ियां पार करना इतना कठिन नहीं, पांचवीं सीढ़ी पार करना बहुत कठिन हो जाता है; बहुत जन्म लग सकते हैं--आनंद से ऊबने के लिए, और स्वयं से ऊबने के लिए, आत्म से ऊबने के लिए, वह जो सेल्फ है उससे ऊबने के लिए।

तो अभी पांचवें शरीर तक जो खोज है, वह दुख से छूटने की है--घृणा से छूटने की, हिंसा से छूटने की, वासना से छूटने की। पांचवें के बाद जो खोज है, वह स्वयं से छूटने की है। तो दो बातें हैं। फ्रीडम फ्रॉम समथिंग--किसी चीज से मुक्ति, यह एक बात है; यह पांचवें तक पूरी होगी। फिर दूसरी बात है--किसी से मुक्ति नहीं, अपने से ही मुक्ति। और इसलिए पांचवें शरीर से एक नया ही जगत शुरू होता है।

आज्ञा चक्र की संभावना

छठवां शरीर ब्रह्म शरीर है, कास्मिक बॉडी है; और छठवां केंद्र आज्ञा है। अब यहां से कोई द्वैत नहीं है। आनंद का अनुभव पांचवें शरीर पर प्रगाढ़ होगा, अस्तित्व का अनुभव छठवें शरीर पर प्रगाढ़ होगा--एक्झिस्टेंस का, बीइंग का। अस्मिता खो जाएगी छठवें शरीर पर। "हूं", यह भी चला जाएगा--है! मैं हूं--तो "मैं" चला जाएगा पांचवें शरीर पर, "हूं" चला जाएगा पांचवें को पार करते ही। है! इ.जनेस का बोध होगा, तथाता का बोध होगा--ऐसा है। उसमें मैं कहीं भी नहीं आऊंगा, उसमें अस्मिता कहीं नहीं आएगी। जो है, दैट व्हिच इ.ज, बस वही हो जाएगा।

तो यहां सत का बोध होगा, बीइंग का होगा; चित का बोध होगा, कांशसनेस का बोध होगा। लेकिन यहां चित मुझसे मुक्त हो गया। ऐसा नहीं कि मेरी चेतना। चेतना! मेरा अस्तित्व--ऐसा नहीं। अस्तित्व!

ब्रह्म का भी अतिक्रमण करने पर निर्वाण काया में प्रवेश

और कुछ लोग छठवें पर रुक जाएंगे। क्योंकि कास्मिक बॉडी आ गई, ब्रह्म हो गया मैं, अहं ब्रह्मास्मि की हालत आ गई। अब मैं नहीं रहा, ब्रह्म ही रह गया है। अब और कहां खोज? अब कैसी खोज? अब किसको खोजना है? अब तो खोजने को भी कुछ नहीं बचा; अब तो सब पा लिया; क्योंकि ब्रह्म का मतलब है--दि टोटल; सब।

इस जगह से खड़े होकर जिन्होंने कहा है, वे कहेंगे कि ब्रह्म अंतिम सत्य है, वह एब्सोल्यूट है, उसके आगे फिर कुछ भी नहीं। और इसलिए इस पर तो अनंत जन्म रुक सकता है कोई आदमी। आमतौर से रुक जाता है; क्योंकि इसके आगे तो सूझ में ही नहीं आता कि इसके आगे भी कुछ हो सकता है।

तो ब्रह्मज्ञानी इस पर अटक जाएगा, इसके आगे वह नहीं जाएगा। और यह इतना कठिन है इसको पार करना--इस जगह को पार करना--क्योंकि अब बचती ही नहीं कोई जगह जहां इसको पार करो। सब तो घेर लिया, जगह भी चाहिए न! अगर मैं इस कमरे के बाहर जाऊं, तो बाहर जगह भी तो चाहिए! अब यह कमरा इतना विराट हो गया--अंतहीन, अनंत हो गया; असीम, अनादि हो गया; अब जाने को भी कोई जगह नहीं, नो व्हेयर टु गो। तो अब खोजने भी कहां जाओगे? अब खोजने को भी कुछ नहीं बचा, सब आ गया। तो यहां अनंत जन्म तक रुकना हो सकता है।

परम खोज में आखिरी बाधा ब्रह्म

तो ब्रह्म आखिरी बाधा है--दि लास्ट बैरियर। साधक की परम खोज में ब्रह्म आखिरी बाधा है। बीइंग रह गया है अब, लेकिन अभी भी नॉन-बीइंग भी है शेष; "अस्ति" तो जान ली, "है" तो जान लिया, लेकिन "नहीं है", अभी वह जानने को शेष रह गया। इसलिए सातवां शरीर है निर्वाण काया। उसका चक्र है सहस्रार। और उसके संबंध में कोई बात नहीं हो सकती। ब्रह्म तक बात जा सकती है--खींच-तानकर; गलत हो जाएगी बहुत।

छठवें शरीर में तीसरी आंख का खुलना

पांचवें शरीर तक बात बड़ी वैज्ञानिक ढंग से चलती है; सारी बात साफ हो सकती है। छठवें शरीर पर बात की सीमाएं खोने लगती हैं, शब्द अर्थहीन होने लगता है, लेकिन फिर भी इशारे किए जा सकते हैं। लेकिन अब अंगुली भी टूट जाती है, अब इशारे गिर जाते हैं; क्योंकि अब खुद का होना ही गिर जाता है।

तो एब्सोल्यूट बीइंग को छठवें शरीर तक और छठवें केंद्र से जाना जा सकता है।

इसलिए जो लोग ब्रह्म की तलाश में हैं, आज्ञा चक्र पर ध्यान करेंगे। वह उसका चक्र है। इसलिए भृकुटी-मध्य में आज्ञा चक्र पर वे ध्यान करेंगे; वह उससे संबंधित चक्र है उस शरीर का। और वहां जो उस चक्र पर पूरा काम करेंगे, तो वहां से उन्हें जो दिखाई पड़ना शुरू होगा विस्तार अनंत का, उसको वे तृतीय नेत्र और थर्ड आई कहना शुरू कर देंगे। वहां से वह तीसरी आंख उनके पास आई, जहां से वे अनंत को, कास्मिक को देखना शुरू कर देते हैं।

सहस्रार चक्र की संभावना

लेकिन अभी एक और शेष रह गया--न होना, नॉन-बीइंग, नास्ति। अस्तित्व जो है वह आधी बात है, अनस्तित्व भी है; प्रकाश जो है वह आधी बात है, अंधकार भी है; जीवन जो है वह आधी बात है, मृत्यु भी है। इसलिए आखिरी अनस्तित्व को, शून्य को भी जानने की... क्योंकि परम सत्य तभी पता चलेगा जब दोनों जान लिए--अस्ति भी और नास्ति भी; आस्तिकता भी जानी उसकी संपूर्णता में और नास्तिकता भी जानी उसकी संपूर्णता में; होना भी जाना उसकी संपूर्णता में और न होना भी जाना उसकी संपूर्णता में; तभी हम पूरे को जान पाए, अन्यथा यह भी अधूरा है। ब्रह्मज्ञान में एक अधूरापन है कि वह "न होने" को नहीं जान पाएगा। इसलिए ब्रह्मज्ञानी "न होने" को इनकार ही कर देता है; वह कहता हैः वह माया है, वह है ही नहीं। वह कहता हैः होना सत्य है, न होना झूठ है, मिथ्या है; वह है ही नहीं; उसको जानने का सवाल कहां है!

निर्वाण काया का मतलब है शून्य काया, जहां हम "होने" से "न होने" में छलांग लगा जाते हैं। क्योंकि वह और जानने को शेष रह गया; उसे भी जान लेना जरूरी है कि न होना क्या है? मिट जाना क्या है? इसलिए सातवां शरीर जो है, वह एक अर्थ में महामृत्यु है। और निर्वाण का, जैसा मैंने कल अर्थ कहा, वह दीये का बुझ जाना है। वह जो हमारा होना था, वह जो हमारा "मैं" था, मिट गया; वह जो हमारी अस्मिता थी, मिट गई।

लेकिन अब हम सर्व के साथ एक होकर फिर हो गए हैं, अब हम ब्रह्म हो गए हैं, अब इसे भी छोड़ देना पड़ेगा। और इतनी जिसकी छलांग की तैयारी है, वह जो है, उसे तो जान ही लेता; जो नहीं है, उसे भी जान लेता है।

और ये सात शरीर और सात चक्र हैं हमारे। और इन सात चक्रों के भीतर ही हमारी सारी बाधाएं और साधन हैं। कहीं किसी बाहरी रास्ते पर कोई बाधा नहीं है। इसलिए किसी से पूछने जाने का उतना सवाल नहीं है।

खोजने निकलो, मांगने नहीं

और अगर किसी से पूछने भी गए हो, और किसी के पास समझने भी गए हो, तो मांगने मत जाना। मांगना और बात है; समझना और बात है; पूछना और बात है। खोज अपनी जारी रखना। और जो समझकर आए हो, उसको भी अपनी खोज ही बनाना, उसको अपना विश्वास मत बनाना। नहीं तो वह मांगना हो जाएगा।

मुझसे एक बात तुमने की, और मैंने तुम्हें कुछ कहा। अगर तुम मांगने आए थे, तो तुमको जो मैंने कहा, तुम इसे अपनी थैली में बंद करके सम्हालकर रख लोगे, इसकी संपत्ति बना लोगे। तब तुम साधक नहीं, भिखारी ही रह जाते हो। नहीं, मैंने तुमसे कुछ कहा, यह तुम्हारी खोज बना, इसने तुम्हारी खोज को गतिमान किया, इसने तुम्हारी जिज्ञासा को दौड़ाया और जगाया, इससे तुम्हें और मुश्किल और बेचैनी हुई, इसने तुम्हें और नये सवाल खड़े किए, और नई दिशाएं खोलीं, और तुम नई खोज पर निकले, तब तुमने मुझसे मांगा नहीं, तब तुमने मुझसे समझा। और मुझसे तुमने जो समझा, वह अगर तुम्हें स्वयं को समझने में सहयोगी हो गया, तब मांगना नहीं है।

तो समझने निकलो, खोजने निकलो। तुम अकेले नहीं खोज रहे, और बहुत लोग खोज रहे हैं। बहुत लोगों ने खोजा है, बहुत लोगों ने पाया है। उन सबको क्या हुआ है, क्या नहीं हुआ है, उस सबको समझो। लेकिन उस सबको समझकर तुम अपने को समझना बंद मत कर देना; उसको समझकर तुम यह मत समझ लेना कि यह मेरा ज्ञान बन गया। उसको तुम विश्वास मत बनाना, उस पर तुम भरोसा मत करना, उस सबसे तुम प्रश्न बनाना, उस सबको तुम समस्या बनाना, उसको समाधान मत बनाना, तो फिर तुम्हारी यात्रा जारी रहेगी। और तब फिर मांगना नहीं है, तब तुम्हारी खोज है। और तुम्हारी खोज ही तुम्हें अंत तक ले जा सकती है। और जैसे-जैसे तुम भीतर खोजोगे, तो जो मैंने तुमसे बातें कही हैं, प्रत्येक केंद्र पर दो तत्व तुमको दिखाई पड़ेंगे--एक जो तुम्हें मिला है, और एक जो तुम्हें खोजना है। क्रोध तुम्हें मिला है, क्षमा तुम्हें खोजनी है; सेक्स तुम्हें मिला है, ब्रह्मचर्य तुम्हें खोजना है; स्वप्न तुम्हें मिला है, वि.जन तुम्हें खोजना है, दर्शन तुम्हें खोजना है।

चार शरीरों तक तुम्हारी द्वैत की खोज चलेगी, पांचवें शरीर से तुम्हारी अद्वैत की खोज शुरू होगी।

पांचवें शरीर में तुम्हें जो मिल जाए, उससे भिन्न को खोजना जारी रखना। आनंद मिल जाए तो तुम खोजना कि और आनंद के अतिरिक्त क्या है? छठवें शरीर पर तुम्हें ब्रह्म मिल जाए तो तुम खोज जारी रखना कि ब्रह्म के अतिरिक्त क्या है? तब एक दिन तुम उस सातवें शरीर पर पहुंचोगे, जहां होना और न होना, प्रकाश और अंधकार, जीवन और मृत्यु, दोनों एक साथ ही घटित हो जाते हैं। और तब परम, दि अल्टिमेट... और उसके बाबत फिर कोई उपाय नहीं कहने का।

पांचवें शरीर के बाद रहस्य ही रहस्य है

इसलिए हमारे सब शास्त्र या तो पांचवें पर पूरे हो जाते हैं। जो बहुत वैज्ञानिक बुद्धि के लोग हैं, वे पांचवें के आगे बात नहीं करते; क्योंकि उसके बाद कास्मिक शुरू होता है, जिसका कोई अंत नहीं है विस्तार का।

पर जो मिस्टिक किस्म के लोग हैं--जो रहस्यवादी हैं, सूफी हैं, इस तरह के लोग हैं--वे उसकी भी बात करते हैं। हालांकि उसकी बात करने में उन्हें बड़ी कठिनाई होती है, और उन्हें अपने को ही हर बार कंट्राडिक्ट करना पड़ता है, खुद को ही विरोध करना पड़ता है। और अगर एक सूफी फकीर की या एक मिस्टिक की पूरी बातें सुनो, तो तुम कहोगे कि यह आदमी पागल है! क्योंकि कभी यह यह कहता है, कभी यह यह कहता है! यह कहता हैः ईश्वर है भी; और यह कहता हैः ईश्वर नहीं भी है। और यह यह कहता है कि मैंने उसे देखा। और दूसरे ही वाक्य में कहता है कि उसे तुम देख कैसे सकते हो! क्योंकि वह कोई आंखों का विषय है? यह ऐसे सवाल उठाता है कि तुम्हें हैरानी होगी कि किसी दूसरे से सवाल उठा रहा है कि अपने से उठा रहा है! छठवें शरीर से मिस्टिसिज्म...

इसलिए जिस धर्म में मिस्टिसिज्म नहीं है, समझना वह पांचवें पर रुक गया। लेकिन मिस्टिसिज्म भी आखिरी बात नहीं है, रहस्य आखिरी बात नहीं है। आखिरी बात शून्य है; निहिलिज्म है आखिरी बात।

तो जो धर्म रहस्य पर रुक गया, समझना वह छठवें पर रुक गया। आखिरी बात तो आखिरी है। और उस शून्य के अतिरिक्त आखिरी कोई बात हो नहीं सकती।

राह के पत्थर को भी सीढ़ी बना लेना

तो पांचवें शरीर से अद्वैत की खोज शुरू होती है, चौथे शरीर तक द्वैत की खोज खत्म हो जाती है। और सब बाधाएं तुम्हारे भीतर हैं। और बाधाएं बड़ी अच्छी बात है कि तुम्हें उपलब्ध हैं। और प्रत्येक बाधा का रूपांतरण होकर वही तुम्हारा साधन बन जाती है। रास्ते पर एक पत्थर पड़ा है; वह, जब तक तुमने समझा नहीं है उसे, तब तक तुम्हें रोक रहा है। जिस दिन तुमने समझा उसी दिन तुम्हारी सीढ़ी बन जाता है। पत्थर वहीं पड़ा रहता है। जब तक तुम नहीं समझे थे, तुम चिल्ला रहे थे कि यह पत्थर मुझे रोक रहा है, मैं आगे कैसे जाऊं! जब तुम इस पत्थर को समझ लिए, तुम इस पर चढ़ गए और आगे चले गए। और अब तुम उस पत्थर को धन्यवाद दे रहे हो कि तेरी बड़ी कृपा है, क्योंकि जिस तल पर मैं चल रहा था, तुझ पर चढ़कर मेरा तल बदल गया, अब मैं दूसरे तल पर चल रहा हूं। तू साधन था, लेकिन मैं समझ रहा था बाधा है; मैं सोचता था रास्ता रुक गया, यह पत्थर बीच में आ गया, अब क्या होगा!

क्रोध बीच में आ गया। अगर क्रोध पर चढ़ गए तो क्षमा को उपलब्ध हो जाएंगे, जो कि बहुत दूसरा तल है। सेक्स बीच में आ गया। अगर सेक्स पर चढ़ गए तो ब्रह्मचर्य उपलब्ध हो जाएगा, जो कि बिल्कुल ही दूसरा तल है। और तब सेक्स को धन्यवाद दे सकोगे, और तब क्रोध को भी धन्यवाद दे सकोगे।

जिस वृत्ति से लड़ेंगे, उससे ही बंध जाएंगे

प्रत्येक राह का पत्थर बाधा बन सकता है और साधन बन सकता है। वह तुम पर निर्भर है कि उस पत्थर के साथ क्या करते हो। हां, भूलकर भी पत्थर से लड़ना मत, नहीं तो सिर फूट सकता है और वह साधन नहीं बनेगा। और अगर कोई पत्थर से लड़ने लगा तो वह पत्थर रोक लेगा; क्योंकि जहां हम लड़ते हैं वहीं हम रुक जाते हैं। क्योंकि जिससे लड़ना है उसके पास रुकना पड़ता है; जिससे हम लड़ते हैं उससे दूर नहीं जा सकते हम कभी भी।

इसलिए अगर कोई सेक्स से लड़ने लगा, तो वह सेक्स के आसपास ही घूमता रहेगा। उतना ही आसपास घूमेगा जितना सेक्स में डूबनेवाला घूमता है। बल्कि कई बार उससे भी ज्यादा घूमेगा। क्योंकि डूबनेवाला ऊब भी जाता है, बाहर भी होता है; यह ऊब भी नहीं पाता, यह आसपास ही घूमता रहता है।

अगर तुम क्रोध से लड़े तो तुम क्रोध ही हो जाओगे; तुम्हारा सारा व्यक्तित्व क्रोध से भर जाएगा; और तुम्हारे रग-रग, रेशे-रेशे से क्रोध की ध्वनियां निकलने लगेंगी; और तुम्हारे चारों तरफ क्रोध की तरंगें प्रवाहित होने लगेंगी। इसलिए ऋषि-मुनियों की जो हम कहानियां पढ़ते हैं--महाक्रोधी, उसका कारण है; उसका कारण है वे क्रोध से लड़नेवाले लोग हैं। कोई दुर्वासा है, कोई कोई है। उनको सिवाय अभिशाप के कुछ सूझता ही नहीं है। उनका सारा व्यक्तित्व आग हो गया है। वे पत्थर से लड़ गए हैं, वे मुश्किल में पड़ गए हैं; वे जिससे लड़े हैं, वही हो गए हैं।

तुम ऐसे ऋषि-मुनियों की कहानियां पढ़ोगे जिन्हें कि स्वर्ग से कोई अप्सरा आकर बड़े तत्काल भ्रष्ट कर देती है। आश्चर्य की बात है! यह तभी संभव है जब वे सेक्स से लड़े हों, नहीं तो संभव नहीं है। वे इतना लड़े हैं, इतना लड़े हैं, इतना लड़े हैं, इतना लड़े हैं कि लड़-लड़कर खुद ही कमजोर हो गए हैं। और सेक्स अपनी जगह खड़ा है; अब वह प्रतीक्षा कर रहा है; वह किसी भी द्वार से फूट पड़ेगा। और कम संभावना है कि अप्सरा आई हो, संभावना तो यही है कि कोई साधारण स्त्री निकली हो, लेकिन इसको अप्सरा दिखाई पड़ी हो। क्योंकि अप्सराओं ने कोई ठेका ले रखा है कि ऋषि-मुनियों को सताने के लिए आती रहें। लेकिन अगर सेक्स को बहुत सप्रेस किया गया हो, तो साधारण स्त्री भी अप्सरा हो जाती है; क्योंकि हमारा चित्त प्रोजेक्ट करने लगता है। रात वही सपने देखता है, दिन वही विचार करता है, फिर हमारा चित्त पूरा का पूरा उसी से भर जाता है। फिर कोई भी चीज... कोई भी चीज अतिमोहक हो जाती है, जो कि नहीं थी।

लड़ना नहीं, समझना

तो साधक के लिए लड़ने भर से सावधान रहना है, और समझने की कोशिश करनी है। और समझने की कोशिश का मतलब ही यह है कि तुम्हें जो मिला है प्रकृति से उसको समझना। तो तुम्हें जो नहीं मिला है, उसी मिले हुए के मार्ग से तुम्हें वह भी मिल जाएगा जो नहीं मिला है; वह पहला छोर है। अगर तुम उसी से भाग गए तो तुम दूसरे छोर पर कभी न पहुंच पाओगे। अगर सेक्स से ही घबराकर भाग गए तो ब्रह्मचर्य तक कैसे पहुंचोगे? सेक्स तो द्वार था जो प्रकृति से मिला था। ब्रह्मचर्य उसी द्वार से खोज थी जो अंत में तुम खोद पाओगे।

तो ऐसा अगर देखोगे तो मांगने जाने की कोई जरूरत नहीं, समझने जाने की तो बहुत जरूरत है; और पूरी जिंदगी समझने के लिए है--किसी से भी समझो, सब तरफ से समझो और अंततः अपने भीतर समझो।

व्यक्तियों को तौलने से बचना

प्रश्नः अभी आप सात शरीरों की चर्चा करते हैं, तो उसमें सातवें या छठवें या पांचवें शरीर--निर्वाण बॉडी, कास्मिक बॉडी और स्प्रिचुअल बॉडी को क्रमशः उपलब्ध हुए कुछ प्राचीन और अर्वाचीन अर्थात एंशिएंट और माडर्न व्यक्तियों के नाम लेने की कृपा करें।

इस झंझट में न पड़ो तो अच्छा है। इसका कोई सार नहीं है। इसका कोई अर्थ नहीं है। और अगर मैं कहूं भी, तो तुम्हारे पास उसकी जांच के लिए कोई प्रमाण नहीं होगा। और जहां तक बने व्यक्तियों को तौलने से

बचना अच्छा है। उनसे कोई प्रयोजन भी नहीं है। उनसे कोई प्रयोजन नहीं है। उसका कोई अर्थ ही नहीं है। उनको जाने दो।

पांचवें या छठवें शरीर में मृत्यु के बाद देव योनियों में जन्म

प्रश्नः पांचवें शरीर को या उसके बाद के शरीर को उपलब्ध हुए व्यक्ति को अगले जन्म में भी क्या स्थूल शरीर ग्रहण करना पड़ता है?

हां, यह बात ठीक है, पांचवें शरीर को उपलब्ध करने के बाद व्यक्ति का इस शरीर में जन्म नहीं होगा। पर और शरीर हैं। और शरीर हैं। असल में, जिनको हम देवता कहते रहे हैं, उस तरह के शरीर हैं। वे पांचवें के बाद उस तरह के शरीर उपलब्ध हो सकते हैं।

छठवें के बाद तो उस तरह के शरीर भी उपलब्ध नहीं होंगे। गॉड्स के नहीं, बल्कि जिसको हम गॉड कहते रहे हैं, ईश्वर कहते रहे हैं, उस तरह का शरीर उपलब्ध हो जाएगा।

लेकिन शरीर उपलब्ध होते रहेंगे; वे किस तरह के हैं, यह बहुत गौण बात है। सातवें के बाद ही शरीर उपलब्ध नहीं होंगे। सातवें के बाद ही अशरीरी स्थिति होगी। उसके पहले सूक्ष्म से सूक्ष्म शरीर उपलब्ध होते रहेंगे।

शक्तिपात से प्रसाद श्रेष्ठतर

प्रश्नः पिछली एक चर्चा में कहा था आपने कि आप पसंद करते हैं कि शक्तिपात जितना ग्रेस के निकट हो सके उतना ही अच्छा है। इसका क्या यह अर्थ न हुआ कि शक्तिपात की पद्धति में क्रमिक सुधार और विकास की संभावना है? अर्थात क्या शक्तिपात की प्रक्रिया में क्वालिटेटिव प्रोग्रेस भी संभव है?

बहुत संभव है, बहुत सी बातें संभव हैं। असल में, शक्तिपात की और प्रसाद की, ग्रेस की जो भिन्नता है, वह भिन्नता बड़ी है। मूल रूप से तो प्रसाद ही काम का है; बिना माध्यम के मिले, तो शुद्धतम होगा, क्योंकि उसको अशुद्ध करनेवाला बीच में कोई भी नहीं होता। जैसे कि मैं तुम्हें अपनी खुली आंखों से देखूं, तो जो मैं देखूंगा वह शुद्धतम होगा। फिर मैं एक चश्मा लगा लूं, तो जो होगा वह उतना शुद्धतम नहीं होगा, एक माध्यम बीच में आ गया। लेकिन फिर इस माध्यम में भी शुद्ध और अशुद्ध के बहुत रूप हो सकते हैं। एक रंगीन चश्मा हो सकता है, एक साफ-सफेद चश्मा हो सकता है। और इस कांच की भी क्वालिटी में बहुत फर्क हो सकते हैं। समझ रहे हैं न?

तो जब हम माध्यम से लेंगे तब कुछ न कुछ अशुद्धि तो आने ही वाली है। वह माध्यम की होगी। और इसीलिए शुद्धतम प्रसाद तो सीधा ही मिलता है, शुद्धतम ग्रेस तो सीधी ही मिलती है, तब कोई माध्यम नहीं होता।

अब समझ लो कि अगर हम बिना आंख के भी देख सकें तो और भी शुद्धतम होगा, क्योंकि आंख भी माध्यम है। अगर आंख के बिना भी देख सकें तो और भी शुद्धतम होगा, क्योंकि फिर आंख भी उसमें बाधा नहीं डाल पाएगी। अब किसी की आंख में पीलिया है, और किसी की आंख कमजोर है, और किसी की कुछ है, तो कठिनाइयां हैं।

लेकिन अब जिसकी आंख में कमजोरी है, उसको एक चश्मे का माध्यम सहयोगी हो सकता है। यानी हो सकता है कि खाली आंख से वह जितना शुद्ध न देख पाए, उतना एक चश्मा लगाने से शुद्ध देख ले। ऐसे तो चश्मा एक और माध्यम हो गया, दो माध्यम हो गए, लेकिन पिछले माध्यम की कमी यह माध्यम पूरा कर सकता है।

ठीक ऐसी ही बात है। जिस व्यक्ति के माध्यम से प्रसाद किसी दूसरे तक पहुंचेगा, उस व्यक्ति का माध्यम कुछ तो अशुद्धि करेगा ही। लेकिन, अगर यह अशुद्धि ऐसी हो कि उस दूसरे व्यक्ति की आंख की अशुद्धि के प्रतिकूल पड़ती हो और दोनों कट जाती हों, तो प्रसाद के निकटतम पहुंच जाएगी बात। लेकिन यह एक-एक स्थिति में अलग-अलग तय करना होगा।

मेरी जो समझ है वह यह है कि इसलिए सीधा प्रसाद खोज जाए, व्यक्ति के माध्यम की फिकर ही छोड़ दी जाए। हां, कभी-कभी अगर जीवनधारा के लिए जरूरत पड़ेगी तो व्यक्ति के माध्यम से भी झलक दिखला देती है, उसकी तुम्हें चिंता, साधक को उसकी चिंता करने की जरूरत नहीं है।

लेने नहीं जाना! क्योंकि लेने जाओगे, तो मैंने कल तुमसे जैसा कहा, देनेवाला कोई मिल जाएगा। और देनेवाला जितना सघन है, उतनी ही अशुद्ध हो जाएगी बात। तो देनेवाला ऐसा चाहिए जिसे देने का पता ही न चलता हो, तब शक्तिपात शुद्ध हो सकता है। फिर भी वह प्रसाद नहीं बन जाएगा। फिर भी एक दिन तो वह चाहिए जो हमें इमीजिएट मिलता हो, मीडियम के बिना मिलता हो, सीधा मिलता हो; परमात्मा और हमारे बीच कोई भी न हो, शक्ति और हमारे बीच कोई भी न हो। ध्यान में वही रहे, नजर में वही रहे, खोज उसकी रहे। बीच के मार्ग पर बहुत सी घटनाएं घट सकती हैं, लेकिन उन पर किसी पर रुकना नहीं है, इतना ही काफी है। और फर्क तो पड़ेंगे। क्वालिटी के भी फर्क पड़ेंगे, क्वांटिटी के भी फर्क पड़ेंगे। और कई कारणों से पड़ेंगे। वह बहुत विस्तार की बात होगी, कई कारणों से पड़ेंगे।

शक्तिपात का शुद्धतम माध्यम

असल में, पांचवां शरीर जिसको मिल गया है, किसी को भी शक्तिपात उसके द्वारा हो सकता है--पांचवें शरीर से। लेकिन पांचवें शरीरवाले का जो शक्तिपात है वह उतना शुद्ध नहीं होगा, जितना छठवेंवाले का होगा; क्योंकि उसकी अस्मिता कायम है। अहंकार तो मिट गया, अस्मिता कायम है; "मैं" तो मिट गया, "हूं" कायम है। वह "हूं" थोड़ा सा रस लेगा।

छठवें शरीरवाले से भी शक्तिपात हो जाएगा। वहां "हूं" भी नहीं है अब, वहां ब्रह्म ही है। वह और शुद्ध हो जाएगा। लेकिन अभी भी ब्रह्म है। अभी "नहीं है" की स्थिति नहीं आ गई है, "है" की स्थिति है। यह "है" भी बहुत बारीक पर्दा है--बहुत बारीक, बहुत नाजुक, पारदर्शी, ट्रांसपैरेंट--लेकिन है। यह पर्दा है। तो छठवें शरीरवाले से भी शक्तिपात हो जाएगा। पांचवें से तो श्रेष्ठ होगा। प्रसाद के बिल्कुल करीब पहुंच जाएगा। लेकिन कितने ही करीब हो, जरा सी भी दूरी दूरी है। और जितनी कीमती चीजें हों, उतनी छोटी सी दूरी बड़ी हो जाती है; जितनी कीमती चीजें हों, उतनी छोटी सी दूरी बड़ी हो जाती है। इतनी बहुमूल्य दुनिया है प्रसाद की कि वहां इतना सा पर्दा, कि उसको पता है कि है, बाधा बनेगा।

सातवें शरीर को उपलब्ध व्यक्ति से शक्तिपात शुद्धतम हो जाएगा। शुद्धतम हो जाएगा। ग्रेस फिर भी नहीं होगा। शक्तिपात की शुद्धतम स्थिति सातवें शरीर पर पहुंच जाएगी--शुद्धतम। जो, शक्तिपात जहां तक पहुंच सकता है, वहां तक पहुंच जाएगी। लेकिन उस तरफ से तो कोई पर्दा नहीं है अब, सातवें शरीर को उपलब्ध व्यक्ति की तरफ से कोई पर्दा नहीं है, उसकी तरफ से तो अब वह शून्य के साथ एक हो गया, लेकिन तुम्हारी

तरफ से पर्दा है। तुम तो उसको व्यक्ति ही मानकर जीओगे। अब तुम्हारा पर्दा आखिरी बाधा डालेगा। अब उसकी तरफ से कोई पर्दा नहीं है, लेकिन तुम्हारे लिए तो वह व्यक्ति है।

माध्यम के प्रति व्यक्ति-भाव भी बाधा

समझो कि मैं अगर सातवीं स्थिति को उपलब्ध हो जाऊं, तो यह मेरी बात है कि मैं जानूं कि मैं शून्य हूं, लेकिन तुम? तुम तो मुझे जानोगे कि एक व्यक्ति हूं। और तुम्हारा यह ख्याल कि मैं एक व्यक्ति हूं, आखिरी पर्दा हो जाएगा। यह पर्दा तो तुम्हारा तभी गिरेगा जब निर्व्यक्ति से तुम पर घटना घटे। यानी तुम कहीं खोजकर पकड़ ही न पाओ कि किससे घटी, कैसे घटी! कोई सोर्स न मिले तुम्हें, तभी तुम्हारा यह ख्याल गिर पाएगा; सोर्सलेस हो। अगर सूरज की किरण आ रही है तो तुम सूरज को पकड़ लोगे कि वह व्यक्ति है। लेकिन ऐसी किरण आए जो कहीं से नहीं आ रही और आ गई, और ऐसी वर्षा हो जो किसी बादल से नहीं हुई और हो गई, तभी तुम्हारे मन से वह आखिरी पर्दा जो दूसरे के व्यक्ति होने से पैदा होता है गिरेगा।

तो बारीक से बारीक फासले होते चले जाएंगे। अंतिम घटना तो प्रसाद की तभी घटेगी जब कोई भी बीच में नहीं है। तुम्हारा यह ख्याल भी कि कोई है, काफी बाधा है--आखिरी। दो हैं, तब तक तो बहुत ज्यादा है--तुम भी हो और दूसरा भी है। हां, दूसरा मिट गया, लेकिन तुम हो। और तुम्हारे होने की वजह से दूसरा भी तुम्हें मालूम हो रहा है। सोर्सलेस प्रसाद जब घटित होगा, ग्रेस जब उतरेगी, जिसका कहीं कोई उदगम नहीं है, उस दिन वह शुद्धतम होगी। उस उदगम-शून्य की वजह से तुम्हारा व्यक्ति उसमें बह जाएगा, बच नहीं सकेगा। अगर दूसरा व्यक्ति मौजूद है तो वह तुम्हारे व्यक्ति को बचाने का काम करता है; तुम्हारे लिए ही सिर्फ मौजूद है तो भी काम करता है।

"मैं" और "तू" से तनाव का जन्म

असल में तुमको, अगर तुम समुद्र के किनारे चले जाते हो, तुम्हें ज्यादा शांति मिलती है; जंगल में चले जाते हो, ज्यादा शांति मिलती है; क्योंकि सामने दूसरा व्यक्ति नहीं है--दि अदर मौजूद नहीं है। इसलिए तुम्हारा खुद का भी मैं जो है, वह क्षीण हो जाता है। जब तक दूसरा मौजूद है, तुम्हारा मैं भी मजबूत होता है। जब तक दूसरा मौजूद है... एक कमरे में दो आदमी बैठे हैं, तो उस कमरे में तनाव की धाराएं बहती रहती हैं। कुछ नहीं कर रहे--लड़ नहीं रहे, झगड़ नहीं रहे, चुपचाप बैठे हैं--मगर उस कमरे में तनाव की धाराएं बहती रहती हैं। क्योंकि दो मैं मौजूद हैं और पूरे वक्त कार्य चल रहा है--सुरक्षा भी चल रही है, आक्रमण भी चल रहा है। चुप भी चलता है, कोई ऐसा नहीं है कि झगड़ने की सीधी जरूरत है, या कुछ कहने की जरूरत है--दो की मौजूदगी, कमरा टेंस है। और अगर... कभी मैं बात करूंगा कि अगर तुम्हें, सारी जो तरंगें हमारे व्यक्तित्व से निकलती हैं, उनका बोध हो जाए, तो उस कमरे में तुम बराबर देख सकते हो कि वह कमरा दो हिस्सों में विभाजित हो गया, और प्रत्येक व्यक्ति एक सेंटर बन गया, और दोनों की विद्युतधाराएं और तरंगें आपस में दुश्मन की तरह खड़ी हुई हैं।

दूसरे की मौजूदगी तुम्हारे मैं को मजबूत करती है। दूसरा चला जाए तो कमरा बदल जाता है, तुम रिलैक्स हो जाते हो; तुम्हारा मैं जो तैयार था कि कब क्या हो जाए, वह ढीला हो जाता है; वह तकिए से टिककर आराम करने लगता है; वह श्वास लेता है कि अभी दूसरा मौजूद नहीं है।

इसीलिए एकांत का उपयोग है कि तुम्हारा मैं शिथिल हो सके वहां। एक वृक्ष के पास तुम ज्यादा आसानी से खड़े हो पाते हो बजाय एक आदमी के। इसलिए जिन मुल्कों में आदमी-आदमी के बीच तनाव बहुत गहरे हो

जाते हैं, वहां आदमी कुत्ते और बिल्लियों को भी पालकर उनके साथ जीने लगता है। उनके साथ ज्यादा आसानी है, उनके पास कोई मैं नहीं है। एक कुत्ते के गले में पट्टा बांधे हम मजे से चले जा रहे हैं। ऐसा हम किसी आदमी के गले में पट्टा बांधकर नहीं चल सकते।

हालांकि कोशिश करते हैं! पति पत्नी के बांधे हुए है, पत्नी पति के पट्टा बांधे हुए है गले में, और चले जा रहे हैं! लेकिन जरा सूक्ष्म पट्टे हैं, दिखाई नहीं पड़ते। लेकिन दूसरा उसमें गड़बड़ करता रहता है, पूरे वक्त गर्दन हिलाता रहता है कि अलग करो, यह पट्टा नहीं चलेगा। लेकिन एक कुत्ते को बांधे हुए हैं, वह बिल्कुल चला जा रहा है; वह पूंछ हिलाता हमारे पीछे आ रहा है। तो कुत्ता जितना सुख दे पाता है फिर, उतना आदमी नहीं दे पाता; क्योंकि वह जो आदमी है, वह हमारे मैं को फौरन खड़ा कर देता है और मुश्किल में डाल देता है।

धीरे-धीरे व्यक्तियों से संबंध तोड़कर आदमी वस्तुओं से संबंध बनाने लगता है, क्योंकि वस्तुओं के साथ सरलता है। तो वस्तुओं के ढेर बढ़ते जाते हैं। घरों में वस्तुएं बढ़ती जाती हैं, आदमी कम होते चले जाते हैं। आदमी घबड़ाहट लाते हैं, वस्तुएं झंझट नहीं देती हैं। कुर्सी जहां रखी है, वहां रखी है, मैं बैठा हूं तो कोई गड़बड़ नहीं करती।

वृक्ष है, नदी है, पहाड़ है, इनसे कोई झंझट नहीं आती, इसलिए हमको बड़ी शांति मिलती है इनके पास जाकर। कारण कुल इतना है कि दूसरी तरफ मैं मजबूती से खड़ा नहीं है, इसलिए हम भी रिलैक्स हो पाते हैं। हम कहते हैं--ठीक है, यहां कोई तू नहीं है तो मेरे होने की क्या जरूरत है! ठीक है, मैं भी नहीं हूं। लेकिन जरा सा भी इशारा दूसरे आदमी का मिल जाए कि वह है, कि हमारा मैं तत्काल तत्पर हो जाता है, वह सिक्योरिटी की फिकर करने लगता है कि पता नहीं क्या हो जाए, इसलिए तैयार होना जरूरी है।

शून्य व्यक्ति के सामने अहंकार की बेचैनी

यह तैयारी आखिरी क्षण तक बनी रहती है। सातवें शरीरवाला व्यक्ति भी तुम्हें मिल जाए तो भी तुम्हारी तैयारी रहेगी। बल्कि कई बार ऐसे व्यक्ति से तुम्हारी तैयारी ज्यादा हो जाएगी। साधारण आदमी से तुम इतने भयभीत नहीं होते, क्योंकि वह तुम्हें चोट भी अगर पहुंचा सकता है तो बहुत गहरी नहीं पहुंचा सकता। लेकिन ऐसा व्यक्ति जो पांचवें शरीर के पार चला गया है, तुम्हें चोट भी गहरी पहुंचा सकता है--उसी शरीर तक पहुंचा सकता है, जहां तक वह पहुंच गया है। उससे भय भी तुम्हारा बढ़ जाता है; उससे डर भी तुम्हारा बढ़ जाता है कि पता नहीं क्या हो जाए! उसके भीतर से तुम्हें बहुत ही अज्ञात और अनजान शक्ति झांकती मालूम पड़ने लगती है। इसलिए तुम बहुत सम्हलकर खड़े हो जाते हो। उसके आसपास तुम्हें एबिस दिखाई पड़ने लगती है; अनुभव होने लगता है कि कोई गड्ढ है इसके भीतर, अगर गए तो किसी गड्ढे में न गिर जाएं।

इसलिए दुनिया में जीसस, कृष्ण या सुकरात जैसे आदमी जब भी पैदा होते हैं, तो हम उनकी हत्या कर देते हैं। उनकी वजह से हम में बहुत गड़बड़ पैदा हो जाती है। उनके पास जाना, खतरे के पास जाना है। फिर मर जाते हैं, तब हम उनकी पूजा करते हैं। अब हमारे लिए कोई डर नहीं रहा। अब हम उनकी मूर्ति बनाकर सोने की और हाथ-पैर जोड़कर खड़े हो जाते हैं; हम कहते हैंः तुम भगवान हो। लेकिन जब ये लोग होते हैं तब हम इनके साथ ऐसा व्यवहार नहीं करते, तब हम इनसे बहुत डरे रहते हैं। और डर अनजान रहता है, क्योंकि हमें पक्का पता तो नहीं रहता कि बात क्या है। लेकिन एक आदमी जितना गहरा होता जाता है, उतना ही हमारे लिए एबिस बन जाता है, खाई बन जाता है। और जैसे खाई के नीचे झांकने से डर लगता है और सिर घूमता है, ऐसा ही ऐसे व्यक्ति की आंखों में झांकने से डर लगने लगेगा और सिर घूमने लगेगा।

मूसा के संबंध में बड़ी अदभुत कथा हैः कि हजरत मूसा को जब परमात्मा का दर्शन हुआ, तो इसके बाद उन्होंने फिर कभी अपना मुंह नहीं उघाड़ा; वे एक घूंघट डाले रखते थे। वे फिर घूंघट डालकर ही जीए, क्योंकि उनके चेहरे में झांकना खतरनाक हो गया। जो आदमी झांके वह भाग खड़ा हो; फिर वहां रुकेगा नहीं। उसमें से एबिस दिखाई पड़ने लगी। उनकी आंखों में अनंत खड्ड हो गया। तो मूसा लोगों के बीच जाते तो चेहरे पर एक घूंघट डाले रखते। वह घूंघट डालकर ही बात कर सकते फिर। क्योंकि लोग उनसे घबराने लगे और डरने लगे। ऐसा लगे कि कोई चीज चुंबक की तरह खींचती है किसी गड्ढ में! और पता नहीं कहां ले जाएगी, क्या होगा! कुछ पता नहीं!

तो यह जो आखिरी, सातवीं स्थिति में पहुंचा हुआ आदमी है, वह भी है--तुम्हारे लिए। इसलिए तुम उससे अपनी सुरक्षा करोगे और एक पर्दा बना रह जाएगा; इसलिए ग्रेस शुद्ध नहीं हो सकती। ऐसे आदमी के पास हो सकती है शुद्ध, अगर तुम्हें यह ख्याल मिट जाए कि वह है। लेकिन यह ख्याल तुम्हें तभी मिट सकता है, जब कि तुम्हें यह ख्याल मिट जाए कि मैं हूं। अगर तुम इस हालत में पहुंच जाओ कि तुम्हें ख्याल न रहे कि मैं हूं, तो फिर तुम्हें शुद्ध वहां से भी मिल सकती है। लेकिन फिर कोई मतलब ही न रहा उससे मिलने, न मिलने का; वह सोर्सलेस हो गई; वह प्रसाद ही हो गया।

जितनी बड़ी भीड़ में हम हैं, उतना ज्यादा मैं हमारा सख्त, सघन और कंडेंस्ड हो जाता है। इसलिए भीड़ के बाहर, दूसरे से हटकर अपने मैं को गिराने की सदा कोशिश की गई है। लेकिन कहीं भी जाओ, अगर बहुत देर तुम एक वृक्ष के पास रहोगे, तुम उस वृक्ष से बातें करने लगोगे और वृक्ष को तू बना लोगे। अगर तुम बहुत देर सागर के पास रह जाओगे, दस-पांच वर्ष, तो तुम सागर से बोलने लगोगे और सागर को तू बना लोगे। वह हमारा मैं जो है, आखिरी उपाय करेगा, वह तू पैदा कर लेगा, अगर तुम बाहर भी भाग गए कहीं तो, और वह उनसे भी राग का संबंध बना लेगा, और उनको भी ऐसे देखने लगेगा जैसे कि आकार में।

भक्त और भगवान के द्वैत में अहंकार की सुरक्षा

अगर कोई बिल्कुल ही आखिरी स्थिति में भी पहुंच जाता है, तो फिर वह ईश्वर को तू बनाकर खड़ा कर लेता है, ताकि अपने मैं को बचा सके। और भक्त निरंतर कहता रहता है कि हम परमात्मा के साथ एक कैसे हो सकते हैं? वह वह है, हम हम हैं! कहां हम उसके चरणों में और कहां वह भगवान! वह कुछ और नहीं कह रहा, वह यह कह रहा है कि अगर उससे एक होना है तो इधर मैं खोना पड़ेगा। तो उसे वह दूर बनाकर रखता है कि वह तू है। और बातें वह रेशनलाइज करता है; वह कहता है कि हम उसके साथ एक कैसे हो सकते हैं! वह महान है, वह परम है; हम क्षुद्र हैं, हम पतित हैं; हम कहां एक हो सकते हैं! लेकिन वह उसके तू को बचाता है कि इधर मैं उसका बच जाए।

इसलिए भक्त जो है, वह चौथे शरीर के ऊपर नहीं जा पाता। वह पांचवें शरीर तक भी नहीं जा पाता, वह चौथे शरीर पर अटक जाता है। हां, चौथे शरीर की कल्पना की जगह वि.जन आ जाता है उसका। चौथे शरीर में जो श्रेष्ठतम संभावना है, वह खोज लेता है। तो भक्त के जीवन में ऐसी बहुत सी घटनाएं होने लगती हैं जो मिरेकुलस हैं; लेकिन रह जाता है चौथे पर। व्यक्ति के नाम नहीं ले रहा, इसलिए मैं इस तरह कह रहा हूं। चौथे पर रह जाता है भक्त।

भक्त, हठयोगी और राजयोगी की यात्रा

आत्मसाधक, हठयोगी, और बहुत तरह के योग की प्रक्रियाओं में लगनेवाला आदमी ज्यादा से ज्यादा पांचवें शरीर तक पहुंच पाता है; क्योंकि बहुत गहरे में वह यह कह रहा है कि मुझे आनंद चाहिए; बहुत गहरे में

वह यह कह रहा है कि मुझे मुक्ति चाहिए; बहुत गहरे में वह यह कह रहा है कि मुझे दुख-निरोध चाहिए--लेकिन सब चाहिए के पीछे मैं मौजूद है। मुझे मुक्ति चाहिए! मैं से मुक्ति नहीं, मैं की मुक्ति! मुझे मुक्त होना है, मुझे मोक्ष चाहिए। वह मैं उसका सघन खड़ा रह जाता है। वह पांचवें शरीर तक पहुंच पाता है।

राजयोगी छठवें तक पहुंच जाता है। वह कहता है--मैं का क्या रखा है! मैं कुछ भी नहीं; वही है! मैं नहीं, वही है; ब्रह्म ही सब कुछ है। वह मैं को खोने की तैयारी दिखलाता है, लेकिन अस्मिता को खोने की तैयारी नहीं दिखलाता। वह कहता है--रहूंगा मैं, ब्रह्म के साथ एक उसका अंश होकर। रहूंगा मैं, ब्रह्म के साथ एक होकर; उसी के साथ मैं एक हूं; मैं ब्रह्म ही हूं; मैं तो छोड़ दूंगा, लेकिन जो असली है मेरे भीतर वह उसके साथ एक होकर रहेगा। वह छठवें तक पहुंच पाता है।

सातवें तक बुद्ध जैसा साधक पहुंच पाता है, क्योंकि वह खोने को तैयार है--ब्रह्म को भी खोने को तैयार है; अपने को भी खोने को तैयार है; वह सब खोने को तैयार है। वह यह कहता है कि जो है, वही रह जाए; मेरी कोई अपेक्षा नहीं कि यह बचे, यह बचे, यह बचे--मेरी कोई अपेक्षा ही नहीं। सब खोने को तैयार है। और जो सब खोने को तैयार है, वह सब पाने का हकदार हो जाता है। तो निर्वाण शरीर तो ऐसी हालत में ही मिल सकता है जब शून्य और न हो जाने की भी हमारी तैयारी है; मृत्यु को भी जानने की तैयारी है। जीवन को जानने की तैयारियां तो बहुत हैं। इसलिए जीवन को जाननेवाला छठवें शरीर पर रुक जाएगा। मृत्यु को भी जानने की जिसकी तैयारी है, वह सातवें को जान पाएगा।

तुम चाहोगे तो नाम तुम खोज सकोगे, उसमें बहुत कठिनाई नहीं होगी।

चौथे शरीर की वैज्ञानिक संभावनाएं

प्रश्नः आपने कहा कि चौथे शरीर में कल्पना और स्वप्न की क्षमता का जब रूपांतरण होता है तो आदमी को दिव्य-दृष्टि व दूर-दृष्टि उपलब्ध होती है। अभी तक पता नहीं कितने लोग इस चौथे शरीर तक पहुंच चुके हैं। जैसा आपने कहा कि चौथी स्टेज तक विज्ञान विकसित हो चुका है। अगर ऐसी बात होती तो आज विज्ञान जिन चीजों की खोज कर रहा है, उन चीजों के संबंध में उन लोगों ने, जो चौथे शरीर तक गए हैं, क्यों उनकी प्राप्ति की सूचना नहीं दी? क्यों उनकी अभिव्यक्ति नहीं की? एक छोटी सी बात! आज चांद पर पहुंचा हुआ आदमी वहां की अभिव्यक्ति कर सकता है, लेकिन चौथी स्टेज पर पहुंचा हुआ कोई भी व्यक्ति, किसी देश में, कहीं भी उसकी सही-सही स्थिति का वर्णन नहीं कर सका। चांद तो बहुत दूर है, हमारी पृथ्वी के बारे में भी यह नहीं बता सका कि पृथ्वी चक्कर लगा रही है या सूर्य इसका चक्कर लगा रहा है!

समझा! यह बिल्कुल ठीक सवाल है। इसमें तीन-चार बातें समझने जैसी हैं। पहली बात तो समझने जैसी यह है कि बहुत सी बातें इस चौथे शरीर को उपलब्ध लोगों ने बताई हैं। बहुत सी बातें इस चौथे शरीर को उपलब्ध लोगों ने बताई हैं। और उनको गिना जा सकता है कि कितनी बातें उन्होंने बताई हैं। अब जैसे, पृथ्वी कब बनी, इसके संबंध में जो पृथ्वी की उम्र चौथे शरीर के लोगों ने बताई है, उसमें और विज्ञान की उम्र में थोड़ा सा ही फासला है। और अभी भी यह नहीं कहा जा सकता कि विज्ञान जो कह रहा है वह सही है; अभी भी यह नहीं कहा जा सकता। अभी विज्ञान भी यह दावा नहीं कर सकता। फासला बहुत थोड़ा है, फासला बहुत ज्यादा नहीं है।

दूसरी बात, पृथ्वी के संबंध में, पृथ्वी की गोलाई और पृथ्वी की गोलाई के माप के संबंध में जो चौथे शरीर के लोगों ने खबर दी है, उसमें और विज्ञान की खबर में और भी कम फासला है। और यह जो फासला है, जरूरी नहीं है कि वह जो चौथे शरीर को उपलब्ध लोगों ने बताई है, वह गलत ही हो; क्योंकि पृथ्वी की गोलाई में निरंतर अंतर पड़ता रहा है। आज पृथ्वी जितनी सूरज से दूर है, उतनी दूर सदा नहीं थी; और आज पृथ्वी से चांद जितना दूर है, उतना सदा नहीं था। आज जहां अफ्रीका है, वहां पहले नहीं था। एक दिन अफ्रीका हिंदुस्तान से जुड़ा हुआ था। हजार घटनाएं बदल गई हैं, वे रोज बदल रही हैं। उन बदलती हुई सारी बातों को अगर ख्याल में रखा जाए तो बड़ी आश्चर्यजनक बात मालूम पड़ेगी कि विज्ञान की बहुत सी खोजें चौथे शरीर के लोगों ने बहुत पहले खबर दी हैं।

अतींद्रिय अनुभवों की अभिव्यक्ति में कठिनाई

यह भी समझने जैसा मामला है कि विज्ञान के और चौथे शरीर तक पहुंचे हुए लोगों की भाषा में बुनियादी फर्क है, इस वजह से बड़ी कठिनाई होती है। क्योंकि चौथे शरीर को जो उपलब्ध है, उसके पास कोई मैथेमेटिकल लैंग्वेज नहीं होती। उसके पास तो वि.जन और पिक्चर और सिंबल की लैंग्वेज होती है; उसके पास तो प्रतीक की लैंग्वेज होती है।

सपने में कोई भाषा होती भी नहीं; वि.जन में भी कोई भाषा नहीं होती। अगर हम गौर से समझें, तो हम दिन में जो कुछ सोचते हैं, अगर रात हमें उसका ही सपना देखना पड़े, तो हमें प्रतीक भाषा चुननी पड़ती है, प्रतीक चुनना पड़ता है; क्योंकि भाषा तो होती नहीं। अगर मैं महत्वाकांक्षी आदमी हूं और दिन भर आशा करता हूं कि सबके ऊपर निकल जाऊं, तो रात में जो सपना देखूंगा उसमें मैं पक्षी हो जाऊंगा और आकाश में उड़ जाऊंगा, और सबके ऊपर हो जाऊंगा। लेकिन सपने में मैं यह नहीं कह सकता कि मैं महत्वाकांक्षी हूं। मैं इतना ही कर सकता हूं कि--सपने में सारी भाषा बदल जाएगी--मैं एक पक्षी बनकर आकाश में उडूंगा, सबके ऊपर उडूंगा।

तो वि.जन की भी जो भाषा है, वह शब्दों की नहीं है, पिक्चर की है। और जिस तरह अभी ड्रीम इंटरप्रिटेशन फ्रायड और जुंग और एडलर के बाद विकसित हुआ कि स्वप्न की हम व्याख्या करें, तभी हम पता लगा पाएंगे कि मतलब क्या है; इसी तरह चौथे शरीर के लोगों ने जो कुछ कहा है, उसका इंटरप्रिटेशन, व्याख्या अभी भी होने को है, वह अभी हो नहीं गई है। अभी तो ड्रीम की व्याख्या भी पूरी नहीं हो पा रही है, अभी वि.जन की व्याख्या तो बहुत दूसरी बात है--कि वि.जन में जिन लोगों ने जो देखा है, उनका मतलब क्या है? वे क्या कह रहे हैं?

हिंदुओं के अवतार जैविक-विकास क्रम के प्रतीकात्मक रूप

अब जैसे, उदाहरण के लिए, डार्विन ने जब कहा कि आदमी विकसित हुआ है जानवरों से, तो उसने एक वैज्ञानिक भाषा में यह बात लिखी। लेकिन हिंदुस्तान में हिंदुओं के अवतारों की अगर हम कहानी पढ़ें, तो हमें पता चलेगा कि वह अवतारों की कहानी डार्विन के बहुत पहले बिल्कुल ठीक प्रतीक कहानी है। पहला अवतार आदमी नहीं है, पहला अवतार मछली है। और डार्विन का भी पहला जो रूप है मनुष्य का, वह मछली है। अब यह सिंबालिक लैंग्वेज हुई कि हम कहते हैं जो पहला अवतार पैदा हुआ, वह मछली था--मत्स्यावतार। लेकिन यह जो भाषा है, यह वैज्ञानिक नहीं है। अब कहां अवतार और कहां मत्स्य! हम इनकार करते रहे उसको। लेकिन जब डार्विन ने कहा कि मछली जो है जीवन का पहला तत्व है, पृथ्वी पर पहले मछली ही आई है, इसके बाद ही

जीवन की दूसरी बातें आईं! लेकिन उसका जो ढंग है, उसकी जो खोज है, वह वैज्ञानिक है। अब जिन्होंने वि.जन में देखा होगा, उन्होंने यह देखा कि पहला जो भगवान है वह मछली में ही पैदा हुआ है। अब यह वि.जन जब भाषा बोलेगा, तो वह इस तरह की भाषा बोलेगा जो पैरेबल की होगी।

फिर कछुआ है। अब कछुआ जो है, वह जमीन और पानी दोनों का प्राणी है। निश्चित ही, मछली के बाद एकदम से कोई प्राणी पृथ्वी पर नहीं आ सकता; जो भी प्राणी आया होगा, वह अर्ध जल और अर्ध थल का रहा होगा। तो दूसरा जो विकास हुआ होगा, वह कछुए जैसे प्राणी का ही हो सकता है, जो जमीन पर भी रहता हो और पानी में भी रहता हो। और फिर धीरे-धीरे कछुओं के कुछ वंशज जमीन पर ही रहने लगे होंगे और कुछ पानी में ही रहने लगे होंगे, और तब विभाजन हुआ होगा।

अगर हम हिंदुओं के चौबीस अवतारों की कहानी पढ़ें, तो हमें इतनी हैरानी होगी इस बात को जानकर कि जिसको डार्विन हजारों साल बाद पकड़ पाया, ठीक वही विकास क्रम हमने पकड़ लिया! फिर जब मनुष्य अवतार पैदा हुआ उसके पहले आधा मनुष्य और आधा सिंह का नरसिंह अवतार है। आखिर जानवर भी एकदम से आदमी नहीं बन सकते, जानवरों को भी आदमी बनने में एक बीच की कड़ी पार करनी पड़ी होगी, जब कि कोई आदमी आधा आदमी और आधा जानवर रहा होगा। यह असंभव है कि छलांग सीधी लग गई हो--कि एक जानवर को एक बच्चा पैदा हुआ हो जो आदमी का हो। जानवर से आदमी के बीच की एक कड़ी खो गई है, जो नरसिंह की ही होगी--जिसमें आधा जानवर होगा और आधा आदमी होगा।

पुराणों में छिपी वैज्ञानिक संभावनाएं

अगर हम यह सारी बात समझें तो हमें पता चलेगा कि जिसको डार्विन बहुत बाद में विज्ञान की भाषा में कह सका, चौथे शरीर को उपलब्ध लोगों ने उसे पुराण की भाषा में बहुत पहले कहा है। लेकिन आज भी, अभी भी पुराण की ठीक-ठीक व्याख्या नहीं हो पाती है, उसकी वजह यह है कि पुराण बिल्कुल नासमझ लोगों के हाथ में पड़ गया है, वह वैज्ञानिक के हाथ में नहीं है।

पृथ्वी की आयु की पुराणों में घोषणा

अच्छा दूसरी कठिनाई यह हो गई है कि पुराण को खोलने के जो कोड हैं, वे सब खो गए हैं, वे नहीं हैं हमारे पास। इसलिए बड़ी अड़चन हो गई है। बहुत बाद में विज्ञान यह कहता है कि आदमी ज्यादा से ज्यादा चार हजार वर्ष तक पृथ्वी पर और जी सकता है। अब विज्ञान ऐसा कहता है। लेकिन इसकी भविष्यवाणी बहुत से पुराणों में है। और यह वक्त करीब-करीब वही है जो पुराणों में है, कि चार हजार वर्ष से ज्यादा पृथ्वी नहीं टिक सकती।

हां, विज्ञान और भाषा बोलता है। वह बोलता है कि सूर्य ठंडा होता जा रहा है, उसकी किरणें क्षीण होती जा रही हैं, उसकी गर्मी की ऊर्जा बिखरती जा रही है, वह चार हजार वर्ष में ठंडा हो जाएगा। उसके ठंडे होते से ही पृथ्वी पर जीवन समाप्त हो जाएगा। पुराण और तरह की भाषा बोलते हैं। लेकिन... और अभी भी यह पक्का नहीं है, क्योंकि ये चार हजार वर्ष और अगर पुराण कहें पांच हजार वर्ष, तो अभी भी यह पक्का नहीं है कि विज्ञान जो कहता है वह बिल्कुल ठीक ही कह रहा है, पांच हजार भी हो सकते हैं। और मेरा मानना है कि पांच हजार ही होंगे। क्योंकि विज्ञान के गणित में भूल-चूक हो सकती है, वि.जन में भूल-चूक नहीं होती। और इसीलिए विज्ञान रोज सुधरता है--कल कुछ कहता है, परसों कुछ कहता है, रोज हमें बदलना पड़ता है; न्यूटन कुछ कहता है, आइंस्टीन कुछ कहता है। हर पांच वर्ष में विज्ञान को अपनी धारणा बदलनी पड़ती है, क्योंकि

और एग्जेक्ट उसको पता लगता है कि और भी ज्यादा ठीक यह होगा। और बहुत मुश्किल है यह बात तय करनी कि अंतिम जो हम तय करेंगे, वह चौथे शरीर में देखे गए लोगों से बहुत भिन्न होगा।

और अभी भी जो हम जानते हैं, उस जानने से अगर मेल न खाए, तो बहुत जल्दी निर्णय लेने की जरूरत नहीं है; क्योंकि जिंदगी इतनी गहरी है कि जल्दी निर्णय सिर्फ अवैज्ञानिक चित्त ही ले सकता है; जिंदगी इतनी गहरी है! अब अगर हम वैज्ञानिकों के ही सारे सत्यों को देखें, तो हम पाएंगे कि उनमें से सौ साल में सब विज्ञान के सत्य पुराण-कथाएं हो जाते हैं, उनको फिर कोई मानने को तैयार नहीं रह जाता; क्योंकि सौ साल में और बातें खोज में आ जाती हैं।

अब जैसे, पुराण के जो सत्य थे, उनका कोड खो गया है; उनको खोलने की जो कुंजी है, वह खो गई है। उदाहरण के लिए, समझ लें कि कल तीसरा महायुद्ध हो जाए। और तीसरा महायुद्ध अगर होगा, तो उसके जो परिणाम होंगे, पहला परिणाम तो यह होगा कि जितना शिक्षित, सुसंस्कृत जगत है वह मर जाएगा। यह बड़े आश्चर्य की बात है! अशिक्षित और असंस्कृत जगत बच जाएगा। कोई आदिवासी, कोई कोल, कोई भील जंगल-पहाड़ पर बच जाएगा। बंबई में नहीं बच सकेंगे आप, न्यूयार्क में नहीं बच सकेंगे। जब भी कोई महान युद्ध होता है, तो जो उस समाज का श्रेष्ठतम वर्ग है, वह सबसे पहले मर जाता है; क्योंकि चोट उस पर होती है। बस्तर की रियासत का एक कोल और भील बच जाएगा। वह अपने बच्चों से कह सकेगा कि आकाश में हवाई जहाज उड़ते थे। लेकिन बता नहीं सकेगा, कैसे उड़ते थे। तो उसने उड़ते देखे हैं, वह झूठ नहीं बोल रहा। लेकिन उसके पास कोई कोड नहीं है; क्योंकि जिनके पास कोड था वे बंबई में थे, वे मर गए हैं। और बच्चे एकाध-दो पीढ़ी तक तो भरोसा करेंगे, इसके बाद बच्चे कहेंगे कि आपने देखा? तो उनके बाप कहेंगे--नहीं, हमने सुना; ऐसा हमारे पिता कहते थे। और उनके पिता से उन्होंने सुना था कि आकाश में हवाई जहाज उड़ते थे, फिर युद्ध हुआ और फिर सब खत्म हो गया। बच्चे धीरे-धीरे कहेंगे कि कहां हैं वे हवाई जहाज? कहां हैं उनके निशान? कहां हैं वे चीजें? दो हजार साल बाद वे बच्चे कहेंगे--सब कपोल-कल्पना है, कभी कोई नहीं उड़ा-करा।

महाभारत युद्ध तक विकसित श्रेष्ठ विज्ञान नष्ट हो गया

ठीक ऐसी घटनाएं घट गई हैं। महाभारत ने इस देश के पास साइकिक माइंड से जो-जो उपलब्ध ज्ञान था, वह सब नष्ट कर दिया, सिर्फ कहानी रह गई। सिर्फ कहानी रह गई। अब हमें शक आता है कि राम जो हैं वे हवाई जहाज पर बैठकर लंका से आए हों, हमें शक आता है। यह शक की बात है, क्योंकि एक साइकिल भी तो नहीं छूट गई उस जमाने की, हवाई जहाज तो बहुत दूर की बात है। और किसी ग्रंथ में कोई एक सूत्र भी तो नहीं छूट गया।

असल में, महाभारत के बाद उसके पहले का समस्त ज्ञान नष्ट हो गया; स्मृति के द्वारा जो याद रखा जा सका, वह रखा गया। इसलिए पुराने ग्रंथ का नाम स्मृति है, वह मेमोरी है। सुनी हुई बात है, वह देखी हुई बात नहीं है। इसलिए पुराने ग्रंथ को हम कहते हैं--स्मृति, श्रुति--सुनी हुई और स्मरण रखी गई; वह देखी हुई बात नहीं है। किसी ने किसी को कही थी, किसी ने किसी को कही थी, किसी ने किसी को कही थी, वह हम बचाकर रख लिए हैं, ऐसा हुआ था। लेकिन अब हम कुछ भी नहीं कह सकते कि वह हुआ था; क्योंकि उस समाज का जो श्रेष्ठतम बुद्धिमान वर्ग था... और ध्यान रहे, दुनिया की जो बुद्धिमत्ता है, वह दस-पच्चीस लोगों के पास होती है। अगर एक आइंस्टीन मर जाए तो रिलेटिविटी की थियरी बतानेवाला दूसरा आदमी खोजना मुश्किल हो जाता है। आइंस्टीन खुद कहता था अपनी जिंदगी में कि दस-बारह आदमी ही हैं केवल जो मेरी बात समझ सकते हैं--

पूरी पृथ्वी पर। अगर ये बारह आदमी मर जाएं तो हमारे पास किताब तो होगी जिसमें लिखा है कि रिलेटिविटी की एक थियरी होती है, लेकिन एक आदमी समझनेवाला, एक समझानेवाला नहीं होगा।

तो महाभारत ने श्रेष्ठतम व्यक्तियों को नष्ट कर दिया; उसके बाद जो बातें रह गईं वे कहानी की रह गईं। लेकिन अब प्रमाण खोजे जा रहे हैं, और अब खोजा जा सकता है। लेकिन हम तो अभागे हैं; क्योंकि हम तो कुछ भी नहीं खोज सकते।

पिरामिडों के निर्माण में मनस शक्ति का उपयोग

ऐसी जगहें खोजी गई हैं, जो इस बात का सबूत देती हैं कि वे कम से कम तीन हजार या चार हजार या पांच हजार वर्ष पुरानी हैं, और किसी वक्त उन्होंने वायुयान को उतरने के लिए एयरपोर्ट का काम किया है। ऐसी जगह खोजी गई हैं। अच्छा, उतने बड़े स्थान को बनाने की और कोई जरूरत नहीं थी। ऐसी चीजें खोज ली गई हैं जो कि बहुत बड़ी यांत्रिक व्यवस्था के बिना नहीं बन सकती थीं। जैसे पिरामिड पर चढ़ाए गए पत्थर हैं। ये पिरामिड पर चढ़ाए गए पत्थर आज भी हमारे बड़े से बड़े क्रेन की सामर्थ्य के बाहर पड़ते हैं। लेकिन ये पत्थर चढ़ाए गए, यह तो साफ है; ये पत्थर चढ़ाकर और रखे गए, यह तो साफ है। और ये आदमी ने चढ़ाए हैं। इन आदमियों के पास कुछ चाहिए। तो या तो मशीन रही हो; और या फिर मैं कहता हूं, चौथे शरीर की कोई शक्ति रही हो। वह मैं आपसे कहता हूं, उसको आप कभी प्रयोग करके देखें।

एक आदमी को आप लिटा लें और चार आदमी चारों तरफ खड़े हो जाएं। दो आदमी उसके पैर के घुटने के नीचे दो अंगुलियां लगाएं दोनों तरफ और दो आदमी उसके दोनों कंधों के नीचे अंगुलियां लगाएं--एक-एक अंगुली ही लगाएं। और चारों संकल्प करें कि हम एक-एक अंगुली से इसे उठा लेंगे! और चारों श्वास को लें पांच मिनट तक जोर से, इसके बाद श्वास रोक लें और उठा लें। वह एक-एक अंगुली से आदमी उठ जाएगा।

तो पिरामिड पर जो पत्थर चढ़ाए गए, या तो क्रेन से चढ़ाए गए और या फिर साइकिक फोर्स से चढ़ाए गए--कि चार आदमियों ने एक बड़े पत्थर को एक-एक अंगुली से उठा दिया। इसके सिवाय कोई उपाय नहीं है। लेकिन वे पत्थर चढ़े हैं, वे सामने हैं; और उनको इनकार नहीं किया जा सकता, क्योंकि वे पत्थर चढ़े हुए हैं।

जीवन के अज्ञात रहस्यों की मनस शक्ति द्वारा खोज

और दूसरी बात जो जानने की है वह यह जानने की है कि साइकिक फोर्स की इनफिनिट डायमेंशन हैं। एक आदमी जिसको चौथा शरीर उपलब्ध हुआ है, वह चांद के संबंध में ही जाने, यह जरूरी नहीं है। वह जानना ही न चाहे, चांद के संबंध में जानना ही न चाहे, जानने की उसे कोई जरूरत भी नहीं है। वे जो चौथे शरीर को विकसित करनेवाले लोग थे, वे कुछ और चीजें जानना चाहते थे, उनकी उत्सुकता किन्हीं और चीजों में थी, और ज्यादा कीमती चीजों में थी। उन्होंने वे जानीं।

वे प्रेत को जानना चाहते थे कि प्रेतात्मा है या नहीं? वह उन्होंने जाना। और अब विज्ञान खबर दे रहा है कि प्रेतात्मा है। वे जानना चाहते थे कि लोग मरने के बाद कहां जाते हैं? कैसे जाते हैं? क्योंकि चौथे शरीर में जो पहुंच गया है उसकी पदार्थ के प्रति उत्सुकता कम हो जाती है; उसकी चिंता बहुत कम रह जाती है कि जमीन की गोलाई कितनी है। उसका कारण है कि वह जिस स्थिति में खड़ा होता है...

जैसे एक बड़ा आदमी है। छोटे बच्चे उससे कहें कि हम तुम्हें ज्ञानी नहीं मानते, क्योंकि तुम कभी नहीं बताते कि यह गुड्डा कैसे बनता है। हम तुम्हें ज्ञानी कैसे मानें! एक लड़का हमारे पड़ोस में है, वह बताता है कि गुड्डा कैसे बनता है, वह ज्यादा ज्ञानी है। उनका कहना ठीक है, उनकी उत्सुकता का भेद है। एक बड़े आदमी को कोई उत्सुकता नहीं है कि गुड्डे के भीतर क्या है; लेकिन छोटे बच्चे को है।

चौथे शरीर में पहुंचे हुए आदमी की इंक्वायरी बदल जाती है; वह कुछ और जानना चाहता है। वह जानना चाहता है कि मरने के बाद आदमी का यात्रापथ क्या है? वह कहां जाता है? वह किस यात्रापथ से यात्रा करता है? उसकी यात्रा के नियम क्या हैं? वह कैसे जन्मता है, वह कहां जन्मता है, कब जन्मता है? उसके जन्म को क्या सुनियोजित किया जा सकता है?

उसकी उत्सुकता इसमें नहीं थी कि चांद पर आदमी पहुंचे, क्योंकि यह बेमानी है, इसका कोई मतलब नहीं है। उसकी उत्सुकता इसमें थी कि आदमी मुक्ति में कैसे पहुंचे? और वह बहुत मीनिंगफुल है। उसकी फिकर थी कि जब एक बच्चा गर्भ में आता है तो आत्मा कैसे प्रवेश करती है? क्या हम गर्भ चुनने में उसके लिए सहयोगी हो सकते हैं? कितनी देर लगती है?

तिब्बत में मृत आत्माओं पर प्रयोग

अब तिब्बत में एक किताब हैः तिबेतन बुक ऑफ दि डेड। तो अब तिब्बत का जो भी चौथे शरीर को उपलब्ध आदमी था, उसने सारी मेहनत इस बात पर की है कि मरने के बाद हम किसी आदमी को क्या सहायता पहुंचा सकते हैं। आप मर गए, मैं आपको प्रेम करता हूं, लेकिन मरने के बाद मैं आपको कोई सहायता नहीं पहुंचा सकता। लेकिन तिब्बत में पूरी व्यवस्था है सात सप्ताह की, कि मरने के बाद सात सप्ताह तक उस आदमी को कैसे सहायता पहुंचाई जाए; और उसको कैसे गाइड किया जाए; और उसको कैसे विशेष जन्म लेने के लिए उत्प्रेरित किया जाए; और उसे कैसे विशेष गर्भ में प्रवेश करवा दिया जाए।

अभी विज्ञान को वक्त लगेगा कि वह इन सब बातों का पता लगाए; लेकिन यह लग जाएगा पता, इसमें अड़चन नहीं है। और फिर इसकी वैलिडिटी के भी सब उन्होंने उपाय खोजे थे कि इसकी जांच कैसे हो।

प्रधान लामा के चुनाव की विधि

अभी फिलहाल जो लामा है... तिब्बत में लामा जो है, पिछला लामा जो मरता है, वह बताकर जाता है कि अगला मैं किस घर में जन्म लूंगा; और तुम मुझे कैसे पहचान सकोगे, उसके सिंबल्स दे जाता है। फिर उसकी खोज होती है पूरे मुल्क में कि वह अब बच्चा कहां है। और जो बच्चा उस सिंबल का राज बता देता है, वह समझ लिया जाता है कि वह पुराना लामा है। और वह राज सिवाय उस आदमी के कोई बता नहीं सकता, जो बता गया था। तो यह जो लामा है, ऐसे ही खोजा गया। पिछला लामा कहकर गया था। इस बच्चे की खोज बहुत दिन करनी पड़ी। लेकिन आखिर वह बच्चा मिल गया। क्योंकि एक खास सूत्र था जो कि हर गांव में जाकर चिल्लाया जाएगा और जो बच्चा उसका अर्थ बता दे, वह समझ लिया जाएगा कि वह पुराने लामा की आत्मा उसमें प्रवेश कर गई। क्योंकि उसका अर्थ तो किसी और को पता ही नहीं था; वह तो बहुत सीक्रेट मामला है।

तो वह चौथे शरीर के आदमी की क्यूरिआसिटी अलग थी। वह अपनी उस जिज्ञासा... और अनंत है यह जगत, और अनंत हैं इसके राज, और अनंत हैं इसके रहस्य। अब ये जितनी साइंस को हमने जन्म दिया है, भविष्य में ये ही साइंस रहेंगी, यह मत सोचिए, और नई हजार साइंस पैदा हो जाएंगी, क्योंकि और हजार आयाम हैं जानने के। और जब वे नई साइंसेस पैदा होंगी, तब वे कहेंगी कि पुराने लोग वैज्ञानिक न रहे, वे यह क्यों नहीं बता पाए?

नहीं, हम कहेंगेः पुराने लोग भी वैज्ञानिक थे, उनकी जिज्ञासा और थी। जिज्ञासा का इतना फर्क है कि जिसका कोई हिसाब नहीं।

वनस्पतियों से बात करनेवाला वैद्य लुकमान

अब जैसे कि हम कहेंगे कि आज बीमारियों का इलाज हो गया है, पुराने लोगों ने इन बीमारियों के इलाज क्यों न बता दिए! लेकिन आप हैरान होंगे जानकर कि आयुर्वेद में या यूनानी में इतनी जड़ी-बूटियों का हिसाब है, और इतना हैरानी का है कि जिनके पास कोई प्रयोगशालाएं न थीं वे कैसे जान सके कि यह जड़ी-बूटी फलां बीमारी पर इस मात्रा में काम करेगी?

तो लुकमान के बाबत कहानी है। क्योंकि कोई प्रयोगशाला तो नहीं थी, पर चौथे शरीर से काम हो सकता था। लुकमान के बाबत कहानी है कि वह एक-एक पौधे के पास जाकर पूछेगा कि तू किस काम में आ सकता है, यह बता दे। अब यह कहानी बिल्कुल फिजूल हो गई है आज। आज कोई पौधे से... क्या मतलब है इस बात का? लेकिन अभी पचास साल पहले तक हम नहीं मानते थे कि पौधे में प्राण है। इधर पचास साल में विज्ञान ने स्वीकार किया कि पौधे में प्राण है। इधर तीस साल पहले तक हम नहीं मानते थे कि पौधा श्वास लेता है। इधर तीस साल में हमने स्वीकार किया कि पौधा श्वास लेता है। अभी पिछले पंद्रह साल तक हम नहीं मानते थे कि पौधा फील करता है। अभी पंद्रह साल में हमने स्वीकार किया कि पौधा अनुभूति भी करता है। और जब आप क्रोध से पौधे के पास जाते हैं तब पौधे की मनोदशा बदल जाती है; और जब आप प्रेम से जाते हैं तो मनोदशा बदल जाती है। कोई आश्चर्य नहीं कि आनेवाले पचास साल में हम कहें कि पौधे से बोला जा सकता है। यह तो क्रमिक विकास है। और लुकमान सिद्ध हो सही कि उसने पूछा हो पौधों से कि किस काम में आएगा, यह बता दे।

लेकिन यह ऐसी बात नहीं कि हम सामने बोल सकें, यह चौथे शरीर पर संभव है। यह चौथे शरीर पर संभव है कि पौधे को आत्मसात किया जा सके, उसी से पूछ लिया जाए। और मैं भी मानता हूं, क्योंकि कोई लेबोरेटरी इतनी बड़ी नहीं मालूम पड़ती कि लुकमान लाख-लाख जड़ी-बूटियों का पता बता सके। यह इसका कोई उपाय नहीं है; क्योंकि एक-एक जड़ी-बूटी की खोज करने में एक-एक लुकमान की जिंदगी लग जाती है। वह एक लाख-करोड़ जड़ी-बूटियों के बाबत कह रहा है कि यह इस काम में आएगी। और अब विज्ञान सही कहता है कि हां, वह इस काम में आती है। वह आ रही है इस काम में।

यह जो सारी की सारी खोजबीन अतीत की है, वह सारी की सारी खोजबीन चौथे शरीर में उपलब्ध लोगों की ही है। और उन्होंने बहुत बातें खोजी थीं, जिनका हमें ख्याल ही नहीं है।

अब जैसे कि हम हजारों बीमारियों का इलाज कर रहे हैं जो बिल्कुल अवैज्ञानिक है। चौथे शरीरवाला आदमी कहेगाः ये तो बीमारियां ही नहीं हैं, इनका तुम इलाज क्यों कर रहे हो?

लेकिन अब विज्ञान समझ रहा है। अभी एलोपैथी नये प्रयोग कर रही है। अभी अमेरिका के कुछ हास्पिटल्स में उन्होंने... दस मरीज हैं एक ही बीमारी के, तो पांच मरीज को वे पानी का इंजेक्शन दे रहे हैं, पांच को दवा दे रहे हैं। बड़ी हैरानी की बात यह है कि दवावाले भी उसी अनुपात में ठीक होते हैं और पानीवाले भी उसी अनुपात में ठीक होते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि पानी से ठीक होनेवाले रोगियों को वास्तव में कोई रोग नहीं था, बल्कि उन्हें बीमार होने का भ्रम भर था।

अगर ऐसे लोगों को, जिन्हें कि बीमार होने का भ्रम है, दवाइयां दी गईं तो उसका विषाक्त और विपरीत परिणाम होगा। उनका इलाज करने की कोई जरूरत नहीं है। इलाज करने से नुकसान हो रहा है, और बहुत सी बीमारियां इलाज करने से पैदा हो रही हैं, जिनको फिर ठीक करना मुश्किल होता चला जाता है। क्योंकि अगर आपको बीमारी नहीं है, और आपको फेंटम बीमारी है, और आपको असली दवाई दे दी गई, तो आप मुश्किल में पड़े। अब वह असली दवाई कुछ तो करेगी आपके भीतर जाकर; वह पाय.जन करेगी, वह आपको दिक्कत में

डालेगी। अब उसका इलाज चलाना पड़ेगा। आखिर में फेंटम बीमारी मिट जाएगी और असली बीमारी पैदा हो जाएगी।

और सौ में से, पुराना विज्ञान तो कहता है, नब्बे प्रतिशत बीमारियां फेंटम हैं। अभी पचास साल पहले तक एलोपैथी नहीं मानती थी कि फेंटम बीमारी होती है। लेकिन अब एलोपैथी कहती है, पचास परसेंट तक हम राजी हैं। मैं कहता हूं, नब्बे परसेंट तक चालीस वर्षों में, पचास वर्षों में राजी होना पड़ेगा; नब्बे परसेंट तक राजी होना पड़ेगा। क्योंकि असलियत वही है।

विज्ञान की भाषा अलग और पुराण की अलग

यह जो... इस चौथे शरीर में जो आदमी ने जाना है, उसकी व्याख्या करनेवाला आदमी नहीं है, उसकी व्याख्या खोजनेवाला आदमी नहीं है। उसको ठीक जगह पर, ठीक आज के पर्सपेक्टिव में और आज के विज्ञान की भाषा में रख देनेवाला आदमी नहीं है। वह तकलीफ हो गई है। और कोई तकलीफ नहीं हो गई है। और जरा भी तकलीफ नहीं है। अब होता क्या है, जैसा मैंने कहा कि पैरेबल की जो भाषा है वह अलग है।

सूरज के सात घोड़े

आज विज्ञान कहता है कि सूरज की हर किरण प्रिज्म में से निकलकर सात हिस्सों में टूट जाती है, सात रंगों में बंट जाती है। वेद का ऋषि कहता है कि सूरज के सात घोड़े हैं, सात रंग के घोड़े हैं। अब यह पैरेबल की भाषा है। सूरज की किरण सात रंगों में टूटती है; सूरज के सात घोड़े हैं, सात रंग के घोड़े हैं, उन पर सूरज सवार है। अब यह कहानी की भाषा है। इसको किसी दिन हमें समझना पड़े कि यह पुराण की भाषा है, यह विज्ञान की भाषा है। लेकिन इन दोनों में गलती क्या है? इसमें कठिनाई क्या है? यह ऐसे भी समझी जा सकती है। इसमें कोई अड़चन नहीं है।

विज्ञान बहुत पीछे समझ पाता है बहुत सी बातों को। असल में, साइकिक फोर्स के आदमी बहुत पहले प्रेडिक्ट कर जाते हैं। लेकिन जब वे प्रेडिक्ट करते हैं तब भाषा नहीं होती। भाषा तो बाद में जब विज्ञान खोजता है तब बनती है; पहले भाषा नहीं होती। अब जैसे कि आप हैरान होंगे, कोई भी गणित है, लैंग्वेज है, कोई भी दिशा में अगर आप खोजबीन करें, तो आप पाएंगे--विज्ञान तो आज आया है, भाषा तो बहुत पहले आई, गणित बहुत पहले आया। जिन लोगों ने यह सारी खोजबीन की, जिन्होंने यह सारा हिसाब लगाया, उन्होंने किस हिसाब से लगाया होगा? उनके पास क्या माध्यम रहे होंगे, उन्होंने कैसे नापा होगा? उन्होंने कैसे पता लगाया होगा कि एक वर्ष में पृथ्वी सूरज का एक चक्कर लगा लेती है? एक वर्ष में चक्कर लगाती है, उसी हिसाब से वर्ष है। वर्ष तो बहुत पुराना है, विज्ञान के बहुत पहले का है। वर्ष में तीन सौ पैंसठ दिन होते हैं, यह तो विज्ञान के बहुत पहले हमें पता हैं। जब तक किन्हीं ने यह देखा न हो... लेकिन देखने का कोई वैज्ञानिक साधन नहीं था। तो सिवाय साइकिक वि.जन के और कोई उपाय नहीं था।

मनस शक्ति द्वारा पृथ्वी को अंतरिक्ष से देखना

एक बहुत अदभुत चीज मिली है। अरब में एक आदमी के पास सात सौ वर्ष पुराना दुनिया का नक्शा मिला है--सात सौ वर्ष पुराना दुनिया का नक्शा है। और वह नक्शा ऐसा है कि बिना हवाई जहाज के ऊपर से बनाया नहीं जा सकता; क्योंकि वह नक्शा जमीन पर देखकर बनाया हुआ नहीं है। बन नहीं सकता। आज भी पृथ्वी हवाई जहाज पर से जैसी दिखाई पड़ती है, वह नक्शा वैसा है। और वह सात सौ वर्ष पुराना है।

तो अब दो ही उपाय हैंः या तो सात सौ वर्ष पहले हवाई जहाज हो, जो कि नहीं था। दूसरा उपाय यही है कि कोई आदमी अपने चौथे शरीर से इतना ऊंचा उठकर जमीन को देख सके और नक्शा खींचे। सात सौ वर्ष

पहले हवाई जहाज नहीं था, यह तो पक्का है। इसकी कोई कठिनाई नहीं है। यह तय है। सात सौ वर्ष पहले हवाई जहाज नहीं था, लेकिन यह सात सौ वर्ष पुराना नक्शा इस तरह है जैसे कि ऊपर से देखकर बनाया गया है। तो अब इसका क्या...

शरीर की सूक्ष्मतम अंतस-रचना का ज्ञान

अगर हम चरक और सुश्रुत को समझें तो हमें हैरानी हो जाएगी। आज हम आदमी के शरीर को काट-पीटकर जो जान पाते हैं, उसका वर्णन तो है। तो दो ही उपाय हैंः या तो सर्जरी इतनी बारीक हो गई हो। जो कि नहीं दिखाई पड़ती; क्योंकि सर्जरी का एक इंस्ट्रूमेंट नहीं मिलता, सर्जरी के विज्ञान की कोई किताब नहीं मिलती है। लेकिन आदमी के भीतर के बारीक से बारीक हिस्से का वर्णन है। और ऐसे हिस्सों का भी वर्णन है जो विज्ञान बहुत बाद में पकड़ पाया है; जो अभी पचास साल पहले इनकार करता था, उनका भी वर्णन है कि वे वहां भीतर हैं। तो एक ही उपाय है कि किसी व्यक्ति ने वि.जन की हालत में व्यक्ति के भीतर प्रवेश करके देखा हो।

असल में, आज हम जानते हैं कि एक्सरे की किरण आदमी के शरीर में पहुंच जाती है। सौ साल पहले अगर कोई आदमी कहता कि हम आपके भीतर की हड्डियों का चित्र उतार सकते हैं, हम मानने को राजी न होते। आज हमें मानना पड़ता है, क्योंकि वह उतार रहा है। लेकिन क्या आपको पता है कि चौथे शरीर की स्थिति में आदमी की आंख एक्सरे से ज्यादा गहरा देख पा सकती है, और आपके शरीर का पूरा-पूरा चित्र बनाया जा सकता है, जो कि कभी काट-पीटकर नहीं किया गया। और हिंदुस्तान जैसे मुल्क में, जहां कि हम मुर्दे को जला देते थे, काटने-पीटने का उपाय नहीं था।

सर्जरी पश्चिम में इसलिए विकसित हुई कि मुर्दे गड़ाए जाते थे, नहीं तो हो नहीं सकती थी। और आप जानकर यह हैरान होंगे कि यह अच्छे आदमियों की वजह से विकसित नहीं हुई, यह कुछ चोरों की वजह से विकसित हुई जो मुर्दों को चुरा लाते थे। हिंदुस्तान में तो विकसित हो नहीं सकती थी, क्योंकि हम जला देते हैं। और जलाने का हमारा ख्याल था, कोई वजह थी, इसलिए जलाते थे।

यह साइकिक लोगों का ही ख्याल था कि अगर शरीर बना रहे, तो आत्मा को नया जन्म लेने में बाधा पड़ती है; वह उसी के आसपास घूमती रहती है। उसको जला दो, ताकि इस झंझट से उसका छुटकारा हो जाए; वह इसके आसपास न घूमे; वह बात ही खत्म हो गई। और यह अपने सामने ही उस शरीर को जलता हुआ देख ले, जिस शरीर को इसने समझा था कि मैं हूं। ताकि दूसरे शरीर में भी इसको शायद स्मृति रह जाए कि यह शरीर तो जल जानेवाला है। तो हम उसको जलाते थे। इसलिए सर्जरी विकसित न हो सकी; क्योंकि आदमी को काटना पड़े, पीटना पड़े, टेबल पर रखना पड़े। यूरोप में भी चोरों ने लोगों की लाशें चुरा-चुराकर वैज्ञानिकों के घर में पहुंचाईं, मुकदमे चले, अदालतों में दिक्कतें हुईं, क्योंकि वह लाश को लाना गैर-कानूनी था, और मरे हुए आदमी को काटना जुर्म है। लेकिन वे काट-काटकर जिन बातों पर पहुंचे हैं, उन्हें बिना काटे भी आज से तीन हजार वर्ष पुरानी किताबें पहुंच गईं उन बातों पर।

तो इसका मतलब सिर्फ इतना ही होता है कि बिना प्रयोग के भी किन्हीं और दिशाओं से भी चीजों को जाना जा सका है। कभी इस पर पूरी ही आपसे बात करना चाहूंगा। दस-पंद्रह दिन बात करनी पड़े, तब थोड़ा ख्याल में आ सकता है।

पंद्रहवां प्रवचन

धर्म के असीम रहस्य सागर में

प्रश्नः कल की चर्चा में आपने कहा कि विज्ञान का प्रवेश पांचवें शरीर, स्प्रिचुअल बॉडी तक संभव है। बाद में चौथे शरीर में विज्ञान की संभावनाओं पर चर्चा की। आज कृपया पांचवें शरीर में हो सकनेवाली कुछ वैज्ञानिक संभावनाओं पर संक्षिप्त में प्रकाश डालें।

एक तो जिसे हम शरीर कहते हैं और जिसे हम आत्मा कहते हैं, ये ऐसी दो चीजें नहीं हैं कि जिनके बीच सेतु न बनता हो, ब्रिज न बनता हो। इनके बीच कोई खाई नहीं है, इनके बीच जोड़ है।

तो सदा से एक ख्याल था कि शरीर अलग है, आत्मा अलग है; और ये दोनों इस भांति अलग हैं कि इन दोनों के बीच कोई सेतु, कोई ब्रिज नहीं बन सकता। न केवल अलग हैं, बल्कि विपरीत हैं एक-दूसरे से। इस ख्याल ने धर्म और विज्ञान को अलग कर दिया था। धर्म वह था, जो शरीर के अतिरिक्त जो है उसकी खोज करे; और विज्ञान वह था, जो शरीर की खोज करे--आत्मा के अतिरिक्त जो है, उसकी खोज करे।

स्वभावतः, दोनों तरह की खोज एक को मानती और दूसरे को इनकार करती रही; क्योंकि विज्ञान जिसे खोजता था, उसे वह कहता थाः शरीर है, आत्मा कहां! और धर्म जिसे खोजता था, उसे वह मानता थाः आत्मा है, शरीर कहां!

तो धर्म जब अपनी पूरी ऊंचाइयों पर पहुंचा तो उसने शरीर को इल्यूजन और माया कह दिया, कि वह है ही नहीं; आत्मा ही सत्य है, शरीर भ्रम है। और विज्ञान जब अपनी ऊंचाइयों पर पहुंचा तो उसने कह दिया कि आत्मा तो एक झूठ, एक असत्य है, शरीर ही सब कुछ है। यह भ्रांति आत्मा और शरीर को अनिवार्य रूप से विरोधी तत्वों की तरह मानने से हुई।

अब मैंने सात शरीरों की बात कही। ये सात शरीर... अगर पहला शरीर हम भौतिक शरीर मान लें और अंतिम शरीर आत्मिक मान लें, और बीच के पांच शरीरों को छोड़ दें, तो इनके बीच सेतु नहीं बन सकेगा। ऐसे ही जैसे जिन सीढ़ियों से चढ़कर आप आए हैं, ऊपर की सीढ़ी बचा लें और पहली सीढ़ी बचा लें नीचे की, और बीच की सीढ़ियों को छोड़ दें, तो आपको लगेगा कि पहली सीढ़ी कहां और दूसरी सीढ़ी कहां! बीच में खाई हो जाएगी। अगर आप सारी सीढ़ियों को देखें तो पहली सीढ़ी भी आखिरी सीढ़ी से जुड़ी है। और अगर ठीक से देखें तो आखिरी सीढ़ी पहली सीढ़ी का ही आखिरी हिस्सा है; और पहली सीढ़ी आखिरी सीढ़ी का पहला हिस्सा है।

परमाणु ऊर्जा से भी सूक्ष्म ईथरिक ऊर्जा

तो जब पूरे सात शरीरों को हम समझेंगे, तब पहले और दूसरे शरीर में जोड़ बनता है। क्योंकि पहला शरीर है भौतिक शरीर, फिजिकल बॉडी; दूसरा शरीर है ईथरिक बॉडी, ईथर, भाव शरीर। वह भौतिक का ही सूक्ष्मतम रूप है। वह अभौतिक नहीं है, वह भौतिक का ही सूक्ष्मतम रूप है--इतना सूक्ष्मतम कि भौतिक उपाय भी उसे पकड़ने में अभी ठीक से समर्थ नहीं हो पाते। लेकिन अब भौतिकवादी इस बात को इनकार नहीं करता है कि भौतिक का सूक्ष्मतम रूप करीब-करीब अभौतिक हो जाता है।

अब जैसे आज विज्ञान कहता है कि अगर हम पदार्थ को तोड़ते चले जाएं तो जो अंतिम, पदार्थ के विश्लेषण पर हमें मिलेंगे--इलेक्ट्रान, वे अभौतिक हो गए, वे इम्मैटीरियल हो गए हैं; क्योंकि वे सिर्फ विद्युत के कण हैं, उनमें पदार्थ और सब्सटेंस जैसा कुछ भी नहीं बचा, सिर्फ एनर्जी और ऊर्जा बच रही है। इसलिए बड़ी

अदभुत घटना घटी है पिछले तीस वर्षों में कि जो विज्ञान यह बात स्वीकार करके चला था कि पदार्थ ही सत्य है, वह विज्ञान इस नतीजे पर पहुंचा है कि पदार्थ तो बिल्कुल है ही नहीं, एनर्जी और ऊर्जा ही सत्य है; और पदार्थ जो है वह एनर्जी का, ऊर्जा का तीव्र घूमता हुआ रूप है, इसलिए भ्रम पैदा हो रहा है।

एक पंखा हमारे ऊपर चल रहा है। यह पंखा इतने जोर से चलाया जा सकता है कि इसकी तीन पंखुड़ियां हमें दिखाई पड़नी बंद हो जाएं। और जब इसकी तीन पंखुड़ियां हमें दिखाई पड़नी बंद हो जाएंगी, तो पंखा पंखुड़ियां न मालूम होकर, टीन का एक गोल चक्कर घूम रहा है, ऐसा मालूम होगा। और तीनों पंखुड़ियों के बीच की जो खाली जगह है वह भर जाएगी, वह खाली नहीं रह जाएगी; क्योंकि तीन पंखुड़ियां दिखाई नहीं पड़ेंगी।

असल में, पंखुड़ियां इतनी तेजी से घूम सकती हैं कि इसके पहले कि एक पंखुड़ी हटे एक जगह से और हमारी आंख से उसका प्रतिबिंब मिटे, उसके पहले दूसरी पंखुड़ी उसकी जगह आ जाती है; प्रतिबिंब पहला बना रहता है और दूसरा उसके ऊपर आ जाता है। इसलिए बीच की जो खाली जगह है वह हमें दिखाई नहीं पड़ती। यह पंखा इतनी तेजी से भी घुमाया जा सकता है कि आप इसके ऊपर मजे से बैठ सकें और आपको पता न चले कि नीचे कोई चीज बदल रही है। अगर दो पंखुड़ियों के बीच की खाली जगह इतनी तेजी से भर जाए कि एक पंखुड़ी आपके नीचे से हटे, आप इसके पहले कि खाली जगह में से गिरें, दूसरी पंखुड़ी आपको सम्हाल ले, तो आपको दो पंखुड़ियों के बीच का अंतर पता नहीं चलेगा। यह गति की बात है।

अगर ऊर्जा तीव्र गति से घूमती है तो हमें पदार्थ मालूम होती है। इसलिए वैज्ञानिक आज जिस एटामिक एनर्जी पर सारा का सारा विस्तार कर रहा है, उस एनर्जी को किसी ने देखा नहीं है, सिर्फ उसके इफेक्ट्स, उसके परिणाम भर देखे हैं। वह मूल अणु की शक्ति किसी ने देखी नहीं है, और कोई कभी देखेगा भी, यह भी अब सवाल नहीं है। लेकिन उसके परिणाम दिखाई पड़ते हैं।

ईथरिक बॉडी को अगर हम यह भी कहें कि वह मूल एटामिक बॉडी है, तो कोई हर्ज नहीं है। उसके परिणाम दिखाई पड़ते हैं। ईथरिक बॉडी को किसी ने देखा नहीं है, सिर्फ उसके परिणाम दिखाई पड़ते हैं। लेकिन उन परिणामों की वजह से वह है, यह स्वीकार कर लेने की जरूरत पड़ जाती है। यह जो दूसरा शरीर है, यह पहले भौतिक शरीर का ही सूक्ष्मतम रूप है; इसलिए इन दोनों के बीच कोई सीढ़ी बनाने में कठिनाई नहीं है। ये दोनों एक तरह से जुड़े ही हुए हैं--एक स्थूल है जो दिखाई पड़ जाता है, दूसरा सूक्ष्म है इसलिए दिखाई नहीं पड़ता।

ईथरिक ऊर्जा से भी सूक्ष्म एस्ट्रल ऊर्जा

ईथरिक बॉडी के बाद तीसरा शरीर है, जिसे हमने एस्ट्रल बॉडी, सूक्ष्म शरीर कहा। वह ईथर का भी सूक्ष्मतम रूप है। अभी विज्ञान उस पर नहीं पहुंचा है। अभी विज्ञान इस ख्याल पर तो पहुंच गया है कि अगर पदार्थ को हम विश्लेषण करें, एनालिसिस करें और तोड़ते चले जाएं, तो अंत में ऊर्जा बचती है। उस ऊर्जा को हम ईथर कह रहे हैं। अगर ईथर को भी तोड़ा जा सके और उसके भी सूक्ष्मतम अंश बनाए जा सकें, तो जो बचेगा वह एस्ट्रल है--सूक्ष्म शरीर है वह। वह सूक्ष्म का भी सूक्ष्म रूप है।

अभी विज्ञान वहां नहीं पहुंचा, लेकिन पहुंच जाएगा। क्योंकि कल वह भौतिक को स्वीकार करता था, आणविक को स्वीकार नहीं करता था। कल वह कहता थाः पदार्थ ठोस चीज है; आज वह कहता हैः ठोस जैसी कोई चीज ही नहीं है; जो भी है, सब गैर-ठोस है, नॉन-सालिड हो गया सब। यह दीवाल भी जो हमें इतनी ठोस दिखाई पड़ रही है, ठोस नहीं है; यह भी पोरस है, इसमें भी छेद हैं, और चीजें इसके आर-पार जा रही हैं। फिर भी हम कहेंगे कि छेदों के आसपास, जिनके बीच छेद हैं, वे तो कम से कम ठोस अणु होंगे! वे भी ठोस अणु नहीं

हैं। एक-एक अणु भी पोरस है। अगर हम एक अणु को बड़ा कर सकें तो जमीन और चांद और तारे और सूरज के बीच जितना फासला है, उतना अणु के कणों के बीच फासला है। अगर उसको इतना बड़ा कर सकें तो फासला इतना ही हो जाएगा।

फिर वे जो फासले को भी जोड़नेवाले अणु हैं, हम कहेंगे, कम से कम वे तो ठोस हैं! लेकिन विज्ञान कहता है, वे भी ठोस नहीं हैं, वे सिर्फ विद्युत कण हैं। कण भी अब विज्ञान मानने को राजी नहीं है; क्योंकि कण के साथ पदार्थ का पुराना ख्याल जुड़ा हुआ है। कण का मतलब होता हैः पदार्थ का टुकड़ा। वे कण भी नहीं हैं, क्योंकि कण तो एक जैसा रहता है। वे पूरे वक्त बदलते रहते हैं। लहर की तरह हैं, कण की तरह नहीं। जैसे पानी में एक लहर उठी, जब तक आपने कहा कि लहर उठी, तब तक वह कुछ और हो गई। जब आपने कहा, वह रही लहर! तब तक वह कुछ और हो गई। क्योंकि लहर का मतलब ही यह है कि वह आ रही है, जा रही है। लेकिन अगर हम लहर भी कहें तो भी पानी की लहर एक भौतिक घटना है।

इसलिए विज्ञान ने एक नया शब्द खोजा है, जो कि कभी था नहीं आज से तीस साल पहले, वह है क्वांटा। अभी हिंदी में उस शब्द के लिए कहना मुश्किल है। इसलिए कहना मुश्किल है, जैसे हिंदी के पास शब्द है ब्रह्म और अंग्रेजी में कहना मुश्किल है; क्योंकि कभी जरूरत पड़ गई थी कुछ अनुभव करनेवाले लोगों को, तब यह शब्द खोज लिया गया था। पश्चिम उस जगह नहीं पहुंचा कभी, इसलिए इस शब्द की उन्हें कभी जरूरत नहीं पड़ी। इसलिए धर्म की बहुत सी भाषा के शब्द पश्चिम को सीधे लेना पड़ते हैं--जैसे ओम्। उसका कोई अनुवाद दुनिया की किसी भाषा में नहीं हो सकता। वह कभी किन्हीं आध्यात्मिक गहराइयों में अनुभव की गई बात है। उसके लिए हमने एक शब्द खोज लिया था। लेकिन पश्चिम के पास उसके लिए कोई समांतर शब्द नहीं है कि उसका अनुवाद किया जा सके।

ऐसे ही "क्वांटा" पश्चिम के विज्ञान की बहुत ऊंचाई पर पाया गया शब्द है जिसके लिए दूसरी भाषा में कोई शब्द नहीं है। क्वांटा का अगर हम मतलब समझना चाहें, तो क्वांटा का मतलब होता हैः कण और तरंग एक साथ। इसको कंसीव करना मुश्किल हो जाएगा। कोई चीज कण और तरंग एक साथ! कभी वह तरंग की तरह व्यवहार करता है और कभी कण की तरह व्यवहार करता है--और कोई भरोसा नहीं उसका कि वह वैसा व्यवहार करे।

पदार्थ के सूक्ष्मतम ऊर्जा कणों में चेतना के लक्षण

पदार्थ हमेशा भरोसे योग्य था, पदार्थ में एक सर्टेन्टी थी। लेकिन वे जो अणु ऊर्जा के आखिरी कण मिले हैं, वे अनसर्टेन हैं, उनकी कोई निश्चयात्मकता नहीं है; उनके व्यवहार को पक्का तय नहीं किया जा सकता। इसलिए पहले विज्ञान बहुत सर्टेन्टी पर खड़ा था; वह कहता था, हर चीज निश्चित है। अब वैज्ञानिक उतने दावे से नहीं कह सकता, हर चीज निश्चित है। क्योंकि वह जहां पहुंचा है, वहीं उसको पता चला है कि निश्चित होना बहुत ऊपर-ऊपर है, भीतर बहुत गहरा अनिश्चय है।

और एक बड़े मजे की बात है कि अनिश्चय का मतलब क्या होता है?

जहां अनिश्चय है वहां चेतना होनी चाहिए, नहीं तो अनिश्चय नहीं हो सकता। अनसर्टेन्टी जो है वह कांशसनेस का हिस्सा है; सर्टेन्टी जो है वह मैटर का हिस्सा है। अगर हम इस कमरे में एक कुर्सी को छोड़ जाएं, तो लौटकर हमको वह वहीं मिलेगी जहां थी। लेकिन एक बच्चे को हम इस कमरे में छोड़ जाएं, तो वह वहीं नहीं मिलेगा जहां था। उसके बाबत अनसर्टेन्टी रहेगी कि अब वह कहां है और क्या कर रहा है। कुर्सी के बाबत हम

सर्टेन हो सकते हैं कि वह वहीं है जहां थी। पदार्थ के बाबत निश्चित हुआ जा सकता है, चेतना के बाबत निश्चित नहीं हुआ जा सकता।

तो विज्ञान ने जिस दिन यह स्वीकार कर लिया कि अणु का जो आखिरी हिस्सा है, उसके बाबत हम निश्चित नहीं हो सकते कि वह कैसा व्यवहार करेगा, उसी दिन--विज्ञान को अभी पता नहीं है साफ--उसी दिन यह बात स्वीकृत हो गई कि वह पदार्थ का जो आखिरी हिस्सा है, उसमें चेतना की संभावना स्वीकृत हो गई है।

अनसर्टेन्टी चेतना का लक्षण है। जड़ पदार्थ अनिश्चित नहीं हो सकता। ऐसा नहीं है कि आग का मन हो तो जलाए, और मन हो तो न जलाए। ऐसा नहीं है कि पानी की तबीयत हो तो नीचे बहे, और पानी की तबीयत हो तो ऊपर बहे। ऐसा नहीं है कि पानी सौ डिग्री पर गर्म होना चाहे तो सौ पर हो, अस्सी पर होना चाहे तो अस्सी पर हो। नहीं, पदार्थ का व्यवहार सुनिश्चित है। लेकिन जब हम इन सबके भीतर प्रवेश करते हैं, तो वे जो आखिरी हिस्से मिलते हैं पदार्थ के, वे अनिश्चित हैं।

इसे हम ऐसा भी समझ सकते हैं कि समझ लें कि हम बंबई के बाबत अगर तय करना चाहें कि रोज कितने आदमी मरते हैं, तो तय हो जाएगा, करीब-करीब तय हो जाएगा। अगर एक करोड़ आदमी हैं, तो साल भर का हिसाब लगाने से हमको पता चल सकता है कि रोज कितने आदमी मरते हैं। और वह भविष्यवाणी करीब-करीब सही होगी। थोड़ी-बहुत भूल हो सकती है। अगर हम पूरे पचास करोड़ के मुल्क के बाबत विचार करें तो भूल और कम हो जाएगी, सर्टेन्टी और बढ़ जाएगी। अगर हम सारी दुनिया के बाबत तय करें तो सर्टेन्टी और बढ़ जाएगी, हम तय कर सकते हैं कि इतने आदमी रोज मरते हैं। लेकिन अगर हम एक आदमी के बाबत तय करने जाएं कि यह कब करेगा, तो सर्टेन्टी बहुत कम हो जाएगी। जितनी भीड़ बढ़ती है उतना मैटीरियल हो जाती है चीज, जितना इंडिविजुअल होता है उतनी कांशस हो जाती है।

असल में, एक पत्थर का टुकड़ा भीड़ है करोड़ों अणुओं की, इसलिए उसके बाबत हम तय हो सकते हैं। और जब हम नीचे प्रवेश करते हैं और एक अणु को पकड़ते हैं, तो वह इंडिविजुअल है। उसके बाबत तय होना मुश्किल हो जाता है; उसका व्यवहार वह खुद ही तय करता है। तो पूरे पत्थर के बाबत हम कह सकते हैं कि यह यहीं मिलेगा। लेकिन इस पत्थर के भीतर जो अणुओं का व्यक्तित्व जो था, वह वहीं नहीं मिलेगा। जब हम लौटकर आएंगे, वह सब बदल चुका होगा। उसने सब जगह बदल ली होंगी, वह यात्रा कर चुका होगा।

परमाणुओं के सूक्ष्मतर तल

पदार्थ की गहराई में उतरकर अनिश्चय शुरू हो गया है। इसलिए अब विज्ञान सर्टेन्टी की बात न करके प्रोबेबिलिटी की बात करने लगा है; वह कहता है, इसकी संभावना ज्यादा है बजाय उसके। अब वह ऐसा नहीं कहता कि ऐसा ही होगा। बड़े मजे की बात है कि विज्ञान की तो सारी दावेदारी जो थी, वह उसकी निश्चयात्मकता पर थी--कि वह जो भी कहता है वह निश्चित है कि ऐसा होगा। अब विज्ञान की जो गहरी खोज है, उसने पैर डगमगा दिए हैं। और उसका कारण है। उसका कारण यह है कि वह फिजिकल से ईथरिक पर चले गए हैं, जिसका उनको अंदाज नहीं है। असल में, वे इस भाषा को स्वीकार नहीं करते, इसलिए उनको तब तक अंदाज भी नहीं हो सकता कि वे फिजिकल से हटकर ईथरिक पर पहुंच गए हैं; वे पदार्थ में भी दूसरे शरीर पर पहुंच गए हैं। और दूसरे शरीर की अपनी संभावनाएं हैं। लेकिन पहले शरीर और दूसरे शरीर के बीच कोई खाली जगह नहीं है।

तीसरा जो एस्ट्रल शरीर है, वह और भी सूक्ष्म है, वह सूक्ष्म का भी सूक्ष्म है। वह ईथर के भी अगर हम अणु बना सकें, जो अभी बहुत मुश्किल है, क्योंकि अभी-अभी तो हम मुश्किल से फिजिक्स में अणु पर पहुंच

पाए हैं, अभी हम पदार्थ के अणु बना पाए हैं, परमाणु बना पाए हैं, अभी ईथर के लिए बहुत वक्त लग सकता है। लेकिन जिस दिन हम ईथर के अणु बना सकें, उस दिन हमें पता चलेगा कि वे अणु जो हैं, वे उसके पिछले आगेवाले शरीर के अणु सिद्ध होंगे--एस्ट्रल के।

असल में, फिजिकल को जब हमने तोड़ा तो उसके अणु ईथरिक सिद्ध हुए हैं, ईथर को हम तोड़ेंगे तो उसके अणु एस्ट्रल सिद्ध होंगे, सूक्ष्म के सिद्ध होंगे। तब उनके बीच एक जोड़ मिल जाएगा। ये तीन शरीर तो बहुत स्पष्ट जुड़े हुए हैं। इसलिए प्रेतात्माओं के चित्र लिए जा सके हैं।

सूक्ष्म शरीरों की शक्तियां

प्रेतात्मा के पास भौतिक शरीर नहीं होता, ईथरिक बॉडी से शुरू होता है उसका पर्दा जो है। प्रेतात्माओं के चित्र लिए जा सके हैं, सिर्फ इसी वजह से कि ईथर भी अगर बहुत कंडेंस्ड हो जाए, तो बहुत सेंसिटिव प्लेट उसे पकड़ सकती है। और ईथर के साथ एक सुविधा है कि वह इतनी सूक्ष्म है इसलिए बहुत मनस से प्रभावित होती है। अगर एक प्रेत यह चाहे कि मैं यहां प्रकट हो जाऊं, तो वह अपनी ईथरिक बॉडी को कंडेंस्ड कर लेगा, सघन कर लेगा। वे अणु जो दूर-दूर हैं, पास सरक आएंगे, और उसकी एक रूप-रेखा बन जाएगी। उस रूप-रेखा का चित्र लिया जा सका है, उस रूप-रेखा का चित्र पकड़ा जा सका है।

यह जो दूसरा हमारा ईथर का बना हुआ शरीर है, यह हमारे भौतिक शरीर से कहीं ज्यादा मन से प्रभावित हो सकता है। भौतिक शरीर भी हमारे मन से प्रभावित होता है, लेकिन उतना नहीं। जितना सूक्ष्म होगा उतना मन से प्रभावित होने लगेगा, उतने मन के करीब हो जाएगा। एस्ट्रल शरीर तो और भी ज्यादा मन से प्रभावित होता है। इसलिए एस्ट्रल ट्रेवेलिंग संभव हो जाती है। एक आदमी इस कमरे में सोकर भी अपनी एस्ट्रल बॉडी से दुनिया के किसी भी हिस्से में हो सकता है। इसलिए ये जो कहानियां बहुत बार सुनी होंगी कि एक आदमी दो जगह दिखाई पड़ गया, तीन जगह दिखाई पड़ गया, इसमें कोई कठिनाई नहीं है। उसका भौतिक शरीर एक जगह होगा, उसका एस्ट्रल शरीर दूसरी जगह हो सकता है। इसमें अड़चन नहीं है, यह सिर्फ थोड़े से ही अभ्यास की बात है और आपका शरीर दूसरी जगह प्रकट हो सकता है।

जितने हम भीतर जाते हैं, उतनी मन की शक्ति बढ़ती चली जाती है; जितने हम बाहर आते हैं, उतनी मन की शक्ति कम होती चली जाती है। ऐसा ही जैसे कि हम एक दीया जलाएं और उस दीये के ऊपर कांच का एक ढक्कन ढांक दें; अब दीया उतना तेजस्वी नहीं मालूम होगा। फिर एक दूसरा ढक्कन और ढांक दें; अब दीया और भी कम तेजस्वी मालूम होगा। फिर हम एक ढक्कन और ढांक दें, और हम सात ढक्कन ढांक दें; तो सातवें ढक्कन के बाद दीये की बहुत ही कम रोशनी पहुंच पाएगी। पहले ढक्कन के बाद ज्यादा पहुंचती थी, दूसरे के बाद उससे कम, तीसरे पर और कम, सातवें पर बहुत धीमी और धूमिल हो जाएगी, क्योंकि सात पर्दों को पार करके आएगी।

भौतिक ऊर्जा का ही सूक्ष्मतम रूप मनोमय ऊर्जा

तो हमारी जो जीवन-ऊर्जा की शक्ति है, वह शरीर तक आते-आते बहुत धूमिल हो जाती है। इसलिए शरीर पर हमारा उतना काबू नहीं मालूम होता। लेकिन, अगर कोई भीतर प्रवेश करना शुरू करे, तो शरीर पर उसका काबू बढ़ता चला जाएगा; जिस मात्रा में भीतर प्रवेश होगा, उस मात्रा में शरीर पर भी काबू बढ़ता चला जाएगा।

यह जो तीसरा शरीर है एस्ट्रल, यह भी... भौतिक का सूक्ष्मतम शरीर है ईथरिक, ईथरिक का सूक्ष्मतम हिस्सा है एस्ट्रल। अब चौथा शरीर है मेंटल।

अब तक हम सबको यही ख्याल था कि माइंड कुछ और बात है पदार्थ से; माइंड और मैटर अलग बात है। असल में, ऐसी परिभाषा करने का उपाय ही नहीं था। अगर किसी से हम पूछें कि मैटर क्या है? तो कहा जा सकता हैः जो माइंड नहीं है। और माइंड क्या है? तो कहा जा सकता हैः जो मैटर नहीं है। बाकी और कोई परिभाषा है भी नहीं। इसी तरह हम सोचते रहे हैं इन दोनों को अलग करके। लेकिन अब हम जानते हैं कि माइंड जो है, वह भी मैटर का ही सूक्ष्मतम हिस्सा है--या इससे उलटा भी हम कह सकते हैं कि जिसे हम मैटर कहते हैं, वह माइंड का ही कंडेंस्ड, सघन हो गया हिस्सा है।

अलग-अलग विचारों की अलग-अलग तरंग रचना

एस्ट्रल का भी अगर अणु टूटेगा तो वे माइंड के थॉट वेव्स बन जाएंगे। अब क्वांटा और थॉट वेव्स में बड़ी निकटता है। विचार, अब तक नहीं समझा जाता था कि विचार भी कोई भौतिक अस्तित्व रखता है। लेकिन जब आप एक विचार करते हैं, तो आपके आसपास की तरंगें बदल जाती हैं।

अब यह बहुत मजे की बात हैः न केवल विचार की, बल्कि एक-एक शब्द की भी अपनी वेवलेंथ है, अपनी तरंग है। अगर आप एक कांच के ऊपर रेत के कण बिछा दें, और कांच के नीचे से जोर से एक शब्द आवाज करें, जोर से कहें--ओम्! तो उस कांच के ऊपर रेत पर अलग तरह की वेव्स बन जाएंगी। और आप कहें--राम! तो अलग तरह की वेव्स बनेंगी। और आप एक भद्दी गाली दें तो अलग तरह की वेव्स बनेंगी।

और आप एक बड़ी हैरानी की बात में पड़ जाएंगे कि जितना भद्दा शब्द होगा, उतनी कुरूप ऊपर वेव्स बनेंगी; और जितना सुंदर शब्द होगा, उतनी सुंदर वेव्स होंगी, उतना पैटर्न होगा उनमें; जितना भद्दा शब्द होगा, उतना पैटर्न नहीं होगा, अनार्किक होगा। शब्द का भी... इसलिए बहुत हजारों वर्ष तक शब्द के लिए बड़ी खोजबीन हुई कि कौन सा शब्द सुंदर तरंगें पैदा करता है, कौन सा शब्द कितना वजन रखता है दूसरे के हृदय तक चोट पहुंचाने में।

लेकिन शब्द तो प्रकट हो गया विचार है, अप्रकट शब्द भी अपनी ध्वनियां रखता है--जिसको हम विचार कहते हैं, थॉट कहते हैं। जब आप सोच रहे हैं कुछ, तब भी आपके चारों तरफ विशेष प्रकार की ध्वनियां फैलनी शुरू हो जाती हैं, विशेष प्रकार की तरंगें आपको घेर लेती हैं।

इसलिए बहुत बार आपको ऐसा लगता है कि किसी आदमी के पास जाकर आप अचानक उदास हो जाते हैं। अभी उसने कुछ कहा भी नहीं; हो सकता है वह ऐसे हंस ही रहा हो आपको मिलकर; लेकिन फिर भी कोई उदासी आपको भीतर से पकड़ लेती है। किसी आदमी के पास जाकर आप बहुत प्रफुल्लित हो जाते हैं। किसी कमरे में प्रवेश करते से ही आपको लगता है कि आप कुछ भीतर बदल गए; कुछ पवित्रता पकड़ लेती है, अपवित्रता पकड़ लेती है। किसी क्षण में कहीं कोई शांति पकड़ लेती है और कहीं कोई अशांति छू लेती है, जिसको आपको समझना मुश्किल हो जाता है कि मैं तो अभी अशांत नहीं था, अचानक यह अशांति मन में क्यों उठ आई!

आपके चारों तरफ विचारों की तरंगें हैं, और वे तरंगें चौबीस घंटे आपमें प्रवेश कर रही हैं। अभी तो एक फ्रेंच वैज्ञानिक ने एक छोटा सा यंत्र बनाया जो विचार की तरंगों को पकड़ने में सफल हुआ है। उस यंत्र के पास जाते से ही वह बताना शुरू कर देता है कि यह आदमी किस तरह के विचार कर रहा है; उस पर तरंगें पकड़नी शुरू हो जाती हैं। अगर एक ईडियट को, जड़बुद्धि आदमी को ले जाया जाए तो उसमें बहुत कम तरंगें पकड़ती

हैं, क्योंकि वह विचार ही नहीं कर रहा; अगर एक बहुत प्रतिभाशाली आदमी को ले जाया जाए तो वह पूरा का पूरा यंत्र कंपन लेने लगता है, उसमें इतनी तरंगें पकड़ने लगती हैं।

तो जिसको हम मन कहते हैं, वह एस्ट्रल का सूक्ष्म का भी सूक्ष्म है। निरंतर भीतर हम सूक्ष्म से सूक्ष्म होते चले जाते हैं। अभी विज्ञान ईथरिक तक पहुंच पाया है। अभी भी उसने उसको ईथरिक नहीं कहा है, उसको एटामिक कह रहा है, पारमाणिक कह रहा है, ऊर्जा, एनर्जी कह रहा है; लेकिन वह दूसरे शरीर पर उतर गया है--सत्व के दूसरे शरीर पर वह उतर गया है। तीसरे शरीर पर उतरने में बहुत देर नहीं लगेगी, वह तीसरे शरीर पर उतर जाएगा; उतरने की जरूरतें पैदा हो गई हैं।

चौथे शरीर पर भी बहुत दूसरी दिशाओं से काम चल रहा है; क्योंकि मन को अलग ही समझा जाता था, इसलिए कुछ वैज्ञानिक मन पर अलग से ही काम कर रहे हैं; वे शरीर से काम ही नहीं कर रहे। उन्होंने चौथे शरीर के संबंध में बहुत सी बातों का अनुभव कर लिया है। अब जैसे, हम सब एक अर्थ में ट्रांसमीटर्स हैं, और हमारे विचार हमारे चारों तरफ विकीर्ण हो रहे हैं। मैं आपसे जब नहीं भी बोल रहा हूं, तब भी मेरा विचार आप तक जा रहा है।

विचार-संप्रेषण पर खोजें

अभी रूस में इस संबंध में काफी दूर तक काम हुआ है, और एक वैज्ञानिक फयादेव ने एक हजार मील दूर तक विचार का संप्रेषण किया है। वह मास्को में बैठा है और एक हजार मील दूर दूसरे आदमी को विचार का संप्रेषण कर रहा है। ठीक वैसे ही जैसे रेडियो से ट्रांसमिशन होता है, ऐसे ही अगर हम संकल्पपूर्वक एक दिशा में अपने चित्त को केंद्रित करके किसी विचार को तीव्रता से संप्रेषित करें, तो वह उस दिशा में पहुंच जाता है; और अगर दूसरी तरफ भी माइंड रिसीव करने को, ग्राहक होने को तैयार हो--उसी क्षण में, उसी दिशा में अपने मन को केंद्रित करके खुला हो और स्वीकार करने को राजी हो--तो विचार संप्रेषित हो जाता है।

विचार-संप्रेषण का एक घरेलू प्रयोग

इस पर कभी छोटा-मोटा प्रयोग आप घर में करके देखें तो अच्छा होगा। छोटे बच्चे जल्दी से पकड़ लेते हैं, क्योंकि अभी उनकी ग्राहकता तीव्र होती है। कमरा बंद कर लें; एक छोटे बच्चे को, कमरे को अंधेरा करके दूसरे कोने पर बिठा दें; आप दूसरे कोने पर बैठ जाएं। और उस बच्चे से कहें कि एक पांच मिनट के लिए तू ध्यान मेरी तरफ रखना, मैं तुझसे चुपचाप कुछ कहूंगा, वह तू सुनने की कोशिश करना और अगर तुझे सुनाई पड़ जाए तो बोल देना। फिर आप एक शब्द पकड़ लें कोई भी--जैसे राम या गुलाब--और इस शब्द को उस बच्चे की तरफ ध्यान रखकर जोर से अपने भीतर गुंजाने लगें, बोलें नहीं, राम-राम ही गुंजाने लगें। एक दो-तीन दिन में आप पाएंगे कि उस बच्चे ने आपके शब्द को पकड़ना शुरू कर दिया। तब इसका क्या मतलब हुआ? फिर इससे उलटा भी हो सकता हैः एक दफे ऐसा हो जाए तो आपको आसानी हो जाएगी। फिर आप बच्चे को बिठा सकते हैं और उससे कह सकते हैं कि वह एक शब्द अपने भीतर सोचकर आपकी तरफ फेंके। लेकिन तब आप ग्राहक हो सकेंगे, क्योंकि आपका डाउट, आपका संदेह गिर गया होगा। घटना घट सकती है, तो फिर ग्राहकता बढ़ जाती है।

निर्जरा--कर्म-मल का झड़ जाना

आपके और आपके बच्चे के बीच तो भौतिक जगत फैला हुआ है। यह विचार किसी गहरे अर्थों में भौतिक ही होना चाहिए, अन्यथा इस भौतिक माध्यम को पार न कर पाएगा।

यह जानकर आपको हैरानी होगी कि महावीर ने कर्म तक को भौतिक कहा है--फिजिकल कहा है, मैटीरियल कहा है। जब आप क्रोध करते हैं और किसी की हत्या कर देते हैं, तो आपने एक कर्म किया--क्रोध का

और हत्या करने का। महावीर कहते हैं, यह भी सूक्ष्म अणुओं में आपमें चिपक जाता है; कर्म-मल बन जाता है। यह भी मैटीरियल है। यह भी कोई इम्मैटीरियल चीज नहीं है, यह भी मैटर की तरह पकड़ लेता है आपको। और इसलिए महावीर निर्जरा जिसको कहते हैं, वे निर्जरा कहते हैं, इस कर्म-मल से जिस दिन छुटकारा हो जाए। यह सारा का सारा जो कर्म-अणु आपके चारों तरफ जुड़ गए हैं, ये गिर जाएं। जिस दिन ये गिर जाएंगे, उस दिन आप शुद्धतम शेष रह जाएंगे; वह निर्जरा होगी।

निर्जरा का मतलब हैः कर्म के अणुओं का झड़ जाना। कर्म भी... जब आप क्रोध करते हैं तब आप एक कर्म कर रहे हैं। वह क्रोध भी आणविक होकर ही आपके साथ चलता है। इसलिए जब आपका यह शरीर गिर जाता है, तब भी उसको गिरने की जरूरत नहीं होती; वह दूसरे जन्म में भी आपके साथ खड़ा हो जाता है, क्योंकि वह अति सूक्ष्म है।

तो मेंटल बॉडी जो है, मनस शरीर जो है, वह एस्ट्रल बॉडी का सूक्ष्मतम हिस्सा है। और इसलिए इन चारों में कहीं भी कोई खाली जगह नहीं है, ये सब एक-दूसरे के सूक्ष्म होते गए हिस्से हैं। मेंटल बॉडी पर काफी काम हुआ है, क्योंकि अलग से मनस-शास्त्र उस पर काम कर रहा है--और विशेषकर पैरा-साइकोलाजी उस पर अलग से काम कर रही है, परा-मनोविज्ञान अलग से काम कर रहा है। और मन के इतने अदभुत ख्याल विज्ञान की पकड़ में आ गए हैं--धर्म की पकड़ में तो बहुत समय से थे--विज्ञान की पकड़ में भी बहुत सी बातें साफ हो गई हैं।

विचार तरंगों का प्रभाव पदार्थ पर भी

अब जैसे एक आदमी है और वह जुआ खेलता है। अब मांटकार्लो में ऐसे ढेर आदमी हैं, जिनको जुए में हराना मुश्किल है; क्योंकि वे जो पांसा फेंकते हैं, वे जो नंबर फेंकना चाहते हैं वही फेंक लेते हैं। उनके पांसे बदल देने से कोई फर्क नहीं पड़ता। पहले तो समझा जाता था कि वे पांसे कुछ चालबाजी से बनाए गए हैं कि वे पांसे वहीं गिर जाते हैं जहां वे गिराना चाहते हैं। लेकिन हर तरह के पांसे देकर, वे जो नंबर लाना चाहते हैं वही आंकड़ा ले आते हैं--आंख बंद करके भी ले आते हैं। तब बड़ी मुश्किल हो गई। तब इसकी जांच-पड़ताल करनी जरूरी हो गई कि बात क्या है!

असल में, उनका विचार का तीव्र संकल्प पांसे को प्रभावित करता है। वे जो लाना चाहते हैं उसके तीव्र संकल्प की धारा से पांसों को फेंकते हैं। विचार की वे तरंगें उन पांसों को उसी आंकड़े पर ले आती हैं। अब इसका मतलब क्या हुआ? अगर विचार की तरंग एक पांसे को बदलती है तो विचार की तरंग भी भौतिक है, नहीं तो पांसे को नहीं बदल सकती।

विचार शक्ति की एक प्रयोगात्मक जांच

आप एक छोटा सा प्रयोग करें तो आपके ख्याल में आ जाए। चूंकि विज्ञान की बात आप करते हैं, इसलिए मैं प्रयोग की बात करता हूं। एक गिलास में पानी भरकर रख लें और ग्लिसरीन या कोई भी चिकना पदार्थ उस गिलास के पानी के ऊपर थोड़ा सा डाल दें कि उसकी एक पतली धीमी फिल्म पानी के गिलास के ऊपर फैल जाए। एक छोटी आलपीन, बिल्कुल पतली कि उस फिल्म पर तैर सके, उसको उसके ऊपर छोड़ दें। फिर कमरे को सब तरफ से बंद करके दोनों हाथों को जमीन पर टेककर आंखें उस छोटी सी आलपीन पर गड़ा लें। एक पांच मिनट चुपचाप बैठे रहें आंखें गड़ाए हुए, फिर उस आलपीन से कहें कि बाएं घूम जाओ, तो आलपीन बाएं घूमेगी; फिर कहें दाएं घूम जाओ, तो दाएं घूमेगी; कहें कि रुक जाओ, तो रुकेगी; कहें कि चलो, तो चलेगी।

अगर आपका विचार एक आलपीन को बाएं घुमा सकता है, दाएं घुमा सकता है, तो फिर एक पहाड़ को भी हिला सकता है। वह जरा लंबी बात है, बाकी फर्क नहीं रह गया, बुनियादी फर्क नहीं रह गया। आपकी सामर्थ्य अगर एक आलपीन को हिलाती है तो बुनियादी बात पूरी हो गई है। अब यह दूसरी बात है कि पहाड़ बहुत बड़ा पड़ जाए, आप न हिला पाएं, लेकिन हिल सकता है पहाड़।

वस्तुओं द्वारा विचार तरंगों का अपशोषण

हमारे विचार की तरंग पदार्थ को छूती और रूपांतरित करती है। इसीलिए अगर आपके कपड़े को दिया जा सके... ऐसे लोग हैं, जिनको आपके हाथ का रूमाल दिया जा सके, तो आपके व्यक्तित्व के संबंध में वे करीब-करीब उतनी ही बातें बता देंगे जितना आपको देखकर बताया जा सकता था; क्योंकि आपके हाथ का रूमाल आपके विचार की तरंगों को अपशोषित कर जाता है; आपका गहना आपकी तरंगों को अपशोषित कर जाता है। और मजा यह है कि वे इतनी सूक्ष्म तरंगें हैं कि एक रूमाल जो सिकंदर के हाथ में रहा हो, वह अभी भी सिकंदर के व्यक्तित्व की खबर देता है। वे इतनी सूक्ष्म तरंगें हैं कि उनको फिर बाहर निकलने में करोड़ों वर्ष लग जाते हैं। इसीलिए कब्रें हमने बनानी शुरू की थीं, समाधियां बनानी शुरू की थीं।

दिव्य व्यक्तियों की तरंगें हजारों वर्षों तक प्रभावशील

कल मैंने आपसे कहा था कि इस मुल्क में हम मरे हुए आदमी को तत्काल जला देते हैं। लेकिन संन्यासी को नहीं जलाते। मरे हुए आदमी को इसलिए जला देते हैं कि उसकी आत्मा उसके आसपास न भटके। संन्यासी को इसलिए नहीं जलाते हैं कि उसकी तो जिंदा में ही आत्मा ने आसपास भटकना बंद कर दिया था; अब उसके शरीर से उसकी आत्मा को कोई खतरा नहीं है कि वह भटके। पर उसके शरीर को हम बचा लेना चाहते हैं, क्योंकि जो आदमी अगर तीस वर्ष तक पवित्रता के विचारों में जीया हो, उसका शरीर हजारों-लाखों वर्ष तक उस तरह की तरंगों को विकीर्ण करता रहेगा। और उसकी समाधि अर्थपूर्ण हो जाएगी; उसकी समाधि के आसपास परिणाम होंगे। वह शरीर तो मर गया, लेकिन वह शरीर इतने निकट रहा है उस आत्मा के कि अपशोषित कर गया है बहुत कुछ--जो भी विकीर्ण हो रहा था, उसे वह अपशोषित कर गया है।

विचार की अनंत संभावनाएं हैं, लेकिन हैं वे सब भौतिक। इसलिए जब आप एक विचार सोचते हैं तो बहुत ध्यान रखकर सोचना चाहिए। क्योंकि उसकी तरंगें, आप नहीं होंगे, तब भी शेष रहेंगी। यानी आपका मर जाना... आपकी उम्र बहुत कम है, लेकिन विचार इतना सूक्ष्म है कि उसकी उम्र बहुत ज्यादा है। इसलिए वैज्ञानिक तो अब इस ख्याल पर पहुंचे हैं कि अगर जीसस कभी हुए हैं या कृष्ण कभी हुए हैं, तो आज नहीं कल हम उनकी विचार-तरंगों को पकड़ने में समर्थ हो जाएंगे, और यह तय हो सकेगा कि कृष्ण ने गीता कभी कही है कि नहीं कही है। क्योंकि वे विचार-तरंगें जो कृष्ण से निकली हैं, वे आज भी लोक-लोकांतर में किसी ग्रह, किसी उपग्रह के पास टकरा रही होंगी।

ऐसे ही, जैसे हम एक कंकड़ समुद्र में फेंके, तो जब कंकड़ गिरता है तो एक छोटा सा छिद्र, एक छोटा सा वर्तुल समुद्र के पानी पर बनेगा। फिर कंकड़ तो डूब जाएगा, कंकड़ की जिंदगी पानी की सतह पर बहुत ज्यादा नहीं है; कंकड़ की जिंदगी तो पानी पर छुआ नहीं कि गया; लेकिन उस वर्तुल से कंकड़ की चोट से जो तरंगें पैदा हुईं, वे फैलनी शुरू हो जाएंगी; वे बढ़ती जाएंगी; वह अंतहीन है उनका बढ़ाव। आपकी आंख से ओझल हो जाएंगी, लेकिन न मालूम किन दूर तटों पर वे अभी भी बढ़ रही होंगी।

जो विचार कभी भी पैदा हुए हैं--बोले ही नहीं गए, जो मन में भी पैदा हुए हैं--वे विचार भी दूर इस जगत के आकाश में, किन्हीं किनारों पर अभी भी बढ़ते चले जा रहे हैं। उनको पकड़ा जा सकता है। किसी दिन अगर मनुष्य की गति तीव्र हो सकी विज्ञान की, और उनसे आगे निकल सके, तो उन्हें सुना जा सकता है।

अब जैसे समझ लें कि दिल्ली से अगर एक रेडियो पर रेडियो वेव्स बंबई के लिए खबर भेजती हैं, तो उसी वक्त थोड़े ही खबर यहां आ जाती है जब दिल्ली से की जाती है! थोड़ा टाइम गैप है; क्योंकि ध्वनि की यात्रा में समय लगता है। दिल्ली में तो वह ध्वनि मर चुकी होती है जब बंबई आती है। वहां से तरंगें आगे निकल गई होती हैं। दिल्ली में वे नहीं हैं अब। थोड़े ही क्षणों का फासला पड़ता है, लेकिन क्षण बीच में गिरते हैं।

अगर समझ लें कि न्यूयार्क से एक आदमी को टेलीविजन पर हम देख रहे हैं। तो जब उसका चित्र न्यूयार्क में बनता है, तभी हमें दिखाई नहीं पड़ता। उसके चित्र बनने में और हम तक पहुंचने में समय का फासला है। यह भी हो सकता हैः इस समय वह आदमी मर गया हो, लेकिन हमें वह आदमी जिंदा दिखाई पड़ेगा।

हमारी पृथ्वी से भी विचार की, चित्रों की तरंगें अनंत लोकों तक जा रही हैं। अगर हम उन तरंगों के आगे जाकर कभी भी उनको पकड़ सकें, तो वे अभी भी जिंदा हैं उस अर्थों में। आदमी मर जाता है, विचार इतने जल्दी नहीं मरता। आदमी की उम्र बहुत कम है, विचार की उम्र बहुत ज्यादा है। और यह भी ख्याल रहे कि जो विचार हम प्रकट नहीं करते, उसकी उम्र और ज्यादा है उस विचार से जो हम प्रकट कर देते हैं; क्योंकि वह और ज्यादा सूक्ष्म है। जो अप्रकट है, वह और सूक्ष्म है; उसकी उम्र और ज्यादा है। जितना सूक्ष्म, उतनी ज्यादा उम्र; जितना स्थूल, उतनी कम उम्र।

विशिष्ट संगीत-ध्वनियों के विशिष्ट प्रभाव

ये जो विचार हैं, ये बहुत तरह से, जिसको हम भौतिक जगत कह रहे हैं, उसको प्रभावित कर रहे हैं। हमें ख्याल में नहीं है। अभी तो वनस्पति-शास्त्री इस अनुभव पर पहुंच गया कि अगर एक पौधे के पास प्रीतिपूर्ण संगीत बजाया जाए, तो पौधा जल्दी फल देना शुरू कर देता है; जल्दी उसमें फूल आ जाते हैं, बेमौसम। अगर उसके पास कुरूप, भद्दा और नॉइजी संगीत बजाया जाए, तो मौसम भी निकल जाता है और उसके फल नहीं आते और फूल नहीं आते। वे तरंगें उसको छू रही हैं, उसको स्पर्श कर रही हैं। गाएं ज्यादा दूध दे देती हैं खास संगीत के प्रभाव में; खास संगीत के प्रभाव में दूध देना बंद ही कर देती हैं। विचार इससे भी सूक्ष्म हवा पैदा कर रहा है; उसके चारों तरफ तरंगों की एक छाया है। और हर आदमी अपने विचार का एक जगत अपने साथ लेकर चल रहा है, जिससे पूरे वक्त चीजें विकीर्ण हो रही हैं।

निद्राकाल में मनोमय जगत की वैज्ञानिक जांच

ये जो विकीर्ण होती हुई किरणें हैं, ये भी भौतिक हैं। हमारा माइंड जिसे हम कहते हैं, वह मेंटल ही नहीं है; हम जिसे मन कहते हैं, वह मनस ही नहीं है, वह भौतिक का ही चार सीढ़ियां छलांग लगाकर सूक्ष्म रूप है। इसलिए कठिनाई नहीं है कि विज्ञान वहां पहुंच जाए। कठिनाई नहीं है, क्योंकि उसकी तरंगों को पकड़ा-जांचा जा सकता है।

जैसे कल तक हमें पता नहीं चलता था कि आदमी रात में कितना गहरा सो रहा है, उसका मनस कितनी गहराई में है। अब पता चल जाता है; अब हमारे पास यंत्र हैं। जैसा कि हृदय की धड़कन नापने के यंत्र हैं, इसी तरह नींद की धड़कन नापने के यंत्र तैयार हो गए हैं। तो रात भर आपकी खोपड़ी पर एक यंत्र लगा रहता है, वह पूरे वक्त ग्राफ बनाता रहता है कि कितनी गहराई में हो। वह ग्राफ बनता रहता है पूरे वक्त कि आदमी इस वक्त ज्यादा गहराई में है, इस वक्त कम गहराई में है। वह पूरे वक्त रात भर का ग्राफ देता है कि यह आदमी

कितनी देर सोया, कितनी देर सपने देखे; कितनी देर अच्छे सपने देखे, कितनी देर बुरे सपने देखे; कितनी देर इसके सपने सेक्सुअल थे, कितनी देर सेक्सुअल नहीं थे; वह सब ग्राफ पर दे देता है।

अमेरिका में इस समय कोई दस लेबोरेटरी हैं, जिनमें हजारों लोग रात में पैसा देकर सुलाए जा रहे हैं, जिनकी नींद पर बड़ा परीक्षण चल रहा है। क्योंकि यह बड़ी हैरानी की बात है कि नींद से हम अपरिचित रह जाएं। क्योंकि आदमी की एक तिहाई जिंदगी नींद में खत्म होती है; छोटी-मोटी घटना नहीं है नींद। साठ साल आदमी जीता है, तो बीस साल तो सोता है। तो बीस साल के इस बड़े हिस्से को अनजाना छोड़ देना--आदमी का एक तिहाई अपरिचित रह जाएगा। और मजा यह है कि यह जो एक तिहाई, बीस वर्ष है, अगर यह न सोए, तो बाकी चालीस वर्ष बच नहीं सकता। इसलिए बहुत बेसिक है। अच्छा, बिना जागे सो सकता है आदमी साठ वर्ष, लेकिन बिना सोए जग नहीं सकता। तो ज्यादा गहरे में और बुनियादी तो नींद है।

तो नींद में हम कहीं और होते हैं, हमारा मनस कहीं और होता है। लेकिन उस मनस को नापा जा सकता है। अब उसके पता लगने शुरू हो गए हैं कि वह कितनी गहरी नींद में है। ढेर लोग हैं, जो कहते हैं कि हमें सपना नहीं आता। वे सरासर झूठ कहते हैं; उनको पता नहीं है, इसलिए झूठ कहते हैं; उन्हें पता नहीं है। आदमी खोजना मुश्किल है जिसको सपना न आता हो। बहुत मुश्किल मामला है। रात भर सपना आता है। और आपको भी ख्याल होगा कि कभी एक-आध आता है। वह गलत ख्याल है आपका। मशीन कहती हैः रात भर आता है। लेकिन स्मृति नहीं रह जाती; आप नींद में होते हैं इसलिए याद नहीं बनती उसकी। आपको सपना जो याद रहता है, वह आखिरी रहता है, जब नींद टूटने के करीब होती है; तब आपकी स्मृति बन जाती है। लौटते हैं नींद से जब आप, तो आखिरी दरवाजे पर नींद के जो सपना रहता है, वह आपके ख्याल में रह जाता है; क्योंकि उसकी धीमी सी भनक आपके जागने तक चली आती है। लेकिन गहरी नींद में जो सपना रहता है, उसका आपको पता नहीं रहता।

अब गहरी नींद में आदमी क्या सपने देखता है, यह जांच करना जरूरी हो गया है; क्योंकि वह जो सपने बहुत गहराई में देखता है, वे उसका असली व्यक्तित्व होंगे। असल में, जागकर तो हम नकली होते हैं। आमतौर से हम सोचते हैं कि सपने में क्या रखा है! लेकिन सपना हमारी ज्यादा सच्चाई को बताता है बजाय हमारे जागरण के; क्योंकि जागरण में हम झूठे आवरण ओढ़ लेते हैं।

अगर किसी दिन हम आदमी की खोपड़ी में एक खिड़की बना सकें, विंडो बना सकें, और उसके सब सपने देख सकें, तो आदमी की आखिरी स्वतंत्रता चली जाएगी--सपना भी नहीं देख सकेगा हिम्मत के साथ कि जो देखना हो वही देखे। उसमें भी डरा रहेगा। वहां भी नैतिकता और नियम और कानून और पुलिसवाला प्रविष्ट हो जाएगा। वह कहेगाः सपना जरा... यह सपना ठीक नहीं देख रहे हो, यह सपना अनैतिक है।

अभी वह स्वतंत्रता है। आदमी नींद में अभी स्वतंत्र है। लेकिन बहुत दिन नहीं रह जाएगा; क्योंकि अब नींद पर एनक्रोचमेंट शुरू हो गया है।

निद्रा में बच्चों को शिक्षित करना

जैसे, नींद में शिक्षा देनी रूस में उन्होंने शुरू की है। स्लीप टीचिंग पर बड़ा काम चल रहा है। क्योंकि जागने में बहुत मेहनत करनी पड़ती है, बच्चा रेसिस्ट करता है। एक लड़के को कुछ सिखाना बड़ा उपद्रव का काम है, क्योंकि वह बुनियादी रूप से इनकार करता है सीखने से। असल में, हर आदमी सीखने से इनकार करता है, क्योंकि हर आदमी बुनियादी रूप से यह मानकर चलता है कि मैं जानता ही हूं। बच्चा भी इनकार करता है--कि क्या सिखा रहे हैं! वह हजार तरह से इनकार करता है। हमको प्रलोभन देना पड़ते हैं, परीक्षाओं के पुरस्कार

देना पड़ते हैं, गोल्ड-मेडल बांटने पड़ते हैं, प्रतियोगिता पैदा करनी पड़ती है, बुखार जगाना पड़ता है, किसी तरह दौड़ा-दौड़ूकर हम उसे सिखा पाते हैं। लेकिन इस कांफ्लिक्ट में बहुत समय व्यय होता है। जो काम दो घंटे में सीख सकता है, उसमें दो महीने लग जाते हैं। तो वे स्लीप टीचिंग की फिकर पर चले गए हैं। और बात साफ हो गई है कि नींद में पढ़ाया जा सकता है, और बड़ी अच्छी तरह से; क्योंकि नींद में कोई रेसिस्टेंस नहीं है। एक टेप लगा रहता है, और वह रात भर नींद में भीतर डालता रहता है जो भी कहना है--दो और दो चार होते हैं, दो और दो चार होते हैं, वह दोहरता रहेगा। सुबह उस बच्चे से कहिए, दो और दो कितने होते हैं? वह कहेगा, चार होते हैं।

अब यह जो नींद में विचार डाला जा सका, यह विचार तरंगों से भी डाला जा सकता है; क्योंकि विचार की तरंगें हमारे ख्याल में आ गई हैं। जैसे कि हमें कल तक ख्याल नहीं था, जैसा हम अब जानते हैं कि ग्रामोफोन का रेकार्ड है। उस रेकार्ड पर भाषा रेकार्ड नहीं है, उस रेकार्ड पर सिर्फ तरंगों के आघात रेकार्ड हैं। और जब सूई उन तरंगों पर वापस दोहरती है तो उन्हीं तरंगों को फिर पैदा कर देती है जिन तरंगों से वे आघात पड़े थे। वहां कोई भाषा नहीं है उस पर, रेकार्ड पर।

जैसा मैंने कहा कि अगर आप ओम बोलेंगे, तो रेत में एक पैटर्न बनता है। वह पैटर्न ओम नहीं है। लेकिन अगर आपको पता है कि ओम बोलने से यह पैटर्न बनता है, तो किसी दिन इस पैटर्न को ओम में कनवर्ट किया जा सकता है। यह पैटर्न जब बना हो ऊपर, तो इसके नीचे ओम को पैदा किया जा सकेगा; क्योंकि यह पैटर्न उसी से बना है; ये दोनों एक चीजें हैं।

तो अब हमने ग्रामोफोन रेकार्ड बना लिया; उसमें वाणी नहीं है, उसमें सिर्फ वाणी से पड़े हुए आघात हैं। वे आघात फिर से सूई से टक्कर खाकर फिर वाणी बन जाते हैं।

हम आज नहीं कल, विचार के रेकार्ड बना सकेंगे। विचार के आघात पकड़े जाने लगे हैं, तो रेकार्ड बनने में बहुत देर नहीं लगेगी। और तब बड़ी अजीब बात हो जाएगी। तब यह संभव है कि आइंस्टीन मर जाए, लेकिन उसके विचार करने की पूरी प्रक्रिया मशीन में हो, तो आइंस्टीन अगर जिंदा रहता तो आगे जो सोचता, वह वह मशीन सोचकर बता सकेगी; क्योंकि उसके सारे के सारे... उसके विचार के सारे आघात उस मशीन के पास हैं।

नींद पकड़ी जा सकी है, स्वप्न पकड़े जा सके हैं, बेहोशी पकड़ी जा सकी है--और इस मन के साथ वैज्ञानिक रूप से क्या किया जाए, वह भी पकड़ा जा सका है। इसलिए वह भी समझ लेना चाहिए।

मनोमय जगत में वैज्ञानिक हस्तक्षेप की संभावनाएं

जैसे कि एक आदमी क्रोध में होता है। तो पुराना हमारा हिसाब यही था कि हम उसको समझाएं कि क्रोध मत करो, इसके सिवाय कोई उपाय नहीं था; समझाएं कि क्रोध करोगे तो नरक जाओगे, इसके सिवाय कोई उपाय नहीं था। लेकिन वह आदमी अगर कहे कि हम नरक जाने को राजी हैं, तो हम असमर्थ हो जाते थे; तब उस आदमी के साथ हम कुछ भी नहीं कर सकते थे। और वह आदमी कहे, हमें नरक जाने में बहुत मजा आता है, तो हमारी सारी नैतिकता एकदम व्यर्थ हो जाती थी; उस आदमी पर कोई वश ही नहीं था। वह तो नरक से डरे तभी तक वश था।

इसलिए दुनिया में जैसे ही नरक का डर गया, वैसे ही हमारी नैतिकता चली गई; क्योंकि अब उससे कोई डर ही नहीं रहा है। वे कहते हैं, ठीक है, कहां है नरक? हम देखना ही चाहते हैं एक दफा।

तो नैतिकता पूरी की पूरी खत्म हो गई, क्योंकि वह जिस डर पर खड़ी थी वह चला गया।

लेकिन विज्ञान कहता है, इसकी कोई जरूरत ही नहीं है। विज्ञान ने अब दूसरे सूत्र खोजे हैं। वे सूत्र ये हैं कि क्रोध के लिए शरीर में एक विशेष रासायनिक प्रक्रिया होनी जरूरी है, क्योंकि क्रोध एक भौतिक घटना है। और जब क्रोध होता है तो शरीर में खास तरह के रस पैदा होने जरूरी हैं। वे रस रोके जा सकते हैं, क्रोध को रोकने की क्या जरूरत है? और अगर वे रस रोके जा सकते हैं तो आदमी क्रोध करने में असमर्थ हो जाएगा।

अब हम चौदह साल के लड़के को समझा रहे हैंः ब्रह्मचर्य धारण करो! लड़की को समझा रहे हैंः ब्रह्मचर्य धारण करो! वे धारण नहीं करते। उन्होंने कभी नहीं किया। शिक्षा, सब समझाना-बुझाना कोई परिणाम नहीं लाता।

विज्ञान कहता है कि अब इसकी फिकर न करो, क्योंकि कुछ ग्लैंड्स हैं जिनसे सेक्स पैदा होता है, हम उन ग्लैंड्स को ही पच्चीस साल तक रोके देते हैं बढ़ने से। तो सेक्स मैच्योरिटी ही पच्चीस साल में आएगी, आप ब्रह्मचर्य की चिंता मत करो।

खतरनाक है यह बात! क्योंकि मन जिस दिन पूरा का पूरा वैज्ञानिक पकड़ में आ जाए, उस दिन हम उसका दुरुपयोग भी कर सकते हैं। क्योंकि विज्ञान कहता है कि जो आदमी रिबेलियस है, उस आदमी का रासायनिक कंपोजीशन उस आदमी से अलग होता है जो आर्थोडाक्स है। जो आदमी क्रांति और विद्रोही चित्त का है, उस आदमी के रासायनिक कंपोजीशन में और वह आदमी जो परंपरावादी और रूढ़िवादी है, उसके रासायनिक कंपोजीशन में फर्क होता है। तब तो बड़ा खतरनाक है, क्योंकि अगर यह कंपोजीशन हमें पता चल गया है तो हम विद्रोही को विद्रोही होने से रोक सकते हैं, रूढ़िवादी को रूढ़िवादी होने से रोक सकते हैं। जेल में किसी आदमी को मारने की जरूरत नहीं रह जाएगी, किसी को फांसी की सजा देने की जरूरत नहीं--सजा ही देने की जरूरत नहीं है। क्योंकि जब हमें पक्का हो गया कि एक आदमी चोरी करता है, और उस चोरी के लिए ये रासायनिक तत्व अनिवार्य हैं, अन्यथा वह चोरी नहीं कर सकता, तो कोई जरूरत नहीं उसको जेल ले जाने की, उसको अस्पताल ले जाकर सर्जरी की जा सकती है; उसका विशेष रस बाहर किया जा सकता है; या दूसरे रस डालकर उसके पहले रस को दबाया जा सकता है; या एंटीडोट दिया जा सकता है। यह सारा काम चल रहा है।

यह काम बताता है कि चौथे शरीर पर तो प्रवेश में कोई कठिनाई नहीं रह गई है। कठिनाई सिर्फ एक रह गई है, कठिनाई सिर्फ एक रह गई है कि बहुत बड़े विज्ञान का हिस्सा युद्ध के मामले में उलझा हुआ है, इसलिए उस पर पूरे काम नहीं हो पाते, वह गौण रह जाता है। लेकिन फिर भी बहुत काम चल रहा है, और बहुत अनूठे काम चल रहे हैं।

आध्यात्मिक अनुभवों के रासायनिक प्रतिरूप

अब जैसे कि अल्डुअस हक्सले का दावा यह है कि कबीर को जो हुआ, या मीरा को जो हुआ, वह इंजेक्शन से हो सकता है। इस दावे में थोड़ी सच्चाई है। यह बड़ा संघातक दावा है, लेकिन इसमें सच्चाई है।

अगर महावीर एक महीना उपवास करते हैं, और एक महीना उपवास करके उनका मन शांत हो जाता है। उपवास भौतिक घटना है, भौतिक घटना से अगर मन शांत होता है तो मन भी भौतिक है।

उपवास से होता क्या है? एक महीने के उपवास से शरीर की पूरी रासायनिक व्यवस्था बदल जाती है, और तो कुछ होता नहीं। जो भोजन मिलने चाहिए, वे नहीं मिल पाते; जो तत्व शरीर में इकट्ठे हो गए थे रिजर्वायर में, वे सब खत्म हो जाते हैं; चर्बी कम हो जाती है; कुछ जरूरी तत्व बचा लिए जाते हैं, गैर-जरूरी नष्ट हो जाते हैं। तो शरीर का पूरा का पूरा जो रासायनिक इंतजाम था महीने भर के पहले, वह बदल जाता है।

विज्ञान कहता है कि एक महीना परेशान होने की क्या जरूरत है? यह रासायनिक इंतजाम उसी अनुपात में अभी बदला जा सकता है--इसी वक्त! तो अगर यह रासायनिक इंतजाम अभी बदल जाएगा, तो महीने भर बाद महावीर को जो शांति अनुभव हुई, वह आपको अभी हो जाएगी। उसकी बुनियाद तो वही है।

अब जैसे मैं ध्यान में कहता हूं कि आप जोर से श्वास लें। मगर एक घंटा तीव्र श्वास लेने से होनेवाला क्या है? सिर्फ आपके आक्सीजन का अनुपात बदल जाएगा। लेकिन यह आक्सीजन का अनुपात तो बाहर से बदला जा सकता है, इसको एक घंटा आपसे मेहनत करवाना जरूरी नहीं है। यह तो इस कमरे की आक्सीजन का अनुपात बदलकर भी किया जा सकता है कि यहां बैठे हुए सारे लोग शांत हो जाएं, प्रफुल्लित हो जाएं।

तो विज्ञान चौथे शरीर पर तो कई तरफ से प्रवेश कर गया है, और रोज प्रवेश करता जा रहा है।

अब जैसे कि तुम्हें ध्यान में अनुभूतियां होंगी--सुगंध आएगी, रंग दिखाई पड़ेंगे--ये सब ध्यान में बिना जाए भी हो सकता है अब! क्योंकि विज्ञान ने यह सब पता लगा लिया है ठीक से कि जब तुम्हें भीतर रंग दिखाई पड़ते हैं तो तुम्हारे मस्तिष्क का कौन सा हिस्सा सक्रिय होता है; उसके सक्रिय होने की तरंगें कितनी होती हैं। समझ लें कि मेरे मस्तिष्क का पीछे का हिस्सा जब सक्रिय होता है, तब मुझे भीतर रंग दिखाई पड़ते हैं--सुंदर रंग दिखाई पड़ते हैं। यह जांच बता देती है कि इस वक्त जब तुम्हें रंग दिखाई पड़ रहे हैं, तुम्हारे मस्तिष्क का कौन सा हिस्सा तरंगित है, और उसमें कितने वेवलेंथ की तरंगें उठ रही हैं।

अब कोई जरूरत नहीं है आपको ध्यान में जाने की; उस हिस्से पर उतनी तरंगें बिजली से पैदा कर दी जाएं, आपको रंग दिखाई पड़ने शुरू हो जाते हैं। ये सब पैरेलल हैं; क्योंकि इस तरफ का छोर पकड़ लिया जाए, दूसरी तरफ का छोर तत्काल होना शुरू हो जाता है।

स्वेच्छा मृत्यु की भी एक समस्या

इसके खतरे हैं। कोई भी नई खोज, और मनुष्य के जितने भीतर जाती है, उतने खतरे बढ़ते चले जाते हैं। अब जैसे कि हमें आदमी की कितनी उम्र बढ़ानी है, हम अब बढ़ा सकते हैं। अब कोई उम्र प्रकृति की बात नहीं है, विज्ञान के हाथ में आ गई है। तो आज यूरोप और अमेरिका में हजारों ऐसे बूढ़े हैं जो यह मांग कर रहे हैं अथनासिया की कि हमें स्व-मरण का अधिकार चाहिए। क्योंकि उनको लटका दिया गया है खाटों पर, वे लटके हैं और उनको आक्सीजन दी जा रही है, और वह अंतहीन काल तक उनको जिंदा रखा जा सकता है। अब एक नब्बे साल का बूढ़ा है, वह कहता है, हमें मरना है! लेकिन डाक्टर कहता है, हम मरने में सहयोगी नहीं हो सकते; क्योंकि कानून उसको हत्या कहता है। अच्छा, उसका बेटा भी मन में भी सोचता हो कि पिता तकलीफ भोग रहा है, तब भी खुले नहीं कह सकता कि पिता को मार डाला जाए। और पिता को अब जिलाया जा सकता है। और एक मशीनरी पैदा हो गई है जो उसको जिलाए रखेगी। अब वह बिल्कुल मरा हुआ जिंदा रहेगा।

अब यह एक लिहाज से खतरनाक है। हमारा पुराना जो कानून है वह तब का है जब हम आदमी को जिंदा नहीं रख सकते थे, सिर्फ मार सकते थे। अब कानून बदलने की जरूरत है, क्योंकि अब हम जिंदा भी रख सकते हैं। और इतनी सीमा तक जिंदा रख सकते हैं कि वह आदमी चिल्लाकर कहने लगे कि मेरे साथ अत्याचार हो रहा है, हिंसा हो रही है! कि अब मैं जिंदा नहीं रहना चाहता हूं; यह क्या मेरे साथ हो रहा है? यानी कभी हम एक आदमी को सजा देते थे कि इस आदमी ने गुनाह किया है, इसकी हत्या कर दो। कोई आश्चर्य नहीं कि पचास साल बाद हम एक आदमी को सजा दें कि इस आदमी ने गुनाह किया है, इसको मरने मत देना। इसमें कोई कठिनाई नहीं है। और यह पहली सजा से ज्यादा बड़ी सजा सिद्ध होगी; क्योंकि मर जाना एक क्षण का मामला है और जिंदा रहना सदियों का हो सकता है।

तो जब भी कोई नई खोज होती है, और मनुष्य के भीतर होती है, तो उसके दोहरे परिणाम होंगेः इधर नुकसान का भी खतरा है, फायदा भी हो सकता है। ताकत जब भी आती है तो दोतरफा होती है।

बीसवीं सदी के अंत तक विज्ञान का मनस शरीर पर अधिकार

अब मनुष्य के चौथे शरीर पर विज्ञान चला गया, जा रहा है। और आनेवाले पचास वर्षों में--पचास वर्ष नहीं कहने चाहिए, आनेवाले तीस वर्षों में... क्योंकि यह बात तुम्हें शायद ख्याल में न हो कि हर सदी के अंत पर, उस सदी ने जो कुछ किया है वह क्लाइमेक्स पर पहुंच जाता है--हर सदी के अंत पर; उस सदी में जो भी पैदा होता है, सदी के अंत होते-होते वह अपनी चरम स्थिति में आ जाता है। तो हर सदी अपने काम को अपने अंत तक पूरा करती है। इस सदी ने बहुत से काम उठा रखे हैं जो कि तीस साल में पूरे होंगे। उनमें मनुष्य के मनस शरीर पर प्रवेश बहुत बड़ा काम है जो पूरा हो जाएगा।

आत्म शरीर में भाषागत बाधाओं का अतिक्रमण

पांचवां जो शरीर है, जिसको मैं आत्म शरीर कह रहा हूं, वह चौथे का भी सूक्ष्मतम रूप है। विचार की ही तरंगें नहीं हैं, मेरे होने की भी तरंगें हैं। अगर मैं बिल्कुल भी चुप बैठा हूं और मेरे भीतर कोई विचार नहीं चल रहा है, तब भी मेरा होना भी तरंगित हो रहा है। तुम अगर मेरे पास आओ, और मेरे पास कोई विचार नहीं है, तब भी तुम मेरी तरंगों के क्षेत्र में आओगे। और मजा यह है कि मेरे विचार की तरंगें उतनी मजबूत नहीं हैं और उतनी पेनिट्रेटिंग नहीं हैं, जितनी मेरे सिर्फ होने की तरंगें हैं।

इसलिए जिस आदमी की निर्विचार स्थिति बन जाती है, वह बहुत प्रभावी हो जाता है; उसके प्रभाव का कोई हिसाब लगाना मुश्किल है। उसके प्रभाव का हिसाब ही लगाना मुश्किल है; क्योंकि उसके भीतर से अस्तित्व की तरंगें उठनी शुरू हो जाती हैं। वे आदमी की जानकारी में सब से सूक्ष्म तरंगें हैं--आत्म शरीर की।

इसलिए बहुत बार ऐसा हुआ है, जैसे महावीर के संबंध में जो बात है वह सही है कि वे बोले नहीं, बहुत कम बोले; शायद नहीं ही बोले। वे सिर्फ बैठे रहेंगे। लोग उनके पास आकर बैठ जाएंगे और समझ लेंगे, चले जाएंगे। यह उस दिन संभव था, यह आज बहुत कठिन हो गया है। आज इसलिए कठिन हो गया है कि अस्तित्व की जितनी... आत्म शरीर की जो गहरी तरंगें हैं, वे आप भी तभी अनुभव कर पाएंगे, जब आप भी विचार को खोने को तैयार हों। नहीं तो आप अनुभव... आप अगर बहुत नॉइज से भरे हैं अपने विचारों की, तो वे बहुत सूक्ष्म तरंगें चूक जाएंगी; आपके आर-पार निकल जाएंगी, आप उनको पकड़ नहीं पाएंगे।

तो अस्तित्व की तरंगें अगर पकड़ में आने लगें, और दोनों तरफ अगर निर्विचार हो, तो बोलने की कोई जरूरत ही नहीं है। तब हम ज्यादा गहरे में कोई बात कह पाते हैं और वह सीधी चली जाती है। उसमें तुम व्याख्या भी नहीं करते, व्याख्या का उपाय भी नहीं होता, उसमें डांवाडोल भी नहीं होते--ऐसा होगा कि नहीं होगा, यह भी नहीं होता; वह तो सीधा तुम्हारा अस्तित्व जानता है कि हो गया।

इस पांचवें शरीर पर जो बात है, इस पांचवें शरीर की तरंगें जरूरी नहीं है कि आदमी को ही मिलें। इसलिए महावीर के जीवन में एक और अदभुत घटना है कि उनकी सभा में जानवर भी रहते हैं। इसको जैन साधु नहीं समझा पाता अब तक कि क्या मामला है! वह समझा भी नहीं पाएगा। उनकी सभा में जानवर भी रहते, यह तभी संभव है, क्योंकि जानवर आदमी की भाषा तो नहीं समझ सकता, लेकिन बीइंग की, होने की भाषा तो उतनी ही समझता है। उसमें कोई फर्क नहीं है। अगर मैं निर्विचार होकर एक बिल्ली के पास बैठा हूं, तो बिल्ली तो निर्विचार है। तुमसे तो मुझे बात ही करनी पड़े, क्योंकि तुम्हें बिल्ली के निर्विचार तक ले जाना

भी एक लंबी यात्रा है। तो इसमें कोई कठिनाई नहीं है। अगर आत्म शरीर से तरंगें निकल रही हों, तो उसको पशु भी समझ सकते हैं, पौधे भी समझ सकते हैं, पत्थर भी समझ सकते हैं। इसमें कोई कठिनाई नहीं है।

इस शरीर तक भी प्रवेश हो जाएगा, पर चौथे के बाद ही हो सकेगा। और चौथे में प्रवेश हो गया है, उसके द्वार कई जगह से तोड़ लिए गए हैं।

आत्म शरीर तक विज्ञान की पहुंच

तो आत्म-स्थिति को तो विज्ञान जल्दी स्वीकार कर लेगा, बाद में जरा कठिनाई है।

इसलिए मैंने कहा कि पांचवें शरीर तक चीजें बड़ी वैज्ञानिक ढंग से साफ हो सकती हैं, बाद में कठिनाई होनी शुरू हो जाती है। उसके कारण हैं। क्योंकि विज्ञान को अगर ठीक से हम समझें तो वह स्पेशलाइजेशन है, वह किसी एक दिशा में विशेषज्ञता है, चुनाव है। इसलिए विज्ञान उतना ही गहरा होता जाता है जितना वह किसी चीज के संबंध में, कम से कम चीज के संबंध में ज्यादा से ज्यादा जानने लगता है--टु नो अबाउट दि लिटिल एंड टु नो मोर। तो दोहरा काम है उसकाः ज्यादा जानता है, लेकिन और छोटी चीज के संबंध में, और छोटी चीज के संबंध में, और छोटी चीज के संबंध में। छोटी चीज करता जाता है और ज्ञान को बढ़ाता जाता है।

जैसे पहले एक डाक्टर था, तो पूरे शरीर के संबंध में जानता था। अब कोई डाक्टर पूरे शरीर के संबंध में नहीं जानता। और अगर वैसा कोई पुराना डाक्टर बच गया है, तो वह सिर्फ रेलिक्स है; वे चले जाएंगे, वे बच नहीं सकते। वे पुराने खंडहर हैं, जिनको विदा हो जाना पड़ेगा। क्योंकि वह डाक्टर अब भरोसे के योग्य नहीं रह गया; वह इतनी ज्यादा चीज के संबंध में जानता है कि ज्यादा नहीं जान सकता, कम ही जान सकता है। अब आंख का डाक्टर अलग है, कान का डाक्टर अलग है, वह ज्यादा भरोसे के योग्य है; क्योंकि वह इतनी छोटी चीज के संबंध में जानता है कि ज्यादा जान सकता है। आज तो आंख पर ही इतना साहित्य है कि एक आदमी अपनी पूरी जिंदगी भी जानने में लगाए तो पूरा साहित्य नहीं जान सकता।

इसलिए आज नहीं कल, बाईं आंख और दाईं आंख का डाक्टर अलग हो सकता है। बांटना पड़ सकता है। कल हम आंख में भी विभाग कर सकते हैं कि कोई सफेद हिस्से के संबंध में जानता है, कोई काले हिस्से के। क्योंकि वे भी बहुत बड़ी घटनाएं हैं। और उनमें भी अगर विस्तार में... और विज्ञान का मतलब ही यह है कि वह रोज छोटा करता जाता है अपना फोकस। इसलिए विज्ञान बहुत जान पाता है। उसका फोकस होता है कम, कनसनट्रेटेड हो जाता है।

ब्रह्म शरीर और निर्वाण शरीर के रहस्य में विज्ञान का खो जाना

तो पांचवें शरीर तक, मैं कहता हूं, विज्ञान का प्रवेश हो सकेगा; क्योंकि पांचवें शरीर तक इंडिविजुअल है। इसलिए फोकस में, पकड़ में आ जाता है। छठवें से कास्मिक है; फोकस में, पकड़ में नहीं आता। छठवां जो है वह कास्मिक बॉडी है, ब्रह्म शरीर है। ब्रह्म शरीर का मतलब है--दि टोटल। वहां विज्ञान प्रवेश नहीं कर पाएगा; क्योंकि विज्ञान छोटे, और छोटे, और छोटे पर जा सकता है। तो वह व्यक्ति तक पकड़ लेगा। व्यक्ति के बाद उसकी दिक्कत है; कास्मिक को पकड़ना उसकी दिक्कत है। कास्मिक को तो धर्म ही पकड़ेगा।

इसलिए आत्मा तक विज्ञान को कठिनाई नहीं आएगी, कठिनाई आएगी परमात्मा पर। वहां मैं नहीं समझ पाता कि किसी दिन संभव हो पाएगा कि विज्ञान पकड़े, क्योंकि वहां तभी पकड़ सकता है जब वह स्पेशलाइजेशन छोड़े। और स्पेशलाइजेशन छोड़े कि वह विज्ञान नहीं रह गया, वह वैसा ही वेग और जनरलाइज्ड हो जाएगा जैसा धर्म है।

इसलिए मैंने कहा कि पांचवें तक विज्ञान के साथ सहारा और यात्रा हो सकेगी; छठवें पर वह खो जाएगा; और सातवें पर तो बिल्कुल ही नहीं जा सकता। क्योंकि विज्ञान की सारी खोज जीवन की खोज है। असल में, हमारी जो जीवन की आकांक्षा है, जो जीवेषणा है कि हम जीना चाहते हैं--कम बीमार, ज्यादा स्वस्थ, ज्यादा देर, ज्यादा सुख से, ज्यादा सुविधा से। विज्ञान की मूल प्रेरणा ही जीवन को गहरा, सुखद, संतुष्ट, शांत, स्वस्थ बनाने की है। और सातवां शरीर जो है वह मृत्यु का अंगीकार है; वह महामृत्यु है। वहां साधक जीवन की खोज के पार आ गया; अब वह कहता हैः हम मृत्यु को भी जानना चाहते हैं; हमने होना जान लिया, अब हम न होना भी जानना चाहते हैं; हमने बीइंग जान लिया, अब हम नॉन-बीइंग भी जानना चाहते हैं। वहां विज्ञान का कोई अर्थ नहीं है।

तो वैज्ञानिक तो वहां कहेगा--जैसा फ्रायड कहता है--कि डेथ विश, यह अच्छी बात नहीं है, यह स्युसाइडल है। फ्रायड कहता है, यह अच्छी बात नहीं है; निर्वाण, मोक्ष, ये ठीक बातें नहीं हैं; ये आपके मरने की इच्छा के सबूत हैं! आप मरना चाहते हैं; आप बीमार हैं। वह इसीलिए कह रहा है, क्योंकि वैज्ञानिक मरने की इच्छा को इनकार ही करेगा, क्योंकि विज्ञान खड़ा ही जीवन की इच्छा के विस्तार पर है। लेकिन जो आदमी जीना चाहता है वह स्वस्थ है--लेकिन एक घड़ी ऐसी आती है, तब मरना चाहना भी इतना ही स्वस्थ हो जाता है। हां, बीच में कोई मरना चाहे तो अस्वस्थ है; लेकिन एक घड़ी जीवन की ऐसी आ जाती है जब कोई मरना भी चाहता है।

कोई कहे कि जागना तो स्वस्थ है और सोना स्वस्थ नहीं है। ऐसा हुआ जा रहा है, कि हम रात का समय दिन को देते जा रहे हैं। पहले छह बजे रात हो जाती थी, अब दो बजे होने लगी है। रात का समय दिन को दिए जा रहे हैं। और कुछ विचारक हैं जो कहते हैं कि किसी तरह से आदमी को नींद से बचाया जा सके, तो उसकी जिंदगी में बहुत समय बच जाएगा। नींद की इच्छा ही क्यों? इसको छोड़ ही दिया जाए किसी तरह से।

लेकिन जैसे जागने का एक आनंद है, ऐसे ही सोने का एक आनंद है। और जैसे जागने की इच्छा भी स्वाभाविक और स्वस्थ है, ऐसे ही एक घड़ी सो जाने की इच्छा भी स्वस्थ और स्वाभाविक है। अगर कोई आदमी मरते दम तक भी जीने की आकांक्षा किए जाता है तो अस्वस्थ है; और अगर कोई आदमी जन्म से ही मरने की आकांक्षा करने लगता है, वह भी अस्वस्थ है। एक बच्चा अगर मरने की आकांक्षा करता है तो बीमार है, उसका इलाज होना चाहिए। और अगर एक बूढ़ा भी जीना चाहता है तो बीमार है, उसका इलाज होना चाहिए।

महाशून्य में परम विसर्जन परम स्वास्थ्य है

जीवन और मृत्यु दो पैर हैं अस्तित्व के। आप एक को स्वीकार करते हैं तो लंगड़े ही होंगे; दूसरे को स्वीकार नहीं करेंगे तो लंगड़ापन कभी नहीं मिटेगा। दोनों पैर हैं--होना भी और न होना भी। और वही आदमी परम स्वस्थ है जो दोनों को एक सा आलिंगन कर लेता है--होने को भी, न होने को भी। जो कहता है, होना भी जाना, अब न होना भी जान लें; जिसे न होने में कोई भय नहीं है।

तो सातवां जो शरीर है, वह तो सिर्फ उन्हीं साहसी लोगों के लिए है, जिन्होंने जीवन जान लिया और अब जो मृत्यु भी जानना चाहते हैं। जो कहते हैं, इसे भी खोजेंगे! जो कहते हैं, हम इसे भी जानेंगे! जो कहते हैं, हम मिट जाने को भी जानना चाहते हैं! यह मिट जाना क्या है? यह खो जाना क्या है? यह न हो जाना क्या है? जीने का रस देखा, अब मृत्यु का रस भी देखना है।

अब तुम्हें इस संबंध में यह भी जान लेना उचित होगा कि जो हमारी मृत्यु है, वह सातवें शरीर से ही आती है। साधारण मृत्यु भी, वह हमारे सातवें शरीर से आती है; और जो हमारा जीवन है, वह हमारे पहले शरीर से आता है। तो जन्म जो है, वह भौतिक शरीर से शुरू होता है। जन्म का मतलब ही है भौतिक शरीर की शुरुआत। इसलिए मां के पेट में पहले भौतिक शरीर निर्मित होता है, फिर और शरीर प्रवेश करते हैं। पहला शरीर हमारा जन्म की शुरुआत है; और अंतिम शरीर, जिसको निर्वाण शरीर मैंने कहा, वहां से हमारी मृत्यु आती है। और जो इस भौतिक शरीर को जोर से पकड़ लेता है, वह इसलिए मौत से बहुत डरता है। और जो मौत से डरता है, वह सातवें शरीर को नहीं जान पाएगा कभी।

इसलिए धीरे-धीरे भौतिक शरीर से पीछे हटते-हटते वह घड़ी आ जाती है, जब हम मौत को भी अंगीकार कर लेते हैं; तभी हम जान पाते हैं। और जो मौत को जान लेता है, वह परिपूर्ण अर्थों में मुक्त हो जाता है; क्योंकि तब जीवन और मृत्यु एक ही चीज के दो पहलू हो जाते हैं, और वह दोनों के बाहर हो जाता है।

वैज्ञानिक बुद्धि और धार्मिक हृदयः एक दुर्लभ संयोग

यह सातवें शरीर तक विज्ञान कभी जाएगा, इसकी कोई आशा नहीं है; छठवें शरीर तक जा सकेगा, इसकी संभावना नहीं है। पांचवें तक जा सकता है, क्योंकि चौथे के द्वार खुल गए हैं और पांचवें पर जाने में कोई कठिनाई नहीं रह गई है वस्तुतः। सिर्फ ऐसे लोगों की जरूरत है जिनके पास वैज्ञानिक बुद्धि हो और जिनके पास धार्मिक हृदय हो--वे अभी प्रवेश कर जाएं। यह मुश्किल कांबिनेशन है थोड़ा; क्योंकि वैज्ञानिक की जो ट्रेनिंग है, वह उसे धार्मिक होने से कई दिशाओं से रोक देती है; और धार्मिक की जो ट्रेनिंग है, वह उसे वैज्ञानिक होने से कई दिशाओं से रोक देती है। तो इन दोनों ट्रेनिंग का कहीं ओवरलैपिंग नहीं हो पाता, इससे बड़ी कठिनाई है।

कभी ऐसा होता है। जब भी ऐसा होता है, तब दुनिया में एक नई पीक ज्ञान की, एक नया शिखर पैदा हो जाता है--जब भी कभी ऐसा होता है। जैसे पतंजलि! अब वह आदमी वैज्ञानिक बुद्धि का है और धर्म में प्रवेश कर गया। तो उसने योग को एक चोटी पर पहुंचा दिया, जिसके बाद फिर उस चोटी को पार करना अब तक संभव नहीं हुआ है। एक ऊंचाई पर बात चली गई, पतंजलि को मरे बहुत वक्त हो गया, बहुत काम हो सकता था; लेकिन पतंजलि जैसा आदमी नहीं मिल सका, जिसके पास एक वैज्ञानिक की बुद्धि थी और जिसके पास एक धार्मिक साधना का जगत था। एक ऐसे शिखर पर बात पहुंच गई कि उसके बाद फिर योग का कोई शिखर दूसरा उससे ऊंचा नहीं उठा सका।

अरविंद ने बहुत कोशिश की, लेकिन सफल नहीं हो सके। अरविंद के पास भी एक वैज्ञानिक की बुद्धि थी, और शायद पतंजलि से ज्यादा थी; क्योंकि सारा शिक्षण उनका पश्चिम में हुआ। अरविंद का शिक्षण बड़ा महत्वपूर्ण है। बाप ने अरविंद को हिंदुस्तान से बहुत छोटी उम्र में, पांच-छह वर्ष की उम्र में भेज दिया, और सख्त मनाही की कि अब इसे हिंदुस्तान तब तक वापस नहीं लौटाना है जब तक यह पूरा मैच्योर न हो जाए। यह हालत आ गई कि बाप के मरने का वक्त आ गया और लोगों ने चाहा कि अरविंद को वापस भेज दें। उन्होंने कहा कि नहीं, मैं मर जाऊं, यह बेहतर; लेकिन लड़का पूरी तरह पश्चिम को पीकर लौटे; पूरब की छाया भी न पड़ जाए उस पर; उसे खबर भी न दी जाए कि मैं मर गया। हिम्मतवर बाप था ऐसे।

तो अरविंद पूरे पश्चिम को पीकर लौटे। अगर हिंदुस्तान में कोई आदमी ठीक अर्थों में वेस्टर्न था तो वह अरविंद थे। वह अपनी भाषा उनको लौटकर सीखनी पड़ी--मातृभाषा। वे तो सब भूल-भाल गए थे। तो विज्ञान तो पूरा हो गया इस आदमी में, लेकिन धर्म पीछे से आरोपित था, वह बहुत गहरा नहीं जा सका। धर्म जो था

वह बहुत बाद में ऊपर से प्लांटेड था, वह बहुत गहरा नहीं जा सका। नहीं तो पतंजलि से ऊंचा शिखर अरविंद छू सकते थे। वह नहीं हो सका। वह ट्रेनिंग जो थी पश्चिम की, वह बहुत गहरे अर्थों में बाधा बन गई। और बाधा इस तरह से बन गई कि वे, जैसा वैज्ञानिक सोचता है, उसी तरह से सोचने में लग गए। तो डार्विन की सारी एवोल्यूशन वे धर्म में ले आए। पश्चिम से जो-जो ख्याल लाए थे, उन सबको धर्म में उन्होंने प्रविष्ट कर दिया; लेकिन धर्म का उनके पास कोई ख्याल नहीं था, जो वे विज्ञान में प्रवेश कर दें। इसलिए विज्ञान की बड़ी काया, बड़ा वाल्यूमिनस साहित्य उन्होंने रच डाला; लेकिन उसमें धर्म नहीं है; धर्म उसमें बहुत ऊपरी है।

जब भी कभी ऐसा हुआ है कि वैज्ञानिक बुद्धि और धार्मिक बुद्धि का कहीं कोई तालमेल हो गया है तो बड़ा शिखर छुआ जा सकता है। ऐसा पूरब में हो सकेगा, इसकी संभावना कम होती जाती है; क्योंकि पूरब के पास धर्म भी खो गया है और विज्ञान तो है ही नहीं। पश्चिम में ही हो सके, इसकी संभावना ज्यादा है; क्योंकि विज्ञान अतिशय हो गया है। और जब भी कोई अतिशय हो जाती है चीज, तो पेंडुलम दूसरी तरफ झूलना शुरू हो जाता है। तो पश्चिम का जो बहुत बुद्धिमान वर्ग है, वह जिस रस से अब गीता को पढ़ता है, उस रस से हिंदुस्तान में कोई नहीं पढ़ता।

जब पहली दफा शापेनहार ने गीता पढ़ी तो सिर पर रखकर वह नाचने लगा--नाचता हुआ घर के बाहर आ गया। और लोगों ने कहा, क्या हो गया? पागल हो गए हो? उसने कहा कि यह ग्रंथ पढ़ने योग्य नहीं, सिर पर रखकर नाचने योग्य है। मुझे पता ही नहीं था कि ऐसी बात कहनेवाले लोग भी हो गए हैं। यह क्या कह दिया! यह भाषा में आ सकता है? यह शब्द में बंध सकता है? मैं तो सोचता थाः बंध ही नहीं सकता। यह तो बंध गया! यह तो कुछ बात कह दी गई!

अब हिंदुस्तान में गीता सिर पर रखकर नाचनेवाला आदमी नहीं मिलेगा। हां, बहुत लोग मिलेंगे जो गीता की बैलगाड़ी बनाकर और उस पर सवार होकर चल रहे हैं। वे लोग मिलेंगे। वह उनसे कोई... उनसे कोई अर्थ नहीं होता है।

पर इस सदी के पूरे होते-होते एक बड़ा शिखर छू लिया जा सकेगा, क्योंकि जब जरूरत होती है तो हजार-हजार कारण सारे जगत में सक्रिय हो जाते हैं। आइंस्टीन मरते-मरते धार्मिक आदमी होकर मरा है। जीते जी तो वैज्ञानिक था, मरते-मरते धार्मिक आदमी होकर मरा है।

इसलिए जो दूसरे बहुत अतिशय वैज्ञानिक हैं, वे कहते हैं, आइंस्टीन की आखिरी बातों को गंभीरता से नहीं लेना चाहिए; उसका दिमाग खराब हो गया होगा। क्योंकि आखिर-आखिर में उसने जो कहा है, वह बहुत अदभुत है।

आइंस्टीन आखिरी-आखिरी वक्त कहते मरा है कि मैं सोचता था--जगत को जान लूंगा; लेकिन जितना जाना, उतना पाया कि जानना असंभव है, जानने को अनंत शेष है। और मैं सोचता था कि एक दिन विज्ञान जगत के रहस्य को तोड़कर गणित का सवाल बना देगा, मिस्ट्री खतम हो जाएगी; लेकिन गणित का सवाल बड़ा होता चला गया, जगत की मिस्ट्री तो कम न हुई, गणित का सवाल ही और बड़ी मिस्ट्री हो गया; अब उसको भी हल करना मुश्किल है।

आधुनिक विज्ञान धर्म की प्रतिध्वनि में

पश्चिम में और भी चोटी के दो-चार वैज्ञानिक धर्म की परिधि के करीब घूम रहे हैं। विज्ञान में ही वैसी संभावनाएं पैदा हो गई हैं, क्योंकि वह जैसे ही तीसरे शरीर के करीब पहुंच रहा है--दूसरे को वह पार कर गया है--जैसे ही वह तीसरे के करीब पहुंच रहा है, धर्म की प्रतिध्वनि अनिवार्य है; क्योंकि अब वह अनसर्टेन्टी के,

प्रोबेबिलिटी के, अनिश्चय के, अननोन के जगत में खुद ही प्रवेश कर रहा है। अब उसको कहीं न कहीं स्वीकार करना पड़ेगाः अज्ञात है! अब उसको स्वीकार करना पड़ेगाः जो दिखाई पड़ता है, उससे अतिरिक्त भी है; जो नहीं दिखाई पड़ता, वह भी है; जो नहीं सुनाई पड़ता, वह भी है। क्योंकि आज से सौ ही साल पहले हम कह रहे थे--जो नहीं सुनाई पड़ता, वह नहीं है; जो नहीं दिखाई पड़ता, वह नहीं है; जो नहीं स्पर्श में आता, वह नहीं है। अब विज्ञान कहता है--नहीं, इतना है कि स्पर्श में तो बहुत कम आता है; स्पर्श की तो बड़ी सीमा है, अस्पर्श का बड़ा विस्तार है। इतना है कि सुनाई तो बहुत कम पड़ता है, न सुनाई पड़नेवाला अनंत है। इतना है कि दिखाई तो छोटा सा पड़ता है, न दिखाई पड़नेवाला अदृश्य, अछोर है। असल में, अब हमारी आंख जितना पकड़ती है, वह बहुत छोटा सा पकड़ती है। एक खास वेवलेंथ पर हमारी आंख पकड़ती है; और एक खास वेवलेंथ पर हमारा कान सुनता है; और उसके नीचे करोड़ों वेवलेंथ हैं और उसके ऊपर करोड़ों वेवलेंथ हैं।

कभी ऐसी भूल हो जाती है। एक आदमी पिछली दफा आल्प्स पर कहीं किसी पहाड़ पर चढ़ता था और गिर पड़ा। गिरने से उसके कान को चोट लगी, और वह जिस गांव का रहनेवाला था, उसके रेडियो स्टेशन को उसने पकड़ना शुरू कर दिया--कान से! जब वह अस्पताल में भर्ती था तो वह बहुत मुश्किल में पड़ गया। वह दिन भर... वहां कोई ऑन-ऑफ करने का उपाय नहीं है कान में अभी। पहले तो वह समझा कि कुछ... क्या हो रहा है? मेरा दिमाग खराब हो रहा है या क्या हो रहा है? लेकिन धीरे-धीरे चीजें साफ होने लगीं। और उसने डाक्टर से कहा, यह क्या हो रहा है? आसपास कोई रेडियो बजाता है या क्या बात है अस्पताल में? क्योंकि मुझे सब सुनाई पड़ता है।

उन्होंने कहा, रेडियो अस्पताल में कहां बज रहा है! आपको वहम हो गया होगा। उसने कहा कि नहीं, मुझे ये-ये समाचार सुनाई पड़ रहे हैं। डाक्टर भागा, बाहर गया, आफिस में जाकर रेडियो बजाया। उस वक्त उसके गांव के स्टेशन पर समाचार सुनाई पड़ रहे थे; जो उसने बताए थे, वह बताया जा रहा था। फिर तो तालमेल बिठाया गया; पाया गया कि उसका कान सक्रिय हो गया है। उसका कान जो है, वेवलेंथ बदल गई चोट लगने से।

आज नहीं कल--रेडियो ऐसा अलग हो, यह गलत है--आज नहीं कल, यह इंतजाम हो जाएगा कि हम कान की वेवलेंथ सीधे डाइवर्ट कर सकें, कान में एक मशीन ऊपर से लगा लें, उसकी वेवलेंथ बदल सकें, तो वह उस स्तर पर सुन सके।

करोड़ों आवाजें हमारे आसपास से गुजर रही हैं। छोटी-मोटी आवाजें नहीं, क्योंकि हमें कुछ अपने कान के नीचे की आवाज भी सुनाई नहीं पड़ती, उससे बड़ी आवाज भी सुनाई नहीं पड़ती। अगर एक तारा टूटता है तो उसकी भयंकर गर्जना की आवाज हमारे चारों तरफ से निकलती है, लेकिन हम सुन नहीं पाते, नहीं तो हम बहरे हो जाएं। बड़ी-बड़ी आवाजें निकल रही हैं, बड़ी छोटी आवाजें निकल रही हैं। वे हमारी पकड़ में नहीं हैं। बस एक छोटा सा दायरा है हमारा।

जैसे कि हमारे शरीर की गर्मी का एक दायरा है कि अट्ठानबे डिग्री से एक सौ दस डिग्री के बीच हम जीते हैं। इधर अट्ठानबे से नीचे गिरना शुरू हुए कि मरने के करीब पहुंचे, उधर एक सौ दस के पार गए कि मरे। यह दस-बारह डिग्री की हमारी कुल दुनिया है। गर्मी बहुत है--आगे भी बहुत है, पीछे भी कम बहुत है। उससे हमारा कोई संबंध नहीं है।

इसी तरह हर चीज की हमारी एक सीमा है। पर उस सीमा के बाहर जो है उसके बाबत? वह भी है। विज्ञान ने उसकी स्वीकृति शुरू कर दी है। स्वीकृति होती है, फिर धीरे से खोज शुरू हो जाती है कि वह कहां

है? कैसी है? क्या है? उस सबको जाना जा सकेगा; उस सबको पहचानना जा सकेगा। और इसलिए मैंने कहा था कि पांचवें तक संभव हो सकता है।

प्रश्नः नॉन-बीइंग को कौन जानता है और किस आधार पर जानता है?

न, यह सवाल नहीं है, यह सवाल नहीं उठेगा। यह सवाल न उठेगा, न बन सकता है। क्योंकि जब हम कहते हैं कि न होने को कौन जानता है, तो हमने मान लिया कि अभी कोई बचा। फिर न होना नहीं हुआ।

निर्वाण शरीर के अनुभव की कोई अभिव्यक्ति नहीं

प्रश्नः रिपोर्टिंग कैसे होगी?

कोई रिपोर्टिंग नहीं होती; कोई रिपोर्टिंग नहीं होती। ऐसा होता है... ऐसा होता है, जैसे रात को तुम सोते हो; जब तक तुम जागे होते हो तभी तक का तुम्हें पता होता है, जिस वक्त तुम सो जाते हो उस वक्त तुम्हें पता नहीं होता; जागते तक का पता होता है। तो रिपोर्टिंग जागने की करते हो तुम। लेकिन आमतौर से तुम कहते उलटा हो--वह रिपोर्टिंग गलत है--तुम कहते हो, मैं आठ बजे सो गया। तुम्हें कहना चाहिए, मैं आठ बजे तक जागता था। क्योंकि सोने की तुम रिपोर्ट नहीं कर सकते। क्योंकि सो गए तो रिपोर्ट कौन करेगा? उस तरफ से रिपोर्ट होती है कि मैं आठ बजे तक जागता था, यानी आठ बजे तक मुझे पता था कि अभी मैं जाग रहा हूं, लेकिन आठ बजे के बाद मुझे पता नहीं। फिर मैं सुबह छह बजे उठ आया, तब मुझे पता है। बीच में एक गैप छूट गया--आठ बजे और छह बजे के बीच का; उस वक्त मैं सोया या, यह इनफरेंस है।

यह उदाहरण के लिए तुमसे कह रहा हूं। उदाहरण के लिए तुमसे कह रहा हूं कि तुम्हें छठवें शरीर तक का पता होगा। सातवें शरीर में तुम डुबकी लगाकर छठवें में वापस आओगे, तब तुम कहोगे कि अरे, मैं कहीं और चला गया था, नॉन-बीइंग हो गया था। यह जो रिपोर्टिंग है, यह रिपोर्टिंग छठवें शरीर तक है। इसलिए सातवें शरीर के बाबत कुछ लोगों ने बात ही नहीं की। नहीं करने का भी कारण था। क्योंकि जिसको नहीं कहा जा सकता उसको कहना ही क्यों!

अभी एक आदमी था विटगिंस्टीन, उसने बड़ी कीमती कुछ बातें लिखीं। उसमें एक बात उसकी यह भी है, कि दैट व्हिच कैन नाट बी सेड, मस्ट नाट बी सेड। जो नहीं कही जा सकती, उसको कहना ही नहीं चाहिए। क्योंकि बहुत लोगों ने उसको कह दिया, और हमको दिक्कत में डाल दिया। क्योंकि वह साथ उनकी शर्त यह भी है कि नहीं कहीं जा सकती और फिर कहा भी है, तो वह कहना जो है वह निगेटिव रिपोर्टिंग है। वह उस स्थिति की नहीं, उस स्थिति के पहले तक की, आखिरी पड़ाव तक की खबर है, कि यहां तक मैं था, इसके बाद मैं नहीं था; क्योंकि इसके बाद मैं, न जाननेवाला था, न कुछ जानने को बचा था; न कोई रिपोर्ट लानेवाला था, न कोई रिपोर्ट की जगह थी। मगर एक सीमा के बाद यह हुआ था, उस सीमा के पहले मैं था।

बस, तो वह सीमा-रेखा छठवें शरीर की सीमा-रेखा है।

अगम, अगोचर, अवर्णनीय निर्वाण

छठवें शरीर तक वेद, उपनिषद, गीता, बाइबिल जाते हैं। असल में, जो अगोचर और अवर्णनीय जो है, वह सातवां है। छठवें तक कोई अड़चन नहीं है। पांचवें तक तो बड़ी सरलता है। लेकिन उसकी कोई... क्योंकि

बचता नहीं कोई जाननेवाला; जानने को भी कुछ नहीं बचता। असल में, जिसको हम बचना कहें, वही नहीं बचता। तो यह जो खाली अंतराल है, यह जो शून्य है, इसको हम कहेंगे तो हमारे सब शब्द निषेधात्मक होंगे। इसलिए वेद-उपनिषद कहेंगे--नेति, नेति। वे कहेंगे कि यह मत पूछो, वहां क्या था; यह हम बता सकते हैं, क्या-क्या नहीं था--दिस इ.ज नाट, दैट इ.ज नाट; यह भी नहीं था, वह भी नहीं था। और यह मत पूछो कि क्या था; वह हम न कहेंगे। हम इतना ही बता सकते हैं कि यह भी नहीं था, यह भी नहीं था--पत्नी भी नहीं थी, पिता भी नहीं था, पदार्थ भी नहीं था, अनुभव भी नहीं था, ज्ञान भी नहीं था, मैं भी नहीं था, अहंकार भी नहीं था, जगत भी नहीं था, परमात्मा भी नहीं था--नहीं था; क्योंकि यह हमारे छठवें की सीमा-रेखा बनती है। क्या था? तो एकदम चुप हो जाएंगे; उसको नहीं कहा जा सकेगा।

निर्वाण शरीर की अभिव्यक्ति के लिए बुद्ध का सर्वाधिक प्रयास

इसलिए ब्रह्म तक खबरें दे दी गई हैं। इसलिए जिन लोगों ने ब्रह्म के बाद की खबरें दीं... खबर तो निषेधात्मक होगी, इसलिए वह हमको निगेटिव लगेगी। जैसे बुद्ध; बुद्ध ने बड़ी मेहनत की है उसके बाबत खबर देने की। इसलिए सब नकार है, इसलिए सब निषेध है। इसलिए हिंदुस्तान के मन को बात नहीं पकड़ी। ब्रह्मज्ञान हिंदुस्तान को पकड़ता था, वहां तक पाजिटिव चलता है। ब्रह्म ऐसा है--आनंद है, चित है, सत है। यहां तक चलता है। यहां तक पाजिटिव एसर्शन हो जाता है; हम कह सकते हैं--यह है, यह है, यह है। बुद्ध ने, जो-जो नहीं है, उसकी बात कही। वह सातवें की बात करने की, शायद उस अकेले आदमी ने सातवें की बात करने की बड़ी मेहनत की।

इसलिए बुद्ध की जड़ें उखड़ गईं इस मुल्क से, क्योंकि वे जिस जगह की बात कर रहे थे वहां जड़ें नहीं हैं; जिस जगह की बात कर रहे थे वहां के लिए कोई आकार नहीं है, रूप नहीं है। हम सब सुनते थे, हमें लगा कि बेकार है, वहां जाकर भी क्या करेंगे जहां कुछ भी नहीं है! हमें तो कुछ ऐसी जगह बताइए जहां हम तो होंगे कम से कम। बुद्ध ने कहा, तुम तो होओगे ही नहीं। तो हमें लगा कि फिर इस खतरे में क्यों पड़ना! हम तो अपने को बचाना चाहते हैं आखिर तक।

इसलिए बुद्ध और महावीर दोनों मौजूद थे, लेकिन महावीर की बात लोगों को ज्यादा समझ में पड़ी, क्योंकि महावीर ने पांचवें के आगे बात ही नहीं की, छठवें की भी बात नहीं की। क्योंकि महावीर के पास एक वैज्ञानिक चित्त था, और उनको छठवां भी लगा कि वह भी, शब्द वहां डांवाडोल, संदिग्ध हो जाते हैं। पांचवें तक शब्द बिल्कुल थिर चलता है और एकदम वैज्ञानिक रिपोर्टिंग संभव है, कि हम कह सकते हैंः ऐसा है, ऐसा है। क्योंकि पांचवें तक हमारा जो अनुभव है उससे तालमेल खाती हुई चीजें मिल जाती हैं।

समझ लो कि एक आदमी... एक महासागर में एक छोटा सा द्वीप है; उस द्वीप पर एक ही तरह के फूल खिलते हैं। छोटा द्वीप है, एक ही तरह के फूल खिलते हैं; दस-पचास लोग उस द्वीप पर रहते हैं। वे कभी बाहर नहीं गए। तो वहां से कोई यात्री जहाज निकल रहा है और एक उनमें कोई बुद्धिमान आदमी है, वह उसको अपने जहाज पर ले आता है; वह अपने देश में उसे ले आता है।

वह यहां हजारों तरह के फूल देखता है। फूल का मतलब उसके लिए एक ही फूल था। फूल का मतलब वही फूल था जो उसके द्वीप पर होता था। पहली दफा फूल के मतलब का विस्तार होना शुरू होता है। फूल का मतलब वही नहीं था जो था। अब उसे पता चलता है कि फूल तो हजारों हैं। वह कमल देखता है, वह गुलाब देखता है, वह चंपा देखता है, चमेली देखता है। अब वह बड़ी मुश्किल में पड़ जाता है कि मैं जाकर लोगों को कैसे समझाऊंगा कि फूल का मतलब यही फूल नहीं होता, फूलों के नाम होते हैं। उसके द्वीप पर नाम नहीं होंगे;

क्योंकि जहां एक होता है वहां नाम नहीं होता। वहां फूल ही नाम होगा। वह काफी है। गुलाब का फूल कहने की कोई जरूरत नहीं, चंपा का फूल कहने की कोई जरूरत नहीं। अब वह कहेगा कि मैं उनको कैसे समझाऊंगा कि चंपा क्या है। वे कहेंगे, फूल ही न! तो फूल तो उनका एक साफ है उनके सामने।

अब वह आदमी लौटता है। अब वह बड़ी मुश्किल में पड़ गया है।

फिर भी कुछ उपाय है, क्योंकि एक फूल तो कम से कम उस द्वीप पर है--फूल तो है कम से कम। वह बता सकता है कि यह लाल रंग है, सफेद रंग का भी फूल होता है। उसको यह नाम कहते हैं। यह छोटा फूल है, बहुत बड़ा फूल होता है, उसको कमल कहते हैं। फिर भी उस द्वीप के निवासियों को वह थोड़ा-बहुत कम्युनिकेट कर पाएगा, क्योंकि एक फूल उनकी भाषा में है। और दूसरे फूलों को भी थोड़ा इशारा किया जा सकता है।

लेकिन समझ लें कि वह आदमी चांद पर चला जाए--वह आदमी जहाज पर बैठकर किसी द्वीप पर न आए, बल्कि एक अंतरिक्ष यात्री उसको चांद पर ले जाए--जहां फूल हैं ही नहीं; जहां पौधे नहीं हैं; जहां हवा का आयतन अलग है, दबाव अलग है--और वह अपने द्वीप पर वापस लौटे, और उस द्वीप के लोग पूछें कि तुम क्या देखकर आए? चांद पर क्या पाया? तो खबर देना और मुश्किल हो जाए, क्योंकि कोई तालमेल नहीं बैठता कि वह कैसे खबर दे; क्या कहे, वहां क्या देखा; उसकी भाषा में उसे कोई शब्द न मिलें।

ठीक ऐसी स्थिति है। पांचवें तक हमारी जो भाषा है उसमें हमें शब्द मिल जाते हैं, पर वे शब्द ऐसे ही होते हैं कि हजार फूल और एक फूल का फर्क होता है। छठवें से भाषा गड़बड़ होनी शुरू हो जाती है। छठवें से हम ऐसी जगह पहुंचते हैं जहां एक और अनेक का भी फर्क नहीं है, और मुश्किल होनी शुरू हो जाती है।

फिर भी, निषेध से थोड़ा-बहुत काम चलाया जा सकता है; या टोटेलिटी की धारणा से थोड़ा-बहुत काम चलाया जा सकता है। हम कह सकते हैं कि वहां कोई सीमा नहीं है, असीम है। सीमाएं हम जानते हैं, असीम हम नहीं जानते। तो सीमा के आधार पर हम कह सकते हैं कि वहां सीमाएं नहीं हैं, असीम है वहां। तो भी थोड़ी धारणा मिलेगी। हालांकि पक्की नहीं मिलेगी; हमें शक तो होगा कि हम समझ गए, हम समझेंगे नहीं।

इसलिए बड़ी गड़बड़ होती है। हमें लगता है कि हम समझ गए, ठीक तो कह रहे हैं कि सीमाएं वहां नहीं हैं। लेकिन सीमाएं नहीं होने का क्या मतलब होता है? हमारा सारा अनुभव सीमा का है। यह वैसा ही समझना है, जैसे उस द्वीप के आदमी कहें कि अच्छा हम समझ गए, फूल ही न! तो वह आदमी कहेगा, नहीं-नहीं, उस फूल को मत समझ लेना; क्योंकि उससे कोई मामला नहीं है, यह हम बहुत दूसरी बात कर रहे हैं। ऐसा फूल तो वहां होता ही नहीं, वह कहेगा। तो वे लोग कहेंगे, फिर उनको फूल किसलिए कहते हो जब ऐसा फूल नहीं होता? फूल तो यही है।

हमको भी शक होता है कि हम समझ गए; कहते हैंः असीम है परमात्मा। हम कहते हैं, समझ गए। लेकिन हमारा सारा अनुभव सीमा का है; समझे हम कुछ भी नहीं। सिर्फ सीमा शब्द को समझने की वजह से उसमें अ लगाने से हमको लगता है कि सीमा वहां नहीं होगी, हम समझ गए। लेकिन सीमा नहीं होगी, इसको जब कंसीव करने बैठेंगे कि कहां होगा ऐसा जहां सीमा नहीं होगी, तब आप घबड़ा जाएंगे। क्योंकि आप कितना ही सोचें, सीमा रहेगी। आप और बढ़ जाएं, और बढ़ जाएं, अरब-खरब, संख्या टूट जाए, मील और प्रकाश वर्ष समाप्त हो जाएं--जहां भी आप रुकेंगे, फौरन सीमा खड़ी हो जाएगी।

असीम का मतलब हमारे मन में इतना ही हो सकता है, जिसकी सीमा बहुत दूर है--ज्यादा से ज्यादा; इतनी दूर है कि हमारी पकड़ में नहीं आती, लेकिन होगी तो। चूक गए, वह नहीं बात पकड़ में आई।

इसलिए छठवें तक की बात कही जाएगी; लोग समझेंगे, समझ गए; समझेंगे नहीं।

सातवें की बात तो इतनी भी नहीं समझेंगे कि समझ गए। सातवें की बात का तो कोई सवाल ही नहीं है। वे तो साफ ही कह देंगे, क्या एब्सर्ड बातें कर रहे हो? यह क्या कह रहे हो?

शब्दातीत, अर्थातीत सत्य का प्रतीक--ओम्

इसलिए सातवें के लिए फिर हमने एब्सर्ड शब्द खोजे, जिनका कोई अर्थ नहीं होता। जैसे ओम्। इसका कोई अर्थ नहीं होता। इसका कोई अर्थ नहीं होता, यह अर्थहीन शब्द है। यह हमने सातवें के लिए प्रयोग किया। जब कोई जिद ही करने लगा, छठवें तक हमने बात कही और जब वह जिद ही करने लगा, हमने कहा--ओम्। इसलिए सारे शास्त्र सब लिखने के बाद आखिर में ओम शांति! ओम शांति का मतलब आप समझते हैं? सातवां, समाप्त; अब इसके आगे नहीं बात--दि सेवेंथ, दि एंड। वे दोनों एक ही मतलब रखते हैं। इसलिए हर शास्त्र के पीछे हम इति नहीं लिखते, ओम शांति लिख देते हैं। वह ओम सूचक है सातवें का कि अब कृपा करो, इसके आगे बातचीत नहीं चलेगी, अब शांत हो जाओ।

तो हमने एक एब्सर्ड शब्द खोजा, उसका कोई अर्थ नहीं है। उसका कोई मतलब नहीं होता, कि उसका कोई मतलब होता हो। मतलब हो तो वह बेकार हो गया; क्योंकि हमने उस दुनिया के लिए खोजा जहां सब मतलब खत्म हो जाते हैं; वह गैर-मतलब शब्द है। इसलिए दुनिया की कोई भाषा में वैसा शब्द नहीं है। प्रयोग किए गए हैं--जैसे अमीन। पर वह शांति का मतलब है उसका। प्रयोग किए गए हैं, लेकिन ओम जैसा शब्द नहीं है। जैसे कि ईसाई प्रार्थना करेगा और आखिर में कहेगा--अमीन। वह यह कह रहा है--बस खत्म; शांति इसके बाद; अब शब्द नहीं। लेकिन ओम जैसा शब्द नहीं है। उसका कोई अनुवाद नहीं है संभव। वह हमने सातवें के लिए प्रतीक चुन लिया था जिसको।

इसलिए मंदिरों में उसे खोदा था--सातवें की खबर देने के लिए कि छठवें तक मत रुक जाना। वे ओम बनाते हैं, राम और कृष्ण को उसके बीच में खड़ा कर देते हैं। ओम उनसे बहुत बड़ा है। कृष्ण उसमें से झांकते हैं, लेकिन कृष्ण कुछ भी नहीं हैं, ओम बहुत बड़ा है। उसमें से सब झांकता है, और सब उसी में खो जाता है। इसलिए ओम से कीमत हमने किसी और चीज को कभी ज्यादा नहीं दी है। वह पवित्रतम है। पवित्रतम इस अर्थों में है, होलिएस्ट इस अर्थों में है, कि वह अंतिम है; उसके पार, बियांड, जहां सब खो जाता है, वहां वह है।

तो सातवें की रिपोर्टिंग की बात नहीं होती है। हां, इसी तरह नकार की खबरें दी जा सकती हैं--यह नहीं होगा, यह नहीं होगा। लेकिन यह भी छठवें तक ही सार्थक है। सातवें के संबंध में इसलिए बहुत लोग चुप ही रह गए। या जिन्होंने कहा, वे कहकर बड़ी झंझट में पड़े। और कहते हुए, बार-बार कहते हुए उनको कहना पड़ा कि यह कहा नहीं जा सकता; इसको बार-बार दोहराना पड़ा कि हम कह तो जरूर रहे हैं, लेकिन यह कहा नहीं जा सकता। तब हम पूछते हैं उनसे कि भई बड़ी मुश्किल है; जब नहीं कहा जा सकता, आप कहें ही मत। फिर वे कहते हैं, वह है तो जरूर! और उस जैसी कोई चीज नहीं है जो कहने योग्य हो; लेकिन उस जैसी कोई चीज भी नहीं है जो कहने में न आती हो। कहने योग्य तो बहुत है, खबर देने योग्य है बहुत, रिपोर्टेबल वही है, कि उसकी कोई खबर दे। लेकिन कठिनाई भी यही है कि उसकी कोई खबर नहीं हो सकती; उसे जाना जा सकता है, कहा नहीं जा सकता।

और इसलिए उस तरफ से आकर जो लोग गूंगे की तरह खड़े हो जाते हैं हमारे बीच में--जो बड़े मुखर थे, जिनके पास बड़ी वाणी थी, जिनके पास बड़े शब्द की सामर्थ्य थी, जो सब कह पाते थे, जब वे भी अचानक गूंगे की तरह खड़े हो जाते हैं--तब उनका गूंगापन कुछ कहता है; उनकी गूंगी आंखें कुछ कहती हैं।

जैसा तुम पूछते हो, ऐसा बुद्ध ने नियम बना रखा था कि वे कहते, यह पूछो ही मत; यह पूछने योग्य ही नहीं, यह जानने योग्य है। तो वे कहते, यह अव्याख्य है, इसकी व्याख्या मत करवाओ; मुझसे गलत काम मत करवाओ।

लाओत्से कहता है कि मुझसे कहो ही मत कि मैं लिखूं, क्योंकि जो भी मैं लिखूंगा वह गलत हो जाएगा। जो मुझे लिखना है वह मैं लिख ही न पाऊंगा; और जो मुझे नहीं लिखना है उसको मैं लिख सकता हूं, लेकिन उससे मतलब क्या है! तो जिंदगी भर टालता रहा--नहीं लिखा, नहीं लिखा, नहीं लिखा। आखिर में मुल्क ने परेशान ही किया तो छोटी सी किताब लिखी, पर उसमें पहले ही लिख दिया कि सत्य को कहा कि वह झूठ हो जाता है।

पर यह सेवेंथ, यह सातवें सत्य की बात है, सभी सत्यों की बात नहीं है। छठवें तक कहने से झूठ नहीं हो जाता। छठवें तक कहने से संदिग्ध होगा, पांचवें तक कहने से बिल्कुल सुनिश्चित होगा, सातवें पर कहने से झूठ हो जाएगा। जहां हम ही समाप्त हो जाते हैं, वहां हमारी वाणी और हमारी भाषा कैसे बचेगी! वह भी समाप्त हो जाती है।

ओम शब्द नहीं, चित्र है

प्रश्नः ओम को प्रतीक क्यों चुना गया? उसकी क्या-क्या विशेषताएं हैं?

ओम को चुनने के दो कारण हैं। एक तो, एक ऐसे शब्द की तलाश थी जिसका अर्‌थ न हो, जिसका तुम अर्थ न लगा पाओ; क्योंकि अगर तुम अर्थ लगा लो तो वह पांचवें के इस तरफ का हो जाएगा। एक ऐसा शब्द चाहिए था जो एक अर्थ में मीनिंगलेस हो।

हमारे सब शब्द मीनिंगफुल हैं। शब्द बनाते ही हम इसलिए हैं कि उसमें अर्थ होना चाहिए। अगर अर्थ न हो तो शब्द की जरूरत क्या है? उसे हम बोलने के लिए बनाते हैं। और बोलने का प्रयोजन ही यह है कि मैं तुम्हें कुछ समझा पाऊं; मैं जब शब्द बोलूं, तो तुम्हारे पास कोई अर्थ का इशारा हो पाए। जब लोग सातवें से लौटे या सातवें को जाना, तो उन्हें लगा कि इसके लिए कोई भी शब्द बनाएंगे, उसमें अगर अर्थ होगा, तो वह पांचवें शरीर के पहले का जो जाएगा--तत्काल। उसका भाषा-कोश में से अर्थ लिख दिया जाएगा; लोग पढ़ लेंगे और समझ लेंगे। लेकिन सातवें का तो कोई अर्थ नहीं हो सकता। या तो कहो मीनिंगलेस, अर्थहीन; या कहो बियांड मीनिंग, अर्थातीत; दोनों एक ही बात है।

तो उस अर्थातीत के लिए--जहां कि सब अर्थ खो गए हैं, कोई अर्थ ही नहीं बचा है--कैसा शब्द खोजें? और कैसे खोजें? और उस शब्द को कैसे बनाएं? तो शब्द को बनाने में बड़े विज्ञान का प्रयोग किया गया। वह शब्द बनाया बहुत... बहुत ही कल्पनाशील, और बड़े वि.जन, और बड़े दूरदृष्टि से वह शब्द बनाया गया; क्योंकि वह बनाया जा रहा था और एक रूट, एक मौलिक शब्द था जो मूल आधार पर खड़ा करना था। तो कैसे इस शब्द को खोजें जिसमें कि कोई अर्थ न हो; और किस प्रकार से खोजें कि वह गहरे अर्थ में मूल आधार का प्रतीक भी हो जाए?

तो हमारी भाषा की जो मूल ध्वनि हैं, वे तीन हैंः ए, यू, एम--अ, ऊ, म। हमारा सारा का सारा शब्दों का विस्तार इन तीन ध्वनियों का विस्तार है। तो रूट ध्वनियां तीन हैं--अ, ऊ, म। अच्छा अ, ऊ और म में कोई अर्थ नहीं है; अर्थ तो इनके संबंधों से तय होगा। अ जब "अब" बन जाएगा, तो अर्थपूर्ण हो जाएगा; म जब कोई

शब्द बन जाएगा तो अर्थपूर्ण हो जाएगा। अभी अर्थहीन हैं। अ, ऊ, म, इनका कोई अर्थ नहीं है। और ये तीन मूल हैं। फिर सारी हमारी वाणी का विस्तार इन तीन का ही फैलाव है, इन तीन का ही जोड़ है।

तो ये तीन मूल ध्वनियों को पकड़ लिया गया--अ, ऊ, म, तीनों के जोड़ से ओम बना दिया। तो ओम लिखा जा सकता था, लेकिन लिखने से फिर शक पैदा होता किसी को कि इसका कोई अर्थ होगा; क्योंकि फिर वह शब्द बन जाता। "अब", "आज", ऐसा ही ओम में भी एक शब्द बन जाता। और लोग उसका अर्थ निकाल लेते कि ओम यानी वह जो सातवें पर है। तो फिर शब्द न बनाएं इसलिए हमने चित्र बनाया ओम का, ताकि शब्द, अक्षर का भी उपयोग मत करो उसमें। अ, ऊ, म तो है वह, पर वह ध्वनि है--शब्द नहीं, अक्षर नहीं।

इसलिए फिर हमने ओम का चित्र बनाया, उसको पिक्टोरिअल कर दिया, ताकि उसमें सीधा कोई भाषा-कोश में खोजने न चला जाए उसे--कि ओम का क्या मतलब होता है। तो वह ओम जो है आपकी आंखों में गड़ जाए और प्रश्नवाचक बन जाए कि क्या मतलब?

जब भी कोई आदमी संस्कृत पढ़ता है या पुराने ग्रंथ पढ़ने दुनिया के किसी कोने से आता है, तो इस शब्द को बताना मुश्किल हो जाता है उसे। और शब्द तो सब समझ में आ जाते हैं, क्योंकि सबका अनुवाद हो जाता है। वह बार-बार दिक्कत यह आती है कि ओम यानी क्या? इसका मतलब क्या है? और फिर इसको अक्षरों में क्यों नहीं लिखते हो? इसको ओम लिखो न! यह चित्र क्यों बनाया हुआ है?

उस चित्र को भी अगर तुम गौर से देखोगे, तो उसके भी तीन हिस्से हैं, और वे अ, ऊ और म के प्रतीक हैं। वह पिक्चर भी बड़ी खोज है, वह चित्र भी साधारण नहीं है। और उस चित्र की खोज भी चौथे शरीर में की गई है। उस चित्र की खोज भी भौतिक शरीर से नहीं की गई है, वह चौथे शरीर की खोज है। असल में, जब चौथे शरीर में कोई जाता है और निर्विचार हो जाता है, तब उसके भीतर अ, ऊ, म, इनकी ध्वनियां गूंजने लगती हैं और उन तीनों का जोड़ ओम बनने लगता है। जब पूर्ण सन्नाटा हो जाता है विचार का, जब सब विचार खो जाते हैं, तब ध्वनियां रह जाती हैं और ओम की ध्वनि गूंजने लगती है। वह जो ओम की ध्वनि गूंजने लगती है, वहां चौथे शरीर से उसको पकड़ा गया है कि ये जहां विचार खोते हैं, भाषा खोती है, वहां जो शेष रह जाता है, वह ओम की ध्वनि रह जाती है।

निर्विचार चेतना में ओम का आविर्भाव

इधर से तो उस ध्वनि को पकड़ा गया। और जैसा मैंने तुमसे कहा कि जिस तरह हर शब्द का एक पैटर्न है, हर शब्द का एक पैटर्न है... जब हम एक शब्द का प्रयोग करते हैं तो हमारे भीतर एक पैटर्न बनना शुरू होता है। तो जब यह ओम की ध्वनि रह जाती है भीतर सिर्फ, तब अगर इस ध्वनि पर एकाग्र किया जाए चित्त, तो ध्वनि--अगर पूरी तरह से चित्त एकाग्र हो, जो कि चौथे पर हो जाना कठिन नहीं है, और जब यह ओम सुनाई पड़ेगा तो हो ही जाएगा। उस चौथे शरीर में ओम की ध्वनि गूंजती रहे, गूंजती रहे, गूंजती रहे, और अगर कोई एकाग्र इसको सुनता रहे, तो इसका चित्र भी उभरना शुरू हो जाता है।

इस तरह बीज मंत्र खोजे गए--सारे बीज मंत्र इसलिए खोजे गए। एक-एक चक्र पर जो ध्वनि होती है, उस ध्वनि पर जब एकाग्र चित्त से साधक बैठता है, तो उस चक्र का बीज शब्द उसकी पकड़ में आ जाता है। और वे बीज शब्द इस तरह निर्मित किए गए। ओम जो है, वह परम बीज है; वह किसी एक चक्र का बीज नहीं है, वह परम बीज है; वह सातवें का प्रतीक है--या अनादि का प्रतीक है, या अनंत का प्रतीक है।

ओम्--सार्वभौमिक सत्य

इस भांति उस शब्द को खोजा गया। और करोड़ों लोगों ने जब उसको टैली किया और स्वीकृति दी, तब वह स्वीकृत हुआ। एकदम से स्वीकृत नहीं हो गया; सहज स्वीकृत नहीं कर लिया कि एक आदमी ने कह दिया। करोड़ों साधकों को जब वही प्रति बार हो गया, और जब वह सुनिश्चित हो गया।

इसलिए ओम शब्द जो है, वह किसी धर्म की, किसी संप्रदाय की बपौती नहीं है। इसलिए बौद्ध भी उसका उपयोग करेंगे, बिना फिकर किए; जैन भी उसका उपयोग करेंगे, बिना फिकर किए। हिंदुओं की बपौती नहीं है वह। उसका कारण है। उसका कारण यह है कि वह तो साधकों को--अनेक साधकों को, अनेक मार्गों से गए साधकों को वह मिल गया है। दूसरे मुल्कों में भी जो चीजें हैं, वे भी किसी अर्थ में उसके हिस्से हैं।

अब जैसे कि अगर हम अरेबिक या लैटिन या रोमन, इनमें जो खोजबीन साधक की रही है, उसको भी पकड़ने जाएं, तो एक बड़े मजे की बात है कि म तो जरूर मिलेगा; किसी में अ और म मिलेगा; म तो अनिवार्य मिलेगा। उसके कारण हैं कि वह इतना सूक्ष्म हिस्सा है कि अक्सर आगे का हिस्सा छूट जाता है, पकड़ में नहीं आता और पीछे का हिस्सा सुनाई पड़ता है। तो ओऽऽऽम की जब आवाज होनी शुरू होती है भीतर, तो म सबसे ज्यादा सरलता से पकड़ में आता है। वह आगे का जो हिस्सा है वह दब जाता है पिछले म से। ऐसे भी तुम अगर किसी बंद भवन में बैठकर ओम की आवाज करो, तो म सबको दबा देगा--अ और ऊ को दबा देगा और म एकदम व्यापक हो जाएगा। इसलिए बहुत साधकों को ऐसा लगा कि म तो है पक्का। आगे की कुछ भूल-चूक हो गई, सुनने के कुछ भेद हैं।

और इसलिए दुनिया के सभी, जहां भी... जैसे अमीन, तो उसमें म अनिवार्य है। जहां-जहां साधकों ने उस शरीर पर काम किया है, वहां कुछ तो उनको पकड़ में आया है। लेकिन जितना ज्यादा प्रयोग हो, जैसे कि एक प्रयोग को हजार वैज्ञानिक करें, तो उसकी वैलिडिटी बढ़ जाती है।

लाखों साधकों की सम्मिलित खोज--ओम्

तो यह मुल्क एक लिहाज से सौभाग्यशाली है कि यहां हमने हजारों साल आत्मिक यात्रा पर व्यतीत किए हैं। इतना किसी मुल्क ने, इतने बड़े पैमाने पर, इतने अधिक लोगों ने कभी नहीं किया। अब बुद्ध के साथ दस-दस हजार साधक बैठे हैं। महावीर के साथ चालीस हजार भिक्षु और भिक्षुणियां थीं। छोटा सा बिहार, वहां चालीस हजार आदमी एक साथ प्रयोग कर रहे हैं। दुनिया में कहीं ऐसा नहीं हुआ। जीसस बेचारे बड़े अकेले हैं। मोहम्मद का फिजूल ही समय जाया हो रहा है नासमझों से लड़ने में। यहां एक स्थिति बन गई थी कि यहां यह बात अब लड़ने की नहीं रह गई थी, यह खत्म हो चुका था वक्त, यहां चीजें साफ हो गई थीं।

अब महावीर बैठे हैं और चालीस हजार लोग एक साथ साधना कर रहे हैं। टैली करने की बड़ी सुविधा थी। चालीस हजार लोगों में क्या हो रहा है--चौथे शरीर पर क्या हो रहा है, तीसरे पर क्या हो रहा है, दूसरे में क्या हो रहा है। एक भूल करेगा, दो भूल करेंगे, चालीस हजार तो भूल नहीं कर सकते! चालीस हजार अलग-अलग प्रयोग कर रहे हैं, फिर वह सब सोचा जा रहा है, पकड़ा जा रहा है।

इसलिए इस मुल्क ने कुछ बहुत बीज चीजें खोज लीं, जो दूसरे मुल्क नहीं खोज पाए, क्योंकि वहां साधक सदा अकेला था। साधक इतने बड़े पैमाने पर कहीं भी नहीं था। जैसे आज पश्चिम बड़े पैमाने पर विज्ञान की खोज में लगा है, हजारों वैज्ञानिक लगे हैं; इस भांति इस मुल्क ने कभी अपने हजारों प्रतिभाशाली लोग एक ही विज्ञान पर लगा दिए थे। तो वहां से वे जो लाए हैं, वह बड़ा सार्थक तो है।

और फिर कभी उसकी खबरें जाते-जाते यात्रा में, दूसरे मुल्कों तक पहुंचते-पहुंचते बहुत बदल गईं--बहुत बदल गईं, बहुत टूट-फूट गईं।

क्रास का स्वस्तिक और ओम से संबंध

अब जैसे कि जीसस का क्रास है, वह स्वस्तिक का बचा हुआ हिस्सा है। लेकिन इतनी यात्रा करते-करते वह इतना टूट गया है। स्वस्तिक बहुत वक्त से ओम जैसा एक प्रतीक था। ओम सातवें का प्रतीक था, स्वस्तिक प्रथम का प्रतीक है। इसलिए स्वस्तिक का जो चित्र है, वह डाइनेमिक है, मूव कर रहा है। इसलिए उसकी शाखा आगे फैल जाती है और मूवमेंट का ख्याल देती है--घूम रहा है वह। संसार का मतलब होता है जो घूम रहा है, जो पूरे वक्त घूम रहा है।

तो स्वस्तिक हमने प्रथम का प्रतीक बना लिया था और ओम अंतिम का प्रतीक था। इसलिए ओम में मूवमेंट बिल्कुल नहीं है; वह बिल्कुल थिर है--डेड साइलेंट, और सब रुक गया है वहां, वहां कोई मूवमेंट नहीं है। उस चित्र में कोई मूवमेंट नहीं है। स्वस्तिक में मूवमेंट है। वह पहला और वह अंतिम है। स्वस्तिक यात्रा करते-करते कटकर क्रास रह गया, क्रिश्चिएनिटी तक पहुंचते-पहुंचते। वह जब जीसस के वक्त में... क्योंकि जीसस की बहुत संभावना है कि वे इजिप्त भी आए और भारत भी आए; वे नालंदा में भी थे और वे इजिप्त में भी थे; और वे बहुत सी खबरें ले गए; उन खबरों में स्वस्तिक भी एक खबर थी। लेकिन वह खबर वैसी ही हुई सिद्ध जैसा कि वह आदमी जो बहुत फूलों को देखकर गया, और उस जगह जाकर उसने खबर दी जहां एक ही फूल होता था। वह कट गई खबर, वह क्रास रह गया।

ओम (ओम्) से उदभूत इस्लाम का अर्धचंद्र

ओम का जो ऊपर का हिस्सा है वह इस्लाम तक पहुंच गया। वह चांद का जो आधा टुकड़ा वे बहुत आदर कर रहे हैं, वह ओम का टूटा हुआ हिस्सा है--ऊपर का हिस्सा है; वह यात्रा करते में कट गया। शब्द और प्रतीक यात्रा करते में बुरी तरह कटते हैं, और हजारों साल बाद वे इस तरह घिसपिस जाते हैं कि अलग मालूम होने लगते हैं। फिर पहचानना ही मुश्किल हो जाता है कि यह वही शब्द है। पकड़ना ही मुश्किल हो जाता है कि यह वही शब्द कैसे हो सकता है! यात्रा में नई ध्वनियां जुड़ती हैं, नये शब्द जुड़ते हैं, नये लोग नई जबान से उसका उपयोग करते हैं--सब तरह का अंतर होता जाता है। और फिर मूल स्रोत से अगर विच्छिन्न हो जाएं, तो फिर कुछ तय करने की जगह नहीं रह जाती कि वह ठीक क्या था--कहां से आया? क्या हुआ?

सारी दुनिया के आध्यात्मिक प्रवाह गहरे में इस मुल्क से संबंधित हैं, क्योंकि उनका मौलिक मूल स्रोत इसी मुल्क से पैदा हुआ, और सारी खबरें इस मुल्क से फैलनी शुरू हुईं। लेकिन खबरें ले जानेवाले आदमी के पास दूसरी भाषा थी। जिनको उसने खबर दी जाकर, उनको कुछ भी पता नहीं था कि वह क्या खबर दे रहा है। अब किसी ईसाई को, पादरी को यह ख्याल नहीं हो सकता कि वह गले में जो लटकाए हुए है, वह स्वस्तिक का टूटा हुआ हिस्सा है; वह क्रास बन गया। किसी मुसलमान को ख्याल नहीं हो सकता कि वह उस चांद को, वह जो अर्धचंद्र को इतना आदर दे रहा है, वह ओम का आधा हिस्सा है, ओम का टूटा हुआ हिस्सा है।

अब फिर कल बात करेंगे।

सोलहवां प्रवचन

ओम् साध्य है, साधन नहीं

प्रश्नः कल सातवें शरीर के संदर्भ में ओम पर कुछ आपने बातें कीं। इसी संबंध में एक छोटा सा प्रश्न यह है कि अ, ऊ और म के कंपन किन चक्रों को प्रभावित करते हैं और उनका साधक के लिए उपयोग क्या हो सकता है? इन चक्रों के प्रभाव से सातवें चक्र का क्या संबंध है?

ओम के संबंध में थोड़ी सी बातें कल मैंने आपसे कहीं। उस संबंध में थोड़ी सी और बातें जानने जैसी हैं। एक तो यह कि ओम सातवीं अवस्था का प्रतीक है, सूचक है; वह उसकी खबर देनेवाला है। ओम प्रतीक है सातवीं अवस्था का। सातवीं अवस्था किसी भी शब्द से नहीं कही जा सकती। कोई सार्थक शब्द उस संबंध में उपयोग नहीं किया जा सकता। इसलिए एक निरर्थक शब्द खोजा गया, जिसमें कोई अर्थ नहीं है। यह मैंने कल आपसे कहा। इस शब्द की खोज भी चौथे शरीर के अनुभव पर हुई है। यह शब्द भी साधारण खोज नहीं है।

असल में, जब चित्त सब भांति शून्य हो जाता है--कोई विचार नहीं होते, कोई शब्द नहीं होते--तब भी शून्य की ध्वनि शेष होती है। शून्य भी बोलता है; शून्य का भी अपना सन्नाटा है। अगर कभी बिल्कुल सूनी जगह में आप खड़े हो गए हों--जहां कोई आवाज नहीं, कोई ध्वनि नहीं--तो वहां शून्य की भी एक ध्वनि है; वहां शून्य का भी एक सन्नाटा है। उस सन्नाटे में, जो मूल ध्वनियां हैं, वे ही केवल शेष रह जाती हैं। अ, ऊ, म--ए, यू, एम मूल ध्वनियां हैं। हमारा सारा ध्वनि का विस्तार उन तीन ध्वनियों के ही नये-नये संबंधों और जोड़ों से हुआ है। जब सारे शब्द खो जाते हैं, तब ध्वनि शेष रह जाती है।

ओम के जप से स्वप्न लोक में खोने की संभावना

तो ओम शब्द तो प्रतीक है सातवीं अवस्था का, सातवें शरीर का, लेकिन ओम शब्द को पकड़ा गया है चौथे शरीर में। चौथे शरीर की, मनस शरीर की शून्यता में--शून्यता में जो ध्वनि होती है, शून्य की जो ध्वनि है, वहां ओम पकड़ा गया है। तो इस ओम का यदि साधक प्रयोग करे, तो दो परिणाम हो सकते हैं। जैसा कि आपको याद होगा, मैंने कहा कि चौथे शरीर की दो संभावनाएं हैं, सभी शरीरों की दो संभावनाएं हैं। यदि साधक ओम का ऐसा प्रयोग करे कि उस ओम के द्वारा तंद्रा पैदा हो जाए, निद्रा पैदा हो जाए--किसी भी शब्द की पुनरुक्ति से पैदा हो जाती है; किसी भी शब्द को अगर बार-बार दोहराया जाए, तो उसका एक सा संघात, एक सी चोट, लयबद्ध, जैसे कि सिर पर कोई ताली थपक रहा हो, ऐसा ही परिणाम करती है और तंद्रा पैदा कर देती है।

तो चौथे मनस शरीर की जो पहली प्राकृतिक स्थिति है--कल्पना, स्वप्न। अगर ओम का इस भांति प्रयोग किया जाए कि उससे तंद्रा आ जाए तो आप एक स्वप्न में खो जाएंगे। वह स्वप्न सम्मोहन तंद्रा जैसा होगा, हिप्नोटिक स्लीप जैसा होगा। उस स्वप्न में जो भी आप देखना चाहें, देख सकेंगे। भगवान के दर्शन कर सकते हैं, स्वर्ग-नरकों की यात्रा कर सकते हैं। लेकिन होगा वह सब स्वप्न; सत्य उसमें कुछ भी नहीं होगा। आनंद का अनुभव कर सकते हैं, शांति का अनुभव कर सकते हैं। लेकिन होगी सब कल्पना; यथार्थ कुछ भी नहीं होगा।

तो एक तो ओम का इस तरह का प्रयोग है जो अधिकतर चलता है। यह सरल बात है; इसमें बहुत कठिनाई नहीं है। ओम की ध्वनि को जोर से पैदा करके उसमें लीन हो जाना बहुत ही सरल है; उसकी लीनता

बड़ी रसपूर्ण है। जैसे सुखद स्वप्न होता है, ऐसी रसपूर्ण है; मनचाहा स्वप्न, ऐसी रसपूर्ण है। और मनस शरीर के दो ही रूप हैं--कल्पना का, स्वप्न का; और दूसरा रूप है संकल्प का और दिव्य-दृष्टि का, वि.जन का।

तो अगर ओम का सिर्फ पुनरुक्ति से व्यवहार किया जाए मन के ऊपर, तो उसके संघात से तंद्रा पैदा होती है। जिसे योग-तंद्रा कहते हैं, वह ओम के संघात से पैदा हो जाती है। लेकिन यदि ओम का उच्चारण किया जाए, और पीछे साक्षी को भी कायम रखा जाए--दोहरे काम किए जाएंः ओम की ध्वनि पैदा की जाए और पीछे जागकर इस ध्वनि को सुना भी जाए--इसमें लीन न हुआ जाए, इसमें डूबा न जाए--यह ध्वनि एक तल पर चलती रहे और हम दूसरे तल पर खड़े होकर इसको सुननेवाले, साक्षी, द्रष्टा, श्रोता हो जाएं; लीन न हों, बल्कि जाग जाएं इस ध्वनि में; तो चौथे शरीर की दूसरी संभावना पर काम शुरू हो जाता है। तब स्वप्न में नहीं जाएंगे आप, योग-तंद्रा में नहीं जाएंगे, योग-जागृति में चले जाएंगे।

मैं निरंतर कोशिश करता हूं कि आपको शब्द के प्रयोग न करने को कहूं; निरंतर कहता हूं कि किसी मंत्र, किसी शब्द का आप उपयोग न करें; क्योंकि सौ में निन्यानबे मौके आपके तंद्रा में चले जाने के हैं। उसके कारण हैं। हमारा वह जो चौथा शरीर है, निद्रा का आदी है; वह सोना ही जानता है। वह जो हमारा चौथा शरीर है, ड्रीम ट्रैक उसका बना ही हुआ है। वह रोज सपने देखता ही है। तो ऐसे ही, जैसे इस कमरे में हम पानी को बहा दें, फिर पानी सूख जाए, पानी चला जाए, सूखी रेखा रह जाए। फिर हम दूसरा पानी ढालें, तो वह पुरानी रेखा को पकड़कर ही बह जाएगा।

ओम और "मैं कौन हूं" में मौलिक भिन्नता

तो शब्द, मंत्र के उपयोग से बहुत संभावना यही है कि आपका वह जो स्वप्न देखने का आदी मन है, वह अपनी यांत्रिक प्रक्रिया से तत्काल स्वप्न में चला जाएगा। लेकिन यदि साक्षी को जगाया जा सके और पीछे तुम खड़े होकर देखते भी रहो कि यह ओम की ध्वनि हो रही है--इसमें लीन न होओ, इसमें डूबो मत--तो ओम से भी वही काम हो जाएगा जो मैं "मैं कौन हूं" के प्रयोग से तुम्हें करने को कह रहा हूं। और अगर "मैं कौन हूं" को भी तुम निद्रा की भांति पूछने लगो और पीछे साक्षी न रह जाओ, तो जो भूल ओम से स्वप्न पैदा होने की होती है, वह "मैं कौन हूं" से भी पैदा हो जाएगी।

लेकिन "मैं कौन हूं" से पैदा होने की संभावना थोड़ी कम है ओम की बजाय। उसका कारण है कि ओम में कोई प्रश्न नहीं है, सिर्फ थपकी है; "मैं कौन हूं" में प्रश्न है, सिर्फ थपकी नहीं है। और "मैं कौन हूं" के पीछे क्वेश्चन मार्क खड़ा है जो आपको जगाए रखेगा।

यह बड़े मजे की बात है कि अगर चित्त में प्रश्न हो तो सोना मुश्किल हो जाता है। अगर दिन में भी आपके चित्त में कोई बहुत गहरा प्रश्न घूम रहा है, तो रात आपकी नींद खराब हो जाएगी--प्रश्न आपको सोने न देगा। वह जो क्वेश्चन मार्क है, अनिद्रा का बड़ा सहयोगी है। अगर चित्त में कोई प्रश्न खड़ा है, चिंता खड़ी है, कोई सवाल खड़ा है, कोई जिज्ञासा खड़ी है, तो नींद मुश्किल हो जाएगी।

"मैं कौन हूं" में एक चोट है

तो मैं ओम की जगह "मैं कौन हूं" के प्रयोग के लिए इसलिए कह रहा हूं कि उसमें मौलिक रूप से एक प्रश्न है। और चूंकि प्रश्न है, इसलिए उत्तर की बहुत गहरी खोज है; और उत्तर के लिए तुम्हें जागा ही रहना होगा। वह

ओम में कोई प्रश्न नहीं है; उसकी चोट नुकीली नहीं है, वह बिल्कुल गोल है। उसमें कहीं चोट नहीं है, उसमें कहीं कोई प्रश्न नहीं है। और उसका निरंतर संघात, उसकी चोट, निद्रा ले आएगी।

फिर "मैं कौन हूं" में संगीत नहीं है। ओम में बहुत संगीत है; वह बहुत संगीतपूर्ण है। और जितना ज्यादा संगीत है उतना स्वप्न में ले जाने में समर्थ है। "मैं कौन हूं" आड़ा-टेढ़ा है, पुरुष शरीर जैसा है। ओम जो है, बहुत सुडौल, स्त्री शरीर जैसा है; उसकी थपकी जल्दी सुला देगी।

शब्दों के भी आकार हैं। शब्दों की भी चोट का भेद है। उनका भी संगीत है। "मैं कौन हूं" में कोई संगीत नहीं है। वह सुलाना जरा मुश्किल है। अगर सोया आदमी भी पड़ा हो, और उसके पास हम बैठकर कहने लगें--"मैं कौन हूं", "मैं कौन हूं", तो सोया हुआ आदमी भी जग सकता है। लेकिन सोए हुए आदमी के पास अगर हम बैठकर ओम्, और ओम्, और ओम की बात दोहराने लगें, तो उसकी नींद और गहरी हो जाएगी।

संघात के फर्क हैं। लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि ओम से नहीं किया जा सकता। संभावना तो है ही। अगर कोई ओम के पीछे जागकर खड़ा हो सके तो उससे भी यही काम हो जाएगा।

ओम्ः शब्द और निःशब्द का सीमांत

लेकिन मैं ओम को साधना के बतौर प्रयोग नहीं करवाना चाहता। उसके और भी बहुत कारण हैं। क्योंकि ओम की अगर साधना करेंगे तो चौथे शरीर से ओम का अनिवार्य एसोसिएशन हो जाएगा। ओम प्रतीक तो है सातवें शरीर का, लेकिन उसका अनुभव होता है चौथे शरीर में--ध्वनि का। अगर एक बार ओम से साधना शुरू की तो ओम और चौथे शरीर में एक एसोसिएशन, अनिवार्य संबंध हो जाएगा; और वह रोकनेवाला सिद्ध होगा; वह आगे ले जाने में बाधा डाल सकता है।

तो इस शब्द के साथ कठिनाई है। इसकी प्रतीति तो होती है चौथे शरीर में, लेकिन इसको प्रयोग किया गया है सातवें शरीर के लिए। और सातवें शरीर के लिए कोई शब्द नहीं है हमारे पास। और हम जहां तक शब्दों का अनुभव करते हैं--चौथे शरीर के बाद फिर शब्दों का अनुभव बंद हो जाता है--तो चौथे शरीर का जो आखिरी शब्द है, उसको हम अंतिम अवस्था के लिए प्रयोग कर रहे हैं। और कोई उपाय भी नहीं है। क्योंकि पांचवां शरीर फिर निःशब्द है; छठवां बिल्कुल निःशब्द है; सातवां तो बिल्कुल ही शून्य है। चौथे शरीर की जो आखिरी शब्द की सीमा है, जहां से हम शब्दों को छोड़ेंगे, वहां आखिरी क्षण में, सीमांत पर ओम सुनाई पड़ता है।

तो भाषा की दुनिया का वह आखिरी शब्द है, और अभाषा की दुनिया का वह पहला; वह दोनों की बाउंड्री पर है। है तो वह चौथे शरीर का, लेकिन हमारे पास उससे ज्यादा सातवें शरीर के कोई निकट शब्द नहीं है। फिर और शब्द और दूर पड़ जाते हैं। इसलिए उसको सातवें के लिए प्रयोग किया है।

तो मैं पसंद करता हूं कि उसको चौथे के साथ बांधें न। वह अनुभव तो चौथे में होगा, लेकिन उसको सिंबल सातवें का ही रहने देना उचित है। इसलिए उसका साधना के लिए उपयोग करने की जरूरत नहीं। उसके लिए किसी ऐसी चीज का उपयोग करना चाहिए जो चौथे पर ही छूट भी जाए। जैसे, "मैं कौन हूं?" यह चौथे में प्रयोग भी होगा, छूट भी जाएगा।

ओम साध्य है, साधन नहीं

और ओम का सिंबालिक अर्थ ही रहना चाहिए। साधन की तरह उसका उपयोग और भी एक कारण से उचित नहीं है। क्योंकि जिसे हम अंतिम का प्रतीक बना रहे हैं, उसे हमें अपना साधन नहीं बनाना चाहिए;

जिसको हम परम, एब्सोल्यूट का प्रतीक बना रहे हैं, उसका साधन नहीं बनाना चाहिए; वह साध्य ही रहना चाहिए। ओम वह है जिसे हमें पाना है! इसलिए ओम को किसी भी तरह के मीन्स की तरह, साधन की तरह प्रयोग करने के मैं पक्ष में नहीं हूं।

और उसका प्रयोग हुआ है, उससे बहुत नुकसान हुए हैं। उसका प्रयोग करनेवाला साधक बहुत बार चौथे शरीर को सातवां समझ बैठा; क्योंकि ओम सातवें का प्रतीक था और चौथे में अनुभव होता है। और जब चौथे में अनुभव होता है तो साधक को लगता है कि ठीक है, अब हम ओम को उपलब्ध हो गए; अब और यात्रा न रही, अब यात्रा खत्म हो गई। इसलिए साइकिक बॉडी पर बड़ा नुकसान होता है; वह वहीं रुक जाता है। बहुत से साधक हैं, जो वि.जन्स को, दृश्यों को, रंगों को, ध्वनियों को, नाद को, इसको उपलब्धि मान लेते हैं। स्वभावतः, क्योंकि जिसको अंतिम प्रतीक कहा है, वह इस सीमा-रेखा पर पता चलने लगता है। फिर हमें लगता है, आ गई सीमा।

इसलिए भी मैं चौथे शरीर में इसके प्रयोग के पक्ष में नहीं हूं। और इसका अगर प्रयोग करेंगे तो पहले, दूसरे, तीसरे शरीर पर इसका कोई परिणाम नहीं होगा; इसका परिणाम चौथे शरीर पर होगा। इसलिए पहले, दूसरे, तीसरे शरीर के लिए दूसरे शब्द खोजे गए हैं, जो उन चोट कर सकते हैं।

जगत और ब्रह्म के बीच ओम का अनाहत नाद

ये जो मूल ध्वनियां हैं--अ, ऊ और म की, इस संबंध में एक बात और ख्याल में ले लेनी उचित है। जैसे बाइबिल है, बाइबिल यह नहीं कहती कि परमात्मा ने जगत बनाया; बनाने का कोई काम किया, ऐसा नहीं कहती। कहती ऐसा है कि परमात्मा ने कहा--प्रकाश हो! और प्रकाश हो गया। बनाने का कोई काम नहीं किया, बोलने का कोई काम किया। जैसे बाइबिल कहती है कि सबसे पहले शब्द था--दि वर्ड। सबसे पहले शब्द था, फिर सब हुआ। पुराने और बहुत से शास्त्र इस बात की खबर देते हैं कि सबसे पहले शब्द था। जैसे कि भारत में कहते हैंः शब्द ब्रह्म है। हालांकि इससे बड़ी भ्रांति होती है; इससे कई लोग समझ लेते हैं कि शब्द से ही ब्रह्म मिल जाएगा। ब्रह्म तो मिलेगा निःशब्द से, लेकिन "शब्द ब्रह्म है" इसका मतलब केवल इतना ही है कि हम अपने अनुभव में जितनी ध्वनियों को जानते हैं, उसमें सबसे सूक्ष्मतम ध्वनि शब्द की है।

अगर हम जगत को पीछे लौटाएं, पीछे लौटाएं, पीछे लौट जाएं, तो अंततः जब हम शून्य की कल्पना करें, जहां से जगत शुरू हुआ होगा, तो वहां भी ओम की ध्वनि हो रही होगी--उस शून्य में। क्योंकि जब हम चौथे शरीर पर शून्य के करीब पहुंचते हैं तो ओम की ध्वनि सुनाई पड़ती है, और वहां से हम डूबने लगते हैं उस दुनिया में जहां कि प्रारंभ में दुनिया रही होगी। चौथे के बाद हम जाते हैं आत्म शरीर में, आत्म शरीर के बाद जाते हैं ब्रह्म शरीर में, ब्रह्म शरीर के बाद जाते हैं निर्वाण शरीर में, और आखिरी ध्वनि जो उन दोनों के बीच में है, वह ओम की है।

इस तरफ हमारा व्यक्तित्व है चार शरीरों वाला, जिसको हम कह सकते हैं--जगत; और उस तरफ हमारा अव्यक्तित्व है, जिसको हम कह सकते हैं--ब्रह्म। ब्रह्म और जगत के बीच में जो ध्वनि सीमा-रेखा पर गूंजती है, वह ओम की है। इस अनुभव से यह ख्याल में आना शुरू हुआ कि जब जगत बना होगा, तो उस ब्रह्म के शून्य से इस पदार्थ के साकार तक आने में बीच में ओम की ध्वनि गूंजती रही होगी। और इसलिए "शब्द था", "वर्ड था", "उस शब्द से ही सब हुआ", यह ख्याल है। और इस शब्द को अगर हम उसके मूल तत्वों में तोड़ दें तो वह ए, यू, एम पर रह जाता है; बस तीन ध्वनियां मौलिक रह जाती हैं। उन तीनों का जोड़ ओम है। तो इसलिए ऐसा कहा

जा सकता हैः ओम ही पहले था, ओम ही अंत में होगा। क्योंकि अंत जो है वह पहले में ही वापस लौट जाना है; वह जो अंत है वह सदा पहले में वापस लौट जाना है--सर्किल पूरा होता है।

लेकिन फिर भी मेरा यह निरंतर ख्याल रहा है कि ओम को प्रतीक की तरह ही प्रयोग करना है, साधन की तरह नहीं। साधन के लिए और चीजें खोजी जा सकती हैं। ओम जैसे पवित्रतम शब्द को साधन की तरह उपयोग करके अपवित्र नहीं करना है। इसलिए मुझे समझने में कई लोगों को भूल हो जाती है। मेरे पास कितने लोग आते हैं, वे कहते हैं, आप ओम्... अगर हम ओम जपते हैं तो आप मना क्यों करते हैं? शायद उन्हें लगे कि मैं ओम का दुश्मन हूं। लेकिन मैं जानता हूं कि वे ही दुश्मन हैं; क्योंकि इतने पवित्रतम शब्द का साधन की तरह उपयोग नहीं होना चाहिए।

असल में, यह हमारी जीभ से बोलने योग्य नहीं। असल में, यह हमारे शरीर से उच्चारण योग्य नहीं। यह तो उस जगह शुरू होता है जहां जीभ अर्थ खो देती है, शरीर व्यर्थ हो जाता है; वहां इसकी गूंज है। और वह गूंज हम नहीं करते, वह गूंज होती है; वह जानी जाती है, वह की नहीं जाती।

इसलिए ओम को जानना ही है, करना नहीं है।

ओम की साधना से उसकी अनुभूति में बाधा

और भी एक खतरा है कि अगर आपने ओम का प्रयोग किया, तो जो उसका मूल उच्चार है, जो अस्तित्व से होता है, उसका आपको कभी पता नहीं चल पाएगा कि वह कैसा है; आपका अपना उच्चारण उस पर आरोपित हो जाएगा। तो उसकी शुद्धतम जो अनुभूति है, वह आपको नहीं हो सकेगी। तो जो लोग भी ओम शब्द का साधना में प्रयोग करते हैं, उनको वस्तुतः ओम का कभी अनुभव नहीं हो पाता। क्योंकि वे जो प्रयोग कर रहे हैं, उसका ही अभ्यास होने से, जब वह मूल ध्वनि आनी शुरू होती है, तो उनको अपनी ही ध्वनि सुनाई पड़ती है। वे ओम को नहीं सुन पाते; शून्य का सीधा गुंजन उनके ऊपर नहीं हो पाता, अपना ही शब्द वे तत्काल पकड़ लेते हैं। स्वभावतः, क्योंकि जिससे हम परिचित हैं, वह आरोपित हो जाता है।

इसलिए मैं कहता हूं, ओम से परिचित न होना ही अच्छा, उसका उपयोग न करना ही अच्छा। वह किसी दिन प्रकट होगा; चौथे शरीर पर प्रकट होगा। और तब वह कई अर्थ रखेगा। एक तो यह अर्थ रखेगा कि चौथे शरीर की सीमा आ गई; और अब आप मनस के बाहर जाते हैं, शब्द के बाहर जाते हैं। आखिरी शब्द आ गया; जहां से शब्द शुरू हुए थे, वहीं आप खड़े हो गए; जहां पूरा जगत सृष्टि के पहले क्षण में खड़ा होगा, वहां आप खड़े हो गए हैं; उस सीमांत पर खड़े हैं। और फिर जब उसकी अपनी मूल ध्वनि पैदा होती है तो उसका रस ही और है। उसको कुछ कहने का उपाय नहीं। हमारा श्रेष्ठतम संगीत भी उसकी दूरतम ध्वनि नहीं है। हम कितने ही उपाय करें, उस शून्य के संगीत को हम कभी भी न सुन पाएंगे; वह म्यूजिक ऑफ साइलेंस को हम कभी भी न सुन पाएंगे। और इसलिए अच्छा हो कि हम उसको कुछ मानकर न चलें, कोई रूप-रंग देकर न चलें। नहीं तो वही रूप-रंग उसमें अंततः पकड़ जाएगा, और वह हमें बाधा दे सकता है।

स्त्री-पुरुष शरीरों के मौलिक भेद

प्रश्नः चौथे शरीर तक स्त्री और पुरुष का विद्युतीय भेद रहता है। अतः चौथे शरीर वाले स्त्री कंडक्टर या पुरुष कंडक्टर द्वारा महिला साधक को और पुरुष साधक को होनेवाले शक्तिपात का प्रभाव क्या भिन्न-भिन्न होता है? और क्यों?

इसमें भी बहुत सी बातें समझनी पड़ेंगी। जैसा मैंने कहा, चौथे शरीर तक स्त्री और पुरुष का भेद है, चौथे शरीर के बाद कोई भेद नहीं है। पांचवां शरीर लिंग-भेद के बाहर है। लेकिन चौथे शरीर तक बहुत बुनियादी भेद है। और वह बुनियादी भेद बहुत तरह के परिणाम लाएगा। तो पहले पुरुष शरीर को हम समझें, फिर स्त्री शरीर को हम समझें।

पुरुष शरीर का पहला शरीर पुरुष है, दूसरा शरीर स्त्रैण है; तीसरा शरीर फिर पुरुष है, चौथा शरीर फिर स्त्रैण है। इससे उलटा स्त्री का हैः उसका पहला शरीर स्त्री का, दूसरा पुरुष का, तीसरा स्त्री का, चौथा पुरुष का। इसकी वजह से बड़े मौलिक भेद पड़ते हैं। और जिन्होंने मनुष्य-जाति के पूरे इतिहास और धर्मों को बड़ी गहराई से प्रभावित किया, और मनुष्य की पूरी संस्कृति को एक तरह की व्यवस्था दी।

अर्धनारीश्वर का वैज्ञानिक रहस्य

पुरुष शरीर की कुछ खूबियां हैं; स्त्री शरीर की कुछ खूबियां और विशेषताएं हैं। और वे दोनों खूबियां और विशेषताएं एक-दूसरे की कांप्लीमेंटरी, परिपूरक हैं। असल में, स्त्री शरीर भी अधूरा शरीर है और पुरुष शरीर भी अधूरा शरीर है; इसलिए सृजन के क्रम में उन दोनों को संयुक्त होना पड़ता है। यह संयुक्त होना दो प्रकार का है। अ नाम के पुरुष का शरीर अगर ब नाम की स्त्री से बाहर से संयुक्त हो, तो प्रकृति का सृजन होता है। अ नाम के पुरुष का शरीर अपने ही पीछे छिपे ब नाम के स्त्री शरीर से संयुक्त हो, तो ब्रह्म की तरफ का जन्म शुरू होता है। वह परमात्मा की तरफ यात्रा शुरू होती है, यह प्रकृति की तरफ यात्रा शुरू होती है। दोनों ही स्थितियों में संभोग घटित होता है।

पुरुष का शरीर बाहर की स्त्री से संबंधित हो तो भी संभोग घटित होता है, और पुरुष का अपना ही शरीर अपने ही पीछे छिपे स्त्री शरीर से संयुक्त हो तो भी संभोग घटित होता है। पहले संभोग में ऊर्जा बाहर विकीर्ण होती है, दूसरे संभोग में ऊर्जा भीतर की तरफ प्रवेश करना शुरू कर देती है। जिसको वीर्य का ऊर्ध्वगमन कहा है, उसका यात्रा-पथ यही है--भीतर की स्त्री से संबंधित होना, और भीतर की स्त्री से संबंधित होना।

जो ऊर्जा है, वह सदा पुरुष से स्त्री की तरफ बहती है--चाहे वह बाहर की तरफ बहे और चाहे वह भीतर की तरफ बहे। अगर पुरुष के भौतिक शरीर की ऊर्जा भीतर के ईथरिक स्त्री शरीर के प्रति बहे, तो फिर ऊर्जा बाहर विकीर्ण नहीं होती--ब्रह्मचर्य की साधना का यही अर्थ है--तब वह निरंतर ऊपर चढ़ती जाती है। चौथे शरीर तक उस ऊर्जा की यात्रा हो सकती है। चौथे शरीर पर ब्रह्मचर्य पूरा हो जाता है। चौथे शरीर के बाद ब्रह्मचर्य का कोई अर्थ नहीं है। चौथे शरीर के बाद ब्रह्मचर्य जैसी कोई चीज नहीं है; क्योंकि चौथे शरीर के बाद स्त्री और पुरुष जैसी कोई चीज नहीं है। इसलिए चौथे शरीर को पार करने के बाद साधक न पुरुष है और न स्त्री है।

अब यह जो एक नंबर का शरीर और दो नंबर का शरीर है, इसी को ध्यान में रखकर अर्धनारीश्वर की कल्पना कभी हम ने चित्रित की थी। बाकी वह प्रतीक बनकर रह गई और हम उसे कभी समझ नहीं पाए। शंकर अधूरे हैं, पार्वती अधूरी है--वे दोनों मिलकर एक हैं। और तब हमने उन दोनों का आधा-आधा चित्र भी बनाया--अर्धनारीश्वर का--कि आधा अंग पुरुष का है, आधा स्त्री का है। यह जो आधा दूसरा अंग है, यह बाहर प्रकट नहीं है, यह प्रत्येक के भीतर छिपा है। तुम्हारा एक पहलू पुरुष का है, तुम्हारा दूसरा पहलू स्त्री का है।

इसलिए एक बहुत मजेदार घटना घटती हैः कितना ही दबंग पुरुष हो, कितना ही बलशाली पुरुष हो--जो बाहर की दुनिया में बड़ा प्रभावी हो--सिकंदर हो चाहे, और चाहे नेपोलियन हो, और चाहे हिटलर हो, वह दिन भर दफ्तर में, दुकान में, बाजार में, पद पर, पुरुष की अकड़ से जीता है। लेकिन एक साधारण सी स्त्री घर में बैठी है, उसके सामने जाकर उसकी अकड़ खत्म हो जाती है! यह अजीब सी बात है। वह नेपोलियन की भी हो जाती है। वह क्या कारण है?

असल में, जब वह बारह घंटे, दस घंटे पुरुष का उपयोग कर लेता है, तो उसका पहला शरीर थक जाता है। घर लौटते-लौटते वह पहला शरीर विश्राम चाहता है। भीतर का स्त्री शरीर प्रमुख हो जाता है, पुरुष शरीर गौण हो जाता है। स्त्री दिन भर स्त्री रहते-रहते उसका पहला शरीर थक जाता है, उसका दूसरा शरीर प्रमुख हो जाता है। और इसलिए स्त्री पुरुष का व्यवहार करने लगती है और पुरुष स्त्री का व्यवहार करने लगता है--रिवर्सन हो जाता है।

एक तो यह ख्याल में ले लेना कि ऊर्जा का आंतरिक प्रवाह का, ऊर्ध्वगमन का यह पथ है--कि भीतर की स्त्री से संभोग। अब उसके सारे के सारे अलग मार्ग हैं। उसकी तो कोई अभी बात नहीं करनी है।

दूसरी बात, सदा ही शक्ति पुरुष शरीर से स्त्री शरीर की तरफ बहती है। पुरुष शरीर के जो विशेष गुण हैं, वह पहला गुण यह है कि वह ग्राहक नहीं है, रिसेप्टिव नहीं है; आक्रामक है; दे सकता है, ले नहीं सकता। स्त्री की तरफ से कोई प्रवाह पुरुष की तरफ नहीं बह सकता। सब प्रवाह पुरुष से स्त्री की तरफ ही बहते हैं। स्त्री ग्राहक है, रिसेप्टिव है; दाता नहीं है; दे नहीं सकती, ले सकती है।

स्त्री की शक्तिपात देने में कठिनाई, लेने में सरलता

इसके दो परिणाम होते हैं, और दोनों परिणाम समझने जैसे हैं। पहला परिणाम तो यह होता है कि चूंकि स्त्री ग्राहक है, इसलिए कभी भी शक्तिपात देनेवाली नहीं हो सकती; उसके द्वारा शक्तिपात नहीं हो सकता। यही कारण है कि स्त्री शिक्षक जगत में बड़ी तादाद में पैदा नहीं हो सके; बुद्ध या महावीर या कृष्ण के मुकाबले स्त्री गुरु पैदा नहीं हो सके। उसका कारण यह है कि उसके माध्यम से किसी को कोई शक्ति मिल नहीं सकती। हां, स्त्रियां बहुत बड़े पैमाने पर महावीर, बुद्ध और कृष्ण के आसपास इकट्ठी हुईं। लेकिन ऐसी कृष्ण की हैसियत की एक स्त्री पैदा नहीं हो सकी जिसके आसपास लाखों पुरुष इकट्ठे हो जाएं। उसके कारण हैं। उसके कारण इसी बात में निहित हैंः स्त्री ग्राहक हो पाती है।

पुरुष हैं धर्म प्रसारक और स्त्रियां धर्म संग्राहक

और यह भी बड़े मजे की बात हैः कृष्ण जैसा आदमी पैदा हो, तो उसके पास पुरुष कम इकट्ठे होंगे, स्त्रियां ज्यादा इकट्ठी होंगी। महावीर के पास भी वही होगा। महावीर के भिक्षुओं में दस हजार तो पुरुष हैं और चालीस हजार स्त्रियां हैं। यह अनुपात चौगुना है सदा। अगर एक पुरुष इकट्ठा होगा, तो चार स्त्रियां इकट्ठी हो जाएंगी। और स्त्रियां जितनी प्रभावित होंगी महावीर से, उतने पुरुष प्रभावित नहीं होंगे; क्योंकि दोनों पुरुष हैं। महावीर से जो निकल रहा है, स्त्रियां उसे अपशोषित कर जाती हैं। लेकिन पुरुष अपशोषक नहीं है, वह ग्रहण नहीं कर पाता; उसकी ग्रहण करने की क्षमता बहुत कम है। इसलिए पुरुषों ने धर्म को जन्म तो दिया, लेकिन पुरुष धर्म के संग्राहक नहीं हैं। धर्मों को पृथ्वी पर बचाती हैं स्त्रियां, चलाते हैं पुरुष। यह बड़े मजे की बात है! चलाते हैं पुरुष, जन्म देते हैं पुरुष, बचाती हैं स्त्रियां, रक्षा करती हैं स्त्रियां।

स्त्री संग्राहक है। उसके शरीर का संग्रह गुण है, बायोलाजिकल वजह से उसके शरीर में संग्राहक का तत्व है। बच्चे को उसे नौ महीने पेट में रखना है, बच्चे को बड़ा करना है। उसे ग्रहणशील होना चाहिए। पुरुष को ऐसा कुछ भी प्रकृति की तरफ से काम नहीं है। वह एक क्षण में पिता बनकर बाहर हो जाता है, पिता के बाहर हो जाता है; उसका इसके बाद कोई संबंध नहीं है; वह देता है और बाहर हो जाता है। स्त्री लेती है और फिर भीतर रह जाती है, वह बाहर नहीं हो पाती।

यह तत्व शक्तिपात में भी काम करता है। इसलिए शक्तिपात में स्त्री की तरफ से पुरुष को शक्तिपात नहीं मिल सकता। साधारणतः कह रहा हूं, कभी रेयर केसेस हो सकते हैं, उनकी मैं बात करूंगा। कभी ऐसी घटनाएं घट सकती हैं, पर उसके और कारण होंगे।

पुरुष के लिए शक्तिपात देना सरल, लेना कठिन

साधारणतया स्त्री शरीर से शक्तिपात नहीं हो सकता; इसे उसकी कमजोरी कह सकते हैं। लेकिन इसको पूरा करनेवाली कांप्लीमेंटरी उसकी एक ताकत है कि वह शक्तिपात को बहुत तीव्रता से ले लेती है। पुरुष शक्तिपात कर सकता है, लेकिन ग्रहण नहीं कर पाता। तो इसलिए एक पुरुष से दूसरे पुरुष पर भी शक्तिपात बहुत कठिन हो जाता है, बहुत कठिन मामला हो जाता है। क्योंकि वह ग्राहक है ही नहीं उसका व्यक्तित्व, जहां से शुरू होना है, उसका नंबर एक पुरुष खड़ा हुआ है दरवाजे पर जो ग्राहक नहीं है। इसको ग्राहक बनाने के भी उपाय किए गए हैं। ऐसे पंथ रहे हैं, जिनमें पुरुष भी अपने को स्त्री मानकर ही साधना करेंगे। वह पुरुष को ग्राहक बनाने का उपाय किया जा रहा है। मगर फिर भी पुरुष ग्राहक बन नहीं पाता। स्त्री बिना कठिनाई के ग्राहक बन जाती है। है ही वह ग्राहक।

तो शक्तिपात में स्त्री को सदा ही माध्यम की जरूरत होगी; प्रसाद उसको सीधा मिलना बहुत कठिन है--दो तरह से। सीधा प्रसाद उसे इसलिए नहीं मिल सकता... अब इसको समझ लेना ठीक से!

शक्तिपात होता है पहले शरीर से। अगर मैं शक्तिपात करूं तो तुम्हारे नंबर एक के शरीर पर करूंगा। और मेरे नंबर एक से जाएगी बात और तुम्हारे नंबर एक पर चोट करेगी। इसलिए अगर तुम स्त्री हो तो यह शीघ्रता से हो जाएगा, अगर तुम पुरुष हो तो इसमें जद्दोजहद और संघर्ष होगा। इसमें कठिनाई होगी। इसमें किसी तरह तुम्हें बहुत गहरे समर्पण की स्थिति में आना पड़ेगा तो यह हो सकता है, नहीं तो यह नहीं हो सकेगा।

और पुरुष समर्पक नहीं है। वह समर्पण नहीं कर पाता, वह कितनी ही कोशिश करे। अगर वह कहे भी कि मैं समर्पण करता हूं, तो भी उसका यह समर्पण करना आक्रमण जैसा होता है। यानी यह समर्पण की भी घोषणा उसका अहंकार करता है कि अच्छा मैंने किया समर्पण! लेकिन समर्पण... वह मैं जो है, पीछे खड़ा है; वह छूटता नहीं उससे।

स्त्री को समर्पण करना नहीं पड़ता, वह समर्पित है; समर्पण उसका स्वभाव है, उसके पहले शरीर का गुण है; वह रिसेप्टिव है। इसलिए शक्तिपात पुरुष से बहुत आसानी से स्त्री पर हो जाता है; पुरुष से पुरुष पर बहुत मुश्किल है; और स्त्री से पुरुष पर तो बहुत ही मुश्किल है। पुरुष से पुरुष पर मुश्किल है, हो सकता है; अगर कोई बहुत बलशाली पुरुष हो, तो वह दूसरे को करीब-करीब स्त्री की हालत में खड़ा कर सकता है। मुश्किल है, लेकिन हो सकता है। लेकिन स्त्री के द्वारा तो बहुत ही मुश्किल है। क्योंकि वह शक्तिपात करने के क्षण में भी उसकी शक्ति पी जाएगी, अपशोषित कर लेगी; उसका जो पहला शरीर है, वह स्पंज की भांति है, वह चीजों को खींच रहा है।

पुरुष के चौथे शरीर से प्रसाद ग्रहण करना सरल

यह तो शक्तिपात के संबंध में बात हुई; प्रसाद के मामले में भी ऐसी ही हालत है। प्रसाद जो है वह चौथे शरीर से मिलता है। और पुरुष का चौथा शरीर स्त्री का है, इसलिए उसे प्रसाद तो बड़ी सरलता से मिल जाता है। और स्त्री का चौथा शरीर पुरुष का है, वह प्रसाद में भी मुश्किल में पड़ जाती है; उसको ग्रेस सीधी नहीं मिल पाती।

पुरुष का जो चौथा शरीर है, स्त्रैण है। इसलिए मोहम्मद हों, कि मूसा हों, कि जीसस हों, वे तत्काल परमात्मा से सीधे संबंधित हो जाते हैं। उनके पास चौथा शरीर स्त्री का है, जहां से वे रिसीवर हैं। और प्रसाद उनके ऊपर उतरे तो वे उसको पी जाएंगे। स्त्री के पास चौथा शरीर पुरुष का है, वह उस छोर पर पुरुष शरीर खड़ा है उसका; इसलिए वहां से वह कभी रिसीव नहीं कर पाती। इसलिए स्त्री के पास सीधी कोई भी मैसेज नहीं है। यानी एक स्त्री इस तरह का दावा नहीं कर सकी है कि मैंने ब्रह्म को जाना! ऐसा दावा नहीं है उसका। उसके पास चौथे शरीर पर पुरुष खड़ा है जो कि वहां अड़चन डाल देता है; उसको वहां से प्रसाद नहीं मिल सकता।

प्रसाद पुरुष को मिल सकता है; शक्तिपात में उसे बहुत कठिनाई है किसी से लेने में; उसमें वह बाधक है। लेकिन स्त्री के लिए शक्तिपात बहुत सरल है; किसी भी माध्यम से उसे शक्तिपात मिल सकता है। बहुत कमजोर माध्यम से भी स्त्री को शक्तिपात मिल सकता है। इसलिए बड़े साधारण हैसियत के लोगों से भी उसे शक्तिपात मिल सकता है। शक्तिपात देनेवाले पर कम, उसकी अपशोषक शक्ति पर बहुत निर्भर हो जाता है। लेकिन सदा उसे एक माध्यम चाहिए। वह माध्यम के बिना उसकी बड़ी कठिनाई है। बिना माध्यम के उसको कोई घटना नहीं घट सकती।

यह साधारण स्थिति की बात मैंने कही। इसमें विशेष स्थितियां की जा सकती हैं। इसी साधारण स्थिति की वजह से स्त्री साधिकाएं कम हुई हैं। लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि स्त्रियों ने परमात्मा को अनुभव नहीं किया। उन्होंने अनुभव किया। लेकिन वह कभी इमीजिएट नहीं था, उसमें कोई बीच में माध्यम था--थोड़ा ही सही, लेकिन कोई माध्यम था; माध्यम से हुआ उनको।

बुढ़ापे में विपरीत लिंगी व्यक्तित्व का प्रकटीकरण

दूसरी बात, असाधारण स्थितियों में भेद पड़ सकता है। अब जैसे, एक जवान स्त्री पर ज्यादा कठिनाई है प्रसाद की, एक वृद्ध स्त्री पर सरलता थोड़ी बढ़ जाती है। क्योंकि बड़े मजे की बात है कि हम... पूरी जिंदगी में हमारा सेक्स भी फ्लेक्सिबिलिटी में रहता है। हम पूरी जिंदगी, एक ही अनुपात में, एक ही सेक्स के हिस्से नहीं होते--इसमें अंतर होता रहता है पूरे वक्त, अनुपात बदलता रहता है।

इसलिए अक्सर ऐसा होगा कि बूढ़ी होती स्त्री को मूंछ के बाल निकलने लगें या दाढ़ी पर बाल आ जाएं; बूढ़े होते-होते पैंतालीस और पचास साल के बाद उसकी आवाज पुरुषों जैसी होने लगे, स्त्रैण आवाज खो जाए। उसका अनुपात बदल रहा है; उसमें पुरुष तत्व ऊपर आ रहे हैं, स्त्री तत्व पीछे जा रहे हैं। असल में, स्त्री का काम पूरा हो चुका। वह पैंतालीस वर्ष तक बायोलाजिकल एक बाइंडिंग थी, वह खत्म हो गई है। अब वह बाइंडिंग के बाहर हो रही है।

तो बूढ़ी स्त्री पर प्रसाद की संभावना बढ़ सकती है; क्योंकि जैसे ही उसके नंबर एक के शरीर में पुरुष तत्व बढ़ते हैं, उसके नंबर दो के शरीर में स्त्रैण तत्व बढ़ जाते हैं; और नंबर चार के पुरुष शरीर के तत्व कम हो जाते हैं, नंबर तीन में बढ़ जाते हैं। तो बूढ़ी स्त्री पर प्रसाद की संभावना हो सकती है।

अति वृद्ध स्त्री, किसी स्थिति में, किसी जवान स्त्री को माध्यम भी बन सकती है। और भी अति वृद्ध स्त्री, जो कि सौ को पार कर गई हो, जहां कि उसके मन में अब सेक्स का ख्याल ही न रह गया हो कि वह स्त्री है, उससे पुरुष के ऊपर भी शक्तिपात के लिए वह माध्यम बन सकती है। लेकिन यह फर्क पड़ेगा।

पुरुष में भी ऐसे ही फर्क पड़ता है। जैसे-जैसे पुरुष बूढ़ा होता जाता है, उसमें स्त्रैण तत्व बढ़ते चले जाते हैं। बूढ़े पुरुष अक्सर स्त्रियों जैसा व्यवहार करने लगते हैं। उनके व्यक्तित्व की बहुत सी पुरुष जैसी वृत्तियां क्षीण हो जाती हैं और स्त्री जैसी वृत्तियां प्रकट होने लगती हैं।

चौथे शरीर से प्रसाद ग्रहण करने के कारण व्यक्तित्व में स्त्रैणता

इस संबंध में यह भी समझ लेना जरूरी है कि जो लोग भी चौथे शरीर से प्रसाद को ग्रहण करते हैं, उनके व्यक्तित्व में भी स्त्रैणता आ जाती है। जैसे अगर हम बुद्ध या महावीर के शरीर और व्यक्तित्व को देखें, तो वह पुरुष का कम और स्त्री का ज्यादा मालूम होगा। स्त्री की कोमलता, स्त्री की नमनीयता, स्त्री की ग्राहकता उनमें बढ़ जाएगी। आक्रमण उनसे चला जाएगा, इसलिए अहिंसा बढ़ जाएगी, करुणा बढ़ जाएगी, प्रेम बढ़ जाएगा; हिंसा और क्रोध विलीन हो जाएंगे।

नीत्शे ने तो बुद्ध पर यह आरोप ही लगाया है कि बुद्ध और जीसस, ये दोनों फेमिनिन थे, ये दोनों स्त्रैण थे; इनको पुरुषों की गिनती में नहीं गिनना चाहिए, क्योंकि इनमें पुरुष का कोई भी गुण नहीं है, और उन्होंने सारी दुनिया को स्त्रैण बना दिया है। उसकी इस शिकायत में अर्थ है।

यह तुम जानकर हैरान होओगे कि हमने बुद्ध, महावीर, कृष्ण, राम, इनकी किसी की दाढ़ी-मूंछ नहीं बनाई, ये सब दाढ़ी-मूंछ से हीन हैं। ऐसा नहीं कि इनको दाढ़ी-मूंछ न रही हो, लेकिन जब हमने इनके चित्र बनाए, तब तक यह करीब-करीब इनका सारा व्यक्तित्व स्त्रैण-भाव से भर गया था। उसमें दाढ़ी-मूंछ बेहूदी थी, वह हमने अलग कर दी; उसको हमने चित्रित नहीं किया। उसको चित्रित करना उचित नहीं मालूम पड़ा, क्योंकि उनके व्यक्तित्व का सारा ढंग जो था, वह स्त्रैण हो गया था।

रामकृष्ण परमहंस के शरीर का रूपांतरण

रामकृष्ण के साथ ऐसी घटना घटी। रामकृष्ण की हालत तो इतनी अजीब हो गई थी कि जो कि बड़ी, मेडिकल साइंस के लिए एक खोज की बात है। बड़ी अदभुत घटना घटी। पीछे उसको छिपा-छुपो कर बदलने की कोशिश की, क्योंकि उसकी कैसे बात करें! उनके स्तन बढ़ गए और उनको मासिक धर्म शुरू हो गया! यह तो इतनी अजीब घटना थी कि एक मिरेकल था! इतना व्यक्तित्व स्त्रैण हो गया था। वे चलते भी थे तो स्त्रियों जैसे चलने लगे थे; वे बोलते भी थे तो स्त्रियों जैसे बोलने लगे थे।

तो ऐसी विशेष स्थितियों में तो बहुत फर्क पड़ सकता है। जैसे रामकृष्ण की इस हालत में वे शक्तिपात दे नहीं सकते किसी को, उनको लेना पड़ेगा; इस हालत में कोई दे नहीं सकते वे किसी को शक्तिपात। उनका व्यक्तित्व बाहर से स्त्रैण हो गया।

हिंदुस्तान के व्यक्तित्व में स्त्रैणता

बुद्ध और महावीर ने जिस साधना और जिस प्रक्रिया का उपयोग किया, उससे इस मुल्क में उस जमाने में लाखों लोग चौथे शरीर में पहुंच गए। चौथे शरीर में पहुंचते ही उनका व्यक्तित्व स्त्रैण हो गया। स्त्रैण व्यक्तित्व का मतलब यह है कि उनमें जो स्त्रैण गुण हैं, कोमल, वे बढ़ गए; हिंसा-क्रोध खत्म हो गया, आक्रमण विदा हो गया; ममता और प्रेम और करुणा और अहिंसा बढ़ गए। पूरे हिंदुस्तान के व्यक्तित्व के गहरे में स्त्रैणता आ गई। मेरी अपनी जानकारी यही है कि हिंदुस्तान पर बाद के सारे आक्रमणों का कारण वही था। क्योंकि हिंदुस्तान के आसपास के सारे पुरुष हिंदुस्तान के स्त्रैण व्यक्तित्व को दबाने में सफल हो गए।

एक अर्थ में बड़ी कीमती घटना घटी कि चौथे शरीर पर हमने बहुत अदभुत अनुभव किए, लेकिन पहले शरीर की दुनिया में हमको मुश्किल हो गई। मैंने कहा कि सब चीजें कंपनसेट होती हैं। जो लोग चौथे शरीर का धन छोड़ने को राजी थे, उनको पहले शरीर का धन और राज्य और साम्राज्य मिल सका। और जो लोग चौथे शरीर का रस छोड़ने को राजी नहीं थे, उनको यहां से बहुत कुछ छोड़ देना पड़ा।

बुद्ध और महावीर के बाद हिंदुस्तान की आक्रामक वृत्ति खो गई और वह रिसेप्टिव हो गया। तो जो भी आया उसको हम आत्मसात करने की फिक्र में लग गए; उसे अलग करने का भी सवाल नहीं उठा हमारे मन में कि उसको अलग कर दें। और दूसरे पर जाकर हम हमला कर दें और दूसरे को हम जीत लें, वह तो सवाल ही खो गया। स्त्रैण व्यक्तित्व हो गया। भारत जो है एक वूंब बन गया, एक गर्भ बन गया--पूरा का पूरा भारत; और जो भी आया उसको हम आत्मसात करते चले गए। हमने उसको कभी इनकार नहीं किया, हटाने की हमने कोई फिक्र नहीं की। और लड़ भी नहीं सके; क्योंकि लड़ने के लिए जो बात चाहिए थी, वह खो गई थी; श्रेष्ठतम बुद्धि जो थी मुल्क की, उससे वह बात खो गई थी। और जो साधारणजन है, वह श्रेष्ठ के पीछे चलता है; वह बेचारा दबकर खड़ा था। वह यह कह रहा था कि करुणा-अहिंसा की बातें सुन रहा था और उसे लग रही थीं कि ये बातें ठीक हैं। और श्रेष्ठतम आदमी उनमें जी रहा था, वह छोटा साधारण आदमी उनके पीछे खड़ा था। वह लड़ सकता था, लेकिन उसके पास नेता नहीं था जो उसको लड़ा सकता।

आध्यात्मिक मुल्क में स्त्रैण व्यक्तित्व की अधिकता

यह कभी जब दुनिया का इतिहास आध्यात्मिक ढंग से लिखा जाएगा, और जब हम सिर्फ भौतिक घटनाओं को इतिहास नहीं समझेंगे, बल्कि चेतना में घटी घटनाओं को इतिहास समझेंगे--असली इतिहास वही है--तब हम इस बात को समझ पाएंगे कि जब भी कोई मुल्क आध्यात्मिक होगा, तो स्त्रैण हो जाएगा; और जब भी स्त्रैण होगा, तब अपने से बहुत साधारण सभ्यताएं उसको हरा देंगी। अब यह बड़े मजे की बात है कि हिंदुस्तान को जिन लोगों ने हराया, वे हिंदुस्तान से बहुत पिछड़ी हुई सभ्यताएं थीं; एक अर्थ में बिल्कुल ही जंगली और बर्बर सभ्यताएं थीं। चाहे तुर्क हों, चाहे मुगल हों और चाहे मंगोल हों--कोई भी हों; उनके पास कोई सभ्यता ही न थी। लेकिन एक अर्थ में वे पुरुष थे, जंगली पुरुष थे बिल्कुल; और हम रिसेप्टिव हो गए थे; हम उनको आत्मसात ही कर सके, लड़ने का कोई उपाय न था।

तो स्त्री शरीर आत्मसात कर सकता है, माध्यम चाहिए; पुरुष शरीर दे सकता है और सीधे प्रसाद भी ग्रहण कर सकता है। इसी वजह से महावीर जैसे व्यक्ति को तो यह भी कहना पड़ा कि स्त्री को परम उपलब्धि के लिए पहले एक दफे पुरुष शरीर लेना पड़ेगा, पुरुष पर्याय में आना पड़ेगा। और बहुत कारणों में एक कारण यह भी था कि वह सीधा प्रसाद ग्रहण नहीं कर सकती। जरूरी नहीं है कि वह मरकर पुरुष हो। ऐसी प्रक्रियाएं हैं कि

इसी हालत में व्यक्तित्व का रूपांतरण किया जा सकता है--जो तुम्हारा नंबर दो का शरीर है, वह तुम्हारे नंबर एक का शरीर हो सकता है; और जो तुम्हारे नंबर एक का शरीर है, वह तुम्हारे नंबर दो का शरीर हो सकता है। इसके लिए प्रगाढ़ संकल्प की साधनाएं हैं, जिनसे तुम्हारा इसी जीवन में भी शरीर रूपांतरित हो सकता है।

गहन साधना से शारीरिक परिवर्तन

अब जैनों के एक तीर्थंकर के बाबत ऐसी ही मजेदार घटना घट गई है। जैनों के एक तीर्थंकर स्त्री हैं--मल्लीबाई। श्वेतांबर उनको मल्लीबाई ही कहते हैं, लेकिन दिगंबर उनको मल्लीनाथ कहते हैं; वे उनको पुरुष ही मानते हैं। क्योंकि दिगंबर जैनों का ख्याल है कि स्त्री को तो मोक्ष हो नहीं सकता; तो स्त्री तीर्थंकर तो हो ही नहीं सकती। इसलिए वे मल्लीनाथ हैं; वे उनको पुरुष ही मानते हैं। और श्वेतांबर उनको स्त्री ही माने जाते हैं।

अब एक आदमी के बाबत इस तरह का विवाद मनुष्य-जाति के पूरे इतिहास में दूसरी जगह नहीं है। यानी और सब चीजों के बाबत विवाद हो सकता है कि भई, उसकी ऊंचाई पांच फुट छह इंच थी कि पांच इंच थी; कि वह आदमी कब पैदा हुआ। लेकिन इस बाबत में विवाद कि वह स्त्री था कि पुरुष! बड़ा अदभुत विवाद है। और एक वर्ग मानता है कि वह पुरुष था; एक वर्ग मानता है, वह स्त्री था।

मेरी अपनी समझ यह है कि मल्लीबाई ने जब साधना शुरू की होगी तो वे स्त्री ही होंगी। लेकिन ऐसी प्रक्रियाएं हैं जिनसे पुरुष नंबर एक का शरीर बन सकता है। वह बन जाने के बाद ही वे तीर्थंकर हुए। और जो दूसरा वर्ग उनको पुरुष मानता है, वह उनकी अंतिम स्थिति को ही मान रहा है; और जो पहला वर्ग उनको स्त्री मानता है, वह उनकी पहली स्थिति को मान रहा है। दोनों बातें मानी जा सकती हैं, कोई कठिनाई नहीं है। वे स्त्री थे, लेकिन वे पुरुष हो गए होंगे। और महावीर की साधना ऐसी है कि उसमें कोई भी स्त्री गुजरेगी तो पुरुष हो जाएगी। क्योंकि पूरी की पूरी साधना जो है, वह भक्ति की नहीं है; पूरी की पूरी साधना जो है, वह ज्ञान की है; पूरी की पूरी साधना जो है, वह आक्रामक है, एग्रेसिव है--साधना जो है; वह रिसेप्टिव नहीं है साधना।

अगर कोई पुरुष भी मीरा की तरह भजन करे और नाचे, और नाचता रहे वर्षों, और जब रात सोए तो बिस्तर पर कृष्ण की मूर्ति अपनी छाती से लगाकर सोए, और कृष्ण की अपने को सखी माने--अगर यह वर्षों तक चले, तो नाम मात्र को ही वह पुरुष रह जाएगा; आमूल रूपांतरण हो जाएगा। उसकी चेतना में जो नंबर एक शरीर था, वह नंबर दो हो जाएगा; नंबर दो जो था, वह नंबर एक हो जाएगा। अगर यह बहुत गहरा परिवर्तन हो, तो उससे शरीर पर लैंगिक अंतर भी पड़ जाएगा। अगर यह बहुत गहरा न हो, तो शरीर पुराना रहा आएगा, लेकिन मनस पुराना नहीं रह जाएगा; चित्त स्त्रैण हो जाएगा।

तो इन विशेष स्थितियों में तो बात हो सकती है; विशेष स्थिति में यह घटना घट सकती है, इसमें कोई कठिनाई नहीं है। लेकिन सामान्य नियम नहीं यह हो सकता।

स्त्री और पुरुष एक-दूसरे के परिपूरक

पुरुष से शक्तिपात हो सकता है, पुरुष को प्रसाद मिल सकता है; स्त्री को प्रसाद सीधा मिलना मुश्किल है, उसे शक्तिपात से ही प्रसाद का द्वार खुल सकता है। और यह तथ्य की बात है, इसमें कोई मूल्यांकन नहीं है; इसमें कोई आगे-पीछे, नीचा-ऊंचा नहीं है। ऐसा तथ्य है। यह वैसे ही तथ्य है, जैसा कि पुरुष वीर्य की ऊर्जा देगा और स्त्री उसको संगृहीत करेगी। और अगर कोई पूछे कि क्या स्त्री भी वीर्य की ऊर्जा पुरुष को दे सकती है? तो हम कहेंगे कि नहीं, नहीं दे सकती। वह तथ्य नहीं है। इसमें वह नीचे है या ऊपर है, यह सवाल नहीं है।

लेकिन इस वजह से ही वैल्युएशन पैदा हुआ, और स्त्री नीचे मालूम होने लगी लोगों को, क्योंकि वह ग्राहक है; और दाता बड़ा हो गया। सारी दुनिया में स्त्री-पुरुष की जो नीचाई-ऊंचाई की धारणा पैदा हुई, वह इस वजह से पैदा हुई कि पुरुष को लगता है--मैं देनेवाला हूं, और स्त्री को लगता है--मैं लेनेवाली हूं। लेकिन लेनेवाला अनिवार्य रूप से नीचा है, यह किसने कहा? और अगर लेनेवाला न मिले तो देनेवाला क्या अर्थ रखता है? या देनेवाला न मिले तो लेनेवाले का क्या अर्थ है? असल में, ये कांप्लीमेंटरी हैं, ये नीचे-ऊंचे नहीं हैं। असल में, ये एक-दूसरे के परिपूरक हैं; और दोनों परस्परतंत्रता में बंधे हैं, इंडिपेंडेंट नहीं हैं। ये दो इकाइयां नहीं हैं, ये एक ही इकाई के दो पहलू हैं। उसमें एक ग्राहक है और एक दाता है।

लेकिन स्वभावतः, हमारे मन में अगर हम दाता शब्द.का भी प्रयोग करें, तो भी ख्याल आता है कि जो देनेवाला है वह बड़ा होना चाहिए। कोई वजह नहीं है। जो लेनेवाला है वह छोटा होना चाहिए। कोई वजह नहीं है। कोई कारण नहीं है। लेकिन इससे बहुत सी चीजें जुड़ीं और स्त्री का व्यक्तित्व नंबर दो का व्यक्तित्व स्वीकृत हो गया। स्त्री ने भी मान लिया कि उसका नंबर दो का व्यक्तित्व है, पुरुष ने भी मान लिया कि उसका नंबर दो का व्यक्तित्व है।

उन दोनों का ही नंबर एक का व्यक्तित्व है; उसका नंबर एक का स्त्री की तरह है, इसका नंबर एक का पुरुष की तरह है; नंबर दो इसमें कोई भी नहीं है, और दोनों परिपूरक हैं।

सभ्यता स्त्री के कारण पैदा हुई

अब इसके कितने व्यापक, छोटी से छोटी, बड़ी से बड़ी चीज में परिणाम हुए। सारी चीजों में इसके--पूरी संस्कृति और पूरी सभ्यता में यह बात प्रवेश कर गई। इसलिए पुरुष शिकार करने गया, क्योंकि वह आक्रामक था; स्त्री घर में बैठी प्रतीक्षा करती रही। स्वभावतः उसने शिकार किया, वह खेत पर काम करने गया, उसने गेहूं बोया, उसने फसल काटी, वह दुकान करने गया, वह दुनिया में उड़ा, वह चांद तक पहुंचा, वह सब काम करने गया--वह आक्रामक है इसलिए जा सका; स्त्री घर बैठकर प्रतीक्षा करती है। घर में उसने भी बहुत कुछ किया, लेकिन वह आक्रामक नहीं था, वह ग्रहण करनेवाला था। उसने घर बसाया, संग्रह किया, चीजों को जगह पर रखा।

सारी सभ्यता का जो स्थिर तत्व है, वह स्त्री ने बनाया। अगर स्त्री न हो तो पुरुष आवारा ही होगा, घुमक्कड़ ही होगा, घर नहीं बसा सकता। यहां से वहां जाता रहेगा। अभी वह स्त्री एक खूंटी की तरह उस पर काम करती है; वह घूम-घामकर उस खूंटी पर वापस लौटना पड़ता है उसे। अन्यथा वह चला जाए एकदम। नगर न पैदा होते। नगर जो हैं, वे स्त्री की वजह से पैदा हुए। नगर की सभ्यता स्त्री की वजह से पैदा हुई। क्योंकि स्त्री एक जगह रुकना चाहती है, ठहरना चाहती है। वह आग्रह करती है, बस यहीं रुक जाओ, यहीं ठहर जाओ; थोड़ी मुसीबत में गुजार लेंगे, लेकिन यहीं; कहीं और नहीं जाना। वह जमीन को पकड़ती है, वह जमीन में जड़ें गड़ा देती है, वह जमीन पर रुककर खड़ी हो जाती है। पुरुष को उसके आसपास फिर दुनिया बसानी पड़ती है।

इसलिए नगर बसे, इसलिए गांव बसे, इसलिए सभ्यता बसी, घर बना। और घर को उसने सजाया, बनाया; पुरुष ने जो बाहर की दुनिया में कमाया, इकट्ठा किया, उसको बचाया। नहीं तो पुरुष को बचाने में उत्सुकता नहीं है; वह कमाकर एक बार ले आया और बेकार हो गया। उसकी उत्सुकता तभी तक थी जब तक वह कमा रहा था, लड़ रहा था, जीत रहा था। अब उसकी इच्छा और दूसरी जगह जीतने पर चली गई। अब वह

वहां जीतने चला गया है। लेकिन वह जो जीत लाया था, उसको कोई बचा रहा है, सम्हाल रहा है। उसका अपना मूल्य है, अपनी जगह है; वह परिपूरक है सारी स्थिति।

लेकिन स्वभावतः, इसकी वजह से--चूंकि वह लाती नहीं, जाती नहीं, कमाती नहीं, इकट्ठा नहीं करती, निर्माण नहीं करती--उसको लगा कि वह पिछड़ गई है। छोटी-छोटी चीज तक में वह बात प्रवेश कर गई; और वह सब जगह उसको एक हीनता का बोध पकड़ गया। कोई हीनता का सवाल नहीं है।

अच्छा, अब उस हीनता से एक दूसरा दुष्परिणाम होना शुरू हुआ कि जब तक स्त्री सुशिक्षित नहीं थी, तब तक उसने हीनता को बरदाश्त किया; अब हीनता तो उसको बरदाश्त नहीं होती, तो वह हीनता को तोड़ने की दृष्टि से, पुरुष जो कर रहा है वही करने में लगी है। उससे और घातक परिणाम होनेवाले हैं, क्योंकि वह अपने मूल व्यक्तित्व को तोड़ ले सकती है। और उसको बहुत संघातक, उसके चित्त की गहराइयों तक नुकसान पहुंच सकते हैं। अब वह बराबर होने की कोशिश में लगी है। और बराबर वह पुरुष की तरह होकर बराबर हो ही नहीं सकती। तब तो वह नंबर दो की ही पुरुष होगी, नंबर एक की नहीं हो सकती। हां, नंबर एक की वह स्त्री की तरह ही हो सकती है।

तो यहां मेरा कोई वैल्युएशन नहीं है; बाकी तथ्य ऐसा है, इन चार शरीरों का, वह मैं आपसे कहता हूं।

स्त्री और पुरुष की चित्त-दशा में फर्क

प्रश्नः तब तो स्त्री और पुरुष की साधना में भी फर्क होगा?

फर्क होगा। फर्क साधना में कम, चित्त की दशा में ज्यादा होगा। जैसे पुरुष की वही साधना, एक ही साधना पद्धति हो, तो भी पुरुष उस पर आक्रामक की तरह जाएगा, और स्त्री उस पर ग्राहक की तरह जाएगी; पुरुष उस पर हमला करेगा, स्त्री उस पर समर्पण करेगी। एक ही साधना होगी, तो भी उनके ढंग, उनका एटिट्यूड अलग-अलग होगा। पुरुष जब जाएगा तो वह साधना की गर्दन पकड़ लेगा; और स्त्री जब जाएगी, उसके चरणों पर सिर रख देगी--साधना के। वह उन दोनों के ढंग में, एटिट्यूड में फर्क होगा। और उतना फर्क स्वाभाविक है। इससे ज्यादा फर्क का कोई सवाल नहीं है। बस समर्पण उसका भाव होगा। और जब अंतिम उपलब्धि उसे होगी, तो उसे ऐसा नहीं लगेगा कि ईश्वर मुझे मिल गया, उसे ऐसा ही लगेगा कि मैं ईश्वर को मिल गई। और जब अंतिम उपलब्धि पुरुष को होगी, तो उसे ऐसा नहीं लगेगा कि मैं ईश्वर को मिल गया, उसको ऐसा ही लगेगा कि ईश्वर मुझे मिल गया। वह उनकी पकड़ के भेद होंगे। वह तो फर्क रहेगा।

प्रश्नः यह चौथी भूमिका तक ही न!

बस चौथे तक ही। इसके बाद तो कोई प्रश्न नहीं उठता, इसके बाद तो कोई स्त्री-पुरुष का प्रश्न नहीं है। चौथे तक की ही बात कर रहा हूं, बस चौथे शरीर तक ये फासले होंगे।

सूक्ष्म अनुभवों के साथ साक्षी की सूक्ष्मता

प्रश्नः आपने कहा कि ओम की साधना से नाद उपस्थित होते हैं। क्या आटोमेटिक भी नाद उपस्थित होते हैं?

आटोमेटिक उपस्थित हों, वे ज्यादा कीमती हैं; अपने आप उपस्थित हों, वे ज्यादा कीमती हैं। ओम के प्रयोग से उपस्थित हों तो वे कल्पित भी हो सकते हैं। अपने आप ही होने चाहिए। वही कीमती हैं, वही सच्चे हैं।

प्रश्नः आटोमेटिक होने पर उनके साक्षी बनना चाहिए और साधना कंटिन्यू रखनी चाहिए?

हां, उनके साक्षी बनना चाहिए। साक्षी बनना चाहिए, लीन नहीं होना चाहिए। क्योंकि लीन होने की अवस्था तो सातवां ही शरीर है; उसके पहले लीन नहीं होना है। उसके पहले जहां लीन हो जाएंगे, वहीं रुक जाएंगे; वह ब्रेक हो जाएगा।

प्रश्नः वे सूक्ष्म से सूक्ष्म होते चले जाते हैं।

हां, वे सूक्ष्म हो रहे हैं, उसका मतलब यह है कि वे खो रहे हैं। तो हमको भी उतनी सूक्ष्मता में साक्षी होना पड़ेगा। जितने वे सूक्ष्म होते जाएंगे, उतने हमको भी सूक्ष्म साक्षी बनना पड़ेगा। हमें उन्हें आखिरी तक देखना है, जब तक कि वे खो ही न जाएं।

प्रथम तीन शरीर की तैयारी शक्तिपात के लिए सहयोगी

प्रश्नः साधक के किस शरीर में शक्तिपात की घटना और किस शरीर में ग्रेस की घटना घटित होती है? यदि साधक का पहला, दूसरा और तीसरा शरीर पूरा विकसित न हुआ हो, तो उस पर कुंडलिनी जागरण और शक्तिपात का क्या प्रभाव पड़ेगा?

पहली बात तो मैंने कह दी है कि शक्तिपात पहले शरीर पर होता है और ग्रेस, प्रसाद चौथे शरीर पर होता है।

अगर पहले शरीर पर शक्तिपात हो और कुंडलिनी जाग्रत न हुई हो, तो कुंडलिनी जाग्रत होगी। और बड़ी तीव्रता से होगी, और बड़ी सम्हालने की जरूरत पड़ जाएगी। क्योंकि शक्तिपात में, वह जो काम महीनों में होता है, वह क्षणों में हो जाएगा।

इसलिए शक्तिपात करने के पहले उस साधक के कम से कम तीन शरीरों की थोड़ी सी तैयारी की जरूरत है। एकदम गैर-तैयार साधक पर, सड़क चलते आदमी पर पकड़कर अगर शक्तिपात हो, तो उसे लाभ की जगह नुकसान ही ज्यादा होंगे। इसलिए पहले उसकी थोड़ी सी तैयारी जरूरी है। हां, बहुत ज्यादा तैयारी की जरूरत नहीं है। थोड़ी सी तैयारी जरूरी है कि उसके तीनों शरीर एक फोकस में आ जाएं, पहली बात। तीनों शरीरों के बीच एक सूत्रबद्धता आ जाए, कि जब शक्तिपात हो तो वह एक पर न अटक जाए शक्तिपात। एक पर अटक गया तो नुकसान होगा। वह तीनों पर फैल जाए तो कोई नुकसान नहीं होगा। अगर एक पर रुक गया तो बहुत नुकसान होगा।

वह नुकसान उसी तरह का है, जैसे कि आप खड़े हैं और बिजली का शॉक लग जाए। अगर बिजली का शॉक लग जाए आपको, और नीचे जमीन हो, और जमीन शॉक को पी जाए पूरा, तो नुकसान पहुंचेगा। लेकिन अगर आप लकड़ी के चौखटे पर खड़े हैं और बिजली का शॉक लगे, तो नुकसान नहीं होगा, क्योंकि शॉक आपके

पूरे शरीर में घूमकर वर्तुल बन जाएगा, सर्किल बन जाएगा। सर्किल बन गया, फिर कोई नुकसान नहीं होता; सर्किल टूट जाए कहीं से तो नुकसान होता है। समस्त ऊर्जा का नियम यही है कि वह सर्किल में चलती है। और अगर कहीं से भी बीच से सर्किट टूट जाए, तो ही धक्का और शॉक लग सकता है। इसलिए अगर लकड़ी की टेबल पर खड़े हों, तो शॉक नहीं लगेगा।

देह-विद्युत के संरक्षण के उपाय

यह जानकर तुम्हें हैरानी होगी कि लकड़ी के तख्त पर बैठकर ध्यान करने का और कोई प्रयोजन नहीं था। और यह भी जानकर तुम्हें हैरानी होगी कि मृग-चर्म पर और शेर की चमड़ी पर बैठकर ध्यान करने का भी--वे सब नॉन-कंडक्टर हैं; सब। मृग-चर्म बहुत नॉन-कंडक्टर है। अगर उस वक्त शरीर में ऊर्जा पैदा हो तो वह नीचे जमीन में नहीं जुड़ जाएगी। नहीं तो शॉक लग जाएगा; आदमी मर भी सकता है। या लकड़ी पर। इसलिए खड़ाऊं साधक पहनता रहा; लकड़ी के तख्त पर सोता रहा। भले उसे पता न हो कि वह किसलिए सो रहा है, क्या कर रहा है। लिखा है शास्त्र में, वह सो रहा है लकड़ी के तख्त पर। शायद सोच रहा है कि कष्ट देने के लिए सो रहे हैं; शरीर को आराम न दें, इसलिए सो रहे हैं। वह कारण नहीं है, खतरे दूसरे हैं। साधक पर किसी भी क्षण घटना घट सकती है, किसी भी अनजान स्रोत से। उसको तैयार होना चाहिए।

तो अगर उसके तीन शरीर की तैयारी पूरी है--पहले, दूसरे, तीसरे की--तो वह जो शक्ति उसको मिलेगी, वह चौथे तक जाकर सर्किट बना लेगी, वर्तुल बना लेगी। अगर यह तैयारी नहीं हो और पहले ही शरीर पर उसकी शक्ति का अवधान हो गया, रुक गई, अवरुद्ध हो गई, तो बहुत नुकसान पहुंच जाएंगे, बहुत तरह के नुकसान पहुंच सकते हैं। इसलिए थोड़ी सी, इतनी भर तैयारी जरूरी है कि वह शक्ति को वर्तुल बनाने में समर्थ हो गया हो। यह बहुत बड़ी तैयारी नहीं है, यह बहुत आसानी से, सरलता से हो जाती है। इसमें कोई बहुत कठिनाई नहीं है।

मुफ्त में कुछ भी नहीं मिलता

कुंडलिनी जागेगी इस शक्तिपात से, वह तीव्रता से जागेगी। लेकिन बस चौथे केंद्र तक ही जा सकेगी, उसके बाद की यात्रा फिर निजी है। मगर उतने तक पहुंच जाने की झलक भी बहुत अदभुत है। और उतना रास्ता भी दिख जाए अंधकार में, अमावस में--मुझे दो मील का रास्ता भी दिख जाए, बिजली चमक जाए--तो भी कुछ कम नहीं है। एक दफा रास्ता भी दिख जाए थोड़ा सा, तो भी सब कुछ बदल गया। मैं वही आदमी नहीं रह जाऊंगा जो कल तक था।

इसलिए शक्तिपात का थोड़ी दूर तक दर्शन के लिए उपयोग किया जा सकता है; पर उसकी प्राथमिक तैयारी हो जानी चाहिए। सीधे सामान्यजन पर नुकसानदायक है ही।

और मजा यह है कि सामान्यजन ही ज्यादा शक्तिपात इत्यादि पाने के लिए उत्सुक रहता है; वह चाहता है, मुफ्त में कुछ मिल जाए। लेकिन मुफ्त में कुछ भी नहीं मिलता। और कई दफे मुफ्त की चीज बहुत महंगी पड़ती है, बाद में पता चलता है। मुफ्त की चीज से बचने की कोशिश करनी चाहिए। असल में, हमें सदा कीमत चुकाने को तैयार होना चाहिए। जितनी हम कीमत चुकाने की तैयारी दिखलाते हैं, उतना ही हम पात्र होते चले जाते हैं। और बड़ी कीमत हम अपनी साधना से ही चुकाते हैं।

अब बहुत कठिन है न! अभी एक महिला आई दो दिन पहले। उसने कहा, अब तो मैं मरने के करीब हूं, उम्र हो गई; अब मुझे कब होगा, अब जल्दी करवा दें! जल्दी करवा दें, नहीं तो मर जाऊंगी, मिट जाऊंगी, समाप्त हो जाऊंगी। तो मुझे जल्दी करवा दें! तो मैंने उससे कहा कि तुम ध्यान के लिए आ जाओ, दो-चार दिन ध्यान करो। फिर देखेंगे ध्यान में तुम्हारी क्या गति होती है, फिर आगे की बात सोचेंगे। उसने कहा कि नहीं, ध्यान-व्यान में मुझे मत उलझाइए, मुझे तो जल्दी हो जाए।

अब यह हमें... बिल्कुल बिना कीमत चुकाए कुछ चीज की खोज चलती है। ऐसी खोज खतरनाक सिद्ध होती है। इससे कुछ मिलता तो नहीं, कुछ टूट सकता है। ऐसी आकांक्षा भी साधक में नहीं होनी चाहिए। जितनी हमारी तैयारी है उतना हमें सदा मिल जाएगा, इसका भरोसा होना चाहिए। यह मिल ही जाता है। असल में, जो आदमी जितनी चीज का पात्र है उससे कम उसे कभी नहीं मिलता; वह जगत का न्याय है, वह जगत का धर्म है। हम जितनी दूर तक तैयार होते हैं उतनी दूर तक हमें मिल जाता है। और अगर न मिलता हो तो हमें सदा जानना चाहिए कि कोई अन्याय नहीं हो रहा, हमारी तैयारी कम होगी। लेकिन हमारा मन सदा यह कहता है कि कोई अन्याय हो रहा है; मैं योग्य तो इतना हूं, लेकिन मुझे यह नहीं मिल रहा।

ऐसा होता ही नहीं, हम जितने योग्य होते हैं उतना हमें सदा ही मिलता है। योग्यता और मिलना एक ही चीज के दो नाम हैं। लेकिन मन हमारा आकांक्षा बहुत की करता है और श्रम बहुत कम के लिए करता है; हमारी आकांक्षा और हमारे श्रम में बड़ा फासला होता है। वह फासला बहुत आत्मघाती है। वह कभी नुकसान पहुंचा सकता है। उसकी वजह से हम दीवाने की तरह घूमते हैं कि कहीं कुछ मिल जाए, कहीं कुछ मिल जाए। और फिर जब बहुत लोग इस तरह मुफ्त में खोजने घूमते हैं, तब निश्चित ही कुछ लोग इनका शोषण कर सकते हैं जो इनको मुफ्त में देने की तैयारी दिखलाएं। इनके पास बहुत कुछ नहीं हो सकता, लेकिन अगर इन्हें कुछ सूत्र भी कहीं से पता चल गए हों जिनसे ये थोड़ा-बहुत कुछ कर सकते हों, जो बहुत गहरा नहीं होगा, लेकिन उतना नुकसान तो ये पहुंचा ही देंगे। उतना नुकसान पहुंचा सकते हैं।

शक्तिपात का भुलावा

जैसे एक आदमी, जिसको कि शक्तिपात का कोई भी पता नहीं है, वह भी अगर चाहे तो सिर्फ बॉडी मैग्नेटिज्म से थोड़ा-बहुत शक्तिपात कर सकता है--जिसे और भीतरी शरीरों का, छह शरीरों का कोई भी पता नहीं। शरीर के पास अपनी मैग्नेटिक फोर्स है, शरीर के पास अपना चुंबकीय तत्व है। अगर उसकी थोड़ी व्यवस्था से इंतजाम किया जाए तो तुम्हें शॉक पहुंचाए जा सकते हैं, उसी से।

इसलिए पुराना साधक जो है, वह दिशा देखकर सोएगा--इस दिशा में सिर नहीं करेगा, उस दिशा में पैर नहीं करेगा; क्योंकि जमीन का एक मैग्नेट है, और वह सदा उस मैग्नेट की सीध में रहना चाहता है। उस मैग्नेट से वह मैग्नेटाइज होता रहता है। अगर तुम उससे आड़े सोते हो तो तुम्हारे बॉडी का मैग्नेटिज्म कम होता चला जाता है। अगर तुम उस मैग्नेट की धारा में सोते हो, तो वह मैग्नेट जो जमीन का मैग्नेट है, जिस पर कि जमीन पूरी की पूरी धुरी बनाए हुए है, वह मैग्नेट तुम्हारे मैग्नेट को मैग्नेटाइज करता है; वह तुम्हारे शरीर को भर देता है। जैसे कि एक मैग्नेट के पास तुम लोहा रख दो, तो वह लोहा भी थोड़ा सा मैग्नेटाइज हो जाएगा और छोटी-मोटी सुई को वह भी खींच सकेगा। थोड़ी-बहुत देर तक तो खींच ही सकेगा।

चुंबकीय शक्ति के विभिन्न प्रयोग

तो बॉडी की अपनी चुंबकीय शक्ति है, उसको अगर पृथ्वी की चुंबकीय शक्ति के साथ रखा जा सके... । फिर तारों की चुंबकीय शक्तियां हैं। विशेष तारे, विशेष मुहूर्त में, विशेष रूप से चुंबकीय होते हैं। अगर उसका किसी को पता है--और उसका पता होने में कोई कठिनाई नहीं है, वह सारी की सारी व्यवस्था है--तो उन विशेष तारों से, विशेष घड़ी में, विशेष स्थिति में, विशेष आसन में खड़े होने से तुम्हारा शरीर बहुत चुंबकीय हो जाता है। और तब तुम किसी भी आदमी को चुंबकीय शॉक दे सकते हो, जो उसे शक्तिपात मालूम पड़ेगा, जो कि शक्तिपात नहीं है।

शरीर की अपनी विद्युत है, शरीर की अपनी इलेक्ट्रिसिटी है। उस इलेक्ट्रिसिटी को अगर ठीक से पैदा किया जाए तो छोटा-मोटा पांच-दस कैंडल का बल्ब तो हाथ में रखकर जलाया जा सकता है। उसके प्रयोग हुए हैं और सफल हुए हैं। कुछ लोगों ने वह बल्ब जलाकर हाथ से... सीधा हाथ में बल्ब लेकर जला दिया। पांच-दस कैंडल का बल्ब तो हाथ से ही जल सकता है। शक्ति तो उससे भी बहुत ज्यादा है। शक्ति तो उससे भी बहुत ज्यादा है।

एक स्त्री बेल्जियम में, कोई बीस वर्ष पहले, आकस्मिक रूप से इलेक्ट्रिफाइड हो गई। उसको कोई छू नहीं सकता था, क्योंकि जो भी छुए उसे शॉक लग जाए। उसके पति ने उसे तलाक दिया। उसका कारण तलाक का यह था कि उसको शॉक लगता उसको छूकर। तलाक की वजह से वह सारी दुनिया में पता चला, और तब उसके शरीर की जांच-पड़ताल हुई तो पता चला कि उसका शरीर विद्युत पैदा कर रहा है बहुत जोर से।

शरीर के पास बड़ी बैटरीज हैं। अगर वे व्यवस्थित काम कर रही हों तो हमें पता नहीं चलता, अगर वे अव्यवस्थित हो जाएं तो उनसे बहुत शक्ति पैदा होती है। तुम पूरे वक्त कैलोरीज ले जाकर भीतर उन सब बैटरीज को पूरा कर रहे हो। इसलिए कई दफे तुमको ही लगता है कि जैसे चार्ज खो गया, रि-चार्ज होने की जरूरत है। थका हुआ आदमी, डिप्रेस्ड आदमी, सांझ को थका-मांदा, टूटा आदमी, ऐसा लगता है जैसे उसकी बैटरी धीमी पड़ गई, उसने चार्ज खो दिया, अब वह रि-चार्ज होना चाहता है। रात सोकर वह रि-चार्ज होता है। उसे पता नहीं कि सोने में कौन सी बात है जिससे वह सुबह रि-चार्ज्ड होकर उठता है। उसकी बैटरी वापस चार्ज्ड हो गई है। नींद में कुछ प्रभाव उस पर काम कर रहे हैं। उनका सब पता चल चुका है कि वे कौन से प्रभाव काम करते हैं। कोई आदमी चाहे तो उन प्रभावों का जागते हुए अपने शरीर में फायदा ले सकता है। और तब वह तुम्हारे शरीर को शॉक दे सकता है, जो मैग्नेटिक के भी नहीं हैं, इलेक्ट्रिक के हैं--बॉडी इलेक्ट्रिक के हैं। लेकिन उससे तुमको शक्तिपात का भ्रम हो सकता है।

इसके अलावा भी और रास्ते हैं जो सब फाल्स हैं, जिनसे कोई संबंध नहीं है असली बात का। अगर उस आदमी को अपने शरीर के मैग्नेट का भी कोई पता नहीं है, अपने शरीर की विद्युत का भी कोई पता नहीं है, लेकिन तुम्हारे शरीर के विद्युत के सर्किट को तोड़ने का उसे कोई रास्ता पता है, तो भी तुम्हें शॉक लग जाएगा। अब इसको कई तरह से किया जा सकता है और कई तरह के इंतजाम किए जा सकते हैं कि तुम्हारा ही जो वर्तुल है तुम्हारे भीतर विद्युत का, वह अगर तोड़ दिया जाए तो तुमको शॉक लगेगा। उसमें दूसरे आदमी का कुछ भी नहीं आ रहा है तुम्हारी तरफ, लेकिन तुमको ही शॉक लग रहा है। वह तोड़ा जा सकता है। उसको तोड़ने की भी व्यवस्थाएं हैं, उसको तोड़ने के भी उपाय हैं।

मात्र कुतूहल से साधना में खतरे

ये सारी की सारी बातें तुम्हें मैं पूरी न बता सकूं, क्योंकि वे पूरी बतानी कभी भी उचित नहीं। और जितनी बातें मैं कह रहा हूं, उनमें से कुछ भी पूरी बात नहीं है। यह जो फाल्स मेथड्स की जो मैं बात कर रहा हूं, इसमें कोई भी बात पूरी नहीं है; क्योंकि इसमें पूरी कहना सदा खतरनाक है। क्योंकि उसको कोई भी करने का मन होता है। हमारी क्यूरिआसिटी ऐसी है कि एक बहुत अदभुत फकीर ने तो क्यूरिआसिटी को ही सिर्फ सिन कहा है। पाप एक ही है आदमी में, वह है उसका कुतूहल; और बाकी कोई पाप नहीं है। क्योंकि वह कुतूहलवश कितने पाप कर लेता है, हमें पता नहीं चलता। कुतूहल ही उसको न मालूम कितने पाप करा देता है।

बाइबिल की कथा कि अदम को ईश्वर ने कहा है कि तू इस वृक्ष का फल मत चखना। बस यह कुतूहल दिक्कत में डाल दिया उसे। ओरिजिनल सिन जो है, वह क्यूरिआसिटी का था। उसको यह दिक्कत पड़ गई। उसने कहा कि यह मामला बड़ा गड़बड़ है! इतने बड़े जंगल में और इतने सुंदर फलों में यह एक साधारण सा वृक्ष, इसका फल खाने की मनाही है! बात क्या है? सारे वृक्ष बेकार हो गए, वह एक ही वृक्ष सार्थक हो गया। चित्त वहीं डोलने लगा उसका। वह बिना फल चखे नहीं रह सका, वह फल उसे चखना पड़ा। कुतूहल उसे उस वृक्ष के पास ले गया, जिसे ईसाइयत कहती है कि ओरिजिनल सिन, मूल पाप हो गया।

अब मूल पाप फल के चखने में क्या हो सकता है? नहीं लेकिन, मूल पाप उसके कुतूहल का हो गया। और हमारे मन में बड़ा कुतूहल होता है। शायद ही कभी हमारे मन में जिज्ञासा हो। जिज्ञासा सिर्फ उसी में होती है जिसमें कुतूहल नहीं होता। और ध्यान रखना, क्यूरिआसिटी और इंक्वायरी में बड़ा बुनियादी फर्क है। क्यूरिअस आदमी इंक्वायरिंग नहीं होता। वह जो आदमी कुतूहल से भरा रहता है कि यह भी देख लें, यह भी देख लें, वह किसी चीज को कभी पूरी नहीं देखता; क्योंकि जब तक वह इसको देख नहीं पाता कि पच्चीस और चीजें उसे बुलाने लगती हैं कि यह भी जान लें, यह भी देख लें। और तब वह कभी भी अन्वेषण नहीं कर पाता है।

तो ये फाल्स मेथड्स की जो मैं बात कह रहा हूं, यह पूरी नहीं है। इसमें कुछ खास बातें छोड़ दी गई हैं। उनका छोड़ देना जरूरी है, क्योंकि हमारा मन होता है कि हम इनको करके देखें। लेकिन यह सब हो जाता है, इसमें जरा भी कठिनाई नहीं है। और इस सबकी वजह से जो झूठे आकांक्षी खोजते फिरते हैं कि हमें शक्ति मिल जाए, परमात्मा मिल जाए, कोई दे दे, इनको कोई देनेवाला भी मिल जाता है। और तब अंधे अंधों का मार्गदर्शन करते हैं। और फिर अंधे तो गिरते ही हैं, उनके पीछे अंधों की बड़ी कतार गिरती है। और यह नुकसान साधारण नहीं होता, कई बार जन्मों के लिए हो जाता है; क्योंकि किसी चीज को तोड़ लेना बहुत आसान है, फिर से बनाना बहुत मुश्किल है।

इसलिए कुतूहलवश कभी इस संबंध में कुछ खोजबीन करना ही नहीं। इस संबंध में अपनी तैयारी पहले करना, फिर जो जरूरी है वह अपने आप तुम्हारे पास आ जाएगा--आ जाता है।

सत्रहवां प्रवचन

मनस से महाशून्य तक

कुंडलिनी जागरण के लिए प्रथम तीन शरीरों में सामंजस्य आवश्यक

प्रश्नः कल की चर्चा में आपने अविकसित प्रथम तीन शरीरों के ऊपर होनेवाले शक्तिपात या कुंडलिनी जागरण के प्रभाव की बात की। दूसरे और तीसरे शरीर के अविकसित होने पर कैसा प्रभाव होगा, इस पर कुछ और प्रकाश डालने की कृपा करें। साथ ही यह भी बताएं कि प्रथम तीन शरीर--फिजिकल, ईथरिक और एस्ट्रल बॉडी को विकसित करने के लिए साधक क्या तैयारी करे?

इस संबंध में पहली बात तो यह समझने की है कि पहले, दूसरे और तीसरे शरीरों में सामंजस्य, हार्मनी होनी जरूरी है। ये तीनों शरीर अगर आपस में एक मैत्रीपूर्ण संबंध में नहीं हैं, तो कुंडलिनी जागरण हानिकर हो सकता है। और इन तीनों के सामंजस्य में, संगीत में होने के लिए दो-तीन बातें आवश्यक हैं।

प्रथम शरीर के प्रति बोधपूर्ण होना

पहली बात तो यह कि हमारा पहला शरीर, जब तक हम इस शरीर के प्रति मूर्च्छित हैं, तब तक यह शरीर हमारे दूसरे शरीरों के साथ सामंजस्य स्थापित नहीं कर पाता, हार्मोनियस नहीं हो पाता। मूर्च्छित का मेरा मतलब यह है कि हम अपने शरीर के प्रति बोधपूर्ण नहीं हैं। चलते हैं तो हमें पता नहीं होता कि हम चल रहे हैं, उठते हैं तो हमें पता नहीं होता कि हम उठ रहे हैं, खाना खाते हैं तो हमें पता नहीं होता कि हम खाना खा रहे हैं। शरीर से हम जो काम लेते हैं वह अत्यंत मूर्च्छा और निद्रा में लेते हैं।

अगर इस शरीर के प्रति मूर्च्छा है, तो दूसरे शरीरों के प्रति तो और भी मूर्च्छा होगी, क्योंकि वे तो बहुत सूक्ष्म हैं। अगर इस स्थूल दिखाई पड़नेवाले शरीर के प्रति भी हमारा कोई होश और अवेयरनेस नहीं है, तो जो शरीर नहीं दिखाई पड़ते, अदृश्य हैं, उनका तो कोई सवाल नहीं उठता, उनके प्रति तो हमें कभी होश नहीं हो सकता। और बिना होश के सामंजस्य नहीं है। सब सामंजस्य होश में होता है। नींद में सब सामंजस्य टूट जाता है।

तो पहली बात तो इस शरीर के प्रति अवेयरनेस जगानी जरूरी है। यह शरीर छोटा सा भी काम करे तो उसमें एक रिमेंबरिंग, उसमें एक स्मरण होना आवश्यक है। जैसा बुद्ध कहते थे कि तुम राह पर चलो तो तुम जानो कि चल रहे हो। और जब तुम्हारा बायां पैर उठे, तो तुम्हारे चित्त को पता हो कि बायां पैर उठा; और जब तुम रात करवट लो तो तुम जानो कि तुमने करवट ली है।

एक गांव से वे निकल रहे हैं--यह उनकी साधक अवस्था की घटना है--और एक साधक उनके साथ है। वे दोनों बात कर रहे हैं और एक मक्खी उनके गले पर आकर बैठ गई है। तो वे बात करते रहे और हाथ से उन्होंने मक्खी को उड़ा दिया। मक्खी उड़ गई, तब अचानक वे रुककर खड़े हो गए और उन्होंने उस साधक से कहा कि बड़ी भूल हो गई, और उन्होंने फिर से मक्खी उड़ाई जो कि अब थी ही नहीं; फिर उस जगह हाथ ले गए जहां मक्खी थी तब ले गए थे। उस साधक ने कहा, साथी ने कहा, अब आप क्या कर रहे हैं? अब तो मक्खी नहीं है! बुद्ध ने कहा, अब मैं वैसे उड़ा रहा हूं जैसे मुझे उड़ानी चाहिए थी। अब मैं होशपूर्वक उड़ा रहा हूं; अब यह हाथ

मेरा उठ रहा है तो मेरी चेतना में मैं जान रहा हूं कि यह हाथ जा रहा है मक्खी को उड़ाने। उस वक्त मैं तुमसे बात करता रहा और यंत्रवत मैंने मक्खी उड़ा दी। मेरे शरीर के प्रति एक पाप हो गया।

प्रथम स्थूल शरीर के प्रति जागने पर भाव शरीर का बोध प्रारंभ

यदि हम अपने शरीर के प्रत्येक काम को होश से करने लगें, तो हमारा यह शरीर पारदर्शी हो जाएगा, ट्रांसपैरेंट हो जाएगा। कभी इस हाथ को नीचे से ऊपर तक होशपूर्वक उठाएं। और तब आप एहसास करेंगे कि आप हाथ से अलग हैं, क्योंकि उठानेवाला बहुत भिन्न है। वह जो भिन्नता का बोध होगा, वह आपकी ईथरिक बॉडी का बोध शुरू हो गया।

फिर जैसे मैंने कहा कि इस शरीर के प्रति बोध है--अब जैसे समझ लें कि यहां एक आर्केस्ट्रा बजता हो, बहुत तरह के वाद्य बजते हों। जिस आदमी ने संगीत कभी नहीं सुना है उसे भी हम यहां ले आएं। तो जो स्वर सबसे ज्यादा बजते होंगे, जो ढोल सबसे ज्यादा पीटा जा रहा होगा, उसे वही सुनाई पड़ेगा; बहुत धीमे स्वरोंवाले, मंदे स्वरवाले, पीछे से, पृष्ठभूमि से बजनेवाले वाद्य स्वर उसे सुनाई नहीं पड़ेंगे। लेकिन उसका होश बढ़ता जाए, तो फिर उसे पीछेवाले स्वर भी सुनाई पड़ने शुरू होंगे। उसका होश और बढ़ता चला जाए, तो उसे और पीछेवाले स्वर सुनाई पड़ने शुरू होंगे। और जिस दिन उसका होश पूरा होगा, उस दिन वह बहुत ही बारीक और नाजुक जो स्वर हैं, वे भी वह पकड़ने लगेगा। और जिस दिन उसका होश और भी बढ़ जाएगा, उस दिन वह केवल स्वर ही नहीं पकड़ेगा, दो स्वरों के बीच में जो अंतराल है, जो गैप है, जो साइलेंस है, वह भी पकड़ेगा। तभी वह संगीत को पूरा पकड़ पाया।

अंतिम तो उसको गैप पकड़ना है, तब समझेंगे कि उसकी संगीत की पकड़ पूरी हो पाई। जब दो स्वरों के बीच में जगह खाली छूट जाती है और कोई स्वर नहीं होता, सन्नाटा होता है; उस सन्नाटे का भी अपना अर्थ है। असल में, संगीत के सब स्वर उसी सन्नाटे को उभारने के लिए हैं। वह कितना उभरता है और प्रकट होता है, यही असली बात है।

अगर आपने कभी कोई जापानी या चाइनीज पेंटिंग देखी है, तो बहुत हैरान होंगे यह बात देखकर कि पेंटिंग एक कोने पर होगी छोटी सी, और कैनवस बहुत बड़ा खाली ही होगा। ऐसा दुनिया में कहीं नहीं होता, क्योंकि दुनिया में कहीं भी चित्रकार ने ध्यान के साथ चित्र नहीं बनाए। असल में, ध्यानी ने दुनिया में कहीं भी पेंटिंग नहीं की है सिवाय चीन और जापान को छोड़कर। अगर आप इस चित्रकार से पूछेंगे कि यह क्या मामला है? इतना बड़ा कैनवस लिया है, उसमें इतना सा छोटा सा कोने में चित्र बनाया है! यह तो कैनवस के आठवें हिस्से में भी बन सकता था, बाकी कैनवस की क्या जरूरत थी? तो वह कहेगा कि वह जो बाकी पृष्ठ पर जो खाली आकाश है, उसको उभारने के लिए ही यह नीचे कोने पर थोड़ी सी मेहनत की है, ताकि वह खाली आकाश तुम्हें दिखाई पड़ सके। क्योंकि अनुपात यही है, खाली आकाश अनंत है।

अब एक वृक्ष खड़ा है खाली आकाश में। जब हम चित्र बनाते हैं तो पूरे कैनवस पर वृक्ष हो जाता है। वस्तुतः तो आकाश होना चाहिए पूरे कैनवस पर, वृक्ष तो एक कहां कोने में, उसका पता नहीं चलता, उतना छोटा है। अनुपात वास्तविक यही है। और वृक्ष अपने पूरे अनुपात में आकाश की पृष्ठभूमि में जब खड़ा होगा, तभी जीवंत होगा। इसलिए हमारी सारी पेंटिंग अनुपातहीन है।

अगर ध्यानी कभी संगीत पैदा करेगा तो उसमें स्वर कम होंगे, शून्यता ज्यादा होगी; क्योंकि स्वर तो बड़ी छोटी बात है, शून्य बहुत बड़ी बात है। और स्वर की एक ही सार्थकता है कि वह शून्य को इंगित कर जाए और विदा हो जाए। लेकिन जितना बोध बढ़ेगा स्वर का, उतना!

तो हमारा यह जो स्थूल शरीर है, इसकी सार्थकता ही यही है कि यह हमें और सूक्ष्म शरीरों का बोध करा जाए। लेकिन हम इसी को पकड़कर बैठ जाते हैं। और पकड़कर बैठने की जो तरकीब है, वह यह है कि हम इस शरीर के प्रति मूर्च्छित तादात्म्य कर लेते हैं; एक स्लीपिंग आइडेंटिटी है, हम सो गए हैं और शरीर को हम बिल्कुल मूर्च्छा की तरह जी रहे हैं। इस शरीर की एक-एक क्रिया के प्रति जागोगे तो तुम्हें फौरन दूसरे शरीर का बोध शुरू हो जाएगा।

फिर दूसरे शरीर की भी अपनी क्रियाएं हैं। लेकिन उनमें तुम तब तक नहीं जाग सकोगे जब तक इस शरीर की क्रियाओं के प्रति नहीं जागे, क्योंकि वे सूक्ष्म हैं। अगर तुम इस शरीर की क्रियाओं के प्रति जाग गए तो तुम्हें दूसरे शरीर की क्रियाओं का भी हलन-चलन पता पड़ने लगेगा। अब दूसरे शरीर की हलन-चलन पर जिस दिन तुम जागोगे, तुम बहुत हैरान हो जाओगे कि यह तो हमें पता ही नहीं था कि हमारे भीतर ईथरिक वेव्स भी हैं, और वे पूरे वक्त काम कर रही हैं।

भाव शरीर में उठनेवाले भावों के प्रति होश

एक आदमी ने क्रोध किया। क्रोध का जन्म दूसरे शरीर में होता है, अभिव्यक्ति पहले शरीर में होती है। क्रोध मूलतः दूसरे शरीर की क्रिया है; पहले शरीर का तो साधन की तरह उपयोग होता है। इसलिए तुम चाहो तो पहले शरीर तक क्रोध को आने से रोक सकते हो। दमन में यही करते हो। मेरा मन हुआ है, क्रोध से भर गया हूं, और तुम्हें उठाकर लकड़ी मार दूं। लकड़ी मारने से मैं रोक सकता हूं, क्योंकि यह पहले शरीर की क्रिया है। यह मूलतः क्रोध नहीं है, यह क्रोध की अभिव्यक्ति भर है। लकड़ी मारने से रोक सकता हूं, चाहूं तो तुम्हें देखकर मुस्कुराता भी रह सकता हूं, लेकिन भीतर मेरे दूसरे शरीर पर क्रोध फैल जाएगा। तो दमन में इतना ही होता है कि हम अभिव्यक्ति के तल पर उसको प्रकट नहीं होने देते, लेकिन मूल स्रोत के तल पर तो वह प्रकट हो जाता है।

जब तुम्हें पहले शरीर की क्रियाओं का पता चलना शुरू होगा, तब तुम अपने भीतर उठनेवाले प्रेम, अपने भीतर उठनेवाले क्रोध, अपने भीतर उठनेवाली घृणा, अपने भीतर उठनेवाले भय के मूवमेंट्स को भी समझने लगोगे। वे भी तुम्हें पता चलने लगेंगे कि उनकी गतियां हैं। और जब तक तुम दूसरे शरीर पर उठनेवाले इन सब भावों की गति को नहीं पकड़ पाते हो, तब तक ज्यादा से ज्यादा दमन ही कर सकते हो, मुक्त नहीं हो सकते। क्योंकि तुमको पता ही तब चलता है जब वह इस शरीर तक आ जाता है; तुमको खुद भी तभी पता चलता है। कई बार तो तब भी पता नहीं चलता; पता चलता है जब तक दूसरे के शरीर तक न पहुंच जाए। हम इतने मूर्च्छित होते हैं कि जब तक मेरा चांटा तुम्हारे ऊपर न पड़ जाए, तब तक भी मुझे पता नहीं चलता कि मैं चांटा मारने वाला था। जब चांटा लग ही जाता है, तब मुझे पता चलता है कि कोई घटना घट गई।

लेकिन यह उठता है ईथरिक बॉडी में; वहां से पैदा होता है--समस्त भाव। इसलिए मैंने दूसरे शरीर को भाव शरीर कहा। ईथरिक बॉडी जो है, वह भाव शरीर है। उसकी अपनी गतियां हैं। क्रोध में, प्रेम में, घृणा में, अशांति में, भय में उसके अपने मूवमेंट हो रहे हैं। उसकी गतियों को तुम पहचानने लगोगे।

भय के ईथरिक कंपन का बाह्य व्यक्तित्व पर प्रभाव

जब तुम भयभीत होओगे तब तुम्हारी ईथरिक बॉडी एकदम सिकुड़ जाती है। तो भय में जो संकोच मालूम पड़ता है, वह पहले शरीर का नहीं है; क्योंकि पहला शरीर तो उतना ही रहता है, उसमें कोई फर्क नहीं पड़ता। पहले शरीर के आयतन में कोई फर्क नहीं पड़ता, लेकिन ईथरिक बॉडी सिकुड़ जाती है भय में।

इसलिए जो आदमी भयभीत रहता है, उसके पहले शरीर पर भी संकोच के प्रभाव दिखाई पड़ने लगते हैं। उसके चलने में, उसके बैठने में वह पूरे वक्त दबा-दबा मालूम पड़ता है, जैसे चारों तरफ से कोई उसे दबाए हुए है। वह खड़ा होगा तो सीधा खड़ा न होगा, झुककर खड़ा होगा; वह बोलेगा तो लड़खड़ाएगा; चलेगा तो उसके पैर में कंपन होंगे; दस्तखत करेगा तो उसके अक्षर कंपे हुए और हिले हुए होंगे।

अब स्त्री और पुरुष के हस्ताक्षर, बिना किसी कठिनाई के कोई भी पहचान सकता है कि ये पुरुष के हस्ताक्षर हैं कि स्त्री के। स्त्री सीधे अक्षर बना ही नहीं पाती। कितने ही सुडौल बनाए तब भी उसके अक्षरों में एक कंपन होता है जो स्त्रैण होता है। वह उसके ईथरिक शरीर से आता है। वह पूरे वक्त भयभीत है। उसका व्यक्तित्व ही भयग्रस्त हो गया है। इसलिए बिल्कुल बिना फिकर के देखकर कहा जा सकता है कि यह स्त्री का लिखा हुआ अक्षर है कि पुरुष का लिखा हुआ अक्षर है।

फिर पुरुष में भी कौन आदमी कितना भयभीत है, वह अक्षर से देखकर जाना जा सकता है। हमारी अंगुलियों में और स्त्री की अंगुलियों में कोई फर्क नहीं है। हमारे कलम के पकड़ने में, उसके कलम के पकड़ने में फर्क नहीं है। जहां तक पहले शरीर का वास्ता है, लिखने में कोई फर्क नहीं पड़ता। लेकिन जहां तक दूसरे शरीर का वास्ता है, स्त्री भयभीत है। आज तक भी वह भीतर से अभय की स्थिति नहीं हो पाई--न समाज की, न संस्कृति की, न हमारे चित्त की--कि स्त्री को हम अभय दे पाएं। वह भयभीत है पूरे वक्त। और उसके भय का कंपन उसके सारे व्यक्तित्व में उतरेगा। पुरुषों में भी जांचा जा सकता है कि कौन भयभीत है, कौन निर्भय है। वह उनके हस्ताक्षर बता सकेंगे। लेकिन भय की जो स्थिति है, वह ईथरिक है।

भाव शरीर का भय में सिकुड़ना और प्रेम में फैलना

यह मैं तुम्हें पहचानने के लिए कह रहा हूं कि भीतर तुम जब इस शरीर की क्रियाओं को पहचान जाओ तो तुम्हें ईथरिक शरीर की क्रियाओं को भी पहचानना पड़ेगा कि वहां क्या हो रहा है। जब तुम प्रेम में होते हो तो तुम्हें लगता है तुम फैल गए। असल में, प्रेम में इतनी मुक्ति इसीलिए मालूम होती है कि हम एकदम फैल जाते हैं--कोई है जिससे अब भय की कोई जरूरत नहीं है। जिस व्यक्ति को मैं प्रेम करता हूं उसके पास मुझे भय का कोई कारण नहीं है। असल में, प्रेम का मतलब ही यह है कि जिससे मुझे भय नहीं है; जिसके सामने, मैं जैसा हूं उतना पूरा खिल सकता हूं; जितना हूं उतना फैल सकता हूं। इसलिए प्रेम के क्षण में एक्सपैंशन का बोध होता है। तुम्हारा यह शरीर इतना ही रहता है, इसमें कोई फर्क नहीं पड़ता, लेकिन तुम्हारे भीतर का शरीर खिल जाता है और फूल जाता है, फैल जाता है।

ध्यान में निरंतर लोगों को अनुभव होता है... किसी को अनुभव होता है कि उसका शरीर बहुत बड़ा हो गया! यह शरीर इतना ही रहता है। यह शरीर इतना ही रहता है। ध्यान में उसे लगता है कि यह क्या हो रहा है! मेरा शरीर फैलता जा रहा है, पूरे कमरे को भर लिया! आंख जब वह खोलता है तो हैरान होता है कि शरीर तो उतना ही है, लेकिन वह फीलिंग भी उसकी पीछा करती है कि वह भी झूठ नहीं था जो मैंने जाना; अनुभव इतना साफ हुआ था कि मैं पूरे कमरे में भर गया हूं।

वह ईथरिक शरीर है। उसके आयतन का कोई अंत नहीं है। वह भाव से फैलता और सिकुड़ता है। वह इतना फैल सकता है कि सारे जगत में भर जाए; वह इतना सिकुड़ सकता है कि एक छोटे अणु में भी उसके लिए जगह मिल जाए। वह भाव शरीर है।

फैला हुआ होना भाव शरीर की स्वस्थता

तो उसकी क्रियाएं तुम्हें दिखाई पड़नी शुरू होंगी--उसका फैलना, उसका सिकुड़ना; वह किन स्थितियों में फैलता है, किन में सिकुड़ता है। जिनमें वह फैलता है, अगर साधक उन क्रियाओं में जीने लगे तो सामंजस्य पैदा होगा; जिनमें वह सिकुड़ता है, अगर उनमें जीने लगे तो इस शरीर में और दूसरे शरीर में सामंजस्य टूट जाएगा। क्योंकि उसका फैलाव ही उसकी सहजता है। जब वह पूरा फैला होता है, पूरा प्रफुल्लित होता है, तब वह इस शरीर के साथ एक सेतु में बंध जाता है; और जब वह भयभीत होता है, सिकुड़ा हुआ होता है, तो इस शरीर से उसके संबंध छिन्न-भिन्न हो जाते हैं; वह अलग एक कोने में पड़ जाता है।

तीव्र भावनात्मक आघात से भाव शरीर का स्पष्ट बोध

उस शरीर की और भी तरह की क्रियाएं हैं जिनको कि और तरह से जाना जा सकता है। जैसे कि... अगर एक आदमी अभी दिखाई पड़ रहा था बिल्कुल स्वस्थ, सब तरह से ठीक; और किसी ने आकर उसको खबर दी कि उसको फांसी की सजा हो गई है; तो उसके चेहरे का रंग फौरन उड़ जाएगा। उसके इस शरीर में कोई फर्क नहीं पड़ रहा है, क्योंकि इस शरीर में जितना खून है उतना है। लेकिन उसकी ईथरिक बॉडी में एकदम फर्क पड़ गया। उसकी ईथरिक बॉडी इस शरीर को छोड़ने को तैयार हो गई। उसकी ईथरिक बॉडी, उसका भाव शरीर इस शरीर को छोड़ने को तैयार हो गया। और हालत वैसी ही हो गई, जैसे कि इस घर के मालिक को अचानक पता चले कि अब यह मकान खाली कर देना है, तो सब रौनक चली जाए, सब अस्तव्यस्त हो जाए। उस दूसरे शरीर ने इससे संबंध एक अर्थ में तोड़ ही दिया। फांसी तो थोड़ी देर बाद होगी, नहीं भी होगी, लेकिन उसका इस शरीर से संबंध टूट गया।

एक आदमी तुम्हारी छाती पर बंदूक लेकर खड़ा हो गया, एक शेर ने तुम्हारे ऊपर हमला कर दिया, तो तुम्हारे इस शरीर पर अभी कुछ भी नहीं हुआ है, किसी ने छुआ भी नहीं है, लेकिन तुम्हारा ईथरिक शरीर तैयारी कर लिया है छोड़ने की। उसके बीच, इसके बीच फासला बड़ा हो गया।

तो उसकी गतियों को फिर तुम्हें सूक्ष्मता से देखना पड़ेगा। वे भी देखी जा सकती हैं, उनमें कोई कठिनाई नहीं है। कठिनाई है तो यही कि हम इसी शरीर की गतियों को नहीं देख पाते। इस शरीर की गतियों को हम देखें तो हमें उसकी गतियां भी दिखाई पड़ने लगेंगी। और जैसे ही दोनों की गतियों का बोध तुम्हें स्पष्ट होगा, तुम्हारा बोध ही दोनों के बीच सामंजस्य बन जाएगा।

भाव शरीर में जागने पर सूक्ष्म शरीर का बोध

फिर तीसरा शरीर है, जिसे सूक्ष्म शरीर मैंने कहा, एस्ट्रल बॉडी कहा। उसकी गति निश्चित ही और भी सूक्ष्म है। और तुम्हारे भय और क्रोध और प्रेम और घृणा, इनसे भी ज्यादा सूक्ष्म है। उसकी गति को पकड़ने के लिए तो दूसरे शरीर में जब तक पूरी सफलता न मिल जाए तब तक बहुत कठिनाई है। समझना भी थोड़ी कठिनाई है, क्योंकि अब गैप बहुत बड़ा हो गया। हम पहले शरीर पर मूर्च्छित हैं। इसलिए पहले शरीर से दूसरा

शरीर निकट है, थोड़ी-बहुत बात समझ में आती है। तीसरे शरीर के साथ बहुत गैप हो गया। यानी ऐसा फर्क पड़ गया कि दूसरा शरीर तो हमारे बगल का नेबर था, पड़ोसी था; कभी-कभी उसकी आवाज, उसके चौके में बर्तन के गिरने की आवाज, कभी उसके बच्चे के रोने की आवाज सुनाई पड़ जाती थी। लेकिन तीसरा शरीर पड़ोसी के बाद का पड़ोसी है। उसके चौके की भी आवाज कभी नहीं आती, उसके बच्चे के रोने का भी कभी पता नहीं चलता।

तीसरे शरीर की यात्रा और भी सूक्ष्म है। और उसे तभी पकड़ा जा सकता है जब हम दूसरे में भाव को पकड़ने लगें, तब तीसरे में हम तरंगों को पकड़ सकते हैं। तरंगें भाव के भी पूर्व हैं। तरंगों का ही सघन रूप भाव है। और भाव का सघन रूप क्रिया है। तो मुझे तो पता नहीं चलेगा कि तुम क्रोध में हो, जब तक तुम मेरे ऊपर क्रोध प्रकट न करो; क्योंकि जब वह क्रिया बन जाए, तब मैं देख पाऊंगा। लेकिन तुम क्रिया के पहले ही उसको देख सकते हो--भाव शरीर में, कि क्रोध उठ आया। लेकिन जो क्रोध उठा है, उसके भी अणु हैं जो सूक्ष्म शरीर से आते हैं। और वे अणु अगर न आएं तो भाव शरीर में क्रोध नहीं उठ सकता। अब वह जो सूक्ष्म शरीर है, एस्ट्रल जो बॉडी है, वह कहना चाहिए, सिर्फ तरंगों का समूह है। और हमारी सब स्थितियां...

एक उदाहरण से हम समझने की कोशिश करें। कभी पानी अलग दिखाई पड़ता है, हाइड्रोजन अलग दिखाई पड़ती है, आक्सीजन अलग दिखाई पड़ती है। आक्सीजन में पानी का कोई पता नहीं चलता, पानी में आक्सीजन कहीं दिखाई नहीं पड़ती। पानी का कोई गुण आक्सीजन में नहीं है, कोई गुण हाइड्रोजन में नहीं है, लेकिन दोनों के मिलने से पानी बन जाता है, दोनों में कुछ छिपे हुए गुण हैं जो मिलकर प्रकट हो जाते हैं।

एस्ट्रल बॉडी में कभी क्रोध नहीं दिखाई पड़ता, कभी प्रेम नहीं दिखाई पड़ता, कभी घृणा नहीं दिखाई पड़ती, कभी भय नहीं दिखाई पड़ता। लेकिन तरंगें उसके पास हैं, जो दूसरे शरीर, भाव शरीर से जुड़कर तत्काल कुछ बन जाती हैं।

तो जब तुम दूसरे शरीर में पूरी तरह जागोगे, और जब तुम क्रोध के प्रति पूरी तरह जागोगे, तब तुम पाओगे कि क्रोध के पहले भी कोई घटना घट रही है। यानी क्रोध जो है वह शुरुआत नहीं है, वह भी कहीं पहुंच गई बात है।

ऐसा समझो कि पानी से एक बबूला उठ रहा है, रेत से एक बबूला उठा है और पानी में चल पड़ा है। जब वह रेत से छूटता है तब तो दिखाई नहीं पड़ता, आधे पानी तक आ जाता है तब भी दिखाई नहीं पड़ता, जब बिल्कुल पानी से बीता, दो बीता नीचे रह जाता है, जहां तक हमारी आंख जाती है, तब हमें दिखाई पड़ता है। लेकिन तब भी बहुत छोटा दिखाई पड़ता है। फिर वह पानी की सतह के पास आने लगता है। जैसे पास आने लगता है, वैसे बड़ा होने लगता है। क्योंकि हमें दिखाई पड़ने लगता है--एक; ज्यादा साफ दिखाई पड़ने लगता है--दो; और पानी का जो दबाव और वजन है, वह उस पर कम होने लगता है, इसलिए वह बड़ा होने लगता है। जितना नीचे था उतना पानी की सतह का ज्यादा दबाव था, वह उसको दबाए हुए थी। जैसे-जैसे सतह का दबाव कम होने लगा, वह ऊपर आने लगा, वह बड़ा होने लगा। और जब वह सतह पर आता है तो वह पूरा बड़ा हो जाता है। लेकिन जहां वह पूरा बड़ा होता है, वहीं वह फूट भी जाता है।

तो उसने बड़ी यात्रा की। उसने बड़ी यात्रा की। कुछ हिस्से थे जहां वह हमें दिखाई नहीं पड़ता था। लेकिन वहां भी वह था; वह रेत में दबा था। फिर वह वहां से निकला, तब भी हमें दिखाई नहीं पड़ता था, वह पानी में दबा था। फिर वह पानी की सतह के पास आया तब हमें दिखाई पड़ा, लेकिन बहुत छोटा मालूम पड़ रहा था। फिर वह पानी की सतह पर आया और तब वह पूरा हुआ, और तब वह फूटा।

क्रोध की तरंग की यात्रा

तो हमारे शरीर तक आते-आते क्रोध का बबूला पूरी तरह फूटता है; वह सतह पर आकर प्रकट होता है। चाहो तो तुम इस शरीर पर आने के पहले उसको भाव शरीर में रोक सकते हो; वह दमन होगा। लेकिन अगर तुम भाव शरीर में उसको गौर से देखो तो तुम बहुत हैरान होओगे कि उसकी यात्रा भाव शरीर के और भी पहले से हो रही है--लेकिन वहां वह क्रोध नहीं है, वहां वह सिर्फ तरंगें है।

जैसे मैंने कहा कि... जगत में, असल में, अलग-अलग पदार्थ नहीं हैं, अलग-अलग तरंगों के संघात हैं। कोयला भी वही है, हीरा भी वही है; सिर्फ तरंगों के संघात में फर्क पड़ गया है। और अगर हम किसी भी पदार्थ को तोड़ते चले जाएं तो नीचे जाकर विद्युत ही रह जाती है, और उसके अलग-अलग संघात और अलग-अलग संघट अलग-अलग तत्वों को बना देते हैं। ऊपर वे सब भिन्न हैं, लेकिन बहुत गहरे में जाकर एक हैं।

तो अगर तुम भाव शरीर के प्रति जागकर उसका पीछा करोगे, तो तुम अचानक सूक्ष्म शरीर में प्रवेश कर जाओगे। और वहां तुम पाओगे--क्रोध क्रोध नहीं है, क्षमा क्षमा नहीं है, बल्कि दोनों की तरंगें एक ही हैं; प्रेम और घृणा की तरंगें एक ही हैं, सिर्फ संघात का भेद है। और इसलिए तुम्हें बड़ी हैरानी होती है कि तुम्हारा प्रेम कभी घृणा में बदल जाता है, कभी घृणा प्रेम में बदल जाती है! जिनको हम बिल्कुल विपरीत चीजें समझते हैं, ये बदल कैसे जाती हैं! जिसको मैं कल मित्र कहता था, वह आज शत्रु हो गया। तो मैं कहता हूं कि शायद मैं धोखा खा गया, वह मित्र था ही नहीं। क्योंकि हम मानते हैं कि मित्र शत्रु कैसे हो सकता है!

मित्रता और शत्रुता की तरंगें एक ही हैं--संघात का फर्क है, सघनता का फर्क है, चोट का फर्क है--तरंगों में कोई फर्क नहीं है। जिसे हम प्रेम कहते हैं--सुबह प्रेम है, दोपहर को घृणा हो जाता है; दोपहर को घृणा है, सांझ को प्रेम हो जाता है। बड़ी कठिनाई होती है कि हम एक ही व्यक्ति को प्रेम करते हैं, उसी को घृणा भी करते हैं क्या?

घृणा और प्रेम का संबंध

फ्रायड को यही ख्याल था कि जिसको हम घृणा करते हैं उसी को हम प्रेम भी करते हैं; जिसको हम प्रेम करते हैं उसको घृणा भी करते हैं। उसने जो कारण खोजा वह थोड़ी दूर तक सही था। लेकिन चूंकि उसे मनुष्य के और शरीरों का कोई बोध नहीं है, इसलिए वह बहुत दूर तक खोज नहीं सका; उसने जो कारण खोजा वह बहुत सतह पर था। उसने कारण यह खोजा कि बच्चा जब मां के पास बड़ा होता है तो एक ही आब्जेक्ट को--मां को--वह कभी प्रेम भी करता है, जब मां उसको प्रेम देती है; और जब मां उसको डांटती-डपटती, क्रोध करती है, मौके होते हैं जब वह नाराज होती है, तब वह उसको घृणा करने लगता है। तो एक ही आब्जेक्ट के प्रति, एक ही मां के प्रति दोनों बातें एक साथ उसके मन में भर जाती हैं--घृणा भी करता है, प्रेम भी करता है। कभी सोचता है मार डालूं, कभी सोचता है इसके बिना कैसे जी सकता हूं, यही मेरा प्राण है--वह दोनों बातें सोचने लगता है। इन दोनों बातों को सोचने की वजह से, मां उसके प्रेम का पहला आब्जेक्ट है, इसलिए सदा के लिए सब प्रेम के आब्जेक्ट, जब भी कोई प्रेम किसी से वह करेगा, तो वह एसोसिएशन के कारण उसको घृणा भी करेगा और प्रेम भी करेगा।

लेकिन यह बहुत सतह पर पकड़ी गई बात है। यह बबूला वहां पकड़ा गया है जहां फूटने के करीब है। यह बहुत गहरे में नहीं पकड़ी गई है बात। गहरे में, अगर एक मां को भी बच्चा अगर घृणा और प्रेम दोनों कर पाता

है, तो इसका मतलब यह है कि घृणा और प्रेम में जो अंतर होगा वह बहुत गहरे में क्वांटिटी का होगा, क्वालिटी का नहीं हो सकता। वह जो अंतर होगा वह परिमाण का होगा, वह गुण का नहीं हो सकता। क्योंकि प्रेम और घृणा एक ही चित्त में एक साथ अस्तित्व में नहीं हो सकते। अगर हो सकते हैं, तो एक ही आधार पर हो सकते हैं कि वे कनवर्टिबल हों, उनकी तरंगें यहां से वहां डोल जाती हों।

चित्त के समस्त द्वंद्वों की जड़ें सूक्ष्म शरीर में

तो यह तीसरे शरीर में ही साधक को पता चलता है जाकर कि हमारे सारे चित्त में द्वंद्व क्यों है। एक आदमी जो सुबह मेरे पैर छू गया और कह गया कि आप भगवान हो, वह शाम को जाकर गाली देता है और कहता है, वह आदमी शैतान है। वह कल सुबह आकर फिर पैर छूता है और कहता है, आप भगवान हो। कोई आकर मुझे कहता है कि उस आदमी की बात पर भरोसा मत करना, वह कभी आपको भगवान कहता है, कभी शैतान कहता है।

मैं कहता हूं, उसी पर भरोसा करने योग्य है; क्योंकि वह जो आदमी कह रहा है, उसका कोई कसूर नहीं है, वह कोई एक-दूसरे के विपरीत बातें नहीं कह रहा है। ये एक ही स्पेक्ट्रम की बातें हैं; ये एक ही सीढ़ी की बातें हैं। और इन सीढ़ियों में परिमाण का अंतर है।

असल में, जैसे ही वह भगवान कहता है, वैसे ही वह एक बात को पकड़ लेता है। और चित्त जो है, वह द्वंद्व है। दूसरा पहलू कहां जाएगा? वह उसके नीचे दबा बैठा रहता है; और प्रतीक्षा करता है कि जब तुम्हारा पहला भाव थक जाए तो मुझे मौका देना। थक जाता है थोड़ी देर में... कितनी देर तक भगवान कहता रहेगा! थोड़ी देर में थक जाता है, तो फिर कहता है--शैतान है पक्का वह आदमी। और ये दोनों दो चीजें नहीं हैं, ये दोनों बिल्कुल एक चीजें हैं।

और जब तक मनुष्य-जाति यह न समझ पाएगी ठीक से कि हमारे तीसरे शरीर में हमारे सारे द्वंद्व एक ही तरंगों के रूप हैं, तब तक हम मनुष्य की समस्याओं को हल न कर पाएंगे। क्योंकि सबसे बड़ी समस्या यही है कि जिसे हम प्रेम करते हैं, उसे हम घृणा भी करते हैं; जिसके बिना हम नहीं जी सकते, उसकी हम हत्या भी कर सकते हैं; जो हमारा मित्र है, वह गहरे में हमारा शत्रु भी है। यह बड़ी से बड़ी समस्या है; क्योंकि जीवन के लिए जहां संबंध हैं हमारे, वहां यही सबसे बड़ा मामला है। लेकिन अगर एक बार समझ में आ जाए कि इनके संघात एक जैसे हैं, इनमें कोई फर्क नहीं है...

आमतौर से हम अंधेरे और प्रकाश को दो विरोधी चीजें मानते हैं। जो गलत है। वैज्ञानिक अर्थों में तो अंधेरा जो है वह प्रकाश की कम से कम, कम से कम, न्यूनतम अवस्था है। और अगर हम खोज सकें तो अंधेरे में भी प्रकाश मिल जाएगा। ऐसा अंधेरा नहीं खोजा जा सकता जहां प्रकाश अनुपस्थित हो। यह दूसरी बात है कि हमारे खोज के साधन थक जाएं, हमारी आंख न देख पाती हो, हमारे यंत्र न देख पाते हों, लेकिन प्रकाश जो है--वह, और अंधकार जो है, वे एक ही यात्रा-पथ पर, एक ही चीज के तरंगों के विभिन्न आघात हैं।

जैसे इसको और दूसरी तरह से समझें तो ज्यादा आसान होगा, क्योंकि प्रकाश और अंधकार में हमने ज्यादा बड़ा, एब्सोल्यूट विरोध मान रखा है। लेकिन ठंड और गर्मी को हम समझें तो आसानी हो जाएगी; उसमें हमने इतना एब्सोल्यूट विरोध नहीं मान रखा है। और कभी एक छोटा सा प्रयोग करने जैसा मजेदार होता है--कि एक हाथ को थोड़ा सिगड़ी पर तपा लें और एक हाथ को बर्फ पर रखकर ठंडा कर लें, और फिर दोनों हाथों को एक ही तापमान के पानी में डाल दें। और तब आप बड़ी मुश्किल में पड़ जाएंगे कि उस पानी को ठंडा कहें

कि गर्म कहें! क्योंकि एक हाथ खबर देगा कि वह गर्म है और एक हाथ खबर देगा कि वह ठंडा है। तब आप बड़ी मुश्किल में पड़ जाएंगे कि इस पानी को हम क्या कहें--ठंडा कहें कि गर्म कहें! क्योंकि आपके दो हाथ दो खबरें दे रहे हैं।

असल में, ठंड और गर्म दो चीजें नहीं हैं, एक सापेक्ष अनुभव है। जिस चीज को हम ठंडा कह रहे हैं, उसका मतलब केवल इतना है कि हम उससे ज्यादा गर्म हैं; जिस चीज को हम गर्म कह रहे हैं, उसका कुल मतलब इतना है कि हम उससे ज्यादा ठंडे हैं। हमारे और उसके बीच हम परिमाण का अंतर बता रहे हैं, और कुछ भी नहीं कह रहे हैं। कोई चीज ठंडी नहीं है, कोई चीज गर्म नहीं है। या जो भी चीज ठंडी है वह साथ ही गर्म है। असल में, गर्मी और ठंडक बड़े बेमानी शब्द हैं। कहना चाहिएः तापमान; वह ठीक शब्द है।

इसलिए वैज्ञानिक ठंडे और गर्म का प्रयोग नहीं करता; वह कहता है, कितने डिग्री का तापमान है। क्योंकि ठंडे और गर्म काव्य के शब्द हैं, कविता के शब्द हैं; खतरनाक हैं विज्ञान में, उससे कुछ पता नहीं चलता। एक आदमी कहे कि यह कमरा ठंडा है, उससे कुछ पता नहीं चलता कि मतलब क्या है उसका। हो सकता है उस आदमी को बुखार चढ़ा हो और कमरा ठंडा मालूम पड़ रहा हो, और कमरा ठंडा बिल्कुल न हो। इसलिए जब तक इस आदमी का पता न चल जाए कि इस आदमी की बुखार की क्या स्थिति है, तब तक कमरे के बाबत इसके वक्तव्य का कोई मतलब नहीं है। तो इसलिए इससे हम पूछते हैंः तुम यह मत बताओ कि कमरा ठंडा है या गर्म, तुम यह बताओ डिग्री कितनी है? तो डिग्री जो है वह ठंडक और गर्मी का पता नहीं देती, डिग्री सिर्फ इस बात का पता देती है कि तापमान इतना है। अगर उससे आपकी डिग्री ज्यादा है तो वह ठंडा मालूम पड़ेगा, अगर आपकी डिग्री कम है तो वह गर्म मालूम पड़ेगा।

ठीक ऐसा ही प्रकाश और अंधकार के बाबत सच है--कि हमारे देखने की क्षमता कितनी है। रात हमें अंधेरी मालूम पड़ती है, उल्लू को नहीं मालूम पड़ती होगी; उल्लू को दिन बहुत अंधकारपूर्ण है। और उल्लू जरूर समझता होगा कि ये आदमी जो हैं, बड़े अजीब लोग हैं, रात में जागते हैं!

स्वभावतः, आदमी उल्लू को बड़ा उल्लू इसीलिए समझता है न, उसको नाम ही इसीलिए दिया हुआ है। लेकिन उल्लू क्या सोचते हैं आदमियों के बाबत, यह हमें कुछ पता नहीं है। निश्चित ही, उसके लिए तो दिन जो है वह रात है और रात जो है वह दिन है। और वह सोचता होगा, आदमी भी कैसा नासमझ है! अब इसमें इतने-इतने बड़े ज्ञानी होते हैं, लेकिन फिर भी ये जागते हैं रात में ही! और जब दिन होता है तब सो जाते हैं! जब असली वक्त आता है जागने का, तब ये बेचारे सो जाते हैं।

उल्लू को रात में दिखाई पड़ता है; उसकी आंख सक्षम है तो उसके लिए रात अंधकार नहीं है। अंधकार और प्रकाश, ऐसे ही प्रेम और घृणा की तरंगें हैं जिनमें अनुपात है।

सूक्ष्म शरीर में जागने से द्वंद्व-मुक्ति

तो तीसरे तल पर जब तुम जागना शुरू होओगे, तो तुम एक बहुत अजीब स्थिति में पहुंचोगे। और वह अजीब स्थिति यह होगी कि तुम्हारे पास चुनाव न रह जाएगा कि हम प्रेम को चुनें कि घृणा को। क्योंकि तब तुम जानते होः ये दोनों एक ही चीज के नाम हैं; और तुमने एक को भी चुना तो दूसरा भी चुन लिया गया; दूसरे से तुम बच नहीं सकते।

इसलिए तीसरे शरीर पर खड़े हुए आदमी से अगर तुम कहोगे कि हमें प्रेम करो, तो वह पूछेगा कि घृणा की भी तैयारी है? घृणा सह सकोगे? नहीं, तुम कहोगे, हम तो प्रेम चाहते हैं, आप हमें प्रेम दें। तो वह कहेगा, यह बहुत मुश्किल है कि मैं तुम्हें प्रेम दे सकूं, क्योंकि प्रेम जो है वह घृणा के संघातों का ही एक रूप है--असल में, ऐसा रूप जो तुम्हारे प्रीतिकर लगता है। और घृणा ऐसा रूप है, उन्हीं किरणों का, उन्हीं तरंगों का, जो तुम्हें अप्रीतिकर लगता है।

तो तीसरे तल पर खड़ा हुआ व्यक्ति द्वंद्व से मुक्त होने लगेगा; क्योंकि पहली दफा उसे पता चलेगा कि द्वंद्व, जिन दो चीजों को उसने दो माना था, वे दो नहीं थीं, वे एक ही थीं; जो दो शाखाएं दिखाई पड़ती थीं, वे पीड़ पर आकर एक ही वृक्ष की शाखाएं थीं। और बड़ा पागल था वह कि वह एक को बचाने के लिए दूसरे को काटता रहा था। लेकिन उससे कुछ कटना नहीं हो सकता था, क्योंकि वृक्ष गहरे में एक ही था। पर दूसरे पर जागकर ही तुम्हें तीसरे का बोध हो सकता है, क्योंकि तीसरे की बड़ी सूक्ष्म तरंगें हैं; वहां भाव भी नहीं बनता, सीधी तरंग होती है।

सूक्ष्म शरीर में जागने पर आभामंडल का दर्शन

और अगर तीसरे की तरंग का तुम्हें पता चलने लगा तो तुम्हें एक अनूठा अनुभव होना शुरू होगाः तब तुम किसी व्यक्ति को देखकर ही कह सकोगे कि वह किन तरंगों से तरंगायित है। क्योंकि तुम्हें अपनी तरंगों का पता नहीं है, इसलिए तुम दूसरे को नहीं पहचान पा रहे हो। नहीं तो प्रत्येक व्यक्ति के चेहरे के पास उसके तीसरे शरीर से निकलनेवाली तरंगों का पुंज होता है। जो हम बुद्ध और महावीर, राम और कृष्ण के आसपास जो ऑरा बनाते रहे हैं, एक प्रतिभा-मंडल बनाते रहे हैं सिर के आसपास, वह देखा गया मंडल है। उसके रंग पकड़े गए हैं; और उसके विशेष रंग हैं। तीसरे शरीर का ठीक अनुभव हो तो वे रंग तुम्हें दिखाई पड़ने शुरू हो जाते हैं। और वे रंग जब तुम्हें दिखाई पड़ने शुरू हो जाते हैं तो अपने ही नहीं दिखाई पड़ते, दूसरे के भी दिखाई पड़ने शुरू हो जाते हैं।

असल में, जितने दूर तक हम अपने गहरे शरीर को देखते हैं, उतने ही दूर तक हम दूसरे के शरीर को भी देखने लगते हैं। चूंकि हम अपनी फिजिकल बॉडी को ही जानते हैं, इसलिए हम दूसरे की भी फिजिकल बॉडी को ही जानते हैं। जिस दिन हम अपने ईथरिक शरीर को जानेंगे, उसी दिन हमें दूसरे के ईथरिक शरीर का पता चलना शुरू हो जाएगा। इसके पहले कि तुम क्रोध करो, जाना जा सकता है कि अब तुम क्रोध करोगे; इसके पहले कि तुम प्रेम प्रकट करो, कहा जा सकता है कि तुम अब प्रेम प्रकट करने की तैयारी कर रहे हो।

तो जिसको हम दूसरे के भाव को समझ लेना कहते हैं, उसमें कुछ और बड़ी बात नहीं है, अपने ही भाव शरीर के प्रति जागने से दूसरे के भाव को पकड़ना एकदम आसान हो जाता है; क्योंकि उसकी सारी स्थितियां दिखाई पड़ने लगती हैं। और तीसरे शरीर पर जागने पर तो चीजें बड़ी साफ हो जाती हैं, क्योंकि फिर तो रंग भी दिखाई पड़ने लगते हैं उसके व्यक्तित्व के।

विभिन्न शरीरों के आभामंडल

संन्यासियों के, साधु के कपड़ों का चुनाव, उनके रंग का चुनाव तीसरे शरीर के रंगों को देखकर किया गया। चुनाव अलग-अलग हुए, क्योंकि अलग-अलग शरीरों पर जोर था। जैसे बुद्ध ने पीला रंग चुना, क्योंकि

सातवें शरीर पर जोर था उनका। सातवें शरीर को उपलब्ध व्यक्ति के आसपास जो ऑरा बनता है, वह पीला है। इसलिए बुद्ध ने पीत वस्त्र चुने अपने भिक्षुओं के लिए।

लेकिन पीत वस्त्र चुने तो जरूर, लेकिन पीत वस्त्र के कारण ही बौद्ध भिक्षु को हिंदुस्तान में टिकना मुश्किल हुआ। क्योंकि पीला रंग जो है, वह हमारे मन में मृत्यु से संबंधित है। वह है भी, क्योंकि सातवां शरीर जो है, वह मृत्यु--महामृत्यु है। तो पीला रंग जो है, वह हमारे मन में बहुत गहरे में मृत्यु का बोध देता है।

लाल रंग जीवन का बोध देता है। इसलिए गेरुए वस्त्र वाला संन्यासी ज्यादा आकर्षक सिद्ध हुआ बजाय पीत वस्त्र संन्यासियों के। वह जीवंत मालूम पड़ा। वह खून का रंग है, और छठवें शरीर का रंग है--ब्रह्म का, कास्मिक बॉडी का रंग है। तो जैसा सूर्योदय होता है सुबह, वैसा रंग है। छठवें शरीर पर वैसे रंग का ऑरा बनना शुरू होता है।

जैनों ने सफेद वस्त्र चुने, वह पांचवें शरीर का रंग है; वह आत्म शरीर से संबंधित है। जैनों का आग्रह ईश्वर की फिकर छोड़ देने का है, निर्वाण की फिकर छोड़ देने का है; क्योंकि आत्मा तक ही वैज्ञानिक चर्चा हो सकती है। और महावीर बहुत ही वैज्ञानिक बुद्धि के आदमी हैं; वे उतनी ही दूर तक बात करेंगे जितनी दूर तक गणित जाता है। उससे आगे वे कहेंगे, अब हम बात नहीं करेंगे, अब तुम जाकर देखना; वह दूसरी बात है, हम बात नहीं करेंगे। क्योंकि कोई भूल-चूक की बात नहीं करना चाहते वे। कुछ मिस्टिक बात नहीं करना चाहते। तो जिसको मिस्टिसिज्म से बचना है, वह पांचवें शरीर के आगे इंच भर नहीं बात करेगा। तो महावीर ने सफेद रंग चुन लिया, वह पांचवें शरीर का रंग था।

और भी मजे की बात हैः तीसरे शरीर से यह बोध होना शुरू हो जाएगा; तीसरे शरीर से तुम्हें रंग दिखाई पड़ने शुरू हो जाएंगे। ये रंग भी तुम्हारे भीतर होनेवाले सूक्ष्म तरंगों के स्पंदन का प्रभाव हैं। आज नहीं कल, इनके चित्र लिए जा सकेंगे। क्योंकि जब आंख से इन्हें देखा जा सकता है तो बहुत दिन तक कैमरे की आंख नहीं देखेगी, ऐसा कहना मुश्किल है। इनके चित्र आज नहीं कल लिए जा सकेंगे। और तब हम व्यक्तित्व को पहचानने के लिए एक बड़ी अदभुत क्षमता को उपलब्ध हो जाएंगे।

रंगों का मनुष्य के व्यक्तित्व से गहरा संबंध

वह तुम ब्लूशर का टेस्ट देखे? एक जर्मन विचारक है, जिसने लाखों लोगों पर रंगों का अध्ययन किया है। और अब तो यूरोप और अमेरिका में बहुत से अस्पताल भी उसका प्रयोग कर रहे हैं। क्योंकि आप कौन सा रंग पसंद करते हैं, यह आपके बहुत गहरे व्यक्तित्व की खबर देता है। एक खास बीमारी का मरीज एक खास तरह के रंग को पसंद करता है, स्वस्थ आदमी दूसरे तरह के रंग को पसंद करता है। शांत आदमी दूसरे तरह के रंग को पसंद करता है, महत्वाकांक्षी आदमी दूसरे तरह के रंग को पसंद करता है, महत्वाकांक्षाहीन आदमी बिल्कुल दूसरे तरह के रंग को पसंद करता है। और इन रंगों की पसंद से तुम अपने तीसरे शरीर पर तुम्हारे क्या प्रकट हो रहा है, उसकी खबर देते हो। अब यह बड़े मजे की बात है कि तुम्हारे तीसरे शरीर पर जो रंग प्रकट हो रहे हैं तुम्हारे चारों तरफ, अगर उनको पकड़ा जाए, और तुमसे रंगों की जांच करवाई जाए, तो यह बड़े मजे की बात है कि वे रंग दोनों बराबर एक से होते हैं--जो रंग तुम्हारे चारों तरफ फैलता है, वही रंग तुम पसंद करते हो।

रंगों का मनोविज्ञान

रंग का अदभुत अर्थ और उपयोग है। अब जैसे, कभी यह ख्याल में नहीं था कि रंग इतना अर्थपूर्ण हो सकता है और व्यक्तित्व की बाहर तक खबर दे सकता है। और बाहर से भी रंग के प्रभाव भीतर के व्यक्तित्व तक छूते हैं; उनसे बचा नहीं जा सकता। जैसे किसी रंग को देखकर तुम क्रोधित हो जाओगे। जैसे लाल रंग है, वह सदा से क्रांति का रंग इसीलिए समझा गया। इसलिए क्रांतिवादी जो है वह लाल झंडा बना लेगा। इसमें बचाव बहुत मुश्किल है। क्योंकि वह क्रोध का रंग है। और क्रोधी चित्त के आसपास गहरे लाल रंग का वर्तुल बनता है--खून का रंग है वह, हत्या का रंग है, क्रोध का रंग है, मिटाने का रंग है।

अब यह बड़े मजे की बात है कि अगर इस कमरे की सारी चीजों को लाल रंग दिया जाए, तो आपका ब्लड-प्रेशर बढ़ जाएगा; जितने लोग यहां बैठे हैं, सभी का रक्तचाप बढ़ जाएगा। और अगर कोई व्यक्ति निरंतर लाल रंग में रहे, तो कोई भी हालत में उसका रक्तचाप स्वस्थ नहीं रह सकता, वह अस्वस्थ हो जाएगा। नीला रंग रक्तचाप को नीचे गिरा देता है, वह आकाश का रंग है और परम शांति का रंग है। अगर सब तरफ नीला कर दिया जाए तो तुम्हारे रक्तचाप में कमी पड़ती है

रंग चिकित्सा

आदमी की बात हम छोड़ दें, अगर एक नीली बोतल में पानी भरकर हम उसे सूरज की किरणों में रख दें, तो वह जो पानी है वह रक्तचाप को कम करता है। उस पानी का केमिकल कंपोजीशन बदल जाता है। वह नीले रंग को पीकर उसकी आंतरिक व्यवस्था बदल जाती है। अगर उसको हम पीले रंग की बोतल में रख दें, तो उसका व्यक्तित्व दूसरा हो जाता है। अगर तुम पीले रंग की बोतल में वही पानी रखो और नीले रंग की बोतल में वही पानी रखो, और दोनों को धूप में रख दो, तो नीले रंग का पानी सड़ने में असमर्थ हो जाएगा और पीले रंग का पानी तत्काल सड़ जाएगा। नीली बोतल का पानी बहुत दिन तक शुद्ध बना रहेगा, सड़ेगा नहीं; पीले रंग का पानी एकदम सड़ जाएगा। वह पीला रंग जो है मृत्यु का रंग है, और चीजों को एकदम बिखरा देता है।

इस सबके वर्तुल तुम्हारे व्यक्तित्व के आसपास तुम्हें खुद भी दिखाई पड़ने शुरू हो जाएंगे। यह तीसरे शरीर पर होगा। और जब इन तीनों शरीरों पर तुम जागकर देख पाओगे, तो तुम्हारा वह जागकर जो देखना है, वह हार्मनी होगी। और तब तुम्हारे ऊपर किसी भी तरह के शक्तिपात से कोई संघातक परिणाम नहीं हो सकता; क्योंकि यही तुम्हारा जो बोधपथ है, शक्तिपात की ऊर्जा इसी बोधपथ से तुम्हारे चौथे शरीर में प्रवेश कर जाएगी; यह रास्ता बन जाएगा। अगर यह रास्ता नहीं है तो खतरा पूरा है। इसलिए मैंने कहा कि हमारे तीन शरीर सक्षम होने चाहिए तभी गति हो सकती है।

जैविक विकास में प्रथम तीन शरीरों की क्रमिक सक्रियता

प्रश्नः चौथे, पांचवें, छठवें या सातवें चक्रों में स्थित व्यक्ति मृत्यु के बाद पुनर्जन्म ले तो उसकी क्रमशः चक्रीय स्थिति क्या होगी? अशरीरी उच्च योनियां किन शरीर वाले व्यक्तियों को मिलती हैं? अंतिम उपलब्धि के लिए क्या अशरीरी योनि के प्राणी को पुनः मनुष्य शरीर लेना पड़ता है?

अब इसमें कुछ और बातें दूर से समझनी शुरू करना पड़ेंगी। सात शरीर की मैंने बात कही। सात शरीरों को ध्यान में रखकर हम पूरे अस्तित्व को भी सात विभागों में बांट दें। सभी अस्तित्व में सातों शरीर सदा मौजूद हैं--जागे हुए या सोए हुए; सक्रिय या निष्क्रिय; विकृत या स्वरूप स्थित--लेकिन मौजूद हैं।

एक धातु का टुकड़ा पड़ा है, एक लोहे का टुकड़ा पड़ा है, इसमें भी सातों शरीर मौजूद हैं; लेकिन सातों ही सोए हुए हैं; सातों ही निष्क्रिय हैं। इसलिए लोहे का टुकड़ा मरा हुआ मालूम पड़ता है। एक पौधा है। उसका पहला शरीर सक्रिय हो गया है; उसका भौतिक शरीर सक्रिय हो गया है। इसलिए पौधे में जीवन की पहली झलक हमें मिलनी शुरू हो जाती है कि वह जीवित है। एक पशु है, उसका दूसरा शरीर सक्रिय हो गया है। इसलिए पशु में मूवमेंट्स शुरू हो जाते हैं, जो पौधे में नहीं हैं। पौधा एक जगह जड़ जमाकर खड़ा है, गतिमान नहीं है; क्योंकि गति के लिए दूसरा शरीर जगना जरूरी है, ईथरिक बॉडी जगना जरूरी है। सारी गति उससे आती है। अगर सिर्फ एक शरीर जगा हुआ है तो अगति में होगा, ठहरा हुआ होगा, खड़ा हुआ होगा।

पौधा खड़ा हुआ पशु है। कुछ पौधे हैं जो थोड़ी गति करते हैं। वे पशु और पौधे के बीच की अवस्था में हैं; उन्होंने यात्रा की है थोड़ी। जैसे अफ्रीका के दलदलों में कुछ पौधे हैं, जिनकी जड़ों से वे पकड़ने-छोड़ने का काम करते हैं, थोड़ा हटते हैं इधर-उधर। वह पशु और पौधे के बीच की संक्रमण कड़ी है।

पशु में दूसरा शरीर भी सक्रिय हो गया है। सक्रिय का मतलब सजग नहीं, सक्रिय का मतलब क्रियाशील हो गया है; पशु को कोई पता नहीं है। उसके दूसरे ईथरिक शरीर के सक्रिय हो जाने की वजह से उसमें क्रोध भी आता है, भय भी आता है, प्रेम भी प्रकट करता है, भागता भी है, बचता भी है, डरता भी है, छिपता भी है, हमला भी करता है--और गतिमान है।

आदमी में तीसरा शरीर सक्रिय हो गया है--एस्ट्रल बॉडी। इसलिए न केवल वह शरीर से गति करता है, बल्कि चित्त से भी गति करता है, मन से भी यात्रा करता है--भविष्य की भी यात्रा करता है, अतीत की भी यात्रा करता है। पशुओं के लिए कोई भविष्य नहीं है। इसलिए पशु कभी चिंतित और तनावग्रस्त नहीं दिखाई पड़ते; क्योंकि सब चिंता भविष्य की चिंता है--कल क्या होगा, वही गहरी चिंता है। लेकिन पशु के लिए कल नहीं है, आज ही सब कुछ है। आज भी नहीं है--उसके अर्थों में तो; क्योंकि जिसको कल नहीं है, उसको आज का क्या मतलब है? जो है, वह है।

मनुष्य में और भी सूक्ष्म गति आई है। वह गति उसके मन की गति है। वह तीसरे एस्ट्रल बॉडी से आई है। वह अब मन से भविष्य की भी कल्पना करता है। मृत्यु के बाद भी क्या होगा, इसकी भी चिंता करता है; मरने के बाद कहां जाऊंगा, नहीं जाऊंगा, उसकी भी चिंता करता है; जन्म के पहले कहां था, नहीं था, उसकी भी फिकर करता है।

अशरीरी उच्च योनियां

चौथा शरीर थोड़े से मनुष्यों में सक्रिय होता है, सभी मनुष्यों में नहीं। और जिन मनुष्यों में चौथा शरीर सक्रिय हो जाता है--मनस शरीर--अगर वे मरें, तो वे देवयोनि, जिसको हम कोई भी नाम दे दें, उस तरह की योनि में प्रवेश कर जाते हैं, जहां चौथे शरीर की सक्रियता की बहुत सुविधा है। तीन शरीरों तक आदमी आदमी रहता है, सक्रिय रहे तो। चौथे शरीर से आदमी के ऊपर की योनियां शुरू होती हैं। लेकिन चौथे शरीर से एक फर्क समझ लेना जरूरी होगा।

अगर चौथा शरीर सक्रिय हो जाए, तो आदमी को शरीर लेने की संभावना कम और अशरीरी अस्तित्व की संभावना बढ़ जाती है। लेकिन जैसा मैंने कहा कि सक्रिय और सचेतन का फर्क याद रखना। अगर सिर्फ सक्रिय हो और सचेतन न हो, तो उसे हम प्रेतयोनि कहेंगे; और अगर सक्रिय हो और सचेतन भी हो, तो देवयोनि कहेंगे। प्रेत में और देव में उतना ही फर्क है। उन दोनों का चौथा शरीर सक्रिय हो गया है; लेकिन प्रेत के चौथे

शरीर की सक्रियता का उसे कोई बोध नहीं, वह अवेयर नहीं है उसके प्रति; और देव को उस चौथे शरीर की सक्रियता का बोध है, वह अवेयर है। इसलिए प्रेत अपने चौथे शरीर की सक्रियता से हजार तरह के नुकसान करता रहेगा--खुद को भी, दूसरों को भी; क्योंकि मूर्च्छा सिर्फ नुकसान ही कर सकती है। और देव बहुत तरह के लाभ पहुंचाता रहेगा--अपने को भी और दूसरों को भी; क्योंकि सजगता सिर्फ लाभ ही पहुंचा सकती है।

पांचवां शरीर जिसका सक्रिय हो गया, वह देवयोनि के भी पार चला जाता है। पांचवां शरीर आत्म शरीर है। और पांचवें शरीर पर सक्रियता और सजगता एक ही अर्थ रखती हैं; क्योंकि पांचवें शरीर पर बिना सजगता के कोई भी नहीं जा सकता। इसलिए वहां सक्रियता और सजगता साइमल्टेनियस, युगपत घटित होती हैं।

चौथे शरीर तक यात्रा हो सकती है किसी की सोए-सोए भी। अगर जाग जाए तो यात्रा बदल जाएगी, देवयोनि की तरफ हो जाएगी; और अगर सोया रहे तो यात्रा प्रेतयोनि की तरफ हो जाएगी। पांचवें शरीर के साथ सक्रियता और सजगता का एक ही अर्थ है, क्योंकि वह आत्म शरीर है; वहां बेहोश होकर आत्मा का तो कुछ अर्थ ही नहीं होता। आत्मा का मतलब ही होश है। इसलिए आत्मा का दूसरा नाम चेतना है, दूसरा नाम कांशसनेस है। वहां बेहोशी का कोई मतलब नहीं होता। तो पांचवें शरीर से तो दोनों एक ही बात हैं, लेकिन पांचवें शरीर के पहले दोनों रास्ते अलग हैं।

चौथे शरीर तक ही स्त्री-पुरुष का फासला है, और चौथे शरीर तक ही निद्रा और जागरण का फासला है। असल में, चौथे शरीर तक ही सब तरह के द्वैत और द्वंद्व का फासला है। पांचवें शरीर से सब तरह का अद्वैत और अद्वंद्व शुरू होता है। पांचवें शरीर से यूनिटी शुरू होती है। उसके पहले एक डाइवर्सिटी थी, एक भेद था।

मनुष्य योनि एक चौराहा है

पांचवें शरीर की जो संभावना है, वह देवयोनि से नहीं है, न प्रेतयोनि से है। यह थोड़ी बात ख्याल ले लेने जैसी है। पांचवें शरीर की संभावना प्रेतयोनि से इसलिए नहीं है कि प्रेतयोनि मूर्च्छित योनि है; और सजगता के लिए जो शरीर अनिवार्य है, वह उसके पास नहीं है; पहला शरीर उसके पास नहीं है, फिजिकल बॉडी उसके पास नहीं है, जिससे सजगता शुरू होती है; पहली सीढ़ी उसके पास नहीं है, जिससे सजगता शुरू होती है। वह सीढ़ी न होने की वजह से प्रेत को वापस लौटना पड़े मनुष्य योनि में। इसलिए मनुष्य योनि एक तरह के क्रास रोड पर है।

देवयोनि ऊपर है, लेकिन आगे नहीं। इस फर्क को ठीक से समझ लेना! मनुष्य योनि से देवयोनि ऊपर है, लेकिन आगे नहीं; क्योंकि आगे जाने के लिए तो मनुष्य योनि पर वापस लौट आना पड़ता है। प्रेत को इसलिए लौटना पड़ता है कि वह मूर्च्छित है और मूर्च्छा तोड़ने के लिए भौतिक शरीर एकदम जरूरी है; देव को इसलिए लौटना पड़ता है कि देवयोनि में किसी तरह का दुख नहीं है। असल में, जाग्रत योनि है, जागृति में दुख नहीं हो सकता। और जहां दुख नहीं है वहां साधना की कोई तड़फ नहीं पैदा होती; जहां दुख नहीं है वहां मिटाने का कोई ख्याल नहीं है; जहां दुख नहीं है वहां पाने का कोई ख्याल नहीं है।

तो देवयोनि एक स्टैटिक योनि है, जिसमें गति नहीं है आगे। और सुख की एक खूबी है कि अगर सुख तुम्हें मिल जाए तो आगे कोई गति नहीं रह जाती। दुख हो तो सदा गति होती है; क्योंकि दुख से हटने को, दुख से मुक्त होने को तुम कुछ खोजते हो। सुख मिल जाए तो खोज बंद हो जाती है। इसलिए एक बड़ी अजीब बात है जो कि समझ में नहीं आती लोगों को।

महावीर और बुद्ध के जीवन में इस उल्लेख का बड़ा मूल्य है कि देवता उनसे शिक्षा लेने आते हैं। और जब कोई बुद्ध को, महावीर को पूछता है कि क्या मजा है कि मनुष्य के पास और देवता आएं! देवयोनि तो ऊपर है, तो मनुष्य के पास वे आएं, यह अजीब मामला मालूम होता है।

लेकिन यह अजीब नहीं है। योनि तो ऊपर है, लेकिन स्टैटिक योनि है; मूवमेंट खत्म हो गया वहां; वहां से आगे कोई गति नहीं है। और अगर आगे गति करनी हो तो जैसे लंबी छलांग लगाने के लिए थोड़ा पीछे लौटना पड़ता है, फिर छलांग लगानी पड़ती है, ऐसा देवयोनि से वापस लौटकर मनुष्य योनि पर खड़े होकर ही छलांग लगती है।

सुखों से ऊबकर ही देवयोनि से लौटना संभव

सुख की एक खूबी यह है कि उसमें आगे गति नहीं है और दूसरी खूबी यह है कि सुख उबानेवाला है, बोरिंग है। सुख से ज्यादा उबानेवाला तत्व दुनिया में दूसरा नहीं है। दुख भी इतना नहीं उबाता; दुख में बोर्डम बहुत कम है--है ही नहीं; सुख में बहुत बोर्डम है। दुखी चित्त कभी नहीं ऊबता।

इसलिए दुखी समाज असंतुष्ट समाज नहीं होता और दुखी आदमी असंतुष्ट आदमी नहीं होता; सिर्फ सुखी आदमी असंतुष्ट होता है और सुखी आदमी का समाज असंतुष्ट समाज होता है। अमेरिका जितना असंतुष्ट है, उतना भारत नहीं है। उसका कारण कुल इतना है कि हम दुखी हैं और वे सुखी हैं; आगे गति नहीं रह गई, और दुख नहीं है जो गति देता था, और सुख की पुनरुक्ति है--वही सुख, वही सुख रोज-रोज, रोज-रोज दोहरकर बेमानी हो जाता है।

तो देवयोनि जो है वह एक... बोर्डम की चरम शिखर है वह; उससे ज्यादा ऊबनेवाला कोई स्थान नहीं जगत में। वहां जाकर जैसी ऊब पैदा होती है... ।

लेकिन वक्त लगता है ऊब पैदा होने में। और फिर संवेदना के ऊपर निर्भर करता हैः जितना संवेदनशील व्यक्ति होगा उतनी जल्दी ऊब जाएगा; जितना संवेदनहीन व्यक्ति होगा उतनी देर तक ऊबेगा। नहीं भी ऊबे! भैंस एक ही घास को रोज चरती रहती है और जिंदगी भर में नहीं ऊबती। संवेदना जैसी चीज बहुत कम है। जितनी संवेदना होगी, जितनी सेंसिटिविटी होगी, उतनी ऊब जल्दी पैदा हो जाएगी। क्योंकि संवेदनशीलता जो है वह नये की तलाश करती है--और नया चाहिए। संवेदना एक तरह की चंचलता है, और चंचलता एक तरह का जीवन है।

तो देवयोनि एक अर्थ में डेड योनि है। प्रेतयोनि भी मरी योनि है, लेकिन फिर भी देवयोनि प्रेतों से भी ज्यादा मरी योनि है; क्योंकि प्रेतों की दुनिया में एक अर्थ में ऊब बिल्कुल नहीं है। क्योंकि दुख काफी है और दुख देने की सुविधा काफी है; दूसरे को सताने का भी रस बहुत है, और खुद भी सताए जाने की बहुत सुविधा है। उपद्रव की बहुत गुंजाइश है। देवयोनि बिल्कुल शांत योनि है जहां उपद्रव बिल्कुल नहीं है।

तो देवयोनि से जो लौटना होता है, वह लौटना होता है ऊब के कारण। अंततः जो लौटना है वहां से, वह बोर्डम की वजह से। और ध्यान रहे, इस लिहाज से वह मनुष्य योनि से ऊपर है कि वहां संवेदनशीलता बहुत बढ़ जाती है; और हम जिन सुखों से वर्षों में नहीं ऊबते, उन सुखों से उस योनि में एक बार भी भोगने से ऊब पैदा हो जाती है।

इसलिए तुमने पढ़ा होगा पुराणों में कि देवता पृथ्वी पर जन्म लेने को तरसते हैं। अब यह हैरानी की बात है, उनके तरसने का कोई कारण नहीं है। क्योंकि यहां पृथ्वी पर सब देवयोनि में जाने को तरस रहे हैं। और ऐसी

भी कथाएं हैं कि कोई देवता उतरेगा और पृथ्वी पर किसी स्त्री को प्रेम करने आएगा। ये कथाएं सूचक हैं। कोई अप्सरा उतरेगी पृथ्वी पर और किसी पुरुष से प्रेम करेगी। ये कथाएं सूचक हैं; ये चित्त की सूचक हैं। ये यह कह रही हैं कि उस योनि में सुख तो बहुत है, लेकिन सुख नीरस हो जाता है--सुख, सुख, सुख! उसके बीच में अगर दुख के क्षण न हों, तो उबानेवाला हो जाता है। और अगर कभी हमारे सामने दोनों विकल्प रखे जाएं कि अनंत सुख चुन लो--सुख ही सुख रहेगा, कभी ऐसा क्षण न आएगा कि तुम्हें लगे कि दुख है; और अनंत दुख चुन लो, दुख ही दुख रहेगा; तो बुद्धिमान आदमी दुख को चुन लेगा।

तो यह जो देवयोनि है, वहां से वापस लौटना पड़े; प्रेतयोनि है, वहां से वापस लौटना पड़े।

पांचवें शरीर में मृत व्यक्ति अयोनिज

मनुष्य योनि चौराहे पर है, वहां से सब यात्राएं संभव हैं। मनुष्य योनि पर जो आदमी पांचवें शरीर को उपलब्ध हो जाए, उसको फिर कहीं भी नहीं जाना पड़ता, फिर वह अयोनि में प्रवेश करता है, वह योनि-मुक्त होता है।

योनि का मतलब ख्याल में है न?

किसी मां की योनि में प्रवेश से मतलब है योनि का। वह किसी वर्ग की मां हो! गर्भ-प्रवेश से मतलब है योनि का। तो वह कोई गर्भ-प्रवेश नहीं करता। जो अपने को उपलब्ध हो गया, उसकी यात्रा एक अर्थ में समाप्त हो गई। यह जो पांचवें शरीर का व्यक्ति है, इसी को हम कहते हैं--मुक्ति, मोक्ष।

लेकिन अगर यह अपने पर तृप्त हो जाए, रुक जाए, तो रुक सकता है--अनंतकाल तक रुक सकता है; क्योंकि यहां न दुख है, न सुख है; न बंधन है, न पीड़ा है; यहां कुछ भी नहीं है। लेकिन सिर्फ स्वयं का होना है यहां, सर्व का होना नहीं है। तो अनंत समय तक भी कोई व्यक्ति इस स्थिति में पड़ा रह सकता है, जब तक कि उसमें सर्व को जानने की जिज्ञासा न उठ जाए। है वह जिज्ञासा का बीज हमारे भीतर, इसलिए वह उठ आती है।

जिज्ञासा परम होनी चाहिए

और इसलिए साधक अगर पहले से ही सर्व को जानने की जिज्ञासा रखे, तो पांचवीं योनि में रुकने की असुविधा से बच जाता है। इसलिए अगर पूरी की पूरी साइंस को तुम समझोगे, तो पहले से ही जिज्ञासा परम होनी चाहिए। कहीं बीच के किसी ठहराव को अगर तुम मंजिल समझकर चले, तो जब वह तुम्हें मिल जाएगी मंजिल तो तुम्हारा मन होगा कि बात खत्म हो गई।

पांचवें शरीर में अहंकार से मुक्ति, अस्मिता से बंधन

तो पांचवें शरीर के व्यक्ति को कोई योनि नहीं लेनी पड़ती। लेकिन वह स्वयं में बंधा रह जाता है--सबसे छूट जाता है, स्वयं में बंधा रह जाता है; अस्मिता से नहीं छूटता, अहंकार से छूट जाता है। क्योंकि अहंकार जो था, वह सदा दूसरे के खिलाफ दावा था। इसको ठीक से समझ लेना! जब मैं कहता हूं--"मैं", तो मैं किसी "तू" को दबाने के लिए कहता हूं। इसलिए जब मैं किसी "तू" को दबा लेता हूं तो मेरा "मैं" बहुत अकड़कर प्रकट होता है और जब कोई "तू" मुझे दबा देता है तो मेरा "मैं" बहुत रिरियाता, रोता हुआ प्रकट होता है। वह "मैं" जो है, वह "तू" को दबाने का प्रयास है।

तो अहंकार जो है वह सदा दूसरे की अपेक्षा में है। दूसरा तो खत्म हो गया, दूसरे से अब कोई लेना-देना नहीं है, उससे कोई अपेक्षा न रही। अस्मिता जो है वह अपनी अपेक्षा में है। अहंकार और अस्मिता में इतना ही फर्क है--तू से कोई मतलब नहीं है मुझे, लेकिन फिर भी मैं तो हूं। यह दावा नहीं है मैं का अब, लेकिन मेरा होना तो है ही। अब मैं किसी तू के खिलाफ नहीं कह रहा हूं "मैं", लेकिन मैं हूं, बिना किसी तू की अपेक्षा के।

इसलिए मैंने कहा--अहंकार कहेगा "मैं", और अस्मिता कहेगी "हूं"। उतना फर्क होगा। "मैं हूं" में दोनों बातें हैं। "मैं" अहंकार है और "हूं" अस्मिता है--दि फीलिंग ऑफ आईनेस! तू के खिलाफ नहीं, अपने पक्ष में--"मैं हूं!"

दुनिया में कोई भी आदमी न रह जाए--तीसरा महायुद्ध हो और सब लोग मर जाएं, और मैं रह जाऊं। तो मेरे भीतर अहंकार नहीं रह जाएगा, लेकिन अस्मिता होगी। मैं जानूंगा कि मैं हूं। हालांकि मैं किसी से न कह सकूंगा कि "मैं", क्योंकि कोई "तू" नहीं बचा जिससे मैं कह सकूं। तो जब बिल्कुल तुम अकेले हो और कोई भी दूसरा नहीं है, तब भी तुम हो--होने के अर्थ में।

तो पांचवें शरीर पर अहंकार तो विदा हो जाता है, इसलिए सबसे बड़ी कड़ी जो बंधन की है वह गिर जाती है, लेकिन अस्मिता रह जाती है, हूं का भाव रह जाता है--मुक्त, स्वतंत्र, कोई बंधन नहीं, कोई सीमा नहीं। लेकिन अस्मिता की अपनी सीमा है--दूसरे की कोई सीमा नहीं रही, लेकिन अस्मिता की अपनी सीमा है।

छठवें शरीर पर अस्मिता टूटती है, या छोड़ी जाती है। और छठवां शरीर जो है वह कास्मिक बॉडी है।

द्विज अर्थात ब्रह्मज्ञानी

पांचवें शरीर के बाद योनि का सवाल समाप्त हो गया, लेकिन जन्म अभी बाकी हैं। इस फर्क को भी ख्याल में ले लेना! एक जन्म तो योनि से होता है, किसी के गर्भ से होता है, और एक जन्म अपने ही गर्भ से होता है। इसलिए इस मुल्क में हम ब्राह्मण को द्विज कहते हैं। असल में, ब्रह्मज्ञानी को कहते थे कभी; ब्राह्मण को कहने की कोई जरूरत नहीं है; ब्रह्मज्ञानी को द्विज कहते थे। उसमें एक और तरह का जन्म है--ट्वाइस बॉर्न।

एक जन्म तो वह है जो गर्भ से मिलता है, वह दूसरे से मिलता है; और एक ऐसा जन्म भी है, जो फिर अपने से ही! क्योंकि जब आत्म शरीर उपलब्ध हो गया, अब तुम्हें दूसरे से जन्म कभी नहीं मिलेगा; अब तो तुम्हें अपने ही आत्म शरीर को जन्माना होगा कास्मिक बॉडी में। और यह तुम्हारी अंतर्यात्रा हैः अब तुम्हारा अंतर्गर्भ है और अंतर-योनि है। अब इसका बाह्य योनि से और बाह्य गर्भ से कोई संबंध नहीं है। अब तुम्हारे कोई माता-पिता न होंगे, अब तुम्हीं पिता और तुम्हीं माता और तुम्हीं पुत्र बनोगे। अब यह बिल्कुल निपट अकेली यात्रा है।

तो इस स्थिति को, पांचवें शरीर से छठवें शरीर में जब प्रवेश हो, तब कहना चाहिए कोई व्यक्ति द्विज हुआ, उसके पहले नहीं। उसका दूसरा जन्म हुआ जो अयोनिज है, जिसमें योनि नहीं है; और जिसमें पर-गर्भ नहीं है, जो आत्मगर्भ है।

उपनिषद का ऋषि कहता है कि उस गर्भ के ढक्कन को खोल, वह जो तूने स्वर्ण-पात्रों से ढंक रखा है! उस गर्भ के ढक्कन को खोल, वह जो तूने स्वर्ण के पर्दों से ढंक रखा है!

पर्दे जरूर वहां स्वर्ण के हैं। यानी पर्दे ऐसे हैं कि उन्हें तोड़ने का मन न होगा; पर्दे ऐसे हैं कि बचाने की तबीयत होगी। अस्मिता सबसे ज्यादा कीमती पर्दा है जो हमारे ऊपर है, उसे हम ही न छोड़ना चाहेंगे। कोई दूसरा बाधा देनेवाला नहीं होगा; कोई कहेगा नहीं कि रोको, कोई रोकनेवाला नहीं होगा। लेकिन पर्दा ही इतना प्रीतिकर है अपने होने का कि उसे छोड़ न पाओगे।

इसलिए ऋषि कहता है, स्वर्ण के पर्दों को हटा और उस गर्भ को खोल, जिससे व्यक्ति द्विज हो सके।

तो ब्रह्मज्ञानी को द्विज... ब्रह्मज्ञानी का मतलब छठवें शरीर पानेवाले को... पांचवें शरीर से छठवें शरीर की यात्रा ट्वाइस बॉर्न, द्विज होने की यात्रा है। और गर्भ बदला, योनि बदली, अब सब अयोनिज हुआ, और गर्भ अपना हुआ, आत्मगर्भा हुए हम।

पांचवें से छठवें में जन्म है, और छठवें से सातवें में मृत्यु है। इसलिए उसको द्विज नहीं कहा; उसको द्विज कहने का कोई मतलब नहीं है; क्योंकि अब... मेरा मतलब समझे तुम? अब समझना आसान हो जाएगा।

पांचवें से छठवें को हम कहते हैं--जन्म अपने से। छठवें से सातवें को हम कहते हैं--मृत्यु अपने से। दूसरों से जन्म लिए थे--दूसरों की योनियों से, दूसरों के शरीरों से; वह मृत्यु भी दूसरों की थी।

पर-योनि से जन्मे व्यक्ति की मृत्यु भी परायी

इसे थोड़ा समझना पड़ेगा। जब जन्म दूसरे से था, तो मृत्यु तुम्हारी कैसे हो सकती है? जन्म तो मैं लूंगा अपने माता-पिता से, और मरूंगा मैं? यह कैसे हो सकता है? ये दोनों छोर असंगत हो जाएंगे। ये दोनों छोर असंगत हो जाएंगे। जब जन्म पराया है, तो मृत्यु मेरी नहीं हो सकती; जब जन्म दूसरे से मिला है, तो मृत्यु भी दूसरे की है। फर्क इसलिए है कि उस बार मैं एक योनि से प्रकट हुआ था, इस बार दूसरी योनि में प्रवेश करूंगा, इसलिए पता नहीं चल रहा। उस वक्त आया था तो दिखाई पड़ गया था, अब जा रहा हूं तो दिखाई नहीं पड़ रहा।

समझ रहे हो न तुम? जन्म जो है उसके पहले मृत्यु है। कहीं तुम मरे थे, कहीं तुम जन्मे हो। जन्म दिखाई पड़ता है, तुम्हारी मृत्यु का हमें पता नहीं।

अब तुम्हें एक जन्म मिला एक मां-बाप से--एक शरीर मिला, एक देह मिली, एक सत्तर साल, सौ साल दौड़नेवाला एक यंत्र मिला। यह यंत्र सौ साल बाद गिरेगा। इसका गिरना उसी दिन से सुनिश्चित हो गया, जिस दिन तुम जन्मे--गिरना! कब गिरेगा, नहीं उतना महत्वपूर्ण है--गिरना! जन्म के साथ ही तय हो गया है कि तुम मरोगे। जिस योनि से तुम जन्म लाए, उसी योनि से तुम मृत्यु भी ले आए--साथ ही ले आए।

असल में, जन्म देनेवाली योनि में मृत्यु छिपी ही है, सिर्फ फासला पड़ेगा सौ साल का। इस सौ साल में तुम एक छोर से दूसरे छोर की यात्रा पूरी करोगे। और जिस जगह से तुम आए थे, ठीक उसी जगह वापस लौट जाओगे। तो जो जन्म दूसरे की योनि से हुआ है, वह मृत्यु भी दूसरे की ही योनि से जन्मे शरीर की है; वह मृत्यु भी परायी है। तो न तो तुम जन्मे हो अभी, और न तुम अभी मरे हो कभी; जन्म में भी दूसरा माध्यम था, मृत्यु में भी दूसरा ही माध्यम होने को है।

पांचवें शरीर से जब तुम छठवें शरीर में, ब्रह्म शरीर में प्रवेश करोगे आत्म शरीर से, तो तुम पहली दफा जन्मोगे, आत्मगर्भा बनोगे, अयोनिज तुम्हारा जन्म होगा। लेकिन तब एक अयोनिज मौत भी आगे प्रतीक्षा करेगी। और यह जन्म जहां तुम्हें ले जाएगा, मृत्यु तुम्हें वहां से भी आगे ले जाएगी; क्योंकि जन्म तुम्हें ब्रह्म में ले जाएगा, मृत्यु तुम्हें निर्वाण में ले जाएगी।

छठवें शरीर की चेतनाएं अवतार, ईश्वर-पुत्र व तीर्थंकर

यह जन्म बहुत लंबा हो सकता है, यह जीवन अंतहीन हो सकता है। जिनको हम ईश्वर कहें, ऐसा व्यक्ति अगर टिका रहेगा तो ईश्वर बन जाएगा; ऐसी चेतना अगर कहीं रुकी रह जाएगी तो अरबों लोग उसे पूजेंगे,

उसके प्रति प्रार्थनाएं प्रेषित की जाएंगी। जिनको हम अवतार कहते, ईश्वर कहते, ईश्वर-पुत्र कहते, वे पांचवें शरीर से छठवें शरीर में गए हुए लोग हैं; तीर्थंकर कहते, वे सब छठवें शरीर में गए हुए लोग हैं।

यदि ये चाहें तो इस छठवें शरीर में ये अनंत काल तक रुक सकते हैं। इस जगह से ये बड़ा उपकार भी कर सकते हैं। हानि का तो अब कोई उपाय नहीं है, कोई सवाल भी नहीं है। इस जगह से ये बड़े गहरे सूचक बन सकते हैं। और इस तरह के लोग हैं, इस छठवें शरीर में, जो निरंतर प्रयास करते रहते हैं पीछे के यात्रियों के लिए, बहुत तरह के प्रयास करते रहते हैं। इस छठवें शरीर से चेतनाएं बहुत तरह के संदेश भी भेजती रहती हैं।

और इस छठवें शरीर के लोगों को, जिनको इनका थोड़ा सा बोध हो जाएगा, वे इनको भगवान से नीचे तो रखने का कोई उपाय नहीं है। भगवान वे हैं ही। उनके भगवान होने में कोई कमी नहीं रह गई, ब्रह्म शरीर उन्हें उपलब्ध है।

जीते जी भी इसमें कोई प्रवेश कर जाता है; जीते जी भी कोई पांचवें से छठवें में प्रवेश कर जाता है। यह शरीर भी मौजूद है। और जब जीते जी कोई पांचवें से छठवें में प्रवेश कर जाता है, तो हम उसे बुद्ध, महावीर, राम और कृष्ण और क्राइस्ट बना लेते हैं। जिनको दिखाई पड़ जाता है, वे ही बना लेते हैं; जिनको नहीं दिखाई पड़ता, उनका तो कोई सवाल नहीं है।

बुद्ध के लिए, गांव में एक आदमी को दिखाई पड़ता है कि वे ईश्वर हो गए, और दूसरे आदमी को दिखाई पड़ता है--कुछ भी नहीं, साधारण तो आदमी हैं। हमारे जैसे उनको सर्दी-जुकाम भी होता है; हमारे जैसे वे बीमार भी पड़ते हैं; हमारे जैसे भोजन भी करते हैं; हमारे जैसे चलते-सोते भी हैं; हमारे जैसे मरते भी हैं; तो हममें-उनमें फर्क क्या है? फिर जिनको दिखाई पड़ता है, जिनको नहीं दिखाई पड़ता--उनकी भीड़ सदा बड़ी है जिनको नहीं दिखाई पड़ता। जिनको दिखाई पड़ता है, वे पागल मालूम पड़ते हैं। और बेचारे पागल दिखते भी हैं, क्योंकि उनके पास कोई इविडेंस भी तो नहीं।

असल में, दिखाई पड़ने के लिए कोई इविडेंस नहीं होता। अब यह माइक मुझे दिखाई पड़ रहा है, और अगर आपको यहां किसी को दिखाई न पड़े, तो मैं और क्या इविडेंस दूंगा कि यह दिखाई पड़ रहा है! मैं कहूंगा, दिखाई पड़ रहा है। और मैं पागल हो जाऊंगा; क्योंकि जब सबको नहीं दिखाई पड़ रहा है और आपको दिखाई पड़ रहा है, तो आपका दिमाग खराब है।

तीर्थंकर को पहचानना मुश्किल

ज्ञान को भी हम बहुत गहरे अर्थ में गणना से नापते हैं। उसका भी मतदान है, वोटिंग है उसका भी।

तो बुद्ध किसी को दिखाई पड़ते हैं--भगवान हैं; किसी को दिखाई पड़ते हैं--नहीं हैं। जिसको दिखाई पड़ते हैं--नहीं; वह कहता हैः क्या पागलपन कर रहे हो! यह बुद्ध वही है जो शुद्धोधन का बेटा है, फलाने का लड़का है; फलानी इसकी मां थी; फलानी इसकी बहू है; वही तो है, यह कोई और तो नहीं है। बुद्ध के बाप तक को नहीं दिखाई पड़ता कि यह आदमी कुछ और हो गया है। वे भी यही समझते हैं कि मेरा बेटा है, और वे भी कहते हैं कि तू कहां की नासमझी में पड़ा है, घर वापस लौट आ! यह सब तू क्या कर रहा है? राज्य सब बर्बाद हो रहा है, मैं बूढ़ा हुआ जा रहा हूं, अब तू वापस लौट आ, अब सम्हाल ले सब। उनको भी नहीं दिखाई पड़ता कि अब यह किस राज्य का मालिक हो गया।

पर जिसको दिखाई पड़ता है उसके लिए यह तीर्थंकर हो जाएगा, भगवान हो जाएगा, ईश्वर का बेटा हो जाएगा--कुछ भी हो जाएगा। वह कोई नाम चुनेगा, जो छठवें शरीर के आदमी के लिए इस स्थिति में भी दिखाई पड़ने लगेगा।

छठवें शरीर के सीमांत पर निर्वाण की झलक

सातवां शरीर जो है, वह इस शरीर में कभी उपलब्ध नहीं होता। इस शरीर में सातवां शरीर कभी उपलब्ध नहीं होता। इस शरीर में हम छठवें शरीर के सीमांत पर भर खड़े हो सकते हैं--ज्यादा से ज्यादा; जहां से सातवां शरीर दिखाई पड़ने लगता है; वह छलांग, वह गड्ढ, वह एबिस, वह इटरनिटी दिखाई पड़ने लगती है; वहां हम खड़े हो सकते हैं।

इसलिए बुद्ध के जीवन में दो निर्वाण की बात कही जाती है जो बड़ी कीमत की है। एक निर्वाण तो वह, जो उन्हें बोधिवृक्ष के नीचे, निरंजना के तीर पर हुआ--चालीस साल मरने के पहले। इसे कहा जाता है निर्वाण। इस दिन वे उस सीमांत पर खड़े हो गए। और इस सीमांत पर वे चालीस साल खड़े ही रहे--इसी सीमांत पर। दूसरा, जिस दिन उनकी मृत्यु हुई, उस दिन कहा जाता है, वह हुआ महापरिनिर्वाण! उस दिन वे उस सातवें में प्रवेश कर गए।

इसलिए मरने के पहले उनसे कोई पूछता है कि तथागत का मृत्यु के बाद क्या होगा? तो बुद्ध कहते हैं, तथागत नहीं होंगे। लेकिन यह मन को भरता नहीं हमारे। फिर-फिर उनके भक्त उनसे पूछते हैं कि जब महानिर्वाण होता है बुद्ध का, तो फिर क्या होता है? तो बुद्ध कहते हैं, जहां सब होना बंद हो जाता है उसी का नाम महापरिनिर्वाण है। जब तक कुछ होता रहता है, तब तक छठवां; जब तक कुछ होता रहता है, तब तक छठवां, तब तक अस्तित्व; फिर अनस्तित्व।

तो बुद्ध अब नहीं होंगे। अब कुछ भी नहीं बचेगा। अब तुम समझना कि वे कभी थे ही नहीं। वे ऐसे ही विदा हो जाएंगे जैसे स्वप्न विदा हो जाता है। वे ऐसे ही विदा हो जाएंगे, जैसे रेत पर खिंची रेखा हवा के झोंके में साफ हो जाती है; जैसे पानी पर लकीर खींचते हैं, और खींच भी नहीं पाते और विदा हो जाती है; ऐसे ही वे खो जाएंगे; अब कुछ भी नहीं होगा।

मगर यह मन को भरता नहीं। हमारा मन करता है--कहीं, कहीं, कहीं... किसी तल पर, कहीं किसी कोने में... दूर, कितने ही दूर, लेकिन हों--किसी रूप में हों, अरूप हो जाएगा; आकार में हों, निराकार हो जाएगा; शब्द में हों, निःशब्द हो जाएगा; सत्व में हों, शून्य हो जाएगा।

सातवें शरीर के बाद की फिर कोई खबर देने का उपाय नहीं है। सीमांत पर खड़े हुए लोग हैं जो सातवें शरीर को देखते हैं, उस गड्ढ को देखते हैं, लेकिन उस गड्ढ में जाकर खबर देने का कोई उपाय नहीं है। इसलिए सातवें शरीर के संबंध में सब खबरें सीमा के किनारे खड़े हुए लोगों की खबरें हैं; गए हुए की कोई खबर नहीं है, क्योंकि कोई उपाय नहीं। जैसे कि हम पाकिस्तान की सीमा पर खड़े होकर देखें और कहें कि वहां एक मकान है, और एक दुकान है, और एक आदमी खड़ा है, और एक वृक्ष है, और सूरज निकल रहा है। लेकिन यह खड़ा है आदमी हिंदुस्तान की सीमा में।

सातवें शरीर में महामृत्यु

छठवें से सातवें में महामृत्यु है। और तुम बड़े हैरान होओगे जानकर कि बहुत प्राचीन समय में आचार्य का मतलब यह होता था कि जो मृत्यु सिखाए, जो महामृत्यु सिखाए। ऐसे सूत्र हैं, जो कहते हैं--आचार्य यानी मृत्यु। इसलिए नचिकेता जब पहुंच गया है यम के पास, तो वह ठीक आचार्य के पास पहुंच गया है। वह मृत्यु ही सिखा सकता है यम, और कुछ सिखा सकता नहीं। जहां मिटना सिखाया जाए, जहां टूटना और समाप्त होना सिखाया जाए।

पर इसके पहले एक जन्म आवश्यक है, क्योंकि अभी तो तुम हो ही नहीं। और जिसे तुमने समझा है कि तुम हो, वह तो बिल्कुल उधार है, वह बारोड है, वह तुम्हारा अस्तित्व नहीं। इसे तुम अगर खोओगे भी तो तुम इसके मालिक न थे। यानी मामला ऐसा है कि जैसे मैं कोई चीज चुरा लूं और फिर मैं उसका दान कर दूं। वह चीज मेरी थी नहीं, तो दान मेरा कैसे होगा? तो जो मेरा नहीं है उसे तो मैं दे भी नहीं सकता।

इसलिए यहां इस जगत में जिसको हम त्यागी कहते हैं वह त्यागी नहीं है; क्योंकि वह वह छोड़ रहा है जो उसका था नहीं। और जो था नहीं उसके छोड़नेवाले तुम कैसे हो सकते हो? और जो तुम्हारा था नहीं, उसको तुमने छोड़ा, यह दावा पागलपन का है।

त्याग घटित होता है छठवें शरीर से सातवें में प्रवेश से; रिनन्सिएशन वहां है, क्योंकि वहां तुम वही छोड़ते हो जो तुम हो। और कुछ तो तुम्हारे पास बचता नहीं, तुम्हीं हो, उसी को तुम छोड़ते हो। इसलिए त्याग की घटना तो सिर्फ एक ही है, वह है छठवें से सातवें शरीर में प्रवेश की। उसके पहले तो हम बच्चों की बातें कर रहे हैं। जो आदमी कह रहा है मेरा है, वह पागलपन की बातें कर रहा है; जो कह रहा है कि जो भी मेरा था वह मैंने छोड़ दिया है, वह भी पागलपन की बातें कर रहा है। क्योंकि दावेदार वह अब भी है कि वह मेरा था और मैं मानता था कि मेरा था; और अब मैंने किसी और को दे दिया, और अब वह उसका हो गया है।

हमारे तो सिर्फ हम हैं। लेकिन उसका हमें कोई पता नहीं है। इसलिए पांचवें से छठवें में तुम्हें पता चलेगा कि तुम कौन हो, और छठवें से सातवें में तुम त्याग कर सकोगे उसका जो तुम हो।

और जिस दिन कोई उसका त्याग कर पाता है जो वह है, उसके बाद फिर कुछ पाने को शेष नहीं रह जाता, कुछ खोने को शेष नहीं रह जाता। उसके बाद तो कोई सवाल ही नहीं है। उसके बाद अनंत सन्नाटा और चुप्पी है। उसके बाद हमारे पास यह भी हम नहीं कह सकते कि आनंद है, यह भी नहीं कह सकते कि शांति है, यह भी नहीं कह सकते कि सत्य है, असत्य है, प्रकाश है--कुछ भी नहीं कह सकते।

यह सात शरीर की स्थिति होगी।

पांचवें शरीर का मिलना और जागना एक ही बात

प्रश्नः स्थूल शरीर के जीवित रहते अगर पांचवां शरीर उपलब्ध हुआ, तो मृत्यु के बाद वह व्यक्ति फिर कौन से शरीर में जन्म लेगा?

पांचवें शरीर के बाद, अगर पांचवां शरीर मनुष्य शरीर में उपलब्ध हुआ, और पांचवां शरीर बिना जाग्रत हुए उपलब्ध नहीं होता, अगर तुम जाग गए पांचवें शरीर में, जागे बिना उपलब्ध नहीं होता, तो पांचवें शरीर का मिलना और जागना एक ही बात है। फिर तुम्हें पहले शरीरों की कोई जरूरत नहीं, अब तो तुम पांचवें शरीर से ही काम कर सकते हो। तुम जागे हुए आदमी हो, अब कोई कठिनाई नहीं है। अब तुम्हें पहले शरीरों की कोई जरूरत नहीं है। यह तो चौथे शरीर तक सवाल बना रहेगा सदा।

अगर चौथे शरीर में देवता हो गया एक आदमी--चौथा शरीर सक्रिय हो गया और जाग गया। चौथा शरीर निष्क्रिय रहा, सोया रहा, तो प्रेत हो गया। यह दोनों स्थितियों में तुम्हें वापस लौटना पड़ेगा, क्योंकि तुम्हें अभी अपने स्वरूप का कोई पता नहीं चला, अभी तो तुम्हें स्वरूप का पता लगाने के लिए भी पर की जरूरत है। उस पर के ही आधार पर तुम अभी स्व का पता लगा पाओगे। अभी तो अपने को पहचानने के लिए तुम्हें दूसरे की जरूरत है। अभी दूसरे के बिना तुम अपने को भी न पहचान पाओगे। अभी तो दूसरा ही तुम्हारी सीमा बनाएगा और तुम्हें पहचानने का कारण बनेगा।

तो इसलिए चौथे शरीर तक तो कोई भी स्थिति में जन्म लेना पड़ेगा। पांचवें शरीर के बाद जन्म की कोई जरूरत नहीं है; अर्थ भी नहीं है। पांचवें शरीर के बाद तुम्हारा होना इन सब चार शरीरों के बिना हो जाएगा। लेकिन पांचवें शरीर से भी अभी एक और नये तरह के जन्म की बात शुरू होती है, वह छठवें शरीर में प्रवेश की। वह दूसरी बात है, उसके लिए इन शरीरों की कोई भी जरूरत नहीं है।

प्रश्नः पांचवें शरीर में जिसका प्रवेश हो गया, वह अपनी मृत्यु के बाद स्थूल शरीर नहीं पा सकता?

नहीं!

तीर्थंकर को वासना बांधनी पड़ती है

प्रश्नः तीर्थंकर यदि जन्म लेना चाहे तो स्थूल शरीर में लेंगे न?

अब यह जो मामला है, यह बहुत दूसरी बात हुई। यह जो बात है न, यह बिल्कुल दूसरी बात है। थोड़ी सी बात कर लें।

अगर तीर्थंकर को जन्म लेना हो, जैसा कि तीर्थंकर जन्म लेता है, तो एक बड़ी मजे की बात है और वह यह है कि मरने के पहले उसे चौथे शरीर को छोड़ना नहीं पड़ता। और न छोड़ने का एक उपाय है और उसकी विधि है। और वह है तीर्थंकर होने की वासना।

तो चौथा शरीर जब छूट रहा हो तब एक वासना बचा लेनी पड़ती है, ताकि चौथा न छूटे। चौथे के छूटने के बाद तो जन्म ले नहीं सकते, फिर तो तुम्हारा सेतु टूट गया जिससे तुम आ सकते थे। तो चौथे शरीर के पहले तीर्थंकर होने की वासना को बचाना पड़ता है।

इसलिए सभी लोग, तीर्थंकर होने के योग्य लोग तीर्थंकर नहीं होते। बहुत से तीर्थंकर होने योग्य लोग सीधे यात्रा पर निकल जाते हैं। थोड़े से लोग... और इसलिए उनकी संख्या भी तय कर रखी है। वह संख्या तय करने का कारण है कि उतने से काम चल जाता है, उतने से ज्यादा लोगों को वैसी वासना रखने की कोई जरूरत नहीं। इसलिए संख्या तय कर रखी है कि इतने युग के लिए इतने तीर्थंकर काफी हो जाएंगे; इतने आदमी के लिए इतने तीर्थंकर काफी पड़ेंगे।

तो तीर्थंकर की वासना बांधनी पड़ती है। और उस वासना को बड़ी तीव्रता से बांधना पड़ता है, क्योंकि वह आखिरी वासना है, और जरा छूट जाए हाथ से तो बात गई। तो दूसरों को मैं सिखाऊंगा, दूसरों को मैं बताऊंगा, दूसरों को मैं समझाऊंगा, दूसरों के लिए मुझे आना है--वह चौथे शरीर में उतनी एक वासना का बीज प्रबल होना चाहिए। अगर वह प्रबल है तो उतरना हो जाएगा।

पर उसका मतलब यही हुआ कि अभी चौथे शरीर को छोड़ा नहीं है; पांचवें शरीर पर पैर रख लिया है, लेकिन चौथे शरीर पर एक खूंटी गाड़ रखी है। वह इतनी शीघ्रता से उखड़ती है कि अक्सर मुश्किल मामला है बहुत।

तीर्थंकर बनाने की प्रक्रिया

इसलिए तीर्थंकर बनाने की प्रोसेस है। और इसलिए तीर्थंकर स्कूल्स में बनते हैं, वे इंडिविजुअल्स नहीं हैं। जैसे कि एक स्कूल साधना कर रहा है, कुछ साधक लोग साधना कर रहे हैं। और उनमें वे एक आदमी को पाते हैं जिसमें कि शिक्षक होने की पूरी योग्यता है--जो, जो जानता है उसे कह सकता है; जो, जो जानता है उसे बता सकता है; जो, जो जानता है उसे दूसरे तक कम्युनिकेट कर सकता है--तो वह स्कूल उसके चौथे शरीर पर खूंटियां गाड़ना शुरू कर देगा और उसको कहेगा कि तुम चौथे शरीर की फिकर करो, यह चौथा शरीर खत्म न हो जाए; क्योंकि तुम्हारा यह चौथा शरीर काम पड़ेगा, इसको बचा लो। और इसको बचाने के उपाय सिखाए जाएंगे।

तीर्थंकर का करुणावश पुनर्जन्म लेना

और इसको बचाने के लिए उतनी मेहनत करनी पड़ती है, जितनी छोड़ने के लिए नहीं करनी पड़ती। क्योंकि छोड़ना तो एकदम सरलता से हो जाता है। और जब सब नावों की खूंटियां उखड़ गई हों, और पाल खिंच गया हो और हवा भर गई हो, और दूर का सागर पुकार रहा हो, और आनंद ही आनंद हो, तब वह जो एक खूंटी है, उसको रोकना कितना कठिन है, उसका हिसाब लगाना मुश्किल है।

इसलिए तीर्थंकर को हम कहते हैं--तुम महा करुणावान हो। उसका और कोई कारण नहीं है; क्योंकि उसकी करुणा का बड़ा हिस्सा तो यही है कि जब उसे जाना था, जब जाने की सब तैयारी पूरी हो गई थी, तब उनके लिए वह रुक गया है जो तट पर अभी हैं और जिनकी नावें अभी तैयार नहीं हैं। उसकी नाव बिल्कुल तैयार थी। अब वह उस तट के कष्ट झेल रहा है, उस तट की धूल भी झेल रहा है, उस तट की गालियां भी झेल रहा है, उस तट के पत्थर भी झेल रहा है--और उसकी नाव बिल्कुल तैयार थी, और वह कभी भी जा सकता था। वह नाहक रुक गया है इन सबके बीच। और ये सब उसे मार भी सकते हैं, हत्या भी कर सकते हैं। तो उसकी करुणा का कोई अंत नहीं।

लेकिन उस करुणा की वासना स्कूल में पैदा होती है। इसलिए इंडिविजुअल साधक तो कभी तीर्थंकर नहीं हो पाते। वह तो बाद में... उनको पता ही नहीं चलता, कब खूंटी उखड़ जाती है। जब नाव चल पड़ती है तब उनको पता चलता है कि यह तो गया मामला; वह तट दूर छूटा जा रहा है। इसलिए खूंटी के लिए बहुत और तरह का...

तीर्थंकर के अवतरण में अन्य जाग्रत लोगों का योगदान

और इस सबकी सहायता के लिए, जैसा मैंने कहा कि छठवें शरीर को जो लोग उपलब्ध हैं--जिनको हम ईश्वर कहें--छठवें शरीर को जो लोग उपलब्ध हैं, वे भी कभी इसमें सहयोगी होते हैं। किसी व्यक्ति को इस योग्य पाकर, कि इसको अभी इस तट से नहीं छूटने देना है, वे हजार तरह के प्रयास करते हैं। इसके लिए देवता भी सहयोगी होते हैं--जैसा मैंने कहा कि वे शुभ में सहयोगी होंगे--वे हजार प्रयास करते हैं, इस आदमी को प्रेरणा

देते हैं कि यह खूंटी एक बचा लेना। यह खूंटी हमें दिखाई पड़ती है, तुम्हें दिखाई नहीं पड़ती, लेकिन इसको तुम बचा लेना।

तो जगत एकदम अनार्किक नहीं है, अव्यवस्था नहीं है; उसमें बड़ी गहरी व्यवस्थाएं हैं; और व्यवस्थाओं के भीतर व्यवस्थाएं हैं। और कई दफा बहुत तरह की कोशिश की जाती है, फिर भी गड़बड़ हो जाती है। जैसे कृष्णमूर्ति के संबंध में खूंटी गाड़ने की बहुत कोशिश की गई, वह नहीं हो सका। एक पूरा स्कूल बहुत मेहनत किया, वह खूंटी गाड़ने की कोशिश थी, वह नहीं हो सका। वह प्रयास असफल चला गया। उसमें पीछे से भी लोगों का हाथ था। उसमें दूरगामी आत्माओं का हाथ भी था। उसमें छठवें शरीर के लोगों का हाथ भी था, पांचवें शरीर के लोगों का हाथ भी था, उसमें चौथे शरीर के जाग्रत लोगों का भी हाथ था। और उसमें हजारों लोगों का हाथ था। और यह कोशिश थी... और कृष्णमूर्ति को चुना गया था, और दो-चार बच्चे चुने गए थे जिनसे संभावना थी कि जिनको तीर्थंकर बनाया जा सके। चूक गई वह बात, नहीं हो सकी; वह खूंटी नहीं गाड़ी जा सकी। इसलिए कृष्णमूर्ति से तीर्थंकर का जो फायदा मिल सकता था जगत को, वह नहीं मिल सका। मगर वह दूसरी बात है, उससे कोई, उससे कोई यहां मतलब नहीं है।

फिर कल बात करेंगे।

अठारहवां प्रवचन

तंत्र के गुह्य आयामों में

प्रश्नः कल की चर्चा के अंतिम हिस्से में आपने कहा कि बुद्ध सातवें शरीर में महापरिनिर्वाण को उपलब्ध हुए। लेकिन अपने एक प्रवचन में आपने कहा है कि बुद्ध का एक और पुनर्जन्म मनुष्य शरीर में मैत्रेय के नाम से होनेवाला है। तो निर्वाण काया में चले जाने के बाद पुनः मनुष्य शरीर लेना कैसे संभव होगा, इसे संक्षिप्त में स्पष्ट करने की कृपा करें।

इसको छोड़ो, पीछे लेना, तुम्हारे पूरे नहीं हो पाएंगे नहीं तो।

प्रश्नः आपने कहा है कि पांचवें शरीर में पहुंचने पर साधक के लिए स्त्री और पुरुष का भेद समाप्त हो जाता है। यह उसके प्रथम चार शरीरों के पाजिटिव और निगेटिव विद्युत के किस समायोजन से घटित होता है?

स्त्री और पुरुष के शरीरों के संबंध में, पहला शरीर स्त्री का स्त्रैण है, लेकिन दूसरा उसका शरीर भी पुरुष का ही है। और ठीक इससे उलटा पुरुष के साथ है। तीसरा शरीर फिर स्त्री का है, चौथा शरीर फिर पुरुष का है।

मैंने पीछे कहा कि स्त्री का शरीर भी आधा शरीर है और पुरुष का शरीर भी आधा शरीर है; इन दोनों को मिलकर ही पूरा शरीर बनता है।

यह मिलन दो दिशाओं में संभव है। पुरुष का शरीर--पहला शरीर--अपने से बाहर स्त्री के पहले शरीर से मिले तो एक यूनिट, एक इकाई पैदा होती है। इस इकाई से प्रकृति की संतति का, प्रकृति के जन्म का काम चलता है। यदि अंतर्मुखी हो सके पुरुष या स्त्री, तो उनके भीतर के पुरुष या स्त्री से मिलन होता है और एक दूसरी यात्रा शुरू होती है जो परमात्मा की दिशा में है। बाहर के शरीर-मिलन से जो यात्रा होती है वह प्रकृति की दिशा में है; भीतर के शरीर के मिलन से जो यात्रा होती है, वह परमात्मा की दिशा में है।

पुरुष का पहला शरीर जब अपने ही भीतर के ईथरिक बॉडी के स्त्री शरीर से मिलता है, तो एक यूनिट बनता है; स्त्री का पहला शरीर जब अपने ही ईथरिक शरीर के पुरुष तत्व से मिलता है, तो एक यूनिट बनता है। यह यूनिट बहुत अदभुत है, यह इकाई बहुत अदभुत है। क्योंकि अपने से बाहर के स्त्री या पुरुष से मिलना क्षण भर के लिए ही हो सकता है। सुख क्षण भर का होगा और फिर छूटने का दुख बहुत लंबा होगा। इसलिए उस दुख में से फिर मिलने की आकांक्षा पैदा होती है। लेकिन मिलना फिर क्षण भर का होता है और फिर छूटना फिर लंबे दुख का कारण बन जाता है।

तो बाहर के शरीर से जो मिलन है वह क्षण भर को ही घटित हो पाता है, लेकिन भीतर के शरीर से जो मिलन है वह चिरस्थायी हो जाता है--वह एक बार मिल गया तो दूसरी बार टूटता नहीं। इसलिए भीतर के शरीर पर जब तक मिलन नहीं हुआ है तभी तक दुख है। जैसे ही मिलन हुआ तो सुख की एक अंतरधारा बहनी शुरू हो जाती है। वह सुख की अंतरधारा वैसे ही है, जैसे क्षण भर के लिए बाहर के शरीर से मिलने पर संभोग में घटित होती है। लेकिन वह इतनी क्षणिक है कि वह आ भी नहीं पाती कि चली जाती है। बहुत बार तो उस

सुख का भी कोई अनुभव नहीं हो पाता, क्योंकि वह इतनी त्वरा, इतनी तेजी में घटना घटती है कि उसका कोई अनुभव भी नहीं हो पाता।

ध्यानः आत्मरति की प्रक्रिया

योग की दृष्टि से अगर अंतर्मिलन संभव हो जाए, तो बाहर संभोग की वृत्ति तत्काल विलीन हो जाती है; क्योंकि जिस आकांक्षा के लिए वह की जा रही थी, वह आकांक्षा तृप्त हो गई। मैथुन के जो चित्र मंदिरों की दीवालों पर खुदे हैं, वे अंतर्मैथुन की ही दिशा में इंगित करनेवाले चित्र हैं।

अंतर्मैथुन ध्यान की प्रक्रिया है। और इसलिए बहिर्मैथुन और अंतर्मैथुन में एक विरोध ख्याल में आ गया। और वह विरोध इसीलिए ख्याल में आ गया कि जो भी अंतर्मैथुन में प्रवेश करेगा उसका बाहर के जगत से यौन का सारा संबंध विच्छिन्न हो जाएगा। स्त्री जब अपने पहले शरीर से दूसरे शरीर से मिलेगी... तो यह भी समझ लेने जैसा है कि जब स्त्री अपने पहले शरीर से दूसरे शरीर से मिलेगी, तो जो यूनिट बनेगा दोनों के मिलने पर वह फिर स्त्रैण होगा--पूरा यूनिट; और पुरुष का पहला शरीर जब दूसरे शरीर से मिलेगा तो जो इकाई बनेगी वह फिर पुरुष की होगी--पूरा शरीर। क्योंकि जो प्रथम है वह द्वितीय को आत्मसात कर लेता है। जो प्रथम है वह द्वितीय को आत्मसात कर लेता है; दूसरा उसमें समाविष्ट हो जाता है।

लेकिन अब ये स्त्री और पुरुष भी बहुत दूसरे अर्थों में हैं; उस अर्थों में नहीं जैसा कि हम बाहर स्त्री-पुरुष को देखते हैं। क्योंकि बाहर जो पुरुष है वह अधूरा है, इसलिए सदा अतृप्त है; बाहर जो स्त्री है वह अधूरी है, इसलिए सदा अतृप्त है।

अगर हम जैविक विकास को खोजने जाएं तो यह पता चलेगा कि जो प्राथमिक प्राणी हैं जगत में, उनमें स्त्री और पुरुष के शरीर अलग-अलग नहीं हैं। जैसे अमीबा है, जो कि प्राथमिक जीव है। अमीबा के शरीर में दोनों एक साथ मौजूद हैं स्त्री और पुरुष। उसका आधा हिस्सा पुरुष का है, आधा स्त्री का। इसलिए अमीबा से तृप्त प्राणी खोजना बहुत कठिन है। उसमें कोई अतृप्ति नहीं है। उसमें डिसकंटेंट जैसी चीज पैदा नहीं होती। इसलिए वह विकास भी नहीं कर पाया; वह अमीबा अमीबा ही बना हुआ है। तो बिल्कुल जो प्राथमिक कड़ियां हैं बायोलाजिकल विकास की, वहां भी शरीर दो नहीं हैं, वहां एक ही शरीर है और दोनों हिस्से एक ही शरीर में समाविष्ट हैं।

आत्मरति से पूर्ण स्त्रीत्व और पूर्ण पुरुषत्व प्राप्त

स्त्री का पहला शरीर जब दूसरे से मिलेगा तो फिर एक नये अर्थों में स्त्री--जिसको हम पूर्ण स्त्री कहें--पैदा होगी। और पूर्ण स्त्री के व्यक्तित्व का हमें कोई अंदाज नहीं, क्योंकि हम जिस स्त्री को भी जानते हैं वे सभी अपूर्ण हैं; पूर्ण पुरुष का भी हमें कोई अंदाज नहीं है, क्योंकि जितने पुरुष हम जानते हैं वे सब अपूर्ण हैं, वे सब आधे-आधे हैं। जैसे ही यह इकाई पूरी होगी, एक परम तृप्ति इसमें प्रवेश कर जाएगी--जिसमें असंतोष जैसी चीज क्षीण होगी, विदा हो जाएगी।

यह जो पूर्ण पुरुष होगा या पूर्ण स्त्री होगी, पहले और दूसरे शरीर के मिलने से, अब इनके लिए बाहर से तो कोई भी संबंध जोड़ना मुश्किल हो जाएगा। इनके लिए बाहर से संबंध जोड़ना बिल्कुल मुश्किल हो जाएगा, क्योंकि बाहर अधूरे पुरुष और अधूरी स्त्रियां होंगी जिनसे इनका कोई तालमेल नहीं बैठ सकता। लेकिन अगर एक पूर्ण पुरुष, भीतर जिसके दोनों शरीर मिल गए हों, और एक स्त्री, जिसके दोनों शरीर मिल गए हैं--इनके बीच संबंध हो सकता है।

पूर्ण पुरुष और पूर्ण स्त्री के बीच बहिर्संभोग का तांत्रिक प्रयोग

और तंत्र ने इसी संबंध के लिए बड़े प्रयोग किए। इसलिए तंत्र बहुत परेशानी में पड़ा और बहुत बदनाम भी हुआ। क्योंकि हम नहीं समझ सके कि वे क्या कर रहे हैं। हमारी समझ के बाहर था। हमारी समझ के बाहर होना बिल्कुल स्वाभाविक था। क्योंकि अगर एक स्त्री और एक पुरुष, तंत्र की दशा में, जब कि उनके भीतर के दोनों शरीर एक हो गए हैं, संभोग कर रहे हैं, तो हमारे लिए वह संभोग ही है। और हम सोच भी नहीं सकते कि यह क्या हो रहा है।

लेकिन यह बहुत ही और घटना थी। और यह घटना बड़ी सहयोगी थी साधक के लिए। इसके बड़े कीमती अर्थ थे। क्योंकि एक पूर्ण पुरुष, एक पूर्ण स्त्री का बाहर जो मिलन था, वह एक नये मिलन का सूत्रपात था, एक नये मिलन की यात्रा थी। क्योंकि अभी एक तरह से यात्रा खत्म हो गई--अधूरे पुरुष, अधूरी स्त्री पूरे हो गए; एक जगह पर जाकर चीज खड़ी हो गई और पठार आ जाएगा। क्योंकि अब हमें और कोई आकांक्षा का ख्याल नहीं है।

अगर एक पूर्ण पुरुष और पूर्ण स्त्री इस अर्थों में मिलते, तो उनके भीतर पहली दफा अधूरे से बाहर एक पूर्ण स्त्री और पूर्ण पुरुष के मिलन का क्या रस और आनंद हो सकता है, वह उनके ख्याल में आता। और उनको दूसरी बात भी ख्याल में आती कि अगर ऐसा ही पूर्ण मिलन भीतर घटित हो सके, तब तो अपार आनंद की वर्षा हो जाएगी! क्योंकि आधे पुरुष ने आधी स्त्री को भोगा था। फिर उसने अपने भीतर की आधी स्त्री से अपने को जोड़ा, तब उसने पाया कि अपार आनंद मिला। फिर पूरे पुरुष ने पूरी स्त्री को भोगा और तब स्वभावतः बिल्कुल तर्कसंगत उसको ख्याल आएगा कि अगर मेरे भीतर भी एक पूर्ण स्त्री मुझे मिल सके! तो अपने भीतर वह पूर्ण स्त्री की खोज में तीसरे और चौथे शरीर का मिलन घटित होता है।

उनके बीच संभोग में ऊर्जा का स्खलन नहीं

तीसरा शरीर पुरुष का फिर पुरुष है और चौथा स्त्री है; स्त्री का तीसरा शरीर स्त्री का है और चौथा शरीर पुरुष का है। तंत्र ने इस व्यवस्था को कि कहीं आदमी रुक न जाए एक शरीर की पूर्णता पर... क्योंकि बहुत तरह की पूर्णताएं हैं। अपूर्णता कभी नहीं रोकती, लेकिन बहुत तरह की पूर्णताएं हैं जो किसी आगे की पूर्णता की दृष्टि से अपूर्ण होंगी, लेकिन पीछे की अपूर्णता की दृष्टि से बड़ी पूरी मालूम पड़ती हैं। पीछे की अपूर्णता मिट गई है, आगे की पूर्णता का हमें, और बड़ी पूर्णता का कोई पता नहीं है--रुकाव हो सकता है। इसलिए तंत्र ने बहुत तरह की प्रक्रियाएं विकसित कीं, जो बड़ी हैरानी की थीं--और जिनको हम समझ भी नहीं सकते हैं एकदम से। जैसे अगर पूर्ण पुरुष और पूर्ण स्त्री का संभोग होगा, तो उसमें किसी की ऊर्जा का पात नहीं होगा। वह हो नहीं सकता; क्योंकि वे दोनों अपने भीतर कंप्लीट सर्किल हैं; उनसे कोई ऊर्जा का स्खलन नहीं होनेवाला। लेकिन बिना ऊर्जा-स्खलन के पहली दफा सुख का अनुभव होगा।

और मजे की बात यह है कि जब भी ऊर्जा-स्खलन से सुख का अनुभव होगा, तो पीछे दुख का अनुभव अनिवार्य है; क्योंकि ऊर्जा-स्खलन से जो विषाद, और जो फ्रस्ट्रेशन, और जो दुख, और जो पीड़ा, और जो संताप पैदा होगा, वह होगा। सुख तो क्षण भर में चला जाएगा, लेकिन जो ऊर्जा खोई है, उसको पूरा करने में चौबीस घंटे, अड़तालीस घंटे, और ज्यादा वक्त भी लग सकता है। उतनी देर तक चित्त उस अभाव के प्रति दुखी रहेगा।

अगर बिना ऊर्जा-स्खलन के संभोग हो सके... इसके लिए तंत्र ने बड़ी आश्चर्यजनक दिशा में काम किया, और बड़ी हिम्मतवर दिशा में काम किया। उस पर तो पीछे कभी अलग बात करनी पड़े, क्योंकि उनका सारा प्रक्रिया का जाल है पूरा का पूरा। और वह जाल चूंकि टूट गया, और वह पूरा का पूरा विज्ञान धीरे-धीरे इसोटेरिक हो गया, फिर उसको सामने बात करना मुश्किल हो गई, क्योंकि हमारी नैतिक मान्यताओं ने हमें

बड़ी कठिनाई में डाल दिया, और हमारे नासमझ समझदारों ने--जिनको कि कुछ भी पता नहीं होता, लेकिन जो कुछ भी कहने में समर्थ होते हैं--उन्होंने बहुत सी कीमती बातों को जिंदा रहना मुश्किल कर दिया। उनको विदा कर देना पड़ा, या वे छुप गईं और अंडरग्राउंड हो गईं, और भीतर छुपकर चलने लगीं, लेकिन उनकी धाराएं जीवन में स्पष्ट नहीं रह गईं।

दोनों की निकटता से दोनों की शक्ति का बढ़ना

यह पूर्ण स्त्री और पुरुष के संभोग की संभावना... और यह संभोग बहुत और तरह का है; इसमें ऊर्जा का स्खलन नहीं है, बल्कि एक नई घटना घटती है जिसको कि इशारे में कहा जा सकता है।

अधूरी स्त्री और अधूरे पुरुष का जब भी मिलन होगा, तो दोनों की शक्ति क्षीण होगी; मिलने के पहले उनकी जितनी शक्ति थी, मिलने के बाद उन दोनों की शक्ति कम होगी। और पूरे पुरुष और पूरी स्त्री के मिलन में इससे उलटी घटना घटेगीः मिलने के पहले जितनी उनकी शक्ति थी, मिलने के बाद दोनों की ज्यादा होगी। ठीक इससे उलटी घटना घटेगीः दोनों के पास ज्यादा शक्ति होगी। यह शक्ति उन्हीं के भीतर पड़ी है जो कि दूसरे के निकट आने से सजग और जागरूक और सक्रिय हो जाएगी। उनकी ही शक्ति है। पहले में भी उनकी ही शक्ति दूसरे के निकट आने से स्खलित होती थी; दूसरी घटना में उनकी ही शक्ति दूसरे के निकट आने से सक्रिय और सजग हो जाएगी, और जो उनके भीतर छिपा है वह पूरा का पूरा उनको प्रकट होगा। इस घटना से इंगित मिलेगा कि भीतर भी क्या पूर्ण पुरुष और पूर्ण स्त्री का मिलन हो सकता है? क्योंकि पहला मिलन भीतर भी अधूरे पुरुष और अधूरी स्त्री का मिलन है।

तीसरे और चौथे शरीर के अंतर्मैथुन से द्वंद्व-मुक्ति

इसलिए दूसरे यूनिट पर काम शुरू होता है कि तीसरे और चौथे शरीर को... तीसरा और चौथा शरीर जब मिलेगा, तो तीसरा शरीर पुरुष का फिर पुरुष है और चौथा शरीर फिर स्त्री है; स्त्री का तीसरा शरीर स्त्री है, चौथा पुरुष है। इन दोनों के मिलन पर पुरुष के भीतर पुरुष ही बचेगा--फिर तीसरा शरीर प्रमुख हो जाएगा--और स्त्री के भीतर फिर स्त्री बचेगी। और ये दो पूर्ण स्त्रियां फिर लीन हो जाएंगी एक में, क्योंकि इनके बीच अब कोई सीमा-रेखा नहीं रह जाएगी जहां से ये अलग हो सकें। इनके अलग होने के लिए बीच-बीच में पुरुष के शरीर का होना जरूरी था--या पुरुष के बीच-बीच में स्त्री का शरीर होना जरूरी था, जिनसे यह फासला होता था। पहले और दूसरे शरीर की मिली हुई स्त्री, और तीसरे-चौथे शरीर की मिली हुई स्त्री--दोनों के मिलने की घटना के साथ ही एक हो जाएंगी। और तब दोहरे चरण में स्त्री के पास और भी पूर्ण स्त्रैणता पैदा होगी। इससे बड़ी स्त्रैणता नहीं संभव है, क्योंकि इसके बाद फिर कोई स्त्रैणता की सीमा नहीं। बस यह पूरी स्त्रैण स्थिति होगी; यह पूर्ण स्त्री होगी। यह पूर्ण स्त्री होगी जिसको अब पूर्ण से भी मिलने की कोई आकांक्षा नहीं रह जाएगी।

पहली पूर्णता में भी दूसरे पूर्ण से मिलने का रस था और उसके मिलने से शक्ति जगती थी, अब वह भी बात समाप्त हो जाएगी। अब इसको परमात्मा भी मिलता हो तो उस अर्थ में मिलने का कोई अर्थ नहीं रह जाएगा। न पुरुष को। पुरुष के भीतर भी दो पुरुष मिलकर पूर्ण हो जाएंगे। चार शरीरों को मिलकर पुरुष के पास पुरुष बचेगा, स्त्री के पास स्त्री बचेगी। और इसके बाद कोई पुरुष-स्त्री नहीं है पांचवें शरीर से।

इसलिए स्त्री और पुरुष के इस चौथे शरीर के बाद जो घटना घटेगी, वह दोनों की फिर भिन्न होगी--भिन्न होनेवाली है। घटना एक ही होगी, लेकिन दोनों की समझ भिन्न होगी। पुरुष अब भी आक्रामक होगा, स्त्री अब भी समर्पक होगी। स्त्री सरेंडर कर देगी; स्त्री अपने को, चौथे शरीर को पूरा पा लेने के बाद संपूर्ण रूप से छोड़

सकेगी; अब उसके छोड़ने में इंच भर की भी कमी नहीं रहेगी। और यह जो छोड़ना है, यह जो लेट गो है, यह जो समर्पण है, यह उसे आगे की यात्रा पर पहुंचा देगा पांचवें शरीर में--जहां फिर स्त्री स्त्री नहीं रह जाती। क्योंकि स्त्री होने के लिए भी अपने को थोड़ा सा बचाना जरूरी था।

असल में हम जो हैं, वह अपने को थोड़ा सा बचाकर हैं। अगर हम अपने को पूरा छोड़ सकें तो हम तत्काल और हो जाएंगे, जो हम कभी भी नहीं थे। हमारे होने में हमारा बचाव है पूरे वक्त। अगर एक स्त्री एक साधारण पुरुष के लिए भी पूरा छोड़ सके, तो उसके भीतर एक क्रिस्टलाइजेशन घटित हो जाएगा; वह चौथे शरीर को पार कर जाएगी।

सती शब्द का गुह्य अर्थ

इसलिए कई बार स्त्रियों ने साधारण पुरुष के प्रेम में भी चौथा शरीर पार कर लिया। जिनको हम सती कहते हैं, उनका कोई और दूसरा मतलब नहीं है--इसोटेरिक अर्थों में। उनका और कोई मतलब नहीं। उनका यह मतलब नहीं है कि जिनकी दृष्टि दूसरे पुरुष पर नहीं उठती। सती का मतलब यह है कि जिनके पास दूसरों पर दृष्टि उठाने को बची नहीं। सती का मतलब यह नहीं है कि जिनकी दृष्टि दूसरे पुरुष पर नहीं उठती है। सती का मतलब यह है कि जिनके पास अब स्त्री ही नहीं बची जो दूसरे पर दृष्टि उठाए।

अगर साधारण पुरुष के प्रेम में भी कोई स्त्री इतनी समर्पित हो जाए, तो उसको यह यात्रा करने की जरूरत नहीं, उसके चार शरीर इकट्ठे होकर पांचवें के द्वार पर वह खड़ी हो जाएगी।

इसी वजह से, जिन्होंने यह अनुभव किया था, उन्होंने कहा कि पति परमात्मा है। उनके पति को परमात्मा कहने का मतलब पुरुष को कोई परमात्मा बनाने का नहीं था, लेकिन उनके लिए पति के माध्यम से ही पांचवें का दरवाजा खुल गया था। इसलिए उनके कहने में कोई भूल न थी; उनका कहना बिल्कुल उचित था। क्योंकि जो साधक को बड़ी मेहनत से उपलब्ध होता है, वह उनको प्रेम से ही उपलब्ध हो गया था; और एक व्यक्ति के प्रेम में ही वे उस जगह पहुंच गई थीं।

सीता जैसी पूर्ण स्त्री की तेजस्विता

अब जैसे सीता है। सीता को हम उन स्त्रियों में गिनते हैं जिनको कि सती कहा जा सके। अब सीता का समर्पण बहुत अनूठा है; समर्पण की दृष्टि से पूर्ण है; और टोटल सरेंडर है। रावण सीता को ले जाकर भी सीता का स्पर्श भी नहीं कर सका। असल में, रावण अधूरा पुरुष है और सीता पूरी स्त्री है। पूरी स्त्री की तेजस्विता इतनी है कि अधूरा पुरुष उसे छू भी नहीं सकता, उसकी तरफ आंख उठाकर भी जोर से नहीं देख सकता।

वह तो अधूरी स्त्री को ही देखा जा सकता है। और जब एक पुरुष एक स्त्री को छूता है, तो सिर्फ पुरुष जिम्मेवार नहीं होता, स्त्री का अधूरा होना अनिवार्य रूप से भागीदार होता है। और जब कोई रास्ते पर किसी स्त्री को धक्का देता है, तो धक्का देनेवाला आधा ही जिम्मेवार होता है, धक्का बुलानेवाली स्त्री भी आधी जिम्मेवार होती है; वह धक्का बुलाती है, निमंत्रण देती है। चूंकि वह पैसिव है, इसलिए उसका हमला हमें दिखाई नहीं पड़ता। पुरुष चूंकि एक्टिव है, इसलिए उसका हमला दिखाई पड़ता है। दिखाई पड़ता है कि इसने धक्का मारा; यह हमें दिखाई नहीं पड़ता कि किसी ने धक्का बुलाया।

रावण सीता को आंख उठाकर भी नहीं देख सका। और सीता के लिए रावण का कोई अर्थ नहीं था। लेकिन, जीत जाने पर राम ने सीता की परीक्षा लेनी चाही, अग्नि-परीक्षा लेनी चाही। सीता ने उसको भी इनकार नहीं किया। अगर वह इनकार भी कर देती तो सती की हैसियत खो जाती। सीता कह सकती थी कि आप भी अकेले थे, और परीक्षा मेरी अकेली ही क्यों हो, हम दोनों ही अग्नि-परीक्षा से गुजर जाएं! क्योंकि अगर

मैं अकेली थी किसी दूसरे पुरुष के पास, तो आप भी अकेले थे और मुझे पता नहीं कि कौन स्त्रियां आपके पास रही हों। तो हम दोनों ही अग्नि-परीक्षा से गुजर जाएं!

लेकिन सीता के मन में यह सवाल ही नहीं उठा; सीता अग्नि-परीक्षा से गुजर गई। अगर उसने एक बार भी सवाल उठाया होता तो सीता सती की हैसियत से खो जाती--समर्पण पूरा नहीं था, इंच भर फासला उसने रखा था। और अगर सीता एक बार भी सवाल उठा लेती और फिर अग्नि से गुजरती, तो जल जाती; फिर नहीं बच सकती थी अग्नि से। लेकिन समर्पण पूरा था; दूसरा कोई पुरुष नहीं था सीता के लिए।

इसलिए यह हमें चमत्कार मालूम पड़ता है कि वह आग से गुजरी और जली नहीं! लेकिन कोई भी व्यक्ति, जो अंतर-समाहित है... साधारण व्यक्ति भी किसी अंतर-समाहित स्थिति में आग पर से निकले तो नहीं जलेगा। हिप्नोसिस की हालत में एक साधारण से आदमी को कह दिया जाए कि अब तुम आग पर नहीं जलोगे, तो वह आग पर से निकल जाएगा और नहीं जलेगा।

बिना जले आग पर से गुजर जाने का राज

साधारण सा फकीर आग पर से गुजर सकता है एक विशेष भावदशा में, जब वह भीतर उसका सर्किल पूरा होता है। सर्किल टूटता है संदेह से। अगर उसे एक बार भी यह ख्याल आ जाए कि कहीं मैं जल न जाऊं, तो भीतर का वर्तुल टूट गया, अब यह जल जाएगा। अगर भीतर का वर्तुल न टूटे तो दो फकीर अगर कूद रहे हों कहीं आग पर, और आप भी पीछे खड़े हों, और दो को कूदते देखकर आपको लगे कि जब दो कूद रहे हैं और नहीं जलते तो मैं क्यों जलूंगा, और आप भी कूद जाएं, तो आप भी नहीं जलेंगे। पूरी कतार, भीड़ गुजर जाए आग से, नहीं जलेगी। और उसका कारण है, क्योंकि जिसको जरा भी शक होगा, वह उतरेगा नहीं; वह बाहर खड़ा रह जाएगा; वह कहेगा, पता नहीं मैं न जल जाऊं। लेकिन जिसको ख्याल आ गया है, जो देख रहा है कि कोई नहीं जल रहा है तो मैं क्यों जलूंगा, वह गुजर जाएगा, उसको कोई आग नहीं छुएगी।

अगर हमारे भीतर का वर्तुल पूरा है तो हमारे भीतर आग तक के प्रवेश की गुंजाइश नहीं है।

तो सीता को आग न छुई हो, इसमें कोई कठिनाई नहीं। आग से गुजरने के बाद भी जब राम उसको छुड़वा दिए, तब भी वह यह नहीं कह रही है कि मेरी परीक्षा भी हो गई, अग्नि-परीक्षा में भी सही उतर गई, फिर भी मुझे छोड़ा जा रहा है! नहीं, उसकी तरफ से समर्पण पूरा है। इसलिए छोड़ने की कोई बात ही नहीं उठती, इसलिए सवाल का कोई सवाल नहीं है।

पूर्ण समर्पण से चारों शरीरों का अतिक्रमण

पूरी स्त्री अगर एक व्यक्ति के प्रेम में भी पूरी हो जाए, तो वे जो सीढ़ियां हैं साधना की उनमें चार को तो छलांग लगा जाएगी। पुरुष के लिए यह संभावना कठिन है। पुरुष के लिए यह संभावना बहुत कठिन है, क्योंकि समर्पक चित्त नहीं है उसके पास। यह बड़े मजे की बात है कि आक्रमण भी पूरा हो सकता है, लेकिन आक्रमण पूरा होने में सदा और बहुत सी चीजें जिम्मेवार होंगी, आप अकेले नहीं। लेकिन समर्पण के पूरे होने में आप अकेले जिम्मेवार होंगे, और बहुत सी चीजों का कोई सवाल नहीं है। अगर मुझे समर्पण करना है किसी के प्रति तो मैं उससे बिना पूछे पूरा कर सकता हूं। लेकिन अगर आक्रमण करना है किसी के प्रति, तब तो आक्रमण का अंतिम जो परिणाम होगा उसमें मैं अकेला नहीं, वह दूसरा व्यक्ति भी जिम्मेवार होगा।

इसलिए जहां शक्तिपात की चर्चा मैंने की, तो वहां ऐसा प्रतीत हुआ होगा कि स्त्री में थोड़ी सी कमी है, उसको थोड़ी सी कठिनाई है। पर मैंने कहा था, कंपनसेशन के नियम हैं जीवन में। वह कमी उसके समर्पण की शक्ति से पूरी हो जाती है। पुरुष कभी भी किसी को कितना ही प्रेम करे, पूरा नहीं कर पाता। उसके न करने का

कारण है। वह आक्रामक है, समर्पक नहीं है। और आक्रमण का पूरा होना असंभव मामला है। आक्रमण भी तभी पूरा हो सकता है जब कोई पूरा समर्पण कर दे, तो उस पर पूरा आक्रमण हो सकता है, अन्यथा वह नहीं हो सकता।

तो स्त्री के चार शरीर पूरे हो जाएं, एक हो जाए इकाई, तो पांचवें पर बड़ी सरलता से वह समर्पण कर पाती है। और इस चौथी अवस्था में, जब स्त्री इन दोहरी सीढ़ियों को पार करके पूरी होती है, तब दुनिया की कोई शक्ति उसको रोक नहीं सकती, और उसके लिए सिवाय परमात्मा के फिर कोई बचता नहीं। असल में, चार शरीरों में रहते हुए जिसको उसने प्रेम किया था वह भी परमात्मा हो गया था। और अब तो जो भी है वह परमात्मा है।

मीरा के जीवन में बहुत मीठी घटना है कि वह गई है वृंदावन। और वहां उस बड़े मंदिर में कृष्ण के जो पुजारी है, वह स्त्रियों का दर्शन नहीं करता है, स्त्रियों को देखता नहीं है। इसलिए उस मंदिर में स्त्रियों के लिए प्रवेश निषिद्ध है। लेकिन मीरा तो अपना मंजीरा बजाती हुई भीतर प्रवेश ही कर गई है। उसे लोगों ने रोका और कहा कि स्त्री का जाना भीतर मना है, क्योंकि वह जो पुरोहित है मंदिर का, वह स्त्री नहीं देखता है। तो मीरा ने कहा, बड़ी अदभुत घटना है! मैं तो सोचती थी कि एक ही पुरुष है जगत में, कृष्ण! दूसरा पुरुष कौन है, उसे मैं जरूरी देखना चाहती हूं। वह मुझे भला देखने में डरता हो, लेकिन मैं उसे देखना चाहती हूं--दूसरा पुरुष कौन है? दूसरा पुरुष भी है?

उस पुरोहित को खबर पहुंचाई गई कि एक स्त्री दरवाजे पर प्रवेश कर गई है और वह कहती है कि मैं उस दूसरे पुरुष को देखना चाहती हूं। क्योंकि मैं तो देखती हूं कि एक ही पुरुष है, कृष्ण! वह दूसरा पुरुष कहां है? उसके मैं दर्शन करना चाहती हूं। वह जो मंदिर का पुरोहित था, पुजारी था, वह आया और भागा और मीरा के पैरों में गिरा। और उसने कहा कि जिसके लिए एक ही पुरुष बचा है, अब उसको स्त्री कहना बेमानी है; अब उसका कोई मतलब ही नहीं रहा; अब बात ही खत्म हो गई। और मैं तेरे पैर छूने आया हूं। और भूल हो गई मुझसे, मैंने साधारण स्त्रियों को देखकर अपने को पुरुष समझ रखा था, लेकिन तेरी जैसी स्त्री के लिए तो मेरे पुरुष होने का कोई अर्थ नहीं है।

समर्पण भक्ति बन जाती है और आक्रमण योग

पुरुष अगर चौथे शरीर पर पहुंचेगा, तो वह पूर्ण पुरुष हो जाएगा--दोहरी सीढ़ियां पार करके पूर्ण पुरुष हो जाएगा। उस दिन के बाद उसके लिए कोई स्त्री नहीं है; उस दिन के बाद उसके लिए स्त्री का कोई अर्थ नहीं है। अब वह सिर्फ आक्रमण की ऊर्जा है। जैसे स्त्री चौथे शरीर को पार करके सिर्फ समर्पण की ऊर्जा है, सिर्फ शक्ति जो समर्पित हो सकती है; और पुरुष सिर्फ शक्ति है जो आक्रामक हो सकती है। अब सिर्फ शक्तियां बच गई हैं, अब इनका स्त्री-पुरुष नाम नहीं है, अब ये सिर्फ ऊर्जाएं हैं।

पुरुष का जो आक्रमण है, वही योग की बहुत सी प्रक्रियाओं में विकसित हुआ; स्त्री का जो समर्पण है, वही भक्ति की बहुत सी प्रक्रियाओं में विकसित हुआ। समर्पण भक्ति बन जाता है, आक्रमण योग बन जाता है। लेकिन बात एक ही है; उन दोनों में कुछ भेद नहीं है अब। यह सिर्फ स्त्री और पुरुष की तरफ से भेद है। अब बूंद सागर में गिरती है कि सागर बूंद में गिरता है, इससे अंतिम परिणाम में कोई भेद नहीं है। पुरुष की जो बूंद है, वह सागर में गिरेगी; वह छलांग लगाएगा और सागर में गिर जाएगा। स्त्री की बूंद जो है, वह खाई बन जाएगी और पूरे सागर को अपने में पुकार लेगी; वह समर्पित हो जाएगी और पूरा सागर उसमें गिरेगा। अब भी वह निगेटिव होगी, निगेटिविटी होगी उसकी पूरी की पूरी। वह गर्भ रह जाएगी और सारे सागर को अपने में ले लेगी; समस्त

विश्व की ऊर्जा उसमें प्रवेश कर जाएगी। पुरुष अब भी गर्भ नहीं बन सकता; पुरुष अब भी वीर्य ही होगा--और एक छलांग लगाएगा और सागर में डूब जाएगा।

पांचवें शरीर से स्त्री-पुरुष का भेद समाप्त

बहुत गहरे में उनके व्यक्तित्व इस सीमा तक, आखिरी सीमा तक पीछा करेंगे--चौथे शरीर के आखिरी तक। पांचवें शरीर की दुनिया अलग हो जाएगी; तब आत्मा ही शेष रह जाती है। और आत्मा का कोई लैंगिक भेद नहीं है। इसलिए उसके बाद यात्रा में कोई फर्क नहीं पड़ता। चौथे तक फर्क पड़ेगा और फर्क ऐसा ही होगा कि बूंद सागर में गिरेगी कि सागर बूंद में गिरेगा। अंतिम परिणाम एक ही हो जाएगा--बूंद सागर में गिरे कि सागर बूंद में गिरे, कोई फर्क पड़नेवाला नहीं है। लेकिन चौथे शरीर की आखिरी सीमा तक फर्क रहेगा। अगर स्त्री ने छलांग लगाना चाही तो वह मुश्किल में पड़ जाएगी और अगर पुरुष ने समर्पण करना चाहा तो वह मुश्किल में पड़ जाएगा। बहुत सी स्त्रियां छलांग लगाने की मुश्किल में पड़ती हैं, बहुत से पुरुष समर्पण करने की मुश्किल में पड़ जाते हैं। उस भूल से सावधान रहना जरूरी है।

लंबे संभोग में स्त्री और पुरुष के बीच विद्युत-वलय

प्रश्नः आपने एक प्रवचन में कहा है कि लंबे संभोग में स्त्री और पुरुष के बीच एक प्रकाश-वलय निर्मित होता है। यह क्या है, कैसे निर्मित होता है, और इसका क्या उपयोग है? प्रथम चार शरीरों की विद्युतीय विभिन्नता के आधार पर इन प्रश्नों का उत्तर देने की कृपा करें। अकेले ध्यान में उपरोक्त घटना का क्या रूप होगा?

हां, जैसा मैंने कहा कि स्त्री आधी है, पुरुष आधा है; दोनों ऊर्जाएं हैं, दोनों विद्युत हैं; स्त्री निगेटिव पोल है, पुरुष पाजिटिव पोल है। और जहां कहीं भी विद्युत की ऋणात्मक और धनात्मक ऊर्जाएं एक वर्तुल बनाती हैं, वहां प्रकाश-पुंज पैदा हो जाता है। प्रकाश-पुंज ऐसा हो सकता है जो दिखाई न पड़े; ऐसा हो सकता है जो कभी दिखाई पड़ जाए; ऐसा हो सकता है जो किसी को दिखाई पड़े, किसी को दिखाई न पड़े। लेकिन वर्तुल निर्मित होता है। पर वर्तुल... पुरुष और स्त्री का मिलन इतना क्षणिक है कि वर्तुल निर्मित हो ही नहीं पाता और टूट जाता है।

इसलिए संभोग को लंबाने की क्रियाएं हैं, और संभोग को लंबाने की पद्धतियां हैं। अगर आधे घंटे के पार संभोग चला जाए तो वलय, वह विद्युत का वर्तुल, प्रकाश-पुंज, स्त्री और पुरुष को घेरे हुए दिखाई पड़ सकता है। उसके चित्र भी लिए गए हैं। और कुछ आदिवासी कौमें अब भी इतने लंबे संभोग में गुजर सकती हैं। और इसलिए उनके वर्तुल बन जाते हैं।

तनावों के बढ़ने पर संभोग की अवधि का घटना

साधारणतः सभ्य समाज में वर्तुल खोजना बहुत मुश्किल है; क्योंकि जितना तनावग्रस्त चित्त होगा, संभोग उतना ही क्षणिक होगा। असल में, जितना टेंस माइंड होगा, उतना जल्दी स्खलन होगा उसका; जितना तनाव से भरा चित्त है, उतना स्खलन त्वरित होगा। क्योंकि तनाव से भरा चित्त असल में संभोग नहीं खोज रहा है, रिलीज खोज रहा है। पश्चिम में सेक्स का जो उपयोग है, वह छींक से ज्यादा नहीं रह गया--एक तनाव है जो फिंक जाता है; एक बोझ है सिर पर जो निकल जाता है। ऊर्जा कम हो जाती है तो आप शिथिल हो जाते हैं। रिलैक्स होना दूसरी बात है, शिथिल होना दूसरी बात है। रिलैक्स होने का मतलब है, विश्राम का मतलब हैः

ऊर्जा भीतर है और आप विश्राम में हैं। और शिथिल होने का मतलब हैः ऊर्जा फिंक गई और अब आप निढाल पड़े रह गए हैं; अब ऊर्जा नहीं है तो आप शिथिल हो गए हैं, इसलिए सोच रहे हैं कि विश्राम हो रहा है।

तो पश्चिम में जितना तनाव बढ़ा है, उतना सेक्स जो है वह एक रिलीज, एक तनाव से छुटकारा, एक भीतरी शक्ति के दबाव से मुक्ति, ऐसी हालत हो गई है। इसलिए पश्चिम में ऐसे विचारक हैं जो सेक्स को छींक से ज्यादा मूल्य देने को तैयार नहीं हैं। जैसे नाक में एक खुजलाहट हुई है और छींक दी है तो मन हलका हो गया है, बस इससे ज्यादा मूल्य देने को पश्चिम में लोग राजी नहीं हैं कुछ। और उनका कहना ठीक भी है, क्योंकि वे जो कर रहे हैं, वह इतना ही है; वह इससे ज्यादा मूल्य का है भी नहीं। और पूरब में भी लोग उनसे धीरे-धीरे राजी होते चले जा रहे हैं, क्योंकि पूरब भी तनावग्रस्त होता चला जा रहा है। कहीं किसी दूर किसी पहाड़-पर्वत की कंदरा में कोई व्यक्ति मिल सकता है जो तनावग्रस्त न हो, जिसको सभ्यता ने अभी न छुआ हो और जो वहां जी रहा हो जहां वृक्ष और पौधों और पत्तियों और पहाड़ों की दुनिया है, तो वहां अभी भी संभोग में वह वर्तुल बनता है। और या फिर तंत्र की प्रक्रियाएं हैं जिनसे कोई भी वर्तुल बना सकता है।

लंबे संभोग से दीर्घकालीन तृप्ति

उस वर्तुल के अनुभव बड़े अदभुत हैं; क्योंकि जब वह वर्तुल बनता है, तभी तुम्हें ठीक अर्थों में यह पता चलता है कि तुम एक हुए। स्त्री और पुरुष एक हुए, इसका अनुभव तुम्हें वर्तुल बनने के पहले पता नहीं चलता। उसके बनते ही मैथुन में रत दो व्यक्ति दो नहीं रह जाते; उस वर्तुल के बनते ही वे एक ही ऊर्जा के, एक ही शक्ति के प्रवाह बन जाते हैं; कोई चीज जाती और आती और घूमती हुई मालूम पड़ने लगती है और दो व्यक्ति मिट जाते हैं। यह वर्तुल जिस मात्रा में बनेगा, उसी मात्रा में संभोग की आकांक्षा कम और दूरी पर हो जाएगी। यह हो सकता है कि एक दफा वर्तुल बन जाए तो वर्ष भर के लिए भी फिर कोई इच्छा न रह जाए, कोई कामना न रह जाए; क्योंकि एक तृप्ति की घटना घट जाए।

इसे ऐसे ही समझ सकते हो कि एक आदमी खाना खाए और वॉमिट कर दे, खाना खाए और उलटी कर दे, तो कोई तृप्ति तो नहीं होगी! खाना खाने से तृप्ति नहीं होती, खाना पचने से तृप्ति होती है। आमतौर से हम सोचते हैं--खाना खाने से तृप्ति होती है। खाना खाने से कोई तृप्ति नहीं होती, तृप्ति तो पचने से होती है।

संभोग के भी दो रूप हैंः एक सिर्फ खाना खाने का और एक पचने का। तो जिसे हम आमतौर से संभोग कह रहे हैं, वह सिर्फ खाना खाना और उलटी कर देने जैसा है; उसमें कहीं कुछ पच नहीं पाता। अगर पच जाए तो उसकी तृप्ति लंबी और गहरी है। और जो पचना है वह इस विद्युत के वर्तुल बनने पर ही होता है। यह सिर्फ सूचक है उसका कि दोनों की चित्त-वृत्तियां एक-दूसरे में समाहित और लीन हो गईं; दोनों अब दो न रहे, एक हो गए; दोनों अब दो शरीर ही रहे, लेकिन भीतर बहती हुई ऊर्जा एक ही हो गई और छलांग लगाकर एक-दूसरे में प्रवाह करने लगी।

गृहस्थ के लिए गहरी काम-तृप्ति ही काम-मुक्ति है

यह जो स्थिति है, यह स्थिति बड़ी गहरी तृप्ति दे जाती है। यह इस अर्थ में मैंने कहा था। इसका योग के लिए तो बहुत उपयोग है, साधक के लिए इसका बहुत उपयोग है। क्योंकि साधक को अगर ऐसा मैथुन उपलब्ध हो सके, तो मैथुन की जरूरत बहुत कम हो जाती है। और जितने दिन मैथुन की जरूरत नहीं होती, उतने दिन तक उसकी अंतर्यात्रा आसान हो जाती है। और एक दफा अंतर्यात्रा शुरू हो जाए और भीतर की स्त्री से संभोग होने लगे, तब तो बाहर की स्त्री बेकार हो जाएगी, बाहर का पुरुष बेकार हो जाएगा। गृहस्थ के लिए ब्रह्मचर्य का जो अर्थ है, वह यही हो सकता है।

आप ख्याल लेते हैं? गृहस्थ के लिए जो ब्रह्मचर्य का अर्थ है, वह यही हो सकता है कि उसका संभोग इतना तृप्तिदायी हो कि वर्षों के लिए बीच में ब्रह्मचर्य का क्षण छूट जाए। और एक दफा यह क्षण छूट जाए और भीतर की यात्रा शुरू हो जाए तो फिर बाहर की आवश्यकता ही विलीन हो जाती है। गृहस्थ के लिए कह रहा हूं।

संन्यासी को ध्यान द्वारा अंतर्मैथुन की उपलब्धि

संन्यस्त के लिए, जिसने गृहस्थी को स्वीकार नहीं किया, उसके लिए ब्रह्मचर्य का अर्थ... उसके लिए ब्रह्मचर्य का अर्थ अंतर्रमण है, उसके लिए अंतर्मैथुन है। उसे सीधे ही अंतर्मैथुन के प्रयोग खोजने पड़ेंगे। अन्यथा वह सिर्फ बाहर की स्त्री से नाम-मात्र को बचा हुआ दिखाई पड़ेगा, उसका चित्त तो दौड़ता ही रहेगा, भागता ही रहेगा। और जितनी ऊर्जा स्त्री से मिलने में व्यय नहीं होती, उससे ज्यादा ऊर्जा स्त्री से मिलने और रुकने की चेष्टा में व्यय हो जाती है।

तो संन्यासी के लिए थोड़ा सा अलग मार्ग है। और वह थोड़े से मार्ग में जो फर्क है वह इतना ही है कि गृहस्थ के लिए बाहर की स्त्री से मिलना प्राथमिक होगा, द्वितीय चरण पर अंतर की स्त्री से मिलना होगा; संन्यस्त के लिए अंतर की स्त्री से सीधा मिलना होगा, पहला चरण नहीं है। इसलिए हर किसी को संन्यासी बना देना नासमझी की हद है। असल में, संन्यास देने का मतलब ही यह है कि हम उसके अंतर में झांक सकें और समझ सकें कि उसका पहला पुरुष उसकी अपनी ही स्त्री से मिलने की क्षमता और पात्रता में है या नहीं। अगर है, तो ही ब्रह्मचर्य की दीक्षा दी जा सकती है, अन्यथा पागलपन पैदा करेंगे और कुछ फायदा नहीं हो सकता है। लेकिन लोग हैं कि दीक्षाएं दिए चले जा रहे हैं। कोई हजार संन्यासियों का गुरु है, कोई दो हजार संन्यासियों का गुरु है। उन्हें कुछ पता नहीं कि वे क्या कर रहे हैं! वे जिस आदमी को दीक्षा दे रहे हैं, वह अंतर्मैथुन के योग्य है? यह तो दूर की बात है, यह भी पता नहीं कि अंतर्मैथुन भी कोई मैथुन है।

इसलिए मुझे जब भी संन्यासी मिलता है तो उसकी गहरी तकलीफ सेक्स की होती है। गृहस्थ तो मुझे मिल जाते हैं जिनकी और तकलीफें भी हैं, लेकिन संन्यासी मुझे नहीं मिलता जिसकी और कोई तकलीफ हो; उसकी तकलीफ सेक्स ही है। गृहस्थ की और तकलीफें भी हैं, हजार तकलीफें हैं, उनमें सेक्स एक तकलीफ है। लेकिन संन्यासी की एक ही तकलीफ है। और इसलिए सारा का सारा चित्त उसका इसी एक बिंदु पर अटका रह जाता है।

तो बाहर की स्त्री से बचने के तो उपाय बता रहे हैं उसके गुरु, लेकिन भीतर की स्त्री से मिलने का कोई उपाय नहीं है उनके ख्याल में। इसलिए बाहर की स्त्री से बचा नहीं जा सकता, सिर्फ दिखाया जा सकता है कि बच रहे हैं। बचना बहुत मुश्किल है। वह तो वैद्युतिक ऊर्जा है, उसके लिए जगह चाहिए। अगर वह भीतर जाए तो बाहर जाने से रुकेगी, अगर भीतर नहीं जा रही है तो बाहर जाएगी। कोई फिकर नहीं कि स्त्री कल्पना की होगी, उससे भी काम चलेगा; वह कल्पना की स्त्री के साथ भी बाहर बह जाएगी, वह भीतर नहीं जा सकती। ठीक स्त्री के लिए भी यही होगा।

कुंवारी स्त्री के लिए अंतर्मैथुन सरल

लेकिन स्त्री और पुरुष के मामले में यहां भी थोड़ा सा भेद है जो ख्याल में ले लेना चाहिए। इसलिए अक्सर यह होगा कि साधु के लिए जितना सेक्स प्राब्लम बनेगा, उतना साध्वी के लिए नहीं बनता। इधर मैं बहुत सी साध्वियों से परिचित हूं। साध्वी के लिए सेक्स इतना प्राब्लम नहीं बनता। उसका कारण है कि पैसिव

है उसका सेक्स। अगर एक दफा उठाया जाए तो प्राब्लम बनता है, अगर बिल्कुल न उठाया गया हो तो उसे पता ही नहीं चलता कि प्राब्लम है। स्त्री को इनीशिएशन चाहिए सेक्स में भी। कोई पुरुष एक दफा स्त्री को ले जाए सेक्स में, इसके बाद उसमें तीव्र ऊर्जा उठनी शुरू होती है। लेकिन अगर न ले जाई जाए, तो वह जीवन भर कुंवारी रह सकती है। उसके कुंवारे रहने की बहुत सुविधा है, क्योंकि पैसिव है। वह खुद तो आक्रामक नहीं है उसका चित्त; वह प्रतीक्षा करती रहेगी, वह प्रतीक्षा करती रहेगी।

इसलिए मेरा मानना है कि विवाहित स्त्री को दीक्षा देना खतरनाक है, जब तक कि उसको अंतर्पुरुष से मिलना न सिखाया जाए। कुंवारी लड़की दीक्षा ले सकती है, कुंवारे लड़के से वह ज्यादा ठीक हालत में है। उसको जब तक एक दफा दीक्षा नहीं मिली काम की, यौन की, तब तक वह प्रतीक्षा कर सकती है। आक्रामक नहीं है, इसलिए। और अगर आक्रमण न हो बाहर से, तो अपने आप धीरे-धीरे उसके भीतर का पुरुष उसकी बाहर की स्त्री से मिलना शुरू कर देता है; क्योंकि उसके नंबर दो का जो शरीर है, वह पुरुष का है, वह आक्रामक है। तो अंतर्मैथुन स्त्री के लिए पुरुष की बजाय बहुत सरल है।

मेरा मतलब समझ रहे हो न तुम?

उसका जो दूसरा पुरुष का शरीर है, वह आक्रामक है। इसलिए अगर बाहर से स्त्री को पुरुष न मिले, न मिले, न मिले; उसे पता ही न हो बाहर के पुरुष के द्वारा यौन में जाने का; तो उसके भीतर का पुरुष उस पर हमला करना शुरू कर देगा, उसकी ईथरिक बॉडी उस पर हमला करने लगेगी, और उसका मुख भीतर की तरफ मुड़ जाएगा, वह अंतर्मैथुन में लीन हो जाएगी।

पुरुष के लिए अंतर्मैथुन जरा कठिन बात है, क्योंकि पुरुष का आक्रामक शरीर नंबर एक का है, नंबर दो का शरीर उसका स्त्री का है। नंबर दो का शरीर उस पर आक्रमण करके नहीं बुला सकता; जब वह जाएगा तभी नंबर दो का शरीर उसको स्वीकार करेगा।

ये सारे भेद हैं। और ये भेद अगर ख्याल में हों तो सारी व्यवस्था इस सबके संबंध में दूसरी होनी चाहिए।

यह जो संभोग में विद्युत-वर्तुल पैदा हो सके तो गृहस्थ के लिए बड़ा सहयोगी है। और ऐसा ही वर्तुल, जब तुम्हारा अंतर्मैथुन होगा तब भी पैदा होगा। इसलिए जो साधारण व्यक्ति को संभोग में जो विद्युत की ऊर्जा उसको घेर लेगी, वैसी ऊर्जा उस व्यक्ति को जो भीतर के शरीर से संबंधित हुआ है, चौबीस घंटे घेरे रहेगी। इसलिए तुम्हारे प्रत्येक शरीर पर तुम्हारा वर्तुल बढ़ता चला जाएगा।

बुद्ध-पुरुषः एक ऊर्जा पुंज

इसलिए बहुत बार ऐसा हो सकता है, जैसे कि बुद्ध के मर जाने के बाद कोई पांच सौ वर्षों तक बुद्ध की कोई प्रतिमा नहीं बनाई गई और प्रतिमा की जगह बोधिवृक्ष की पूजा चली। प्रतिमा नहीं थी, सिर्फ वृक्ष ही था। मंदिर भी बनाते थे तो उसमें एक वृक्ष, पत्थर का वृक्ष बनाते थे--या पत्थर पर वृक्ष को खोद देते थे--और नीचे वह जगह खाली रहती, जहां बुद्ध के बैठने की जगह थी। अब जो लोग पुरातत्व या इतिहास की खोज करते हैं, वे बड़ी मुश्किल में हैं कि बुद्ध की प्रतिमा क्यों न बनाई, बुद्ध का वृक्ष क्यों बनाया? फिर पांच सौ साल के बाद क्यों प्रतिमा बनाई? और पांच सौ साल तक वृक्ष के नीचे जगह क्यों खाली छोड़ी?

अब यह बड़े राज की बात है और पुरातत्वविद को और इतिहासज्ञ को कभी पता नहीं चल सकता, क्योंकि इतिहास और पुरातत्व से इसका कोई लेना-देना नहीं है। असल में, जिन लोगों ने बुद्ध को गौर से देखा था, उनका कहना था कि जब गौर से देखो तो बुद्ध दिखाई नहीं पड़ते, सिर्फ वृक्ष ही रह जाता है, सिर्फ विद्युत की ऊर्जा रह जाती है। गौर से अगर देखो तो बुद्ध विदा हो जाते हैं, वहां सिर्फ विद्युत की ऊर्जा ही रह जाती है,

वहां आदमी समाप्त हो जाता है। जैसे मैं यहां बैठा हूं और गौर से देखा जाऊं, सिर्फ कुर्सी दिखाई पड़े और मैं विदा हो जाऊं।

तो बुद्ध को जिन्होंने गौर से देखा, वे कहते थे कि बुद्ध दिखाई नहीं पड़ते थे, वृक्ष ही दिखाई पड़ता था; और जिन्होंने गौर से नहीं देखा, वे कहते थे, बुद्ध दिखाई पड़ते थे। इसलिए आथेंटिक उनका ही कहना था जिन्होंने गौर से देखा था। पांच सौ साल तक उनकी बात मानी गई। पांच सौ साल तक उनकी बात मानी गई जिन्होंने कहा था कि नहीं, बुद्ध कभी नहीं दिखाई पड़े; जब गौर से देखा तो वे नहीं थे, जगह खाली थी; वृक्ष ही रह गया था पीछे।

लेकिन यह तब तक चल सका जब तक कि गौर से देखनेवाले लोग थे; और गैर-गौर से देखनेवालों ने माना कि भई, हमने तो कभी गौर से देखा नहीं, इसलिए हमको तो दिखाई पड़ते थे। लेकिन जब यह वर्ग खोता चला गया, तब यह बात मुश्किल हो गई कि वृक्ष अकेला क्यों हो, नीचे बुद्ध होने चाहिए। फिर पांच सौ साल बाद उनकी प्रतिमा बनाई गई।

यह बहुत मजेदार बात है! जिन्होंने जीसस को भी गौर से देखा उनको जीसस नहीं दिखाई पड़े; जिन्होंने महावीर को गौर से देखा उनको महावीर दिखाई नहीं पड़े; जिन्होंने कृष्ण को गौर से देखा उनको कृष्ण दिखाई नहीं पड़े। अगर पूरी अटेंशन से इस तरह के लोग देखे जाएं तो वहां सिर्फ विद्युत की ऊर्जा ही दिखाई पड़ेगी; वहां कोई व्यक्ति दिखाई नहीं पड़ेगा।

यह... तुम्हारे प्रत्येक दो शरीर के बाद यह ऊर्जा बड़ी होती जाएगी। और चौथे शरीर के बाद यह ऊर्जा पूर्ण हो जाएगी। पांचवें शरीर पर ऊर्जा ही रह जाएगी। छठवें शरीर पर यह ऊर्जा अलग दिखाई नहीं पड़ेगी, यह ऊर्जा चांद-तारों से, आकाश से, सबसे जुड़ जाएगी। सातवें शरीर पर ऊर्जा भी दिखाई नहीं पड़ेगी, पहले मैटर खो जाएगा, फिर एनर्जी भी खो जाएगी; पहले पदार्थ खो जाएगा, फिर शक्ति भी खो जाएगी।

तो इस लिहाज से वह सोचने जैसी बात है।

निर्विचार की पूरी उपलब्धि पांचवें शरीर में

प्रश्नः निर्विचार की स्थायी उपलब्धि साधक को किस शरीर में होती है? क्या चेतना और विषय के तादात्म्य के बिना भी विचार आ सकते हैं या विचार के लिए तादात्म्य आवश्यक है?

निर्विचार की पूरी उपलब्धि पांचवें शरीर में होती है, लेकिन अधूरी झलकें चौथे शरीर से शुरू हो जाती हैं। चौथे शरीर में विचार चलते हैं, लेकिन बीच में दो विचारों के जो खाली जगह होती है वह दिखाई पड़ने लगती है। चौथे शरीर के पहले वह दिखाई नहीं पड़ती। चौथे शरीर के पहले हमें लगता है कि विचार ही विचार हैं, और विचारों के बीच में जो गैप है, वह हमें दिखाई नहीं पड़ता। चौथे शरीर में गैप दिखाई पड़ने लगता है और एम्फेसिस एकदम बदल जाती है। अगर तुमने कभी गेस्टाल्ट के कोई चित्र देखे हैं तो यह ख्याल में आ सकेगा।

समझ लें कि एक सीढ़ियों का चित्र बनाया जा सकता है। वह चित्र ऐसा बनाया जा सकता है कि उसे अगर आप गौर से देखते रहें तो एक बार ऐसा लगे कि सीढ़ियां नीचे की तरफ आ रही हैं और एक बार ऐसा लगे कि सीढ़ियां ऊपर की तरफ जा रही हैं। लेकिन यह बड़े मजे की बात है कि दोनों चीजें एक साथ नहीं देखी जा

सकतीं, इसमें एक को ही तुम देख सकते हो। दोबारा जब तुम्हें दूसरी चीज दिखाई पड़ने लगेगी, तो पहली नदारद हो जाएगी।

एक ऐसा चित्र बनाया जा सकता है कि दो आदमियों के चेहरे आमने-सामने दिखाई पड़ें--उनकी नाक, उनकी आंख, उनकी दाढ़ी, वह सब दिखाई पड़े। एक दफा ऐसा दिखाई पड़े कि दो आदमी आमने-सामने चेहरे करके बैठे हैं। इनको काला पोत दिया है चेहरों को; बीच में जो जगह खाली है वह सफेद है। और एक दफा ऐसा दिखाई पड़े कि बीच में एक गमला रखा हुआ है। तो गमले की कगारें दिखाई पड़ें--वह नाक और मुंह, वे गमले की कगारें हो जाएं। लेकिन ये दोनों बातें एक साथ दिखाई नहीं पड़ सकती हैं। जब तुम्हें दो चेहरे दिखाई पड़ेंगे तो गमला नहीं दिखाई पड़ेगा, और जब तुम्हें गमला दिखाई पड़ेगा तो तुम पाओगे कि वे दो चेहरे कहां गए! वे दो चेहरे नहीं दिखाई पड़ेंगे। इसकी तुम लाख कोशिश करो, तो भी गेस्टाल्ट में एम्फेसिस बदल जाएगी, तब तुम दोनों न देख पाओगे। जब तुम्हारी एम्फेसिस चेहरे पर जाएगी तो गमला नदारद हो जाएगा, जब तुम्हारी एम्फेसिस गमले पर जाएगी तो चेहरे नदारद हो जाएंगे।

तीसरे शरीर तक हमारा जो माइंड का गेस्टाल्ट है, उसकी एम्फेसिस विचार के ऊपर है। "राम आया"... तो राम दिखाई पड़ता है, आया दिखाई पड़ता है। राम और आया के बीच में जो खाली जगह है, और राम के पहले जो खाली जगह है, और आया के बाद में जो खाली जगह है, वह नहीं दिखाई पड़ती। एम्फेसिस "राम आया" पर है। तो विचार दिखाई पड़ता है, बीच का अंतराल नहीं दिखाई पड़ता।

चौथे शरीर में फर्क होना शुरू होता है। अचानक तुम्हें ऐसा लगता है कि राम आया, यह महत्वपूर्ण नहीं है। जब राम नहीं आया था, तब खाली जगह थी; और जब राम आया, तब खाली जगह थी; और जब राम चला गया, तब खाली जगह थी। वह खाली जगह तुम्हें दिखाई पड़नी शुरू हो जाती है। चेहरे विदा होते हैं और गमला दिखाई पड़ने लगता है। और जब तुम्हें खाली जगह दिखाई पड़ती है, तब तुम विचार नहीं कर सकते। दो में से एक ही कर सकते होः जब तक तुम विचार देखोगे तो विचार कर सकते हो, जब तुम खाली जगह देखोगे तो खाली हो जाओगे। लेकिन यह बदलता रहेगा चौथे शरीर मेंः कभी गमला दिखाई पड़ने लगेगा, कभी दो चेहरे दिखाई पड़ने लगेंगे। यह चलता रहेगा--कभी विचार दिखाई पड़ेंगे, कभी खाली जगह दिखाई पड़ेगी। तो मौन भी आएगा और विचार भी चलेंगे।

मौन और शून्य में फर्क

मौन में और शून्य में फर्क यही है। मौन का मतलब यह है कि अभी विचार समाप्त नहीं हो गए, लेकिन एम्फेसिस बदल गई है। अब वाणी से चित्त हट गया है और चुप होने को रसपूर्ण पा रहा है; लेकिन अभी वाणी नहीं हट गई है। वाणी से चित्त हट गया है, वाणी से ध्यान हट गया है, वाणी से अटेंशन हट गई है, अटेंशन चली गई है मौन पर, लेकिन वाणी अभी आती है; और कभी-कभी जब पकड़ लेती है ध्यान को तो मौन खो जाता है और वाणी चलने लगती है। तो चौथे शरीर की आखिरी घड़ियों में इन दोनों पर चित्त बदलता रहेगा।

पांचवें शरीर पर विचार एकदम खो जाएंगे और शून्य रह जाएगा। इसको मौन नहीं कह सकते; क्योंकि मौन जो है वह मुखरता की ही अपेक्षा में है, बोलने की ही अपेक्षा में है। मौन का मतलब है--न बोलना। शून्य का मतलब है--न बोलना और न न-बोलना, दोनों नहीं हैं वहां। वहां न गमला रहा, न दो चेहरे रहे, कागज खाली हो गया। अब अगर कोई पूछे कि चेहरा है कि गमला? तो तुम कहोगे, दोनों नहीं हैं। पांचवें शरीर पर तो निर्विचार पूरी तरह घटित होगा। चौथे शरीर पर उसकी झलक आनी शुरू हो जाएगी--कभी दिखाई पड़ेगा।

लेकिन निर्विचार भी सदा दो विचार के बीच में ही दिखाई पड़ेगा। पांचवें शरीर पर निर्विचार दिखाई पड़ेगा, विचार नहीं दिखाई पड़ेगा।

तीसरे शरीर में विचारों के साथ पूरा तादात्म्य

अब दूसरा सवाल तुम्हारा जो है कि क्या विचार के साथ आइडेंटिटी, तादात्म्य होना जरूरी है तभी विचार आते हैं? या ऐसा भी हो सकता है कि कोई विचार से तादात्म्य न हो और विचार आएं?

तीसरे शरीर तक तो आइडेंटिटी और विचार का आना सदा साथ होता है। तुम्हारा तादात्म्य होता है और विचार आते हैं। इनमें कभी फासले का पता ही नहीं चलेगा। तुम्हारा विचार और तुम एक ही चीज हो, दो नहीं हो। जब तुम क्रोध करते हो तो यह कहना गलत है कि तुम क्रोध करते हो, यही कहना उचित है कि तुम क्रोध हो जाते हो; क्योंकि "क्रोध करते हो" यह तभी कहा जा सकता है जब तुम न भी कर सको; क्योंकि करने का मतलब ही यह होता है...

अगर मैं कहूं कि मैं हाथ हिलाता हूं, और फिर तुम मुझसे कहो कि अच्छा, जरा रोककर दिखाइए। मैं कहूं, वह तो नहीं हो सकता; हाथ तो हिलता ही रहेगा। तो फिर तुम कहोगे कि फिर आप हिलाते हैं, इसका क्या मतलब रहा? कहिए, हाथ हिलता है। अगर आप हिलाते हैं, तो रोककर दिखाइए, फिर हिलाकर दिखाइए। तो अगर मैं रोक न सकूं तो हिलाने की मालकियत बेकार है; उसका कोई मतलब नहीं है।

चूंकि तुम विचार को रोक नहीं सकते तीसरे शरीर तक, इसलिए तुम्हारी आइडेंटिटी पूरी है, तुम ही विचार हो। इसलिए तीसरे शरीर तक आदमी के विचार पर अगर चोट करो तो उस पर ही चोट हो जाती है। अगर कह दो कि आपकी बात गलत है, तो उसको ऐसा नहीं लगता कि मेरी बात गलत है; उसको लगता है, मैं गलत हूं। झगड़ा जो शुरू होता है, वह बात के लिए नहीं होता, फिर वह मैं के लिए झगड़ा शुरू होता है; क्योंकि आइडेंटिटी पूरी है; तुम्हारे विचार को चोट पहुंचाना, मतलब तुम्हें चोट पहुंचाना हो जाता है। भला तुम कहो कि कोई बात नहीं है, आप मेरे विचार के खिलाफ हैं। लेकिन भीतर तुम जानते हो कि आपकी खिलाफत हो गई है।

और कई बार तो ऐसा होता है कि विचार से कोई मतलब नहीं होता, चूंकि वह आपका है, इसलिए झगड़ा करना पड़ता है; और कोई मतलब नहीं होता उससे। क्योंकि आप कह चुके कि मेरी इससे आइडेंटिटी है--यह मेरा मत है, यह मेरी किताब है, यह मेरा शास्त्र है, यह मेरा सिद्धांत है, यह मेरा वाद है, तो अब झगड़ा शुरू होगा।

तीसरे शरीर तक तुम्हारे और विचार के बीच कोई फासला नहीं होता, तुम ही विचार होते हो। चौथे शरीर में डगमगाहट शुरू होती है, तुम्हें ऐसी झलकें मिलने लगती हैं कि मैं अलग हूं और विचार अलग है। लेकिन, फिर भी तुम अपने को असमर्थ पाते हो कि विचार को रोक सको। क्योंकि बहुत गहरी जड़ों में संबंध रह जाता है, ऊपर से संबंध अलग मालूम होने लगता है; शाखाओं पर अलग हो जाता है, एक शाखा पर तुम बैठ जाते हो, दूसरे पर विचार बैठ जाता है। तुम्हें दिखाई तो पड़ता है अलग है, लेकिन नीचे जड़ में तुम और विचार एक होते हो। इसलिए लगता भी है कि अलग है; लगता भी है कि अगर मेरा संबंध टूट जाए, तो बंद हो जाएगा; लेकिन बंद भी नहीं होता, संबंध भी किसी गहरे तल पर बना चला जाता है।

चौथे शरीर पर फर्क पड़ना शुरू होता है। तुम्हें यह झलक मिलने लगती है कि विचार कुछ अलग, मैं कुछ अलग; विचार कुछ अलग, मैं कुछ अलग। लेकिन अभी भी तुम इसकी घोषणा नहीं कर सकते। और अभी भी विचार का आना यांत्रिक होता है--न तो तुम रोक सकते हो, न तुम ला सकते हो।

जैसे मैंने यह बात कही कि क्रोध को रोको, तो पता चलेगा कि तुम मालिक हो। इससे उलटा भी कहा जा सकता है कि अभी क्रोध को लाकर बताओ, तब समझेंगे कि मालिक हो। तो ला भी नहीं सकते। कहोगे कि कैसे ले आएं! लाएं कैसे? और अगर तुम ले आओ, तो बस उसी दिन से तुम मालिक हो जाओगे, उसी दिन से तुम रोक भी सकते हो--किसी भी क्षण। मालकियत जो है वह लाने, ले जाने में अलग-अलग नहीं है; अगर तुम ले आए तो तुम रोक भी सकते हो।

और यह बड़े मजे की बात है कि रोकना जरा कठिन है, लाना जरा सरल है। इसलिए अगर मालकियत लानी हो तो लाने से शुरू करना सदा आसान है, बजाय रोकने के। क्योंकि लाती हालत में तुम शांत होते हो न! रोकती हालत में तुम क्रोध में होते ही हो, तो इसलिए तुम अपने होश में भी नहीं होते, रोकोगे उसे कैसे? इसलिए लाने के प्रयास से शुरुआत करना सदा आसान पड़ता है, बजाय रोकने के प्रयास के।

जैसे तुम्हें हंसी आ रही है और तुम नहीं रोक पा रहे, यह जरा कठिन है; लेकिन नहीं आ रही है और हंसना शुरू करो, तो तुम दो-चार मिनट में हंसी ले आओगे। और जब वह आ जाएगी तब तुम्हें सीक्रेट भी पता चल जाएगा कि आ सकती है--कहां से आती? कैसे आती? तब तुम रोकने का भी रहस्य जान सकते हो किसी दिन, रोका भी जा सकता है।

निर्विचार की झलक से तादात्म्य का टूटना

चौथे शरीर में तुम्हें फर्क तो दिखाई पड़ने लगेगा कि मैं अलग हूं और विचार कहीं से आते हैं, मैं ही नहीं हूं। इसलिए चौथे शरीर में जहां-जहां निर्विचार होगा, जो मैंने पहले कहा, वहीं-वहीं तुम्हारा साक्षी भी आ जाएगा; और जहां-जहां विचार होगा, वहां-वहां साक्षी खो जाएगा। वे जो निर्विचार के गैप्स हैं, अंतराल हैं, वहां-वहां तुम पाओगे कि ये विचार तो अलग हैं, मैं अलग हूं, तादात्म्य नहीं है। लेकिन अभी भी तुम अवश इसको जानोगे भर, अभी बहुत कुछ कर न पाओगे। लेकिन करने की सारी चेष्टा चौथे शरीर में ही करनी पड़ती है।

इसलिए चौथे शरीर की मैंने दो संभावनाएं कहींः एक जो सहज है वह, और एक जो साधना से उपलब्ध होगी। उन दोनों के बीच तुम डोलते रहोगे। और जिस दिन साधना से तुम विवेक को, चौथे शरीर की दूसरी संभावना को--पहली संभावना विचार, दूसरी संभावना विवेक--दूसरी संभावना को उपलब्ध हो जाओगे, उसी दिन चौथा शरीर भी छूटेगा और तादात्म्य भी छूटेगा। पांचवें शरीर में एक साथ ही... जब तुम पांचवें शरीर में जाओगे तो दो बातें छूटेंगीः चौथा शरीर छूटेगा और तादात्म्य छूटेगा।

पांचवें शरीर में चित्त-वृत्तियों पर पूर्ण मालकियत

पांचवें शरीर में तुम विचार को चाहोगे तो लाओगे, नहीं चाहोगे तो नहीं लाओगे। विचार पहली दफा साधन बनेगा और आइडेंटिटी पर निर्भर नहीं रह जाएगा। तुम चाहोगे कि क्रोध लाना है तो तुम क्रोध ला सकोगे, और तुम चाहोगे कि प्रेम लाना है तो तुम प्रेम ला सकोगे, और तुम चाहोगे कि कुछ नहीं लाना है तो तुम कुछ नहीं ला सकोगे, और तुम चाहो कि आधे क्रोध को वहीं कह दो रुको, तो वह वहीं रुक जाएगा। और तुम जिस विचार को लाना चाहोगे वह आएगा और जिसको नहीं लाना चाहोगे उसकी कोई सामर्थ्य नहीं रह जाएगी।

गुरजिएफ की जिंदगी में इस तरह की बहुत घटनाएं हैं, इसलिए लोगों ने तो उसको समझा कि वह आदमी कैसा आदमी है! अक्सर तो वह ऐसा करता कि अगर उसके आसपास दो आदमी बैठे हैं, तो एक की तरफ इस तरह से देखता कि भारी क्रोध में है और दूसरे की तरफ इस तरह से देखता कि भारी प्रेम में है--इतने जल्दी

बदल लेता! और वे दो आदमी दो रिपोर्ट लेकर जाते। दोनों साथ मिलने आए थे और एक आदमी कहता कि बड़ा खतरनाक अजीब आदमी है; दूसरा कहता, कितना प्रेमी आदमी है!

यह बिल्कुल संभव है, पांचवें शरीर पर बिल्कुल आसान है। इसलिए गुरजिएफ बिल्कुल समझ के बाहर हो गया लोगों को कि वह क्या कर रहा है! वह चेहरे पर हजार तरह के भाव तत्काल ला सकता था। उसमें कोई कठिनाई न थी उसको। और लाने का कुल कारण इतना था कि पांचवें शरीर में तुम पहली दफा मालिक होते हो, तुम जो चाहो! तब क्रोध और प्रेम और घृणा और क्षमा... और सब... और तुम्हारे सारे विचार तुम्हारा खेल हो जाते हैं। इसके पहले तुम्हारी जिंदगी थे, इसके बाद तुम्हारा खेल हैं। और इसलिए तुम जब चाहो तब विश्राम पा सकते हो।

खेल से विश्राम आसान है, जिंदगी से विश्राम बहुत मुश्किल है। अगर मैं खेल में ही क्रोध कर रहा हूं, तो तुम्हारे चले जाने के बाद इस कमरे में क्रोध में नहीं बैठा रहूंगा। और अगर मैं खेल में ही बोल रहा हूं, तो तुम्हारे चले जाने के बाद इस कमरे में बोलता नहीं रहूंगा। लेकिन अगर बोलना मेरी जिंदगी है, तो तुम चले जाओगे तो मैं बोलता रहूंगा। कोई नहीं सुनेगा तो मैं ही सुनूंगा, मैं ही बोलूंगा; क्योंकि वह मेरी जिंदगी है; वह कोई खेल नहीं है जिससे विश्राम हो जाए, वह मेरी जिंदगी है जो चौबीस घंटे मुझे पकड़े हुए है। तो वह आदमी रात में भी बोलेगा, सपने में भी बोलेगा, सपने में भी सभा इकट्ठी कर लेगा, वहां भी बोलता रहेगा। सपने में भी लड़ेगा, झगड़ेगा; वही करेगा जो दिन में किया है; वह चौबीस घंटे करेगा; क्योंकि वह जिंदगी है, वह उसका प्राण है।

विचारः अपने या पराए?

पांचवें शरीर पर तुम्हारी आइडेंटिटी टूट जाती है। इसलिए पांचवें शरीर पर पहली दफा तुम अपने वश से मौन होते हो, शून्य होते हो, और जब जरूरत होती है तो तुम विचार करते हो। तो पांचवें शरीर से विचार का पहली दफा उपयोग शुरू होता है। अगर हम इसको ऐसा कहें तो ज्यादा ठीक होगा कि पांचवें शरीर के पहले विचार तुम्हें करता है और पांचवें शरीर से तुम विचार को करते हो। उसके पहले तो तुम्हें कहना ठीक नहीं है कि हम विचार करते हैं।

और पांचवें शरीर पर एक बात और पता चलती है कि विचार केवल हमारा ही होता है, ऐसा भी नहीं है, दूसरे के विचार भी हममें प्रवेश करते रहते हैं। ऐसा नहीं है कि हमारा विचार हमारा ही है, उसमें बहुत चारों तरफ के विचार हममें प्रवेश करते रहते हैं। और हम अक्सर ख्याल में नहीं होते कि हम किस विचार को अपना कह रहे हैं! वह किसी और का हो सकता है।

शक्तिशाली विचारों की उम्र लंबी

एक हिटलर पैदा होता है, तो पूरे जर्मनी को अपना विचार दे देता है; और पूरे जर्मनी का आदमी समझता है कि ये मेरे विचार हैं। ये उसके विचार नहीं हैं। एक बहुत डाइनेमिक आदमी अपने विचारों को विकीर्ण कर रहा है और लोगों में डाल रहा है, और लोग उसके विचारों की सिर्फ प्रतिध्वनियां हैं। और यह डाइनामिज्म इतना गंभीर और इतना गहरा है, कि मोहम्मद को मरे हजार साल हो गए, जीसस को मरे दो हजार साल हो गए, क्रिश्चियन सोचता है कि मैं अपने विचार कर रहा हूं। वह दो हजार साल पहले जो आदमी छोड़ गया है तरंगें, वे अब तक पकड़ रही हैं। महावीर या बुद्ध या कृष्ण या क्राइस्ट--अच्छे या बुरे कोई भी तरह के डाइनेमिक लोग--जो छोड़ गए हैं वह तुम्हें पकड़ लेता है। तैमूरलंग ने अभी भी पीछा नहीं छोड़ दिया है मनुष्यता का, और न चंगीजखां ने छोड़ा है; न कृष्ण ने छोड़ा है, न राम ने छोड़ा है। पीछा वे नहीं छोड़ते। उनकी तरंगें पूरे वक्त डोल रही हैं। तुम जिस तरंग को पकड़ने की हालत में होते हो, उसको पकड़ लेते हो।

विचारों के सागर से घिरा व्यक्ति

इसलिए अक्सर ऐसा हो जाता है कि सुबह एक आदमी बहुत भला था और दोपहर होते-होते बुरा हो गया। सुबह वे राम की तरंगों में रहे हों, दोपहर चंगीजखां की तरंगों में हैं! रिसेप्टिविटी है, और समय से फर्क पड़ जाता है। सुबह भिखमंगा तुम्हारे दरवाजे पर भीख मांगने आता है, क्योंकि सुबह सूरज के उगने के साथ बुरी तरंगों का प्रभाव सर्वाधिक कम होता है पृथ्वी पर। सूरज के थकते-थकते प्रभाव बढ़ना शुरू हो जाता है। सांझ को भिखारी भीख मांगने नहीं आता, क्योंकि सांझ को आशा नहीं है दया की किसी से भी। सुबह थोड़ी आशा है, कि अगर सुबह उठे आदमी से हम कहेंगे कि दो पैसा दे दे, तो वह एकदम से इनकार न कर पाएगा; सांझ को हां भरना जरा मुश्किल हो जाएगा। दिन भर में उसका सब हां थक गया है बुरी तरह से, अब वह इनकार करने की हालत में है। अब उसकी सारी चित्त-दिशा और है, सारी पृथ्वी का वातावरण भी और है।

तो जो विचार हमें लगते हैं हमारे हैं, वे भी हमारे नहीं हैं। यह तुम्हें पांचवें शरीर में ही पता चलेगा जाकर कि क्या आश्चर्यजनक है--विचार भी बाहर से आता और जाता है! तुम पर विचार भी आता और जाता है; और तुम्हें पकड़ता है और छोड़ता है। और हजारों तरह के विचार, और बहुत कंट्राडिक्टरी, आपस में विरोधी विचार आदमी को पकड़े हुए हैं। इतने विरोधी विचार पकड़े हुए हैं, इसीलिए इतना कनफ्यूजन है, एक-एक आदमी इतना कनफ्यूज्ड है। अगर तुम्हारे ही विचार हों, तो कनफ्यूजन की कोई जरूरत नहीं है। लेकिन एक हाथ चंगीजखां पकड़े हुए हैं, दूसरा हाथ कृष्ण पकड़े हुए हैं, अब कनफ्यूजन होनेवाला है; क्योंकि दोनों के विचार प्रतीक्षा कर रहे हैं कि तुम कब तैयारी दिखाओ, वे तुम्हारे भीतर प्रवेश कर जाएं। वे सब मौजूद हैं चारों तरफ।

पांचवें शरीर में विचार-मुक्ति

यह पांचवें शरीर में तुम्हें पता चलेगा, तुम्हारी आइडेंटिटी पूरी टूट जाएगी। लेकिन तब, जैसा मैंने कहा कि जो बड़ा भारी फर्क होगा वह यह होगा कि इसके पहले तुम्हारे पास थॉट्स थे, विचार थे, इसके बाद तुम्हारे पास थिंकिंग होगी, विचारणा होगी। और इनमें भी फर्क है।

विचार आणविक, एटामिक चीजें हैं। तुम पर आते हैं, पराए होते हैं सदा। ऐसा अगर हम कहें कि विचार सदा पराए होते हैं, तो हर्जा नहीं है। विचारणा अपनी होती है, विचार सदा पराए होते हैं; थिंकिंग अपनी होती है, थॉट हमेशा पराया होता है।

तो पांचवें शरीर से तुम में थिंकिंग पैदा होगी, तुम विचार कर सकोगे। तुम सिर्फ विचारों को पकड़कर संगृहीत किए हुए नहीं बैठे रहोगे। और इसलिए पांचवें शरीर की जो विचारणा है, उसका कोई बोझ तुम पर नहीं होगा, वह तुम्हारी अपनी है। और पांचवें शरीर पर चूंकि विचारणा का जन्म हो जाएगा, उसको प्रज्ञा कहो--जो भी नाम देना चाहें, हम दें--पांचवें शरीर पर चूंकि तुम्हारी अपनी इनट्यूशन, अपनी प्रज्ञा, अपनी बुद्धि, अपनी मेधा जग जाएगी, इस पांचवें शरीर के बाद तुम पर दूसरों के विचारों का समस्त प्रभाव क्षीण हो जाएगा। इस अर्थों में भी तुम आत्मवान बनोगे, इस अर्थ में भी तुम आत्मा को उपलब्ध हो जाओगे, तुम स्वयं हो जाओगे; क्योंकि तुम्हारे पास अब अपनी विचारणा है, अपनी विचार-शक्ति है; और तुम्हारे पास देखने की अपनी आंख है, अपना दर्शन है। इसके बाद तुम जो चाहोगे, वह आ जाएगा; तुम जो चाहोगे, वह नहीं आएगा; तुम जो सोचोगे, सोच सकोगे; तुम जो नहीं सोचोगे, नहीं सोच सकोगे। तुम मालिक हो। और यहां से आइडेंटिटी का कोई सवाल नहीं रह जाता है।

छठवें शरीर में विचारणा भी अनावश्यक

प्रश्नः और छठवें शरीर में?

छठवें शरीर में विचारणा की भी कोई जरूरत नहीं रह जाती है। चौथे शरीर तक विचार की जरूरत है; पांचवें शरीर पर विचारणा, थिंकिंग, प्रज्ञा; छठवें शरीर पर वह भी समाप्त हो जाती है। क्योंकि छठवें शरीर पर तुम वहां होते हो जहां कोई जरूरत ही नहीं होती, तुम कास्मिक हो जाते हो; तुम ब्रह्म के साथ एक हो जाते हो; अब कोई दूसरा बचता नहीं।

असल में, सब विचार दूसरे के साथ संबंध है। चौथे शरीर के पहले का जो विचार है, वह मूर्च्छित संबंध है--दूसरे के साथ। पांचवें शरीर पर जो विचार है वह अमूर्च्छित संबंध है, लेकिन दूसरे के ही साथ। आखिर विचार की जरूरत क्या है? विचार की जरूरत है क्योंकि दूसरे से संबंधित होना है। चौथे तक मूर्च्छित संबंध है, पांचवें पर जाग्रत संबंध है, छठवें पर संबंध के लिए कोई नहीं बचता--रिलेटेड नहीं बचते, कास्मिक हो गए, तुम और मैं एक ही हो गए। तो अब तो कोई सवाल नहीं बचता, विचार की अब कोई जगह नहीं बचती जहां विचार खड़ा हो।

छठवें शरीर में केवल ज्ञान शेष

इसलिए ब्रह्म शरीर है छठवां, वहां कोई विचार नहीं है। ब्रह्म में विचार नहीं है। इसलिए अगर ठीक से कहें तो हम इसको ऐसा कह सकते हैं कि ब्रह्म में ज्ञान है। असल में, विचार जो है--चौथे शरीर तक मूर्च्छित विचार--गहन अज्ञान है; क्योंकि वह इस बात की खबर है कि हमें विचार की जरूरत है अज्ञान से लड़ने के लिए। पांचवें शरीर में भीतर तो ज्ञान है, लेकिन बाहर जो हमसे अन्य है, उसके बाबत अब भी अज्ञान है, अभी भी वह अन्य दिखाई पड़ रहा है। इसलिए पांचवें शरीर में विचार करने की जरूरत है। छठवें शरीर में बाहर और भीतर कोई भी नहीं रहा--बाहर-भीतर न रहा, मैं-तू न रहा, यह-वह न रहा--अब कोई फासला न रहा जहां विचार की जरूरत है; अब तो जो है सो है। इसलिए छठवें शरीर में ज्ञान है, विचार नहीं है।

सातवां शरीर ज्ञानातीत है

सातवें में ज्ञान भी नहीं है; क्योंकि जो जानता था, अब वह भी नहीं है; जो जाना जा सकता था, वह भी नहीं है। इसलिए सातवें में ज्ञान भी नहीं है। अज्ञान नहीं, ज्ञानातीत है सातवीं अवस्था--बियांड नालेज है। कोई चाहे तो उसको अज्ञान भी कह सकता है। इसलिए अक्सर ऐसा होता है कि परम ज्ञानी और परम अज्ञानी कभी-कभी बिल्कुल एक से मालूम पड़ते हैं। जो परम ज्ञानी है उसमें और परम अज्ञानी में कई बार बड़ा एक सा व्यवहार होगा। इसलिए छोटे बच्चे में और ज्ञान को उपलब्ध बूढ़े में बड़ी समानता हो जाएगी; वस्तुतः नहीं, लेकिन बड़ा ऊपर से एक सा दिखाई पड़ने लगेगा। कभी-कभी परम संत का व्यवहार बिल्कुल बच्चे जैसा हो जाएगा; कभी-कभी बच्चे के व्यवहार में परम संतता की झलक दिखाई पड़ेगी। और कभी-कभी परम ज्ञानी जो है वह परम अज्ञानी हो जाएगा, बिल्कुल जड़भरत हो जाएगा। वह ऐसा मालूम पड़ने लगेगा कि इससे अज्ञानी और कौन होगा! क्योंकि वह भी बियांड नालेज है और यह बिलो नालेज है। एक ज्ञान के आगे चला गया, एक ज्ञान के अभी पीछे खड़ा है; इन दोनों में एक समानता है कि ज्ञान के बाहर हैं; दोनों ज्ञान के बाहर हैं, इतनी समानता है।

समाधि के तीन प्रकार

प्रश्नः जिसे आप समाधि कहते हैं, वह किस शरीर की उपलब्धि है?

असल में, बहुत तरह की समाधि हैं। इसलिए एक समाधि तो चौथे शरीर और पांचवें शरीर के बीच में घटेगी। और यह भी ध्यान रहे कि समाधि जो है, वह सदा दो शरीरों के बीच में घटती है; वह संध्याकाल है। समाधि जो है वह किसी एक शरीर की घटना नहीं है, दो शरीरों के बीच की घटना है; वह संध्याकाल है। जैसे अगर कोई पूछे कि संध्या, सांझ दिन की घटना है कि रात की? तो हम कहेंगे कि सांझ न दिन की घटना है, न रात की; रात और दिन के बीच की घटना है।

ऐसे ही समाधि जो है, एक समाधि, पहली समाधि चौथे और पांचवें शरीर के बीच में घटती है। चौथे-पांचवें शरीर के बीच में जो समाधि घटती है, उसी से आत्मज्ञान उपलब्ध होता है। एक समाधि पांचवें और छठवें शरीर के बीच में घटती है। पांचवें और छठवें शरीर के बीच में जो समाधि घटती है, उससे ब्रह्मज्ञान उपलब्ध होता है। एक समाधि छठवें और सातवें के बीच में घटती है। छठवें और सातवें के बीच में जो घटती है, उससे निर्वाण उपलब्ध होता है। तो तीन समाधियां हैं साधारणतः। तो ये तीन समाधियां तीन शरीरों के बीच में घटती हैं।

चौथे शरीर में समाधि की मानसिक झलक

और एक फाल्स समाधि को भी समझ लेना चाहिए, जो समाधि नहीं है, लेकिन चौथे शरीर में घटती है; लेकिन समाधि जैसी प्रतीत होती है। जिसको जापान में झेन सतोरी कहते हैं, वह सतोरी इसी तरह की समाधि है। वह वस्तुतः समाधि नहीं है।

जैसे एक चित्रकार को घट जाता है कभी, एक मूर्तिकार को घटता है, एक संगीतज्ञ को घटता है--कि कभी वह लीन हो जाता है पूरी तरह और बड़े आनंद का अनुभव करता है। लेकिन वह चौथे, साइकिक शरीर की घटनाएं हैं। अगर चौथे शरीर में चित्त बिल्कुल समाहित और लीन हो जाए किसी भी बात को लेकर--सुबह सूरज को उगता देखकर, एक संगीत की धुन सुनकर, एक नृत्य को देखकर, एक फूल को खिलते देखकर--अगर चित्त बिल्कुल लीन हो जाए, तो एक फाल्स समाधि, एक मिथ्या समाधि घटित होती है। ऐसी मिथ्या समाधि हिप्नोसिस से पैदा हो सकती है। ऐसी मिथ्या समाधि मिथ्या शक्तिपात से घटित हो सकती है। ऐसी मिथ्या समाधि शराब से, गांजे से, चरस से, मेस्कलीन से, मारिजुआना से, एल एस डी से पैदा हो सकती है।

तो चार तरह की समाधियां हुईं, अगर ऐसा समझें तो। तीन समाधियां जो आथेंटिक, प्रामाणिक समाधियां हैं, उनमें भी तारतम्यता है। और एक चौथी झूठी समाधि, जो बिल्कुल समाधि जैसी मालूम पड़ती है, लेकिन सिर्फ समाधि का ख्याल होती है, घटना नहीं होती। और धोखे में डाल सकती है। और अनेक लोगों को धोखे में डाला हुआ है।

और किस शरीर में घटती है? सिर्फ फाल्स समाधि चौथे शरीर में घटती है। सिर्फ झूठी समाधि जो है, वह संध्या नहीं है; वह किसी शरीर में घटती है; वह चौथे शरीर में घटती है। बाकी तीनों समाधियां शरीरों के बाहर घटती हैं, संक्रमण काल में, जब एक शरीर से तुम दूसरे में जा रहे होते हो--तब। समाधि एक द्वार है, पैसेज है।

चौथे से पांचवें के बीच में एक समाधि है, जिससे आत्मज्ञान उपलब्ध होता है। पहली समाधि पर आदमी रुक सकता है। पहली तो बहुत बड़ी बात है, आमतौर से तो चौथे की फाल्स समाधि पर रुक जाता है। क्योंकि वह सरल है बहुत; खर्च कम पड़ता, मेहनत नहीं होती; और ऐसे ही पैदा हो सकती है। उसमें रुक जाता है। पहली समाधि बहुत कठिन बात हो जाती है--चौथे से पांचवें की यात्रा। दूसरी समाधि और कठिन हो जाती है--

आत्मा से परमात्मा की यात्रा। और तीसरी तो सर्वाधिक कठिन हो जाती है। तो उसके लिए जो शब्द खोजे गए, वे सब कठिन हैं--वज्र-भेद! वह सर्वाधिक कठिन है--होने से न होने की यात्रा, जीवन से मृत्यु में छलांग, अस्तित्व से अनस्तित्व में डूब जाना। तो वे तीन समाधियां हैं।

प्रश्नः उनके कोई नाम हैं?

पहली को आत्म समाधि कहो, दूसरी को ब्रह्म समाधि कहो, तीसरी को निर्वाण समाधि कहो; और पहली को... और भी पहली को, मिथ्या समाधि कहो। और उससे सबसे ज्यादा बचने की जरूरत है, क्योंकि वह जल्दी से उपलब्ध हो सकती है, चौथे शरीर में घटती है। और इसको भी एक शर्त और कसौटी समझ लेना कि अगर किसी शरीर में घटे तो फाल्स होगी। दो शरीरों के बीच में ही घटनी चाहिए। वह द्वार है। उसको बीच कमरे में होने की कोई जरूरत नहीं है। उसको कमरे के बाहर होना चाहिए और दूसरे कमरे के जोड़ पर होना चाहिए। वह पैसेज है, मार्ग है।

कुंडलिनी शक्ति और सर्प में समानताएं

प्रश्नः कुंडलिनी शक्ति का प्रतीक सांप को क्यों माना गया है? कृपया उसके सभी कारणों का उल्लेख करें। थियोसाफी के एंबलम, प्रतीक में एक वृत्ताकार सांप है जिसकी पूंछ मुंह के अंदर है। रामकृष्ण मिशन के प्रतीक में सांप के फन को स्पर्श करती हुई उसकी पूंछ है। कृपया इनका अर्थ भी स्पष्ट करें।

कुंडलिनी के लिए सर्प का प्रतीक बड़ा मौजूं है। शायद उससे अच्छा कोई प्रतीक नहीं है। इसलिए कुंडलिनी में ही नहीं, सर्प ने बहुत-बहुत यात्राएं की हैं, उसके प्रतीक ने। और दुनिया के किसी कोने में भी ऐसा नहीं है कि सर्प कभी न कभी उस कोने के धर्म में प्रवेश न कर गया हो। क्योंकि सर्प में कई खूबियां हैं जो कुंडलिनी से तालमेल खाती हैं।

पहली तो बात यह कि सर्प का ख्याल करते ही सरकने का ख्याल आता है। और कुंडलिनी का पहला अनुभव किसी चीज के सरकने का अनुभव है, कोई चीज जैसे सरक गई--जैसे सर्प सरक गया।

सर्प का ख्याल करते ही एक दूसरी चीज ख्याल में आती है कि सर्प के कोई पैर नहीं हैं, लेकिन गति करता है; गति का कोई साधन नहीं है उसके पास, कोई पैर नहीं हैं, लेकिन गति करता है। कुंडलिनी के पास भी कोई पैर नहीं हैं, कोई साधन नहीं है, निपट ऊर्जा है, फिर भी यात्रा करती है।

तीसरी बात जो ख्याल में आती है कि सर्प जब बैठा हो, विश्राम कर रहा हो, तो कुंडल मारकर बैठ जाता है। जब कुंडलिनी बैठी हालत में होती है, हमारे शरीर की ऊर्जा जब जगी नहीं है, तो वह भी कुंडल मारे ही बैठी रहती है। असल में, एक ही जगह पर बहुत लंबी चीज को बैठना हो तो कुंडल मारकर ही बैठ सकती है, और तो कोई उपाय भी नहीं है उसके बैठने का। वह कुंडल लगाकर बैठ जाए तो बहुत लंबी चीज भी बहुत छोटी जगह में बन जाए। और बहुत बड़ी शक्ति बहुत छोटे से बिंदु पर बैठी है, तो कुंडल मारकर ही बैठ सकती है। फिर सर्प जब उठता है, तो एक-एक कुंडल टूटते हैं उसके--जैसे-जैसे वह उठता है उसके कुंडल टूटते हैं। ऐसा ही एक-एक कुंडल कुंडलिनी का भी टूटता हुआ मालूम पड़ता है, जब कुंडलिनी का सर्प उठना शुरू होता है।

सर्प कभी खिलवाड़ में अपनी पूंछ भी पकड़ लेता है। सर्प का पूंछ पकड़ने का प्रतीक भी कीमती है। और अनेक लोगों को वह ख्याल में आया कि वह पकड़ने का, पूंछ को पकड़ लेने का प्रतीक बड़ा कीमती है। वह कीमती इसलिए है कि जब कुंडलिनी पूरी जागेगी, तो वह वर्तुलाकार हो जाएगी और भीतर उसका वर्तुल बनना शुरू हो जाएगा--उसका फन अपनी ही पूंछ पकड़ लेगा; सांप एक वर्तुल बन जाता।

अब कोई प्रतीक ऐसा हो सकता है कि सांप के मुंह ने उसकी पूंछ को पकड़ा। अगर पुरुष साधना की दृष्टि से प्रतीक बनाया गया होगा तो मुंह पूंछ को पकड़ेगा--आक्रामक होगा। और अगर स्त्री साधना के ध्यान से प्रतीक बनाया गया होगा तो पूंछ मुंह को छूती हुई मालूम पड़ेगी--समर्पित पूंछ है वह; मुंह ने पकड़ी नहीं है। यह फर्क पड़ेगा प्रतीक में, और कोई फर्क पड़नेवाला नहीं है।

सहस्रार में कुंडलिनी का पूरा विस्तार

यह जो सर्प का जो फन है, यह भी सार्थक मालूम पड़ा। क्योंकि पूंछ तो उसकी पतली होती है, लेकिन उसका फन बड़ा होता है। और जब कुंडलिनी पूरी की पूरी जागती है, तो सहस्रार में जाकर फन की भांति फैल जाती है। उसमें बहुत फूल खिलते हैं, वह बहुत विस्तार ले लेती है; पूंछ तब उसकी बहुत छोटी रह जाती है।

सर्प जब कभी खड़ा होता है तो बड़ा आश्चर्यजनक हैः वह पूंछ के बल पूरा खड़ा हो जाता है। वह भी एक मिरेकल है, एक चमत्कार है। सर्प में हड्डी नहीं होती, वह बिना हड्डी का जानवर है, लेकिन वह पूंछ के बल खड़ा हो सकता है। और जब बिना हड्डी का जानवर, कोई रेंगता हुआ पशु--सर्प जैसा--बिना हड्डियों के, पूंछ के बल पूरा खड़ा हो जाता है, तो वह निपट ऊर्जा के सहारे खड़ा है। और कोई उपाय नहीं; उसके पास और ठोस साधन नहीं हैं खड़े होने के--सिर्फ शक्ति के बल, सिर्फ संकल्प के बल खड़ा है। खड़ा होने में कोई बहुत मैटीरियल ताकत नहीं है उसके पास। समझ रहे हैं मेरा मतलब?

तो जब हमारी कुंडलिनी पूरी जागकर खड़ी होती है तो उसके पास कोई मैटीरियल सहारा नहीं होता, एकदम इम्मैटीरियल फोर्स... इसलिए सर्प प्रतीक की तरह लगा।

और भी कई कारण थे जो सर्प में लगे सार्थक। जैसे, एक अर्थ में सर्प बहुत इनोसेंट है, बड़ा भोला है। इसलिए भोलेशंकर उसको सिर पर रखे हुए हैं। वह बहुत भोला है; एकदम भोला है। ऐसे अपनी तरफ से किसी को सताने नहीं जाता। लेकिन अगर कोई छेड़ दे तो खतरनाक सिद्ध हो सकता है। तो यह ख्याल भी कुंडलिनी में है कि कुंडलिनी ऐसे बहुत इनोसेंट शक्ति है, अपनी तरफ से तुम्हें परेशान नहीं करती। लेकिन अगर तुम गलत ढंग से छेड़ दो तो खतरे में पड़ सकते हो, भारी खतरा हो सकता है। इसलिए गलत ढंग से छेड़ना खतरनाक है, वह बोध भी ख्याल में है।

ये सारी बातों को ध्यान में रखकर वह प्रतीक... उससे बेहतर कोई प्रतीक दिखाई नहीं पड़ा--सर्प से बेहतर। और सारी दुनिया में सर्प जो है वह वि.जडम का प्रतीक भी है, प्रज्ञा का प्रतीक भी है। जीसस का वचन हैः सर्प जैसे बुद्धिमान, चालाक और कबूतर जैसे भोले--ऐसे बनो। सर्प बहुत ही बुद्धिमान प्राणी है--बहुत सजग, बहुत जागरूक, बहुत तेज, बहुत गतिमान, वे सब उसकी खूबियां हैं। कुंडलिनी भी वैसी चीज है। बुद्धिमत्ता का चरम शिखर उससे छुआ जाएगा। उतनी ही चपल और गतिमान भी है। उतनी ही शक्तिशाली भी है।

कुंडलिनी का आधुनिक प्रतीक--विद्युत व राकेट

तो पुराने दिनों में जब यह प्रतीक खोजा गया कुंडलिनी के लिए, तब शायद सर्प से बेहतर कोई प्रतीक नहीं था। अब भी नहीं है; लेकिन शायद भविष्य में और प्रतीक हो जाएं--राकेट की तरह। कभी भविष्य का कोई ख्याल राकेट की तरह कुंडलिनी को पकड़ सकता है; वैसी उसकी यात्रा है--एक अंतरिक्ष से दूसरे अंतरिक्ष, एक

ग्रह से दूसरे ग्रह में, बीच में शून्य की पर्त है। वह कभी प्रतीक बन सकता है। प्रतीक तो युग खोजता है। यह प्रतीक तो उस दिन खोजा गया जब आदमी और पशु बड़े निकट थे। उस वक्त सारे प्रतीक हमने पशुओं से खोजे, क्योंकि हमारे पास वही तो जानकारी थी, उन्हीं से हम खोजते थे। सर्प उस समय हमारी नजर में सबसे निकटतम प्रतीक था।

जैसे विद्युत--उस दिन हम नहीं कह सकते थे। आज जब मैं बात करता हूं तो कुंडलिनी के साथ इलेक्ट्रिसिटी की बात कर सकता हूं। आज से पांच हजार साल पहले कुंडलिनी के साथ विद्युत की बात नहीं की जा सकती थी, क्योंकि विद्युत का कोई प्रतीक नहीं था। लेकिन सर्प में विद्युत जैसी क्वालिटी भी है। हमें अब कठिन मालूम होता है, क्योंकि हममें से बहुतों के जीवन में सर्प का कोई अनुभव ही नहीं है। हमारी बड़ी कठिनाई है, क्योंकि हमारे लिए सर्प का कोई अनुभव नहीं है। कुंडलिनी का तो है ही नहीं, सर्प का भी बहुत अनुभव नहीं है। सर्प हमारे लिए जैसे एक मिथ है।

आधुनिक युग में सर्प से अपरिचय और कुंडलिनी से भी

अभी पिछली दफा लंदन में बच्चों का एक सर्वे किया गया, तो लंदन में सात लाख ऐसे बच्चे हैं जिन्होंने गाय नहीं देखी। तो जिन बच्चों ने गाय न देखी हो, उन्होंने सर्प देखा हो, यह जरा मुश्किल मामला है। अब जिन बच्चों ने गाय नहीं देखी है, अब इनका चिंतन, इनका सोचना, इनके प्रतीक बहुत भिन्न हो जाएंगे।

सर्प बाहर हो गया दुनिया से; वह हमारी दुनिया का अब हिस्सा नहीं है बहुत। कभी वह हमारा बहुत निकट पड़ोसी था; चौबीस घंटे साथ था, सत्संग था। और तब आदमी ने उसकी सब चपलताएं देखी हैं, उसकी बुद्धिमानी देखी है, उसकी गति देखी है; उसकी सरलता भी देखी है, उसका खतरा भी देखा है; वह सब देखा है। ऐसी घटनाएं हैं जब कि कोई सर्प एक बच्चे को बचा ले। एक निरीह बच्चा पड़ा है, और सर्प उस पर फन मारकर बैठ जाए और उसको बचा ले। वह इतना भोला भी है। और ऐसी भी घटनाएं हैं कि वह खतरनाक से खतरनाक आदमी को एक दंश मार दे और समाप्त कर दे। वे दोनों उसकी संभावनाएं हैं।

तो जब आदमी सर्प के बहुत निकट रहा होगा, तब उसको पहचाना था वह। उसी वक्त कुंडलिनी की बात भी चली थी, वे दोनों तालमेल खा गए। वह बहुत पुराना प्रतीक बन गया। लेकिन सब प्रतीक अर्थपूर्ण हैं। क्योंकि जब बनाए गए हैं हजारों साल में, तो उनके पीछे कोई तालमेल है। लेकिन अब टूट जाएगा, बहुत दिन सर्प का प्रतीक नहीं चलेगा। अब बहुत दिन तक हम कुंडलिनी को सरपेंट पावर नहीं कह सकेंगे। क्योंकि सर्प बेचारा अब कहां है! अब उसमें उतनी शक्ति भी कहां है! अब वह जिंदगी के रास्ते पर कहीं दिखाई नहीं पड़ता। वह कहीं हमारा पड़ोसी भी नहीं रहा, हमारे पास भी नहीं रहता। उससे हमारे कोई संबंध नहीं रह गए हैं। इसलिए यह सवाल उठता है, नहीं तो पहले यह कभी सवाल नहीं उठ सकता था, क्योंकि सर्प एकमात्र प्रतीक था।

शारीरिक संरचना में रूपांतरण

प्रश्नः ऐसा कहा गया है कि कुंडलिनी जब जागती है तो वह खून पी जाती है, मांस खा जाती है। इसका क्या अर्थ है?

हां, इसका अर्थ होता है, इसका अर्थ होता है। इसका अर्थ... और बिल्कुल वैसा ही होता है, जैसा कहा गया है; प्रतीक अर्थ नहीं होता। असल में, कुंडलिनी जागे तो शरीर में बड़े रूपांतरण होते हैं; बड़े रूपांतरण होते हैं। कोई भी ऊर्जा शरीर में जागेगी नई, तो शरीर का पुराना पूरा का पूरा कंपोजीशन बदलता है। बदलेगा ही।

जैसे, हमारा शरीर कई तरह के व्यवहार कर रहा है जिनका हमें पता नहीं है, जो अनजाने और अनकांशस हैं। जैसे कंजूस आदमी है। अब कंजूसी तो मन की बात है, लेकिन शरीर भी उसका कंजूस हो जाएगा। और शरीर उन तत्वों को डिपॉजिट करने लगेगा जिनकी भविष्य में जरूरत है। अकारण इकट्ठे कर लेगा, इतने इकट्ठे कर लेगा कि उनके इकट्ठे होने से परेशानी में पड़ जाएगा। वे बोझिल हो जाएंगे।

अब एक आदमी बहुत भयभीत है। तो शरीर उन तत्वों को बहुत इकट्ठे करके रखेगा जिनसे भय पैदा किया जा सकता है। नहीं तो कभी भय का तत्व न रहे पास, और तुम्हें भयभीत होना है, तो शरीर क्या करेगा? तुम उससे मांग करोगे--मुझे भयभीत होना है! और शरीर के पास भय की ग्रंथियां नहीं हैं, भय का रस नहीं है, तो क्या करेगा? तो वह इकट्ठा करता है। भयभीत आदमी का शरीर भय की ग्रंथियां इकट्ठी कर लेता है, भय इकट्ठा कर लेता है। अब जिस आदमी को भय में पसीना छूटता है, उसके शरीर में पसीने की ग्रंथियां बहुत मजबूत हो जाती हैं और बहुत पसीना वह इकट्ठा करके रखता है। कभी भी, रोज दिन में दस दफे जरूरत पड़ जाती है।

तो हमारा शरीर जो है, वह हमारे चित्त के अनुकूल बहुत कुछ इकट्ठा करता रहता है। जब हमारा चित्त बदलेगा तो शरीर बदलेगा। और जब हमारा चित्त बदलेगा और कुंडलिनी जागेगी तो पूरा रूपांतरण होगा। उस रूपांतरण में बहुत कुछ बदलाहट होगी। उसमें तुम्हारा मांस कम हो सकता है, तुम्हारा खून कम हो सकता है, लेकिन उतना ही कम हो सकता है जितने की तुम्हारे लिए जरूरत रह जाए। शरीर एकदम रूपांतरित होगा। शरीर के लिए जितना निपट आवश्यक है, वह रह जाएगा, शेष सब जलकर खाक हो जाएगा--तभी तुम हलके हो पाओगे, तभी उड़ने योग्य हो पाओगे। वह होगा फर्क।

इसलिए वह ठीक है ख्याल उनका। इसलिए साधक को एक विशेष प्रकार का भोजन, एक विशेष प्रकार की जीवन व्यवस्था, वह सब जरूरी है। अन्यथा वह बहुत मुश्किल में पड़ सकता है।

कुंडलिनी की आग में सब कचरा भस्म

फिर कुंडलिनी जब जागेगी, तुम्हारे भीतर बहुत गर्मी पैदा होगी; क्योंकि वह तो इलेक्ट्रिक फोर्स है; वह तो बहुत तापग्रस्त ऊर्जा है। जैसा कि मैंने तुमसे कहा कि सर्प एक प्रतीक है, कुछ जगह कुंडलिनी को अग्नि ही प्रतीक समझा गया है। वह भी अच्छा प्रतीक था। तो वह आग की तरह ही जलेगी तुम्हारे भीतर और लपटों की तरह ऊपर उठेगी। उसमें तुम्हारा बहुत कुछ जलेगा। तो अत्यंत रूखापन भीतर पैदा हो सकता है कुंडलिनी के जगने से। इसलिए व्यक्तित्व स्निग्ध चाहिए और व्यक्तित्व में थोड़े रस-स्रोत चाहिए।

अब जैसे क्रोधी आदमी है। अगर क्रोधी आदमी की कुंडलिनी जग जाए तो वह मुश्किल में पड़ेगा; क्योंकि वह वैसे ही रूखा आदमी है, और एक आग जग जाए उसके भीतर तो कठिनाई हो जाएगी। प्रेमी आदमी है, वह स्निग्ध है; उसके भीतर रस की स्निग्धता है। कुंडलिनी जगेगी तो कठिनाई नहीं होगी।

इन सब बातों को ध्यान में रखकर वह बात कही गई है। लेकिन वह बहुत क्रूड ढंग से कही गई है। और पुराना ढंग सभी क्रूड था। वह बहुत विकसित नहीं है कहने का ढंग। पर ठीक कहा है कि मांस जलेगा, खून जलेगा, मज्जा जलेगी। क्योंकि तुम बदलोगे पूरे के पूरे; तुम दूसरे आदमी होनेवाले हो, तुम्हारी सारी की सारी व्यवस्था, सारी कंपोजीशन बदलने को है। इसलिए साधक की तैयारी में वह भी ध्यान में रखना अत्यंत जरूरी है।

अब फिर कल बात करेंगे।

उन्नीसवां प्रवचन

अज्ञात, अपरिचित गहराइयों में

प्रश्नः नारगोल शिविर में आपने कहा कि योग के आसन, प्राणायाम, मुद्रा और बंध का आविष्कार ध्यान की अवस्थाओं में हुआ तथा ध्यान की विभिन्न अवस्थाओं में विभिन्न आसन व मुद्राएं बन जाती हैं जिन्हें देखकर साधक की स्थिति बताई जा सकती है। इसके उलटे यदि वे आसन व मुद्राएं सीधे की जाएं तो ध्यान की वही भावदशा बन सकती है। तब क्या आसन, प्राणायाम, मुद्रा और बंधों के अभ्यास से ध्यान उपलब्ध हो सकता है? ध्यान साधना में उनका क्या महत्व और उपयोग है?

प्रारंभिक रूप से ध्यान ही उपलब्ध हुआ। लेकिन ध्यान के अनुभव से ज्ञात हुआ कि शरीर बहुत सी आकृतियां लेना शुरू करता है। असल में, जब भी मन की एक दशा होती है तो उसके अनुकूल शरीर भी एक आकृति लेता है। जैसे जब आप प्रेम में होते हैं तो आपका चेहरा और ढंग का हो जाता है, जब क्रोध में होते हैं तो और ढंग का हो जाता है। जब आप क्रोध में होते हैं तब आपके दांत भिंच जाते हैं, मुट्ठियां बंध जाती हैं, शरीर लड़ने को या भागने को तैयार हो जाता है। ऐसे ही, जब आप क्षमा में होते हैं तब मुट्ठी कभी नहीं बंधती, हाथ खुला हुआ हो जाता है। क्षमा का भाव अगर कोई आदमी में हो तो वह क्रोध की भांति मुट्ठी बांधकर नहीं रह सकता। जैसे मुट्ठी बांधना हमला करने की तैयारी है, ऐसा मुट्ठी खोलकर खुला हाथ कर देना हमले से मुक्त करने की सूचना है--वह दूसरे को अभय देना है; मुट्ठी बांधना दूसरे को भय देना है।

शरीर एक स्थिति लेता है, क्योंकि शरीर का उपयोग ही यही है कि मन जिस अवस्था में हो, शरीर तत्काल उस अवस्था के योग्य तैयार हो जाए। शरीर जो है, अनुगामी है; वह पीछे अनुगमन करता है।

तो साधारण स्थिति में... यह तो हमें पता है कि एक आदमी क्रोध में क्या करेगा; यह भी पता है कि प्रेम में क्या करेगा; यह भी पता है कि श्रद्धा में क्या करेगा। लेकिन और गहरी स्थितियों का हमें कोई पता नहीं है।

जब भीतरी चित्त में वे गहरी स्थितियां पैदा होती हैं, तब भी शरीर में बहुत कुछ होता है। मुद्राएं बनती हैं, जो कि बड़ी सूचक हैं; जो भीतर की खबर लाती हैं। आसन भी बनते हैं; जो कि परिवर्तन के सूचक हैं।

असल में, भीतर की स्थितियों की तैयारी के समय तो बनते हैं आसन और भीतर की स्थितियों की खबर देने के समय बनती हैं मुद्राएं। भीतर जब एक परिवर्तन चलता है तो शरीर को भी उस नये परिवर्तन के योग्य एडजस्टमेंट खोजना पड़ता है।

अब भीतर यदि कुंडलिनी जाग रही है तो उस कुंडलिनी के लिए मार्ग देने के लिए शरीर आड़ा-तिरछा, न मालूम कितने रूप लेगा। वह मार्ग कुंडलिनी को भीतर मिल सके, इसलिए शरीर की रीढ़ बहुत तरह के तोड़ करेगी। जब कुंडलिनी जाग रही है तो सिर भी विशेष स्थितियां लेगा। जब कुंडलिनी जाग रही है तो शरीर को कुछ ऐसी स्थितियां लेनी पड़ेंगी जो उसने कभी नहीं लीं।

अब जैसे, जब हम जागते हैं तो शरीर खड़ा होता है या बैठता है; जब हम सोते हैं तब खड़ा और बैठा नहीं रह जाता, उसे लेटना पड़ता है। समझ लें एक आदमी ऐसा पैदा हो जो सोना न जानता हो जन्म के साथ, तो वह कभी लेटेगा नहीं। तीस वर्ष की उम्र में उसको पहली दफे नींद आए, तो वह पहली दफे लेटेगा, क्योंकि उसके भीतर की चित्त-दशा बदल रही है और वह नींद में जा रहा है। तो उसको बड़ी हैरानी होगी कि यह लेटना अब

तक तो कभी घटित नहीं हुआ, आज वह पहली दफा लेट क्यों रहा है! अब तक वह बैठता था, चलता था, उठता था, सब करता था, लेटता भर नहीं था।

अब नींद की स्थिति बन सके भीतर, इसके लिए लेटना बड़ा सहयोगी है। क्योंकि लेटने के साथ ही मन को एक व्यवस्था में जाने में सरलता हो जाती है। लेटने में भी अलग-अलग व्यक्तियों की अलग-अलग स्थितियां होती हैं, एक सी नहीं होतीं; क्योंकि अलग-अलग व्यक्तियों के चित्त भिन्न होते हैं। जैसे जंगली आदमी तकिया नहीं रखता है, लेकिन सभ्य आदमी बिना तकिए के नहीं सो सकता। जंगली आदमी इतना कम सोचता है कि उसके सिर की तरफ खून का प्रवाह बहुत कम होता है। और नींद के लिए जरूरी है कि सिर की तरफ खून का प्रवाह कम हो जाए। अगर प्रवाह ज्यादा है तो नींद नहीं आएगी, क्योंकि सिर के स्नायु शिथिल नहीं हो पाएंगे, विश्राम में नहीं जा पाएंगे, उनमें खून दौड़ता रहेगा। इसलिए आप तकिए पर तकिए रखते चले जाते हैं। जैसे आदमी शिक्षित होता है, सुसंस्कृत, तकिए ज्यादा होते जाते हैं; क्योंकि गर्दन इतनी ऊंची होनी चाहिए कि खून भीतर न चला जाए सिर के। जंगली आदमी बिना इसके सो सकता है।

ये हमारे शरीर की स्थितियां हमारे भीतर की स्थितियों के अनुकूल खड़ी होती हैं। तो आसन बनने शुरू होते हैं तुम्हारे भीतर की ऊर्जा के जागरण और विभिन्न रूपों में गति करने से। विभिन्न चक्र भी शरीर को विभिन्न आसनों में ले जाते हैं। और मुद्राएं पैदा होती हैं जब तुम्हारे भीतर एक स्थिति बनने लगती है--तब भी तुम्हारे हाथ, तुम्हारे चेहरे, तुम्हारे आंख की पलकें, सबकी मुद्राएं बदल जाती हैं।

यह ध्यान में होता है। लेकिन इससे उलटी बात भी स्वाभाविक ख्याल में आई कि यदि हम इन क्रियाओं को करें तो क्या ध्यान हो जाएगा? इसे थोड़ा समझना जरूरी है।

आसनों से चित्त में परिवर्तन अनिवार्य नहीं

ध्यान में ये क्रियाएं होती हैं, लेकिन फिर भी अनिवार्य नहीं हैं। यानी ऐसा नहीं है कि सभी साधकों को एक सी क्रिया हो। एक कंडीशन ख्याल में रखनी जरूरी है, क्योंकि प्रत्येक साधक की स्थिति अलग है, और प्रत्येक साधक की चित्त की और शरीर की स्थिति भी भिन्न है। तो सभी साधकों को ऐसा होगा, ऐसा नहीं है।

अब जैसे किसी साधक के चित्त में, मस्तिष्क में अगर खून की गति बहुत कम है और कुंडलिनी जागरण के लिए सिर में खून की गति की ज्यादा जरूरत है उसके शरीर को, तो वह तत्काल शीर्षासन में चला जाएगा--अनजाने। लेकिन सभी नहीं चले जाएंगे; क्योंकि सभी के सिर में खून की स्थिति और अनुपात अलग-अलग है; सबकी अपनी जरूरत अलग-अलग है। तो प्रत्येक साधक की स्थिति के अनुकूल बनना शुरू होगा। और सबकी स्थिति एक जैसी नहीं है।

तो एक तो यह फर्क पड़ेगा कि जब ऊपर से कोई आसन करेगा तो हमें कुछ भी पता नहीं है कि वह उसकी जरूरत है या नहीं है। कभी सहायता भी पहुंचा सकता है, कभी नुकसान भी पहुंचा सकता है। अगर वह उसकी जरूरत नहीं है तो नुकसान पड़ेगा, अगर उसकी जरूरत है तो फायदा पड़ जाएगा। लेकिन वह अंधेरे में रास्ता होगा--एक कठिनाई। दूसरी कठिनाई और है, और वह यह है कि हमें जो भीतर होता है, उसके साथ जब बाहर कुछ होता है, तब-तब भीतर से ऊर्जा बाहर की तरफ सक्रिय होती है; जब हम बाहर कुछ करते हैं तब वह केवल अभिनय होकर भी रह जा सकता है।

जैसे कि मैंने कहा कि जब हम क्रोध में होते हैं तो मुट्ठियां बंध जाती हैं। लेकिन मुट्ठियां बंध जाने से क्रोध नहीं आ जाता। हम मुट्ठियां बांधकर बिल्कुल अभिनय कर सकते हैं और भीतर क्रोध बिल्कुल न आए। फिर भी, अगर भीतर क्रोध लाना हो तो मुट्ठियां बांधना सहयोगी सिद्ध हो सकता है। अनिवार्यतः भीतर क्रोध पैदा होगा,

यह नहीं कहा जा सकता। लेकिन मुट्ठी न बांधने और बांधने में अगर चुनाव करना हो तो बांधने में क्रोध के पैदा होने की संभावना बढ़ जाएगी बजाय मुट्ठी खुली होने के। तो इतनी थोड़ी सी सहायता मिल सकती है।

अब जैसे एक आदमी शांत स्थिति में आ गया तो उसके हाथ की शांत मुद्राएं बनेंगी, लेकिन एक आदमी हाथ की शांत मुद्राएं बनाता रहे, तो चित्त अनिवार्य रूप से शांत होगा, यह नहीं है। हां, फिर भी चित्त को शांत होने में सहायता मिलेगी, क्योंकि शरीर तो अपनी अनुकूलता जाहिर कर देगा कि हम तैयार हैं, अगर चित्त को बदलना हो तो वह बदल जाए। लेकिन फिर भी सिर्फ शरीर की अनुकूलता से चित्त नहीं बदल जाएगा। और उसका कारण यह है कि चित्त तो आगे है, शरीर सदा अनुगामी है। इसलिए चित्त बदलता है, तब तो शरीर बदलता ही है; लेकिन शरीर के बदलने से सिर्फ चित्त के बदलने की संभावना भर पैदा होती है, बदलाहट नहीं हो जाती।

भीतर से यात्रा शुरू करो

तो इसलिए भ्रांति का डर है कि कोई आदमी आसन ही करता रहे, मुद्राएं ही सीखता रहे और समझ ले कि बात पूरी हो गई। ऐसा हुआ है, हजारों वर्षों तक ऐसा हुआ है कि कुछ लोग आसन-मुद्राएं ही करते रहे हैं और समझते हैं कि योग साध रहे हैं। धीरे-धीरे योग से ध्यान तो ख्याल से उतर गया। अगर कहीं तुम किसी से कहो कि वहां योग की साधना होती है, तो जो ख्याल आता है वह यह है कि आसन, प्राणायाम इत्यादि होता होगा।

तो इसलिए मैं जरूर यह कहता हूं कि अगर साधक की जरूरत समझी जाए तो उसके शरीर की कुछ स्थितियां उसके लिए सहयोगी बनाई जा सकती हैं, लेकिन इनका कोई अनिवार्य परिणाम नहीं है। और इसलिए काम सदा भीतर से ही शुरू करने के मैं पक्ष में हूं, बाहर से शुरू करने के पक्ष में नहीं हूं। भीतर से शुरू होना चाहिए।

फिर अगर भीतर से शुरू होता हो तो समझा जा सकता है। अब जैसे कि मुझे लगता है... एक साधक ध्यान में बैठा है और मुझे लगता है कि उसका रोना फूटना चाहता है, लेकिन वह रोक रहा है। अब यह मुझे दिखाई पड़ रहा है कि अगर वह रो ले दस मिनट तो उसकी गति हो जाए--एक कैथार्सिस हो जाए, एक रेचन हो जाए उसका। लेकिन वह रोक रहा है, वह सम्हाल रहा है अपने को कि कहीं रोना न निकल जाए। इस साधक को अगर हम कहें कि अब तुम रोको मत, तुम अपनी तरफ से ही रो लो--तुम रोओ! तो यह दो मिनट तक तो अभिनय की तरह रोएगा, तीसरे मिनट से इसका रोना सही और ठीक हो जाएगा, आथेंटिक हो जाएगा; क्योंकि रोना तो भीतर से फूटना ही चाह रहा था, यह रोक रहा था। इसके रोने की प्रक्रिया रोने को नहीं ले आएगी, इसके रोने की प्रक्रिया रोकने को तोड़ देगी और जो भीतर से बह रहा था वह बह जाएगा।

अब जैसे एक साधक नाचने की स्थिति में है, लेकिन अपने को अकड़कर खड़ा किए हुए है। अगर हम उससे कह दें कि नाचो! तो प्राथमिक चरण में तो वह अभिनय ही शुरू करेगा, क्योंकि अभी वह नाच निकला नहीं है। वह नाचना शुरू करेगा, लेकिन भीतर से नाच फूटने की तैयारी कर रहा है, और इसने नाचना शुरू कर दिया--इन दोनों का तत्काल मेल हो जाएगा। लेकिन जिसके भीतर नाचने की कोई बात ही नहीं उसको हम कहें--नाचो! तो वह नाचता रहेगा, लेकिन भीतर कुछ भी नहीं होगा।

इसलिए हजार बातें ध्यान में रखनी जरूरी हैं। तो जो भी मैं कहता हूं, उसमें बहुत सी शर्तें हैं। उन सारी शर्तों को ख्याल में रखोगे तो बात ख्याल में आ सकती है। और अगर इनको ख्याल में न रखनी हों तो सबसे

सरल यह है कि भीतर से यात्रा शुरू करो; और बाहर से जो भी होता हो उसे रोको मत। बस इतना पर्याप्त है--भीतर से काम शुरू करो; बाहर जो होता हो उसको रोको मत, उससे लड़ो मत, तो सब अपने से हो जाएगा।

खड़े होकर ध्यान करने से होश रखना सदा आसान

प्रश्नः आजकल आप जिस प्रयोग की बात कर रहे हैं उसमें बैठकर प्रयोग करने में और खड़े होकर प्रयोग करने में क्या फिजिकल और साइकिक अंतर पड़ता है?

बहुत अंतर पड़ता है। जो मैंने अभी कहा कि हमारे शरीर की प्रत्येक स्थिति हमारे मन की प्रत्येक स्थिति से कहीं गहरे में जुड़ी है और कहीं समानांतर, पैरेलल है। अगर हम किसी आदमी को लिटाकर कहें कि होश रखो, तो रखना मुश्किल हो जाएगा; अगर खड़े होकर कहें कि होश रखो, तो आसान हो जाएगा। अगर खड़े होकर हम कहें कि सो जाओ, तो मुश्किल हो जाएगा; अगर लेटकर हम कहें कि सो जाओ, तो आसान हो जाएगा।

तो इस प्रयोग में दोहरी प्रक्रियाएं हैं। प्रयोग का आधा हिस्सा सम्मोहन का है, जिसमें कि निद्रा का डर है। प्रयोग की प्रक्रिया हिप्नोसिस की है। सम्मोहन का प्रयोग सिर्फ निद्रा और बेहोशी के लिए किया जाता है। इसलिए डर है कि साधक सो न जाए, तंद्रा में न चला जाए। खड़ा रहे तो इस डर को थोड़ा सा तोड़ने में सहायता मिलती है। संभावना कम हो गई उसके सोने की। इस प्रयोग का दूसरा हिस्सा साक्षी-भाव का है--जागरण का, अवेयरनेस का है। लेटने में अवेयरनेस प्राथमिक रूप से रखनी कठिन है, अंतिम रूप से रखनी आसान है। खड़े होकर होश रखना सदा आसान है।

तो होश रह सकेगा खड़े होकर, साक्षी-भाव रह सकेगा; और दूसरी बातः सम्मोहन की जो प्रक्रिया है प्राथमिक, वह निद्रा में ले जाए, इसकी संभावना कम हो जाएगी।

प्रतिक्रियाओं में तीव्रता

और दो-तीन बातें हैं। जैसे, जब तुम खड़े हो, तब शरीर में जो मूवमेंट होने हैं, वे मुक्त भाव से हो सकेंगे। लेटकर उतने मुक्त भाव से न हो सकेंगे; बैठकर भी आधा शरीर तो कर ही न पाएगा। समझ लो, पैरों को नाचना है और तुम बैठे हो, तब पैर नाच न पाएंगे। और तुम्हें पता भी नहीं चलेगा, क्योंकि पैरों के पास भाषा नहीं है साफ कि तुमसे कह दें कि अब हमें नाचना है। बहुत सूक्ष्म इशारे हैं, जिनको हम पकड़ नहीं पाते। अगर तुम खड़े हो तो पैर उठने लगेंगे और तुम्हें सूचना मिल जाएगी कि पैर नाचना चाहते हैं। लेकिन अगर तुम बैठे हो तो यह सूचना नहीं मिलेगी।

असल में, बैठी हुई हालत में ध्यान करने का प्रयोग ही शरीर में होनेवाली इन गतियों को रोकने के लिए था। इसलिए ध्यान के पहले सिद्धासन या पद्मासन या सुखासन, ऐसे आसन का अभ्यास करना पड़ता था जिसमें शरीर डोल न सके। तो शरीर में जो ऊर्जा जगेगी उसकी संभावना बहुत पहले से है कि उसमें बहुत कुछ होगा--नाचोगे, गाओगे, रोओगे, कूदोगे, दौड़ोगे। तो ये स्थितियां सदा से पागल की समझी जाती रही हैं। कोई दौड़ रहा है, नाच रहा है, रो रहा है, चिल्ला रहा है--ये स्थितियां पागल की समझी जाती रही हैं। साधक भी यह करेगा तो पागल मालूम पड़ेगा। तो समाज के सामने वह पागल न मालूम पड़े इसलिए पहले वह सुखासन, सिद्धासन या पद्मासन का कठोर अभ्यास करेगा, जिसमें कि शरीर के रंच मात्र हिलने का डर न रह जाए। और जो बैठक है पद्मासन की या सिद्धासन की, वह ऐसी है कि उसमें तुम्हारे पैर जकड़ जाते हैं, जमीन पर तुम्हारा आयतन

ज्यादा हो जाता है, ऊपर तुम्हारा आयतन कम होता जाता है। तुम एक मंदिर की भांति हो जाते हो, जो नीचे चौड़ा है--एक पिरामिड की भांति--और ऊपर संकरा है। मूवमेंट की संभावना सबसे कम हो जाती है।

मूवमेंट की सर्वाधिक संभावना तुम्हारे खड़े होने में है, जब कि नीचे कोई जड़ बनाकर चीज नहीं बैठ गई है। तो तुम्हारी जो पालथी है, वह नीचे जड़ बनाने का काम करती है। जमीन के ग्रेविटेशन पर तुम्हारा बहुत बड़ा हिस्सा शरीर का हो जाता है; वह उसे पकड़ लेता है। फिर हाथ भी तुम इस भांति से रखते हो कि उनमें डोलने की संभावना कम रह जाती है। फिर रीढ़ को भी सीधा और थिर रखना है। और पहले इस आसन का अभ्यास करना है काफी, जब इसका अभ्यास हो जाए तब ध्यान में जाना है।

स्थूल शरीर से रेचन करना सरल

मेरी दृष्टि में इससे उलटी बात है। और मेरी दृष्टि में बात यह है कि पागल और हममें कोई बुनियादी फर्क नहीं है। हम सब दबे हुए पागल हैं; सप्रेस्ड इनसेनिटी है हमारी। या कहना चाहिए हम जरा नार्मल ढंग के पागल हैं। या कहना चाहिए कि हम औसत पागल हैं; एवरेज पागल हैं। हमारा सब पागलों से तालमेल खाता है। हमारे भीतर जो पागल थोड़े आगे निकल जाते हैं वे जरा दिक्कत में पड़ जाते हैं। लेकिन हम सबके भीतर पागलपन है। और हम सबका पागलपन भी अपना निकास खोजता है।

जब तुम क्रोध में होते हो तब एक अर्थ में तुम मोमेंटरी मैडनेस में होते हो। उस वक्त तुम वे काम करते हो जो तुमने होश में कभी न किए होते। तुम गालियां बकते हो, पत्थर फेंकते हो, सामान तोड़ सकते हो, छत से कूद सकते हो, कुछ भी कर सकते हो। यह पागल करता तो हम समझ लेते। लेकिन क्रोध में भी एक आदमी करता है तो हम कहते हैं, वह क्रोध में था। लेकिन था तो वही। ये चीजें उसके भीतर अगर नहीं थीं तो आ नहीं सकतीं; ये उसके भीतर हैं। लेकिन हम इन सबको सम्हाले हुए हैं।

मेरी अपनी समझ यह है कि ध्यान के पहले इन सबका निकास हो जाना जरूरी है। जितना इनका निकास हो जाएगा, उतना तुम्हारा चित्त हलका हो जाएगा। और इसलिए पुरानी जो साधना की प्रक्रिया थी, जिसमें तुम सिद्धासन लगाकर बैठते, उसमें जिस काम में वर्षों लग जाते, वह इस प्रक्रिया में महीनों में पूरी हो जाएगी। उसमें जिसमें जन्मों लग जाते, इसमें दिनों में हो सकती है। क्योंकि इसका निष्कासन तो उस प्रक्रिया में भी करना पड़ता था, लेकिन उस प्रक्रिया में जो मूवमेंट थे, वे फिजिकल बॉडी के बंद करके और ईथरिक बॉडी के करने पड़ते थे।

अब वह जरा दूसरी बात है। करने तो पड़ते ही थे, रोना तो पड़ता ही था, क्योंकि अगर रोना भीतर है तो उसका निकालना जरूरी है; और अगर हंसना भीतर है तो उसका भी निकालना जरूरी है; और अगर नाचना भीतर है तो उसका भी निकालना जरूरी है; और अगर चिल्लाने की इच्छा है तो वह भी निकलनी चाहिए। लेकिन अगर फिजिकल बॉडी का तुमने गहरा अभ्यास किया है और तुम उसे थिर रख सकते हो, घंटों के लिए, तो फिर इन सबका निकास तुम ईथरिक बॉडी से कर सकते हो; वह तुम्हारे दूसरे शरीर से इनका निकास हो सकता है। तब किसी को दिखाई नहीं पड़ेगा, सिर्फ तुमको दिखाई पड़ेगा। तब तुमने समाज से एक सुरक्षा कर ली। अब किसी को पता नहीं चल रहा है कि तुम नाच रहे हो, और भीतर तुम नाच रहे हो। यह नाच वैसा ही होगा जैसा तुम स्वप्न में नाचते हो; यह नाच वैसा ही होगा। भीतर तुम नाचोगे, भीतर तुम रोओगे, भीतर तुम हंसोगे, लेकिन तुम्हारा भौतिक शरीर इसकी कोई खबर बाहर नहीं देगा; वह जड़वत बैठा रहेगा; उस पर इसके कोई कंपन नहीं आएंगे।

भौतिक शरीर के दमन से पागलपन की संभावना

मेरी अपनी मान्यता है कि इतनी परेशानी इतनी सी बात के लिए उठानी बेमानी है। और वर्षों किसी आदमी को आसनों का अभ्यास कराकर फिर ध्यान में ले जाने का कोई प्रयोजन नहीं है। इसमें दूसरी और भी संभावनाएं हैं। इसमें बहुत संभावना यह है कि फिजिकल बॉडी का अगर बहुत गहरा सेंटर हो, तो वह आदमी अगर अपने भौतिक शरीर को दमन कर दे, तो हो सकता है ईथरिक शरीर में भी कंपन न हो सकें और वह सिर्फ जड़ की भांति बैठा रहे। और उस हालत में भीतर तो गहरी प्रक्रिया न हो, बस बाहर से बैठने का अभ्यास हो जाए। और यह भी डर है कि उस हालत में चूंकि ये सारी गतियां न हो पाएं, ये सब सप्रेस्ड इकट्ठी रहें, तो वह कभी भी पागल हो सकता है।

पुराना साधक अनेक बार पागल होता देखा गया है; उसमें उन्माद आता था। जिस प्रक्रिया को मैं कह रहा हूं इसको अगर पागल भी करेगा, तो महीने, दो महीने के भीतर पागलपन के बाहर हो जाएगा। साधारण आदमी इस प्रक्रिया में कभी भी पागल नहीं हो सकता, क्योंकि हम पागलपन को दबाने की कोशिश ही नहीं कर रहे हैं, हम उसको निकालने की कोशिश कर रहे हैं। पुरानी साधना ने हजारों लोगों को पागल किया है। हम उसको नाम अच्छे देते थे--कभी कहते थे उन्माद, कभी हर्षोन्माद, कभी एक्सटेसी। हम नाम कुछ भी देते थे; हम कहते थेः आदमी मस्त हो गया, औलिया हो गया, यह हो गया, वह हो गया। लेकिन वह हो गया पागल; उसने किसी चीज को इस बुरी तरह से दबाया कि अब वह उसके वश के बाहर हो गई।

इस प्रक्रिया में पहला काम रेचन का

इस प्रक्रिया में दोहरा काम है। इसमें पहला काम कैथार्सिस का है, इसमें पहला काम निकास का है; तुम्हारे भीतर जो दबा हुआ कचरा है, वह बाहर फिंक जाए; पहले तुम हलके हो जाओ, तुम इतने हलके हो जाओ कि तुम्हारे भीतर पागलपन की सारी संभावना क्षीण हो जाए, फिर तुम भीतर यात्रा करो।

तो इस प्रक्रिया में, जिसमें प्रकट पागलपन दिखाई पड़ता है, यह बड़े गहरे में पागलपन से मुक्ति की प्रक्रिया है। और मैं पसंद करता हूं कि जो है हमारे भीतर वह निकल जाए। उसका बोझ, उसका तनाव, उसकी चिंता छूट जानी चाहिए।

और यह बड़े मजे की बात है कि अगर पागलपन तुम पर आए, तब तुम उसके मालिक नहीं होते; लेकिन जिस पागलपन को तुम लाए हो, तुम उसके सदा मालिक हो। और एक बार तुम्हें पागलपन की मालकियत का पता चल जाए, तो तुम पर वह पागलपन कभी नहीं आ सकता जो तुम्हारा मालिक हो जाए।

अब एक आदमी अपनी मौज से नाच रहा है, गा रहा है, चिल्ला रहा है, रो रहा है, हंस रहा है--वह सब कर रहा है जो पागल करता है; लेकिन सिर्फ एक फर्क हैः कि पागल पर ये घटनाएं होती हैं, वह कर रहा है; उसके कोआपरेशन के बिना ये नहीं हो रही हैं। वह एक सेकेंड में चाहे कि बस, तो वह सब बंद हो जाता है। इस पर अब पागलपन कभी उतर नहीं सकता, क्योंकि पागलपन को इसने जीया है, देखा है, परिचित हुआ है। यह उसकी वालेंटरी, स्वेच्छा की चीज हो गई; पागल होना भी उसकी स्वेच्छा के अंतर्गत आ गया। हमारी सभ्यता ने हमें जो भी सिखाया है, उसमें पागलपन हमारी स्वेच्छा के बाहर हो गया है; वह नॉन-वालेंटरी हो गया है। तो जब आता है तब हम कुछ भी नहीं कर सकते।

आनेवाली सभ्यता के पागलपन का ध्यान द्वारा निकास जरूरी

तो इस प्रक्रिया को आनेवाली सभ्यता के लिए मैं बहुत कीमती मानता हूं, क्योंकि आनेवाली पूरी सभ्यता रोज पागलपन की तरफ बढ़ती चली जाती है। और प्रत्येक व्यक्ति को पागलपन के निकास की जरूरत है। और कोई उपाय भी नहीं है। अगर वह एक घंटा ध्यान में इसको निकालता है तो लोग उसके लिए धीरे-धीरे राजी हो

जाते हैं; वे जानते हैं कि वह ध्यान कर रहा है। अगर इसको वह सड़क पर निकालता है तो पुलिस उसको पकड़कर ले जाएगी। अगर इसको क्रोध में निकालता है तो संबंध बिगड़ते हैं और कुरूप होते हैं। इसे किसी से झगड़े में निकालता है... निकालता तो है ही, निकालेगा नहीं तो मुश्किल में पड़ जाएगा। निकालता रहेगा, तरकीबें खोजता रहेगा--कभी शराब पीकर निकाल लेगा, कभी जाकर ट्विस्ट करके निकाल लेगा। लेकिन उतना उपद्रव क्यों लेना? उतना उपद्रव क्यों लेना?

अब ट्विस्ट है या और तरह के नाच हैं, वे सब आकस्मिक नहीं हैं। मनुष्य का शरीर भीतर से मूव करना चाहता है, हमारे पास मूवमेंट की कोई जगह नहीं रह गई। तो वह इंतजाम करता है। फिर इंतजाम में और जाल बनते हैं। बिना इंतजाम के निकाल ले। तो ध्यान जो है वह बिना इंतजाम के निकालना है। हम कोई इंतजाम नहीं कर रहे हैं, उसको हम सिर्फ निकाल रहे हैं। और हम मानते हैं कि वह भीतर है और निकल जाना चाहिए।

अगर हम एक-एक बच्चे को शिक्षा के साथ इस कैथार्सिस को भी सिखा सकें, तो दुनिया में पागलों की संख्या एकदम गिराई जा सकती है; पागल होने की बात ही खत्म की जा सकती है। लेकिन वह रोज बढ़ती जा रही है। और जितनी सभ्यता बढ़ेगी, उतनी बढ़ेगी; क्योंकि सभ्यता उतना ही सिखाएगी--रोको! सभ्यता न तो जोर से हंसने देती, न जोर से रोने देती, न नाचने देती, न चिल्लाने देती; सभ्यता सब तरफ से दबा डालती है। और तुम्हारे भीतर जो-जो होना चाहिए वह रुकता जाता है, रुकता जाता है--फिर फूटता है; और जब वह फूटता है, तब तुम्हारे वश के बाहर हो जाता है।

तो कैथार्सिस इसका पहला हिस्सा है, जिसमें इसको निकालना है। इसलिए मैं शरीर के खड़े होने के पक्ष में हूं; क्योंकि तब शरीर की जरा सी भी गति तुम्हें पता चलेगी और तुम गति कर पाओगे, तुम पूरे मुक्त हो जाओगे। इसलिए मैं साधक के पक्ष में हूं कि जब वह अपने कमरे में प्रयोग करता हो तो कमरा बंद रखे--न केवल खड़ा हो, बल्कि नग्न भी हो, क्योंकि वस्त्र भी उसको न रोकनेवाले बनें; वह सब तरह से स्वतंत्र हो गति करने को। जरा सी गति, और उसके सारे व्यक्तित्व में कहीं कोई अवरोध न हो जो उसे रोक रहा है। तो बहुत शीघ्रता से ध्यान में गति हो जाएगी। और जो हठयोग और दूसरे योगों ने जन्मों में किया था, वर्षों में किया था, वह इस ध्यान के प्रयोग से दिनों में हो सकता है।

तीव्र साधना की जरूरत

और अब दुनिया में वर्षों और जन्मों वाले योग नहीं टिक सकते। अब लोगों के पास दिन और घंटे भी नहीं हैं। और अब ऐसी प्रक्रिया चाहिए जो तत्काल फलदायी मालूम होने लगे कि एक आदमी अगर सात दिन का संकल्प कर ले तो फिर सात दिन में ही उसे पता चल जाए कि हुआ है बहुत कुछ, वह आदमी दूसरा हो गया है। अगर सात जन्मों में पता चले, तो अब कोई प्रयोग नहीं करेगा। पुराने दावे जन्मों के थे। वे कहते थेः इस जन्म में करो, अगले जन्म में फल मिलेंगे। वे बड़े प्रतीक्षावाले धैर्यवान लोग थे। वे अगले जन्म की प्रतीक्षा में इस जन्म में भी साधना करते थे। अब कोई नहीं मिलेगा। फल आज न मिलता हो तो कल तक के लिए प्रतीक्षा करने की तैयारी नहीं है।

कल का कोई भरोसा भी नहीं है। जिस दिन से हिरोशिमा और नागासाकी पर एटम बम गिरा है, उस दिन से कल खत्म हो गया है। अमेरिका के हजारों-लाखों लड़के और लड़कियां कालेज में पढ़ने जाने को तैयार नहीं हैं। वे कहते हैंः हम पढ़-लिखकर निकलेंगे तब तक दुनिया बचेगी? कल का कोई भरोसा नहीं है! तो वे कहते हैंः हमारा समय जाया मत करो। जितने दिन हमारे पास हैं, हम जी लें।

हाईस्कूल से लड़के और लड़कियां स्कूल छोड़कर भागे जा रहे हैं। वे कहते हैंः युनिवर्सिटी भी नहीं जाएंगे। क्योंकि छह साल में युनिवर्सिटी से निकलना... छह साल में दुनिया बचेगी? अब बेटा बाप से पूछ रहा है कि छह साल दुनिया का आश्वासन है? तो हम ये छह साल जो थोड़े-बहुत हमारी जिंदगी में हैं, हम क्यों न उनका उपयोग कर लें।

जहां कल इतना संदिग्ध हो गया है वहां तुम जन्मों की बातें करोगे, बेमानी है; कोई सुनने को राजी नहीं; न कोई सुन रहा है। इसलिए मैं कह रहा हूं, आज प्रयोग हो और आज परिणाम होना चाहिए। और अगर एक घंटा कोई मुझे आज देने को राजी है, तो आज ही, उसी घंटे के बाद ही उसको परिणाम का बोध होना चाहिए, तभी वह कल घंटा दे सकेगा। नहीं तो कल के घंटे का कोई भरोसा नहीं है। तो युग की जरूरत बदल गई है। बैलगाड़ी की दुनिया थी, उस वक्त सब धीरे-धीरे चल रहा था; साधना भी धीरे-धीरे चल रही थी। जेट की दुनिया है, साधना भी धीरे-धीरे नहीं चल सकती; उसे भी तीव्र, गतिमान, स्पीडी होना पड़ेगा।

प्रश्नः साधना करते समय मन में बहुत से विचार आएं तो उनको क्या करना चाहिए?

आप सुबह आ जाएं साधना के वक्त, तब बात करेंगे।

ऊर्जा के प्रवाह को ग्रहण करने के लिए झुकना जरूरी

प्रश्नः साष्टांग दंडवत प्रणाम करना, दिव्य पुरुषों के चरणों पर माथा रखना या हाथों से चरण-स्पर्श करना, पवित्र स्थानों में माथा टेकना, दिव्य पुरुषों का अपने हाथ से साधक के सिर अथवा पीठ को छूकर आशीर्वाद देना, सिक्खों व मुसलमानों का सिर ढांककर गुरुद्वारे व मस्जिद जाना, इन सब प्रथाओं का कुंडलिनी ऊर्जा के संदर्भ में आकल्ट व स्प्रिचुअल अर्थ व महत्व समझाने की कृपा करें।

अर्थ तो है, अर्थ बहुत है। जैसा मैंने कहा, जब हम क्रोध से भरते हैं तो किसी को मारने का मन होता है। जब हम बहुत क्रोध से भरते हैं तो ऐसा मन होता है कि उसके सिर पर पैर रख दें। चूंकि पैर रखना बहुत अड़चन की बात होगी, इसलिए लोग जूता मार देते हैं। पैर रखना, एक पांच-छह फीट के आदमी के सिर पर पैर रखना बहुत मुश्किल की बात है, इसलिए सिंबालिक, उतारकर जूता उसके सिर पर मार देते हैं। लेकिन कोई नहीं पूछता दुनिया में कि दूसरे के सिर में जूता मारने का क्या अर्थ है? सारी दुनिया में! ऐसा नहीं है कि कोई एक कौम, कोई एक देश... यह बड़ा युनिवर्सल तथ्य है कि क्रोध में दूसरे के सिर पर पैर रखने का मन होता है। और कभी जब आदमी निपट जंगली रहा होगा, तो जूता तो नहीं था उसके पास, वह सिर पर पैर रखकर ही मानता था।

ठीक इससे उलटी स्थितियां भी हैं चित्त की। जैसे क्रोध की स्थिति है, तब किसी के सिर पर पैर रखने का मन होता है; और श्रद्धा की स्थिति है, तब किसी के पैर में सिर रखने का मन होता है। उसके अर्थ हैं उतने ही, जितने पहले के। कोई क्षण है जब तुम किसी के सामने पूरी तरह झुक जाना चाहते हो; और झुकने के क्षण वही हैं, जब तुम्हें दूसरे के पास से अपनी तरफ ऊर्जा का प्रवाह मालूम पड़ता है। असल में, जब भी कोई प्रवाह लेना हो तब झुक जाना पड़ता है। नदी से भी पानी भरना हो तो झुकना पड़ता है। झुकना जो है, वह किसी भी प्रवाह को लेने के लिए अनिवार्य है। असल में, सब प्रवाह नीचे की तरफ बहते हैं। तो ऐसे किसी व्यक्ति के पास अगर

लगे किसी को कि कुछ बह रहा है उसके भीतर--और कभी लगता है--तो उस क्षण में उसका सिर जितना झुका हो उतना सार्थक है।

शरीर के नुकीले हिस्सों से ऊर्जा का प्रवाह

फिर शरीर से जो ऊर्जा बहती है वह उसके उन अंगों से बहती है जो प्वाइंटेड हैं--जैसे हाथ की अंगुलियां या पैर की अंगुलियां। सब जगह से ऊर्जा नहीं बहती। शरीर की जो विद्युत-ऊर्जा है, या शरीर से जो शक्तिपात है, या शरीर से जो भी शक्तियों का प्रवाह है, वह हाथ की अंगुलियों या पैर की अंगुलियों से होता है, पूरे शरीर से नहीं होता। असल में, वहीं से होता है जहां नुकीले हिस्से हैं; वहां से शक्ति और ऊर्जा बहती है। तो जिसे लेना है ऊर्जा, वह तो पैर की अंगुलियों पर सिर रख देगा; और जिसे देना है ऊर्जा, वह हाथ की अंगुलियों को दूसरे के सिर पर रख देगा।

ये बड़ी आकल्ट और बड़ी गहरी विज्ञान की बातें थीं।

स्वभावतः, बहुत से लोग नकल में उन्हें करेंगे। हजारों लोग सिर पर पैर रखेंगे जिन्हें कोई प्रयोजन नहीं है; हजारों लोग किसी के सिर पर हाथ रख देंगे जिन्हें कोई प्रयोजन नहीं है। और तब जो एक बहुत गहरा सूत्र था, धीरे-धीरे औपचारिक बन जाएगा। और जब लंबे अरसे तक वह औपचारिक और फार्मल होगा तो उसकी बगावत भी शुरू होगी। कोई कहेगा कि यह सब क्या बकवास है! पैर पर रखने से सिर क्या होगा? सिर पर हाथ रखने से क्या होगा?

सौ में निन्यानबे मौके पर बकवास है। हो गई है बकवास। क्योंकि... सौ में एक मौके पर अब भी सार्थक है। और कभी तो सौ में सौ मौके पर ही सार्थक थी; क्योंकि कभी वह स्पांटेनिअस एक्ट था। ऐसा नहीं था कि तुम्हें औपचारिक रूप से लगे तो किसी के पैर छुओ। नहीं, किसी क्षण में तुम न रुक पाओ और पैर में गिरना पड़े तो रुकना मत, गिर जाना। और ऐसा नहीं था कि किसी को आशीर्वाद देना है तो उसके सिर पर हाथ रखो ही। यह उसी क्षण रखना था, जब तुम्हारा हाथ बोझिल हो जाए और बरसने को तैयार हो जाए और उससे कुछ बहने को राजी हो, और दूसरा लेने को तैयार हो, तभी रखने की बात थी।

मगर सभी चीजें धीरे-धीरे प्रतीक हो जाती हैं। और जब प्रतीक हो जाती हैं तो बेमानी हो जाती हैं। और जब बेमानी हो जाती हैं तो उनके खिलाफ बातें चलने लगती हैं। और वे बातें बड़ी अपील करती हैं। क्योंकि जो बातें बेमानी हो गई हैं उनके पीछे का विज्ञान तो खो गया होता है। है तो बहुत सार्थक।

ऊर्जा पाने के लिए खाली और खुला हुआ होना जरूरी

और फिर, जैसा मैंने पीछे तुम्हें कहा, यह तो जिंदा आदमी की बात हुई। यह जिंदा आदमी की बात हुई। एक महावीर, एक बुद्ध, एक जीसस के चरणों में कोई सिर रखकर पड़ गया है और उसने अपूर्व आनंद का अनुभव किया है, उसने एक वर्षा अनुभव की है जो उसके भीतर हो गई है। इसे कोई बाहर नहीं देख पाएगा, यह घटना बिल्कुल आंतरिक है। उसने जो जाना है वह उसकी बात है। और दूसरे अगर उससे प्रमाण भी मांगेंगे तो उसके पास प्रमाण भी नहीं है।

असल में, सभी आकल्ट फिनामिनन के साथ यह कठिनाई है कि व्यक्ति के पास अनुभव होता है, लेकिन समूह को देने के लिए प्रमाण नहीं होता। और इसलिए वह ऐसा मालूम पड़ने लगता है कि अंधविश्वास ही होगा। क्योंकि वह आदमी कहता है कि भई, बता नहीं सकते कि क्या होता है, लेकिन कुछ होता है। जिसको नहीं हुआ है, वह कहता है कि हम कैसे मान सकते हैं! हमें नहीं हुआ है। तुम किसी भ्रम में पड़ गए हो, किसी भूल में पड़ गए हो। और फिर हो सकता है, जिसको ख्याल है कि नहीं होता है, वह भी जाकर जीसस के चरणों में सिर रखे।

उसे नहीं होगा। तो वह लौटकर कहेगा कि गलत कहते हो! मैंने भी उन चरणों पर सिर रखकर देख लिया। वह ऐसा ही है कि एक घड़ा जिसका मुंह खुला है वह पानी में झुके और लौटकर घड़ों से कहे कि मैं झुका और भर गया। और एक बंद मुंह का घड़ा कहे कि मैं भी जाकर प्रयोग करता हूं। और वह बंद मुंह का घड़ा भी पानी में झुके, और बहुत गहरी डुबकी लगाए, लेकिन खाली वापस लौट आए। और वह कहे कि झुका भी, डुबकी भी लगाई, कुछ नहीं भरता है, गलत कहते हो!

घटना दोहरी है। किसी व्यक्ति से शक्ति का बहना ही काफी नहीं है, तुम्हारी ओपनिंग, तुम्हारा खुला होना भी उतना ही जरूरी है। और कई बार तो ऐसा मामला है कि दूसरे व्यक्ति से ऊर्जा का बहना उतना जरूरी नहीं है, जितना तुम्हारा खुला होना जरूरी है। अगर तुम बहुत खुले हो तो दूसरे व्यक्ति में जो शक्ति नहीं है, वह भी उसके ऊपर की, और ऊपर की शक्तियों से प्रवाहित होकर तुम्हें मिल जाएगी। इसलिए बड़े मजे की बात है कि जिनके पास नहीं है शक्ति, अगर उनके पास भी कोई पूरे खुले हृदय से अपने को छोड़ दे, तो उनसे भी उसे शक्ति मिल जाती है। उनसे नहीं आती वह शक्ति, वे सिर्फ माध्यम की तरह प्रयोग में हो जाते हैं; उनको भी पता नहीं चलता, लेकिन यह घटना भी घट सकती है।

सिर पर कपड़ा बांधने का रहस्य

दूसरी जो बात हैः सिर में कुछ बांधकर गुरुद्वारा या किसी मंदिर या किसी पवित्र जगह में प्रवेश की बात है। ध्यान में भी बहुत फकीरों ने सिर में कुछ बांधकर ही प्रयोग करने की कोशिश की है। उसका उपयोग है। क्योंकि जब तुम्हारे भीतर ऊर्जा जगती है तो तुम्हारे सिर पर बहुत भारी बोझ की संभावना हो जाती है। और अगर तुमने कुछ बांधा है तो उस ऊर्जा के विकीर्ण होने की संभावना नहीं होती, उस ऊर्जा के वापस आत्मसात हो जाने की संभावना होती है।

तो बांधना उपयोगी सिद्ध हुआ है; बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ है। अगर तुम ध्यान, कपड़ा बांधकर सिर पर करोगे, तो तुम फर्क अनुभव करोगे फौरन; क्योंकि जिस काम में तुम्हें पंद्रह दिन लगते, उसमें पांच दिन लगेंगे। क्योंकि तुम्हारी ऊर्जा जब सिर में पहुंचती है तो उसके विकीर्ण होने की संभावना है, उसके बिखर जाने की संभावना है। अगर वह बंध सके और एक वर्तुल बन सके तो उसका अनुभव प्रगाढ़ और गहरा हो जाएगा।

लेकिन अब तो वह औपचारिक है, मंदिर में किसी का जाना या गुरुद्वारे में किसी का सिर पर कपड़ा बांधकर जाना बिल्कुल औपचारिक है। उसका अब कोई अर्थ नहीं रह गया है। लेकिन कहीं उसमें अर्थ है।

और व्यक्ति के चरणों में सिर रखकर तो कोई ऊर्जा पाई जा सके, व्यक्ति के हाथ से भी कोई ऊर्जा आशीर्वाद में मिल सकती है, लेकिन एक आदमी एक मंदिर में, एक वेदी पर, एक समाधि पर, एक मूर्ति के सामने सिर झुकाता है, इसमें क्या हो सकता है? तो इसमें भी बहुत सी बातें हैं; एक दो-तीन बातें समझ लेने जैसी हैं।

मंदिर, कब्रें--अशरीरी आत्माओं से संबंधित होने के उपाय

पहली बात तो यह है कि ये सारी की सारी मूर्तियां एक बहुत ही वैज्ञानिक व्यवस्था से कभी निर्मित की गई थीं। जैसे समझें कि मैं मरने लगूं और दस आदमी मुझे प्रेम करनेवाले हैं, जिन्होंने मेरे भीतर कुछ पाया और खोजा और देखा था, और मरते वक्त वे मुझसे पूछते हैं कि पीछे भी हम आपको याद करना चाहें तो कैसे करें?

तो एक प्रतीक तय किया जा सकता है मेरे और उनके बीच, जो मेरे शरीर के गिर जाने के बाद उनके काम आ सके; एक प्रतीक तय किया जा सकता है। वह कोई भी प्रतीक हो सकता है--वह एक मूर्ति हो सकती है, एक पत्थर हो सकता है, एक वृक्ष हो सकता है, एक चबूतरा हो सकता है; मेरी समाधि हो सकती है, कब्र हो

सकती है, मेरा कपड़ा हो सकता है, मेरी खड़ाऊं हो सकती है--कुछ भी हो सकता है। लेकिन वह मेरे और उनके, दोनों के बीच तय होना चाहिए। वह एक समझौता है। वह उनके अकेले से तय नहीं होगा; उसमें मेरी गवाही और मेरी स्वीकृति और मेरे हस्ताक्षर होने चाहिए--कि मैं उनसे कहूं कि अगर तुम इस चीज को सामने रखकर स्मरण करोगे, तो मैं अभौतिक स्थिति में भी मौजूद हो जाऊंगा। यह मेरा वायदा होना चाहिए। तो इस वायदे के अनुकूल काम होता है, बिल्कुल होता है।

इसलिए ऐसे मंदिर हैं जो जीवित हैं, और ऐसे मंदिर हैं जो मृत हैं। मृत मंदिर वे हैं जो इकतरफा बनाए गए हैं, जिनमें दूसरी तरफ का कोई आश्वासन नहीं है। हमारा दिल है, हम एक बुद्ध का मंदिर बना लें। वह मृत मंदिर होगा; क्योंकि दूसरी तरफ से कोई आश्वासन नहीं है। जीवित मंदिर भी हैं, जिनमें दूसरी तरफ से आश्वासन भी है; और उस आश्वासन के आधार पर उस आदमी का वचन है।

बुद्ध-पुरुषों का मरने के बाद वायदों को पूरा करना

तिब्बत में एक... अब तो जगह मुश्किल में पड़ गई, लेकिन तिब्बत में एक जगह थी जहां बुद्ध का आश्वासन पिछले पच्चीस सौ वर्ष से निरंतर पूरा हो रहा है। पांच सौ आदमियों की, पांच सौ लामाओं की एक छोटी समिति है। उन पांच सौ लामाओं में से जब एक लामा मरता है तब बामुश्किल से दूसरे को प्रवेश मिलता है। उसकी पांच सौ से ज्यादा संख्या नहीं हो सकती, कम नहीं हो सकती। जब एक मरेगा तभी एक जगह खाली होगी। और जब एक मरेगा और एक को प्रवेश मिलेगा, तो शेष सबकी सर्वसम्मति से ही प्रवेश मिल सकता है। यानी एक आदमी भी इनकार करनेवाला हो तो प्रवेश नहीं मिल सकेगा। वह जो पांच सौ लोगों की समिति है, वह बुद्ध-पूर्णिमा के दिन एक विशेष पर्वत पर इकट्ठी होती है। और ठीक समय पर, निश्चित समय पर--जो समझौते का हिस्सा है--निश्चित समय पर बुद्ध की वाणी सुनाई पड़नी शुरू हो जाती है।

पर यह हर किसी पहाड़ पर नहीं होगा और हर किसी के सामने नहीं होगा; एक निश्चित समझौते के हिसाब से यह बात होगी। यह वैसा ही है, जैसे कि तुम सांझ को सोओ और तुम संकल्प करके सोओ कि मैं सुबह ठीक पांच बजे उठ आऊं! तब तुम्हें घड़ी की और अलार्म की कोई जरूरत नहीं होगी--तुम अचानक पांच बजे पाओगे कि नींद टूट गई है। और यह मामला इतना अदभुत है कि इस वक्त तुम घड़ी मिला सकते हो अपने उठने से। इस वक्त घड़ी गलत हो सकती है, तुम गलत नहीं हो सकते। तुम्हारे संकल्प का जो पक्का निर्णय हो तो तुम पांच बजे उठ जाओगे।

अगर तुमने संकल्प पक्का कर लिया कि मुझे फलां वर्ष में फलां दिन मर जाना है, तो दुनिया की कोई ताकत तुम्हें नहीं रोक सकेगी, तुम उस क्षण चले जाओगे। मरने के बाद भी, अगर तुम्हारे संकल्प की दुनिया बहुत प्रगाढ़ है, तो तुम मरने के बाद भी अपने वायदे पूरे कर सकते हो।

जैसे जीसस का मरने के बाद दिखाई पड़ना। वह वायदे की बात थी जो पूरी की गई। और इसलिए ईसाइयत बड़ी मुश्किल में है उसके पीछे--कि फिर क्या हुआ, क्या नहीं हुआ? जीसस दिखाई पड़े या नहीं पड़े? रिसरेक्ट हुए कि नहीं? वह एक वायदा था जो पूरा किया गया और जिनके लिए था उनके लिए पूरा कर दिया गया।

तो ऐसे स्थान हैं... असल में, ऐसे स्थान का नाम ही धीरे-धीरे तीर्थ बन गया जहां कोई जीवित वायदा हजारों साल से पूरा किया जा रहा था। फिर लोग वायदे को भी भूल गए और जीवित बात को भी भूल गए,

समझौते को भी भूल गए, एक बात ख्याल रही कि वहां आना-जाना है, और वे आते-जाते रहे, और अब भी आ-जा रहे हैं!

मोहम्मद के भी वायदे हैं, और शंकर के भी वायदे हैं, और कृष्ण के भी वायदे हैं, बुद्ध-महावीर के भी वायदे हैं। वे सब वायदे हैं खास जगहों से बंधे हुए; खास समय, खास घड़ी और खास मुहूर्त में उनसे संबंध फिर भी जोड़ा जा सकता है। तो उन स्थानों पर फिर सिर टेक देना पड़ेगा, और उन स्थानों पर फिर तुम्हें अपने को पूरा समर्पित कर देना होगा, तभी तुम संबंधित हो पाओगे।

तो उनका भी उपयोग तो है। लेकिन सभी उपयोगी बातें अंततः औपचारिक हो जाती हैं और सभी उपयोगी बातें अंततः परंपरा बन जाती हैं, और मृत हो जाती हैं, और व्यर्थ हो जाती हैं। तब सबको तोड़ डालना पड़ता है, ताकि फिर से नये वायदे किए जा सकें और फिर से नये तीर्थ बन सकें और नई मूर्ति और नया मंदिर बन सके। वह सब तोड़ना पड़ता है, क्योंकि अब वह सब मृत हो जाता है, उसका हमें कुछ पता नहीं होता कि उसके पीछे कौन सी लंबी प्रक्रिया काम कर रही है।

एक योगी था दक्षिण में। एक अंग्रेज यात्री उसके पास आया। और उस अंग्रेज यात्री ने कहा कि मैं तो लौट रहा हूं और अब दुबारा हिंदुस्तान नहीं आऊंगा, लेकिन आपके अगर दर्शन करना चाहूं तो क्या करूं? तो उस योगी ने अपना एक चित्र उसे दे दिया और कहा, जब भी तुम द्वार बंद करके अंधेरे में इस चित्र पर पांच मिनट एकटक आंख की पलक झपे बिना देखोगे, तो मैं मौजूद हो जाऊंगा।

वह तो बेचारा मुश्किल से अपने घर तक पहुंचा। एक ही काम था उसके मन में कि कैसे घर जाकर... भरोसा भी नहीं था कि यह संभव हो सकता है। लेकिन यह संभव हुआ। और जो आदमी था, वह एक वैज्ञानिक डाक्टर था, वह बड़ी मुश्किल में पड़ गया। यह संभव हो गया। एक वायदा था जो एस्ट्रली पूरा किया जा सकता है, जो सूक्ष्म शरीर से पूरा हो सकता है। इसमें कोई कठिनाई नहीं है। जिंदा आदमी भी पूरा कर सकता है, मरा हुआ आदमी भी पूरा कर सकता है।

मूर्ति व मकबरों का गुह्य रहस्य

इसलिए चित्र भी महत्वपूर्ण हो गए, मूर्तियां भी महत्वपूर्ण हो गईं। उनके महत्वपूर्ण होने का कारण था कि उन्होंने कुछ वायदे पूरे किए। मूर्तियों ने भी वायदे पूरे किए। इसलिए मूर्ति बनाने की पूरी एक साइंस थी। हर किसी तरह की मूर्ति नहीं बनाई जा सकती। मूर्ति बनाने की एक पूरी व्यवस्था थी कि वह कैसी होनी चाहिए।

अब जैसे अगर तुम जैन तीर्थंकरों की, चौबीस तीर्थंकरों की मूर्तियां देखो, तुम मुश्किल में पड़ जाओगे। उनमें कोई फर्क नहीं है, वे बिल्कुल एक जैसी हैं। सिर्फ उनके चिह्न अलग-अलग हैं, महावीर का एक चिह्न है, पार्श्वनाथ का एक चिह्न है, नेमीनाथ का एक चिह्न है। लेकिन मूर्तियों के अगर चिह्न मिटा दिए जाएं नीचे से तो वे बिल्कुल एक जैसी हैं। तुम उनमें कोई पता नहीं लगा सकते कि यह महावीर की है, कि पार्श्व की है, कि नेमी की है, कि किसकी है--पता नहीं लगा सकते।

निश्चित ही, ये सारे लोग तो एक सी शक्ल-सूरत के नहीं रहे होंगे। यह तो असंभव है। ये चौबीस आदमी एक ही शक्ल-सूरत के नहीं हैं। लेकिन जो पहली तीर्थंकर की मूर्ति थी, उसी मूर्ति को सबने अपनी मूर्ति की तरह, प्रतीक की तरह समझौता किया। अलग मूर्ति बनाने की क्या जरूरत थी? एक मूर्ति चलती थी, वह मूर्ति काम करती थी, उसी मूर्ति के माध्यम से हम भी काम कर लेंगे; एक सील-मुहर थी, वह काम करती थी। उसका मैंने भी उपयोग किया, तुमने भी उपयोग किया, तीसरे ने भी उपयोग किया। लेकिन फिर भी भक्तों का मन! जो

महावीर को प्रेम करते थे, उन्होंने कहा, कोई एक चिह्न तो अलग हो। तो सिर्फ चिह्न भर अलग कर लिए गए। किसी का सिंह चिह्न है, किसी का कुछ है, किसी का कुछ है, वह अलग कर लिया गया, लेकिन मूर्ति एक रही। और वे चौबीसों मूर्तियां बिल्कुल एक सी मूर्तियां हैं; उनमें कोई फर्क नहीं है, सिर्फ चिह्न का फर्क है। लेकिन वह चिह्न भी समझौते का अंग है; उस चिह्न की मूर्ति से उस चिह्न से संबंधित व्यक्ति का ही उत्तर उपलब्ध होगा। वह चिह्न एक समझौता है जो अपना काम करेगा।

मोहम्मद ने कोई स्थूल प्रतीक नहीं छोड़ा

जैसे जीसस का चिह्न क्रास है, वह काम करेगा। जैसे मोहम्मद ने इनकार किया कि मेरी मूर्ति मत बनाना। मेरी मूर्ति मत बनाना! असल में, मोहम्मद के वक्त तक इतनी मूर्तियां बन गई थीं कि मोहम्मद एक बिल्कुल ही दूसरा प्रतीक देकर जा रहे थे अपने मित्रों को कि मेरी मूर्ति मत बनाना, मैं बिना ही मूर्ति के, अमूर्ति में तुमसे संबंध बना लूंगा। तुम मेरी मूर्ति बनाना ही मत; तुम मेरा चित्र ही मत बनाना; मैं तुमसे बिना चित्र, बिना मूर्ति के संबंधित हो जाऊंगा। यह भी एक गहरा प्रयोग था, और बड़ा हिम्मतवर प्रयोग था, बहुत हिम्मतवर प्रयोग था। लेकिन साधारणजन को बड़ी कठिनाई पड़ी मोहम्मद से संबंध बनाने में।

इसलिए मोहम्मद के बाद हजारों फकीरों की कब्रें और मकबरे और समाधियां उन्होंने बना लीं। क्योंकि मोहम्मद से संबंध बनाने का तो उनकी समझ में नहीं आया कि कैसे बनाएं। तब फिर उन्होंने कोई और आदमी की कब्र बनाकर उससे संबंध बनाया, फिर मकबरे बनाए। और जितनी मकबरों और कब्रों की पूजा मुसलमानों में चली, उतनी दुनिया में किसी में नहीं चली। उसका कुल कारण इतना था कि मोहम्मद की कोई पकड़ नहीं थी उनके पास जिससे वे सीधे संबंधित हो जाते, कोई रूप नहीं बना पाते थे। तो उनको दूसरा रूप तत्काल बनाना पड़ा। और उस दूसरे रूप से उन्होंने संबंध जोड़ने शुरू किए।

यह सारी की सारी एक वैज्ञानिक प्रक्रिया है। अगर विज्ञान की तरह उसे समझा जाए तो उसके अदभुत फायदे हैं; और अंधविश्वास की तरह उसे समझा जाए तो बहुत आत्मघाती है।

मूर्ति की प्राण-प्रतिष्ठा का रहस्य

प्रश्नः प्राण-प्रतिष्ठा का क्या महत्व है?

हां, बहुत महत्व है। असल में, प्राण-प्रतिष्ठा का मतलब ही यह है। उसका मतलब ही यह है कि हम एक नई मूर्ति तो बना रहे हैं, लेकिन पुराने समझौते के अनुसार बना रहे हैं। और पुराना समझौता पूरा हुआ कि नहीं, इसके इंगित मिलने चाहिए। हम अपनी तरफ से जो पुरानी व्यवस्था थी, वह पूरी दोहराएंगे। हम उस मूर्ति को अब मृत न मानेंगे, अब से हम उसे जीवित मानेंगे। हम अपनी तरफ से पूरी व्यवस्था कर देंगे जो जीवित मूर्ति के लिए की जानी थी। और अब सिंबालिक प्रतीक मिलने चाहिए कि वह प्राण-प्रतिष्ठा स्वीकार हुई कि नहीं। वह दूसरा हिस्सा है, जो कि हमारे ख्याल में नहीं रह गया। अगर वह न मिले, तो प्राण-प्रतिष्ठा हमने तो की, लेकिन हुई नहीं। उसके सबूत मिलने चाहिए। तो उसके सबूत के लिए चिह्न खोजे गए थे कि वे सबूत मिल जाएं तो ही समझा जाए कि वह मूर्ति सक्रिय हो गई।

मूर्ति एक रिसीविंग प्वाइंट

ऐसा ही समझ लें कि आप घर में एक नया रेडियो इंस्टाल करते हैं। तो पहले तो वह रेडियो ठीक होना चाहिए, उसकी सारी यंत्र व्यवस्था ठीक होनी चाहिए। उसको आप घर लाकर रखते हैं, बिजली से उसका संबंध

जोड़ते हैं। फिर भी आप पाते हैं कि वह स्टेशंस नहीं पकड़ता, तो प्राण-प्रतिष्ठा नहीं हुई, वह जिंदा नहीं है, अभी मुर्दा ही है। अभी उसको फिर जांच-पड़ताल करवानी पड़े; दूसरा रेडियो लाना पड़े या उसे ठीक करवाना पड़े।

मूर्ति भी एक तरह का रिसीविंग प्वाइंट है, जिसके साथ, मरे हुए आदमी ने कुछ वायदा किया है वह पूरा करता है। लेकिन आपने मूर्ति रख ली, वह पूरा करता है कि नहीं करता है, यह अगर आपको पता नहीं है और आपके पास कोई उपाय नहीं है इसको जानने का, तो मूर्ति है भी जिंदा कि मुर्दा है, आप पता नहीं लगा पाते।

तो प्राण-प्रतिष्ठा के दो हिस्से हैं। एक हिस्सा तो पुरोहित पूरा कर देता है--कि कितना मंत्र पढ़ना है, कितने धागे बांधने हैं, कितना क्या करना है, कितना सामान चढ़ाना है, कितना यज्ञ-हवन, कितनी आग--सब कर देता है। यह अधूरा है और पहला हिस्सा है। दूसरा हिस्सा--जो कि पांचवें शरीर को उपलब्ध व्यक्ति ही कर सकता है, उसके पहले नहीं कर सकता--दूसरा हिस्सा है कि वह कह सके कि हां, मूर्ति जीवित हो गई। वह नहीं हो पाता। इसलिए हमारे अधिक मंदिर मरे हुए मंदिर हैं, जिंदा मंदिर नहीं हैं। और नये मंदिर तो सब मरे हुए ही बनते हैं; नया मंदिर तो जिंदा होता ही नहीं।

सोमनाथ का मंदिर मृत था

अगर एक जीवित मंदिर है तो उसका नष्ट होना किसी भी तरह संभव नहीं है, क्योंकि वह साधारण घटना नहीं है। वह साधारण घटना नहीं है। और अगर वह नष्ट होता है, तो उसका कुल मतलब इतना है कि जिसे आपने जीवित समझा था, वह जीवित नहीं था। जैसे सोमनाथ का मंदिर नष्ट हुआ। सोमनाथ के मंदिर के नष्ट होने की कहानी बड़ी अदभुत है और सारे मंदिर के विज्ञान के लिए बहुत सूचक है। मंदिर के पांच सौ पुजारी थे। पुजारियों को भरोसा था कि मंदिर जीवित है। इसलिए मूर्ति नष्ट नहीं की जा सकती। पुजारियों ने अपना काम सदा पूरा किया था। एकतरफा था वह काम, क्योंकि कोई नहीं था जो खबर देता कि जिंदा मूर्ति है कि मृत। तो जब बड़े-बड़े राजाओं और राजपूत सरदारों ने उन्हें खबर भेजी कि हम रक्षा के लिए आ जाएं, गजनवी आता है, तो उन्होंने स्वभावतः उत्तर दिया कि तुम्हारे आने की कोई जरूरत नहीं है, क्योंकि जो मूर्ति सबकी रक्षा करती है, उसकी रक्षा तुम कैसे करोगे? उन्होंने क्षमा मांगी, सरदारों ने।

लेकिन वह भूल हो गई। भूल यह हो गई कि वह मूर्ति जिंदा न थी। पुजारी इस आशा में रहे कि मूर्ति जिंदा है और जिंदा मूर्ति की रक्षा की बात ही सोचनी गलत है। उसके पीछे हमसे ज्यादा विराट शक्ति का संबंध है, उसको बचाने का हम क्या सोचेंगे! लेकिन गजनवी आया और उसने एक गदा मारी और वह चार टुकड़े हो गई मूर्ति। फिर भी अब तक यह ख्याल नहीं आया कि वह मूर्ति मुर्दा थी। फिर भी अब तक... अब तक यह ख्याल नहीं आया कि वह मूर्ति मुर्दा थी, इसलिए टूट सकी।

नहीं, मंदिर की ईंट नहीं गिर सकती है, अगर वह जीवित है। वह जीवित है तो उसका कुछ बिगड़ नहीं सकता।

मंदिर के जीवित होने का गहन विज्ञान

लेकिन अक्सर मंदिर जीवित नहीं हैं। और उसके जीवित होने की बड़ी कठिनाइयां हैं। मंदिर का जीवित होना बड़ा भारी चमत्कार है और एक बहुत गहरे विज्ञान का हिस्सा है। जिस विज्ञान को जाननेवाले लोग भी नहीं हैं, पूरा करनेवाले लोग भी नहीं हैं, और जिसमें इतनी कठिनाइयां हो गई हैं खड़ी; क्योंकि पुरोहितों और दुकानदारों का इतना बड़ा वर्ग मंदिरों के पीछे है कि अगर कोई जाननेवाला हो तो उसको मंदिर में प्रवेश नहीं हो सकता। उसकी बहुत कठिनाई हो गई है। और वह एक धंधा बन गया है जिसमें कि पुरोहित के लिए हितकर है कि मंदिर मुर्दा हो। जिंदा मंदिर पुरोहित के लिए हितकर नहीं है। वह चाहता है कि एक मरा हुआ भगवान

भीतर हो, जिसको वह ताला-चाबी में बंद रखे और काम चला ले। अगर उस मंदिर से कुछ और विराट शक्तियों का संबंध है तो पुरोहित का टिकना वहां मुश्किल हो जाएगा; उसका जीना वहां मुश्किल हो जाएगा। इसलिए पुरोहित ने बहुत मुर्दा मंदिर बना लिए हैं और वह रोज बनाए चला जा रहा है। मंदिर तो रोज बन जाते हैं, उनकी कोई कठिनाई नहीं है। लेकिन वस्तुतः जो जीवित मंदिर हैं वे बहुत कम होते जाते हैं।

जीवित मंदिरों को बचाने की इतनी चेष्टा की गई, लेकिन पुरोहितों का जाल इतना बड़ा है हर मंदिर के साथ, हर धर्म के साथ कि बहुत मुश्किल है उसको बचाना। और इसलिए सदा फिर आखिर में यही होता है... इसलिए इतने मंदिर बने; नहीं तो इतने मंदिर बनने की कोई जरूरत न पड़ती। अगर महावीर के वक्त में उपनिषदों के समय में बनाए गए मंदिर जीवित होते और तीर्थ जीवित होते, तो महावीर को अलग बनाने की कोई जरूरत न पड़ती। लेकिन वे मर गए थे। और उन मरे मंदिरों और पुरोहितों का एक जाल था, जिसको तोड़कर प्रवेश करना असंभव था। इसलिए नये बनाने के सिवाय कोई उपाय नहीं था। आज महावीर का मंदिर भी मर गया है; उसके पास भी उसी तरह का जाल है।

शर्तें पूरी न करने पर वायदे का टूट जाना

दुनिया में इतने धर्म न बनते, अगर जो जीवंत तत्व है वह बच सके। लेकिन वह बच नहीं पाता। उसके आसपास सब उपद्रव इकट्ठा हो जाता है। और वह जो उपद्रव है, वह धीरे-धीरे, धीरे-धीरे सारी संभावनाएं तोड़ देता है। और जब एक तरफ से संभावना टूट जाती है तो दूसरी तरफ से समझौता भी टूट जाता है। वह समझौता किया गया समझौता है। उसे हमें निभाना है। अगर हम निभाते हैं तो दूसरी तरफ से निभता है, नहीं तो विदा हो जाता है, बात खत्म हो जाती है।

जैसे कि मैं कहकर जाऊं कि कभी आप मुझे याद करना तो मैं मौजूद हो जाऊंगा। लेकिन आप कभी याद ही करना बंद कर दो या मेरे चित्र को एक कचरेघर में डाल दो और फिर उसका ख्याल ही भूल जाओ, तो यह समझौता कब तक चलेगा! यह समझौता टूट गया आपकी तरफ से; इसे मेरी तरफ से भी रखने की अब कोई जरूरत नहीं रह जाती। ऐसे समझौते टूटते गए हैं।

लेकिन प्राण-प्रतिष्ठा का अर्थ है। और प्राण-प्रतिष्ठा का दूसरा हिस्सा ही महत्वपूर्ण है कि प्राण-प्रतिष्ठा हुई या नहीं, उसकी कसौटी और परख है। वह परख भी पूरी होती है।

प्रश्नः कुछ मंदिरों में मूर्ति के ऊपर पानी आप ही आप झरता रहता है। क्या यह उस मंदिर के जीवित होने का सूचक है?

नहीं, पानी वगैरह से तो कुछ लेना-देना नहीं है। पानी तो बिना मूर्ति की प्रतिष्ठा किए भी झरता रहता है; मूर्ति भी रखें तो भी झर सकता है। उसकी कोई बड़ी कठिनाई नहीं है; वह कोई बड़ा सवाल नहीं है। ये सब झूठे प्रमाण हैं जिनके आधार पर हम सोच लेते हैं कि प्रतिष्ठा हो गई। ये सब झूठे प्रमाण हैं जिनके आधार पर हम सोच लेते हैं कि प्रतिष्ठा हो गई। पानी-वानी झरने से कोई लेना-देना नहीं है। जहां बिल्कुल पानी नहीं गिरता, वहां भी जीवित मंदिर हैं; वहां भी हो सकते हैं।

दीक्षा दी नहीं जाती--घटित होती है

प्रश्नः आध्यात्मिक साधना में दीक्षा का बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान है। उसकी विशेष विधियां विशेष स्थितियों में होती हैं। बुद्ध और महावीर भी दीक्षा देते थे। अतः कृपया बताएं कि दीक्षा का क्या सूक्ष्म अर्थ है? दीक्षा कितने प्रकार की संभव है? उसका महत्व और उसकी उपयोगिता क्या है? और उसकी आवश्यकता क्यों है?

दीक्षा के संबंध में थोड़ी सी बात उपयोगी है। एक तो यह कि दीक्षा दी नहीं जाती; दीक्षा दी भी नहीं जा सकती। दीक्षा घटित होती है; वह एक हैपनिंग है। कोई व्यक्ति महावीर के पास है। कभी-कभी वर्षों लग जाते हैं दीक्षा होने में। क्योंकि महावीर कहते हैं--रुको, साथ रहो, चलो, उठो, बैठो, इस तरह जीओ, इस तरह ध्यान में प्रवेश करो, इस तरह उठो, इस तरह बैठो, ऐसा जीओ। एक घड़ी है ऐसी जब वह व्यक्ति तैयार हो जाता है, और तब महावीर सिर्फ माध्यम रह जाते हैं। बल्कि माध्यम कहना भी शायद ठीक नहीं, बहुत गहरे में सिर्फ साक्षी, एक विटनेस रह जाते हैं, एक गवाह रह जाते हैं--उनके सामने दीक्षा घटित होती है।

दीक्षा सदा परमात्मा से घटित होती है

दीक्षा सदा परमात्मा से है। महावीर के समक्ष घटित होती है। लेकिन निश्चित ही, जिस पर घटित होती है, उसको तो महावीर दिखाई पड़ते हैं, परमात्मा दिखाई नहीं पड़ता। उसे तो सामने महावीर दिखाई पड़ते हैं, और महावीर के साथ में ही उस पर घटित होती है। स्वभावतः वह महावीर के प्रति अनुगृहीत होता है। यह उचित है। लेकिन महावीर उसके अनुग्रह को स्वीकार नहीं करते। क्योंकि वे तो तभी स्वीकार कर सकते हैं जब कि वे मानते हों कि मैंने दीक्षा दी है।

इसलिए दो तरह की दीक्षाएं हैं। एक दीक्षा तो वह जो घटित होती है--जिसे मैं दीक्षा कहता हूं--वह इनीशिएशन है, जिसमें तुम परमात्मा से संबंधित हुए, तुम्हारी जीवन-यात्रा बदली। तुम और हो गए। तुम अब वही नहीं हो जो थे। तुम्हारा सब रूपांतरित हो गया, तुम्हें कुछ नया दिखा, तुममें कुछ नया घटित हुआ, तुममें कुछ नई किरण आई, तुम्हारा सब कुछ और हो गया है। एक तो यह दीक्षा है, जिसमें जिसको हम गुरु कहते हैं, वह सिर्फ विटनेस की तरह, गवाह की तरह खड़ा होता है। और वह सिर्फ इतना ही बता सकेगा कि हां, दीक्षा हो गई; क्योंकि वह पूरा देख रहा है, तुम आधा ही देख रहे हो। तुम्हें, तुम पर जो हो रहा है, वह दिखाई पड़ रहा है। उसे वह भी दिखाई पड़ रहा है, जिससे हो रहा है। इसलिए तुम पक्के गवाह नहीं हो सकते कि हुई घटना कि नहीं हुई; तुम इतना ही कह सकते हो कि बहुत कुछ रूपांतरण हुआ।

लेकिन दीक्षा हुई कि नहीं? मैं स्वीकृत हुआ या नहीं? दीक्षा का मतलब हैः हैव आई बीन एक्सेप्टेड? क्या मैं चुन लिया गया? क्या मैं स्वीकृत हो गया उस परमात्मा को? क्या अब मैं मानूं कि मैं उसका हो गया? अपनी तरफ से तो मैंने छोड़ा, उसकी तरफ से भी मैं ले लिया गया हूं या नहीं?

लेकिन इसका तुम्हें एकदम से पता नहीं चल सकता। तुम्हें थोड़े अंतर तो पता चलेंगे, लेकिन पता नहीं ये अंतर काफी हैं या नहीं? तो वह जो दूसरा आदमी है, जिसको हम गुरु कहते रहे हैं, वह इतना जान सकता है; उसे दोनों घटनाएं दिखाई पड़ रही हैं।

गुरु--मात्र गवाह

सम्यक दीक्षा दी नहीं जाती, ली भी नहीं जाती, परमात्मा से घटित होती है; तुम सिर्फ ग्राहक होते हो। और जिसे तुम गुरु कहते हो, वह सिर्फ साक्षी और गवाह होता है।

दूसरी दीक्षा, जिसको हम फाल्स इनीशिएशन कहें, झूठी दीक्षा कहें, वह दी जाती है और ली जाती है। उसमें ईश्वर बिल्कुल नहीं होता; उसमें गुरु और शिष्य ही होते हैं--गुरु देता है और शिष्य लेता है--लेकिन तीसरा और असली मौजूद नहीं होता। जहां दो मौजूद हैं सिर्फ--गुरु और शिष्य--वहां दीक्षा झूठी होगी; जहां तीन मौजूद हैं--गुरु, शिष्य और वह भी, जिससे दीक्षा घटित होगी, वहां सब बात बदल जाएगी।

तो यह जो दीक्षा देने का उपक्रम है, यह अनुचित है। अनुचित ही नहीं, खतरनाक है, घातक है; क्योंकि इस दीक्षा के भ्रम में वह दीक्षा कभी घटित न हो पाएगी अब। अब तुम तो इस भ्रम में जीओगे कि दीक्षा हो गई।

अब एक साधु मेरे पास आए। अब वे दीक्षित हैं किसी के; कहते हैं, फलां गुरु का दीक्षित हूं और ध्यान सीखने आपके पास आया हूं। तो मैंने कहा, दीक्षा किसलिए ली? और जब दीक्षा में ध्यान भी नहीं आया, तो और क्या मिला है दीक्षा में? वस्त्र मिल गए हैं! नाम मिल गया है! और जब ध्यान अभी खोजना पड़ रहा है, तो दीक्षा कैसे हो गई? क्योंकि सच तो यह है कि ध्यान के बाद ही दीक्षा हो सकती है, दीक्षा के बाद ध्यान का कोई मतलब नहीं है। एक आदमी कहता है, मैं स्वस्थ हो गया हूं; और डाक्टरों के दरवाजों पर घूम रहा है और कहता है कि मुझे दवा चाहिए। दीक्षा तो ध्यान के बाद मिली हुई स्वीकृति है; वह सैंक्शन है कि तुम स्वीकृत कर लिए गए, अंगीकार कर लिए गए, परमात्मा तक तुम्हारी खबर पहुंच गई, उस दुनिया में भी तुम्हारा प्रवेश हो गया है, इस बात की स्वीकृति भर दीक्षा है।

सम्यक दीक्षा को पुनर्जीवित करना पड़ेगा

लेकिन ऐसी दीक्षा खो गई है। और मैं चाहता हूं कि ऐसी दीक्षा पुनरुज्जीवित हो, जिसमें गुरु देनेवाला न हो, जिसमें शिष्य लेनेवाला न हो; जिसमें गुरु गवाह हो, शिष्य ग्राहक हो, और देनेवाला परमात्मा हो।

और यह हो सकता है। और यह होना चाहिए। उस दिन तुम्हारा मेरे प्रति... अगर मैं किसी का गवाह हूं दीक्षा में, तो मैं उसका गुरु नहीं हो जाता, गुरु तो उसका परमात्मा ही हुआ फिर। और वह अगर अनुगृहीत है, तो यह उसकी बात है। लेकिन अनुग्रह मांगना बेमानी है; स्वीकार करने का भी कोई अर्थ नहीं है।

गुरुडम पैदा हुई दीक्षा को एक नई शक्ल देने से। कान फूंके जा रहे हैं! मंत्र दिए जा रहे हैं! कोई भी आदमी किसी को भी दीक्षित कर रहा है। वह खुद भी दीक्षित है, यह भी पक्का नहीं है। परमात्मा तक वह भी स्वीकृत हुआ है, इसका भी कोई पक्का नहीं है। वह भी इसी तरह दीक्षित है। किसी ने उसके कान फूंके हैं, वह किसी दूसरे के फूंक रहा है! वह दूसरा कल किसी और के फूंकने लगेगा!

झूठी दीक्षा आध्यात्मिक अपराध

आदमी हर चीज में झूठ और डिसेप्शन पैदा कर लेता है। और जितनी रहस्यपूर्ण बातें हैं, वहां तो प्रवंचना बहुत संभव है, क्योंकि वहां तो कोई पकड़कर हाथ में दिखानेवाली चीज नहीं है। अब मैं चाहता हूं, इस प्रयोग को भी करना चाहता हूं, इस प्रयोग को भी करना चाहता हूं, दस-बीस लोग तैयार हो रहे हैं, वे दीक्षा लें परमात्मा से। बाकी लोग जो मौजूद हों, वे गवाह हों। बस वे इतना कह सकें, इतना भर बता सकें कि ऊपर तक स्वीकृत बात हो गई कि नहीं हो गई। उतना काम है। अनुभव तो तुम्हें भी होगा, लेकिन तुम एकदम से पहचान न पाओगे। इतना अपरिचित जगत है वह, तुम रिकग्नाइज कैसे करोगे कि हो गया? बस उतनी बात का मूल्य है। इसलिए परम गुरु तो परमात्मा ही है। अगर बीच के गुरु हट जाएं तो आसानी हो जाती है।

लेकिन बीच के गुरु बहुत पैर जमाकर खड़े होते हैं; क्योंकि खुद को परमात्मा बनाने और दिखलाने का मजा अहंकार के लिए बहुत है। इस अहंकार के आसपास बहुत तरह की दीक्षाएं दी जाती हैं। उनका कोई भी मूल्य नहीं है। और आध्यात्मिक अर्थों में वह सब क्रिमिनल एक्ट है। और किसी दिन अगर हम आध्यात्मिक

अपराधियों को सजा दें तो उनको सजा मिलनी चाहिए। क्योंकि वह एक आदमी को इस धोखे में रखना है कि उसकी दीक्षा हो गई। और वह आदमी अकड़कर चलने लगता है कि मैं दीक्षित हूं--मुझे दीक्षा मिल गई, मंत्र मिल गया, यह हो गया, वह हो गया--वह यह सब मानकर चलता है। और इसलिए वह जो उसका होनेवाला था, जिसकी वह खोज करता, वह खोज बंद कर देता है।

बौद्ध धर्म के त्रिशरणों का वास्तविक अर्थ

बुद्ध के पास कोई भी आता, तो कभी एकदम से दीक्षा नहीं होती थी; वर्षों कभी लग जाते। उस आदमी को कहते कि रुको, अभी ठहरो, अभी इतना करो, अभी इतना करो, इतना करो, फिर किसी दिन, फिर किसी दिन--उसको टालते चले जाते। जिस दिन वह घड़ी आ जाती, उस दिन वे खुद कह देते कि अब तुम खड़े हो जाओ और दीक्षित हो जाओ।

लेकिन वह जो दीक्षा थी, उसके तीन हिस्से थे। जिस दिन वह दीक्षा होती--बुद्ध की जो दीक्षा थी उसके तीन हिस्से थे। वह जो दीक्षित होता, वह तीन तरह की शरण जाता; थ्री टाइप्स ऑफ सरेंडर थे वे। वह तीन तरह की शरण करता।

बुद्धं शरणं गच्छामि

वह कहता, बुद्ध की शरण जाता हूं। और ध्यान रहे, बुद्ध की शरण जाने का मतलब गौतम बुद्ध की शरण जाना नहीं था; बुद्ध की शरण जाने का मतलब है--जागे हुए की शरण जाता हूं। इसका मतलब गौतम बुद्ध की शरण कभी भी नहीं था।

इसलिए बुद्ध से एक दफा किसी ने पूछा कि आप सामने बैठे हैं और एक आदमी आकर कहता है--बुद्धं शरणं गच्छामि। और आप सुन रहे हैं!

तो बुद्ध ने कहा कि वह मेरी शरण नहीं जा रहा, वह जागे हुए की शरण जा रहा है। मैं तो महज बहाना हूं। मेरी जगह और बुद्ध होते रहेंगे, मेरी जगह और बुद्ध हुए हैं; मैं तो सिर्फ एक बहाना हूं, एक खूंटी हूं। वह जागे हुए की शरण जा रहा है; मैं कौन हूं जो बाधा दूं? वह मेरी शरण जाए तो मैं रोक दूं; वह कहता है, बुद्ध की शरण।

तो तीन बार वह जागे हुए की शरण जा रहा है। वह जागे हुए के सामने अपने को समर्पित कर रहा है।

संघं शरणं गच्छामि

फिर दूसरी शरण और अदभुत है! वह हैः संघं शरणं गच्छामि। वह तीन बार संघ की शरण जा रहा है। संघ का मतलब? आमतौर से बुद्ध को माननेवाले भी समझते हैंः संघ का मतलब बुद्ध का संघ। नहीं, वह संघ का मतलब नहीं है। संघ का मतलब है जागे हुओं का संघ। एक ही बुद्ध थोड़े ही है जागा हुआ! बहुत बुद्ध हो चुके हैं जो जाग गए, बहुत बुद्ध होंगे जो जागेंगे--उन सबका संघ है एक, उन सबकी एक कम्युनिटी है, एक कलेक्टिविटी है। तो कोई बुद्ध के संघ की शरण जा रहा हूं, वह तो बौद्धों की समझ है कि वह कह रहा है कि अब बुद्ध का जो यह संप्रदाय है, इसकी मैं शरण जा रहा हूं।

नहीं, जब पहले सूत्र से ही साफ हो जाता है, जब बुद्ध कहते हैं, वह मेरी शरण नहीं जा रहा है, जागे हुए की शरण जाता है, तो दूसरा सूत्र और भी साफ हो जाता है कि वह जागे हुओं के संघ की शरण जाता है। पहले वह एक व्यक्ति को जो सामने मौजूद है, उस पर अपने को समर्पित कर रहा है। क्योंकि यह प्रत्यक्ष है; आसान है इससे बात करनी। फिर वह उस बड़ी ब्रदरहुड, उस बड़े संघ के लिए समर्पण कर रहा है, जो जागे हैं कभी,

जिनका उसे पता नहीं; जो कभी जागेंगे भविष्य में, उनका भी उसे कोई पता नहीं; जो अभी भी जागे हुए होंगे कहीं, उनका भी उसे कोई पता नहीं; वह उनको भी समर्पण कर रहा है कि मैं तुम्हारी भी शरण जाता हूं। वह एक कदम आगे बढ़ा सूक्ष्म की तरफ।

धम्मं शरणं गच्छामि

तीसरी शरण हैः धम्मं शरणं गच्छामि। तीसरी बार वह कह रहा हैः मैं धर्म की शरण जाता हूं। पहला, जो जागे हुए बुद्ध हैं, उनकी। दूसरा, जो बुद्धों का जागा हुआ संघ है, उनकी। और तीसरा, जो जागरण की परम अवस्था है--धर्म, स्वभाव, जहां न व्यक्ति रह जाता है, जहां न संघ रह जाता है, जहां सिर्फ नियम, दि लॉ, सिर्फ धर्म रह जाता है--मैं उस धर्म की शरण जाता हूं।

ये तीन शरण जब वह पूरी कर दे--और यह सिर्फ कहने की बात न थी--यह जब पूरी हो जाए और बुद्ध को दिखाई पड़े कि ये तीन शरण इसकी पूरी हो गई हैं, तब दीक्षित होता वह आदमी; और बुद्ध सिर्फ गवाह होते। इसलिए बुद्ध उसको दीक्षा के बाद भी कहते कि मैं जो कहूं तू उसे इसलिए मत मान लेना कि मैं बुद्ध-पुरुष हूं; मैं जो कहूं उसे इसलिए मत मान लेना कि एक महान व्यक्ति ने कहा; मैं जो कहूं उसे इसलिए मत मान लेना कि जिसने कहा उसे बहुत लोग मानते हैं; मैं जो कहूं उसे इसलिए मत मान लेना कि शास्त्रों में वही लिखा है। नहीं, तेरी बुद्धि जो कहे, अब तू उसी को मानना।

वे गुरु बन नहीं रहे हैं। इसलिए मरते वक्त जो आखिरी संदेश है बुद्ध का, वह हैः अप्प दीपो भव! आखिरी वक्त जब उनसे कहा है कि कुछ और संदेश दें! तो वे आखिरी संदेश देते हैं कि तुम अपने दीपक खुद ही बनना, तुम किसी के पीछे मत जाना, अनुसरण मत करना। बी ए लाइट अनटू योरसेल्फ! अप्प दीपो भव! अपने दीये खुद बन जाना, बस यह मेरा आखिरी... यह आखिरी संदेश है।

दीक्षा देकर बांधनेवाले गुरुओं से सावधान

तो ऐसा व्यक्ति गुरु नहीं बनता; ऐसा व्यक्ति साक्षी है, गवाह है। जीसस ने बहुत जगह यह बात कही है कि जिस दिन निर्णय होगा, मैं तुम्हारी गवाही रहूंगा। जीसस बहुत जगह यह बात कहे हैं कि जिस दिन अंतिम निर्णय होगा, मैं तुम्हारी गवाही रहूंगा। अंतिम निर्णय के वक्त मैं कहूंगा कि हां, यह आदमी जागने की आकांक्षा किया था; यह आदमी परमात्मा के लिए समर्पण की आकांक्षा किया था। यह तो प्रतीक में कहना है, लेकिन क्राइस्ट यह कह रहे हैं कि मैं गवाही हूं, मैं तुम्हारा गुरु नहीं हूं।

गुरु कोई भी नहीं है। इसलिए जिस दीक्षा में कोई आदमी गुरु बन जाता हो, उस दीक्षा से सावधान होना जरूरी है। और जिस दीक्षा में परमात्मा ही सीधा, इमीजिएट और डायरेक्ट संबंध में आता हो, वह दीक्षा बड़ी अनूठी है।

और ध्यान रहे कि इस दूसरी दीक्षा में न तो किसी को घर छोड़कर भागने की जरूरत है; न इस दूसरी दीक्षा में किसी को हिंदू, मुसलमान, ईसाई होने की जरूरत है; न इस दूसरी दीक्षा में किसी से बंधने की कोई जरूरत है। इसमें तुम अपनी परिपूर्ण स्वतंत्रता में जैसे हो, जहां हो, वैसे ही रह सकते हो, सिर्फ भीतर तुम्हारी बदलाहट शुरू हो जाएगी। लेकिन वह जो पहली झूठी दीक्षा है, उसमें तुम किसी धर्म से बंधोगे--हिंदू बनोगे, मुसलमान बनोगे, ईसाई बनोगे; किसी संप्रदाय के हिस्से बनोगे; कोई पंथ, कोई मान्यता, कोई डाग्मेटिज्म तुम्हें पकड़ेगा; कोई आदमी, कोई गुरु, वे सब तुम्हें पकड़ लेंगे, वे तुम्हारी स्वतंत्रता की हत्या कर देंगे। जो दीक्षा स्वतंत्रता न लाती हो, वह दीक्षा नहीं है; जो दीक्षा परम स्वतंत्रता लाती हो, वही दीक्षा है।

बुद्ध के पुनर्जन्म का रहस्य

प्रश्नः आपने कहा कि बुद्ध सातवें शरीर में महापरिनिर्वाण को उपलब्ध हुए, लेकिन अन्यत्र एक प्रवचन में आपने कहा है कि बुद्ध का एक और जन्म मनुष्य शरीर में मैत्रेय के नाम से होनेवाला है। तो निर्वाण काया में चले जाने के बाद पुनः मनुष्य शरीर लेना कैसे संभव होगा, इसे संक्षेप में स्पष्ट करने की कृपा करें।

हां, यह जरा कठिन बात है, इसलिए मैंने कल छोड़ दी थी, क्योंकि इसकी लंबी ही बात करनी पड़े। लेकिन फिर भी थोड़े में समझ लें।

सातवें शरीर के बाद वापस लौटना संभव नहीं है। सातवें शरीर की उपलब्धि के बाद पुनरागमन नहीं है; वह प्वाइंट ऑफ नो रिटर्न है। वहां से वापस नहीं आया जा सकता। लेकिन दूसरी बात सही है जो मैंने कही है कि बुद्ध कहते हैं कि मैं एक बार और आऊंगा, मैत्रेय के शरीर में; मैत्रेय नाम से एक बार और वापस लौटूंगा। अब ये दोनों ही बातें तुम्हें विरोधी दिखाई पड़ेंगी। क्योंकि मैं कहता हूं, सातवें शरीर के बाद कोई वापस नहीं लौट सकता; और बुद्ध का यह वचन है कि वे वापस लौटेंगे और बुद्ध सातवें शरीर को उपलब्ध होकर महानिर्वाण में समाहित हो गए हैं। तब यह कैसे संभव होगा?

इसका दूसरा ही रास्ता है। असल में, सातवें शरीर में प्रवेश के पहले... अब तुम्हें थोड़ी सी बात समझनी पड़े। जब हमारी मृत्यु होती है तो भौतिक शरीर गिर जाता है, लेकिन बाकी कोई शरीर नहीं गिरता। मृत्यु जब हमारी होती है तो भौतिक शरीर गिरता है, बाकी छह शरीर हमारे हमारे साथ रहते हैं। जब कोई पांचवें शरीर को उपलब्ध होता है, तो शेष चार शरीर गिर जाते हैं और तीन शरीर शेष रह जाते हैं--पांचवां, छठवां और सातवां। पांचवें शरीर की हालत में, यदि कोई चाहे... यदि कोई चाहे पांचवें शरीर की हालत में, तो ऐसा संकल्प कर सकता है कि उसके बाकी दूसरे और तीसरे और चौथे, तीन शरीर शेष रह जाएं। और अगर यह संकल्प गहरा किया जाए--और बुद्ध जैसे आदमी को यह संकल्प गहरा करने में कोई कठिनाई नहीं है--तो वह अपने दूसरे, तीसरे और चौथे शरीर को सदा के लिए छोड़ जा सकता है। ये शरीर शक्तिपुंज की तरह अंतरिक्ष में भ्रमण करते रहेंगे।

दूसरा ईथरिक, जो भाव शरीर है, तो बुद्ध की भावनाएं, बुद्ध ने अपने अनंत जन्मों में जो भावनाएं अर्जित की हैं, वे इस शरीर की संपत्ति हैं। उसकी सब सूक्ष्म तरंग इस शरीर में समाहित हैं। फिर एस्ट्रल बॉडी, सूक्ष्म शरीर है। इस सूक्ष्म शरीर में बुद्ध के जीवन की जितनी सूक्ष्मतम कर्मों की उपलब्धियां हैं, उन सबके संस्कार इसमें शेष हैं। और चौथा मनस शरीर, मेंटल बॉडी है। बुद्ध के मनस की सारी उपलब्धियां! और बुद्ध ने जो मनस के बाहर उपलब्धियां की हैं, वे भी कही तो मन से ही हैं, उनको अभिव्यक्ति तो मन से ही देनी पड़ती है। कोई आदमी पांचवें शरीर से भी कुछ पाए, सातवें शरीर से भी कुछ पाए, जब भी कहेगा तो उसको चौथे शरीर का ही उपयोग करना पड़ेगा, कहने का वाहन तो चौथा शरीर ही होगा।

तो बुद्ध की जितनी वाणी दूसरे लोगों ने सुनी है, वह तो बहुत कम है, सबसे ज्यादा वाणी तो बुद्ध की बुद्ध के ही चौथे शरीर ने सुनी है। जो बुद्ध ने सोचा भी है, जीया भी है, देखा भी है, समझा भी है, वह सब चौथे शरीर में संगृहीत है।

ये तीनों शरीर सहज तो नष्ट हो जाते हैं--पांचवें शरीर में प्रविष्ट हुए व्यक्ति के तीनों शरीर नष्ट हो जाते हैं; सातवें शरीर में प्रविष्ट हुए व्यक्ति के बाकी छह शरीर नष्ट हो जाते हैं, सभी कुछ नष्ट हो जाता है--लेकिन पांचवें शरीर वाला व्यक्ति यदि चाहे तो इन तीन शरीरों के संघट को, संघात को अंतरिक्ष में छोड़ सकता है। ये

ऐसे ही अंतरिक्ष में छूट जाएंगे जैसे अब हम अंतरिक्ष में कुछ स्टेशंस बना रहे हैं; वे अंतरिक्ष में यात्रा करते रहेंगे। और मैत्रेय नाम के व्यक्ति में वे प्रकट होंगे।

सूक्ष्म शरीरों का परकाया प्रवेश

तो कभी जो मैत्रेय नाम की स्थिति का कोई व्यक्ति पैदा होगा, उस स्थिति का जिसमें बुद्ध के ये तीन शरीर प्रवेश कर सकें, तो ये तीन शरीर तब तक प्रतीक्षा करेंगे और उस व्यक्ति में प्रवेश कर जाएंगे। और उस व्यक्ति में प्रवेश करते ही उस व्यक्ति की हैसियत ठीक वैसी हो जाएगी जैसी बुद्ध की; क्योंकि बुद्ध के सारे अनुभव, बुद्ध के सारे भाव, बुद्ध की सारी कर्म-व्यवस्था का यह पूरा इंतजाम है।

ऐसा समझ लो कि मेरे शरीर को मैं छोड़ जा सकूं इस घर में, सुरक्षित कर जा सकूं...

जैसे अभी अमेरिका में एक आदमी मरा, कोई तीन साल पहले, चार साल पहले, तो वह कोई करोड़ों डालर का ट्रस्ट कर गया है, और कह गया है कि मेरे शरीर को तब तक बचाया जाए जब तक साइंस इस हालत में न आ जाए कि उसको पुनरुज्जीवित कर सके। तो उसके शरीर पर लाखों रुपया खर्च हो रहा है। उसको बिल्कुल वैसे ही सुरक्षित रखना है। उसमें जरा भी खराबी न हो जाए। उस समय तक... आशा है कि इस सदी के पूरे होते-होते तक शरीर को पुनरुज्जीवित करने की संभावना प्रकट हो जाएगी। तो इधर तीस-चालीस साल उसको, उसके शरीर को ऐसा सुरक्षित रखना है जैसा कि वह मरते वक्त था। उसमें जरा भी डिटोरिएशन न हो जाए। तो यह शरीर बचाया जा रहा है। यह वैज्ञानिक प्रक्रिया है। और अगर इस सदी के पूरे होते-होते तक हम शरीर को पुनरुज्जीवित कर सकें, तो वह शरीर पुनरुज्जीवित हो जाएगा।

निश्चित ही, उस शरीर को दूसरी आत्मा उपलब्ध होगी, वही आत्मा उपलब्ध नहीं हो सकती है। लेकिन शरीर यह रहेगा, उसकी आंखें ये रहेंगी, उसके चलने का ढंग यह रहेगा, उसका रंग यह रहेगा, उसका नाक-नक्शा यह रहेगा, इस शरीर की आदतें उसके साथ रहेंगी। एक अर्थ में वह उस आदमी को रिप्रेजेंट करेगा, इस शरीर से।

और अगर वह आदमी सिर्फ भौतिक शरीर पर ही केंद्रित था--जैसा कि होना चाहिए, नहीं तो भौतिक शरीर को बचाने की इतनी आकांक्षा नहीं हो सकती--तो अगर वह सिर्फ भौतिक शरीर ही था, बाकी शरीरों का उसे कुछ पता भी नहीं था, तो कोई भी दूसरी आत्मा बिल्कुल एक्ट कर पाएगी। वह बिल्कुल वही हो जाएगी। और वैज्ञानिक दावा भी करेंगे कि यह वही आदमी हो गया है, इसमें कोई फर्क नहीं है। उस आदमी की सारी स्मृतियां, जो इसके भौतिक ब्रेन में संरक्षित होती हैं, वे सब जग जाएंगी। वह फोटो पहचानकर बता सकेगा कि यह मेरी मां की फोटो है; वह बता सकेगा कि यह मेरे बेटे की फोटो है। ये सब मर चुके हैं तब तक, लेकिन वह फोटो पहचान लेगा। वह अपना गांव पहचानकर बता सकेगा कि यह रहा मेरा गांव जहां मैं पैदा हुआ था; और यह रहा मेरा गांव जहां मैं मरा था। और ये-ये लोग थे जब मैं मरा था तो जिंदा थे। लेकिन यह आत्मा दूसरी है। लेकिन ब्रेन के पास जो मेमोरी कंटेंट है वह दूसरा है।

स्मृति का पुनरारोपण

अभी वैज्ञानिक कहते हैं कि हम बहुत जल्दी स्मृति को ट्रांसप्लांट कर पाएंगे। यह संभव हो जाएगा। इसमें कठिनाई नहीं मालूम होती। अगर मैं मरूं, तो मेरी अपनी एक स्मृति है। और बड़ी संपत्ति खोती है दुनिया की; क्योंकि मैं मरता हूं तो मेरी सारी स्मृति खो जाती है। अगर मेरी सारी स्मृति की पूरी की पूरी टेप, पूरा मेरा यंत्र मेरे मरने के साथ बचा लिया जाए... जैसे हम आंख बचा लेते हैं अब; कल तक आंख ट्रांसप्लांट नहीं होती थी,

अब हो जाती है। तो कल मेरी आंख से कोई देख सकेगा; सदा मैं ही देखूं, अब यह बात गलत है; अब मेरी आंख से कल कोई दूसरा भी देख सकेगा। और सदा मेरे हृदय से मैं ही प्रेम करूं, यह भी गलत है; कल मेरे हृदय से कोई दूसरा भी प्रेम कर सकेगा। अब हृदय के संबंध में बहुत वायदा नहीं किया जा सकता कि मेरा हृदय सदा तुम्हारा रहेगा। वैसा वायदा करना बहुत मुश्किल है। क्योंकि यह हृदय किसी और के भीतर से किसी और को वायदा कर सकेगा। इसमें अब कोई कठिनाई नहीं रह गई।

ठीक ऐसे ही, कल स्मृति भी ट्रांसप्लांट हो जाएगी। वह सूक्ष्म है, बहुत डेलिकेट है, इसलिए देर लग रही है, और देर लगेगी। लेकिन कल मैं मरूं, तो जैसे मैं आज अपनी आंख दे जाता हूं आई बैंक को, ऐसे मैं मेमोरी बैंक को अपनी स्मृति दे जाऊं, और कहूं कि मरने के पहले मेरी सारी स्मृति बचा ली जाए और किसी छोटे बच्चे पर ट्रांसप्लांट कर दी जाए। तो जिस छोटे बच्चे को मेरी स्मृति दे दी जाएगी, मुझे जो बहुत कुछ जानना पड़ा, वह उस बच्चे को जानना नहीं पड़ेगा, वह जानता हुआ बड़ा होगा; वह उसकी स्मृति का हिस्सा हो जाएगा; वह उसको एब्जार्ब कर जाएगा। इतनी बातें वह जानेगा ही। और तब बड़ी मुश्किल हो जाएगी, क्योंकि मेरी स्मृतियां उसकी स्मृतियां हो जाएंगी। और वह कई मामलों में ठीक मेरे जैसे उत्तर देगा और कई मामलों में ठीक वह मेरी जैसी पहचान दिखलाएगा; क्योंकि उसके पास, ब्रेन के पास मेरा ब्रेन है।

मेरा मतलब समझ रहे हो न तुम?

तो बुद्ध ने एक दूसरी दिशा में प्रयोग किया है--और भी लोगों ने प्रयोग किए हैं, और वे वैज्ञानिक नहीं हैं, वे आकल्ट हैं--उसमें दूसरे, तीसरे और चौथे शरीर को संरक्षित करने की कोशिश की गई है। बुद्ध तो विलीन हो गए; वह जो आत्मा थी, वह जो चेतना थी, जो इन शरीरों के भीतर जीती थी, वह तो खो गई सातवें शरीर से, लेकिन खोने के पहले वह यह इंतजाम कर गई है कि ये तीन शरीर न मरें; वह इनको संकल्प की एक गति दे गई है।

समझ लो कि मैं एक पत्थर फेंकूं जोर से; इतने जोर से फेंकूं कि वह पत्थर पचास मील जा सके। मैं मर जाऊं, लेकिन इससे पत्थर नहीं गिर जाएगा। जो ताकत मैंने उसको दी है, वह पचास मील तक चलेगी। पत्थर यह नहीं कह सकता कि वह आदमी मर गया जिसने मुझे ताकत दी थी, तो अब मैं कैसे चलूं! पत्थर को जो ताकत दी गई थी पचास मील चलने की, वह पचास मील चलेगा। अब मेरे मरने-जीने से कोई संबंध नहीं, मेरी ताकत उस पत्थर को लग गई, वह अब काम करेगा।

मेरा मतलब समझे न?

कृष्णमूर्ति में बुद्ध के अवतरण का असफल प्रयोग

बुद्ध जो ताकत दे गए हैं उन तीन शरीरों को जीवित रहने की, वे तीन शरीर जीएंगे। और, वे समय भी बता गए हैं कि वे कितनी देर तक... यानी वह वक्त करीब है जब मैत्रेय को जन्म लेना चाहिए। कृष्णमूर्ति पर वही प्रयोग किया गया था कि इनकी तैयारी की जाए, वे तीन शरीर इनको मिल जाएं। कृष्णमूर्ति के एक छोटे भाई थे, नित्यानंद। पहले उन पर भी वह प्रयोग किया गया, लेकिन नित्यानंद की मृत्यु हो गई। वह मृत्यु इसी में हुई। क्योंकि यह बहुत अनूठा प्रयोग था और इस प्रयोग को आत्मसात करना एकदम आसान बात नहीं थी। कोशिश यह की गई कि नित्यानंद के तीन शरीर खुद के तो अलग हो जाएं और मैत्रेय के तीन शरीर उनमें प्रवेश कर जाएं। नित्यानंद तो मर गया। फिर कृष्णमूर्ति पर भी वही कोशिश चली। वह भी कोशिश यही थी कि इनके तीन शरीर हटा दिए जाएं और रिप्लेस कर दिए जाएं। वह भी नहीं हो सका। फिर और एक-दो लोगों पर--जार्ज अरंडेल पर भी वही कोशिश की गई। क्योंकि कुछ लोगों को इस बात का... जैसे ब्लावटस्की इस सदी में आकल्ट

के संबंध में जाननेवाली शायद सबसे गहरी समझदार औरत थी। उसके बाद एनीबीसेंट के पास बहुत समझ थी, और लीडबीटर के पास बहुत समझ थी। इन लोगों के पास कुछ समझ थी जो इस सदी में बहुत कम लोगों के पास है।

इनकी बड़ी चेष्टा यह थी कि वह तीन शरीरों को जो शक्ति दी गई थी उसके क्षीण होने का समय आ रहा है। अगर मैत्रेय जन्म नहीं लेता, तो वे शरीर बिखर सकते हैं अब। उनको जितने जोर से फेंका गया था, वह पूरा हो जाएगा, और किसी को अब तैयार होना चाहिए कि वह उन तीन शरीरों को आत्मसात कर ले। जो व्यक्ति भी उनको तीनों को आत्मसात कर लेगा, वह ठीक एक अर्थ में बुद्ध का पुनर्जन्म होगा--एक अर्थ में! मेरा मतलब समझे? बुद्ध की आत्मा नहीं लौटेगी, इस व्यक्ति की आत्मा बुद्ध के शरीर ग्रहण करके बुद्ध का काम करने लगेगी, एकदम बुद्ध के काम में संलग्न...

इसलिए हर कोई व्यक्ति नहीं हो सकता इस स्थिति में। जो होगा भी, वह भी करीब-करीब बुद्ध के पास पहुंचनेवाली चेतना होनी चाहिए, तभी उन तीन शरीरों को आत्मसात कर पाएगी, नहीं तो मर जाएगी। तो जो असफल हुआ सारा का सारा मामला, वह इसीलिए असफल हुआ कि उसमें बहुत कठिनाई है। लेकिन फिर भी, अभी भी चेष्टा चलती है। अभी भी कुछ छोटे से इसोटेरिक सर्किल इसकी कोशिश में लगे हुए हैं कि किसी बच्चे को वे तीन शरीर मिल जाएं। लेकिन अब उतना व्यापक प्रचार नहीं चलता, प्रचार से नुकसान हुआ।

कृष्णमूर्ति के साथ संभावना थी कि शायद वे तीन शरीर कृष्णमूर्ति में प्रवेश कर जाते। उनके पास उतनी पात्रता थी। लेकिन इतना व्यापक प्रचार किया गया। प्रचार शुभ दृष्टि से ही किया गया था कि जब बुद्ध का आगमन हो तो वे फिर से रिकग्नाइज हो सकें। और यह प्रचार इसलिए भी किया गया था कि बहुत से लोग हैं जो बुद्ध के वक्त में जीवित थे, उनकी स्मृति जगाई जा सके तो वे पहचान सकें कि यह आदमी वही है कि नहीं है। इस ध्यान से प्रचार किया गया। लेकिन वह प्रचार घातक सिद्ध हुआ। और उस प्रचार ने कृष्णमूर्ति के मन में एक रिएक्शन और प्रतिक्रिया को जन्म दे दिया। वे संकोची और छुई-मुई व्यक्तित्व हैं। ऐसा सामने मंच पर होने में उनको कठिनाई पड़ गई। अगर वह चुपचाप और किसी एकांत स्थान में यह प्रयोग किया गया होता और किसी को न बताया गया होता जब तक कि घटना न घट जाती, तो शायद संभव था कि यह घटना घट जाती। वह नहीं घट पाई। वह बात चूक गई। कृष्णमूर्ति ने अपने शरीर छोड़ने से इनकार कर दिया और इसलिए दूसरे के शरीरों के लिए जगह नहीं बन सकी। इसलिए वह घटना नहीं हो सकी। और इसलिए एक बड़ी भारी असफलता इस सदी में आकल्ट साइंस को मिली। इतना बड़ा एक्सपेरिमेंट भी कभी नहीं किया गया था--तिब्बत को छोड़कर कहीं भी नहीं किया गया था। तिब्बत में बहुत दिनों से उस प्रयोग को करते रहे हैं, और बहुत सी आत्माएं वापस दूसरे शरीरों से काम करती रही हैं।

तो मेरी बात तुम्हारे ख्याल में आ गई? उसमें विरोध नहीं है। और मेरी बात में कहीं भी विरोध दिखे तो समझना कि विरोध होगा नहीं। हां, कुछ और रास्ते से बात होगी, इसलिए विरोध दिखाई पड़ सकता है।